

आलवार भक्तों का तमिल-प्रबन्धम्
और
हिन्दी कृष्ण-काव्य

आलवार भक्तों का तमिल-प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण-कान्य

लेखक

डा० मलिक मोहम्मद

एम ए एल-एस बी पी-एस बी,

द्वितीय विभाग

अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़

विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक

विमोक्ष पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड बागदा

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

प्रथम संस्करण : १९६४

मूल्य : बीस रुपये

मुद्रक

कलाश प्रिन्टिङ्ग प्रेस

डॉ. रामेय चापल मार्ग

बागदा

भारत की राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता

के लिए सतत प्रयत्नशील

महापुरुषों

को

सादर समर्पित

‘मुझे पुनः माँस-संपुष्ट मदकर भर-जीवन धारण करने की कामना मझी है । मुझे बाढ़ नहीं कि अतीत सुख-संपति भयबा अम्बर रत्नचियों के विनम्रतासाध्यों से पुर्ण भावक स्वर्णीय घातक प्राप्त कर । मैं अपने को बन्ध समझूँ, अगर बेंकट पक्ष की निर्मल निर्मलिकी में एक मौन होने का भाव्य प्राप्त हो । प्रभु के पावन पर कमलों के बर्धनार्थ गीत-रस-लहरी में निमज्जित अमर-समूह के लंकार मुजित बेंकटपिरि की बाटिका में एक अंघक कुसुम बन जाऊँ ।’

—कुलशेखरदास

“मातृप हों तो बही ‘रसलानि’ बसी बज पोहुन माँ के धारण ।
जो पसु हों तो कहा बस मेरो, जहाँ नित मेव को धेनु संभारण ॥
पाहन हों तो बही गिरि को जो धरयो कर छम पुरखर धारण ।
जो जग हों तो बसेरीं जहाँ मिलि कामिनी कूल कबज की धारण ॥

—रसदान

★

“बित तरह बहाज का पसी फिर-फिर बहाज के जमे पर ही धाता है, जती तरह (हे, भयबान्) मैं धारयो शरब में धाया हूँ । मुझे अम्यब कोई सहारा नहीं है ।’

—कुलशेखरदास

‘मेरी मन अम्यब कहाँ धुक पावे ।

जैसे जड़ि बहाज को पंछे, फिरि बहाज पर धावे ।’

—सुरदास

★

“प्रिय विधीन मैं मेरी हृदिबनी पिघल गयी हूँ । मेरे भासे-सज निज कमी बन्ध नहीं होने । प्रिय के धामध मैं जैसे नीब धाए ? विधीन-कुल सागर मैं योबिन्द नामक नाव के बिना मैं अतीत कब्य भोग रही हूँ ।’

—आण्डाल

“रबैया बिन सीब न धाव ।

मीब न धावे बिछु सतावे, प्रेम की प्राँच हुसारी ।

निस बिन ओषां बाट पुरारी कबरो इरतम पावो ।

मीरा रे हरि ये मिलियो बिन तरस-तरस जीया जावो ॥’

—मीरा

परिचय

मुझे यह ध्यानकर बड़ी प्रसन्नता है कि डा० मलिक मोहम्मद का "१६वीं शती के हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य पर आठबारों का प्रभाव" सीधे-से प्रबन्ध परिवर्धित और संशोधित रूप में प्रकाशित हो रहा है। डा० मलिक हिन्दी तथा तमिळ के गंभीर विद्वान् हैं तथा संस्कृत भाषि अग्य कई भाषाओं का इन्हें अच्छा ज्ञान है। प्रायः हिन्दी के शोध-संज्ञ अपना अध्ययन हिन्दी साहित्य तक ही सीमित रखते हैं जिसके कारण उनके दृष्टिकोण तथा मूल्यांकन में यह व्यापकता नहीं आ पाती जो साहित्य की सार्वभौम सत्ता का प्रधान अंग है। हिन्दी साहित्य का अध्ययन अभी सर्वाङ्गीण हो सकता है जबकि सम्पूर्ण विश्व-साहित्य या कम से कम भारतीय भाषाओं के साहित्य के सम्बन्ध में उसका अनुशीलन तथा मूल्यांकन किया जाय। हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य के सम्बन्ध में तो यह व्यापक दृष्टि अनिवार्य है। हिन्दी साहित्य में मध्ययुगीन भक्ति-साधना को लेकर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु उनमें बहुत कम ऐसे हैं जिनमें सम्पूर्ण मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलन का तुलनात्मक तथा र्तुलित रूप प्रस्तुत किया गया हो। इसका एक कारण लेखकों का हिन्दीतर भाषाओं के ज्ञान का न होना भी हो सकता है। बात यह है कि हिन्दी के भक्ति-साहित्य का अध्ययन हिन्दीतर भाषाओं विशेषकर बंलिया की भाषाओं के भक्ति-साहित्य के अध्ययन के बिना पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

सम्पूर्ण मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य का प्रेरण-स्रोत आठबारों का भक्ति-साहित्य ही रहा है। वास्तव में आठबारों का तमिळ-प्रबन्ध ही भक्ति-आन्दोलन को दिशा देने वाला ग्रन्थ है जो 'तमिळ-वेब' के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

डा० मलिक की मातृ-भाषा तमिळ है तथा इन्होंने उत्तर भारत में रहकर हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया है। डा० मलिक की तमिळ में अनेक साहित्यिक कृतियाँ हैं। दोनों भाषाओं पर समान अधिकार होने के कारण डा० मलिक ने अपने विषय से पूरा स्वाद किया है। सगमन बार बपों के अनवरत अध्ययन के उपरान्त डा० मलिक ने अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। परीक्षकों ने प्रबन्ध की मृत्तकठ से प्रशंसा की है तथा हिन्दी साहित्य में उसे मौलिक देन बताया है। मैं स्वयं भी भी मलिक जैसे योग्य तथा विद्वान् छात्र पर गर्व तथा गौरव अनुभव करता हूँ।

प्रस्तुत चौच-ग्रन्थ के दो खंड हैं । प्रथम खंड में सेलक से प्रबन्धम् का तथ्यक परिचय लेकर मध्ययुगीन मक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले प्रबन्धम् के तथ्यों का विवेचन किया है । द्वितीय खंड में प्रबन्धम् और १६वीं सदी के हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत अध्ययन द्वारा अनेक मौलिक तथ्यों का उद्घाटन हुआ है । तमिळ तथा हिन्दी के वैष्णव मक्ति-साहित्यों का तुलनात्मक रूप से विस्तृत और गंभीर अध्ययन इस ग्रन्थ के रूप में ही पहली बार प्रस्तुत किया जा रहा है । मुझे विश्वास है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के विद्यार्थी इसे अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवद्धक पायेंगे और इस ग्रन्थ से हिन्दी तथा तमिळ साहित्यों के दूसरे पक्षों को लेकर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए जाने के अभ्येताओं को निश्चित रूप से प्रेरणा मिलेगी ।

असीपढ़
१२-४-१९९४

डा० हरबंशासास शर्मा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी-संस्कृत-विभाग
असीपढ़ विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

भारतीय भक्ति आन्दोलन का बहुत ही लम्बा इतिहास है। हिन्दी प्रदेश में यह बहुत ही प्रसिद्ध उक्ति है कि 'भक्ति ब्राह्मिष्ठ ऊमजी बाये रामानन्द'। विद्वानों ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आन्दोलन पर तो विस्तार से लिखा है, पर दक्षिण में उत्पन्न होने वाली 'भक्ति' की मूल प्रेरणाओं पर अभी तक विशेष प्रकाश डाला नहीं गया है। भारतीय भक्ति-आन्दोलन में तमिळ-प्रदेश का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तमिळ-प्रदेश के आळ्वार भक्तों ने ईसा की पाँचवीं शती से आठवीं शती तक भक्ति का जो तीव्र आन्दोलन चलाया था, वह परवर्ती शताब्दियों में एक व्यापक जन-आन्दोलन का रूप धारण कर समस्त भारतवर्ष में व्याप्त हो गया। यही कारण है कि आळ्वार रचित 'प्रबन्धम्' अभी 'ब्राह्मिष्ठ ऊमजी बाये भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ माना जाता है। किन्तु ये है कि 'प्रबन्धम्' के वास्तविक परिचय एवं महत्त्व के प्रकाश में न लाने के कारण भक्ति-आन्दोलन पर लिखने वाले विद्वान् तमिळ-प्रदेश के भक्ति-आन्दोलन तथा उसके प्रवक्ता आळ्वार भक्तों के विषय में अपेक्षित विवरण दे नहीं सके। अतः इन ग्रन्थों से भक्ति-आन्दोलन का अपूर्ण इतिहास ही उपलब्ध है। भारतीय भक्ति-आन्दोलन में आळ्वारों के योगदान के वास्तविक महत्त्व को प्रकाश में लाने की बड़ी आवश्यकता रह गयी थी।

जब से प्रस्तुत लेखक ने हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-साहित्य का विशेष अध्ययन किया था तब से लेखक को आळ्वार भक्तों और हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों की विचार धारा में दीप्त पड़ने वाले अमृत और गहरे साम्य ने दोनों के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी। अर्द्धेय गुरु बा० हरचरणदास जी की स्फूर्तिमयी सत्प्रेरणा भी पाकर आळ्वारों के भक्ति-साहित्य का विस्तृत परिचय हिन्दी जगत को देने तथा आळ्वारों के और हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए लेखक प्रवृत्त हुआ। सोप के लिए अपेक्षित निश्चित सीमा को ध्यान में रखकर प्रस्तुत ग्रन्थ में तुलनात्मक अध्ययन के लिए आळ्वार भक्तों के तथा केवल १६ वीं शती के प्रमुख हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य को ही सिमा पया है। केवल १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-काव्य को लेने का बुरा कारण यह है कि समस्त हिन्दी कृष्ण-भक्ति-साहित्य में "१६वीं शती का कृष्ण भक्ति-काव्य" ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

तुलनात्मक अध्ययन में साधारणतः समकालीन दो भिन्न क्षेत्रों के साहित्यों को बिना बाँटा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में काम को लेकर यही बल्कि विषय-धाम्य से प्रेरित होकर भाळ्वारो के बीर १९वीं सदी के हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

भक्ति-आन्दोलन के मूल ग्रन्थ 'प्रबन्धम्' के भक्ति-तत्त्वों ने परवर्ती भक्ति-साहित्य को बहुत ही प्रभावित किया था और यही प्रभाव १९वीं सदी के हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य पर अप्रत्यक्ष रूप से (कई सताम्बियों के बीच जाने के कारण) दृष्टिगोचर होता है। सामान्य रूप से परवर्ती भक्ति-साहित्य पर 'प्रबन्धम्' के भक्ति-तत्त्वों का जो प्रभाव पड़ा है वह अप्रत्यक्ष रूप से १९वीं सदी के हिन्दी कृष्ण-काव्य पर भी पड़ा है। लेखक के मुख सोच-बन्ध का धीरे-धीरे १९वीं सदी के हिन्दी कृष्ण-काव्य पर भाळ्वारों का प्रभाव ही रखा गया था।

प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णित विषय को सटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम खण्ड भाळ्वार-साहित्य से सम्बन्धित है। द्वितीय खण्ड में भाळ्वारों तथा १९वीं सदी के हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य का कई दृष्टियों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ को आठ अध्यायों में विभाजित कर दिया गया है और उसका विषय-क्रम निम्नलिखित प्रकार से रखा गया है।

प्रथम अध्याय में भाळ्वारों के तथा आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य की सामान्य पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है। तमिळ-प्रवेश की भक्ति-परम्परा का परिचय देकर तमिळ प्रवेश में वैष्णव-भक्ति के विकास पर प्रकाश डाला गया है। भाळ्वारों के पूर्व तमिळ-साहित्य (संघ-साहित्य) में मिलने वाली वैष्णव भक्ति की एक मूर्ती भी प्रस्तुत की गयी है। गोपासकृष्ण और राधा के विकास में तमिळ के योगदान की चर्चा की गयी है। भाळ्वारों के समय की धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का परिचय देकर भक्ति-आन्दोलन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। वैष्णव भाळ्वार भक्ता ने तथा चौब भक्त नायनमारों ने मिलकर किस प्रकार जैन और बौद्ध धर्मों को परास्त पर तमिळ-प्रवेश में भक्ति की प्रबल बाध प्रवादित की थी इसका भी विवरण संक्षेप में दिया गया है। भक्ति-आन्दोलन को भाळ्वारों की मौलिक रीति पर प्रकाश डालकर यह साबित किया गया है कि इन पर इस्लामी विचार बाध का प्रभाव नहीं पड़ा है। भाळ्वारों के पञ्चाङ्ग उनकी विचार-धारा का आलोचक विवेचन प्रस्तुत करने वाले भाषाओं तथा अधिष्ठान के प्रमुख भक्ति-सम्प्रदायों का परिचय भी दिया गया है। साथ ही साथ १९वीं सताब्दी के हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य को प्रभावित करने वाले उत्तर के सम्प्रदायों का भी परिचय दिया गया है। इस प्रकार प्रथम अध्याय में एक प्रकार से भक्ति के क्रमिक विकास का ही संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत दिया गया है।

“कवि और काव्य” शीर्षक द्वितीय अध्याय में आठबार मछों और १६वीं शताब्दी के प्रमुख हिन्दी कृष्ण-मछ कवियों के जीवन-वृत्तों का संक्षिप्त परिचय देकर उनकी कृतियों तथा बर्ण्य विषय के विवरण दिये गये हैं। आठबारों के आदिमौल-काव्य इत्यादि के विषय में जनक मत है। जो मत समीचीन और प्रमाण-पुष्ट है उसी को स्वीकार किया गया है। आठबारों से सम्बन्धित अनेक जनश्रुतियाँ तमिल-प्रदेश में प्रचलित हैं। आठबारों के जीवन-वृत्तों का परिचय देते समय कुछ प्रसिद्ध जन-श्रुतियों का समावेश करना पड़ा है। तुलनारमक अध्ययन के लिए १६वीं शती के जिन प्रमुख हिन्दी कृष्ण मछ कवियों को लिया गया है, उनमें प्रत्येक सम्प्रदाय के दो-तीन प्रति निधि कवि हैं और कुछ सम्प्रदाय मुक्त कवि भी हैं।

तृतीय अध्याय पूर्ण रूप से ‘प्रबन्धम्’ से सम्बन्धित है। इसमें मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति-साहित्य का प्रभावित करने वाले ‘प्रबन्धम्’ के सामान्य और विशिष्ट तत्वों की चर्चा की गयी है। प्रसंगपर ‘प्रबन्धम्’ की तुलना श्रीमद्भागवत से करके यह दिखाया गया है कि ‘प्रबन्धम्’ का रचना-काल ‘भागवत’ से भी पूर्व का है। प्रबन्धम् के सामान्य तत्वों के अन्तर्गत रत्न भक्ति-तत्वों की चर्चा है जिन्होंने सामान्य रूप से परवर्ती भक्ति-साहित्य को प्रभावित किया है। विशिष्ट तत्वों के अन्तर्गत परवर्ती कृष्ण भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले तत्वों को लिया गया है।

चतुर्थ अध्याय में आठबारों और १६वीं शताब्दी के हिन्दी कृष्ण मछ कवियों की भक्ति-पद्धति का तुलनारमक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भक्ति की विविध परिभाषाओं तथा भक्ति के प्रकारों की चर्चा के साथ आठबार-काव्य तथा आलोच्य हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य से मध्वा भक्ति के उदाहरण दिये गये हैं। विभिन्न भक्ति-मार्गों की चर्चा कर दोनों क्षेत्रों के मछों की प्रेमा भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

पंचम अध्याय में दोनों क्षेत्रों के कवियों के दार्शनिक विचारों का तुलनारमक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्म, जीव, माया जगत् और मोक्ष सम्बन्धी दोनों क्षेत्रों के कवियों के विचारों में मिलने वाले साम्य और भिन्न पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय में आलोच्य कवियों के काव्य में उपलब्ध रहस्यारमक दृष्टिकोण की भी चर्चा है।

षष्ठ अध्याय में दोनों क्षेत्रों के कवियों के काव्य के भाव-यक्ष की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। भाव-यक्ष का सामान्य विवेचन कर आठबारों और आलोच्य कालीन हिन्दी कृष्ण-मछ कवियों के काव्य के भाव-यक्ष की आलोचना की गई है। विविध रसों के उदाहरण दोनों क्षेत्रों के काव्यों से दिये गये हैं। बर्णन-वैचित्र्य के अन्तर्गत विषय रूप से दोनों क्षेत्रों के कवियों की कृतियों में उपलब्ध प्रकृति-चित्रण के विविध रूपों की चर्चा की गयी है।

सप्तम अध्याय दोनों क्षेत्रों के कवियों के काव्य के कला-यक्ष से सम्बन्धित है। कला-यक्ष के अन्तर्गत दोनों के काव्य में उपलब्ध गौरव काव्य के विविध रूप, छन्द

योगना भाषा अस्कार-योगना और उक्ति-वैचित्र्य बाह्य विभिन्न तत्वों पर प्रकाश डाला गया है। यह निष्कर्ष निकाला गया है कि काव्य-कला को कसौटी पर भी लोगों दोनों के कवियों के काव्य क्षरे उतरते हैं।

‘मूर्त्याकन और उपसंहार’ शीर्षक अन्तिम अध्याय में आठवाराओं भक्तों के तथा १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य का कई दृष्टिकोणों से मूर्त्याकन किया गया है। उपसंहार में प्रस्तुत ग्रन्थ के उद्देश्य और उनकी पूर्ति की चर्चा कर दोनों दोनों के कवियों के काव्य के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भारतवर्ष की साधारण एकता पर जो प्रकाश पड़ता है, उसकी ओर भी संकेत किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के खण्ड में ४ परिशिष्ट भी जोड़ दिए गये हैं। प्रथम परिशिष्ट में आठवारा के कुछ चुने हुए गीतों का स्वतन्त्र हिन्दी भावानुवाद दिया गया है। इसमें दिये गये आठवारा-गीत मूल प्रबन्ध में स्थान नहीं पा सके। द्वितीय परिशिष्ट में आठवारा की रामभक्ति की चर्चा है। आठवारा-काव्य में उपसङ्ग राम-भक्ति पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय परिशिष्ट में प्रबन्ध पर विहित विभिन्न भाषा और उनकी भाषा का विवरण दिया गया है। ‘प्रबन्धम्’ की विचार-बारा के प्रचार में इन भाषाओं का विशेष हाथ रहा। अतः इन भाषा का विवरण देना उचित समझा गया। चतुर्थ परिशिष्ट में सहायक ग्रन्थों की सूची है।

प्रस्तुत अध्ययन के मूल में मुख्य रूप से दो उद्देश्य रहे हैं। प्रथम उद्देश्य तो यह है कि भारतीय भक्ति-आन्दोलन में आठवारा भक्ता के महत्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डालना तथा परवर्ती भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले प्रबन्धम् के तत्वों का सामान्य विवेचन प्रस्तुत करना। दूसरा उद्देश्य यह रहा है कि आठवारा के भक्ति-काव्य की तुलना १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य से कई दृष्टिकोणों से करके दोनों के साम्य और वैचित्र्य को स्पष्ट किया जाय। परवर्ती भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले प्रबन्धम् के तत्वा की विस्तृत चर्चा की गयी है। आठवारा के पश्चात् सबसे प्रभावित भाषाओं में भक्ति-प्रचार किया और आठवारा के भक्ति-सम्बन्धी विचारों को मूलभूत रूप में ग्रहण किया। प्रबन्धम् पर अनेक टीकाएँ तमिल और संस्कृत में हुईं। ‘प्रबन्धम्’ से प्रभावित अनेक ग्रन्थ संस्कृत और तमिल में निकले। इस प्रकार परवर्ती काम में ‘प्रबन्धम्’ की विचार-बारा का पक्का प्रचार हुआ। प्रबन्धम् के भक्ति-तत्वों में अन्य भाषाओं के भक्ति-साहित्यों को प्रभावित किया। जहाँ तक १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों पर आठवारा के प्रभाव का प्रश्न है, सेहक का निवेदन है कि आठवारा का प्रभाव १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण भक्तों पर लम्बी परम्परा से आया है क्योंकि दोनों के बीच घटावियों का मन्तर है। प्रबन्धम् के जिन भक्ति-तत्वा में परवर्ती भक्ति-साहित्य को सामान्य रूप से प्रभावित किया है, उन्हीं का प्रभाव १६ वीं शती के हिन्दी-कृष्ण भक्ति-काव्य पर भी देखा जा सकता है। परन्तु यह प्रभाव कई घटावियों के भीत जाने से अनेक माध्यमों से आया है।

१६वीं सदी के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों तक 'प्रबन्धम्' के प्रभाव को पहुँचाने वाले निम्नलिखित माध्यम हो सकते हैं —

१—'प्रबन्धम्' पर लिखित संस्कृत टीका-ग्रन्थ

२—'प्रबन्धम्' से प्रभावित विभिन्न भाषाओं के सिद्धान्त-ग्रन्थ,

३—'प्रबन्धम्' से प्रभावित श्रीमद्भागवत का वर्तमान रूप तथा

४—भाषाओं के सांप्रदायिक संघटन ।

'प्रबन्धम्' के प्रभाव को उत्तर भारत में पहुँचाने वाले विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायों के भाषावैशेष्य हैं, जिन्होंने बलिया की भक्ति-धारा को उत्तर में प्रवाहित किया । चूँकि १६ वीं सदी के हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने विशेष रूप से भक्ति-सम्प्रदायों के अन्तर्गत रहकर ही काव्य-रचना की है, अतः इन सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के प्रभाव का पड़ना स्वाभाविक ही है । मेरा कहनी बिनीत माध्यम है कि १६ वीं सदी के हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य पर 'प्रबन्धम्' का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव मानना ही होगा । इतना जरूर है कि यह प्रभाव अनेक माध्यमों से आया है । जो विद्वान् 'भक्ति शाब्दिक उभयी को मानते हैं, उनको यह भी मानना पड़ेगा कि शाब्दिक में उपजने वाली 'भक्ति' का मूल जोत 'प्रबन्धम्' ही है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के आठवार सम्बन्धी अध्ययन की सामग्री के संकलन में मेरा कहनी कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है । यह देखकर खेद-मिश्रित आश्चर्य होता है कि तमिल विद्वानों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण आठवार-साहित्य के प्रति क्यों उपेक्षा दिखायी है । जितना विस्तृत अध्ययन धीरे-धीरे के विषय में तमिल में हुआ है, उतना आठवारों के साहित्य के विषय में नहीं । तमिल में आठवार-साहित्य का कोई परम्परा व्यवस्था नहीं तक प्रस्तुत नहीं किया गया है । आठवारों के विषय में जो छोटी-मोटी पुस्तकें मिलती हैं, उनमें आलोचनात्मक दृष्टिकोण का निम्नान्त अभाव है । आठवारों के प्रबन्धम् पर जो टीकाएँ तमिल में निकली हैं, उनकी भाषा साधारण तमिल भाषी के लिए भी बोधव्यव नहीं है । सांप्रदायिक लोग आठवारों को अवतार समझ बैठे हैं और आठवार-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन करने वालों को निरुत्साहित कर बैठे हैं । ऐसी परिस्थितियों ने ग्रन्थ के मेरा कहनी आठवार साहित्य के अध्ययन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है । प्रस्तुत मेरा कहनी का अध्ययन मूल तमिल 'प्रबन्धम्' पर ही आधारित है । हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-काव्य पर तो विद्वानों ने अनेक उत्तम ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं । अतः मेरा कहनी को हिन्दी कृष्ण-काव्य सम्बन्धी सामग्री के संकलन में विशेष कठिनाई नहीं हुई ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के आठवार सम्बन्धी अध्ययन की सामग्री की प्राप्ति के लिए मेरा कहनी तमिल-श्रेष्ठ के विभिन्न स्थानों की यात्रा करनी पड़ी है । आठवार भक्तों के अग्र-स्वामी के पद पर तो मेरा कहनी ने किये हैं । इन स्थानों में आठवारों के जीवन-कृत्यों से सम्बन्धित अनेक अनुसृतियों का पता चला है । मेरा कहनी ने महाश्वर के दो प्रमुख पुस्तकालय (कविप्रदारा पुस्तकालय और मन्नास विश्वविद्यालय का पुस्तकालय) से

आळ्वार विषयक पर्याप्त सामग्री का संकलन किया है। हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के अध्ययन की सामग्री का संकलन विशेष कम है। बलीयद् मुस्लिम विश्वविद्यालय तथा आगरा विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों से किया है।

सेलक की शोध-कार्य-काश में तमिळ के विद्वानों में सर्वे श्री रा० श्री वेसिकन्, पी० श्री० आचार्य, एम० राजाकृष्ण पिळ्ळै वैण्णुगोपाम पिळ्ळै अर्ण्णराचार्य स्वामी पुण्योत्तम नायडू (मद्रास विश्वविद्यालय के तमिळ विभाग के चीवर) तथा डा० सुब्रह्मण्यम (अण्णल तमिल-विभाग केरल विश्वविद्यालय) से आळ्वार-साहित्य के अध्ययन में विशेष सहयोग प्राप्त हुआ जिसके लिए वह उनका हृदय से आभारी है। बलीयद् में रहकर शोध प्रबन्ध को लिखते समय सेलक को बलीयद् मुस्लिम विद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यापकों से प्रबानत डा० गोवर्धननाथ शुक्ल जी से सेलक को बड़ी सहायता मिली। अतः य शुक्ल जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना सेलक अपना कर्तव्य समझता है।

पण्डित पुरुष डा० हरबंसलाल शर्मा एम० ए० पी०एच० डी० डी० सिद् (आचार्य और अण्णल हिन्दी-संस्कृत विभाग तथा 'डीन' फेकस्टी आन् आट स बलीयद् मुस्लिम विश्वविद्यालय) की बेसरेस और निर्योचन में शोध प्रबन्ध का सारा कार्य सम्पन्न हुआ। वस्तुतः इस कार्य में सेलक को प्रबुद्ध करने का योग उन्हीं को है और उन्हीं के बहुमूल्य परामर्श से इस ग्रन्थ को इतना सुस्पष्टस्वित रूप मिल सका। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये सेलक के पास न उचित शब्द हैं न कीरे शब्दों में आभार प्रकट कर वह उनके अपार स्नेह और सहृदयता का मूल्य कम करना ही चाहता है।

आळ्वारों का तथा उनके साहित्य का विस्तृत परिचय देने वाला कोई भी ग्रन्थ हिन्दी में अभी तक नहीं निकला है। हिन्दी के कुछ विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में आळ्वारों का परिचय कुछ पंक्तियों में देकर ही संतोष कर लिया है। कारण यही रहा है कि उन विद्वानों की पहुँच तमिळ भाषा तक नहीं थी। अतः उनके ग्रन्थों में आळ्वारों के विस्तृत परिचय की आशा नहीं की जा सकती। प्रस्तुत सेलक का यह सोमाय्य है कि उसरी मातृ-भाषा तमिळ है। अतः सेलक ने हिन्दी-वचन को आळ्वार-साहित्य का प्रथम बार विस्तृत परिचय देने का प्रयास किया है। इस प्रकार आळ्वार भक्तों और हिन्दी कृष्ण भक्त-कवियों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर सेलक ने प्रथम बार तमिळ और हिन्दी साहित्यों की अमूल्य निबिदों को एक स्थान पर एकत्र करने का सुख-संयोग जुटाया है। यह अध्ययन हिन्दी के लिए ही नहीं बल्कि तमिळ के लिए भी नया चिह्न होगा। जिन दृष्टिकोणों से प्रस्तुत ग्रन्थ में आळ्वार-साहित्य का अध्ययन किया गया है, वह तमिळ के लिए मनीन अचर्य होगा। सेलक को इसका पूर्ण विश्वास है। मौलिक शोध की दृष्टि से तमिळ में भी सेलक के ग्रन्थ का मूल्य हो सकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में आळ्वार सम्बन्धी जितनी भी सामग्री सेलक ने दी है और आळ्वार-नाम्न की तुलना हिन्दी कृष्ण-काव्य से करके जो भी निष्कर्ष निकाले हैं, उनमें सेलक की अपनी मौलिक माय्यताएँ हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के कई

अध्यायों में मौलिक तथ्य देने की सम्पूर्ण चेष्टा की गई है, जिसके फलस्वरूप कई बातों की नवीन उद्भावनाएँ हुई हैं। भक्ति-आन्दोलन के मूल-ग्रन्थ 'प्रबन्धम्' के विषय में बहुत जानने की हिन्दी भाषी विद्वानों की बसवती जिज्ञासा को तुष्ट करने के लिए भी यह प्रयास सहायक सिद्ध होगा। वास्तव में यह जिज्ञासा ही लेखक की मूल प्रेरणा रही है। सतक ने दोनों संघों के भक्त-कवियों को निकट ज्ञान का प्रयत्न किया है। हिन्दी और तमिळ के साहित्यों के निम्न पक्षों का लेकर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए भाषे के अध्येताओं को प्रस्तुत अध्ययन से प्रेरणा मिलेगी—लेखक को इसका पूर्ण विश्वास है।

तमिळ हिन्दी संस्कृत और अंग्रेजी के जिन-जिन ग्रन्थों से लेखक ने सहायता ली है उनमें से बहुतों के नाम पाद-टिप्पणी में दिये गये हैं और अन्य प्रमुख विद्वानों और उनके ग्रन्थों के नाम परिशिष्ट में दिये गये हैं। इस अवसर पर लेखक उन सभी विद्वानों का सादर कृतज्ञतापूर्ण स्मरण करता है जिनके ग्रन्थों से लेखक ने अपने अध्ययन में प्रेरणा एवं सहायता प्राप्त की है।

लेखक की अपनी अनेक सीमाएँ रही हैं। मूलतः सतक तमिळ भाषी है। अपने मातृ को हिन्दी में समिष्पत्त करने में उचित धन्य भण्डार का अभाव रहा है। कतः वह अनुभव करता है कि आठवार-पक्षों के हिन्दी-अनुवाद में वह प्रवाह माधुर्य और सरलता का नहीं सकी जो मूल रचना में है। लेखक ने आठवारों के पक्षों का (अनुवाद नहीं कर) स्वतन्त्र भावानुवाद ही प्रस्तुत किया है। तुलनात्मक अध्ययन में लेखक ने यथासम्भव निष्पन्न दृष्टिकोण रखा है। किसी साहित्य को छोटा या बड़ा विज्ञाना उसका उद्देश्य बतापि नहीं है। यह आवश्यक भी नहीं है कि सतक के निष्कर्ष सर्वमान्य हों। सम्भव है कि इस ग्रन्थ में अनेक त्रुटियाँ भी रह गयी हों। विद्वज्जनों के सत्यप्रसन्नों के लिए लेखक उत्सुक है। अपनी सीमाओं में रहकर लेखक में भारतवर्ष की दो प्रमुख भाषाओं के भक्ति-साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। अगर यह अध्ययन दोनों भाषाओं के साहित्यों को निकट जाने में कुछ भी सहायता करे तो लेखक के लिए उतना ही पर्याप्त है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में 'विनोद पुस्तक मन्दिर' के संचालक श्री भोजानाथजी ने जो उत्साह लिया उसके लिए लेखक उनका विशेष आभारी है। न चाहते हुए भी मुद्रण की कुछ त्रुटियाँ यत्र-तत्र रह गयी हैं जिनका सुधार अगले संस्करण में अवश्य ही कर दिया जायगा।

अलीगढ़
१२-७-६४

}

—भक्ति मोहम्मद

आठवार विषयक पर्याप्त सामग्री का संकलन किया है। हिन्दी हृष्ण भक्त कवियों के अध्ययन की सामग्री का संकलन विशेष रूप से जसीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय तथा बापरा विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों से किया है।

लेखक को सोब-कार्य-नाम में तमिल के विद्वानों में सर्व श्री रा० श्री० वैदिकन्, पी० श्री० आचार्य, एम० राधाहृष्ण पिस्ट्ल वैसुपोपाय पिस्ट्ल अमर्नगराचार्य स्वामी पुस्तोत्तम नायडू (महास विश्वविद्यालय के तमिल विभाग के रीडर) तथा डा० सुब्रह्मण्यम (अध्यक्ष तमिल-विभाग केरल विश्वविद्यालय) से आठवार-साहित्य के अध्ययन में विशेष सहयोग प्राप्त हुआ जिसके लिए वह उनका हृदय से आभारी है। जसीगढ़ में रहकर सोब-प्रबन्ध की सिलते समय लेखक को जसीगढ़ मुस्लिम विद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यापकों से प्रभावित डा० गोवर्धननाथ शुक्ल जी से लेखक को बड़ी सहायता मिली। अतः य शुक्ल जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना लेखक अपना कर्तव्य समझता है।

अर्द्धेय भूत डा० हरबंसमान शर्मा एम० ए० पी एच० डी० डी० लिट् (आचार्य और अध्यक्ष हिन्दी-अंशुत विभाग तथा 'डीन' फेकस्टी आन्ट् आर्ट्स जसीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय) की ऐतरेस और निर्देशन में सोब-प्रबंध का सारा कार्य सम्पन्न हुआ। वस्तुतः इस कार्य में लेखक को प्रबुद्ध करने का योग्य उम्मीदों को ही और उम्मीदों के बहुमुख्य परामर्श से इस ग्रन्थ को इतना सुव्यवस्थित रूप मिल सका। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये लेखक के पास न उचित शब्द हैं न कोरे शब्दों में आभार प्रकट कर वह उनके अपार स्नेह और सहायता का मुख्य कर्म करना ही चाहता है।

आठवारों का तथा उनके साहित्य का विस्तृत परिचय देने वाला कोई भी ग्रन्थ हिन्दी में अभी तक नहीं निकला है। हिन्दी के कुछ विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में आठवारों का परिचय कुछ पंक्तियों में देकर ही संतोष कर लिया है। कारख यह है कि उन विद्वानों की पहुँच तमिल भाषा तक नहीं थी। अतः उनके ग्रन्थों में आठवारों के विस्तृत परिचय की आशा नहीं की जा सकती। प्रस्तुत लेखक का यह सीमावर्ष है कि उनकी मातृ भाषा तमिल है। अतः लेखक ने हिन्दी-वचन को आठवार-साहित्य का प्रथम बार विस्तृत परिचय देने का प्रयास किया है। इस प्रकार आठवार भर्तृ और हिन्दी कृष्ण भक्त-कवियों के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर लेखक ने प्रथम बार तमिल और हिन्दी साहित्यों की अमूल्य निधियों को एक स्थान पर एकत्र करने का कुछ-संयोग कृपाया है। यह अध्ययन हिन्दी के लिए ही नहीं बल्कि तमिल के लिए भी नमो मित्र होगा। जिन दृष्टिकोणों से प्रस्तुत ग्रन्थ में आठवार-साहित्य का अध्ययन किया गया है, वह तमिल के लिए मनीष अध्ययन होना। लेखक को इसका पूर्ण विश्वास है। मौलिक साध की दृष्टि से तमिल में भी लेखक के ग्रन्थ का मुख्य हो सकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में आठवार सम्बन्धी जितनी भी सामग्री लेखक ने दी है और आठवार-काव्य की तुलना हिन्दी कृष्ण-काव्य से करके जो भी निष्कर्ष निकाले हैं, उनमें लेखक की अपनी मौलिक साम्यताएँ हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के कई

अध्यासों में भौतिक तथ्य देने की सम्पूर्ण चेष्टा की गई है, जिसके फलस्वरूप कई बातों की गभीर उद्भावनाएँ हुई हैं। भक्ति-आन्दोलन के मूल-ग्रन्थ 'प्रबन्धम्' के विषय में बहुत जानने की हिन्दी भाषी विद्वानों की बसबती जिज्ञासा की तुष्ट करने के लिए भी यह प्रकाश सहायक सिद्ध होगा। वास्तव में यह जिज्ञासा ही लेखक की मूल प्रेरणा रही है। लेखक ने दोनो छेत्रों के भक्त-कवियों को निकट साने का प्रयत्न किया है। हिन्दी और तमिळ के साहित्यों के विभिन्न पक्षों को लेकर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए भाषे के अध्येताओं को प्रस्तुत अध्ययन स प्रेरणा मिलनी लेखक को इसका पूर्ण विश्वास है।

तमिळ, हिन्दी संस्कृत और अग जी के जिन जिन ग्रन्थों से लेखक ने सहायता ली है, उनमें से बहुतों के नाम पाठ-टिप्पणी में दिये गये हैं और अन्य प्रमुख विद्वानों और उनके ग्रन्थों के नाम परिशिष्ट में दिये गये हैं। इस प्रकार पर लेखक उन सभी विद्वानों का सान्द्र कृतज्ञतापूर्ण स्मरण करता है जिनके ग्रन्थों से लेखक ने अपने अध्ययन में प्रेरणा एवं सहायता प्राप्त की है।

लेखक की अपनी अनेक सीमाएँ रही हैं। मूलतः लेखक तमिळ भाषी है। अपने भावों को हिन्दी में अभिव्यक्त करने में उचित सम्बन्ध का आभाव रहा है। वह यह अनुभव करता है कि आळवार्-पदों के हिन्दी अनुवाद में वह प्रवाह, भाव्य और सरसता आ नहीं सकी जो मूल रचना में है। लेखक ने आळवार्ओं के पदा का (सम्मानुवाद नहीं कर) स्वतन्त्र भावानुवाद ही प्रस्तुत किया है। तुलनात्मक अध्ययन में लेखक ने यथासम्भव निष्पक्ष दृष्टिकोण रखा है। किसी साहित्य को छोटा या बड़ा विज्ञाना उसका उद्देश्य क्यापि नहीं है। यह आवश्यक भी नहीं है कि लेखक के निष्कर्ष सर्वमान्य हों। सम्भव है कि इस ग्रन्थ में अनेक त्रुटियाँ भी रह गयी हों। विद्वानों के सत्यपरायणों के लिए लेखक उत्सुक है। अपनी सीमाओं में रहकर लेखक ने भारतवर्ष की दो प्रमुख भाषाओं के भक्ति-साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। अगर यह अध्ययन दोनों भाषाओं के साहित्यों को निकट साने में कुछ भी सहायता करे तो लेखक के लिए उतना ही पर्याप्त है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में 'विनोद पुस्तक मन्दिर' के संचालक श्री मोसामाबजी ने जो उत्साह मिला उसके लिए लेखक उनका विशेष आभारी है। म चाहते हुए भी मुद्रण की कुछ त्रुटियाँ यत्र-तत्र रह गयी हैं, जिनका सुधार अगले संस्करण में अवश्य ही कर दिया जायगा।

विषयानुक्रमिका

पन्नाय

विषय

पृष्ठ

पृष्ठभूमि

१ भक्ति का विकास और उसमें तमिळ का योगदान

२-६०

भक्ति की दो परम्पराएँ—वैदिक भक्ति-परम्परा और
तमिळ भक्ति परम्परा

तमिळ की भक्ति-परम्परा (उद्भव और विकास)

तमिळ भक्ति-परम्परा की प्राचीनता—समकाल की प्रकृति-पूजा
तमिळों के विभिन्न देवी-देवता तमिळ-प्रदेश में तिरुमान-वर्म
(वैष्णव-धर्म) की प्राचीनता संन-साहित्य के प्रति आळवार् के
आख संन-साहित्य में वैष्णव भक्ति, मन्दिरों में तिरुमान की
उपासना ।

गोपाल कृष्ण और राधा के विकास में तमिळ की देन गोपाल
कृष्ण का विकास, राधा का विकास ।

भक्ति-आन्दोलन का उदय और तमिळ-अवेस की तत्कालीन
परिस्थितियाँ ।

छायाभिक धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ बौद्ध और जैन
धर्मों की स्थिति, वैदिक धर्म की स्थिति ।

भक्ति-आन्दोलन की आवश्यकता—आळवार् और मायनमार—
यपने बुन की आळवार् के देन आळवार् पर इस्लामी प्रभाव
नहीं भारतीय भक्ति-आन्दोलन में आळवार् का स्थान ।

आळवार् की भक्ति का शास्त्रीय विवेचन और आचार्य-मुय,
आळवार् की भक्ति का शास्त्रीय विवेचन करने वाले प्रमुख
आचार्य—नाथमुनि यमुनाचार्य, रामानुजाचार्य ।

सम्प्रदायों का संयोजन—

ब्रह्मिण के प्रमुख सम्प्रदाय और उनके मक्ति-सिद्धान्त—
चामानुज सम्प्रदाय माध्व सम्प्रदाय निम्बार्क सम्प्रदाय
विष्णु स्वामी सम्प्रदाय उत्तर की ओर भक्ति की यात्रा ।

हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य को प्रभावित करने वाले उत्तर के भक्ति-
सम्प्रदाय —

वत्सल सम्प्रदाय चैतन्य सम्प्रदाय राधावल्लभ सम्प्रदाय
हरिदासी जयदा सखी सम्प्रदाय ।

२ कवि और काव्य

९३—१४२

(अ) तमिल के कृष्ण भक्त-कवि : आळवार

आळवार' संज्ञ है आश्रय

काव्य-निर्धारण की कठिनाईयाँ

आळवारों का काम और संख्या

“नासाविर हिम्य प्रबन्धम्”

पांचवें आळवार और उनकी रचनाएँ परिचय

भूतताळवार और उनकी रचनाएँ

वैयाळवार और उनकी रचनाएँ

तिरुमळिघे आळवार और उनकी रचनाएँ

मम्माळवार और उनकी रचनाएँ

मधुर कवि आळवार और उनकी रचनाएँ

कुमसैय्यराळवार और उनकी रचनाएँ

पेरियाळवार और उनकी रचनाएँ

आम्बल और उनकी रचनाएँ—प्रसिद्धियाँ

तोंडरडीपोडी आळवार और उनकी रचनाएँ

तिरुप्पाळ आळवार और उनकी रचनाएँ

तिरुमगे आळवार और उनकी रचनाएँ

(आ) सोलहवीं शती के हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवि

सोलहवीं शती के हिन्दी-कृष्ण-काव्य-की विशेषताएँ

(क) वत्सल सम्प्रदाय के कवि —

सूरदास परमानन्ददास नन्ददास और रसकान

(ख) राधावल्लभीय सम्प्रदाय के कवि —

हितहरिचंद सेवक की हरिराम व्यास

(ग) गौडीय-संप्रदाय के कवि —

पदामर मट्ट, सूरदास मदनमोहन

(घ) निम्बार्क संप्रदाय के कवि :—

धीमट्ट, हरिश्चास भी

(ङ) हरिदासी संप्रदाय के कवि —

स्वामी हरिदास बिट्टल विपुलदेव

(च) वैष्णव-मुक्त कवि :—

मीराबाई रघीम, मरोचमदास

३ मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले
'प्रबन्धम्' के तत्त्व

१५५—२०६

प्रबन्धम् भक्ति-आस्थासत का मूल ग्रन्थ
मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले
'प्रबन्धम्' के तत्त्व—सामान्य तत्त्व और विशिष्ट तत्त्व ।

सामान्य तत्त्व

- १ भक्ति का सर्वोपरि महत्त्व
- २ नाम-महिमा
- ३ स्तुति
- ४ धारणाभक्ति तत्त्व या प्रपत्ति
- ५ नृक-महिमा
- ६ सर्वस्य
- ७ वैराग्य —

- (क) पञ्चिग्रियों पर विजय
- (ख) नाच के मोहक रूप की निन्दा
- (ग) ब्रह्म-निन्दा
- (घ) छरीर की मस्तरता का बोध

विशिष्ट तत्त्व :

इष्टिकोण कृष्ण-सीताओं में आकाश्यों की उत्कृष्टता,
प्रबन्धम् की मौलिकता—प्रबन्धम् भागवत से
प्रभावित नहीं ।

वर्गीकरण

- १ श्रीकृष्ण की विभिन्न सीमाएँ —
भागवतेश्वर साक्षात्कार का उल्लेख सीमाओं में
आकाश्यों का उद्गम प्राद ।

- २ श्रीकृष्ण का जलौकिक रूप-सीत्यर्थ—
बाल रूप किशोर रूप ।
- ३ श्रीकृष्ण का परमेश्वरत्व —
श्रीकृष्ण परब्रह्म विष्णु के अवतार हैं,
राम-कृष्ण अनेक-भाव ।
- ४ श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम-भावना
वात्सल्य भाव
मधुर भाव : भाँडाळ का स्वयं चिह्न गोपी
भाव मधुर भाव के प्रसंग : बेसु-माधुरी और
उसका प्रभाव ।
रासलीला (बाळवारी की कुरबँकुरतू)
रासा (बाळवारी की 'नप्पिनै')
अमर-बीत (बाळवारी का अमर-संवेष्ट)

४ भक्ति का तुलनात्मक अध्ययन

२०६—२८२

भक्ति की व्याख्या और महिमा बाळवार और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि ।

निगुण-सङ्गुण ब्रह्म और भक्ति सगुण भक्ति दोनों के पक्षों में ।

भक्ति के प्रकार :—

१ लम्बा भक्ति

अवगुण—बाळवार और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि—उदाहरण

कीर्तन—

"

"

स्मरण—

"

"

पाद-सेवक—

"

"

"

अर्चन—

"

"

"

वन्दन—

"

"

वात्स्य सख्य आत्मनिवेदन—

- २ प्रेम-रूपा-भक्ति : व्याख्या—बाळवारी की प्रेम-रूपा भक्ति
प्रेम-भक्ति की विभिन्न वाचकियाँ प्यारह
वाचकियाँ गुणमाहारमयासक्ति, रूपासक्ति,
गुणासक्ति, वात्स्यासक्ति, सख्यासक्ति कान्ता
सक्ति, वात्स्यासक्ति निवेदनासक्ति
रम्यासक्ति परम विरहासक्ति प्रत्येक

भासक्ति के सदाहरण—भाळ्यार और
हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की रचनाओं से ।

भक्ति-रस और भक्ति के विविध भाव

भक्ति रस-विवेचन—विविध भाव —

साम्य भाव की भक्ति—भाळ्यार और हिन्दी कृष्ण-भक्त
कवि—सदाहरण

सख्य भाव की भक्ति " " "

वासुदेव भाव की भक्ति " "

मधुर भाव की भक्ति " "

शान्ता भक्ति " "

विविध विषय

भक्ति में सरण तत्त्व—भाळ्यार और हिन्दी कृष्ण भक्त
कवि—सदाहरण

ब्रजभाष्यता और भगवान् की भक्तवत्सलता , "

भक्ति की सार्वभौमता " "

भगवान् के सामीप्य की कामना " "

पुरु महिमा सत्संग वैराग्य " "

५. दार्शनिक विचार और रहस्यमयक दृष्टिकोण

पृष्ठ—११६

दार्शनिक विचार

दृष्टिकोण—

ब्रह्म—भाळ्यारों के ब्रह्म-विषयक विचार,
आलोच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के ब्रह्म सम्बन्धी
विचार, निष्कर्ष ।

जीव—भाळ्यारों के जीव विषयक विचार,
आलोच्य हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के जीव सम्बन्धी
विचार, साम्य और वैपम्य ।

वयत्—भाळ्यारों के वयत् विषयक विचार,
आलोच्य हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के वयत् सम्बन्धी
विचार, साम्य और वैपम्य ।

माया—भाळ्यारों के माया-विषयक विचार
हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के माया सम्बन्धी विचार,
तुलना ।

मोक्ष—बाळबार्ते के मोक्ष-विषयक विचार,
हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के मोक्ष सम्बन्धी विचार,
सुसना ।

रहस्यात्मक दृष्टिकोण

'रहस्य' से तात्पर्य—बाळबार्ते के काव्य में रहस्यात्मक दृष्टिकोण
वासोन्मय शिष्टो कृष्ण भक्ति-काव्य में रहस्यात्मक दृष्टिकोण
प्रतीकार्थ—शोषी मुरली रासलीला ।

६. काव्य-कला—१

३४३—४०७

भाष्य-पद्य

भाष्यपद्य का सामान्य विवेचन

भाष्य विवेचन और रचानुसृष्टि

वात्सल्य—संवाच और वियोग

शृङ्गार—संयोग और वियोग

विरह रचाएँ—अमर भीत

अन्य रस :

ह्रस्व रस

कदम्ब रस

रौद्र रस

वीर रस

भयानक रस

वीमरस रस

अश्रुमुक्त रस

शान्त रस

वर्तन-विविध

प्रकृति-वर्णन

प्रकृति-वर्णन के विविध रूप —

१. आसम्भन

२. उद्दीपन

३. अलङ्कार

४. मानवीकरण

५. नीति और उपदेश का माध्यम

६. परम तत्त्व के दर्शन

ग्रन्थाय

विषय

पृष्ठ

७. काव्य-कला—२

४११—४३६

कला-वर्ण

भाळ्वारों के तथा बालोष्प हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य का कला-वर्ण ।

वेयल—भाळ्वारों के पदों में वेयल

बालोष्प हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य में वेयल

काव्य के विविध रूप

गूढ़ नीति-काव्य आख्यानात्मक नीति-काव्य, लोक-नीति
मुक्तक-रचना प्रबन्ध-काव्य, शब्द-काव्य ।

रसोपभोग

भाळ्वारों के काव्य में रसोपभोग

हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों द्वारा प्रयुक्त विविध छन्द

भाषा-शैली :

भाळ्वारों के काव्य में प्रयुक्त भाषा—तत्सम शब्द, अर्ध
तत्सम शब्द उत्सव शब्द अनुकरणरामक शब्द ।

हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की भाषा—तत्सम शब्द अर्ध
तत्सम शब्द उत्सव शब्द देशज शब्द विदेशी शब्द ।
मुहावरों और लोकोत्थियाँ —

भाळ्वारों के काव्य में मुहावरें,

हिन्दी कृष्ण-काव्य में मुहावरें ।

भाळ्वारों के काव्य में लोकोत्थियाँ

हिन्दी कृष्ण-काव्य में लोकोत्थियाँ ।

प्रसंग-विधान और उक्ति-वैचित्र्य

काव्य में अलंकारों का स्थान—

शब्दालंकार—भाळ्वार-काव्य में और हिन्दी कृष्ण-काव्य में
अर्थालंकार—भाळ्वार काव्य में और हिन्दी कृष्ण-काव्य में,
प्रमुख अर्थालंकार—उपमा उत्प्रेक्षा रूपक अतिशयोक्ति ।

अन्य अलंकार—भाळ्वार-काव्य में, और

हिन्दी-कृष्ण भक्ति काव्य में ।

उक्ति-अलंकार—भाळ्वार-काव्य में और

हिन्दी-कृष्ण भक्ति काव्य में ।

मूल्यांकन

आठवार-साहित्य का मूल्यांकन :

१—भक्ति-आन्दोलन तथा आठवार

२— 'प्रबन्धम्' का व्यापक प्रभाव

(अ) धार्मिक जीवन

(आ) विविध कलाएँ

(इ) ठमिल भाषा और साहित्य

(ई) ठमिलोत्तर बसिली भाषाओं के भक्ति-साहित्य

(क) तैलुडु

(ख) मलयालम

(ग) कन्नड़

३—परवर्ती भक्ति-संप्रदायों पर 'प्रबन्धम्' का प्रभाव

१६वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य का मूल्यांकन

१—हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य परम्परा में १६वीं शती के कृष्ण-भक्ति-काव्य का स्थान

२—भक्ति-आन्दोलन तथा १६ वीं शती का हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य

३—१६ वीं शती के हिन्दी-कृष्ण भक्ति-काव्य का व्यापक प्रभाव —

(अ) धार्मिक और सामाजिक जीवन

(आ) विविध कलाएँ

(इ) जनभाषा और साहित्य

उपसंहार

अस्तुत अध्ययन के मूल उद्देश्य —

सुलभारमक अध्ययन से प्रबोधन

भावात्मक एकता की ओर

परिशिष्ट

४६५—४६६

१ आठवारों के जुने हुए कुछ पीत-रत्न

४६७

२ आठवारों की रामभक्ति

५ ५

३ 'प्रबन्धम्' पर लिखित भाष्य और उनकी भाषा

१२

४ सहायक-ग्रन्थ-सूची

५२७

५ शुद्धि-पत्र

५३४

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

मक्ति का विकास और उसमें तमिल का योगदान

हिन्दी साहित्य के स्वर्ण-युग—मस्तिकास में मक्ति की जो पावन परम्परा प्रवहमान हुई उसमें बीचकासीन भारतीय जीवन-दर्शन की गहन अनुभूतियों संस्कारों एवं परम्पराओं का सम्मिश्रण था जिसने कि भारतीय जन-जीवन में एक नवीन चेतना एवं स्फूर्ति का संचार कर उसे रससिक्त कर दिया। विभिन्न युगों के अनेक स्तरों के बीच से मन्द-मन्द परन्तु अघ्नाहत गति से बहती हुई अनेक विद्याओं में जन्मी सीधी सहकर विविध विचार धाराओं को आत्मसात् करती हुई भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की सिद्धान्त-सार-सुषा से प्राणियों के अन्तःकरण को तृप्त करती हुई जाने वाली मक्ति-सरिता ने भारतीय मक्ति-साहित्य-क्षेत्र को इतना सज्जसज भर दिया कि आज भी उसकी तरंग तरंगों में मञ्जन और अबगाहन करने से चिर शान्ति प्राप्त होती है।

मक्ति की यह बारा बरिद युग से ही प्रवाहित मानी जाती है। मक्ति के उद्भव और विकास के विषय में विद्वानों के मत-मतान्तर होने पर भी इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि भारतीय मक्ति-साधना के क्रमिक विकास में तमिल भाषा और तमिल-प्रदेश^१

१ तमिल-प्रदेश को "द्राविड" और तमिल भाषा को "द्राविड भाषा" कहने की प्रथा बहुत पुराने काल से चली आ रही है। "द्राविड" शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में संस्कृत विद्वानों का मत है कि यह शब्द संस्कृत का है और "द्रव्" (भापना) तथा "विड" (विद्य) के संयोग से बना है। धार्यों से पराजित होकर भारत के भूमि निवासी उत्तर भारत को छोड़कर दक्षिण की ओर भाग पड़े थे। अतः उस भाग का नाम द्राविड पड़ गया। इस शब्द का दूसरा अर्थ भारत का दक्षिणी कोना भी है। कुछ लोगों का कथन है कि 'तमिल' शब्द का अर्थ यही है द्राविड है। "द्राविड" और "तमिल" पर्यायवाची शब्द हैं।

"On the other hand Tamil is the original word or name on the analogy of which the word 'Dravida' has been coined by Sanskritists.

—K. Rama Krishnaiva J S. V O L., Vol. 14, Pt. I, p. 9

का अत्यन्त महत्वपूर्ण योग है। जब उत्तर भारत में वैदिक युग से प्रभावित वेद उपनिषद् आदि से प्रभावित भक्ति-परम्परा विकास को पा रही थी तब तमिळ-प्रदेश में द्रविड़-संस्कृति में परिपोषित एक पृथक् भक्ति-परम्परा विकसित हो रही थी। तमिळों की धार्मिक भावना विकास को पाकर ईसा पूर्व अनेक सताब्दियों से एक सुदृढ़ भक्ति-परम्परा का रूप धारण कर चुकी थी जिसने प्रमाण हूमें प्राचीन तमिळ साहित्य में मिलते हैं। ईसा की प्रारम्भिक सताब्दियों तक आते-आते इन दोनों भक्ति-परम्पराओं का एकीकरण हो गया था और उसकी मिस्रो-जुमी धारा में अबगाहन करने वाले यदि कोई भक्त हुए वे तो वे थे—आळ्वार भक्त^१। आळ्वार भक्तों से पूर्व भी तमिळ में वैष्णव (तिरुमाल)^२—भक्ति साहित्य के वर्चन होते हैं। चूंकि आळ्वार तमिळ प्रदेश के थे इसलिए वैदिक-भक्ति-परम्परा से प्रभावित होने पर भी उनके साहित्य के निर्माण का तमिळ-प्रदेश की पूर्वतः विद्यमान पृथक् भक्ति-परम्परा की वृष्टभूमि में होना स्वाभाविक ही था। जब भारतीय भक्ति-साहित्य में वैष्णव भक्ति का जो स्वल्प दृष्टिगोचर होता है, वह बहुत कुछ आळ्वारों की देन है।

आळ्वारों के द्वारा प्रतिपादित वैष्णव-भक्ति का धार्मिक विवेचन विभिन्न आचार्यों ने किया और उस भक्ति की धारा उत्तर की ओर प्रवाहित हुई। उस भक्ति की आचार-भूमि पर विभिन्न वैष्णव-आचार्यों ने अपनी-अपनी शार्सनिक विचार-धाराओं का निरूपण किया और विभिन्न सम्प्रदायों का संगठन हुआ। भक्ति-आन्दोलन को जिस जन-आन्दोलन के रूप में दृष्टी घटावती से लेकर नहीं घटावती तक के पास (आळ्वार युग) में तमिळ-प्रदेश ने देखा उसी के वर्चन हिन्दी-प्रदेश न सोलहवीं सताब्दी के आसपास किये। वैष्णव भक्ति ने विद्यान बुद्ध के विभिन्न सम्प्रदाय सभी जगहों में जिसने वाले सुन्दर सुमन थे—सामहृषी सभी के हिन्दी-वृष्ण भक्त-कवि।

भक्ति के सम्भव और विकास पर तो अनेक विद्वान् सैद्धन्तों द्वारा पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। परन्तु किसी भी विद्वान् द्वारा तमिळ-प्रदेश में विकसित पृथक् भक्ति-परम्परा की ओर विशेष ध्यान दिया नहीं गया। वास्तव में भारतीय भक्ति-साधना के क्रमिक विकास पर दृष्टि डालते समय तमिळ-प्रदेश की प्राचीन भक्ति-परम्परा तथा वैदिक भक्ति-परम्परा से उसकी एकता और बाद में विकसित भक्ति-धारा का इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण मानना पड़ता है। अतएव यहाँ वैदिक भक्ति परम्परा एवं तमिळ भक्ति का पृथक्-पृथक् विवेचन प्रस्तुत कर बानों की सम्मिलित भक्ति-धारा में अबगाहन करने वाले आळ्वार भक्तों ने भारतीय भक्ति-साधना के

१ सामान्यतः इनका काल पाँचवीं सताब्दी से नहीं सताब्दी तक माना जाता है।

२ तमिळ में 'विष्णु' के लिए 'तिरुमाल' 'वायोन' आदि अन्य प्रयुक्त होते हैं। प्राचीन तमिळ-साहित्य तथा आळ्वार-साहित्य में भी विष्णु के लिए 'तिरुमाल' शब्द ही अधिक व्यवहृत हुआ है। अतः आळ्वारों के पूर्व तिरुमाल धर्म धर्मात् वेदवैद्य-धर्म से सम्बन्धित साहित्य का तमिळ में विद्यमान होना सिद्ध होता है।

विकास में जो महत्वपूर्ण योग दिया है, उस पर संक्षेप में प्रकाश डालना आवश्यक समझ गया।

बैदिक भक्ति-परम्परा^१

भारतीय धर्म-शास्त्रों का मूल-आधार वेदों में पाया जाता है। यद्यपि वेद संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रत्यक्ष रूप से अनुराग सूचक 'भक्ति' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है और 'भक्ति' शब्द से सामान्य उपासना का भी संक्षेप नहीं कहा गया है, तथापि वेदों में भक्ति का बीज मिल ही जाता है। 'भक्ति' शब्द का इस अर्थ में प्रथम प्रयोग जिसमें कि यह परवर्ती भक्तों में प्रचलित हुआ शैलादित्य उपाधिपद में ही मिलता है।^२ वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्म-काण्डों की प्रधानता होते हुए भी जिस तरह ज्ञान-काण्ड का विकास स्पष्ट परिभाषित होता है, उसी तरह ज्ञान के बाद भक्ति की परम्परा का भी संभल ऋषियों के आधार पर सम्भव है।

विष्णु की उपासना का मूल रूप वैदिक-काल से ही पाया जाता है। आर्य साम अनेक प्राकृतिक वस्तुओं और ब्रह्माका में किसी न किसी देवता की कल्पना कर लेते थे और उस प्रसन्न रहने की चेष्टा में यथादि कर्मों का अनुष्ठान भी किया करते थे। वे अपने वैदिक जीवन को आनन्द के साथ व्यतीत करते थे और ऐहिक सुख की प्राप्ति करने के उद्देश्य से देवताओं की स्तुति करते थे और उनसे विनय भजना प्राप्त भी करते थे। प्रारम्भ में इन देवताओं में इन्द्र वरुण मरुत, रुद्र आदि प्रमुख थे जो सर्वशक्तिमान सृष्टि के आदि कारण परब्रह्म के ही स्वरूप समझे जाते थे। आगे चलकर विष्णु संहिता-काल में सबसे प्रथम एक साधारण देवता के रूप में ही दीक्षा पड़ते हैं। जिन जिन प्रमुख देवताओं की कल्पना पहले पृथक्-पृथक् रूपों में की जा रही थी वे क्रमांतर में केवल एक के ही विविध रूपों में दीक्षा पड़ने लगे और अन्त में उनके विभिन्न नामों का प्रयोग उसी के लिए होने लगा।^३ इस तरह बहुदेववाद के स्थान पर एकदेववाद की स्थापना होने लगी। ऐसे परिवर्तन-काल में विष्णु का महत्व

१. पूर्वी धार्मिक विद्वानों द्वारा वैदिक भक्ति के विकास पर विस्तार से लिखा जा चुका है, अतः यहाँ बहुत ही संक्षेप में बिबरण देना पर्याप्त समझा गया। विस्तृत बिबरण के लिए वे ग्रन्थ ह्यस्त्य हैं :—

'भक्ति का विकास'—डा० मुन्शीराम शर्मा,
'बिष्णु धर्म'—परशुराम अतुर्वेदी आदि।

२. 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ
तस्य कविताह्वयः प्रकाशते महामना'

—शैलादित्य उपाधिपद ६।१६

३. 'एक सवित्रा बहुधा वदन्त्याम्नि धर्मं मातरिदवानामाहु'

—(ऋग्वेद १।१६४।४) से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है।

भी बढ़ने लगा । आरम्भिक काल के देवताओं में इन्द्र सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ थे और विष्णु इन्द्र के सहायक^१ के रूप में ही समझे जाते थे और कहीं-कहीं इन्द्र के समान भी माने जाते थे । बीरे-बीरे विष्णु का प्रभाव बढ़ने लगा और वे इन्द्र से भी बड़े समझे जाने लगे । जैसे-जैसे भावों का आत्मचिन्तन बृद्ध होता गया और मूल आधुनिक तत्त्वों का अनुसंधान करने की परिपाटी विकसित होती गयी जैसे ही जैसे वैदिक धर्म के सुव्यवस्थित साहित्य का सूत्रपात हुआ । ब्राह्मण-ग्रन्थों के रचना-काल तक विष्णु का प्रभाव इतना बढ़ा कि इन्द्र तथा अश्व देवताओं के बनेक विधेयण विष्णु के लिए प्रयुक्त होने लगे । इन्द्र केवल बालदेव बुध्नि-पति वृषण ईकृष्ट आदि नामों का इन्द्र के लिए प्रयुक्त होते थे विष्णु को मिल गये ।^२ साथ ही विष्णु की महत्ता में अमलकार एवं असीकृत शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और वे एक सर्वशक्तिमान्, शोक रसक सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुए । वैदिक साहित्य में सृष्टि विकास के देवता के रूप में 'नारायण' का बनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है । आरम्भिक काल में विष्णु और नारायण भिन्न व्यक्ति थे । ब्राह्मण-काल में यह नारायण नाम भी विष्णु के लिए प्रयुक्त होने लगा और उनके गुणों को विष्णु के गुणों में सम्मिलित कर लिया गया । इस प्रकार विष्णु की उपासना का एक विधान क्षेत्र तैयार हो गया ।

विष्णु की उपासना का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने के पश्चात् यह विचार करना है कि उसका वैष्णव धर्म के सुव्यवस्थित रूप में उभटन किस प्रकार हुआ । व्याख्यान महाभारत काल तक आठे-आठे वैष्णव धर्म का एक स्पष्ट रूप प्रकट हुआ जो भागवत या सात्वत-पति कहलाया । इस भागवत धर्म (सात्वत तन्त्र) के मुख्य उपास्य देव बालदेव-कृष्ण थे ।^३ और वे ही उसके प्रवर्तक भी माने गये । जिस तरह विष्णु और नारायण पहले पुरुष-पुरुष थे और बाद में एक हो गये, उसी तरह बालदेव और 'कृष्ण' आरम्भ में अलग-अलग थे और कालांतर में एक ही समझे जाने लगे । बाद में बालदेव-कृष्ण विष्णु-नारायण के भी पर्यायवाची हो गये ।^४ इस प्रकार विष्णु-नारायण बालदेव-कृष्ण के एकीकरण के साथ-साथ वैष्णव धर्म के विकसित रूप का पूर्ण चित्र उपस्थित हुआ । यह ऐश्वर्य से सम्पन्न होने के कारण विष्णु ही 'भक्तान्' कहलाये और उनकी पंक्ति करने वाले 'भागवत' के नाम से प्रसिद्ध हुए । विष्णु मठों के उपास्य धर्म के कारण इस धर्म का नाम 'भागवत-धर्म' पड़ा ।

१ "इन्द्रस्य मुख्यः सखा"—अथर्व १।२२।१२

२ 'वैष्णव धर्म'— श्री परमुराम चतुर्वेदी पृ १४

३ 'बालदेवे भगवति भक्तियोक्ता' प्रयोजित ।

— श्रीमद्भागवत १।२।१०

भागवतों के उपास्य देव बासुदेव-कृष्ण या कृष्ण जिस कुस में पैदा हुए थे उसका नाम था यादव वंश जिसे 'सात्वत वंश' भी कहते थे। इसी यादव अथवा सारवत कुल के काश्यप भामिष्ठ मत का दूसरा नाम 'सात्वत' हो गया। महाभारत में 'सात्वत' और बासुदेव को एक ही कहा गया है। डा० भाष्कारकर के अनुसार 'सारवत' शब्द वृष्णि वंशीय के एक उपनाम की तरह व्यवहृत होता था और उही में बासुदेव संकषण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध हुए तथा सात्वतों का एक पृथक संप्रदाय भी था जिसके अनुसार वे बासुदेव की पूजा उन्हें परमार्थमा समझ कर किया करते थे।^१

भासवत या सात्वत धर्म के उपास्य बासुदेव-कृष्ण कृष्ण और देवकी-पुत्र कृष्ण होने क्या सम्भव है, ये अलग-अलग नाम किस प्रकार एक ही भक्ति के लिए प्रयुक्त होने लगे? यह एक समस्या के रूप में उपस्थित है, जिसका समाधान केवल अनुमान से ही संभव है। बासुदेव-कृष्ण शब्द का दूसरा अर्थ अर्थात् 'कृष्ण' शब्द ऋग्वेद (अंश ८) के एक 'मूक्त' के ऋषि का नाम है। ये आंगिरस गोत्र के थे। छान्दोग्य उपनिषद् के कृष्ण और आंगिरस के शिष्य थे। अनुमान किया जा सकता है कि वैदिक कृष्ण और उपनिषद् के कृष्ण जब दोनों एक ही गोत्र के हैं, तो स्पष्ट है कि 'कृष्ण' उपनिषद् के रूप तक ऋषि होते जाये। नाम बासुदेव और कृष्ण जब एक हो गये तब कृष्ण को भी वृष्णि वंश में मिला लिया गया। और आंगिरस के उपदेशों को कृष्ण ने गीता में सुरक्षित कर दिया। इसका प्रमाण यह है कि छान्दोग्य उपनिषद् तथा गीता की बहुत सी बातें मेल जाती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि देवकी पुत्र कृष्ण ने जो उपदेश अपने गुरु और आंगिरस से ग्रहण किये थे, उन्हीं के अनुसार बासुदेव कृष्ण ने भी 'गीता' के द्वारा अपने मित्र अर्जुन को उपदेश दिया। इस प्रकार बासुदेव कृष्ण और देवकी-पुत्र कृष्ण नामे बसकर एक नाम मिले गये। पहले से ईश्वर नहीं माने जाते थे। परन्तु सात्वतों ने उन्हें ब्रह्म मान लिया और आगे बसकर वे पुरुषोत्तम स्वीकृत हो गये।

गीता में जिस भागवत धर्म का उपदेश दिया गया है, उसका चरम लक्ष्य एकांतिक भक्ति का निष्कर्ष करना है—'सर्वं परमात्मनि प्रपद्य मामेकं शरणं व्रज'।^२ यही इस पूरे एकान्तिक भक्ति का रहस्य है। यद्यपि गीता में भक्ति के दार्शनिक पक्ष साम्य पक्ष एवं साधना पक्ष का वर्णन मिलता है, तो भी अन्तिम पक्ष अर्थात् साधना अथवा उपासना-पक्ष पर ही अधिक और दिया गया है। अतएव यह निष्पत्ति कहा जा सकता है कि भगवद्गीता भक्ति का ही एक प्रधान ग्रन्थ है, जिसमें ब्रह्मण्य धर्म द्वारा प्रतिपादित विमुख एकांतिक भक्ति का उच्चतम स्वरूप प्रतिष्ठित हुआ है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कृष्ण भक्ति का प्रथम व्यवस्थित रूप गीता में उपसंगत होता है।

1. Vaishnavism Shaivism and other minor Religious Sects.

—Dr R G Bhandarkar p 12

मैगस्थनीय के समय तक कुष्ण की पूजा उत्तरी भारत में होने लगी थी। कहा जाता है कि सात्वत लोग ब्रह्मिण भारत में अपने धर्म का प्रचार करने के लिए गये। 'मासिक' के शिलालेख से स्पष्ट है कि ईसा के पूर्व ही कुष्ण भक्ति का प्रचार ब्रह्मिण की ओर भी गया। राजस्थान के पुमुष्ठी के लेख से पश्चिम में इस भक्ति का प्रचार प्रमाणित होता है।^१

वैष्णव मत का जन्म विकसित रूप पाँचराज मत में उपलब्ध हुआ। पाँचराज मत के उद्भव-काल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। वैष्णव आचार्यों के मतानुसार पाँचराज का सम्बन्ध वेद की एकाग्र शाखा से है। सर्वप्रथम 'पाँचराज', शब्द का प्रयोग 'सुतपथ ब्राह्मण' में हुआ है। इससे कहा गया है कि नारायण ने समस्त प्राणियों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के हेतु 'पाँचराज-सत्र' किया था। महाभारत के 'नारमणीयोपाख्यान' की वेदने से यही मासूम पड़ता है कि पाँचराज आचार वैदिक आचार पर ही आश्रित है। इस उपाख्यान में कहा गया है कि महर्षि नारद ने भारतवर्ष के उत्तर में स्थित श्वेत द्वीप में पहुँचकर नारायण शक्ति से पाँचराज मत के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया और लौटकर इस देश में उसका प्रचार किया। ईश्वर संहिता में वैष्णव संप्रदाय को 'एकाग्र' कहने का यह अर्थ बताया गया है कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए यही एक मात्र 'अग्र' उपाय अथवा मार्ग किया सामान्य है। पाँचराज मत के भी आराध्य 'वासुदेव' है। वासुदेव ही परब्रह्म परमात्मा हैं। वे ही सृष्टि के अधिकर्ता हैं। पाँचराज मत में ब्रह्मवाच का बड़ा महत्त्व है। वे ब्रह्म हैं—वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। संकर्षणवाच वासुदेव के ही रूप हैं और जीव मात्र के प्रतीक हैं। तीनों ब्रह्मों की उत्पत्ति मयवाच से ही होती है। पाँचराज धर्म के साधन-यज्ञ और साध्य-यज्ञ के निष्पत्ति के लिए अनेक पाँचराज संहिताओं का निर्माण हुआ। इनमें १८ मुख्य हैं। इनमें चौदह सात्वत व्याख्य से तीन अल्पत प्रदान हैं। पाँचराज संहिताओं में ब्रह्म जीव तथा अमृत के स्वस्व की विस्तृत व्याख्या की गई है।

पाँचराज का मुख्य उद्देश्य—भक्ति के साधन-मार्ग का निश्चय करना है। संहिताओं के अनुसार मन्दिर का निर्माण करके उसमें आराध्य-देव का स्थापन करना चाहिए और विविध वर्चना भी उसमें होनी चाहिए। इस दु समय सद्यः से भक्ति पाने के लिए एक मात्र साधन 'भक्ति' है। मयवाच मछनस्तन है और घनकी अनुग्रह शक्ति जीवों को इस मयवाच से उबार सकती है। मयवाच की अनुग्रह-शक्ति को

१ नोट—स्मरण रहे कि ईसा-पूर्व के किसी भी भागवत-धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थ में योपासक-वृत्त धर्मात् बोधी-जन-वस्त्रम कुप्यु की वर्णन नहीं पायी जाती है। योपासक-वृत्त का स्वस्व वैदिक भक्ति-परम्परा तथा समिद्ध (ब्राह्मण) भक्ति-परम्परा के मिलन के पश्चात् ही विकसित हुआ जिसका विवरण विस्तार से प्रागे दिया गया है।

उत्पन्न करने का सबसे उत्तम उपाय भगवान् की सरलागति है। पाँचराशों में सिध सरलागति न केवल एक मानसिक भावना है बल्कि इस भावना का व्यावहारिक जीवन में विभिन्न अनुष्ठान करना भी अनिवार्य है। जब से इस प्रपत्ति मार्ग नामे पाँचराश भक्त का वैष्णव धर्म के साथ एकीकरण हुआ है तब से भक्ति-मान्योत्तन में एक नूतन युग का आरम्भ होता है। यह कहा जा सकता है कि तमिळनाडु के श्री वैष्णव संप्रदाय ने सबसे पहले पाँचराश-धर्म का अपना नाम और भक्ति को सोफ धर्म बनाया।^१

तमिळ की भक्ति-परम्परा (उद्भव और विकास)

तमिळ की एक बड़ी ही प्राचीन भक्ति-परम्परा है। यह कहना कठिन है कि तमिळ जनता में कब से धार्मिक भावना अथवा भक्ति भावना का विकास-स्रोत प्रारम्भ हुआ था। तमिळ के अति प्राचीन ग्रन्थों की अनुपलब्धि के कारण भक्ति के उस प्रारम्भिक काल पर बहुत कम प्रकाश पड़ता है।

भारतीय धर्म-शास्त्रों पर लिखते हुए अपने विशिष्ट ग्रन्थ 'हिन्दू एव बौद्ध धर्म' में सर चार्ल्स इलियट ने स्पष्टतः कहा है कि भारतीय धार्मिक भावना का आदि-स्रोत वह पुरातन द्राविडीय सम्प्रदाय है जिसके साथ जायों का सम्पर्क एवं समन्वय भारत में आने के पश्चात् स्थापित हुआ। डा० राधाकृष्णन् 'हिन्दू-धर्म' पर लिखते हुए स्पष्टतः व्यक्त करते हैं कि भारत में प्रचलित हिन्दू धर्म वस्तुतः प्रागैतिहासिक सिन्धु-सम्प्रदाय का वह विकसित रूप है जो उस काल से आज तक आन्तरिक एवं बाह्य प्रभावों के फलस्वरूप अभायोप्य परिवर्तन एवं परिवर्द्धन के पश्चात् एक समन्वित रूप में उपस्थित है।

श्री 'दिनकर' अपने ग्रन्थ 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखते हैं कि— द्रविड़ जाति प्राचीन विश्व की अत्यन्त सुसभ्य जाति की और भारत की सम्प्रदाय का आरम्भ इसी जाति ने किया था।^{११२}

वैष्णव मत में भक्ति की जो प्रधानता है वह मुख्यतः द्रविड़ों की है। जायों की प्रारम्भिक धर्म-भावना कर्मकाण्ड और यज्ञ तक ही सीमित थी। उनके प्रारम्भिक साहित्य से उनकी मानुषता का ता प्रमाण मिलता ही है किन्तु इसका प्रमाण नहीं मिलता कि वे मनु भी थे। भक्ति जलम में जायों के पूर्व ही इस देश में बोड़ी-बहुत विकसित हो चुकी थी और जायों का ध्यान उसकी ओर तब गया जब वे कर्म-काण्ड से कुछ बचने में लगे। भागे बसकर जब इस देश में भक्ति की बाढ़ उमड़ी तब उसकी प्रधान भाग भी दक्षिण से आयी।^३

१ हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति-मान्योत्तन—डा० हिरण्यक पृ० १६।

२ संस्कृति के चार अध्याय (हि० सं०)—श्री रामचारी सिंह 'दिनकर' पृ० २८।

३ वहीं, पृ० ७२।

वसिष्ठ में जिस समाज में भक्ति-भावना का उत्थन माना जाता है, वह तमिलों का समाज था। वह भार्यतर जाति की और उसके रस्म रिवाज और धार्मिक विश्वास आदि अद्वैतिक थे। पुरातत्त्ववेत्ता तथा भूतत्त्व ज्ञानेयक अपनी गवेषणाओं के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तमिल प्रदेस की भौगोलिक स्थिति बड़ी प्राचीनता को सिद्ध हुए है।^१ तमिल संस्कृति बहुत ही प्राचीन है और उसको धार्मिक भावना भी उठती ही प्राचीन है, जिसकी स्वयं तमिल बनता।

भक्ति से सम्बन्धित 'पूजा' तथा 'धिय' शब्द भी मूलतः तमिल भाषा के ही बताये जाते हैं। 'धिय' शब्द का मूल वस्तुतः तमिल भाषा का 'शिवप्पु' () है जिसका अर्थ है 'साधन'। (डा प्रियसन भी इस मत से सहमत हैं।) तमिल में 'भाय' कहते हैं, पुष्प को। माना जाता है कि 'शिवप्पु' और 'भाय' के मिलने से 'शिवप्पन' अथवा 'शिवन्' बना। यही से संस्कृत के 'धिय' शब्द की उत्पत्ति हुई। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार धिय की ईश्वरीय भावना पुरातत्त्व के आधार पर द्राविड़ीय भाषी गयी उसी प्रकार 'धिय' शब्द भी तमिल से जो द्राविड़ कुस की ही प्रबलतम भाषा है उत्पन्न हुई है। 'पूजा' शब्द दो अक्षरों से बना है—'पू' तथा 'जा'। ये दोनों तमिल भाषा के विशिष्ट अर्थ-बोधक शब्द हैं। 'पू' शब्द का अर्थ है 'पुष्प' तथा 'जा' अथवा 'जै' शब्द का अर्थ है 'करना'। 'पू' तथा 'जै' तमिल का 'पूजै' अथवा 'पूजा' शब्द बना। (डा सुनीतिकुमार चटर्जी इस मत से पूर्णतः सहमत हैं।) 'पूजा' वस्तुतः अपने द्वााराध्य वस्तु पर पुष्प चढ़ाने के कर्म को ही सूचित करता है। 'पूजा' वस्तुतः मछ-हृदय के उद्गारों की ही अभिव्यक्ति है। अतः 'पूजा' भक्ति का प्रधान साधन है। वह शब्द स्वयं द्राविड़ीय होने के कारण यह मानना असंगत नहीं होगा कि उस पूजा तथा भक्ति की उत्पत्ति ही मूलतः द्राविड़ सम्प्रदाय से हुई है।^२

प्राचीन तमिलों का धर्म क्या था? वे किन-किन देवताओं की पूजा करते थे? इन बातों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। विद्वानों ने अनेक अनुमान लगाये हैं और उपलब्ध प्राचीन तमिल ग्रन्थों के आधार पर उस समय के धार्मिक समाज का चित्र खींचा है।

प्रारम्भ में तमिल लोग मूल-प्रेतों वृद्धों और नायों की पूजा करते थे। तन्त्र मन्त्र में विश्वास करते थे और पशु-बलि द्वारा अपने देवताओं को तृप्त करने का प्रयत्न करते थे। धीरे-धीरे जनम संस्कारों का विकास हुआ और संस्कारों में विकास के साथ-साथ उनके धार्मिक विश्वासों में भी परिवर्तन हुए। मूल-प्रेतों की पूजा का

१ (अ) The Stone Age in India — P. T. S. Iyengar p. 3

(ब) Origin and Spread of Tamils.—V. R. R. Dikshitar p. 1 and
Foot note, pp. 55-56

२ 'हिप्पी प्रचार समाचार' (मई १९५९) नामक पत्रिका में 'भक्ति द्राविड़ ज्योती'
लेख डा चन्द्र राजु नायडू, पृ. ७।

स्वान एक परम शक्तिमाम् नमस्कार न प्रति परम विश्वास न ले लिया। मम्मव त्रै इस विश्वास के मूल में भी किसी अस्माक परम शक्ति का भय रहा हो। पर गया-गया सम्प्रदाय का विकास होता गया मय कम होता गया और उसका स्वान प्रेम एव शक्ति ने ले लिया। इस तरह (बहुत प्राचीन काल से ही) तमिळ सोया के सुख में भगवान् की भावना व्यक्त हुई थी और न आप दिन की मुझ भावना और क्रूरता को त्यागकर शान्ति की ओर उन्मुख हुए।

उत्पन्ना इतिहास साह्य ११ — यह उत्तर भारत में एक सर्वविधित सांक्रोमि है। पर यह इतिहास के उस 'भक्ति-भावोत्पन्न' की ओर रुकन करती है जिसमें प्रकट रूप से शब्दों और नायनमार' तथा अन्य सत्ताओं में अपने-अपने दिव्य अनुभूतिमय मीलों के समता को मन्त्र-मुग्ध किया था। परन्तु इससे अनेक छानाछिपा क पहने ही तमिळ-साहित्य में उसका प्रारम्भिक काल में शक्ति की प्रतिष्ठा हो चुकी थी तथा देवी-देवताओं की उपासना-पद्धतियों का पूर्ण विकास हो चुका था। तमिळ के सहायता वयों के महाद्-तेहास में यह भक्ति-कारा उत्तरोत्तर पुष्टि पाकर कैसे बड़े प्रवाह न रूप में बहने लगी—इसका थोड़ा-सा परिचय उपसम्भ लिपिबद्ध साहित्य के माध्याम पर यहाँ देने का प्रयास किया गया है।

तमिळ-साहित्य के इतिहास में ईसा-पूर्व २०० वर्ष से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी तक का काल संप्रकास^१ कहा जाता है। तीसरी शताब्दी से लेकर पाँचवीं शताब्दी तक का काल की संशोत्तर काल अथवा चौथ-जैन-काल कहा जाता है। इस काल को भक्ति पूर्व-काल' भी कहते हैं। छठे शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का काल अर्थात् बादबार और नायनमार्ग का काल 'भक्ति-काल' कहा जाता है। संप्र-काल को प्रकृति-युगा

संप्र-काल का अन्तमत्त साधारणतः संप्र-पूर्व काल को भी लिया जाता है। संप्र-पूर्व काल का एक मात्र ग्रन्थ 'तोसकाप्पियम्' उपलब्ध है। यह एक सत्तराण ग्रन्थ है। इस सत्तराण ग्रन्थ से बहुत पहले ही उसके सत्तराण-साहित्य के वाणिज्य का पता चल जाता है। स्वयं 'तोसकाप्पियम्' के रचयिता ने स्वीकार किया है कि उन्होंने अपने जो सिद्धान्त निर्धारित किये हैं, वे पूर्ववर्ती साहित्यकारों द्वारा संकेतित अथवा प्रवर्तित सिद्धान्तों पर ही आधारित हैं।^२ तोसकाप्पियम् की पुस्तकालीन प्राचीन अवस्था का चोत्र तमिळ साहित्य अब उपलब्ध नहीं। अब तत्कालीन समाज की शक्ति की कौन

१. भागवत साहाय्य १।४८

२. कई तमिळ विद्वानों का मानना है कि प्राचीन काल में तमिळ-वेद में साहित्य सज्जन को प्रोत्साहन देने तथा प्रत्येक रचना को साहित्यिक कलाई पर परखने के लिए तत्कालीन राजाओं के तत्वावधान में एक कवि-परिषद् की स्थापना हुमा करती थी जिसको तंयम् की सभा भी कहती थी।

3. Tolkappiam — Porul Puratral, Sotras 77 and 78

कौन-सी बारणाएँ और मायताएँ भी उनका केवल अनुमान ही बनाया जा सकता है। परन्तु तोलकाप्पियम् तथा सच-काल की रचनाओं से तमिळ जनता के विभिन्न देवताओं और उनकी उपासना-पद्धतियों और भक्ति-सम्बन्धी मायताओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

सच-काल के साहित्य से पता चलता है कि प्राचीन तमिळ लोग प्रकृति-सीत्त्वों में रम जाते थे और अत्यन्त स्वच्छ मन से किसी भी कठिन चिन्तन से अस्त-व्यस्त न होकर अपना जीवन बिताते थे। प्रचलित इस काल की रचनाओं के बर्णन विषय दो हैं—प्रेम और बीरता। प्रमाण स्वल्प को कविता-ग्रन्थ हैं—‘एरुत्तोळै’^१ (आठ विभिन्न कविता-ग्रन्थ) तथा पत्तुपाट्टु (बस बर्णन वाक्यों का संग्रह)। तमिळ काम्य-शास्त्र के अनुसार कविता में चारों भावों का योग ही विषय है—‘एक ग्रहम्’ (आन्तरिक या मानसिक) तथा दूसरा ‘पुरम्’ (बाह्य)। भक्ति प्रेम जादि हृदय सम्बन्धी विषय ‘ग्रहम्’ के अन्तर्गत तथा युद्ध सामन-विद्वान नीति-शास्त्र जादि ‘पुरम्’ के अन्तर्गत माने जाते थे। ‘पुरम्’ में भक्ति की उपासना-पद्धति को स्थापन प्राप्त था। प्राकृतिक वातावरण में मध्य एक निश्चित जीवन दर्शन वाली संवत्सरीय कविताओं में प्रकृति की असीम शक्तियों तथा अज्ञात विशेषताओं के प्रति जो अज्ञात भाव या चिन्ता भाव दर्शने को मिलता है उस भाव विशेष को स्वाभाविक बर्णन भी कहा जा सकता है। इस काम के साहित्य में कुछ बस पहाड़ जादि वस्तुओं में रहने वाले मंगलकारी और धमधमकारी देवताओं की कल्पनाएँ यथ-तथ मिलती हैं। इन देवी-देवताओं को समुष्ट करने के लिए प्रार्थनाएँ होती थी और बलिदान भी होता था। प्राचीन तमिळ लोग विष्णु-वाक्यों को धारण करने की प्रार्थना कर सूर्य की भी पूजा करते थे। चन्द्र की भी पूजा होती थी जिसे ‘विर्’ ठोळुवन’ कहते थे।^२ ‘परिपाटल’ नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि भगवान् के जिस रूप की कल्पना मन में की जाती है, मनु के लिए उनका वही रूप उपास्य अथवा प्रिय हो जाता है।^३ कर्तु का तात्पर्य यह है कि सच-काल के साहित्य पर दृष्टि डालते समय उस काम की पूर्ण प्रचलित प्रकृति-पूजा-प्रणाली का भी परिचय मिलता है।

तमिळों के विभिन्न देवी-देवता

‘तोलकाप्पियम्’ तत्कालीन तमिळों के प्रमुख देवताओं का परिचय देता है।

- १ ‘नहिन कुत्तोळै कविप्पटु’ परिपाटल कलितोळै नेटुत्तोळै ग्रहमातृ और पुत्तमातृ।
- २ तिरुमुक्कट्टुप्पट्ट पोन्नर-माट्टुप्पट्ट मिश्रपाट्टुप्पट्ट पैरुवाट्टुप्पट्ट मुत्तुप्पट्टु, मरुरैकांची नेटुत्तलवाट्टै कुरिन्निपाट्टु, पदिक्कल्लार्न मलैपत्तु कवाम।
- ३ Tolkaṭṭam—Porul, Aṭṭinaḷ 5 Nachinarkinyanar's Commentary and Kalitogai Palai Kall, 16
- ४ परिपाटल ४, ११।२६

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में तमिळ-प्रदेश के जलवायु और अवस्था के अनुसार चार भू भागों में विभाजित होने का उल्लेख है। प्रत्येक भाग को 'तिरु' कहते थे। इन चारों 'तिरु' के नाम थे—कुरिञ्चि (पहाड़ी क्षेत्र) मुल्लै (बल भूमि) मरुम (उपजाऊ क्षेत्र) मेयदस (समुद्रवर्ती क्षेत्र)। प्रत्येक प्रदेश में प्रत्येक प्रकार के सोप रहते थे जो वहाँ की प्रकृति और अवस्था के अनुसार अपनी अलग सम्पत्ता विकसित करते थे। इन भू-सम्पत्तियों के लिए अलग अलग देवता भी स्वीकार किये गये थे।^१ मुल्लै प्रदेश के अधिदेवता 'मायोन' अर्थात् स्वाम रग वामे 'तिरुमास' कुरिञ्च के देवता 'शिपोन्' अर्थात् गोरे रग वामे 'मुल्लन' थे। पाँच की निष्कटवर्ती छोटी भूमि मरुम के अधिपति बर्पा भेजने वामे 'वृक्ष देव' थे। समुद्रवर्ती भाग के देवता 'वृक्ष देव' माने जाते थे। इन चारों भू भाग के अतिरिक्त 'तोसकाप्पियम्' में एक पाँचवीं भूमि का भी उल्लेख है।^२ यह 'पानी' (मरुभूमि) है और उसकी अधिष्ठात्री देवी कोट्टरवै थी। तमिळ विद्वान् श्री कल्याण सुन्दर मुत्तासिदर का कहना है कि तमिळ प्रदेश के पाँच भू भागों में द्रविड लोगों की मौसिक कल्पना के अनुसार ही पाँच देवताओं का अस्तित्व धीरे-धीरे साकार हुआ और इन देवताओं के साथ आर्य देवताओं का सम्बन्ध बहुत पीछे से जुड़ गया था। इस प्रकार तोसकाप्पियम्-काल में पाँच प्रमुख देवताओं का परिचय मिलता है। इन देवताओं के जलप-जमग मन्दिर होते थे। इनका भी उल्लेख मिलता है। तमिळ जगत के बीच उपर्युक्त पाँच देवताओं में मायोन (तिरुमास) मुल्लन और कोट्टरवै सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। इन्द्र और वरुण को केवम गौण स्थान प्राप्त था। जिसका प्रमाण हमें उप-साहित्य तथा बाद के सिंहासिकाओं में मिलता है।^३ तोसकाप्पियम् में शिव का विशेष उल्लेख नहीं है।

'तोसकाप्पियम्' में वर्णित तमिळ-प्रदेश के देवी-देवताओं और उनके पदचिह्नों की रचनाओं में वर्णित देवी देवताओं की आराधना स्वरूप इत्यादि को देखने से पता चलता है कि इन दोनों कालों के बीच में (लगभग ईसा से पूर्व तीस शताब्दी और ईसा के अनन्तर या घटाब्दी के काल में) द्रविड और आर्य संस्कृतियों का एकीकरण हुआ होगा। क्योंकि तोसकाप्पियम् के बाद की रचनाओं में विशेष रूप से संक्षेप-काल की रचनाओं में वैदिक देवी-देवताओं की आराधना भी देखने को मिलती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृतिक आनन्द मान से युक्त यह स्वाभाविक भक्ति क्रमशः वैदिक उपासना-मन्त्रित से सम्मिश्रित होकर एक भक्ति-परिपाक के रूप में परिणीत हुई। तत्पश्चात् तमिळों ने देवता-मन्दिर में परिवर्तन हुआ और नये देवता

१ Tolkappiam—Poruladhikaram Ahatinai Sutra 5

२ इस प्रकार के भू-विभाजन तथा प्रत्येक विभाग के प्रत्येक अधिदेवता मानने का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी मिलता है। —ऋग्वेद यजुर्वेद, काण्ड पृ० १ ४

३ तोसकाप्पियम्, पोन्न, अहतिपै ३०।

४ तमिळ मूलकविस बीउम्, पृ० ११ १२।

५ चाण्डारण्ड काल मिले—मु० राघव वर्मन्तर पृ० २३।

भी उसमें लिए गये। दोनों संस्कृतियों के मिलन के सम्बन्ध में दक्षिण में प्रचलित इतिवृत्तों के अनुसार वैदिक संस्कृति का बलिष्ठापन में आगमन अवस्थ्य मुनि के द्वारा हुआ। कहा जाता है कि वे अवस्थ्य मुनि दुर्बल विध्य पर्वत को लाँचकर और बहुत बलों को पारकर सुदूर दक्षिणापन में आर्य-संस्कृति का प्रचार करने अपनी मंडली के के साथ आये। तमिळ इतिवृत्त के अनुसार अवस्थ्य ऋषि ने तमिळ प्रदेश में आने पर धिबजी से उपवेश पाकर तमिळ भाषा का अध्ययन किया। वे 'पोदियमन'^१ पर शिष्यों के साथ निवास करने लगे। उन्होंने तमिळ में एक वृहत् व्याकरण भी लिखा था ऐसा कहा जाता है। परन्तु यह व्याकरण 'अयात्तियम' अब उपलब्ध नहीं है। उन्होंने तमिळ की अमिष्टुति के लिए तमिळ संघों की स्थापना भी की थी। इनके बावजूद प्रधान शिष्यों में 'तिरुखुमाम्नि' नामक ऋषि भी थे। कुछ लोग 'तिरुखुमाम्नि' मुनि को और 'तोलकाप्पियम्' के रचयिता तोलकाप्पियर को एक ही व्यक्ति मानते हैं। परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं। 'तोलकाप्पियर' के काम का अभी तक निर्णय न हो सके। कुछ भी हो इतना निश्चित रूप से कह सकते हैं कि तोलकाप्पियम् के बाव की संस्कृतासीम इतियों में वैदिक संस्कृति की कलक भी मिलती है। ऐसा कि ऊपर कहा गया कि दो संस्कृतियों का मिलन हुआ और दोनों की भक्ति परम्पराओं का भी सम्मिलन हुआ। यह एकीकरण (Fusion) ईसा की दूसरी या तीसरी सताब्दी तक पूर्ण हो चुका था जिसका प्रमाण हमें संक्षोत्तर कालीन रचनाओं में मिलता है। इस परवर्ती काल की रचनाओं में वैदिक देवताओं और उनके अतिरिक्त तमिळ देवताओं और उनकी आराधना-मणाली का भी उल्लेख है। कुछ इबिड देवता भी आर्य-देवता मण्डल में लिये गए।

मुन्नी या वन भूमि के सोना व क्वात्स्य देव 'मायोन' को सबसे अधिक पौरव पूर्ण स्थान प्राप्त था। इस देवता ने कालात्तर में अन्य मू भागों पर भी अपना प्रभाव डाला। 'मायोन' शब्द का अर्थ है— नील मेघ छुटि मुक्त भगवान्। 'तिस्मान' इसका दूसरा नाम था। वे 'आयर' कहालाने वाले स्वास लोगों के अविदेवता थे। 'आयर' लोगों के देवता 'मावान' नाम-देवता थे। इस देवता का एकीकरण वैदिक विध्यु से कालात्तर में हो गया।^२ इस विषय की चर्चा बलास्थान विस्तार से की जायगी।

संक्षेप में आर्य और इबिड संस्कृतियों में सम्मिलित होने पर भी इबिड (तमिळ) देवताओं और आचार्यों का मिलन स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

१ अतिथ्यनिकारम् १—१, १४।

२ डा सुनीति कुमार गच्छों का विचार है कि आर्यों के सुपबाबक देवता विष्णु भारत में आकर इबिडों के एक आकाश देव से मिल गये जिसका रंग इबिडों के अनुसार नीला प्रबवा प्रभाव था। तमिळ भाषा में आकाश को 'विन' भी कहते हैं जिसका 'विष्णु' शब्द से निकट का सम्बन्ध हो सकता है।

—भी रामपारी सिंह 'विनकर' संस्कृति के चार अध्याय पृ ९ से उद्धृत।

कुरिञ्जि वा पर्वत भूमि के लोगों के देवता 'शिवोम' अथवा 'मुक्कन' थे। 'मुक्कन' को तमिळ लोगों की निश्चित अद्भुत सौन्दर्यमय कल्पना सृष्टि मान सकते हैं। 'मुक्कन' शब्द सुमन्व दिव्य तेज वासकपन सौन्दर्य युक्त देवता की ओर लक्ष्य करता है। ये भास वर्ण से चमकने वाला शरीर जिसमें नित भूतन यौवन की सुपमा बसती है, और अनुपम शक्ति युक्त देवता माने जाते हैं। ये प्रेम के देवता भी माने गये हैं। अविवाहित कम्पाई योम्य वर को पान के लिए इस देवता की पूजा करती थीं। मासा इनका आनुष्ठ है। इनके बीर-स्वरूप के सूचक वण्डामुधन दण्डपाणि बैसन बैलामुधन बैसवम वारि नाम भी तमिळ-प्रदेश में प्रचलित हैं। सचम् साहित्य के पत्तुपाट्टु नामक काव्य-संग्रह में सम्मिलित 'तिरुमुक्तादरुपदै' नामक काव्य में मुक्कादेव की पूजा प्रणाली उनके छ रमणीय निबान स्थान तथा अन्य महिमाओं का विस्तार से बरण है। 'परिपाडन' नामक दूसरे कविता-संग्रह में उपलब्ध पद्यों में आठ मुक्कन की स्तुति में प्रस्तुत किये गये हैं। पहले इनकी पूजा 'कुरव्वर' नामक पर्वतवासी लोगों के बीच में बड़ी धूम-धाम से हुआ करती थी। 'कुरव्वर' सिवारी सोग थे। 'मुक्कन' भी सिवारी माने गये हैं। पर्वतवासी अपने प्रिय देवता के सामने मधु-मांस भात आदि चढ़ाकर भेंट बकरे की बलि भी देते थे। इस पूजा का संयोजक पुजारी होता था जिसको पर्वतवासी अपना मुख मानते थे। पूजा के समय पुजारी रक्त वर्ण 'कादल' पुष्प काम में पहन कर डमरू हिलाकर मरचने वाले छद्मों में भ्रमकर तांडव नृत्य करता था। 'तेमकाप्पियम्' में इस तांडव नृत्य को 'कादल' कहा गया है। नृत्य के बीच पुजारी भावेस में जाकर मुक्कदेव का माध्यम बनकर सबिध्यवासी भी दिया करता था। पूजा के समय पहाड़ी नर-नारी भी प्रार्थना पीत गाकर 'कुरव्व' नामक नृत्य करते थे। कहा जाता है कि मुक्कादेव भी मत्तों के बीच पर्वत की कम्पाओ से हाथ मिलाकर स्वयं जानत्यपूर्वक नाच उठते थे और उनका अभीष्ट वरदान देते थे। लोगों का विश्वास था कि मुक्कन द्राविड़ स्त्री-देवता कोट्टरव्व के पुत्र थे और मुड़ के अधिदेवता थे। इस प्रकार प्रारम्भ में मुक्कन को केवल पर्वतवासी वन्य मूल्य और पशुबलि आदि से पूजते थे। परन्तु बाद में अन्य वैदिक देवताओं की तरह इनके लिए भी मन्दिर बने और ये वैदिक ईश में मन्दिरों में आराध्य देव हो गए। इन्हीं को संस्कृत में स्वर्ण कीटिकेय मुक्केश्वर आदि नामों से पुकारा जाता है। मूसन में द्राविड़ अथवा तमिळ देवता थे।¹ इनसे सम्बन्धित तमिळ-जनता के बीच में प्रचलित कपाई कार्य-सोंगों की

1 "The paucity however of Murugan temples and worship in North India and even in Central India and the great veneration and reverence shown to this deity in the Tamil land makes it possible that after all Skanda was a Tamil Deity and later on perhaps in the centuries before Christ the Murugan Cult developed all over India and mystic legend of Skanda's being son of Lord Shiva himself was skillfully woven by the Sanskrit Writers and given an air of plausibility

कथाओं में मिस-बुल गयीं। फिर भी आर्य-सुब्रह्मण्यम् या कार्तिकेय और तमिळ के मुरगन में जोड़ा बहुत अन्तर रह ही गया। सुब्रह्मण्य के सम्बन्ध में अन्तर यह है कि आर्यों के कार्तिकेय ब्रह्मचारी माने जाते हैं और तमिळों के मुक्कन विवाहित। इनके दो पत्नियाँ थीं जिनके नाम हैं—बल्ली और देवयानी। कहा जाता है कि बल्ली किकापी जाति की थी जिस पर मुग्ध होकर मुक्कदेव ने उससे विवाह कर लिया। तमिळ-प्रदेश में यह कथा बहुत प्रचलित है और इसका आध्यात्मिक अर्थ भी लिया जाता है। मुक्कदेव के मन्दिर अमिकांसल पर्वतीय प्रदेशों में पाए जाते हैं जो उनके पर्वतीय प्रदेश के देवता होने की ओर संकेत करते हैं।

मदरम अर्थात् उमजाळ भूमि के देवता का वर्णन इस प्रकार मिलता है—
 बहु मेर्षों का अधिपति है। उसका आनुज वय है। जब भूमि नरमी से सन्तुष्ट होती है तब बहु मेर्षों को भेजकर पानी बरसाता है। बहु कई वर्षराज्यों से भिरा रहता है। उसका प्रिय मीम्य पदार्थ पोंगल (एक प्रकार की भात से बनी मिचड़ी) है।^१ आजकल भी तमिळ-प्रदेश में पोंगल त्योहार (मकर संक्रान्ति) के अवसर पर इस देवता की पूजा होती है। इस देवता का बाहुन ऐरावती नामक गौर बर्तु का हाथी है। कहा जाता है कि पुराने समय में इन्द्र के लिए बलग मन्दिर भी विद्यमान थे। शिलप्पिबिकारम्^२ में इन्द्र के बच्चापुत्र के लिए एक असन मन्दिर होने का भी उल्लेख है।^३ इसी ग्रन्थ में इन्द्रविला^४ (इन्द्रोरस्य) का भी वर्णन मिलता है जिसको तमिळ-जनता मेर्षों के स्वामी इन्द्र को बच्ची फसल मिल जाने के कारण (बन्धुबाध रूप में) प्रसन्न करने के लिए मनाती थी। इस ग्रन्थ से यह भी बात होती है कि यह त्योहार २५ दिन तक चमठा या और पूसिमा के दिन इन्द्र की प्रतिमा के अभिषेक के बाद उसका विसर्जन होता था।

नेयरल जनका समुद्रवर्ती प्रदेश के देवता 'वरुण' थे। मधुर लोग बड़ी धूम धाम से इस देवता की पूजा करते थे। तिमिल मछली का दाँत इस देवता का आनुज था। कहा जाता है कि एक पंडित राजा ने समुद्र के अधिदेवता वरुण के लिए उत्सव की प्रथा भी चलायी^५ तथाकथर में इन्द्र और वरुण के लिए भी मन्दिर थे इसका पता शिलालेखों से चलता है।^६ तमिळों के ये इन्द्र और वरुण आर्य देवताओं से भिन्न थे या नहीं यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। हो सकता है कि इन्हीं के उपजुक्त दोनों देवता आर्यों के इन्द्र और वरुण से मिल गये हों। इन दोनों देवताओं का स्थान अन्य देवताओं की अपेक्षा योग्य है। जिस प्रकार मुक्कन के मन्दिर आज भी पर्वतीय प्रदेशों में विद्यमान हैं उस प्रकार इन्द्र और वरुण के मन्दिर आज उपजाळ भूमि और समुद्रवर्ती प्रांतों में विद्यमान नहीं हैं।

१ शिलप्पिबिकारम्—काँटे ६ १२।

२ पुरम् ६, १०।

३ South Indian Inscriptions, Vol. I. p. 414.

पार्ले अथवा मन्नूमि की अविष्ठाभी देवी कोट्टवै थी। यह युद्ध में विजय प्रदान करने वाली मानी गयी है। अतः युद्ध में विजय पाने पर इस देवी को धन्यवाद देने के लिए उसकी पूजा करते थे।^१ इस देवी के उपासक मरवर' या कस्सर' लोग थे जो आबेद आदि क्रूर क्रूरों से अपनी जीविका बसाते थे और इस देवता को प्रसन्न करने के लिए पशुओं तथा मनुष्यों की भी बलि चढ़ाते थे। मविरा मांस इस देवता के प्रिय भोग्य थे। वास्तव में पार्ले प्रदेश के लोग जैसे भयंकर और क्रूर स्वभाव के थे उनके देवता भी वैसे ही क्रूर और भयंकर थे। शिलप्पविकारम् में उसको तीन भाँजों वाली कहा गया है। उसके पैरों पर पायस होती थी और महिषासुर के शिर पर रखे बतावे जाते हैं। मण्डिमेखसै' में उल्लेख मिलता है कि इस देवी के पुजारी 'मैरव' कहलाते थे जो तांत्रिक मंत्रों का उच्चारण कर उसकी पूजा करते थे। वह चिर यौवना बतायी गयी है। उसके अनेक मन्दिर निर्मित थे। कन्याकुमारी के मन्दिर में जिस देवी की मूर्ति है, इस देवी की बताया जाती है। इसका उल्लेख बिदेसी पात्री पिल्लिनि ने किया है और 'पेरिप्पस' में भी उल्लेख है।^२ कहा जाता है कि एक बार मदुरा में इस देवी के मन्दिर के फाटक अपने आप बन्द हो गये। पांड्य राजा ने इसे देवी का प्रकोप समझकर, उसकी प्रसन्न करने के लिए दो ग्रामों की बाय का महसूल इस देवी की पूजा के लिए द्वादशतन्म में निश्चित कर दिया।^३ कोट्टवै अथवा कालिका ब्रह्म लोगों की कल्पना प्रसूत माना जाता है, यद्यपि बाव में बायों की दुर्गा पार्वती आदि देवियों के अंश भी उसमें आ गये।

शिव भी पहाड़ी प्रदेश के देवता माने गये हैं। महेन्द्रगिरि (पश्चिम घाट का एक पर्वत) पर इनका निवास-स्थान था। ये मनुष्यों के जीवन और मरण के स्वामी माने जाते थे। ये सत्य के साक्षात् स्वरूप थे।^४ जो सत्य मार्ग से दूर जाते थे उनको दण्ड देने के लिए उनका सत्यानास कर देते थे। शिव' ब्रह्म लोगों के सबसे प्राचीन देवता माने जाते हैं। इनको पहाड़ी प्रदेश ने अभिदेवता 'शैवोन' या 'भुवगन' का पिता माना गया है। तमिळ पुराणों में लिखा है कि तमिळ भाषा का निर्माण शिवजी ने किया था और बाद में उसके व्यापक प्रचार के लिए जगन्मय मुनि को तमिळ भाषा का ज्ञान दिया था। प्राचीन तमिळ-संघों के स्थापक 'शिव' और 'मुदयन' को माना जाता है। कहा जाता है कि संब-साहित्य के सर्जन में उन्होंने सक्रिय योग दिया था। इस काम के कुछ ऐसे गीत मिलते हैं जो 'इत्यनार पादु' अथवा 'शिव' द्वारा रचित गीत कहलाते हैं। संब-साहित्य से पता चलता है कि उस समय शिव से सम्बन्धित

१ तोलकाप्पियसु-वोल्स चुत्र ५६।

२ Cultural Heritage of India, Vol. IV (First Edition)
—Skanda Cult in South India V R. R. Dikshitar pp 252 257

३ शिलप्पविकारम् २३ ११३-१२३

४ परिपाडल ५ ३३

बहुत सी कथाएँ लोक में प्रचलित थीं जिनमें त्रिपुर-बहूत कैलाश-दर्शन की उठा जाने रावण का पर्व संग, अमृत मंथन के समय हमाहम पात्र आदि कथाएँ बहु प्रचलित थीं। परन्तु संघ-साहित्य में शिव की पूजा का अधिक विवरण न मिलने। अनुमान किया जा सकता है कि उस समय शिव-पूजा कम होती थी।^१ बाद में ९ नायनमारों ने शिव की अपना आराध्य देव मानकर उच्च कोटि के भक्ति-साहित्य का निर्माण कर दिया।

शिव की कल्पना और उनका प्रतीक रूप शिव-पूजा द्रविड़ लोक-मानस का अपनी भाव भूमियाँ हैं। मोहिनबोद्यों में प्राप्त शिव लिपों से इस कल्पन की पुष्टि होती है। शिव-पूजा आर्यों के आगमन के पूर्व ही प्रचलित थी। श्रुतों में शिव-पूजा का उल्लेख है जो आर्यों के आने के पूर्व द्रविड़ों के बीच शिव-पूजा के बहुत प्रचलित होने की ओर संकेत करता है।^२ जब आर्य और द्रविड़ संस्कृतियाँ का सम्मिश्रण हुआ तो वेदों के 'रुद्र' और द्रविड़ों के 'शिव' में एकता मानी जाने लगी। जबकि 'शिव' द्रविड़ों में प्रमुख देवता थे इसलिए उनकी मकहेसना के लिए पुराणों में बने-ठ कथाएँ गड़ी गयीं। किन्तु तमिल 'शिव' और ब्रह्मिक 'रुद्र' में कुछ अन्तर भी रह गया। अन्तर यह है कि जहाँ ब्रह्मिक 'रुद्र' बिजसी और नयाँ साध के आधी और तूफानों के अधिकारी थे वह तमिल 'शिव' संहार के देवता होने पर भी मंथनकारी समझे जाने थे। तमिल 'शिव' प्रेम और कल्याण के देवता माने जाते थे। हो सकता है कि ब्रह्मिक रुद्र में द्रविड़ शिव के भी गुण पहले से ही विद्यमान हों।^३

संस्कृत की एक दृष्टि परिपाठस^४ में १२ आदित्य = बसु, ११ रुद्र और अरुन्धी आदि ब्रह्मिक देवता-मण्डल के देवताओं का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु इन देवताओं की पूजा या कल्पना किस किस प्रकार की होती थी इसका पता नहीं चलता। ब्रह्मा की पूजा शिव विष्णु की आराधना की तरह अधिक प्रचार को पा नहीं सकी। ब्रह्म में केवल एक मन्दिर तथा उत्तर भारत में पुष्कर तीर्थ में एक आश्रम भी विद्यमान है। कामदेव की पूजने की प्रथा अधिकविस्तृत कम्पाजा के बीच विद्यमान थी। इसका उल्लेख मकर माना गया है। 'शिल्पविहारम्' में उल्लेख बने-ठ-श्रुत का देव कहा गया है। तत्कालीन समाज में इसके लिए उरसव भी मनाय गये थे जिसका 'विश्वविद्या' कहते थे। ये मन्त्र-व्यपत्तियों से पूजे जाते थे। कामदेव का कोई मन्दिर तमिल भाषा में अब विद्यमान नहीं है।

1. Tamilar Sabhu—Dr Vidhyanandan, p. 127

2. The Dravidian Element in Indian Culture

—(Dr Gilbert Slater) का तमिल अनुवाद पृ० ११

३. संस्कृति के चार अध्याय—श्री शिवर' पृ० १५।

4. Linguistic Survey of India Vol. IV p. 279

५. परिपाठस १, १-८ तथा ७ ४-८।

संघोत्तर काम की रचनाओं से पता चलता कि बसदेव के लिए भी मन्दिर थे । मयूर जिने के कुछ मन्दिरों में बिष्णु सहित बसदेव के विग्रह मिलते हैं । शिष्य-पिकारम् मण्डिमैसर्त्त' तथा पुरनायुक्त में बसदेव का उल्लेख है ।^१ शिष्यपिकारम् के अनुसार कोल राजाओं की प्रधान नगरी कावेरी पुपट्टिनम् में यम्मुन बासे बसण वर्य 'विमोन' (मुस्यन) श्वेत शत-सा रंग वाले 'बसदेव' नीलमणि जैसे प्रकार युक्त 'ठिरुपाक' 'पुत्तमाका तथा दिव्यी एक सहित शत्रु देव—एत सभी के लिए बसण बसण मन्दिर थे ।

वैदिक देवताओं की तरह अनेक छोटे-मोटे प्राकृतिक तत्व भी देव मानना से पूज्य संव-साहित्य में मिलते हैं । मृत्-प्रेत वायु, सूर्य चन्द्र नगर वृक्ष नदी पहाड़ आदि के स्थानीय देवताओं (Local Gods) के लिए स्थापन-स्थापन पर पूजा होती थी । बस्य बुद्धि ग्रामीण जनता जिसके लिए सर्वशक्तिमान् परब्रह्म की कल्पना कठिन थी छोटे-मोटे अनेक ग्राम देवताओं में भय के कारण विश्वास रखती थी ।^२ मारियम्मा (वीरमा) देवी की पूजा होती थी । ऐसी पत्नियों के जो अपने पतिव्रत के लिए प्रसिद्ध हुई थी तथा ऐसे पुरुषों के जिन्होंने अपार भीरुता का प्रदर्शन कर प्राण त्याग भी कर दिया था—सम्मान के लिए धिमाओं ('नकुलम्')^३ की स्थापना होती थी और उन धिमाओं में मृतकों के स्मारक पितृ तथा भक्त भी अंकित कर पूजन-पद्धति चलाती थी । शिष्यपिकारम् नामक संघोत्तर कासीन महाकाव्य की नायिका 'कण्णकि' ऐसी पत्नी थी जिसने अपने भावस्य पतिव्रत द्वारा पतिहत्या का बदला लिया था । कहा जाता है कि बौद्धजन नामक शेर राजा 'कण्णकी' के स्मारक बनाने के लिए हिमासय से धिमा लेकर आया था और उसने उस धिमा में पत्नी-देवी के रूप में मूर्ति बनवाकर उसे एक मन्दिर में स्थापित किया था ।

इस प्रारम्भिक काम की एक महत्वपूर्ण उल्लेखनीय बात यह है कि विभिन्न देवताओं के लिए तमिल-प्रदेश में मन्दिर निर्मित होते थे वहाँ उन देवताओं की पूजादि होती थी । तमिल-प्रदेश में वर्तमान जनप्रियतम मन्दिरों को देखने से स्पष्ट होता है मन्दिर-निर्माण बहुत पुराने काल में ही प्रारम्भ हो चुका था और मन्दिरों के निर्माण के साथ-साथ नायिक कालावस्था का भी सूत्रपात हो चुका था ।^४ मन्दिरों का निर्माण और उनकी रक्षा करना राजाओं के कर्तव्यों में से सम्मिलित था ।^५ ठीक ही तमिल-प्रदेश को मन्दिरों का देश कहा गया है ।

1 Annamalai University Journal Vol. 8 pp 213-211—"Palan Thamilar Kadavul Vall padu." Prof. E. S. Varadarajanar

2 Village gods of South India —R. R. Henry White head.

3 An Essay on the Origin of Temples in South India.

—Dr Venkitaramaya, pp 4-5

4 "Origin of South Indian Temples"—Dr Venkitaramaya.

५. तोलकाप्पियम्—बृहत्संहिता, सूत्र १०, इल्लूरनार की टीका ।

उमर हमने प्राचीनकाल की तमिळ-प्रदेश की बामिक स्थिति का परिचय दिया है। उपर्युक्त विवेचन से पता चलेगा कि आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों के सम्मिलन के पूर्णतः चट्टित होने पर भी तमिळ-प्रदेश की बामिक भावना या भक्ति-भावना वैविध्य को लेकर है। द्रविड़ देवताओं और आचारणों का भिन्नत्व सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। प्रारम्भ में विभिन्न देवताओं की भिन्न-भिन्न पूजा-परिपाटियाँ भी दृष्टि गोचर होती हैं। किन्तु इन आचारणों के व्यवहार-परा के साथ-साथ, तत्कालीन साहित्य में उत्कृष्ट बामिक चिन्तन का पक्ष भी स्पष्ट दीख पड़ता है। ऐसा मामूम होता है कि तमिळों के प्राकृतिक धर्म सम्बन्धित आचारण उनके उत्कृष्ट बामिक चिन्तन से भिन्नता लिए हुए हैं। आत्मानन्द विश्वास सम्बन्धी व्यावहारिक आचारण और उस धर्म के ऊँचे स्तर के विचार—दोनों के बीच बड़ी गहरी खाई पड़ गयी मामूम पड़ती है। कहने का तात्पर्य यह है कि संघ-कालीन कवियों ने जीवन की साक्षरता मान्यताओं तथा क्षिप्राचार के ऊँचे आदर्शों पर भी स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला है। संघ-काल की कुछ रचनाओं में कवियों ने उच्च कोटि के भक्त-भाव भी व्यक्त किये हैं। एक सर्वशक्तिमान भगवान् की कल्पना कर सबसे भक्तिपूर्ण सम्बन्ध रखने की बात यत्र-तत्र संघ-साहित्य में देखने को मिलती है।

तमिस-प्रदेश में तिरुमास-धर्म (ब्रह्माण्डधर्म) की प्राचीनता

यह पहले लिखा जा चुका है कि 'संघम्' पूर्वकाल की उपसम्भूत रचना "तोलकाप्पियम्" में तमिळ-प्रदेश के पाँच भू-भागों और उनके अधि-देवताओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन पाँचों देवताओं (मायोन शिवोन इन्द्र वरुण कोट्टरव) में मायोन या तिरुमास का स्थान सबसे ऊँचा था। 'तोलकाप्पियम्' के रचयिता ने भी विभिन्न भू-भागों तथा उनके अधि-देवताओं का उल्लेख करते समय सबसे पहले मुस्सी-प्रदेश (वनभूमि) के देवता तिरुमास का ही नाम लिया है।^१ बाद के प्रसिद्ध कवि सेल्वकसार ने भी अपने ग्रन्थ 'पेरियपुराण' के विभिन्न देवताध्या में "तिरुमास" के महत्वपूर्ण स्थान का समर्थन करते हुए उनका वन-भूमि के देवता के रूप में उल्लेख किया है।^२ इस प्रकार हम देखते हैं कि वन-भूमि (मुस्सी-प्रदेश) में जन्म लेकर तिरुमास-धर्म बीरे-बीरे अन्य भू-भागों में भी फैलने लगा। मुस्सी अथवा वन भूमि में गोचारण के व्यवसाय में संलग्न 'आयर' कहलाने वाले व्यापारी शोध रखते थे। उनके दृष्टिदेवता 'मायोन' (बाद के साहित्य में कण्ठुन) का पासन-पोणु भी कपाशों के अनुसार आयरकुल में ही हुआ था। 'मायोन' शब्द का अर्थ है—स्वामि रंग वाला।^३ कहावत इस रंग का सम्बन्ध 'आयर लोको' की निवास-भूमि मुस्सी के वन प्रदेशों में जाफास-बीधि में एकत्रित होने वाले मैनों से हो सकता है जिसके रंग में 'आयर' लोम रंगे होते और अपने दृष्ट देवता के वर्ण की कल्पना इस प्रकार की होती —

१. तोलकाप्पियम्—ग्रहम सूत्र ५ और १०।

२. Periya Puranam—Thirukurri Putandar Puranam, stanza 18

‘तिरुमाळ’ शब्द भी ‘मायोन’ के लिए प्रयुक्त होता है, जो देवताओं के विशिष्ट स्वाम को सूचित करने के लिए व्यवहृत होने लगा था। तोलकाप्पियम् ‘तिरुमाळ’ का मानव जाति के रक्षक के रूप में उल्लेख करता है।^१ ‘तोल काप्पियम्’ जैसा कि पहले कहा गया है कि एक सलण-ग्रन्थ है। उसका रचयिता ने ‘पूर्व निर्ग’ नामक कविता का सङ्ग्रह बेते समय थोड़ा राजा की तुलना तिरुमाळ से कर ‘तिरुमाळ’ की स्तुति बहुत ही प्रशंसारमक शब्दों में की है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि तोलकाप्पियनार ने ऐसे शब्दों का प्रयोग ‘तिरुमाळ’ के अतिरिक्त अन्य किसी देवता के लिए नहीं किया है। इससे तिरुमाळ के महत्त्व का पता चलता है।

मुर्त्ति प्रदेश के बासी अपने देवता तिरुमाळ की उपासना में विशेष रूप से उसके आरम्भिक जीवन की बात-मीमाओं में बहुत रम जाते थे। मायर नून की नाटिका उस दिव्य-मुख की रम्य मीमाओं के स्मरण में अपने हृदय को खो देती थी जिसका वासकपन भी उन्हीं की वनमूमि में घटा था। इस देवता के वासकपन से सम्बन्धित अनेकानेक कथाएँ तमिळ जनता की कल्पना के अनुसार जन्म लेने लगीं। ‘मायोन’ ने प्रति उन मायर रमणियों के प्रेम को लक्ष्य करके ही धामर तोल काप्पियनार ने लिखा है कि इन रमणियों के हृदय में वैसा ही महारा प्रेम अपने इष्ट देवता के प्रति था जैसा उनको अपने पतियों के प्रति होता था।^२ पता चलता है कि तोलकाप्पियन्-नाम (ईसा-पूर्व पाँचवीं शताब्दी का नाम) से ही ‘तिरुमाळ’ या ‘मायोन’ की प्रेम कथाएँ जन-मानस को पर्याप्त मात्रा में आकर्षित कर चुकी थी और संघ-नाम में ‘तिरुमाळ’ सम्बन्धी इन कथाओं का मूल प्रचार हुआ।

संघ-साहित्य के प्रति आलवारों का आग्रह

इसमें मेसमात्र सन्देह नहीं कि वैष्णव-मत आळवारों का काल तमिळ-साहित्य के संघ-काल के परबान् ही निश्चित रूप से पड़ता है। क्योंकि आळवारों की रचनाओं में संघकाल की साहित्यिक परम्पराओं तथा विचार-धाराओं तक का स्पष्ट प्रभाव शीघ्र पड़ता है। आळवारों की रचनाओं की साहित्यिक पृष्ठभूमि संघ-साहित्य में चलन को मिल जाती है। कुछ आळवारों ने तो संघ-साहित्य के प्रति अपने आचार को प्रकट भी किया है। यह स्वामाधिक ही है। क्योंकि किसी कवि के काव्य का सम्बन्ध उसके पूर्ववर्ती और समकालीन युग से बहुत होता है। प्रत्येक कवि अपने युग के प्रभावों से किसी न किसी ढंग में प्रभावित होता है और फिर अपनी हृति से अपने युग तथा अपने परवर्ती युग को प्रभावित करता है। इसलिए उस कवि के अध्ययन के लिए उसके पूर्व और समकालीन युग का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। ऐसी दशा में ही उस कवि के काव्य की आलोचना बड़ी सावधानी तथा सहायुक्ति से होनी चाहिए।

१ तोलकाप्पियम्—पौण्ड मू. १०।

२ वही—पौण्ड ८१-८४।

आळ्वारों की रचनाओं की साहित्यिक पृष्ठभूमि में संघ-साहित्य है। संघ-काल तमिल साहित्य का स्वर्णयुग है, क्योंकि इस काल में रहे गये तमिल काव्यों का साहित्यिक महत्त्व सर्वश्रेष्ठ है। इस काल की रचनाओं में तत्कालीन तमिल जनता के जीवन-दर्शन और आचार के सम्बन्ध में बहुत से विवरण मिले हैं। यह कहा जा चुका है कि इस काल के प्रारम्भ में ही उत्तर से वैदिक संस्कृति का आगमन तमिल-प्रदेश में हुआ और तमिल-संस्कृति से उसका सम्मिश्रण हुआ। इस काल की रचनाओं में दोनों संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। धार्मिक-भावना के क्षेत्र में एक ओर तमिल-संस्कृति से और दूसरी ओर वैदिक-संस्कृति के साथ प्रभुत्व विचार है। इस काल की रचनाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह देखने को मिलती है कि जनता में धार्मिक भावना का उदय पहले से ही हो चुका था। साथ ही जगत् में धार्मिक सहिष्णुता भी दीख पड़ती है और धार्मिक संघर्ष का नाम तक नहीं है। परन्तु बाद में यह बात नहीं रह गयी थी।

इस संघ-काल की रचनाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि इस काल में विस्माल वर्ग अर्थात् वैष्णव धर्म बहुत प्रचार को पा रहा था। और विस्माल सम्प्रदायी (वैदिक-परम्परा-प्रभुत्व तथा तमिल मान्य में उत्पन्न) कदापि बहुत प्रचलित नहीं। स्मरण रहे कि तमिल-भूमि में 'मायोन' या विस्माल की कल्पना (पहले से) पूजक रूप से जाग उठी थी। सबकाल से साहित्य से ज्ञात होता है कि वैष्णव धर्म विशेषकर भागवत मत एवं अवतारवाद की प्रतिष्ठा तथा बिष्णु-नारायण-वासुदेव-कृष्ण और 'विस्माल' या 'मायोन' का एकीकरण पूर्ण और पुष्ट हो रहा था। आळ्वारा ने इस युग के साहित्य से बहुत कुछ लिया। अतः आळ्वार-पूर्व इस साहित्य में अल्पिष्ठ वैष्णव भक्ति के रूप पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है।

संघ-साहित्य में वैष्णव भक्ति

संघ-काल की रचनाएँ तीन संग्रहों में मिलती हैं—

- (१) एरुदुतोर्क (आठ कविता-संग्रह)
- (२) पतुपाटु (बस वर्णन-काव्यों का संग्रह) और
- (३) पदितेन कीळ कल्लवु (बठारह लघु-कविता संग्रह^१)

मट्टिये

"एरुदुतोर्क-कृतियों में मट्टिये सबसे प्राचीन मानी गई है। इसमें विस्माल (बिष्णु) का वर्णन मिलता है। इसमें विस्माल की महत्ता और उनके रूप की तुलना

१ "एरुदुतोर्क" और "पतुपाटु" में सम्मिलित काव्यों का नाम पहले दिये गये हैं। "पदितेन कीळ कल्लवु" संग्रह में सम्मिलित काव्य इस प्रकार हैं — शिवस्तुति, तिरिकुटम, नाम्मिक्किळ दिदर्वमूलम नाम्मियार कार नार्पु, कळवळि नार्पु, इमियवे नार्पु, इमा नार्पु, ऐ तिने पळमोळी मुत्तुपौळी कांची आदि अठारह लघु काव्य।

पद्य से की गई है। इसमें 'भारतम्' के रचयिता देवन्देवनार की एक कविता संस्कारण के रूप में संगृहीत है। देवन्देवनार ने ऋणामृत पुराण कुरंगोई ऐन्दुराव आदि कविता-संग्रहों में भी संस्कारण लिखे हैं। देवन्देवनार ने खैर-बैष्णव मेष से दूर रहकर भासिक सहिष्णुता का परिचय दिया है। अन्य कविता-संग्रहों में यहाँ उन्होंने सिव और मुरुगन की स्तुति की है वहाँ उन्होंने 'नट्टिण' में तिरुमास की स्तुति की है।

इस कविता में कवि ने "तिरुमास" के विश्व रूप के दर्शन कराये हैं। इनका विश्व रूप यद्यपि सात पंक्तियों में है। कवि ने समस्त विश्व को तिरुमासमय (विष्णु-मय) देखा है। इन पृथ्वी-तल को तिरुमास के चरणों के रूप में समुद्र को तिरुमास के कक्ष के रूप में विद्याओं को करों के रूप में सूर्य-चन्द्र को तिरुमास के दो भयनों के रूप में कवि ने देखा है। इस प्रकार समस्त विश्व में तिरुमास की आत्मा को कवि ने व्याप्त पाया है।^१ कवि के लिए विश्व ही तिरुमास है तिरुमास ही विश्व है। "नट्टिण" की यह संस्कारण कविता उस नाट्य-मन्दिर के द्वार के रूप में दीख पड़ती है।

"नट्टिण" में संस्कारण के अतिरिक्त १७२ कवियों की ४०० कविताएँ संगृहीत हैं। इन विभिन्न कवियों के नाम ज्ञात नहीं हैं। इन कविताओं की रचनाओं में आठ त्रिवेदा भी हैं। कपिलर तथा उत्तमोन्नतार नामक दो कवियों की कविताएँ इस संग्रह में सर्वाधिक संख्या में हैं। इसकी एक कविता में किसी एक कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य में ही तिरुमास के दर्शन किये हैं। कासे रंजीत पर्वत को और उसके कमल-निनाद करके बहने वाली निर्मल निर्झरणी को देखकर कवि को तिरुमास (और उसके माई बमराम) का स्मरण हो आता है। संय-कालीन कवियों ने प्रकृति में ही तिरुमास को देखा है। कावा-मुण्य (मुण्य विशेष) में नील पत्तन में नील लहर नाम समुद्र में नीले के रंग में सर्वत्र कवि को विष्णु को व्याप्ति का परिचय मिलता है। कवि ने समस्त विश्व को विष्णुमय देखा है।^२ नट्टिण के अध्ययन से पता चलता कि तत्कालीन जनता तिरुमास (विष्णु) की महत्ता महिमा और तिरुमास से सम्बन्धित कथाओं से पूर्णतः परिचित थी।

पडिट्टुपत्तु

पडिट्टुपत्तु के रचयिता नाप्पियट्टु नाप्पियमार ने अपने जायपशाता नार मुडिबेरल नामक बेर राजा को विष्णु भक्त कहा है। इसमें कहा गया है कि उक्त बेर राजा ने उस तिरुमास (विष्णु) की उपासना में अपनी प्रजा को लगाया था, जिस तिरुमास ने बाण्डवतार लेकर समस्त पृथ्वी की रक्षा भी की। इसमें उल्लेख है कि

१. व्यासभूत महाभारत—सांठि प अध्याय ३३१ श्लोक २१ २८ में भी विष्णु के विश्व रूप का वर्णन है।

२. तमिलम बगवद्गुण—एय० रामाङ्गणु विस्व, पृ० १।

तिस्मात्त मत्त सीतल बस में स्नान कर, निराहार प्रत रक्तकर तिस्मात्त के मन्दिर में प्रवेश करते थे और तिस्मात्त की महिमा गाकर तुलसी माला बारी तिस्मात्त के चरण कमलों पर पुष्पाञ्जलि अर्पित कर आनन्द से गूँथ करते थे। मित्राणों का अभिप्राय है कि इसमें जिस मन्दिर का उल्लेख है वह तिरुवनन्तपुरम् (स्यानम्बूरपुरी) में स्थित लेपसायी बिष्णु का है।^१

कपिलर नामक प्रसिद्ध कवि ने लिखा है कि वेम्बकन्कुळो नामक राजा ने तिस्मात्त के प्रति अपनी अपार भक्ति के उपसङ्ग में उनकी पूजा की व्यवस्था के लिए ओहन्नूर नामक गाँव का राजस्व शास्त्रतः रूप में दे रखा था। इससे ज्ञात होता है कि तमिळ-प्रदेश के चेर राज्य में तिस्मात्त-उपासना बहुत ही प्राचीन काल से प्रचलित थी।

नवकीर नामक कवि ने 'पुरनाद' को एक कविता में बलराम का वर्णन करते हुए लिखा है कि समुद्र में उत्पन्न जबल रंगीन शंख के समान उनकी देह की कांति है और उनके ध्वज पर ताड़ वृक्ष का चिन्ह अंकित है।^२ बाये कवि ने बलराम के अगुज कण्ठ को जिनका तन नीलमणि की भाभा से मुक्त है और जिनका गवड़ध्वज महाम् विजय का चोकर है, समस्त विश्व की सारी शक्ति और स्वायत्ति का निशान कहा है।^३

मारोक्कत्तु नप्पसमैमार नामक कवि ने कण्ठन (कण्ठ) की एक ऐसी कथा का उल्लेख किया है जो अल्प ग्रन्थों में नहीं मिलती। सूर और असुरों के बीच जब युद्ध हुआ तो जिन को भी अम्बकार मुक्त बनाने के लिए असुरों ने सूर्य को क्षिप्त दिया। सूर्य का प्रकाश न पाकर सारी पृथ्वी अम्बकार से आच्छादित हो गयी और मनुष्य भयभीत हो गये। उस समय नील वर्ण बेहूषारी कण्ठन ('बिष्णु' का तमिळ नाम) ने मनुष्यों के दुःख निवारणार्थ सूर्य को लाकर आकाश में लटका कर दिया। इससे ज्ञात होता है कि इस कवि के समय में यह कथा प्रचलित हुई थी।^४ प्रलयकाल में जल प्लावन के समय बिष्णु के बट-पत्र पर शयन करने की कथा भी वर्णित है।^५

परिपाडल

'परिपाडल' में भी बिष्णु का वर्णन है। 'पाडल' शब्द से तात्पर्य 'पीत' है। कथावित् इस संप्रदाय में संप्रहीत कविताएँ उस समय गीत-रूप में गायी जाती थीं। परिपाडल कविता-संप्रदाय में संप्रहीत ७० कविताओं में से तिस्मात्त से सम्बन्धित ८ कही गई हैं। परन्तु इस गणह की अब उपलब्ध होने वाली २२ कविताओं में से ७ में तिस्मात्त (बिष्णु) का वर्णन है। इससे ज्ञात होता है कि संव काल में तिस्मात्त उपासना बहुत प्रचार को पा चुकी थी।

१ तमिळ्म बँचवमुमम—एम० राजाकृष्ण पिळ्ळै पृ० ५।

२. पुरम्, २१ ३-४।

३. वही, २७ १ ३।

४. वही, १७४ १-२।

५. वही, १२१ १।

प्रथम कविता में सेपतामयी बिष्णु का वर्णन है। इसमें कहा गया है कि आदि-सेप क्षत्र बाह्यतः सौम्य प्रकाशयुक्त दीपक आदि के रूप में तिरुमाल की सेवा में प्रस्तुत है। कवि का कहना है कि नीलवर्ण तम युक्त तिरुमाल के वसस्वरूप को शोभित करने वाली सखी देवी मानो सत्य और मुम्बरम् के समन्वय के रूप में विराजमान है। इस कविता में कवि ने तिरुमाल के विभिन्न आभूषणों की भी वर्णन की है। वे आभूषण क्या हैं प्रकृति का नावा वस्तुएँ ही हैं। अग्नि से घिरा हुआ मोमवर्ण-पत्र मानों तिरुमाल का पोताम्बर हो। कवि का कहना है कि नैव प्रणुता मुनिगल तथा शानवान् व्यक्ति भी बिष्णु की महिमा के एक वक्ता का भा जान नहीं सके तो हम मर्कटों से उनकी सारी महिमा का वर्णन करे हो सकता है। जाने कवि कहता है कि उनकी महिमा का कुछ भी नावम करना चाहे, ता उसके लिए भी उसकी रक्षा चाहिए।

परिपाइन में मिलन वाले तिरुमाल-सम्बन्धी विचार जाने के कवियों द्वारा अपनाये गए मान्य होते हैं। उनमें एक विचार यह है कि जो भगवान् कृपासिन्धु, कस्सामिथान है, वह दुष्टों को दण्ड देने में भी हिचकता नहीं है। दुष्टों को सगमार्ग पर लाने के लिए वह उन्हें कष्ट देता है। भगवान् के इन दोनों पक्षों की तुलना घीतल बीरनो की देने वाले चम तथा तम युक्त किरणों को भेजने वाले सूर्य से की गई है।

कवि ने विरहोत्पत्ति के कारण बड़ा और सड़ा-कारण शिव को भी तिरुमाल के बराबर माने हैं। कवि का कहना है कि स्वर्ण-कान्ति-युक्त चक्र को अपने हस्त में धारण करने वाले तिरुमाल ही इस विश्व के आदि-कारण हैं परब्रह्म हैं। उनकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। उनका समान वे ही हैं। चूंकि इस निर्गुण परब्रह्म के विषय में जानना समुप्यो के लिए बहुत कठिन है, इसलिये भगवान् ने अपने सर्व चक्र मयुक्त समुल-रूप के दर्शन भक्तों के लिए कराए हैं। अन्त में तिरुमाल भगवान् की स्तुति कर उसकी सरण में जाने में ही भक्तों को भलाई बतायी गई है।¹

परिपाइन में अक्षतारवाद की भी एक निम्न बातों है। एक कविता में बसिराम अक्षतार का भी उल्लेख है। ज्ञात होता है कि संवकास में कम्म (कृष्ण) की उपासना के समान बसराम की भी उपासना होती थी और इसके लिए बसव मन्दिर की निमित्त हुए थे। एक अन्य कविता में भी बसराम-वर्णन है। इस कविता के रचयिता कीरत्तियार ने बसराम के भद्र के रूप में अक्षतरित बिष्णु (कम्म) का भी वर्णन किया है। पुराणों में बिष्णु के चार स्वरूप का वर्णन पाया है—बामुदेव संकर्षण, वसुध और अजितरु। परिपाइन में भी चार स्वरूपों का उल्लेख मिलता है। इनमें 'वैवसवायी' कहकर बामुदेव स्वरूप का 'वसुधुय वेल्ने' कहकर संकर्षण स्वरूप का,

१ 'परिपाइन' के इन विचारों का प्रभाव आठव्यों पर पड़ा है। आठव्यों के विचारों के बीच भी इसमें देखने को मिलता है।

पान्कण पञ्ची' बहकर प्रद्युम्न का और पैकसुमाल' बहकर अनिष्ट ब्रह्म का भी उल्लेख कवि ने किया है।^१ इस कविता ने रचयिता ननुवनदेवनाभ से। संवत्सास में तिरुमाल की विभिन्न-भूतियाँ का उल्लेख करने वाले एकमात्र कवि हैं। एक दूसरी कविता में तिरुमाल क बाराहाबतार सेकर^२ पृष्ठी की रक्षा करने का गुतिहू बवतार^३ सेकर प्रह्लाद के हृदय स्वरूप विश्वास का निरूपण करने का नामनाबतार^४ सेकर तीनों लोकों को नापने का भी विस्तार से वर्णन है।

परिपाठन क द्वितीय गीत के रचयिता कीरन्तीयार बसराम और तिरुमाल (कम्पन) को एक ही मानते हैं।^५ उन्होंने कम्पन (हृष्य) को पूर्णवितार के रूप में माना है। कवि का कहना है कि बुढ़कों के लिए नवयुवक और बृद्धों के लिए पूर्ण बामी महान् बृद्ध के रूप में तिरुमाल दृष्टिगोचर होते हैं।^६ इन सब अवतारों के मूल में तिरुमाल के लोक रसक और लोक-रंजक—दोनों रूप ही प्रकट हुए हैं।

नरुक्केळुवियार नामक कवि ने तिरुमाल को परब्रह्म के रूप में देखा है। विश्व क कण-जग में तिरुमाल क विष्णुवर्धन का उल्लेख किया है।^७ एक गीत में इरुम्बैयूर नामक स्थान में स्थित तिरुमाल-देवालय का उल्लेख है। विद्वानों के अनुसार यह मन्दिर बेबे नदी के तट पर स्थित अठ्ठगरकोमिस ही है।^८

कलित्तोर्क

कलित्तोर्क में बाल-कृष्ण की विमल-सीताओं का वर्णन है। कंस क द्वारा भेजे गये केसी नामक घोड़े को मारने की कथा है। कवि जोलन नल्लिबतिनार ने इस घटना का अपार बीरता के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।^९ द्रौपदी की कस्या पुकार पर उपस्थित होकर उसके स्त्रीत्व की रक्षा कर दुःशासन के गर्व को भंग करने वाले कृष्ण (कम्पन) की महिमा बामी गई है।^{१०} समस्त विश्व को तीन पक्षों में लौबने की विष्णु की कथा भी है। कलित्तोर्क के अन्वयण के विहित होता है कि उस समय तिरुमाल वर्म को राम्याभय भी प्राप्त था। इसमें पवित्र जीवन बिताने वाले वैष्णव संन्यासी लोमो का उल्लेख है जो प्रतिदिन पत्थर पर पीटकर बोये हुए कापाय वस्त्र पहना करते थे और बिनका नाम 'ननवर' या 'मुक्कोर मगवर' विख्यात था। वार्षिक विषयों में इनसे सलाह लेने की परिपाटी भी थी।

संवत्सारी कविता-संग्रहों में दूसरा संग्रह 'भुत्तुपाट्टु' है, जिसमें १० वर्णन

१ 'तिरुकोयिल' (Vol. II, Lesson 3) 'वैष्णवम्' लेख—भी वी भी आचार्य पृ. २१।

२ परिपाठन ८१०-२१। ३ वही १११-१४। ४ वही, १-१६२०।

५ वही २४०-२१। ६ वही, २४१-४६। ७ वही, ११८-२५।

८ तमिळुम वैष्णवमुम—एम राधाकृष्ण पिण्डि पृ. २६।

९ मुल्लैकली, १ १ ४ २१। १० वही १ ८१ १२०।

काव्यों का समावेश है। यह प्रथम संग्रह की अपेक्षा अधिक प्राचीन माना जाता है। इसमें संगृहीत-कविताओं का काल ईसा की दूसरी शताब्दी से पूर्व पड़ता है।

इसमें 'पेरुलपाणादुस्पर्डी' के रचयिता ने अपने भाष्यबाला को तिरुमान वयोस्वम् कहा है।^१ इस कविता में कवि ने कांची नगर का प्राचीनता का वर्णन करते समय लिखा है कि कांची उस तरह प्राचीन और महिमा युक्त है, जिस तरह ब्रह्मदेव को धारण करने वाला तिरुमान की माँ से उद्भूत कमल। इस कांची नगर के समीप तिरुवेद्वा में वेवछायी तिरुमास के एक मन्दिर होने का भी उल्लेख है।

मुस्तै-पादुट्टु (अर्थात् 'वन-गोत') के रचयिता तप्पुवनार ने वामनावतार का स्मरण कर तिरुमास की व्यापकता और स्वाम्यता की तुलना समुद्र-जल को ग्रहण कर उत्पन्न तथा ऊँचे आकाश में मँडराने वाले काम मेघों से की है। यह कविता मुस्तै-प्रदेश के अविदेवता 'मामोम' अथवा तिरुमास की स्तुति कर प्रारम्भ होती है। महावक्ती से तीन चरण की भूमि माँकर तानों साका का साँवने वाले तिरुमास की कथा उस समय बहुत ही लोकप्रिय रही होगी। अतः 'मडुरकांची' में 'ओग बिपा' का वर्णन है। कहा गया है कि महावक्ती के पक्ष का वसन करने वाले तिरुमास की महिमा गाने के लिए मडुरै नगर में 'ओग' उत्सव प्रतिवर्ष सात दिन तक बड़ी भूमि वाम से मनाया जाता था।

सृजकाम का तीसरा काव्य संग्रह 'पदिनेलकीळवन्गुवट्टु' है। वस्तुतः यह बटारह भक्ति ग्रन्थों का सामूहिक नाम है। विरचयिस्त्वाम महाकवि तिरुवन्कुवर द्वारा रचित 'तिरुवन्कुळ' इनमें प्रमुख है। तिरुवन्कुवर किस धर्म के अनुयायी थे इसका निर्णय अभी तक नहीं किया जा सका है। इस ग्रन्थ में जैन बौद्ध ब्रह्मण्य सृज एवं ईसाई बिद्वा अपने-अपने धर्म के बिचारों को पारस्परिक प्रमाणित करने के निरन्तर प्रयत्न में उद्योगों से भरे हुए हैं कि तिरुवन्कुवर तत्तम् धर्मावलम्बी थे और उन्हीं के धार्मिक सिद्धान्त 'तिरुवन्कुळ' में प्रतिपादित किये गए हैं। यद्यपि इस महान् कवि ने अपने दृष्टिकोण व रूप में बिष्णु या तिरुमास का नाम स्पष्ट रूप से नहीं लिया है, तो भी उनके भगवान् के श्रेष्ठ गुणों के अनेक वर्णन तिरुमास की सत्य करके ही किये गए मान्य पड़ते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता व अनेक बिषय इसमें मिल जाते हैं। दो स्थानों में अद्वैतब्रह्म^२ (लोक को नापने वाला) तथा वामरै कन्नन^३ (कमल दस लोचन 'कन्नन') इन दो प्रयोगों से यही निष्कर्ष निकलता है कि कवि अपने समय में प्रचलित तिरुमास तत्त्व में प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

पदिनेलकीळवन्गुवट्टु में सम्मिलित 'तिरिवन्कुवम्' नामक काव्य में तिरुमास की अनेक सीमाओं में से तीन चरण से गमस्त विरच को साँवने कुल्ल वेड के रूप में

१ पेरुलपाणादुस्पर्डी २६ ३१।

२ वही ४०३ ४ ५।

३ तिरुवन्कुळ बोधा ११०।

४ वही ३७१ ३०३।

५ वही ११०३।

उपस्थित राक्षस को मारने शकट छोड़ने आदि सीताओं का वर्णन है। इसके रचयिता मत्स्यनार के हैं। इस ग्रन्थ के मंगलाचरण से विदित होता है कि ये वैष्णव हैं।

‘मानमयिकविक्रम’ के रचयिता विठ्ठलीनामनार भी वैष्णव हैं। इसमें मंगलाचरण के दो पद्य हैं जिनमें मायोन् अर्थात् कल्मष की स्तुति है। कवि का कहना है कि चण्ड मायोन् के मुख के समान है। किरण युक्त मूर्ध तिष्ठमान के चक्र के समान है। सुन्दर कमल के रस उनके मयना के समान है। ‘पूर्व’ के महीन पुष्प उनके शरीर के रंग के समान हैं।^१ इस प्रकार कवि ने उपमान को उपमेय से भी धोष्ठ बताया है (प्रतीप अर्थकार)। मंगलाचरण के द्वितीय पद्य में ‘कल्मष (कृष्ण) की अग्य कुछ सीताओं का उत्सेह है।

‘इतिवदु नार्पदु’ के रचयिता पूर्वर्चनार हैं। इन्होंने भी कृष्ण की अनेक सीताओं का उत्सेह किया है। विद्वानों के अनुसार ये भी वैष्णव हैं।

मंचोत्तर काल (तीसरी और चौथी शताब्दी) में पाँच धोष्ठ काव्यों का निर्माण हुआ जो ‘पंच बृहद्’ के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे हैं—सिलप्पधिकारम् मणिमेखलौ जीवक चित्तामणि बळ्यापति और कुण्डलकेटी। इन बृहद् काव्यों के अतिरिक्त इस काल में रचित पाँच सन्तु काव्य भी विख्यात हैं। वे हैं—नीलकण्ठी श्रुतामणि पञ्चोदर काव्यम्, नानकुमार काव्यम्, तथा उदयगण कवै। ‘सिलप्पधिकारम्’ (नूपुर-काव्य) के रचयिता इलङ्गो मत्तपि बौद्ध भुवि थे तो भी उन्होंने अपने समय के अग्य प्रसिद्ध लोक प्रिय वर्गों के विषय रूप से तिरुमान वर्म के विचारों का अच्छा परिचय दिया है। इस काव्य का नायक कोवमन अपनी बर्मपत्नी कळुकी को मङ्गुरै नगर के बाहर स्थित ‘आमर’ (गन्ना) के ग्राम में छोड़ जाता है। मङ्गुरै में जब निरपराध कोवमन की हत्या होती है, तो आमरों के उस ग्राम में अवधारुन बीज पड़ते हैं। इस पर आमर खातिने अपने इष्टदेव कल्मष (कृष्ण) से ब्रमपस दूर करने के लिए प्रार्थना कर ‘कुरवै’ नामक नृत्य करती हैं। यह प्रसंग आदिचयर कुरवै नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रसंग में खातिने जाती है — ‘मेरु को मचानो और वासुकी तर्प को रस्सी बनाकर, हे कल्मष ! उस दिन तुमने समुद्र का मंचन कर आया था। मचने वालों ने ही हाव (बाध में) पञ्चोदा की मचाने की रस्सी से बांधे पड़े। हे नृसिंह, हे भ्राष्ट्रि रहित ! यह तुम्हारी कैसी मामा है ?’ कुरवै कुरवै की कथा उस समय के तमिल-समाज में सबसे अधिक प्रसिद्ध कथा मान्यमान पड़ती है, जिसमें कल्मष (कृष्ण) ने बलराम और नय्यिल (‘राधा’ का तमिल नाम) के साथ ‘कुरवै’ नामक नृत्य किया था। कवि ने इस प्रसङ्ग के अनुसार म खातिनों के मुख से ‘कुरवै’ नृत्य करते समय कल्मष की विभिन्न बात-सीताओं का वाचन कराया है।

‘सितम्पधिकारम्’ से ज्ञात होता है कि उस समय तिरुवैकटम् तिरुप्पति, तिरुमानिरुवेली आदि स्थानों में ‘तिरुमास’ के मन्दिर वर्तमान के और इन मन्दिरों में तिरुमास की उपासना प्रणाली भी थी। काविरिपूपट्टिनम में स्थित मन्दिरों की सूची हैते समय कवि बभराम और कन्नन (कृष्ण) के अथय भ्रमण मन्दिर होने का भी उल्लेख करता है।^१ इस काव्य के अन्त में एक जगह कहा गया है कि राजा बेरन चेंबुट्टुवन बीर-गन्गी कन्नण्की की प्रतिमा बनाने के निमित्त सिला देने के लिये हिमगिरि गए। जाते समय ‘माडकमाडकम्’ नामक स्थान में स्थित विष्णु मन्दिर के उन्होंने दर्शन किए।

‘चंबुट्टुवन-काव्यों’ में दूसरा महान् काव्य है—‘मणिमेळसी’। इसके रचयिता शीतलै चातमार (मस्तक-धारी चातमार) थे। इस ग्रन्थ के प्रणयन से ज्ञात होता है कि यद्यपि बीड-धर्म के विचारों का प्रतिपादन ही था, तो भी उन्होंने वैष्णव धर्म के संकेत विचारों की ओर भी प्रसंगवश संकेत किया है। इस काव्य में कन्नन (कृष्ण) की अनेक कथाओं का भी वर्णन आता है। कन्नन द्वारा नयिनी तथा बभराम सहित किये गए कुरबै नृत्य का भी उल्लेख कवि ने किया है।^२

‘भूळमणि’ नामक जैन-काव्य में उसके कथा-नायक से सम्बन्धित कुछ कथाएँ ‘कन्नन’ से सम्बन्धित कथाओं से मिलती-जुलती हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि चूंकि इस काल में तिरुमास धर्म अधिक प्रचार को पा रहा था और जनता ने तिरुमास के विभिन्न अवतारों की कथाओं को बड़े चाव से स्वीकार किया था इसलिए इस काल के जैन बीड-काव्य में भी उन कथाओं का कपासुत से समावेश यथ-सम हुआ है।

तिरुमास के कन्नन (कृष्ण) अवतार की भाँति राम-अवतार की कथाएँ भी उत्कालीन समाज में प्रचलित थीं। इसके प्रमाण मध्य-साहित्य में मिल जाते हैं। यद्यपि तमिळ में सम्पूर्ण ‘रामायण’ की कथा को लेकर महाकाव्य रचने वाले कवि ‘जयवर्ती’ के नाम से प्रसिद्ध कवन (११वीं शती) के ता भी कुछ विद्वानों का मत है कि उससे पूर्व (कलाचिद्र मंत्रकाल में ही) ‘वेम्बा’ ग्रन्थ में निहित एक रामायण-काव्य भी विद्यमान था।^३ प्रोफेसर एच० बैयापुरि पिळ्ळ का कथन है—‘बहुत ही प्राचीन काल में इन रामायण-कथाओं का प्रचार समस्त तमिळ-प्रदेश में हो चुका था। ‘पुरानातूर’ तथा ‘वहनातूर’ नामक संवत्सारी उत्सवों में जिनकी रचना ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में हुई थी रामायण की कथाओं का सम्बन्ध है। इसके परचाय ‘वेम्बा ग्रन्थ’ में उचित एक सम्पूर्ण रामायण का भी प्रणयन हुआ था। इस प्रकार हम देखते हैं कि तिरुमास के रामावतार की कथाएँ बहुत प्राचीन काल से ही तमिळ जनता

१ सितम्पधिकारम् १७१ १७२।

२ मणिमेळसी १६, १५ १६।

३ कन्नन कन्नन तमिळकम्—स्वामी चिदंबरनार, पृ० २०।

को प्रभावित करती जायी है। तमिळ-प्रदेश में उत्पन्न तत्सम्बन्धी कथाएँ भी भूल-कथा में ली गयी थीं।^१

‘महानाट्य’ और ‘नेटुत्तोकै’ नामक संग्रहों में ‘रामायण’ की कुछ कथाएँ मिलती हैं। इसमें एक जगह कहा गया है कि रावण छ युद्ध कर सोता को सिवा साने क निमित्त जब राम पाण्ड्यदेश के बल्लिण कोने में एक विद्याल बन्-बुधा के नीचे अपने दूसरे सहस्रोभिर्यो के साथ विचार-विनिमय में रत थे तब उस बुध पर निवास करने वाले अनेक पक्षी कसरब में रत मये। इस कारण कुछ समय के लिए सभा क कार्यक्रम को बाध करने में प्रतिरोध हो गया। उन पक्षियों के शान्त हो जाने पर वे पुनः विचार में प्रवृत्त हुए^२ (यह प्रसंग बास्मीकि रामायण में नहीं है)।

‘पुरानाट्य’ की एक कविता में रामायण के एक प्रसंग की ओर संकेत है। एक बार एक कवि को एक राजा ने पुरस्कार स्वरूप बहुत से मूक्यबाध माधुपण दिये। चूँकि कवि को यह माधुम नहीं था कि किस आशय से को कहीं पहनना चाहिए, इसलिए उस कवि की तुलना उन बालों से की गई थी। रावण-हारा अपहृत सीता के हाथ से फँके गये आधुपणों को लेकर इस भ्रम में पड़े हुए थे कि उगह कहीं पहनना चाहिए।^३

‘एट्टुत्तोकै’ काव्य-संग्रह में सम्मिलित ‘परिपादम’ में एक जगह कहा गया है कि तिरुवरकुट्टु नामक स्थान में स्थित तिरुमाल-मन्दिर के चित्र-मण्डप में बहिःस्था घाप विमोचन का चित्र अंकित किया गया था और मन्दिर में जाने वाले भक्त उसके दर्शन कर उसकी अत्यन्त प्रशंसा कर जाते थे।

‘सिलप्पयिकारम्’ नामक काव्य-ग्रन्थ के ‘आययियर’ कुरव प्रसंग में पद्यपि ‘कन्नन (कृष्णावतार)’ की सीमाओं का विस्तार से वर्णन है, तथापि कवि ने रामावतार की ओर भी संकेत किया है। कवि का कहना है कि उस काल से क्या प्रयोजन है जिसने तिरुमाल क रामावतार की कथा न सुनी हो। जाने कवि कहता है कि तिरुमाल क चरण जिन्होंने तीन लोकों को नापा था वे ही रामावतार में वन-यात्रा के समय पीड़ित होकर रक्षित हो गये।^४

‘मणिमेवर्त्त’ में रामावतार की कुछ कथाएँ मिलती हैं। इसमें रावण के अन्यायपूर्ण राज्य क लिए उसे बन्ध होने के निमित्त लका में पहुँचाने के लिए राक्षसरम में सेतु बनाते समय बानरा द्वारा बड़े-बड़े पत्थरों को लेकर जाने का वर्णन है।^५ एक अन्य जगह राम की जीत और रावण की पराजय का भी उल्लेख है।^६

१ कम्बन काव्यम्—प्र० एम. वेयापुरि पिस्सु १५२, १५३।

२ महाभारत, ७०।

३ पुरानाट्य, २७८।

४ सिलप्पयिकारम् (मदुरैकाण्डम्)—आययियर कुरव १५।

५ मणिमेवर्त्त, १७-१०-४।

६ वही, ५३, ५४।

उपर्युक्त विवेचन से सात्पर्य यह है कि संघ-काल में ही (ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में) जबका उससे कुछ पूर्व ही तमिळ-प्रदेश में विस्मास (विष्णु) के विभिन्न अवतारों की कथाएँ प्रचार पा चुकी थीं, साथ ही संघ-साहित्य में हमें आळवार-साहित्य की साहित्यिक पृष्ठभूमि देखने को मिल जाती है।

मन्दिरों में 'तिरुमास' की उपासना

तमिळ-प्रदेश के मन्दिरों का इतिहास बहुत ही प्राचीन है।^१ इन मन्दिरों में देवताओं की मूर्तियाँ रहती थीं और विविध प्रणाली के अनुसार उनकी उपासना भी होती थी। यद्यपि प्रारम्भ में तिरुमास मुक्त-प्रदेश के अधिदेवता के रूप में ही माने गये थे, तो भी संघ-काल में उनका प्रभाव अन्य भू-भागों पर भी पड़ा। इनके मन्दिरों में तिरुवन्नम, तिरुपति तिरुमामिदियोसै तिरुवेहा आदि स्वामीों में स्थित तिरुमाल-मन्दिरों का उत्तम संघ-साहित्य में कई जगह मिलता है।^२

तिरुवन्नम (थीरन्नम्) के मन्दिर के अर्चावतार तिरुमास का वर्णन "तिरुप्पविकारम्" में इस प्रकार मिलता है "विष्णुमाग पर समन करने वाले नील वर्ण युक्त तिरुमास स्वर्ण-वर्णित करने वाले नील मेघों के समान हैं।"^३ इस रचना में तिरुवेकट के मन्दिर में विराजमान अर्चावतार तिरुमास का वर्णन इस प्रकार मिलता है "इस मन्दिर के तिरुमास के कर-वसन अथ उत्पन्न करने वाले पत्र तथा ध्वज रम्य संज्ञ को धारण किये हुए हैं।"^४

"परिपावस" में तिरुमासिदियोसै के मन्दिर में विराजमान कपस-वसन-साधन और वाम-बागु-देहधारी उस तिरुमास के अर्चावतार-रूप का वर्णन मिलता है जो मानव-मांस के दुःखा का हरण करता है।^५ "वेरम्पाण्डुरवर्षे" नामक रचना में कांचीपुरम् के समीप तिरुवहा नामक स्नात में स्थित तिरुमाल-मन्दिर का उल्लेख मिलता है।^६ ऐसा ज्ञात होता है कि संघकाल में बसराम और नन्दिनी सहित "कन्नन" के विग्रह की पूजा होती थी। इस प्रकार के मन्दिर पुकार और मधुरै में थे।^७ उनको "वेरुत्तनगर कोट्टम" कहते थे। "परिपावस" की पन्द्रहवीं कविता से ज्ञात होता है कि बसराम सहित "कन्नन" की मूर्तियाँ सेवित थीं। "कन्नन" और बसराम को एक साथ मानने की परिपाणी में बाघ में परिवर्तन आ गया और केवल कन्नन की मूर्तियाँ सेवित होने लगीं।

१ Origin of South Indian Temple '—Dr Venkataraninmaya.

२ श्रद्धाधार भाष्य में इन विभिन्न तिरुमाल-मन्दिरों में विराजमान "तिरुमास" के 'अर्चावतार' रूपों का वर्णन अपने काव्य में किया है।

३ तिरुप्पविकारम् २ १७ ४०।

४ वही २ ११ ४७।

५ परिपावस, १२।

६ वेरम्पाण्डुरवर्षे ३७ ३७४।

७ तिरुप्पविकारम्, ५, १७१ १७२।

संस्कृत के उत्तराख्य (संशुद्ध-काल में भी) में तमिळ प्रदेश के मन्दिरों में संस्कृत भागों द्वारा निर्धारित विधियों के अनुसार उपासना होने लगी थी। 'विष्णु विकारम्' और 'परिपाठम्' से ज्ञात होता है कि उन मन्दिरों में पांचरात्र और वैष्णव भागों की विधियों के अनुसार पूजादि होती थी। तिरुमाळ-मन्दिर के प्रांगण में लड़े स्तम्भ में यदुवर्धन स्वयं शोभित था। 'मणिमेलन' में एक स्थान में "कडलवन्न पुराणम्" का उल्लेख मिलता है। इससे अनुमान हो सकता है कि 'कडलवन्न पुराणम्' का उल्लेख 'विष्णु-पुराण' के लिए ही हुआ है और 'विष्णु पुराण' उस समय विद्यमान था। 'परिपाठम्' में विभिन्न स्थलों में स्थित तिरुमाळ मन्दिर तथा उनमें वर्तमान तिरुमाळ के अव्यवहार स्वयं का वर्णन मिलता है। इनमें तिरुमाळ के किसी न किसी अवतार की कल्पना अवश्य थी।

उपयुक्त विवेचन का सारांश यह है कि यद्यपि आरम्भ में तमिळ-भूमि में मायोन या तिरुमाळ की कल्पना मुस्लिम प्रदेश के अधिकारता के रूप में पृथक् से भी तो भी संस्कृत-काल में उत्तर से आने वाली वैदिक-भक्ति-परम्परा से प्रभावित होकर, तिरुमाळ-धर्म तमिळ-प्रदेश में बहुत अधिक प्रचार को पाने लगा। तिरुमाळ के अनेकानेक मन्दिर उस काल में तमिळ-प्रदेश के नाना भाषों में निर्मित थे जिनमें तिरुमाळ की उपासना होती थी। संस्कृत-साहित्य इसके प्रमाण प्रस्तुत करता है कि तिरुमाळ से सम्बन्धित तमिळ-लोक-भाषा से उत्पन्न कवाई वैदिक-परम्परा-प्रसूत विष्णु के विभिन्न अवतारों की कथाओं से मिलकर जनता को आकर्षित करने लगी थी। इस प्रकार संस्कृत-काल में तिरुमाळ-धर्म (विष्णु धर्म) तमिळ-प्रदेश में एक प्रधान धर्म हो गया था।

गोपालकृष्ण और राधा के विकास में तमिळ की भूमिका

महामारत में कृष्ण एक उज्ज्वल-काटि के राजनीतिज्ञ क्षत्रिय बौद्ध के रूप में वर्णित हैं। वे पाण्डवों का समीप-सन्धेय से आने वाले छात्र-वृत्त हैं। उनके ज्ञान विज्ञान और प्रखर बुद्धि की प्रशंसा से समस्त क्षेत्र आशीर्षित हैं। महामारत में श्रीकृष्ण के शौर्य-वीर्य का पूर्ण दिग्दर्शन है। महामारत की समाप्ति पर वे क्रुद्ध निरोधक के रूप में राजभूय यज्ञ में लगे दिखाई पड़ते हैं। अन्त में हमारे सामने उनका बहु लम्ब ही आता है जो एक दूरदर्शितापूर्ण विचारक का भाव आता है। उनकी महत्ता के दो कारण बताये गये हैं (१) यमा पर्व में कहा गया है कि वे अपने प्रखर ज्ञान और श्रेष्ठतम वल के कारण ही अनन्य औरव के पात्र हैं (२) वीरा में कर्मयोग की प्रशंसा की स्थापना करने वाले एक कर्मनिष्ठ व्यक्ति और उपदेशक के रूप में ही कृष्ण वीर्य पड़ते हैं।

पहले हम बता चुके (वैदिक-भक्ति-परम्परा का परिचय देते समय) हैं कि जब सात्वता में बामुदेव की पूजा प्रचल हो गयी तो महामारत के युग में बामुदेव और नागयण की एक ही सम्पदा आने लगा। वहाँ तक आकर बामुदेव कृष्ण विष्णु और

गोपमण एक हो चुके थे। पर उस समय तक गोपसङ्घ का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं था। इस प्रकार के किसी देवता का नाम न तो महामारुत के नारायणीगोपास्वान में आता है और न पार्श्वमहाभाष्य में।

परन्तु श्रीमद्भागवत जैसे बात के ग्रन्थों में कृष्ण का जो रूप विशेष रूप से मिलता है वह गोपास कृष्ण का है। परवर्ती साहित्य में मिलने वाला बाण-कृष्ण-रूप महाभाग के कृष्णोक्ति और गीता के उपदेशक कृष्ण के रूप से विस्तृत मिल है। श्रीमद्भागवत के आधार पर परवर्ती साहित्य-ग्रन्थों में कृष्ण का रूप प्रेमामलित के आसम्भन के रूप में एवं गोप-गोपियों के सर्वत्र राधा-वत्सल नटनागर एवं गोपास कृष्ण ही अधिक प्रादुर्भूत हुए। आश्चर्य की बात है कि महामारुत के उपदेशक कृष्ण श्रीमद्भागवत में गोपास कृष्ण के रूप में मिलने मिल जाने पड़ते हैं ?

डा० भास्कारकर का कहना है कि ईसा के पूर्व की पहली सताब्दी तक के किसी भी भागवत धर्म सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रन्थ में गोपास कृष्ण की चर्चा नहीं है और न उनका कोई परिचय ही उपलब्ध होता है। इसके विरुद्ध ईसा के अनन्तर आने वाली सताब्दियों की ऐसी सामग्रियाँ गोपास कृष्ण की अनेक कथाओं से भरी पड़ी हैं जिससे अनुमान दिया जा सकता है कि उक्त दोनों समयों के बीच में कोई न कोई नवीन बात अवश्य हुई होगी।

ईसा के पूर्व के किसी संस्कृत-ग्रन्थ में गोपास कृष्ण का वर्णन न मिलना और ईसा के पश्चात् के ग्रन्थों में गोपास कृष्ण की कथाओं का विस्तार से विवरण प्राप्त होना विद्वानों के बीच अनेक भ्रान्तियों एवं कल्पनाओं को जन्म देता आया है। पश्चात्तय विद्वान् को हर चीज का सम्बन्ध योरुप से मानने वाले हैं, बासकृष्ण की कथा सम्बन्धी कथाओं को ईसा मसीह की जीवन-कथा से प्रभावित मान बैठे हैं। डा० ग्रियर्सन ने लिखा है कि ईसा की दूसरी सताब्दी में ईसाइयों का एक इस सीरिया से आकर मद्रास के बजिण भाग में आबाद हो गया था। इन ईसाइयों की भक्ति मानना का पूरा-पूरा प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा और फ्राइस्ट से क्रिस्तो और फिर कृष्ण उनका उपास्य बन गया। ब्रह्मणों की वास्तविक प्रसाद पुतना-स्तम्भ पान भाषि को ग्रियर्सन महोदय ईसाइयत की देन बताते हैं। उनका कहना है कि पुतना बाइबिल की 'बर्जिन' है। प्रसाद सबफीस्ट है—इत्यादि। इस प्रकार वे ईसा के पश्चात् बासकृष्ण को कथाओं का जन्म दिखाने का प्रयत्न करते हैं।^१ 'बैबर' और 'केनडी' का भी कथन है कि बासकृष्ण की कथा ईसा मसीह की कथा का भारतीय रूप है।

१ 'जे० चार० ए० एस०' (१९०७ ई०) में 'हिन्दुओं पर नेटोरेयन ईसाइयों का प्रभाव' शीर्षक लेख।

२ 'इण्डियन एथ्नोक्लेरी' (ग्रन्थ १-४) में 'कृष्ण जन्माष्टमी' वाला लेख।

३ 'जे० चार० ए० एस०' (१९०७ ई०) में 'कृष्ण ईसाइयत और मूबर' लेख।

कुछ भारतीय विद्वान् 'गोपाल कृष्ण' के रूप का अस्तित्व प्रारम्भ से सिद्ध करने के लक्ष्य से केवल 'गोपाल' शब्द का आधार लेकर गोपाल कृष्ण को प्राचीन ग्रन्थों में ढूँढ़ते हैं और यह बताने की चेष्टा करते हैं कि गोपाल कृष्ण का रूप पहले से ही बीच रूप में विद्यमान था। वे कृष्ण के 'गोविन्द' नाम का सम्बन्ध 'गोपाल कृष्ण' से जोड़ते हैं। 'गोविन्द' एक पुराना नाम है और उसका उल्लेख धीमदमाग्वत और महाभारत—दोनों में हुआ है। परन्तु महाभारत में गोविन्द शब्द का सम्बन्ध 'गोपाल कृष्ण' से नहीं लगाया गया है। आदि पर्व में गोविन्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि ममवान् का नाम गोविन्द इसलिए है कि उन्होंने पाराह्वरार में 'मो अर्वात् पृथ्वी की रसा की थी। शान्ति-यर्ग में भी इसी प्रकार की व्याख्या की गई है। डा० माध्वारकर ने गोविन्द की उत्पत्ति गोविन्द से बताई है, जो ऋग्वेद में इन्द्र के विशेषरूप के रूप में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में हमें ऐसे धर्म^१ अवश्य मिलते हैं जिनमें गो वृष्णि राधा, ब्रह्म गोप रोहिणी और बर्द्धन आदि नाम आये हैं। परन्तु गोपाल कृष्ण से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है।^२

बालकृष्ण के आदिमार्ग के विषय में माध्वारकर आदि कुछ विद्वानों का मत है कि बालकृष्ण की कथा सीरिया से चलकर आयी हुई कुम्भकर्ण आमीर जाति के बाल-देवता की कथा है। आमीरों के बाल-देवता श्रीकृष्ण की कथा का सबसे पुराना उल्लेख हरिबंस पुराण में पाया जाता है। माध्वारकर ने इस ग्रन्थ का कास तीसरी सताब्दी के अनन्तर माना है; क्योंकि उसमें 'डीनार शब्द (डिटिम Denarius) का उल्लेख है।^३ माध्वारकर के अनुसार आमीर ही सम्भवतः बाल-देवता की जन्म-कथा और पूजा अपने साथ ले आये। कुछ कथाएँ तो उनके द्वारा लायी गयी थीं और कुछ उनके भारत आने के बाद विसृष्ट हुईं। माध्वारकर आगे लिखते हैं कि यह सम्भव है कि वे अपने साथ क्राइस्ट नाम भी ले आये हों और सम्भवतः यही नाम वाधुदेव-कृष्ण के साथ भारतवर्ष में बाल-देवता के एकीकरण का कारण हुआ हो।

महाभारत के 'भीमस पर्व' अध्याय ७ में आमीरों के सम्बन्ध में एक कथा आती है जिसके अनुसार बभ्रु न वृष्णि बंस के समाप्त हो जाने पर उस बंस की स्त्रियों को ब्रह्म द्वारा वे कुक्षेत्र में धा रहे वे तो आमीरों ने उनके ऊपर आक्रमण कर

१ (ब) ता वां वास्तुपुष्पसि धर्म्यः । यत्र पावो धुरिण्डुक्का मयात् ।

अथाह तदुक्तापत्य कृष्णः परमं पद्मममासि धुरि ॥—ऋग्वेद १।१३।१६

(ब) वास्तपत्नी अहिगोपा अतिष्ठत् ।—ऋग्वेद १।१२।११

(घ) तमेतदाचार यः कृत्स्नानु रोहिणीषु ।—ऋग्वेद ८।६३।१३

२ धूर और उनका साहित्य—डा० हरबंस मास सर्मा पृ० १२३

३ Vaishnavism, Saivism and other Minor Religious Sects.

दिया। आमीर कुतुबे और म्लेच्छ बताये गये हैं जो पंचनख देस में रहते थे। विष्णु पुराण में आमीरों को कोकण और सीरापट्ट के निवासी बताया गया है। पहले तो आमीर जरबाहे से फिर से पंजाब से मजुरा सीरापट्ट और काठियावाड़ तक फैल गये। इनके अतिरिक्त कुछ कम विद्वान् अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों के द्वारा जब यह सिद्ध कर चुके हैं कि आमीर जाति वहीं बाहर से नहीं आयी थी और ईसा के पूर्व भी वह जाति भारतवर्ष में विद्यमान थी। गोपास कृष्ण तथा बालकृष्ण बासी कर्माओं का समावेश बामुदेव के साथ इन आमीरों द्वारा किया गया।

परन्तु प्रस्तुत लेखक को गोपास कृष्ण की कथाओं की उत्पत्ति के विषय में बस्तुस्थिति ऊपर दिये गये विद्वानों के विभिन्न अनुमानों से भिन्न मान्य पड़ती है। तमिळ साहित्य के सबपूर्व काल की रचना ठोसकार्पियम (ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी) और संक्ष-काल की रचनाओं में (ईसा की दूसरी शताब्दी तक) तमिळ-प्रवेश के पाँच भिन्न मूल भागों और उनके अधिदेवताओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। मुस्सी प्रदेश (बन-भूमि) में गोधारन के व्यवसाय में संलग्न 'आयर' कहलाने वाले प्लाता लोग रहते थे और उनके देवता 'मायोन' थे। संक्ष-साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि ये 'मायोन' 'आयर' लोगों के बाल-देवता थे। उस समय इस बाल-देवता से सम्बन्धित अनेकानेक कथाएँ जनता के बीच में प्रचलित थीं जिनका वर्णन संक्ष-साहित्य में मिलता है। यह भी ज्ञात होता है कि उस समय 'आयर' कहलाने वाले लोग अपने बाल-देवता की सीमा बासी कर्माओं या अमितय नाटकादि में करते थे। 'आयर' लोगों के बीच में ऐसे अनेक मुखों की परिपाटी थी, जो उनके अनुसार उनके बाल-देवताओं से अपने बाल्य-जीवन में किये थे।

हम ऊपर यह आये हैं कि ईसा से कुछ शताब्दी पूर्व ही भायों का बलिण में वर्षा प्राचीन तमिळ-प्रदेश में आपमन हुआ। महामारन द्वारा प्रचारित भामवत बर्म का भी बलिण की ओर गमन हुआ। नासिक में प्राप्त 'जानापाट' के खिलाने से स्पष्ट है कि ईसा से पूर्व ही भागवत बर्म बलिण में पहुँचा। कृष्ण जिले के 'बाइना' नामक खिलाने से भी यही प्रष्ट होता है।^१ अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि ईसा के पूर्व तथा ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में तमिळ-प्रदेश में वैदिक संस्कृति से भिन्न एव तमिळ-संस्कृति विद्यमान थी और उनका समाज काफी सम्य था। ईसा-पूर्व की शताब्दियों में उत्तर से आने वाले बासी वैदिक संस्कृति और तमिळ-प्रदेश की द्राविड संस्कृतियों में मिलन हुआ। उत्तर से आने वाले अपने साथ वेद उपनिषद्, रामायण महाभारत और गीता के विचारों को लैते आये। (स्मरण रहे कि उनके बामुदेव-कृष्ण में बालकृष्ण का रूप नहीं था।) यह जाग्य बात है कि जब दो संस्कृतियों में मिलन होता है तब बहुत-सी बातों में सम्मेलन और आदान-प्रदान होना

स्वामाधिक है। परिणामस्वरूप तमिळ-प्रदेश के (वैदिक परम्परा से मिला) देवताओं और अनेक वैदिक देवताओं में एकीकरण हो गया। तमिळ-प्रदेश के मायोन मुक्कन कोट्टवै, विवन आदि देवताओं को वैदिक देवताओं से मिला लिया गया। मुक्कन-प्रदेश के देवता 'मायोन' (बी बाल-देवता के) का वैदिक देवता विष्णु से बहुत कुछ साम्य था। इसलिये मायोन और विष्णु-कृष्ण का एकीकरण समत और स्वामाधिक था। यहाँ पर स्पष्ट कह देना आवश्यक है कि उत्तर से जाने वाले लोगों के देवता महामारत और गीता के बामुदेव-कृष्ण का ही जिसमें गोपास-कृष्ण का अंश नहीं था तमिळ-प्रदेश के 'मायोन' (बाल-देवता) से हुआ। दूसरे छप्पों में तमिळ-प्रदेश के 'मायर' कहलाने वाले ग्वाला लोगों के दृष्टिदेवता 'मायोन' का एकीकरण 'महामारत' के कृष्ण से हुआ क्योंकि दोनों में अनेक बातों में साम्य था।

यह कहा जा चुका है कि मुक्कन-प्रदेश में 'मायर' लोगों के बीच 'मायोन' के वास्तव-जीवन से सम्बन्धित अनेक कथाएँ प्रचलित थीं। महामारत के कृष्ण का 'मायर' लोगों के बाल-देवता से एकीकरण होने पर 'मायोन' की बाल-नीला सम्बन्धी बहुत सी कथाएँ महामारत के कृष्ण की कथाओं से मिल गयीं और उसी प्रकार महाभारत के कृष्ण की कथाएँ 'मायोन' की कथाओं से मिल गयीं।^१ इस घटना के परचात् की तमिळ-रचनाओं में 'मायोन' के विषय में महामारत आदि की कथाओं का प्रचुर मात्रा में प्राप्त होना भी उक्त स्थिति को पुष्ट करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों संस्कृतियों के मिलन के बाद ही वर्तमान कृष्ण के रूप की स्थापना हुई। ऐसा लगता है कि वर्तमान कृष्ण के जीवन का उत्तरार्ध महामारत के कृष्ण का है और पूर्वार्ध बहुत अंश में तमिळ के देवता 'मायोन' का है।^२ दोनों संस्कृतियों के सम्मिलन के फलस्वरूप दोनों के देवताओं में होने वाले एकीकरण से तमिळ के 'मायोन' में महामारत के बामुदेव कृष्ण का अंश या मिला और महामारत के कृष्ण के साथ 'मायोन' का बाल-रूप जुड़ गया। तमिळ-साहित्य में 'मायोन' के स्थान पर इस के परचात् की कृतियों में 'कम्मन' शब्द का प्रयोग होना भी इसी स्थिति को पुष्ट करता

१ प्रसिद्ध तमिळ विद्वान् एम० राघव अय्यंगर का मत है कि प्रायः तमिळ-प्रदेश में प्रचलित महामारत और भागवत की कथाएँ स्पष्ट रूप से बहुत बाद की हैं। तमिळ-भूमि में उत्पन्न कल्लन-कथाएँ जिनका विवरण प्रचीन तमिळ-साहित्य में मिलता है, तमिळ-प्रदेश में प्रायः प्रचलित महामारत और भागवत की कृष्ण-कथाओं की अपेक्षा अधिक प्राचीन हैं—“भारति तोडुति”।

—एम० राघव अय्यंगर, पृ० ५२।

२ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का भी कथन है कि “यह बात सर्वसम्मति है कि कृष्ण का वर्तमान रूप बाल, अविक्रम आर्य-प्रभार्य भारतीयों के मिश्रण से बना है।”

—दूर साहित्य : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ११ सं० १९२६।

है। प्रस्तुत लेखक का विचार है कि 'कन्न' शब्द तमिळ में 'कण्ण' (कन्धैया) से आया होगा। कण्ण का रंग श्याम वर्ण बताया गया है। तमिळ का 'मायोन' शब्द काले लकड़ा नीले रंग को सूचित करता है।^१ शायं लोग तमिळों (द्रविड़ों) को काले रंग वाले कहते थे। अतः तमिळों के देवता 'मायोन' के रंग को कण्ण द्वारा अपनाना भी कण्ण-मायोन के एकीकरण को पुष्ट करता है।^२

लेखक की समझ में बिडानों ने 'मायीर' जाति का जो उल्लेख किया है, वास्तव में वह तमिळ प्रदेश की 'मायर' जाति थी। 'मायर' स्वामे होते थे। पुराणों में उन्हीं को 'मायीर' कहा गया है। आज 'महीर' शब्द 'मायीर' शब्द के ही बिगड़े हुए रूप में मिलता है। 'महीर' शब्द स्वामों के लिए ही प्रयुक्त होता है। कीरूहल का विषय है कि 'मायर' शब्द आज भी स्वामों के लिए ही प्रयुक्त होता है। तमिळ में 'मा' का अर्थ है 'पाय'। यह साम्य भी ध्यान देने योग्य है।

कण्ण के वास-जीवन से सम्बन्धित अनेकानेक कथाका की जन्म-भूमि तमिळ प्रदेश है। कण्ण की वास-सीमाओं से सम्बन्ध रखने वाली अनेक कथाएँ जो ईसा के अनन्तर क संस्कृत ग्रन्थों में मिलती हैं व पहले से ही तमिळ प्रदेश में प्रचलित थीं वही हैं वे कुछ निम्न रूप में हैं। ऐसी कथाएँ भी कण्ण के सम्बन्ध में आज भी तमिळ-प्रदेश में प्रचलित हैं जो संस्कृत-साहित्य में कहीं भी देखने को नहीं मिलती।
(उनका विवरण आगे दिया जायगा।)

राधा का विकास

संस्कृत साहित्य में गोपाम कण्ण की प्रधान प्रेमसी राधा का वर्णन बहुत बाद में मिलता है। महाभारत हरिबंध पुराण, ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण आदि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में राधा का उल्लेख नहीं है। भास के नाटकों में जहाँ कण्ण की चर्चा है, वहाँ राधा का नाम नहीं आता। सभी प्राचीन ग्रन्थों में कण्ण की प्रेम सीताओं का वर्णन है गोपियों का वर्णन है परन्तु राधा का कहीं उल्लेख नहीं है। सबसे पहले

१ यह भी दृष्टव्य है —

डा० मुनीति कुमार चटर्जी का विचार है कि धारों के सूर्यदासक देवता विष्णु, भारत में शारद द्रविड़ों के एक आकाश-देव से मिल गये जिसका रंग द्रविड़ों के अनुसार आकाश के ही सदृश नीला प्रयथा श्याम था। तमिळ भाषा में आकाश को 'विन्' भी कहते हैं जिसका 'विष्णु' शब्द से निकट सम्बन्ध हो सकता है।^३

—संस्कृत के चार अध्याय श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' पृ० ६०

२. धारों ने द्रविड़ों से ही कण्ण (कन्नन) सम्बन्धी कथाओं का परिचय प्राप्त किया होगा।"

—Dr S Vidhyanandan "Tamilar Sabbu" p. 128 (Ceylon University 1954)

हाम की 'पाहा सतसई' में राधा का उल्लेख मिलता है। हाल (छातवाहन) ईशा की प्रथम सताम्बी में प्रतिष्ठानपुर में राज्य करता था और उसने अपने समय में सामान्य लोक में प्रचलित प्राकृत गाथाओं का संकलन करवाया था। ये गाथाएँ गोप-गोपियों की प्रेम-सीसाभा पर लिखी गई थीं। परन्तु अनेक विद्वानों का मत है कि गाथाओं का वर्तमान रूप छठी सताम्बी का है, और राधा का नाम इसमें छठी सताम्बी में आया। वैसे चौथी सताम्बी और उसके पश्चात् कुछ घिसानेवालों में कृष्णसीता के अंकन मिलते हैं, जिनमें एक विशेष गोपी को कृष्ण के साथ उकीर्ण किया गया है। मन्वत्तर के प्रसिद्ध स्तम्भों में भी यह अंकन मिलता है। डा० सुनीलकुमार चटर्जी का अनुमान है कि पाँचवी सताम्बी के समयग राधा का स्वरूप निर्धारित हो गया था और कृष्ण सीता में राधा को पूरा महत्त्व दिया जाने लगा था। ८ वीं सती में बैणी संहार नाटक (मट्ट नामक कृत) लिखा गया। उसमें प्रारम्भ में नान्दी पाठ में राधा का प्रथम बार कृष्ण की प्रियतमा के रूप में लिखित रूप से उल्लेख मिलता है।

भागवत पुराण में कृष्ण की एक विशिष्ट गोपी की चर्चा है।^१ किन्तु उस गोपी का नाम राधा है इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं। ऐसा मामूम पड़ता है कि किसी एक विशेष गोपी का महत्त्व बढ़ रहा था लेकिन उसका नाम राधा बाद में पड़ा। परवर्ती संस्कृत-साहित्य में तो राधा का प्रचुर उल्लेख है। और उसके बाद तो जयदेव और जयदेव के बाद बिद्यापति कबीरास और सुरदास का काव्य राधापरक है ही।

राधा के आदिमार्ग के विषय में डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं— जिस प्रकार बामुदेव और द्वारकावासी कृष्ण एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व से उठकर परम-देवता के आसन पर पहुँचे हैं, राधा में इस प्रकार के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का कोई लक्षण नहीं पाया जाता। गोपियों में तो यह है ही नहीं फिर मजे की बात यह है भागवत हरिवंश पुराण और विष्णु पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थ जो गोपास-कृष्ण की कथाओं के उस हैं उनमें भी राधा का नामोल्लेख नहीं पाया जाता। यह भी देखा जाता है कि राधा की मति का गया स्वरूप बरिष्ठ से आता है। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर दो तरह के अनुमान किये जा सकते हैं—(१) राधा आभीर जाति की प्रेम-देवी रही होगी जिसका सम्बन्ध बाल-कृष्ण से रहा होगा। प्रारम्भ में केवल बालकृष्ण का बामुदेव कृष्ण से एकीकरण हुआ होगा। इसलिये आर्य धर्मों में राधा का नामोल्लेख नहीं है। पीछे से जब बालकृष्ण की प्रधानता हो गई होगी तो इस बालकृष्ण की सारी बातें बहोरो से भी गई होगी। इस प्रकार राधा की प्रधानता हो गई होगी। (२) दूसरा अनुमान यह किया जा सकता है कि राधा इसी देश की किसी आर्य-पूर्व जाति की प्रेम-देवी रही होगी। बाद में आर्यों में

१ धनपाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।

धनोबिहाय गोविन्दे प्रीतोऽप्यमनयद्गृह् ॥ १० १० २८।

इनकी प्रधानता हो गई होगी और कृष्ण के साथ इनका सम्बन्ध बड़ दिमा पया होगा ।^१

प्राचीन तमिल साहित्य में उपसम्ब 'मायोम' अथवा 'कन्नम्' (कृष्ण) से सम्बन्धित कथाओं की देखने से पता चलेगा कि डा० साहू का उपर्युक्त अनुमान सत्य की कोटि में आता है । तमिल में 'मायोम' से सम्बन्धित कथाओं में 'कन्नम्' (कृष्ण) के साथ उसकी प्रधान प्रेमिका 'नयिम्मी' का भी बड़ा बर्णन मिलता है ब्रैसा बाव क संस्कृत-साहित्य में कृष्ण और राधा का । तमिल में जहाँ कहीं भी 'कन्नम्' का बर्णन मिलता है, वहाँ अवश्य नयिम्मी का उल्लेख मिलता है । उनकी प्रेम-जीसामों की कथाएँ प्रारम्भ से ही जमता के बीच में प्रचलित थीं । जब दो संस्कृतियों में (बैदिक और तमिल) सम्मिलन हुआ और 'मायोम' की बास-जीसामों ने वासुदेव-कृष्ण ने साथ मिलने पर नोपाल कृष्ण का रूप स्थिर हुआ तब 'मायोम' की प्रेमिका नयिम्मी और उस दोनों की प्रेम-झीझामों का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक स्त्री की कल्पना हुई होगी और उसका नाम बाद में 'राधा' पड़ा होगा । कृष्ण और राधा की जो प्रेम जीसामों की कथाएँ बाद के संस्कृत ग्रन्थों में मिलती हैं, वही कन्नम् और 'नयिम्मी' की कथाओं के रूप में प्राचीन तमिल साहित्य में और बाद में आळवार-साहित्य में मिलती हैं । केवल व्यक्तियों ने नाम में अन्तर है । व्यक्तित्व बहुत कुछ समान है । कुछ लोग 'राधा' शब्द को लेकर राधा का अस्तित्व वेद तक में खूँटने हैं और बनेक कल्पनाएँ कर बैठे हैं ।^२ नाम से व्यक्तित्व का विकास ही अधिक महत्त्वपूर्ण है । जहाँ तक 'राधा' के व्यक्तित्व से सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि राधा के विज्ञात में तमिल के 'मायोम' 'अथवा 'कन्नम्' की प्रियतमा 'नयिम्मी' का सम्बन्ध अवश्य था । यहाँ यह प्रश्न उठता जा सकता है कि चूँकि तमिल में 'राधा' शब्द नहीं मिलता इसलिए राधा का सम्बन्ध 'नयिम्मी' से कैसे बैठ सकता है ? इसके उत्तर में यह कहना पर्याप्त है कि जिस प्रकार तमिल में कृष्ण के लिए अन्य शब्द मात्र

१ मूर साहित्य (संशोधित संस्करण) — डा० हुजारी प्रसाद त्रिवेदी पृ० १६१-१७

२ कुछ लोगों की धारणा है कि 'धारयिता' शब्द से राधा की उत्पत्ति हुई । जो धारयिता करती है, वही राधा है । बृहद् संहिता में 'राधा' शब्द की उत्पत्ति इसी प्रकार की गयी है (बृहद् संहिता, द्वितीय पत्र, अ० ४१ श्लोक, पृ० १०४) । ऋग्वेद में 'राधा' शब्द धन की सुचित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है (ऋग्वेद १।१४६।१२) । अथर्ववेद (३०।१७) में जहाँ 'राधो विद्याय' आता है वहाँ 'राधा' शब्द अमरकोष के अनुसार नक्षत्र को सुचित करता है ।

व्यक्ति के नाम के रूप में 'राधा' शब्द का प्रयोग बाद में ही मिलता है । सोयवेद वृत्त परमस्मृतिकर' (७, २६) की धनकीर्ति बासी कथा में 'राधा' नाम से एक स्त्री आती है । ९ वीं शताब्दी के पूर्व की प्रसिद्ध महायान-पुस्तक 'तस्मिन् विस्तार' में 'राधा' नाम से एक स्त्री का उल्लेख है ।

भी प्रचलित हैं, उसी प्रकार उस समय 'नप्पिन्नी' शब्द वाच की 'राधा के लिए प्रयुक्त था ।^१ 'सिलप्पविकारम्' (ईसा का दूसरी शताब्दी) में उल्लेख मिलता है कि कन्नन-भक्तियों में कन्नन और नप्पिन्नी की युग्म मूर्ति विद्यमान रहती थी ।^२

सभी विद्वान् यह मानते हैं कि आज राधा और गोपास कृष्ण के स्मृतिस्वरूप का वा स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, उसके विकास में पुराणों का बड़ा हाथ है । राधा और कृष्ण की कथाएँ पुराणों में ही अधिक बखिण हैं । 'पुराण' शब्द का अर्थ है 'पुराण' । इसलिये पुराण-ग्रन्थों से मतलब उन ग्रन्थों से है जिनमें प्राचीन आख्यायिकाएँ संकलीत हों ।^३ जो बातें और कथाएँ लोक में बहुत प्रचलित और प्रसारित होती हैं वे ही पुराणों में रचयिता की रूपरता का भी सहाय लेकर स्थान पाती हैं । तत्कालीन लोक में प्रसिद्ध कर्तव्यों और प्रथाओं का वर्णन पुराणों में हुआ है । वे पुराण विभिन्न कालों की रचनाएँ हैं । पुराणों की लोक-संस्था में उत्तरोत्तर वृद्धि इसलिये होती गई है । इनका संकलन भी विभिन्न कालों में हुआ । जो लोक-विवरण और लोक-कथाएँ और परम्पराएँ बहुत प्रचार को पाती हैं, उनको पुराणों में समय-समय पर स्थान अवश्य मिला है । 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में यहाँ तक कहा गया है कि जनता में जो रीति रिवाज है, उसको देव-नाम्य से भी अधिक मान्यता देनी चाहिए ।^४ अठ जैनेक पुराणों में मिलने वाली कथाओं का सोल लोक-कथाओं में ही देखने को मिलता है, जो स्वयं हिंदी में किसी प्रथा बनना कई पर आधारित होता है ।^५

अपलक्ष्य पुराणों में एक-बा को छोड़कर बहुत से पुराणों की रचना ईसा के पश्चात् हुई है । ब्रह्मवैवर्त पुराण को तो कुछ विद्वान् सोलहवीं शती की रचना मानते हैं, जिसमें राधाकृष्ण की केसि-क्रीड़ाओं तथा शृङ्गारिक भेद्युक्तों का वर्णन है । इन पुराणों में बखिण कथाओं को देखने से ऐसा लगता है कि बहुत से पुराणों की रचना बखिण में हुई है, और बखिण में विशेषकर तमिळ-प्रवेश की प्रथाओं लोक-कथाओं

1 "We venture to conjecture that Nappinnal is the Tamil name of Radha"—V R. R. Dikshitar "Krishna in Early Tamil Literature" in "Indian Culture" Vol. IV (1937-38) p. 269

२ सिलप्पविकारम् २. १७१-१७२

३ हिन्दी साहित्य की भूमिका (सं० छटा)—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १८१ ।

४ तथा पि ब्रह्मप्रसन्नं सांप्रत समबोधितम् ।

लोकिको व्यवहारोऽपि देवेभ्यो बलवत्तया ॥

—ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण-वल्गु खण्ड १. २. १४२

5 "The Brahma Valvarta Purana reads more like a treatise on erotics than a religious scripture and it frequently refers to the authority of popular customs as of greater validity than Vedas."—Vishnuite Myths and Legends Dr Banikanta Kakati (Gauhati University), p 77

भक्ति का परिवर्तित चित्र इनमें मिल जाता है। योगान कृष्ण और राधा की सीताओं से सम्बन्धित जो कथाएँ इनमें हैं, उनका स्रोत ई० पू० मयवा ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में तमिल समाज में प्रचलित कथाओं से सीधे पड़ता है जिसके प्रमाण उस समय के तमिल-साहित्य में मिलते हैं। कन्नन' और नय्यिर्न (कृष्ण और राधा) से सम्बन्धित ऐसी कथाएँ भी आज तमिल-प्रदेश में प्रचलित हैं जो पुराणों में नहीं मिलती। (इनका विवरण आगे दिया जायगा)

राधा-कृष्ण सम्बन्धी कथाओं की जन्म-भूमि बलिय (तमिल प्रदेश) को मानने का एक और प्रमाण यह है कि इन कथाओं का भी समावेश बलिय में उपलब्ध महाभारत के संस्करणों तक में मिल जाता है।^१ श्रीमद्भागवत जिसको विद्वाद् समस्त हिन्दी-कृष्ण-काव्य का आधार-स्तम्भ मानते हैं अनेक विद्वानों के अनुसार ८ ई. की शताब्दी के बाद की रचना है।^२ इसमें बलिय गोपस कृष्ण की कथाएँ तमिल समाज में प्रचलित कन्नन सम्बन्धी कथाओं से बहुत मिलती-जुलती हैं। अनेक विद्वानों का मत है कि श्रीमद्भागवत की रचना बलिय में हुई थी। विद्वानों का मत है कि श्रीमद्भागवत की रचना बलिय के मसाबार-प्रदेश (तमिल नाडू का पश्चिम भाग) में हुई थी, क्योंकि उसमें बलिय वृक्ष पुष्प आदि वृक्षावन में नहीं मिलते बल्कि मसाबार में मिलते हैं।^३ कहने का तात्पर्य यह है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में जो कथाएँ तमिल-भोक में प्रचलित थीं वे ही कथाएँ कुछ परिवर्तन के साथ पुराणों में देखने को मिलती हैं। बाद में वैष्णव-सम्प्रदायों के आचार्यों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुकूल इन पुराणों में घटा-बढ़ी की ओर उनमें बलिय बातों की वृद्ध-वृद्ध व्याख्या की।

प्रस्तुत मिलक गोपाल कृष्ण और राधा के व्यक्तित्व के विकास में तमिल की रीत के आधार के रूप में प्राचीन तमिल साहित्य में मिलने वाले चित्र विवरणों तथा कथाओं को मानने के लिए बाध्य होता है, उनमें प्रमुख कुछ का परिचय नीचे दिया जाता है —

प्राचीन तमिल साहित्य में 'मायोन' (मन्नन) के विषय में इस प्रकार का वर्णन मिलता है— 'मुत्त-प्रदेश के अधिदेवता "मायोन" का रंग स्याम' है।^४ वह आयर कहलाने वाले रत्नों का अधिपति था। उसकी सम्पत्ति मोघन थी। वह

1. The Southern recension of the Mahabharata contains many interpolations. — Dr. R. G. Bhandarkar: *Vaishnavism, Saivism, etc.*, (foot note) p. 50.

2. Among the puranas, the Bhagawata was composed some where in South India about the beginning of the 10th Century "

— Prof. K. A. Nilakanta Sastri *History of South India* (2nd Edition) p. 332.

३ (अ) हिन्दी साहित्य की भूमिका— डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

(आ) मूर और उनका साहित्य— डा० इरवासात शर्मा पृ० १४०।

४ मुत्तपादु १०-११।

वन-भूमि में गामों को बराने जाता था और वह गीत गाया करता था। और कुळस" (बौसुरी) बजाता था। तमिळ की वनभूमि में बांस की कमी नहीं थी वह उससे अच्छी बौसुरियाँ बनायी जाती थीं। वह बौसुरी बजाकर न केवल पशुओं को ही आकर्षित करता था बल्कि म्वातियों को भी। प्रेम-क्रीड़ाओं के लिए वन-भूमि में बहुत सुविधाएँ होती थी। क्योंकि उस प्रदेश के वासी केवल गोचारण करते थे और उनके पास उन क्रीड़ाओं के लिए अबकाश था। 'मामोन' की खी गीत के साथ नृत्यों में भी थी। वह म्वास रमणियों के साथ नृत्य भी करता था।

कन्नन की पत्नियों में 'नप्पिन्नी' का तमिळ-कृतियों में विशेष उल्लेख है। वह कन्नन की प्रधान प्रेमिका थी और 'आयर' कुलोत्पन्ना थी। उसे कुछ कृतियों में 'पिन्नी' अबका नीछा कहा गया है। बाब के घरों में वहाँ कन्नन को बिष्णु का अवतार माना जाता है, वहाँ नप्पिन्नी को सरस्वी का अवतार माना जाता है। कन्नन ने नप्पिन्नी को उत्कृष्टतम तमिळ प्रथा के आधार पर प्राप्त किया था। इस प्रथा के अनुसार पहले कुमारी कन्याएँ अपनी इच्छा से और बुद्धों को पति के रूप में स्वयं चरण करती थीं। इसे 'एरुळुबुल्ल' अबका 'वृष बन्धीकरण' कहते हैं।^१ यह बीरता की परीक्षा के लिए प्रथा थी। एक बैरे के अन्दर कुछ बलवान् सौदों को बन्ध कर दिया जाता था। फिर बाजे बजाकर तथा बूतरे उपायों से उन्हें भड़काया जाता था। फिर सौदों को क्षिप्रता से बाहर आने दिया जाता था। रास्ते में और भुवक रहते थे। उनका काम था अपने बाहुबल से सौदों को बन्ध में लाना। जो इस काम को पूरा कर लेते थे वे बीर समझे जाते थे और उन्हीं के बसे में कुमारिकाँ व्यवसाया आसकर अपने लिए बर चुन लेती थीं। प्राचीन तमिळ कृतियों में और बाब के बाळ्यार-साहित्य में अनेक स्थलों में इस प्रथा का वर्णन है कि बलवान् भुवकों के बस पर भीष्मण (कन्नन) ने सात वृषों को बन्ध में कर कन्या-सुल्क के रूप में माग जाता नप्पिन्नी को प्रिया के रूप में प्राप्त किया था।^२

१ यह प्रथा आज भी तमिळ-प्रदेश के गाँवों में किसी रंग में प्रचलित बतायी जाती है— It seemed in a way a test for a man to be fit husband for a lady. The rearing of bulls and letting them loose with some prize for the captor have become a regular social and popular amusement which persists even to this day in the Tamil Districts.—V R. R. Dikshitar "Indian Culture" Vol. IV pp 270—271.

२ भागवत पुराण में ऐसा ही प्रसंग दिया है कि कोशल देश के राजा नमजिबु ने अपनी कन्या नामजिती का विवाह सात गो-बुधों को बन्ध में करने वाले के साथ निश्चय किया था। कृष्ण ने वीरता ही करके नामजिती के साथ विवाह किया। देखो—तत्पतरयात्रकम् कन्या रेखी नामजितीकम् ।

नताधेकुम्भ वा बोधुनजित्वा तप्तपोषुषाम् ॥

—भागवत पुराण, १०।१८। ३१ ३२

प्राचीन तमिळ-साहित्य में ऐसे अनेक नृत्यों का वर्णन मिलता है जो कन्नन और नप्पिन्नी द्वारा किये गये बताए गए हैं। कन्नन और नप्पिन्नी की मीसावा में उनसे नृत्यों का उल्लेख है। छत्र-साहित्य से माधूम होता है कि ये कर्णाटकासीन समाज में बहुत प्रचलित थी और उनका अभिनय 'नाल-चरित नाटक के रूप में होता था।' 'सिन्धुपिण्डिकारम्' के 'आयचियर कुरवै' प्रसंग में इसी प्रकार के नृत्यों का वर्णन है, जिनका अभिनय 'आयर कुल' में होता था। इन नृत्यों में प्रमुख 'कुरवै कुरु' है। 'सिन्धुपिण्डिकारम्' में 'कुरवै कुरु' के सम्बन्ध में कहा गया है कि सात गी-न्वासिने एक दूसरे का हाथ पकड़ कर नाचती थीं।^१ उनके अनुसार विष्णु-बाबाओं को दूर करने के लिए उनके दृष्ट देवता कन्नन से प्रार्थना करते समय उस नृत्य का करना आवश्यक था। उनके बीच यह प्रसिद्ध था कि कन्नन ने एक बार अपने अग्रज बलराम और प्रेम्पती नप्पिन्नी को लेकर यह नाच गाया था 'मल्लिकेसरी' में भी इस कुरवै कुरु का उल्लेख है।—(मल्लिकेसरी, १६ १३ १६)

कन्नन से सम्बन्धित एक दूसरे नृत्य का नाम 'कुट्ट कुरु' है जिसमें 'आयर-कुल' के नर-नारी भाग लेते थे। यह कन्नन को सिर पर रखकर किया जाने वाला नृत्य है यह नृत्य बहुत प्रचलित था।^२ 'सिन्धुपिण्डिकारम्' में कन्नन द्वारा किये ११ प्रकार के नृत्यों का विवरण मिलता है। कहा गया है कि कुट्टकुरु का नृत्य कन्नन ने अविष्ट को रोक करने के लिए बायासुर का बंधक लौट आते समय सोनगर (सोनिपुर) को मसी में किया था। कन्नन (कुरुण) से सम्बन्धित दो और नृत्य—'मस्तीबाडम' और 'मस्तीबाडम' हैं। 'मल्लिकेसरी' में कन्नन द्वारा किये गये 'पेडु' नामक नृत्य का भी वर्णन है।—(मल्लिकेसरी १ १२१ १२२)

कन्नन का तात्पर्य यह है कि कन्नन से सम्बन्धित तथा कन्नन-नप्पिन्नी (कुरुण-राधा) की प्रेम-मीसाओं से सम्बन्धित कर्णाट प्रचुर मात्रा में प्राचीन तमिळ-कृतियों में मिलती हैं जिनका समावेश बाह्य या आन्तरिक मल्लिकों की रचनाओं में भी हुआ है।

1 'Santamil'—M. Raghava Iyengar., Vol 8 pp. 171 172.

2 इसका साम्य मानवत पुराण (१० ३३) में वर्णित रास-लीला से हो जाता है। हरबंस पुराण (२ १५) में भी रास-लीला का वर्णन है। डा० बनिवाल कावली ने अपने ग्रन्थ 'विष्णुपद मेध एण्ड मेकडम्स' (पृ० ४१ से ५२) में रास-लीला की उत्पत्ति के विषय में कहा है कि अनेक स्थानीय (Local Customs) प्रथाओं का मिलित रूप ही रास-लीला में मिलता है। रास-लीला की उत्पत्ति के लिए सहायक जिन प्रथाओं का डा० कावली ने अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है वे सभी प्रथाएँ प्राचीन तमिळ-समाज में प्रचलित थीं। अतः प्राचीन तमिळ-साहित्य में कन्नन तथा नप्पिन्नी के नृत्य इत्यादि का जो विवरण मिलता है, उनका रासलीला से सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

3 Tamil Literature and History—V. R. R. Dikshitar p. 293

भक्ति-आन्दोलन का उदय और तमिल-प्रदेश की तत्कालीन परिस्थितियाँ

तमिल साहित्य के इतिहास में सामान्यतया छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का काल भक्ति-काल के नाम से प्रसिद्ध है। इसी काल में ही प्रसिद्ध वैष्णव-भक्त कवि आठवार और सप्त-भक्त कवि नामनमार हुए थे। इस काल में तमिल में जिस साहित्य का निर्माण हुआ वह पूर्णतः भक्ति-साहित्य है। ऐसा मानना पड़ता है कि इस युग में भक्ति-विषय को छोड़कर और कोई विषय कवियों के लिए रह ही नहीं गया था। भारत की विभिन्न आधुनिक भाषाओं के साहित्यों के इतिहासों को देखने से पता चलेगा कि तमिल को छोड़कर किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में इसवीं शताब्दी के पूर्व भक्ति-साहित्य का निर्माण नहीं हुआ था। अधिकतर भारतीय भाषाओं में तो पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग ही भक्ति-साहित्य का निर्माण हुआ है। तमिल-साहित्य के विषय में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का साहित्य भक्ति-भावना से परिपूर्ण है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि नवीं शताब्दी में पश्चात् तमिल में भक्ति-साहित्य का सञ्जन ही नहीं हुआ हो। बैसे तो तमिल में भक्ति का पारा आरम्भ से ही बही है और नवीं शताब्दी के उपरान्त भी भक्ति-प्रधान कृतियों का सञ्जन हुआ और यही क्यों आज भी हो रहा है। छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल को भक्ति-काल कहने का अर्थ यही है कि इस काल के साहित्य में भक्ति-भाव को जो प्रमुख स्थान मिला—वह बाद के साहित्य में प्रमुख नहीं रहा बल्कि गौण रहा।

यह तो साम्य बात है कि किसी भी युग का सम्बन्ध उसके पूर्व युग से अवश्य होता है, क्योंकि उस युग की प्रवृत्तियों की मूल प्रेरणा उसके पूर्ववर्ती युग से ही मिलती है। तमिल-प्रदेश में छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल में जो भक्ति-आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष रूप में लौक्य पड़ता है, उसके बावजूद तो छठी शताब्दी के पहिले ही मिल जाते हैं। संक्षेप (ईसा से दो शताब्दों पूर्व से ईसा की दूसरी शताब्दी तक) की कृतियों का परिचय देते समय यह विज्ञाया जा चुका है कि तमिल प्रदेश में बार्मिक-भावना का उदय पहले से ही हो चुका था और विभिन्न वर्ग (विभिन्न श्रेणियों) को लेकर) चल रहा था। तिरुमाल (विष्णु) और शिव की पूजा विशेष रूप से होती थी और अन्य श्रेणियों की पूजा भी होती थी। परन्तु इस साहित्य में जब भी यह देखने को नहीं मिलता कि अपने वर्ग या श्रेणियों को महत्व देने और उच्च प्रचार करने की दृष्टि से कवि ने एक पक्ष को लेकर अपने विचारों को प्रकट किया हो। इस समय का कवि उच्च और व्यापक बार्मिक सहिष्णुता का परिचय देता है, जहाँ वह अपने दल श्रेणी का वर्णन करता है, जहाँ अपने प्रदेश (तमिल-प्रदेश) में अन्य श्रेणियों के विषय में भी कहना नहीं भूलता। इस युग के कवि के लिए काव्य में वर्ण्य विषय तो ही है—प्रम और शौरता। कवि ने जन-मनोरंजनार्थ ही काव्य का सञ्जन किया और उसने कहीं-कहीं प्रसंगवश वर्ण का नाम लिया है। उसकी दृष्टि

धर्म के नाम पर किसी विशेष प्रयोजन के लिए काम की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु ऐसा की सीधरी चौपी और पाँचवीं शताब्दी में बात कुछ दूसरी थी। तमिल-साहित्य के इतिहास में इस काल को सपोत्तर काल कहा जाता है। संघ-काल की समाप्ति दूसरी शताब्दी तक माननी चाहिए। इसके पश्चात् तमिल में जो साहित्य मिलता है, वह प्रायः जैन और बौद्ध मुनियों द्वारा रचित है। मगध इस भक्ति पूर्व-काल को सपोत्तर काल कहा जा सकता है। इस काल में जैन और बौद्धों ने अनेक महाकाव्यों की रचना की। प्रारम्भ में तो उनका उद्देश्य केवल साहित्य-सर्जन ही रहा। परन्तु धीरे धीरे धर्म-प्रचार का उद्देश्य प्रबल होता गया तो उन्होंने धार्मिक प्रचारार्थ ही साहित्य का सर्जन करना शुरू कर दिया। और भक्तिकाल के प्रारम्भ में तो जैन और बौद्ध-धर्मों का अग्रिम मार्ग उनका उद्देश्य रहा।

जैसे तो जैन और बौद्धों का आशय तमिल-प्रदेश में इस काल से पहले ही हो चुका था। ऐसा की पहली या दूसरी शताब्दी में बौद्ध और जैन मठ तमिल-नाडु में फैल चुके थे। जैन-पाठकसियों में प्राप्त इतिवृत्त के अनुसार सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासनकाल में जैन में आपस में फूट हुई और जैनों के दो बस हो गये। एक दस भिन्न विभाग कहा जाता था, के नेता मठवाहु थे। मठवाहु पहल मगध में रहे। लेकिन जब यहाँ १२ वर्ष का अकाल हुआ तो वे मगध को छोड़कर दक्षिण की ओर भागे और आखिर यवणकेतपोता (मैसूर) में आकर रहने लगे।^१ संघ-साहित्य में जैन के तमिल प्रदेश में बस जाने के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रमाण है। मणिमैसली में अनेक विहारों का वर्णन मिलने से पता चलता है कि उससे पूर्व ही बौद्ध-जैन मठों का प्रचार शुरू हो चुका था।

सम्राट् अशोक के समय में दक्षिण में बौद्ध-धर्म का प्रचार विशेष रूप से हुआ। प्रारम्भ में तमिल-प्रदेश में बौद्ध-धर्म का कुछ विरोध हुआ, ऐसा दीख पड़ता है। ईस्वी पूर्व २०९ के बाद अशोक ने अनेक प्रकारों को बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ भुल्लू दक्षिण में भेजा।^२ पहले बौद्ध भिक्षुओं ने तमिल प्रदेश में ठाप्रणाली नदी के किनारे 'कोर्क' नामक स्थान में अपने मठ का प्रचार शुरु से किया। बौद्ध-धर्म का प्रचार तमिल-प्रदेश के इतिहास में विकास-संक्रम (Mile-stone) माना जाना चाहिए।^३ अशोक के विलासों में तमिल के जैन और पाँच राजाओं का सहज मिलता है।^४ उत्तर में उत्थिप्पासी राज्य होने के कारण उसके प्रभाव से दक्षिण में बौद्ध और जैन मठों का प्रचार होने लगा। बौद्धों और जैनों ने अनेक विहारों की स्थापना तमिल प्रदेश में की और अपने सिद्धान्तों का प्रचार साधारण जनता के बीच में शुरू

1 Some Contributions of South India to Indian Culture

—Dr S. Krishnaswamy Iyengar p. 234

2 The Legend of Indian History — Sen p. 1

3 Oxford History of India — A. A. Smith p. 75

4 Tamil Nad through Ages—A. M. Paramasivanandam p. 37

भक्ति-आन्दोलन का उदय और तमिल-प्रदेश की तत्कालीन परिस्थितियाँ

तमिळ साहित्य के इतिहास में सामान्यतया छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का काल भक्ति-काल के नाम से प्रसिद्ध है। इसी काल में ही प्रसिद्ध वैष्णव-भक्त-कवि आठव्वार और चौव भक्त कवि मायनमार हुए थे। इस काल में तमिळ में जिस साहित्य का निर्माण हुआ वह पूर्णतः भक्ति-साहित्य है। ऐसा सामूहिक पक्ष है कि इस युग में भक्ति-विषय को छोड़कर और कोई विषय कवियों के लिए रह ही नहीं गया था। भारत की विभिन्न आधुनिक भाषाओं के साहित्यों के इतिहासों को देखने से पता चलता है कि तमिळ को छोड़कर किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में दसवीं शताब्दी के पूर्व भक्ति-साहित्य का निर्माण नहीं हुआ था। अमिकाश भारतीय भाषाओं में तो पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग ही भक्ति-साहित्य का निर्माण हुआ है। तमिळ-साहित्य के विषय में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का साहित्य भक्ति-भावना से परिपूर्ण है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि नवीं शताब्दी के पश्चात् तमिळ में भक्ति-साहित्य का सञ्चलन ही नहीं हुआ हो। बल्कि तो तमिळ में भक्ति की धारा आरम्भ से ही बहती है और नवीं शताब्दी के उपरान्त भी भक्ति-प्रभाव कृतियों का सञ्चलन हुआ और यही क्यों आज भी हो रहा है। छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल को भक्ति-काल कहने का अर्थ यही है कि इस काल के साहित्य में भक्ति-भाव को जो प्रमुख स्थान मिला—वह बाद के साहित्य में प्रमुख नहीं रहा बल्कि बीछ रहा।

यह तो मान्य बात है कि किसी भी युग का सम्बन्ध उसने पूर्व युग से अवश्य होता है, क्योंकि उस युग की प्रवृत्तियों की मूल प्रेरणा उसके पूर्ववर्ती युग से ही मिलती है। तमिळ-प्रदेश में छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल में जो भक्ति-आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष रूप में शोध पड़ता है उसके बीच तो छठी शताब्दी के पहिले ही मिला जाते हैं। संक्षेप (ईसा से दो शताब्दी पूर्व से ईसा की दूसरी शताब्दी तक) की कृतियों का परिचय देते समय यह विस्तारित या चुका है कि तमिळ-प्रदेश में धार्मिक-भावना का उदय पहले से ही हो चुका था और विभिन्न धर्म (विभिन्न देवताओं को लेकर) फैल रहे थे। तबमाल (विष्णु) और शिव की पूजा विशेष रूप से होती थी और अन्य देवताओं की पूजा भी होती थी। परन्तु इस साहित्य में कहीं भी वह देखने को नहीं मिलता कि अपने धर्म या देवता को महत्व देने और उसका प्रचार करने की दृष्टि से कवि ने एक पक्ष को लेकर अपने विचारों को प्रकट किया हो। इस समय का कवि उच्च और व्यापक धार्मिक सहिष्णुता का परिचय देता है। वहाँ वह अपने दृष्ट देवता का वर्णन करता है, वहाँ अपने प्रदेश (तमिळ-प्रदेश) के अन्य देवताओं के विषय में भी कहना नहीं सुनता। इस युग के कवि के लिए काव्य के वर्ण्य विषय दो ही थे—प्रेम और नीरता। कवि ने जन-मनोरंजनार्थ ही काव्य का सञ्चलन किया और उसने कहीं-कहीं प्रसंगवश धर्म का नाम लिया है। उसकी दृष्टि में

धर्म के नाम पर किसी विधेय प्रयोजन के लिए काव्य की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु ईसा की तीसरी, चौथी और पाँचवीं सताब्दी में बात कुछ दूसरी थी। तमिळ-साहित्य के इतिहास में इस काल को समोत्तर काल कहा जाता है। संभव-काल की समाप्ति दूसरी सताब्दी तक माननी चाहिए। इसके पश्चात् तमिळ में जो साहित्य मिलता है, वह प्रायः जैन और बौद्ध मुनियों द्वारा रचित है। अतः इस भक्ति पूर्व-काल को समोत्तर काल अथवा बौद्ध-जैन-काल कहा जाता है। इस काल में जैनों और बौद्धों ने अनेक महाकाव्यों की रचना की। प्रारम्भ में तो उनका उद्देश्य केवल साहित्य-सर्जन ही रहा। परन्तु धीरे-धीरे धर्म-प्रचार का उद्देश्य प्रबल होता गया तो उन्होंने धार्मिक प्रचारार्थ ही साहित्य का सर्जन करना शुरू कर दिया। और भक्तिकाल के आरम्भ में तो वेद और वेदव्याख्यान का सम्बन्ध मात्र उनका उद्देश्य रहा।

जैसे तो जैनों और बौद्धों का आगमन तमिळ प्रदेश में इस काल से पहले ही हो चुका था। ईसा की पहली या दूसरी सताब्दी में बौद्ध और जैन मठ तमिळ-नाडू में फैल चुके थे। जैन-पाठावसियों में प्राप्त इतिवृत्त के अनुसार सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासनकाल में जैनों में आपस में फूट हुई और जैनों के दो वन हो गये। एक वन जिन्हें विगम्बर कहा जाता था के नेता महाबाहु थे। महाबाहु पहले मगध में रहे। लेकिन जब वहाँ १२ वर्ष का अकाल हुआ तो वे मगध को छोड़कर दक्षिण की ओर जाये और बाहिर अवलुबेसकोना (मैसूर) में आकर रहने लगे।^१ तब-साहित्य में जैनों के तमिळ-प्रदेश में बस जाने के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रमाण है। 'मणिमेसर्स' में अनेक विद्वानों का बर्तन मिलने से पता चलता है कि उससे पूर्व ही बौद्ध-जैन मठों का प्रचार शुरू हो चुका था।

सम्राट् अशोक के समय में दक्षिण में बौद्ध-धर्म का प्रचार विशेष रूप से हुआ। प्रारम्भ में तमिळ-प्रदेश में बौद्ध-धर्म का कुछ विरोध हुआ ऐसा दीक्ष पड़ता है। ईस्वी पूर्व २०१ के बाद अशोक ने अनेक प्रचारकों को बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ सुदूर दक्षिण में भेजा।^२ पहले बौद्ध भिक्षुओं ने तमिळ प्रदेश में ताप्पणी नदी के किनारे कोर्क नामक स्थान में अपने मठ का प्रचार जोर से किया। बौद्ध-धर्म का प्रचार तमिळ-प्रदेश के इतिहास में विकास-स्तम्भ (Mile-stone) माना जाना चाहिए।^३ अशोक के शिलालेखों में तमिळ के चेर जोस और पांड्य राजाओं का उल्लेख मिलता है।^४ उत्तर में शक्तिशाली राज्य होने के कारण उसके प्रभाव से दक्षिण में बौद्ध और जैन मठों का प्रचार होने लगा। बौद्धों और जैनों ने अनेक विद्वानों की स्थापना तमिळ-प्रदेश में की और अपने सिद्धांतों का प्रचार साधारण जनता के बीच में शुरू

1 Some Contributions of South India to Indian Culture

—Dr S Krishnaswamy Iyengar p. 234

2 The Pagent of Indian History—Sen p 1

3 Oxford History of India.—V A Smith p 75

4 Tamil Nad through Ages—A. M Paramasivanandam, p 37

किया। तमिल राजा बामिक मामलों में काफी ज़वार से और उन्होंने सभी वर्गों को समान रूप से बढ़ने की सुविधा दी थी। बौद्ध और जैन प्रचारक संस्कृत के बड़े विद्वान् थे और उन्होंने अनेक ग्रन्थों का संस्कृत और पासी में प्रणयन किया। उन्होंने एक और महत्वपूर्ण बात यह की कि साधारण जनता को जो तमिल भाषा बोसती की शक्ति दिलाने के लिए तमिल भाषा में साहित्य-रचना प्रारम्भ कर दी।¹ उन्होंने बड़े परिचय से तमिल भाषा की पूर्व-साहित्यिक परम्पराओं को सीखा और कुछ ही समय में तमिल-साहित्य पर उनका आधिपत्य हो गया। उच्च कोटि के साहित्य का निर्माण उनके द्वारा हुआ परन्तु उसके मूल में भी अपने अपने विचारों का प्रचार ही था। फिर भी वह कहना ज़रूरी होना कि उनके द्वारा रहे साहित्य में साहित्य-सौष्ठव की कमी थी। संवत्सर की पुटकर रचनाओं की अपेक्षा उनके द्वारा महाकाव्यों की रचना मुख्य रूप से हुई। इन कवियों ने अन्य मुख्यतया नीति-वचन हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं की कथा के साथ अपने बामिक विचारों की विस्तारों नियमों कर्मों आदि का अच्छा सम्मिश्रण किया है। जिनकी सहायता से उस समय के सामाजिक और बामिक जीवन का भी अच्छा ज्ञान होता है। इनमें महा-महा कृष्ण कवियों ने रामायण महाभारत आदि के कुछ छोटे-मोटे पात्रों का भी वर्णन किया परन्तु इन्होंने सभी वैदिक महाकाव्यों की कथावस्तुओं को मूल रूप में न लेकर अपने वर्ग के अनुकूल ही बना लिया।

बौद्धों की अपेक्षा जैनों का ही अधिक प्रभाव तमिल-साहित्य और संस्कृति पर पड़ा। तमिलनाडु के सांस्कृतिक विकास में जैनों का योग महत्वपूर्ण है।² कहा जाता है कि ब्रह्मगुप्ति की अध्यक्षता में ईस्वी सन् ४०० में मुद्रै में 'इमिल संघ' के नाम से एक संस्था की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य तमिल में साहित्य-सर्जन को प्रोत्साहन देना था।³ जैन महाकर्मियों ने तमिलनाडु में जयह-जगह में बिहारों और मूर्तियों का निर्माण करके वास्तु-शिल्प और मूर्ति-कला की उन्नति में योग दिया। संस्कृत और प्राकृत के अनेक ग्रन्थों के विषयों का तमिल-प्रतिक्रम जैन कवियों ने प्रस्तुत किया। इनके द्वारा संस्कृत और प्राकृत के शब्द भी तमिल में आ गये। जन मठ के उद्घाटन उत्सवों

1 "The Jains more than any other Sect have their writings and especially in their exceptionally comprehensive narrative literature, never addressed themselves exclusively to the learned classes, but made an appeal to the other strata of the people also"—*History of Indian Literature* Winternitz Vol II p. 475

2 "They have played a notable part in the civilization of South India where early literary development of the Kanarese and Tamil languages was due in a great measure to the labours of the Jain-Monks."—*Ancient India* Prof. E. J. Rapson p. 66.

3 *Administration and Social Life under the Pallavas*

भी जनता में प्रचार हुआ। बीरे-बीरे जैनों ने राज्याध्य को भी प्राप्त कर लिया। तमिल-प्रदेश में ईसा की तीसरी शताब्दी से लेकर महीं शताब्दी तक पल्लव राजाओं का शासन हुआ। इन पल्लव राजाओं के शासन-काल को तीन भागों विभाजित किया जाता है। प्रारम्भिक काल (२५०-३४०) के पल्लव राजाओं का चरण प्राकृत सिंहासनों में मिलता है। मध्यकाल (३४०-५७३) के पल्लवों का चरण संस्कृत में लिखे सिंहासनों से उपलब्ध होता है। अन्तिम काल (५७३-६००) पल्लव राजाओं का चरण ग्रन्थ-लिपि और तमिल-लिपि में लिखे सिंहासनों से प्त होता है। जिसे तमिल साहित्य के इतिहास में मल्लिकाल कहा जाता है वह एत पल्लव-राजाओं के अन्तिम काल में पड़ता है। वास्तव में यही काल ऐतिहासिक ष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसी काल में तमिल-प्रदेश में जिस मल्लिकालोत्पन्न के दर्शन किये थे उसमें उन पल्लव-राजाओं का भी बड़ा हाथ था। उस काल के पल्लव-राजाओं का प्रमुख केन्द्र कांचीपुरम था।^१ मध्यकाल के पल्लवों संस्कृत के प्रेमी थे इसलिए उस काल में उनके द्वारा तमिल को विशेष आग्रह नहीं मिला। लेकिन अन्तिम काल के पल्लव शासक तमिल में साहित्य-सर्जन को प्रोत्साहन देते रहे। जैन महात्मियों ने प्रारम्भ में अनेक पल्लव राजाओं को प्रभावित किया और राज्याध्य प्राप्त किया। जब उनको राज्याध्य प्राप्त हुआ था वे धर्म प्रचार में तीव्रता दिखाने लगे और जलाचार का कांड भी यहीं से प्रारम्भ हुआ। मल्लिकालोत्पन्न की आवश्यकता

तमिल जनता ने जो धार्मिक मामलों में स्वभाव से ही चरार की प्रारम्भ में इन बौद्ध-जैन धर्मों का विरोध नहीं किया। इन धर्मों के विचारों में कुछ ऐसी बातें थीं जो जिन्होंने तमिल जनता को आकर्षित किया। इनके उदात्त भावों का जनता ने स्वागत किया। जैनों और बौद्धों ने प्रारम्भ में अनेक विहारों की स्थापना कर जन हितार्थ कई कार्य किये। साधारण जनता जिसको समाज में विशेष महत्व प्राप्त नहीं था इन महात्मियों का आग्रह पाकर प्रसन्न हुई। कुछ लोग जो अनवरत लड़ाइयों से थक चुके थे वे इन विहारों में जाकर शान्ति पाने लगे। यहाँ तक कि प्रसिद्ध चेर राजा चेंबुदुवन के अनुज इलङ्ग मल्लिकाल बौद्ध बनकर विहार में रहने लगे। तमिल-बौद्ध अपने धर्म के प्रचार के लिए चीन और जावा भी गये थे।^२ 'मणिमल्ल' और 'सिन्धुपिण्डिकारम्' के रचना-काल में बौद्धों को गमाज में आदर प्राप्त था। परन्तु बौद्धों ने इसका दुरुपयोग किया। जागे बल्लभ बौद्ध महात्मियों ने ममस्त तमिल जनता को बौद्ध धर्म में लाने की चेष्टा की और पर-धर्मों का सम्मान भी भुक्त कर दिया।

१. देखिए विस्तृत विवरण के लिए— "The Pallavas of Kanchi."

—K. Gopalan (Madras University)

२. "Development of Tamil Religious Thought"

—Swami Vipulananda "Tamil Culture" (1956), pp 251-266

कासान्तर में समेते कुराचार ने प्रवेश कर लिया। बौद्ध-धर्म में ब्रह्मचर्य और मिश्र जीवन पर बहुत जोर दिया गया था। तमिळ जनता के लिए जो परम्परा से गार्हस्थ्य जीवन के उच्च आदर्शों को सेटी जायी थी बौद्धों का वह मिश्र-जीवन अपनी परम्परा के विरुद्ध था। मठों के आराकृतिक जीवन में बहुत सी कुराद्वयों बहुत मारी परिभास्य में डुब आयीं। बौद्ध-धर्म में ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं था। बौद्ध धर्मविश्वम्भी परवर्ती काल में अपने सिद्धान्त-मस पर अधिक जोर देने लगे। अतः उनके विचार तमिळ-जनता के परम्परागत धार्मिक विश्वास और भक्ति-भाव के विरुद्ध सिद्ध हुए।

जैनों ने राम्याभय पाकर अनेक मंदिरों का निर्माण किया। इन मंदिरों में जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ रहती थीं। तमिळनाडू में अनेक स्वामीयों में इनके मंदिरों की स्थापना हुई और बहुत अधिक भाषा में तमिळ साहित्य-सर्जन कर अपने धार्मिक विचारों का प्रचार किया। साहित्य-रचना में धर्म प्रचार ही प्रधान उद्देश्य रहा। जैनों में विष्णुभक्त कहलाने वाले ही तमिळ-प्रदेश में अधिक रहे। ये बिना बस्त्र पहने नग्न रहते थे। नमी स्नान नहीं करते थे और गन्दे रहते और कटुप्रदानुष्ठान करते थे। इनका तन्त्र मन्त्र में भी विश्वास था। कासान्तर में राम्याभय का दुरुपयोग कर इन लोगों ने ने विपसी बमों (हैबों और बैष्णवों) के शक्तों को कष्ट देना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि धर्म-परिवर्तन कराने के लिए अत्याचार का सहारा लेने लगे। यहाँ तक कि अपने विरोधियों की हत्या तक कर बाधते थे। अहिंसा कदापि बाध जो धनमत के मूल तत्त्व थे इन सिद्धान्तों के विरुद्ध व्यापार में प्रवृत्त हो गए।

इसी युग में पाण्डुपत कापालिक और कलामुख कहलाने वाले लोगों की धर्म शाधनाओं के प्रचार का परिचय भी मिलता है, जिसका भक्ति-आन्दोलन के प्रवर्तकों ने बड़ा अध्यन किया है। वास्तव में ये लोग मूलतः तमिळ-प्रदेश के नहीं थे। ये बाहर से आये थे और इनके आचरण बहुत ही विचित्र थे। पाण्डुपतों के भी विश्वास और आचार विचार विचित्र प्रकार के थे। ये अपने को 'मयेकचुरर' कहते थे। ये शरीर पर भस्म लगाते थे। शिव को परब्रह्म मानते थे। तिस अथवा शिव की मूर्ति को पूजा करते थे। कुछ लोग शरीर पर मन्त्र सजाकर नंगे घूमते थे। विरक्त जीवन बिठाकर जोर तप के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने में विश्वास रखते थे और उसकी चेष्टा में रत रहते थे। इनमें कुछ 'शिवभक्त' कहलाने वाली शक्तियों में विश्वास रखते थे और उनको शत्रु करने के लिए नर-बलि तक देते थे और मृत मनुष्यों के मांस का नैवेद्य समायते थे।¹ कापालिक कहलाने वाले धैर्यों की पूजा करते हैं। ओषधियों की माता बनाकर उसे में डाले छिरते थे। नर-बलि और पशु-बलि की भी इनमें परिपाटी थी। बलि में दिये गये मांस और पशु का सेवन करते थे। स्थियों को 'आदि शक्ति' मानकर उनकी पूजा करते थे। इनमें शक्ति-पूजा की प्रथा थी। इनमें स्त्री-कापालिक (कापालिन) भी थीं। इस प्रकार के लोगों ने जनता के बीच भक्ति-भाव का नहीं बल्कि भय का

ही प्रवचन कराया । इन सोयी की किसी उड़ाने के लिए ही महेश्वर धर्म पस्तक प्रथम ने (६००-६१०) 'मत्त-विभास-ग्रहणम्' की रचना की । इस संस्कृत ग्रहण से तत्कालीन पठित धार्मिक स्थिति का चित्र प्राप्त हो जाता है । इसमें नापासिकों और बौद्धों की इसी उड़ानी गयी है । इससे अनुमान किया जा सकता है कि महेश्वर धर्म पस्तक प्रथम के समय तक बौद्धों और नापासिक कहलाने वालों का आचरण-यज्ञ बहुत ही पिछा हुआ था । इस ग्रहण में जनों का उत्सव न होना यह सूचित करता है कि महेश्वर धर्म उस समय जनों के पंजे में था । बाद में यह अप्पर नामक खेब-सत से प्रभावित होकर खेब बन गया ।

अब यह भी देखने की आवश्यकता है कि भक्ति-काल के प्रारम्भ में खेब और वैष्णव धर्मों की क्या दशा थी । यह पहले कहा जा चुका है कि वैदिक धर्म का बलिष्ठ में प्रवेश ईसा की कुछ सताब्दियों के पूर्व ही हो गया था । द्राविड़ और वैदिक संस्कृतियों का मिलन हुआ जिसके फलस्वरूप अनेक द्रविड़ (तमिळ) देवताओं का एकीकरण वैदिक देवताओं में हो गया । तमिळ तिरुमास का विष्णु से एकीकरण हुआ और शिव का रूढ़ि है । पुराणों में तमिळ देवता 'मुक्कान' को शिव का पुत्र बताया गया और कोट्टुर्ब की दुर्गा या पार्वती कहा गया । हम यह मान सकते हैं कि ईसा की चौथी सताब्दी के पहले ही यह एकीकरण पूरा हो चुका था । इस समय वेद और वेदांगों में प्रवीण ब्राह्मण लोगों का उत्तर से आगमन होता रहा और वैदिक विचारों का भी प्रचार हुआ । चौथी सताब्दी के प्रारम्भ में जब उत्तर में गुप्त कर्तीय राजाओं का शासन हुआ तब वैदिक धर्म की पुनः आधुन्य मिला । यह युग उत्तर भारत के इतिहास का स्वर्ण-युग कहलाता है । उत्तर में इस युग में बौद्ध और जैन धर्म का लगभग ह्रास हो चुका था और खेब और वैष्णव संप्रदाय पनप रहे थे । महाभारत रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थों का पुनः संपादन हुआ पद-वर्धन व्यक्तित्व हुए । पाँच राज राजागम और राज-साहित्य का सर्जन हुआ । इस समय उत्तर से वैदिक धर्मावलम्बी ब्राह्मणों का तमिळ-प्रवेश में पहल की अपेक्षा अधिक सख्या में आगमन हुआ ।¹

हम यह अप्पर देख चुके हैं कि चौथी और पाँचवीं सताब्दी में तमिळ प्रदेश में बौद्धों और जैनो का बोसबाला था । आचारण जनता पर उनका प्रभाव था । तमिळ साहित्य पर उनका आधिपत्य था । वैदिक धर्मावलम्बी (दोनों संस्कृतियों के एकीकरण के परभाव भी) ब्राह्मण लोग घटबाए बनाकर अलग रहते थे वही वेद और उपनिषद् आदि के अध्ययन और मन्त्र श्रवण में वे सवे रहते थे । आचारण जनता से उनका कोई भी संबंध न था । कांचीपुरम् की 'मटिका' बहुत ही प्रसिद्ध थी । वही वेद-वेदांगों का विशेष अध्ययन होता था । कहा जाता है कि कदम्ब बंध के सत्पापक मयूरसिंह

1 The Coming of Brahmanism to the South of India.

—A Govindacharya J R. A S., 1912.

कांचीपुरम् में संस्कृत अध्ययन के लिए आया था। इतिहासकारों के अनुसार उसका कास १४५ ११० ई० है।^१ ताम्रपत्रों से पता चलता है कि समुद्रसिंह को पहले से वैश्वों का बड़ा ज्ञानी था अथवा अध्ययन प्राप्त करने के लिए ही कांचीपुरम् आया था। अब यह बात होता है कि इन 'पटिकाओं' में वैदिक साहित्य के अध्ययन और अध्यापन और यज्ञ इत्यादि का प्रबन्ध होता था। इन पटिकाओं का साधारण जन केन्द्रों से जलग रहना यही सूचित करता है कि उससे साधारण जनता का कोई सम्बन्ध नहीं था। यह भी बात होता है कि 'पटिकाओं' में केवल ब्राह्मणों का ही प्रवेश था और उनमें होने वाले यज्ञादि में भाग लेने का अधिकार ब्राह्मणोत्तर लोगों को नहीं था। वैशाख में पारंगत लोगों को पुरोहित ब्रह्मा 'मरेयवर' कहा जाता था। वीर-महाकाव्य 'सिद्धपथिकारम्' में कहा गया है कि उसके कथा नायक कोवलन और नायिका कम्पुकी का विवाह वैदिक नियमों के अनुसार ही सम्पन्न हुआ था।^२ चूंकि वैदिक धर्मावलम्बियों ने अपने धर्म तथा वैदिक केवल ब्राह्मण लोगों तक ही सीमित रखा इसलिए साधारण जनता से उनका कोई सम्पर्क नहीं रहा। यही कारण है कि साधारण जनता के बीच में ईसा की तीसरी और चौथी और पाँचवीं शताब्दियों में बौद्ध और जैन धर्म पनप सके।

प्रारम्भ में तो बौद्ध जैन और वैष्णव आदि सभी भक्त आचार्य में बिना किसी संघर्ष के समानांतर रूप से चलते रहे। किन्तु बाद में एक ओर बौद्धों और जैनों ने राज्याध्यय का मुख्ययोग कर जैन और वैष्णव धर्मों पर प्रहार करना शुरू कर दिया। दूसरी ओर बौद्धों और जैनों ने जन-साधारण को अपने पक्ष में रखा था और वैदिक धर्म का जन-साधारण से सम्बन्ध बटता गया। पाँचवीं और छठी शताब्दी तक आकर बौद्धों और जैनों का आचरण पक्ष जब गिरने लगा तो एक ऐसा वातावरण तमिळ-प्रदेश में सृजित हुआ जिसमें बौद्धों और जैनों के आचार-विचारों से तंग होने वाली जनता को एक ऐसा मार्ग दिखाने के लिए जिसमें सब समान रूप से आराम शान्ति प्राप्त कर सकें और आचरण का पक्ष भी ऊँचा रहे सके और वैदिक धर्म को जो अब तक यज्ञादि कठिन नियमों को पकड़े आया है, सरल बनाकर भक्ति के साधनों को सुलभ और सर्व-साधारण को प्राप्य बनाने के लिए हिन्दू-धर्म में सुधारकों की आवश्यकता हुई। सुग की इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए ही वैष्णव भक्त-कवि आळवार और शैव भक्ति-कवि मायनमार अवतरित हुए। बौद्ध और जैन मार्तण्ड धर्मों की तुलना में उन्होंने मन्वाद् की सत्ता उपासना और स्वाध्याय का प्रचार किया। छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल में इन वैष्णव आळवारों और शैव

1 The Kadamba Kula—Mordas, p 14

2 History of Tamil Language and Literature—Prof. S. Vallyapuri. Pillai p. 100

3 Tamilnad through Ages—A. M. Paramasivanandam p 58

नायनमारों ने भक्ति की जो सरिता प्रवाहित की उसकी तरल तरंगों में तमिळ-प्रदेश की समस्त जनता मग्न हो कर समाहित हो कर शांति प्राप्त कर सकी।

आत्मार और नायनमार

वैष्णव आत्मारों और शैव नायनमारों ने सबसे बड़ी बात यह की कि उन्होंने जनता की भाषा तमिळ के माध्यम से वेद इत्यादि का सार ग्रहण कर अपने विचारों को प्रकट किया और भक्ति को सुलभ बनाकर सर्व आचारण के लिए प्राण बनाया।^१ इन वैष्णव और शैव गुरुओं के विचार में अनेक बातों में समानता थी। इन दोनों का उद्देश्य मुक्त एक ही था। यह यह था कि मास्तिक विचारों का सामना करना और मास्तिक विचारों का प्रतिपादन कर जनता में वास्तविक भक्ति-भावना का आगरण करना। इसके लिए दोनों ने तमिळ में ऐसे साहित्य का निर्माण किया जो उच्च कौटिली की भक्तिभावना से ओत-प्रोत है। उन्होंने अपनी भक्ति-प्रमाण रचनाओं में संन्यासीय तमिळ साहित्य की सभी साहित्यिक परम्पराओं को अपनाया। संन्यासीय के दो वर्ण विषय—प्रेम और युद्ध थे। साहित्यिक परम्पराओं को अपनाकर, आत्मार और नायनमारों ने, संन्यासीय में जिस सौम्य भ्रम और उसकी दशाओं का विस्तृत वर्णन किया है उसको असीमिक प्रेम की (भगवान् और भक्त के बीच) प्रकट करने का माध्यम बनाया। प्रो० आर० एस० वेण्कट ने लिखा है

"The bellicose and warring element in man cannot be effaced, nor can the instinct of love be wiped out. They must find a new outlet and have to be sublimated. With the Alvars and Nayanmars, the war without has become war within and human love has been transformed into divine."^२

यही है गुरु भक्ति-राज का उद्देश्य मानना चाहिए। इन आत्मार और नायनमार

- 1 "The transformation of the ritualistic Brahmanism into the much more widely acceptable Hinduism of Modern times is due to the increasing element of the theistic element into the religious system of the day. In this new development South India played an important part. It probably borrowed the elements of Bhakti from the rising schools of Vaishnavism and Saivism in North and gave a realistic development by infusing into it features characteristic perhaps of Tamil-land and its literary development, making there by experience fall in line with life itself.....Bhakti which transformed Brahmanism into Hinduism may therefore be regarded as an important contribution of South India."—*Some Contributions of South India to Indian Culture*—Dr S Krishnaswamy Iyengar (preface), pp. xlii-xlv
- 2 "Tamil Literature down the Ages"—All India Writers Conference, Madras, 1955 *Souvenir* pp. 20-21

भक्तों के गीतों में हृदय की समात्मिक कृति है प्ररित मानव भाव के हृदय को स्पर्श करने वाले भाव है जिसके प्रवाह में सारा समाज परिष्कारित हो गया ।

आठवारों और नायनमारों ने तमिळ भाषा के द्वारा ही अपने विचारों को जन-साधारण तक पहुँचाने का प्रयत्न किया । तमिळ भाषा के प्रति दोनों का प्रेम अपार था । शैव कवि ज्ञान सम्बन्धर अपने को 'तमिळ ज्ञान संबंधर' कहने में सौख्य प्राप्त करते थे । इसी प्रकार मूतताळ्वार ने अपने को महान् तमिळन कहा है । हृदय को इवित करने वाली भक्ति भावना को प्रकट करने के लिए तमिळ भाषा में पर्याप्त सुविधा थी । दोनों ने गेयपद शैली को अपनाया और वे जगह-जगह अपने पीतों को गाकर जनता को मंत्र-मुग्ध कर देते थे । यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जायगा कि वस्तुतः वैयास और शैव भक्तों के गीतों में विचार एवं भाव की दृष्टि से कोई विशेष अंतर नहीं है । केवल विष्णु और शिव की पृथक्-पृथक् प्रभावता ही गई है । इतना अवश्य है कि आठवार भक्तों की परावर्ती में स्पष्ट रूप से अवतारवाद का सिद्धान्त स्वीकार करते हुए कहा गया है कि भक्तों का कष्ट दूर करने के लिए विष्णु को बार-बार अवतार ग्रहण करना पड़ता है । नीता में आया है :—

“यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमवर्तस्य तदास्तान् सृजाम्यहम् ॥”^१

आठवार इस कथन में विश्वास रखते थे । परन्तु शिव-भक्त इस प्रकार नहीं करते । (फिर भी बाद के शिव-भक्त शैवाचार्यों को शिवजी के अवतार-रूप में मानने लगे ।^२) दोनों भक्तों ने भगवान् को प्रेम स्नेह और कष्टों की भूति बताया । भगवान् से भय का नहीं बल्कि प्रेम का सम्बन्ध स्थापित किया गया । कमलाक्ष को छोड़कर भगवान् के नाम-स्मरण तक से भगवद्गुणों की प्राप्ति सम्भव बताया । प्रपत्ति अवस्था धारणागति तरह पर जोर देकर दोनों ने भक्ति-भाव को सबके लिए सुझाव दिया । भक्ति किसी जाति-विशेष की सम्पत्ति न होकर सब की सम्पत्ति है । इसमें स्त्री-पुरुष भगवा वण-मेघ का कोई स्थान नहीं । भगवान् के सम्मुख सब समान हैं ।

जब आठवारों और नायनमारों ने अपने इस स्पष्ट विचारों का जनता में प्रचार किया तो जैन और बौद्ध समीक्षकान्वितों ने जिनकी प्रारम्भ में राज्याभय प्राप्त था शैव और वैष्णव संतों को कष्ट देना शुरू किया । कहा जाता है कि महेश्वर वर्म पल्लव प्रबंध में जो पहले जैन या शैव संत-कवि अप्पार को शैवों के बंगुम में पड़कर बहुत बताया । परन्तु अप्पार ने जैनों के तंत्र-मंत्र तथा योग आदि को मूर्ख विचार

१ गीता—अध्याय ४ श्लोक ७ ।

२ *Devotional Literature in Tamil.* (Dr R. P. Sethu Pillai Commemoration Volume)—Dr V. A. Devasenapathy pp 115-117

भक्ति-मार्ग को स्पष्ट सिद्ध किया तो महेश्वर बर्म और-बर्म को त्यागकर शैव-धर्म में आ गया। भक्ति-काल के प्रारम्भ में बर्म-परिवर्तन एक सामान्य-सी बात थी। धीरे धीरे जो साम्प्रदायिक पहलू बौद्धों और जैनो को प्राप्त था वह सब और वैष्णवों को प्राप्त होने लगा। यद्यपि इन आठवाराओं और नामनमाराओं का मूल उद्देश्य जनता में भक्ति-भाव को जगाना तथा नैतिक स्तर को ऊपर उठाना था तो भी जब उन्हें अपने उद्देश्य में जैनो और बौद्धों द्वारा बाधा पड़ते देखकर उन्हें बौद्धों और जैनो का और उनके कुहरों का भी अध्ययन करना पड़ा। नामनमारा ने अपनी रचनाओं में चुनकर बौद्धों और जैनो का अध्ययन किया है और उनके निम्नगीय कार्यों की हँसी उड़ाई है। शैव संत ज्ञान सम्प्रदाय ने तो अपने बर्तकों के हर पसरे पद में बौद्ध और जैनो का अध्ययन किया है। उससे जैनो और बौद्धों की पठित स्थिति का परिचय मिलता है। दूसरे शैव संत सुन्दर ने लिखा है 'बौद्ध और जैन बहिष्सा का प्रचार करके भी हिंसा के द्वारा ही धर्म-प्रचार करते हैं। उपस्था का बहाना करके वे अपनी जीम के दात बने फिरते हैं। आ-आकर मुक्त और मुक्तिवत बन गये हैं।' जन-सेवा इनका सद्य नहीं है। वे सर्वत्र अपने आहार की ही चिन्ता रखते हैं। वे अज्ञान में पड़े हुए हैं। उनका मन काता है। जैन मम्म रहते हैं। गन्दे रहते हैं। जैन सड़े होकर जाते हैं। मांस खाते रहते हैं उनके शरीर से बहबू बासी खूँसी है।' (बौद्ध प्रारम्भ में पशु-धर्म के विरोध में थे। पर बाद में मांस खाने में उन्होंने आपत्ति नहीं सँठायी) वे धर्म की निन्दा करते हैं जिसका फल उन्हें अनर्थ्य प्रोमना पड़ेगा।^{१३} आठवारा में प्रथम कुछ आठवाराओं में जैन और बौद्धों का विशेष अध्ययन नहीं किया है। इससे ज्ञात होता है कि उनका समय जैनो और बौद्धों ने उन्हें अधिक कष्ट नहीं पहुँचाया हो। परन्तु बाद में जाने जाने कुछ आठवाराओं में जैनो और बौद्धों का खूब अध्ययन किया है। विस्मयिल्लै आठवार और विस्मयै आठवार ने तत्कालीन बौद्धों और जैनो के कुहरों और दुर्बल विचारों की ओर संकेत किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि साठवीं और आठवीं शताब्दी में धार्मिक सन्त उस रूप को प्राप्त कर चुका था। टीवा और वैष्णवों ने मिलकर जैन और बौद्धों का बड़ा विरोध किया। इससे तमिळ-प्रदेश में जैन और बौद्ध धर्मों की नीव हिलने लगी और नहीं सँठायी तक जाते-जाते उन दोनों नास्तिक धर्मों की शक्ति क्षीण हो गयी। ज्ञानसाय नामक बीती यात्री जो पल्लव मरुसिंह बर्म के समय में कांचीपुरम् में आया (ईस्वी सन् १५० के आस-पास) था। उसने लिखा है कि कांचीपुरम् में बौद्ध विहारों के अतिरिक्त अनेक शिव मन्दिर भी थे। उसने यह भी लिखा है कि कितने बौद्ध विहार जीर्णोद्धार में थे।^{१४} अतः अनुमान किया जा सकता

१ ठेवार्त्तु ६० ६—सुन्दरर ।

२ वही १३ ६, ७१ ६ आदि ।

३ वही २२ : ६ ।

४ *Tamilnad through Ages—A M Paramasivanandam, p. 70*

है कि छाठवीं शताब्दी से ही बौद्ध और जैनों की शक्ति दीख होने लगी थी। चौथ और षष्ठश बर्ष और पकड़ते जा रहे थे। अन्त में बौद्ध और जैन धर्मों को तमिळ-भूमि में पराजित होना पड़ा। उन्हें परास्त करने का पूरा-पूरा श्रेय आठवारों और नायनमारों को देना चाहिए।^१

भक्ति-काव्य के उत्तरावध में चौथ और षष्ठश बर्षों को अनेक राजाओं का शासन प्राप्त हुआ। अनेक राजाओं ने इन चौथ और षष्ठश बर्षों को प्रोत्साहन देने के लिए अनेकानेक मन्दिरों के निर्माण करवाए। महेश्वर बर्ष पल्लव प्रथम ने चौथ-बर्ष को ग्रहण करने के पश्चात् मन्दिर-निर्माण में अपना ध्यान दिया। उसके समय में विमल कर्णों की भी उन्नति हुई। महेश्वर बर्ष पल्लव को तमिळ प्रदेश के चारिक आम्बोत्तम के इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसके समय में मुद्गा-मन्दिरों का निर्माण हुआ जिनमें पल्लवपुरम्, मामसूर, सिपारमयम आदि के मन्दिर मुख्य हैं। उसने साहित्य-सर्जन को प्रोत्साहन दिया जिस कारण अतिशक्ति-साहित्य का निर्माण हुआ। मुख्य मूर्ति सभी कलाओं की उन्नति इस समय हुई। कई दृष्टियों से महेश्वर बर्ष का समय महत्वपूर्ण है। महेश्वर बर्ष के पुत्र नरसिंह बर्ष के समय में भक्ति-आम्बोत्तम को और भी प्रोत्साहन मिला। उसने अनेक मुद्गा-मन्दिरों का निर्माण करवाया। महामल्लपुरम् महावसीपुरम् के प्रसिद्ध मुद्गा-मन्दिरों का निर्माण नरसिंह बर्ष के द्वारा ही हुआ जो पल्लव-मन्त्र-निर्माण-कला के लभर विद्वान् बनकर आज भी विद्यमान है।

अनेक पांड्य राजाओं ने भी चौथ-मन्दिर निर्मित किये। इस युग की महत्वपूर्ण बात यह है कि मन्दिरों के निर्माण होने से और मन्दिरों में भगवान् के वर्णमार्च भक्तों के आने से एक भक्तिमय वातावरण उत्पन्न हुआ। मन्दिरों के निर्माण के साथ-साथ उनसे सम्बन्ध रखने वाले चारिक उत्सवों का भी प्रबन्ध किया गया। इस युग में आठवारों और नायनमारों के भक्ति-रस-सिक्त गीतों को गाकर मत्त आत्म-विमोह हो जाते थे।^२ भक्ति की आवाज इस युग की सबसे ऊँची आवाज थी। अमर श. प्रियदर्शन महाशय को इस युग के तमिळ-भक्ति-साहित्य का परिचय मिला होता तो

1 "The hymn singers of Tamil land were the creators of that powerful religious feeling which swept Buddhism and Jainism out of their country"—*Influence of Islam on Indian Culture* Dr Tarachand, p. 95

2. Large concourses of people went from place to place chanting their way visiting temples old and newly built and offering worship. In front of the deity they poured out their hearts in fervent recitation of songs composed by their leaders (Alvars and Nayanmars) and such joint recitation necessitated a kind of simple chorus music in which any one could join—*History of Tamil Language and Literature* Prof S Vaisampari Pillai, p. 102.

उत्तर भारत की भक्ति धारा के विषय में आश्चर्यचकित होकर उन्हें धायर ही यह कहना पड़ता— कोई भी भक्ति जिसे पन्द्रहवीं सताब्दी तथा बाद की सताब्दियों के साहित्य का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ है, उस भारी व्यवधान (Gap) को लक्ष्य किये बिना नहीं रह सकता, जो प्राचीन और पुराने धार्मिक भावनाओं में दृष्टि गोचर होता है। हम अपने को ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं जो उन सब आन्दोलनों से अधिक विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी भी देखा है। यहाँ तक कि वह बौद्ध धर्म के आन्दोलन से भी व्यापक और विशाल है, क्योंकि उसका प्रभाव आज भी विद्यमान है। इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं अपितु भावार्थ का विषय हो गया था।^१

अपने युग को आलुबारों की देन

तमिळ-प्रदेश के भक्ति-आन्दोलन में ब्रह्मण आलुबारों का जो महत्वपूर्ण योगदान है, उसे सभी विद्वान निश्चित रूप से मानते हैं। स्मरण रहे कि ईसा की चौथी सताब्दी से लेकर छठी सताब्दी के उत्तरार्द्ध तक उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य ने ब्रह्मण भक्ति तथा मागधत-धर्म के प्रचार में महान् योग दिया। लेकिन उत्तर भारत के इतिहास के इस स्वर्ण युग के समाप्त होते ही, हर्षवर्धन जैसे प्रतापी उत्तर भारतीय सम्राटों द्वारा मागधत धर्म उपेक्षित होने के कारण निर्बल हो जाता और क्रमशः निर्बल होता गया। परन्तु ब्रह्मण भक्ति क सूखते हुए बूझ को फिर से जीवन दान करके तमिळ-प्रदेश के आलुबारों ने ही पतपाया। बाद में उस विशाल बूझ की शीतल छाया में समस्त भारतवर्ष की ब्रह्मण जनता शांति पा सकी।

यद्यपि तमिळ-प्रदेश में भक्ति-आन्दोलन छठी सताब्दी से ही स्पष्ट रूप से होना पड़ता है तो भी उसके पहले ही प्रथम तीन आलुबार जन्म ले चुके थे। ब्रह्मण भक्ति की परम्परा जिसके दर्शन हम सब-साहित्य में भी कर चुके हैं, तमिळ-प्रदेश में ईसा की प्रारम्भिक सताब्दियों में भी देखने को मिलती है। उस परम्परा में जाने वालों के आलुबार भक्त। अब यह कहना असंभव है कि आलुबारों के परभाव ही तमिळ-प्रदेश में ब्रह्मण भक्ति का उदय हुआ है। तमिळ विद्वान् श्री पी० श्री आचार्य ने ठीक ही संक्षेप-कास को (दूसरी सताब्दी तक का कास) भक्ति-आन्दोलन का उपा कास और आलुबारों के आदिम-कास का भक्ति आन्दोलन का 'सूयोदय' कहा है।^२

(आलुबारों और उनकी रचनाओं का परिचय द्वितीय अध्याय में बिस्तार से दिया गया है। उन्होंने अपने युग का जो महत्वपूर्ण देन दौ है, यही केवल उस पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा।)

आलुबार मर्यादा में बारह थे और वे चौथा पौचवीं सताब्दी से नवीं सताब्दी के पांच विभिन्न कालों में आदिमृत हुए। फिर भी उनकी विचारधारा प्रायः एक ही

१ 'विषय प्रबन्ध सारम्भ' (प्रथम संस्करण)—श्री पी० श्री० आचार्य, पृ० १६।

भी । भक्ति-भान्धोलन के उदय-काल में तमिळ-प्रदेश की जो धार्मिक राजनीतिक और सामाजिक स्थिति थी उसी ने आळ्वारों को जन्म दिया । वैदिक भक्ति को यज्ञादि द्वारा और कठिन परिश्रम से ईश्वर भजना मोलप्राप्ति को मानती थी केवल कुछ ही लोगों के लिए साध्य थी । जनसाधारण को उसमें कोई अधिकार नहीं था । आळ्वारों के सामने जो संस्कृत और तमिळ—दोनों के विद्वाद् वे दो परम्पराएँ थीं । वहाँ तक विचारों का सम्बाध है, संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध वेद, उपनिषद् और गीता के विचारों का उन्होंने पुरा-पुरा उपयोग किया । जनता की भाषा तमिळ में उन विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने उसकी समी-साहित्यिक परम्पराओं को अपनाया । वेद और बौद्ध तमिळ भाषा पर अधिकार कर अपने नास्तिक विचारों और अप्राकृतिक नियमों से जनता को कुमांग पर से बांध रहे थे तब वैदिक भक्ति के स्वल्प को सुधार कर पुनः की मीग के अनुसार उसमें परिवर्तन लाने की आवश्यकता थी जिससे कि वह सबके लिए सुलभ और आकर्षक हो सके । आळ्वारों ने बस सबसे पहले यही कार्य किया ।^१ इसी में आळ्वारों की मौसिकता है । यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है कि आज ब्रह्मचर्य धर्म का जो स्वल्प दृष्टिगोचर होता है उसको वह रूप देने का पूरा पूरा ध्येय आळ्वारों को है । आळ्वारों ने भक्ति को यदि वह रूप नहीं दिया होता तो आज वैष्णव भक्ति का स्वल्प कुछ भिन्न ही होता इसमें संदेह नहीं ।^२

आळ्वारों की विचार-धारा वेद और गीता से प्रभावित थीस पड़ती है । प्रथम तीन आळ्वारों (पोयमे आळ्वार, मूठत्ताळ्वार और पेयाळ्वार) ने अपनी रचनाओं में वैदिक विचारों को अधिक व्यक्त किया है, जिससे उनके वेदों के पारिष्ठत्य का पता चलता है । चौथे आळ्वार (तिरुमळिस्सै आळ्वार) ने ऐसे विचारों को व्यक्त किया है जो पाँचरात्र मत से प्रभावित थीस पड़ते हैं । गम्माळ्वार की रचनाओं में तो वेद और गीता के विचार भरे पड़े हैं । इसी कारण से उनकी रचना तिरुवायमोळी को 'तमिळ वेद' कहा जाता है और उनको 'वेदम् तमिळ वेयिदवन्' अर्थात् वेद को तमिळ में प्रस्तुत करने वाला' कहा गया है । गीता में भुक्ति के तीन मार्ग बताये गये हैं—ज्ञान कर्म और भक्ति । आळ्वारों ने कर्म और ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता स्थापित की है । भजवान् की सेवा किसी भी रूप में की जा सकती है । आळ्वारों के

1 "Alvars are the first people who gave a new shape to Bhakti School, making simple, designed not for serving the purpose of worship by the elite, but subserve the similar ends for the quite ordinary folk. —History of Tirupati Vol. I Dr S. Krishna swamy Aiyengar pp 73-74

2 "It seems fairly certain that the Alvars were the earliest devotees who moved forward in the direction of such emotional transformation."—A History of Indian Philosophy (2nd Edition) —Dr S. N. Das Gupta, Vol. III p. 82.

अनुसार मिथ्य भगवान् ही ऐसे हैं या भक्तों की पुकार सुनकर उन्हें अपनी धरण में लेते हैं और उनको मुक्त कर सकते हैं। जहाँ भक्ति के अन्य सामान साधारण लोगों के लिए कठिन हैं वहाँ भगवान् की सेवा युक्त भक्ति सरल होकर भी भगवान् की कृपा को प्राप्त कर सकती है। भगवान् के नाम का स्मरण मात्र करता पर्याप्त है। एक मिथ्य से भगवत्सेवा में सीन रहना भक्ति का खेळ रूप है। चाहे भगवान् की सेवा किसी भी रूप में हो भक्ति निश्चित है। यह भक्ति भगवान् की सेवा करने के अनिवार्य कर्म के रूप में नहीं, बल्कि वह भक्त की सेवा से प्रसन्न होने पर भगवान् के अनुग्रह के रूप में होती है। वैष्णव मत में इसे प्रपत्ति भगवा धारणागति कहते हैं। भगवान् की धरणा में अपने को पूर्ण रूप से समर्पित करने से भगवान् के अनुग्रह का उदय हो सकता है। आठवारा की रचनाओं में आरम्भ से अन्त तक इस प्रकार के विचार भरे पड़े हैं जो गीता द्वारा प्रतिपादित हैं। आठवारों ने अन्य सभी मार्गों से भक्ति-मार्ग को खेळ बठाकर धारणागति-रूप पर अधिक जोर दिया है।¹ आठवारों के अनुसार भगवान् को संतुष्ट करने के लिए यज्ञ या पशु-बलि व्यर्थ है। आठवारों की रचनाओं में अहिंसा के उपदेश विधे मिलते हैं।

आठवार अनुष्ठानासक्त थे। ऐसे भगवान् को सर्वसाधारण की कल्पना म आ सके, इन्हीं के पुणों का वर्णन आठवारों ने किया है। आठवार पुन में तो तमिळ-प्रदेश में कितने ही मन्दिर थे जिनमें स्थित भगवत्पूजियों के वसन करने और सामूहिक रूप (Congregational) में प्रार्थना यजनदि करके आराम बिभोर हो जाते थे। आठवारों ने भी स्वयं विभिन्न वैष्णव मन्दिरों की यात्रा कर उनमें स्थित भगवान् के अनुग रूपों (भगवत्पूजक रूप) की स्तुति में अनेक पद गाये हैं। मन्दिरों में जाकर भगवान् के दर्शन करना भगवान् की सेवा में उपस्थित होना भगवत्पूजक करना भगवान् के अनुग्रह पर विश्वास रखना आदि बातें उत्कृष्टतम पुन को आठवार की देन है। इस प्रकार भक्तों को सर्वशः भगवत् विमल में उत्कृष्ट रहने की प्रेरणा देकर आठवारों में अपने पुन में भक्तिमय धार्मिक वातावरण की सृष्टि की। यह सबसे बड़ी बात है।

कुछ विचारकों का मत है कि तमिळ-प्रदेश में भक्ति-प्राप्तोत्तन का वा रूप सिपर हुआ उसका क्षेत्र बौद्ध और जैन धर्म को है। डा० ताराचन्द्र ने अपने ग्रन्थ में एक स्थान पर आठवारों और नायनमार्गों पर बौद्ध और जैन धर्मों के प्रभाव का बतलाते हुए लिखा है —

- 1 Much that is actually taught in Geeta is scattered through and through the works of Alvars who mention in unmistakable terms the three fold paths of Salvation by Karma, Jnana and Bhakti. But Alvars come to the conclusion that though they are recognised means, in the last resort is to depend entirely on the Grace of God.

आळ्वार ने अपने कुछ नम्माळ्वार को ईश्वर सरस माना था और उनकी सेवा में अपने समस्त जीवन को अर्पित कर दिया था। इस प्रकार आळ्वारों की विचार-धारा और इस्लामी विचार धारा में अनेक बातों में समानता देख पड़ना केवल संयोग की बात है और वा ताराचन्द्र के अनुसार यह मानना कि इस्लामी विचार-धारा से प्रभावित होकर आळ्वारों ने अपनी रचनाओं से स्त्री-निंदा की प्रशंसा किया असंगत होगा। हो सकता है कि इसकी सलाखी के परचाए मान जाने जायें कुछ संघ में इस्लामी भक्ति-पद्धति से प्रभावित हुए हों।

आळ्वार सुधारक ही नहीं बल्कि उच्चकोटि के कवि भी थे। भक्ति की व्याख्या के लिए उन्होंने तमिळ की सभी साहित्यिक परम्पराओं को अपनाया था। उनके मधुर शीतों के संग्रह "दिव्य प्रबन्धम्" को पाकर तमिळ का भक्ति साहित्य भव्य है। उनके वेप पदा में हुलसी को भङ्ग करने वाली शक्ति है। कठोर से कठोर हृदय को भी द्रवित करने का सामर्थ्य है। भक्तिरससिन्धु में डुबो देने वाला सरस सपीत है। उनके शीतों को गा गाकर कितने ही भक्त आत्म-विमोह हो जाते थे और तन्मयावस्था तक पहुँच जाते थे। आळ्वारों ने न जाने कितने प्रकार से भवभाव से भक्त के सम्बन्ध की कल्पना की है। बिसे परवर्ती साहित्य में लज्जा भक्ति कहा गया है, वह आळ्वार साहित्य में छूट-छूट कर भरी पड़ी है। आळ्वारों ने वात्सल्य, शस्त्र, शस्य और काम्ना आदि से भक्ति का विवेचन किया है।¹ आळ्वार भक्ति-भावना को स्त्री-पुरुष के मधुर सम्बन्ध के रूप में मानते थे। आध्यात्मिक जागृति का इन्द्रिय सुलभ प्रकाशन और उनके लिए आत्यधिक प्रेरणा भी तभी संभव है जबकि सन्धु प्रतीकों के साधन द्वारा उनको अनुभव गम्य कर दिया जाय। आळ्वारों ने अपने शीतों में प्रतीकों द्वारा प्राप्त ऐन्द्रिय अनुभवों को अपने आत्मानन्द का आधार बनाया था। आळ्वारों के पदों में उच्च कोटि के रहस्यवादी विचार भी देखने को मिलते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आळ्वारों ने परवर्ती समाज को बहुत ही प्रभावित किया होता। आळ्वारों की विचार-धारा से प्रभावित होकर अनेक जाचार्यों ने उसका आलोचन विवेचन शुरू कर दिया। श्री रामानुजाचार्य की विधिष्टाईतवादी विचार-धारा का निर्माण तो आळ्वार-साहित्य की पृष्ठभूमि पर ही हुआ है, इसमें शन्देह नहीं। आळ्वारों ने भक्ति का जो दीपक जलाया था वह उनके समय के बाद भी शताब्दियों तक जलता रहा। आळ्वारों की भक्ति की रस-धारा विभिन्न जाचार्यों

1 "Nammalvar puts himself in all kinds of attitudes known to Literature, for expressing high emotion. We may therefore conclude that Nammalvar exemplifies par excellence the methods of personal devotion to the deity with a view ultimately to the attainment of that realization which is the goal of Mysticism of the School of Bhakti"—History of Tirupati : Dr. S. Krishna-swamy Aiyengar Vol I., pp. 154-155

हाथ बल्लर की ओर भावी गयी। इसी को मध्य करते हुए, भक्ति की जन्म-भूमि दक्षिण को मानकर ही भागवतकार ने संकेत किया है—

“अल्पमा इति साहं पुष्टि कर्त्तव्यके गता ।
वसन्तिवसन्तिमाहायस्य गुर्वीर्योर्भता गता ॥
तत्र घोरकलैर्घोमस्य पावर्षी सन्दिताभका ।
गुर्वसाहं निरं पाता पुत्राभ्यां सहस्रवत्तम् ॥
वसन्तवन पुनः प्राप्य नवीनैव सविकी ।
जसाहं युवती सम्पन्न खेच्छवता तु साम्प्रतम् ॥”^१

अन्त में भारतीय भक्ति-आन्दोलन में आळवार्तों और उनकी रचना “प्रबन्धम्” का जो स्थान है उसे स्पष्ट करने के लिए कवि ‘विनकर’ के निम्नलिखित विचारों को यहाँ उद्धृत करना पर्याप्त समझते हैं—

‘पीठा और मायवत तथा गीठा और रामानुज के बीच की कड़ी यह आळवार्त संत हैं। भक्ति का वर्धन आळवार्तों के तमिल-प्रबन्धों से आया है और कदाचित्, भागवत भी उसी प्रबन्धम् से प्रेरित है। “प्रबन्धम्” में आळवार्तों के पद मूल रूप में रचे गये हैं। पीछे वैष्णव विद्वानों ने उन पर टीकाएँ भी लिखीं। इस प्रकार “प्रबन्धम्” भक्ति-आन्दोलन का आदि ग्रन्थ बन गया।

“जमी तक मायवत पुठल ही भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ समझा जाता है। किन्तु हमारा अनुमान है कि इस आन्दोलन का मूल ग्रन्थ मायवत नहीं ‘प्रबन्धम्’ है। यह इस कारण कि यद्यपि भागवत और प्रबन्धम्—ये दोनों ग्रन्थ एक ही समय में मिले गये, फिर भी प्रबन्धम् की बहुत सी कविताएँ दूसरी-तीसरी सदी से प्रचलित जमी आ रही हैं। साथ ही यह भी विचारणीय है कि “प्रबन्धम्” की कविताएँ जनता की भक्ति-साधना की सीखी अविम्वल हैं। किन्तु भागवत की रचना पांडित्य के स्तर पर की गयी है। ‘प्रबन्धम्’ भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ क्यों माना जाय ? इसका संकेत भी भागवत ही देता है, क्योंकि उनका भी मत है कि भक्ति का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था।”^२

१ श्रीमद्भागवत माहस्य—अध्याय १ श्लोक ४८, ४९, ५० ।

२ “..... Hindus are by no means in accord as to its (Bhagvat Purana's) age or authorship but as ALBERUNI mentions it, it can have been hardly written after 900 A. D. and must be due to a community of singers in the Tamil Country”—Encyclopedia Britanica, Part 12, 4th Edition, p 162.

३ सहासि के बार अध्याय (द्वितीय संस्करण)—श्री राजपादे सिंह ‘विनकर’, पृ० २१६ ।

आलवारों की भक्ति का शास्त्रीय विवेचन और आचार्य-मुग

आळ्वारों में ईसा की छठी सताब्दी से लेकर नवीं सताब्दी तक तमिळ-प्रदेश में भक्ति की जो पावन गंगा बहाती थी वह बाध की सताब्दियों में भी प्रबलमान रही। आळ्वार मानुक भक्त कवि थे। उनका काम केवल भक्ति-भावना के समाधिमय क्षणों में अपने मानस में उत्पन्न होने वाले उगारों को सुस्वर पदावली में व्यक्त करना था। कहने का तात्पर्य यह है कि आळ्वारों के भक्ति-प्रधान गीतों में प्रेम और यज्ञ की भावनाओं का अतिरेक था और हृदय-पक्ष की प्रधानता थी जो साधारण मानुक मानव-हृदय को अनायास ही आकर्षित कर लेती थी।

आळ्वार भक्तों की परम्परा में उनके पश्चात् कुछ ऐसे विद्वान् हुए जिन्होंने आळ्वारों की भक्ति-भावना के लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि तैयार करने का प्रयत्न किया। ये जन-भाषा तमिळ के अतिरिक्त संस्कृत के भी बड़े विद्वान् थे। उनका कार्य विचार तथा सात्त्वार्थ द्वारा विरोधी-पक्ष का निराकरण और अपने मत एवं सिद्धान्तों का निष्पण्ण था। ऐसे विद्वानों की परम्परा जमी तो वे 'आचार्य' कहलाये। इसी कारण 'आळ्वार-मुग' के बाद का काल 'आचार्य-मुग' कहलाता है। ये आचार्य आळ्वारों के भक्ति-रस से प्रभावित अवस्था में किन्तु इस में पांडित्य का भी बल था। वे स्वामी संकराचार्य द्वारा उठाये गये अनेक प्रश्नों का पूरा समाधान कर देना भी अपना कर्तव्य समझा करते थे। इसलिये उन्होंने आळ्वारों के द्वारा प्रतिपादित भक्ति-मार्ग का अनुसरण करते हुए वैष्णव धर्म के आचारसूत दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन भी किया। एक और इन आचार्यों ने वैष्णव-सन्त आळ्वारों की भाव-प्रबल भक्ति की बाणी का संकलन और संपादन किया और विविध मन्दिरों में उनके मध्यमन, अध्यापन और गायन का प्रबन्ध किया। दूसरी ओर उन्होंने सर्वपूर्ण रीति में संस्कृत के माध्यम से 'प्रस्थान त्री' पर अपने भाष्य लिखे और संकर के मायावाद का खंडन किया।

चूँकि आळ्वार भक्तों के पश्चात् उनकी परम्परा में जाने वाले आचार्यों ने संकर के मायावाद की प्रक्रिया के रूप में ही अपने भक्ति-प्रधान संप्रदायों का प्रचार कर संघटित रूप से भक्ति-आन्दोलन चलाया, अतः यहाँ आचार्य संकर के विषय में कुछ कहना आवश्यक-सा प्रतीत होता है।

भारतीय संस्कृति के विकास के इतिहास में श्री संकराचार्य का अवतार एक युग परिवर्तनकारी घटना के रूप में माना जाता है। संकर का आधिनात्म आठवीं सताब्दी के आस-पास^१ तमिळ-प्रदेश के पश्चिमी भाग में जो मलाबार कहलाता है,

१ शंकर के आधिनात्म-काल के विषय में विद्वान् एकमत नहीं हैं। सी० एन० ब्रुप्पलस्वामी धम्मर ने "Shankar and his times" (The Three Great Acharyas, Natlans & Co Madras) नामक पुस्तक में "Age of Shankar" तथा फाल्गुनविरि ने 'शंकर विजय' में उनके जीवन और समय पर प्रकाश डाला है। उनका जन्म सं० ८४५ तथा निधन सं० ८७७ माना जाता है।

आत्मभाव नहीं के छट पर स्थित 'कातडी' नामक स्थान में एक गंभीरी ब्राह्मण परिवार में हुआ। शंकर युगीन आध्यात्मिक-जीवन बहुत ही अस्त-व्यस्त था। बौद्ध और वैश्व विरोधी थे। उनमें प्रारम्भ में जो बौद्धिक स्वस्वता थी वह समाप्त हो चुकी थी। शायद इस अनेक प्रकार के धार्मिक संप्रदायों में विमल था। धार्मिकता बौद्धमत की उन्नतता में पनपने वाले बख्शान सहजमान जैसे सामग्री सम्प्रदायों के साधन-मार्ग लोक जीवन को बहुत आचरणों से आदर्श भ्रष्टकर बहुत उपासना-मानों की ओर ले जा रहा था। परम्परागत लोगों से अलग होकर वैदिक धर्म प्रभावहीन हो चुका था। इस समय असीमित प्रतिभा-संपन्न शंकर ने एक ओर ज्ञान प्रधान जीमिपदिक धर्म की पुनः स्थापना की और दूसरी ओर वैश्व विरोधी विचार शायद के नाम पर पनपने वाले बुद्धधर्मक धर्मों को रोककर प्रथम आध्यात्मिक-बौद्ध का प्रतिपादन किया। बौद्ध और बौद्ध धर्मों के मूल सिद्धांतों की संपत्ति समुत्तम तर्क-सौखी के द्वारा उन्होंने वैदिक धर्म में सिद्ध की और अपनी दिव्य प्रतिभा से बहुत प्रबलित बौद्ध एवं बौद्ध मत का पंडित कर अपने सिद्धांतों की स्थापना की। जाति-पाति की संकीर्ण परिधि को हटाकर तथा परम्परागत लोगों को दूर कर समाज को एक नवीन दिव्यलोक दिखाया। उन्होंने वैदिक धर्म की रक्षा के लिए समस्त भारत में मठ बनवाये और श्रुति-स्मृति विहित वैदिक धर्म का पुनः स्थापन करके निरुक्ति-मार्ग के वैदिक संन्यास-धर्म को पुनर्जन्म दिया। उनके विचारों का प्रभाव भारत के सभी प्रांतों पर पड़ा है और उनकी विचार-तरंगों के तीव्र-प्रवाह में अन्य सभी छोटे-मोटे मत-मठान्तर विहीन हो गये।

शंकर का कथन था कि श्रुति कथित सिद्धांतों में कोई विरोध नहीं है केवल उनकी व्याख्या में अन्तर है। वैदिक धर्म के इन्होंने जो स्वाभाविक विभाग 'ज्ञान और 'आचरण' बताये। प्रथम विभाग में उन्होंने ब्रह्म के स्वरूप का निर्णय कर उसका सम्बन्ध जीव और प्रकृति से बनाया और दूसरे आचरण-पक्ष में मनुष्य के आचरणों का निर्णय किया। शंकर का दार्शनिक सिद्धांत 'भूतभाव' कहलाता है। उनके अनुसार अस्त-व्यस्त ब्रह्म है। केवल एक श्रुत परब्रह्म ही सत्य है। केवल भ्रम मयका माया से भ्रम की प्रतीति होती है। ब्रह्मन्तः जीवार्त्मा परमात्मा का स्वरूप है। माया मानवीय दृष्टि में भ्रम उत्पन्न करती है जो मिथ्या है। शंकर माया को वास्तविकता ठनिक थी नहीं मानते और उनकी दृष्टि में वह केवल अविद्या है जो ब्रह्म ब्रह्म का साक्षात्कार होते ही विहीन हो जाती है। शंकर ने 'तत्त्वमसि' 'ब्रह्म ब्रह्मास्मि' भादि महावाक्यों की तर्कमय व्याख्या करके ऐसे मुक्ति-संगत धर्म-दर्शन का प्रचार किया जिसने जनता को अन्तर्मुख करके सत्य ज्ञान का साक्षात्कार कराया।

पर मोक्षमात्र तिसरु शंकर का समय उक्त स्थिति से एक सामान्य पूर्व मानते हैं। कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि वे सभी दार्शनिकों के पहले ही आदिष्ट हुए थे।

आळ्वारों की भक्ति का शास्त्रीय विवेचन और आचार्य-युग

आळ्वारों ने ईसा की छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक तमिळ-प्रदेश में भक्ति की जो वाक्य रचा बहायी भी यह बाद की शताब्दियों में भी प्रबलमान रही। आळ्वार भावुक भक्त कवि थे। उनका काम केवल भक्ति-भावना के समाधिमय क्षणों में अपने मानस में उत्पन्न होने वाले उपायों को सुन्दर पद्यावली में व्यक्त करना था। कहने का तात्पर्य यह है कि आळ्वारों के भक्ति-प्रधान पीठों में प्रेम और भक्ता की भावनाओं का अतिरिक्त का और हृदय-यन्त्र की प्रधानता थी, जो साधारण भावुक मानव-हृदय को अनायास ही आकर्षित कर लेती थी।

आळ्वार भक्तों की परम्परा में उनके पश्चात् कुछ ऐसे विद्वान् हुए जिन्होंने आळ्वारों की भक्ति-भावना के लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि तैयार करने का प्रयत्न किया। ये जन-भाषा तमिळ के अतिरिक्त संस्कृत के भी बड़े विद्वान् थे। उनका कार्य विचार तथा सास्त्रार्थ द्वारा बिरोधी-यन्त्र का निराकरण और अपने मत एवं सिद्धान्तों का निष्पत्ति था। ऐसे विद्वानों की परम्परा जसी तो वे आचार्य कहलाये। इसी कारण 'आळ्वार-युग' के बाद का काम 'आचार्य-युग' कहलाता है। ये आचार्य आळ्वारों के भक्ति-रस से प्रभावित अवश्य थे किन्तु इन में पाश्चात्य का भी रस था। वे स्वामी शङ्कराचार्य द्वारा सृष्टे गये अनेक प्रश्नों का पूरा समाधान कर देना भी अपना कर्तव्य समझ करते थे। इसीलिए उन्होंने आळ्वारों के द्वारा प्रतिपादित भक्ति-मार्ग का अनुसरण करते हुए वैष्णव धर्म के आधारभूत दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन भी किया। एक ओर इन आचार्यों ने वैष्णव-सन्त आळ्वारों की भाव-प्रवण भक्ति की बाणी का संकलन और संपादन किया और विभिन्न मन्दिरों में उनके अर्पण, अर्पण और वाक्य का प्रबन्ध किया। दूसरी ओर उन्होंने तर्कपूर्ण रीति में संस्कृत के माध्यम से 'प्रस्थान त्री' पर अपने आप्य सिद्धे और संकर के मायावाद का खंडन किया।

भूक्ति आळ्वार भक्तों के पश्चात् उनकी परम्परा में आने वाले आचार्यों ने संकर के मायावाद की प्रक्रिया के रूप में ही अपने भक्ति-प्रधान संप्रदायों का प्रचार कर संगठित रूप से भक्ति-आन्दोलन चलाया, अतः यहाँ आचार्य संकर ने विषय में कुछ कहना आवश्यक-सा प्रतीत होता है।

भारतीय संस्कृति के विकास के इतिहास में श्री शङ्कराचार्य का अवतार एक युग परिवर्तनकारी घटना के रूप में माना जाता है। संकर का आधिपत्य आठवीं शताब्दी के आस-पास^१ तमिळ-प्रदेश के पश्चिमी भाग में जो मत्स्यार कहलाता है,

१ शङ्कर के प्राधिपत्य-काल के विषय में विद्वान् एकमत नहीं हैं। सी० एन० ह्यूयुत्सामी अप्पर ने "Shankar and his times" (The Three Great Asharyas, Natisan & Co Madras) माध्याचय ने "Age of Shankar" तथा धानश्यामि ने 'शङ्कर विजय' में उनके जीवन और समय पर प्रकाश डाला है। उनका जन्म सं० ८४२ तथा निधन सं० ८७७ माना जाता है।

आसनाम नहीं के तट पर स्थित 'कासडी' नामक स्थान में एक नंबूद्री ब्राह्मण परिवार में हुआ। शंकर युगीन ब्राह्मणिक-जीवन बहुत ही अस्त-व्यस्त था। जैन बौद्ध भावि बेर बिरोधी थे। उनमें प्रारम्भ में जो बौद्धिक स्वस्मिता थी वह समाप्त हो चुकी थी। साथ ही अनेक प्रकार के धार्मिक संप्रदायों में विभक्त था। धर्मात्मासी बौद्धमत की धनधन्यता में पनपने वाले बख्शान सहजमान जैसे नाममात्र संप्रदायों के साधन-मार्ग भोक्त जीवन को विकृत आचरणों से आवर्ण प्रकटकर विकृत उपासना-मार्गों की ओर ले जा रहा था। परम्परागत शेषों से ऊर्ध्व होकर वैदिक धर्म प्रभावहीन हो चुका था। इस समय धर्मोद्विग्न प्रतिभा-संपन्न चकर ने एक मोर ज्ञान प्रमाण औपनिषदिक धर्म की पुनः स्थापना की और दूसरी ओर बेर बिरोधी विचार-धारा के नाम पर पनपने वाले कृत्रिममूक धर्मों को रोककर प्रथम ब्राह्मणिक-धर्म का प्रतिपादन किया। बौद्ध और जैन धर्मों के मूल सिद्धान्तों की संमति अद्भुत चर्च-समी के द्वारा उन्होंने वैदिक धर्म में सिद्ध की और अपनी दिव्य प्रतिभा से बलुदिक प्रवर्धित बौद्ध एवं जैन मत का चर्च कर अपने सिद्धान्तों की स्थापना की। जाति-पाति की संकीर्ण परिधि को हटाकर तथा परम्परागत शेषों को दूर कर समाज को एक नवीन दिव्यभोक्त दिखाया। उन्होंने वैदिक धर्म की रक्षा के लिए समस्त भारत में मठ बनवाये और श्रुति-स्मृति विहित वैदिक धर्म का पुनः स्थापन करके निकृति-धर्म के वैदिक संग्राह-धर्म को पुनर्जन्म दिया। उनके विचारों का प्रभाव भारत के सभी प्रांतों पर पड़ा है और उनकी विचार-धारा के तीव्र-प्रभाव में अन्य सभी छोटे-मोटे मत-मतान्तर विहीन हो गये।

चंकर का कथन था कि श्रुति कथित सिद्धान्तों में कोई विरोध नहीं है। केवल उनकी व्याख्या में अंतर है। वैदिक धर्म के उन्होंने दो स्वाभाविक विभाग 'दान' और 'भारत' बताये। प्रथम विभाग में उन्होंने ब्रह्म के स्वरूप का निर्णय कर उसका सम्बन्ध जीव और प्रकृति से लगाया और दूसरे भाग-भाग में मनुष्य के आचरणों का निर्देश किया। शंकर का दार्शनिक सिद्धान्त 'मईतवाद' कहलाता है। उनके अनुसार समस्त संसार असत्य है। केवल एक सुख परब्रह्म ही सत्य है। केवल भ्रम भ्रमण माया से भ्रम की प्रतीति होती है। बलुतः जोबारा परमात्मा का स्वरूप है। माया भ्रमण माया से भ्रम की प्रतीति होती है। जो भ्रमण है। शंकर माया को वास्तविकता तनिक भी नहीं मानते और उनकी दृष्टि में वह केवल भ्रमण है जो मईत ब्रह्म का साक्षात्कार होते ही विहीन हो जाती है। चंकर ने 'तत्त्वमसि' ब्रह्म ब्रह्मसि' भावि महावाक्यों की तर्कगम्य व्याख्या करके ऐसे भुक्ति-संपन्न धर्म-धर्म का प्रचार किया जिनके बनना को मनुष्य के सत्य ज्ञान का साक्षात्कार कराया।

वर सोचमात्र सिसक चंकर का सत्य उस स्थिति से एक शांतिपूर्ण पूर्व जानते हैं। कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि वे नहीं धर्म के पहले ही प्राविष्ट हुए थे।

शंकर ने उपनिषदों के आध्यात्मिक तथ्यों के आधार पर अपने अद्वैतवाद के सिद्धांतों को स्थिर किया और घोषित किया कि छुट्ट बुद्धमित्य मुक्त परमात्मा के अतिरिक्त जगत् में कोई परमार्थ सत् वस्तु नहीं है। "सर्व सत्त्विंद ब्रह्म" महाकाम्य से उन्होंने ब्रह्म को निर्विशेष निरुपेक्ष निराकार बताया। उनका कहना है कि धृतिवर्षों में ब्रह्म नहीं सगुण ब्रह्म का वर्णन किया गया है वह केवल व्यावहारिक दृष्टि से उपासना के हेतु ही है। उनके अनुसार ब्रह्म का वास्तविक रूप निगुण है।

शंकर का आचरण-पक्ष भी महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार स्मृति-ग्रन्थों में निरूपित आचार-व्यवहार अपना विशेष महत्व रखते हैं, बिना के बिना न तो छुट्ट ही सम्भव है और न ब्रह्मभारमैव ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता ही। शंकर सिद्धान्त के आचरण-पक्ष के अनुसार कर्म करना भी अनिवार्य है। परन्तु अन्त में कर्म को त्याग कर संन्यास लेना आवश्यक है। क्योंकि सब वासनाओं और कर्मों को त्यागे बिना ब्रह्म ज्ञान असंभव है। यही शंकर सिद्धान्त में 'निरुक्ति-मार्ग' कहलाता है। इसी को संन्यास मिष्टा या ज्ञान-निष्ठ भी कहा जाता है। शंकर ने उपनिषदों ब्रह्म-गुणों और धीता को ज्ञान और कर्म का समुच्चय करने वाली कृतियां मानकर अपने सिद्धान्त के दोनों पक्षों की संयति उनसे लबायी। उन्होंने 'प्रस्थानत्रयी' पर अपना नया भाष्य लिखा। अपने अद्वैत मत के तर्क-संपत् विचारों का प्रचार कम्पाकुमारी से हिमालय तक किया। वेदान्त की कुबुद्धि बजाते हुए बौद्धों के साम्राज्य को क्षिप्त-मिश्र कर दिया। सत्त्व में अपनी प्रसर प्रतिभा विद्वत्ता और असाधारण संगठन-शक्ति के बल पर, वैदिक वर्ग पर जो विपत्ति आ बयी थी उसे दूर कर सके।

इसमें सन्देह नहीं कि शंकर मत के प्रभाव से समस्त देश के आध्यात्मिक जीवन में एक नवीन शक्ति का उत्थेय हुआ और नाममार्गीय तथा अन्य वैद विरोधी मतों का का गतिरोध हुआ। किन्तु उपासना के क्षेत्र में शंकर का अद्वैतवाद भारतीय जन-मानस को छु ठक नहीं सका। इसका कारण स्पष्ट है। शंकर ने ब्रह्म की अद्वैतता को उस अमूर्त स्थिति तक पहुँचा दिया था कि सामान्य व्यक्ति ने उसे अपनी बुद्धि से ग्रहण करने में अपने की असमर्थ पाया। दूसरी ओर संन्यास को आवश्यक बताकर उन्होंने समाज-वर्ग की उपेक्षा कर दी। फलतः साधारण व्यक्ति का मानुस हृदय शंकर के अद्वैत सिद्धान्त से कोई भावनामय सम्बन्ध नहीं स्थिर कर सका।

बिनाया या चुका है कि ईसा की छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के नाम में तमिळ-प्रदेश में आठवार और नाममार्गों ने हृदय पक्ष प्रमाण भक्ति की रस द्वारा प्रभावित की की जिसमें सारा समाज ग्रह गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि आठवारों और नाममार्गों की प्रेममूलक भक्ति-भावना की पावन धरिता बुद्धि-यत्न प्रधान शंकराचार्य के मायावादी प्रस्तर तन्त्रों की भेदकर पहाड़ी निर्मलरिणी की भाँति अबाध गति से प्रवहमान हुई। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि शंकर के अद्वैत सिद्धान्त का प्रभाव भारत के दार्शनिक चिन्तन के समस्त क्षेत्र पर पड़ा था। अतः आठवारों

और नायनमारों की परम्परा में जाने जाने तमिल-प्रदेश के भक्तों को इस बात की बड़ी आवश्यकता प्रतीत हुई कि तमिल सभ्यों की प्रेम भक्ति प्रधान विचार-धारा को सुरक्षित रखना ईश्वर के तर्क-प्रमाण मायावाद का खण्डन किये बिना कठिन है। उन्होंने ईश्वर के मायावाद का खण्डन दार्शनिक दृष्टि से करने का उद्देश्य से भाळ्वारों की भक्ति-भावना के लिए निश्चित दार्शनिक पृष्ठभूमि तयार की। उन्होंने व्याळ्वारों के 'तमिल वैश्व' का मनी मीति व्यप्ययन कर संस्कृत शास्त्रों से संगति बैठाने का प्रयत्न किया। ये आचार्य 'उमय वेदाश्रयी' कहलाये। इन आचार्यों ने दर्शन के क्षेत्र में श्रद्धा के प्रकाश को मिटाने के लिए तर्कपूर्ण सूत्री में संस्कृत साहित्य का विपुल सर्जन किया और अपने विचारों का प्रचार करने के लिए देश के प्रधान क्षेत्रों में भ्रमण कर विद्वानों से शास्त्रार्थ किया। इन आचार्यों के उद्देश्यों के मूस में तीन बातें थीं। वे हैं—(१) वैदिक धर्म का महत्व-स्थापन (२) अवैदिक संप्रदायों का पूर्ण बहिष्कार, और (३) भाळ्वारों के द्वारा प्रतिपादित धारणागति वाली भक्ति का प्रचार।

नाथमुनि

यह सूचना नहीं चाहिये कि वेण्कट-आचार्यों की जो परम्परा मनी छठाब्दी के बाद बनी, उसका मूस-स्रोत तमिल-प्रदेश के भाळ्वारों की परम्परा में ही पाया जाता है। भाळ्वारों के बाद माने जाने वाले आचार्यों में सर्वप्रथम श्री नाथमुनि माने जाते हैं। ये मनी छठाब्दी के उत्तरार्द्ध और दसवीं छठाब्दी के पूर्वार्द्ध में जीवित थे।^१ इनका जन्म 'वीरमारायलपुरम्' नामक स्थान में हुआ था। इनके जीवन का अधिकतर समय थोरैय में बीता। कुछ लोग मानते हैं कि इनके पूर्वज क्याचित् उत्तरी भारत के किसी प्रदेश से आये थे और वे सागवत धर्मावलम्बी रह चुके थे। नाथमुनि संस्कृत तथा तमिल के सब विद्वान् थे। इन्होंने बड़े परिश्रम से भाळ्वार भक्तों के प्रचलित गीतों का संग्रह किया और संपादन किया जो 'नासाविर दिव्य प्रबन्धम्' के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि नम्माळ्वार के पदों को प्राप्त करने के लिए नाथमुनि भाळ्वार के जन्म-स्थान 'तिन्नमरी' में जब गये^२ तब नम्माळ्वार ने इन्हें स्वप्न में अपने सभी पद सुनाये। अतः मुख्यरम्परा ग्रन्थों और दिव्यसूरि चरित' के अनुसार नम्माळ्वार से नाथमुनि का गुरु-शिष्य-सम्बन्ध था।^३ लेकिन नाथमुनि ने नम्माळ्वार की शिष्य-परम्परा में जाने वाले पञ्चकुच मुनि का ही शिष्यत्व ग्रहण किया था और तमिल-वैश्व का महत्व उन्हीं से समझा था। इन्होंने ही थोरैय के मन्दिर में भाळ्वार

1 "Nathamuni His life and times"—R. Ramanucharya, M. A., *Journal of Annamalai University*, Vol. 9 June, 1940

2 *History of Sri Vainavas*—T. A. Gopinatha Rao p. 8

3 *History of Indian Philosophy*—Dr. S. N. Das Gupta, Vol. III (2nd Edition) p. 94.

के गीतों का बाह्य-मण्डपी में मध्यम और अन्त्य का प्रबन्ध किया। आळ्वारों के गीत ब्रह्मसूत्र मन्त्रियों में गाये गये और उनकी तमिल-वेद की संज्ञा हो गयी।^१ यह भी प्रसिद्ध है कि नाबमुनि ने आळ्वारों के पदों को वेदों के समान एक निश्चित गीत पद्धति में गाये जाने की योजना की और यीरवम में उनके मायकों की नियुक्ति की। ये गायक 'अर्पूर' कहलाते थे।^२

नाबमुनि ने भक्ति का द्वार सब के लिए खोल रखा था। इन्होंने कम एवं भक्ति सोक तथा वेद—दोनों में सामंजस्य स्थापित कर भक्ति-मार्ग का विश्व धृष्ट स्त्री पुरुष सबके लिए समुक्त कर दिया। इनके अनेक शिष्य हुए, जिन्होंने भक्ति-मार्ग का प्रचार किया। इनके प्रधान शिष्य ११ थे जिनमें पुञ्जरीकाय कुवकनाथ और श्रीकृष्ण सक्मीनाथ प्रमुख थे। स्वयं नाबमुनि ने उत्तरी भारत के मधुरा द्वारिका पुरी बड़ीनाथ आदि प्रमुख स्थानों में भ्रमण कर आळ्वारों के भक्ति-सिद्धान्तों का प्रचार किया था।

बिसिष्टाईतवाच का सिद्धान्त यद्यपि धीरामानुज द्वारा प्रतिपादित समझा जाता है, तो भी वास्तव में उस सिद्धान्त की नींव नाबमुनि ने ही डाली थी। प्रसिद्ध आचार्य श्री वेदान्त-वेदिक ने नाबमुनि को ही श्री सम्प्रदाय के संस्थापक के रूप में माना है।^३

यद्यपि नाबमुनि तमिल के बड़े पण्डित थे तो भी उनकी कोई स्वतन्त्र रचना तमिल में अब उपलब्ध नहीं है। केवल तम्माळ्वार पेरियाळ्वार की स्तुति में गाये गये कुछ स्वतन्त्र पद ही मिलते हैं। परन्तु संस्कृत में इनकी सिखी तीन पुस्तकों का उत्सेह मिलता है—'न्याय-तत्त्व' पुरुष निम्न' और 'योग-रहस्य'। 'योग-रहस्य' का उत्सेह मिलता है। 'न्याय-तत्त्व' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो बिसिष्टाईतवाची सिद्धान्त का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। इसमें उस मत के दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रारम्भिक विवेचन है।^४

नाबमुनि के परचाय पुञ्जरीकाय (उम्पकोडार) एवं राममिथ (मणुवकास नाम्नी) नाम से दो आचार्य हुए। राममिथ बाह्यण ये श्रीर पुञ्जरीकाय के शिष्य थे। राममिथ के भी चार शिष्य थे। राममिथ श्रीरंगम् में रहते हुए भक्ति-मार्ग का प्रचार किया करते थे। राममिथ के बाद आने वाले एक प्रतिष्ठ आचार्य यामुनाचार्य थे। इनका

१ प्रपन्नामुत—इलोक १०१ १०७।

2. *The Hymns of Alvars*—J S M. Hooper p 27

३ दृष्टिग्रह मुरय भावाबनुमिति शिष्ये नाबमुन्यानुरीक
वृत्तास्त्रैर्वाचसेये धिष्टुनि विरहिते नास्तिक्यग्रहाक्षम्।
नाबोपन्न प्रबुल बहुनिरुपचितं यामुनेय प्रबन्ध
इवातं सम्पपनीर्वा रिद भक्तिजनमः कथनं वचनं वा॥

—उत्पमुक्त कथ्य श्री वेदान्त वेदिक इलोक १३१

४ न्याय पट्टिमुद्रि—श्री वेदान्त वेदिकाचार्य पृ १६।

तमिल-नाम 'आळव्वार' है। आळव्वार नाममुनि के पीछे थे। तोषाट्टन करते समय मद्युप में बमुना नदी में स्नान कर नाममुनि इतने प्रसन्न हुए थे कि उसके उपसक्त में अपने पुत्र का नाम 'यामुन' रख दिया। यामुनाचार्य का जन्म सन् ११८ ई० में और निधन १०९८ में माना जाता है।^१ इन्होंने राममित्र से वेदों की विद्या प्राप्त की और वे एक सफल शक्तिक बन गये। नाममुनि के समान आम्मारम निष्ठात विद्वान् थे। इन्होंने एक राजा के पुरोहित को शास्त्रार्थ में परास्त किया और राजा से पुरस्कार स्वरूप उसके राज्य का एक हिस्सा प्राप्त किया। फिर वे छट-बाट का जीवन बिताते गये। राममित्र ने जब देखा कि यामुन अपने राजसी जीवन में ही दिन-पट बिताते रहे, तब उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ और उन्होंने 'यामुन' को किसी तरह समझ-बुझकर जन्म में ब्रह्मात्म-विद्या की अनिवार्य उत्पत्ति की और उन्हें भक्ति-शास्त्र का उपदेश देकर अपना दिव्य बताया।

यामुनाचार्य ने नाममुनि के सिष्य कुरुकमाय से अष्टांग-योग की विद्या भी प्राप्त की। राममित्र के गोसोक-वास के अनन्तर यामुनाचार्य (आळव्वार) ही श्रीरंगम् के आचार्य-सीठ पर आसक्त हुए। इनके अनेक सिष्य थे जिनमें २१ प्रधान थे। इनके सिष्यों में सभी वर्णों के लोग थे। इन्होंने बौद्ध राजा और उसकी पत्नी को बौद्ध सम्प्रदाय में दीक्षित किया। यामुनाचार्य गम्माळ्वार की रचनाओं के बड़े प्रेमी थे, जिनमें सुप्रसिद्ध उल्बकोटि के भाषों को लोगों को सुनाते थे। इन्होंने सभी आळव्वारों के काव्यों के प्रचार, प्रसार और अध्यापन के अतिरिक्त नवीन ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। इनके ही ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। वे हैं—(१) स्त्रोत रत्नम्, (२) चतुःस्तोत्री, (३) सिडि जय, (४) आपस-ग्रामाध्य (५) गीतार्थ संग्रह, और (६) महापुरुष निर्लब्ध।

यामुनाचार्य ने श्री रामानुज के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्हें अपने उत्तराधिकारी के रूप में चुन लिया था। "प्रपञ्चामृत" में कहा गया है कि यामुनाचार्य अपने अन्तिम समय में श्री रामानुज से मिलना चाहते थे। अतः उन्होंने श्री रामानुज को अपने पास बुलाया। परन्तु श्री रामानुज के उनके पास पहुँचने से पहले ही उन्होंने इहलोक-जीवा समाप्त कर ली। अतः श्री रामानुज यामुनाचार्य के मृत शरीर के ही दर्शन कर सके। रामानुज ने (जैसा कि कहा जाता है) देखा कि आचार्य के हाथ की तीन उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं और उनके संकेत का अर्थ उन्होंने समझ लिया कि यामुनाचार्य उनके द्वारा तीन कार्य करवाना चाहते थे—ब्रह्म-सूत्र तथा विष्णु-सहस्रनाम पर भाष्य और आळव्वारों के दिव्य 'ग्रन्थों' की विस्तृत टीका। रामानुज ने आचार्य की तीनों इच्छाओं की पूर्ति करने की प्रतिज्ञा की।

श्री रामानुजाचार्य

पश्चिम नाममुनि यामुनाचार्य जैसे आचार्यों द्वारा श्री विष्णु मठ की कपरेसा

¹ History of Indian Philosophy—Dr S. N. Das Gupta, Vol. III, (2nd Edition), p. 97

तयार हो गई थी। तथापि उसे सुख्यवस्थित रूप प्रदान करने और उसका वैध व्यापी प्रचार करने का भेष श्री रामानुजाचार्य (तमिळ-नाम—इय्येय पैरमाळ) को ही है। श्री रामानुज का जन्म सन् १०१९ में मद्रास के समीप तेदकुम्बूर नामक स्थान में हुआ था। उन्होंने अपनी बाल्यावस्था में 'यावक प्रकाश' नामक एक अद्वैती विद्वान् के यहाँ वेदांश का अध्ययन किया। इस समय वे कांचीपुरम् में रहते थे। अद्वैतवाद के विषय में अपने गुरु से मत-भेद हो जाने से उन्हें वहाँ से हटाना पड़ा। फिर रामानुज ने श्रीरङ्ग जाकर आठवारों के प्रबन्धों का भसी भाँति अध्ययन किया और श्रीवैष्णव मत को अपनाया। उसके पश्चात् ये यामुनाचार्य के शिष्य हुए और श्रीसम्प्रदाय की स्थापना की। यामुनाचार्य के ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात्, अपनी बसावाराण प्रतिमा और विद्वत्ता के कारण श्रीवैष्णव मत की गद्दी के उत्तराधिकारी बने। नावमुनि की तरह श्री रामानुज ने भी उत्तरी भारत के प्रमुख तीर्थ-स्थानों की यात्रा की। श्री रामानुज ने अपने भक्ति-विषयक सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए संस्कृत में अनेक ग्रन्थों और भाष्यों का प्रयत्न किया।

रामानुज ने अनुसार चित् बीज भीतर है और अचित् बाह्य भोम्य है। परमेश्वर इन दोनों का अन्तर्दामी है। दोनों निरपेक्ष हैं। किन्तु प्रथम तो स्वतः स्वतन्त्र होते हुए भी ईश्वर ने शरीर या प्रकार माने जाते हैं। श्री रामानुज भी ब्रह्म की अद्वैत सत्ता को मानते हैं, लेकिन उनके अनुसार उपयुक्त तीनों गुणों से विधिष्ट रहने के कारण विधिष्टाद्वैत है। रामानुज किसी भी पदार्थ को निपुण नहीं मानते। संसार के सभी पदार्थ भुल विधिष्ट हैं। ईश्वर सब सगुण है।

चंकर के अद्वैत मत में ब्रह्म और जीव की एकता मानी गयी है। जीव ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है और ब्रह्म के समान ही मुक्त और स्वप्रकाश है। परन्तु रामानुज के अनुसार जीव न ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, नित्य मुक्त ही। वे जीव को शेष और मायान् को शेषी मानते हैं। दोनों में वैह-वैही अथवा सृष्टिम और अग्नि का सम्बन्ध है। ईश्वर जीव का नियामक है और जीव की मुक्ति ईश्वर पर अवलम्बित है। चंकर के अनुसार जीव के बन्धन का कारण अविद्या है और अविद्या का नाश ज्ञान से होता है, क्रिया से नहीं। किन्तु रामानुज मुक्ति को उपासना द्वारा ही सम्भव मानते हैं। चंकर के अनुसार केवल ज्ञान ही मुक्ति के लिए पर्याप्त साधन है। परन्तु रामानुज भक्ति को मुक्ति का एक मात्र साधन मानते हैं।

भगवान् की कृपा ही उनकी प्राप्ति का उपाय है। प्रपत्ति या शरणागति इस कृपा के लिये साधन है। गुरु भी एक साधन है। विधिष्टाद्वैत मत में भक्ति अन्तिम उपाय है, जिस पर बढ़कर जीव प्रभु को प्राप्त करता है। भक्ति ने पूर्व ज्ञान-योग और उससे भी पूर्व कर्म-योग की स्थिति है। कर्म द्वारा हृदय दूषित होता है और वह ज्ञान-योग की ओर से जाता है। ज्ञानयोग से प्रवृत्ति का अनुभव होता है और उस अनुभव से जीव अपने को प्रवृत्ति से वृषक् समझने लगता है। जीव का आत्मज्ञान ही उसे मदबद्धभक्ति की ओर आकर्षित करता है। भक्ति योग में अष्टांग-योग की

साधना भी सम्मिलित है। भक्ति-योग की प्राप्ति के लिए रामानुज ने सात साधनों का वर्णन किया है—(१) गन्धर्व भक्त के द्वारा शरीर की शुद्धि (२) सदाचार (३) अनवरत भक्त्या, (४) पंच महायज्ञों का संपादन (५) धर्म, दान, अहिंसा आदि का पालन (६) आशावादित्व और (७) अहंकार का त्याग। इन साधनों द्वारा भक्ति-साधना सिद्ध होती है।^१

श्री रामानुज द्वारा प्रतिपादित भक्ति-मार्ग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें हृदय-यज्ञ और बुद्धि-यज्ञ—दोनों का सुखर सामंजस्य है। हृदय-यज्ञ आळ्वारों की देन है और बुद्धि-यज्ञ का समावेश शास्त्र-ग्रन्थों में प्रतिपादित शास्त्रीय भक्ति से हुआ है। कहने की आवश्यकता नहीं कि रामानुज के भक्ति-विषयक सिद्धान्तों पर आळ्वारों की विचार-धारा का गहरा प्रभाव पड़ा है—‘प्रपत्ति’ तो आळ्वारों की सरणायति को रामानुज द्वारा दिया हुआ पारिभाषिक नाम है। आळ्वारों में भक्ति के जो साधन थे, उन्हें अन्य भक्तों के लिए भी निरदिष्ट करने को रामानुज ने ‘प्रपत्ति’ नामक शब्द निकाला। यह भी ध्यान देने की बात है कि द्विजों के साथ घृष्टों को भी वैष्णव धर्म में वीक्षित होने का अधिकार, सब से पहले रामानुज ने ही प्रदान किया। इसका कारण था कि आळ्वारों से अनेक भूख बंध के थे और भूख कुस्रोत्यन्न होने पर भी अन्नता उन्हें पूज रही थी।^२ सारांश यह है कि श्रीवैष्णव संप्रदाय का भक्ति-तत्त्व ठाढ़िक दृष्टि से गीता पांचरात्र मंथिताओं पर आधारित होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से आळ्वारा के प्रवचनों पर आधारित है।

१४ वीं शती के सगमग ‘प्रपत्ति’ को लेकर श्रीवैष्णवों में बड़ी दल हो गये। वैदिक वैदिक (बैतन्नाय) तथा जगदल शास्त्रों ने भक्ति की मूर्ति का एक मात्र साधन नहीं मानकर ज्ञान का अनुष्ठान भी आवश्यक बताया। मणुआळ्वामुनि (श्री सोबाचार्य) और उनके अनुयायियों ने प्रपत्ति को ही एक मात्र मार्ग बताया और उस पर विशेष जोर दिया। प्रथम दल वाले ‘बडकळ’ कहलाये और दूसरे विचार वाले ‘तेन्कळ’ नाम से प्रसिद्ध हुए। श्री ए० गोविन्दाचार्य ने ‘बडकळ’ और ‘तेन्कळ’ के १८ सिद्धान्तगत भेद बताये हैं।^३ ‘प्रपत्ति’ के विषय में दोनों में जो मत-भेद है उसे स्पष्ट करने के लिए क्रमशः कपि-किशोर और भार्गव-किशोर का उदाहरण दिया जाता है। कपि किशोर अपनी माँ के पैर से चिरका रहता है और भार्गव किशोर बिना कुछ प्रयास किये ही अपनी माँ से रक्षित होता है। ‘बडकळ’ के अनुयायियों को संसृष्ट से विशेष प्रेम है और वे संसृष्ट के शास्त्र-ग्रन्थों के आधार पर भक्ति का उपदेश देते हैं। पर ‘तेन्कळ’ पक्ष वाले आळ्वारों के ‘दिव्य प्रवचनों’ से विशेष भक्त-भाव

१ भक्ति का विकास—डॉ० मुदीराम घर्मा पृ० १६२।

२ संसृष्टि के चार चप्पाय (द्वितीय संस्करण)—श्री रामचारी सिंह बिनकर, पृ० २६८।

३ *Journal of Royal Asiatic Society* 1910., p 1103—Article by A Govindacharya.

रखते हैं और 'दिव्य प्रबन्धों' को अपनी भक्ति-साधना का प्रधान आधार मानते हैं।^१ 'तेन्कळ' इस के सोन अपेक्षाकृत उदार दृष्टि के हैं और उनमें आपस में ऊँच-नीच का भेद भाव नहीं है। उनमें भीष-बाति के सोन भी सम्मिश्रित हैं। "बडकळ" लोगों को बाति का गर्व धू गया है। स्मरण रहे कि रामानुज ने जो रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत के अनुयायी के 'तेन्कळ' पक्ष के सिद्धान्तों को ही अपनाया और उनका प्रचार हिन्दी-भाषी क्षेत्र में किया।

श्री रामानुजाचार्य के सिद्धान्तों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भक्ति-मार्ग के परिनिष्ठित स्वल्प की स्थापना सब से पहले रामानुजाचार्य ने ही की है और भक्ति के इस स्वल्प ने उत्तर भारत के भक्ति-आन्दोलन को पूर्णतया प्रभावित किया।^२

यह सर्व निश्चित ही है कि हिन्दी प्रदेश में बीरहूनी-गुरहूनी सत्ताधी में जितने वैष्णव मठावसन्धी आचार्य और संत हुए, सबसे शंकर के मामाबाद का तीव्र विरोध किया और विमुक्त भक्ति के किसी न किसी पक्ष का प्रचार किया। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार रामानुज ने अपने सिद्धान्त का नाम विशिष्टाद्वैत रखकर इस विषय में शंकर के अद्वैत मत के साथ किसी न किसी प्रकार समझौता स्थापित किया, उसी प्रकार उत्तर के आचार्यों और भक्तों ने सगुणोपासक होते हुए भी अद्वैत के अन्तिम रूप को सुदाद्वैत ईशद्वैत आदि मिश्र-मिश्र नामों से अपनाया।^३

मध्वाचार्य और उनका सम्प्रदाय

श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत के पश्चात् आचार्य शंकर के मायावाद के विरोध में निकलने वाला ब्रह्मण भारत का दूसरा प्रमुख मत ईतमत है।^४ इसके प्रतिष्ठायक श्री मध्वाचार्य थे। भक्ति-आन्दोलन की दृष्टि से श्री मध्वाचार्य द्वारा स्थापित ईतमत श्री बड़ी महत्ता है। श्री मध्वाचार्य ने न केवल शंकर के अद्वैतवाद का तीव्र विरोध किया बल्कि भक्ति की पूरी प्रतिष्ठा के लिये श्री रामानुज के विशिष्टाद्वैत मत को भी बस्तीकार कर दिया और ईतमत की स्थापना की। इस कारण ब्रह्मण के आचार्यों में श्री मध्वाचार्य का एक विशिष्ट स्थान है। श्री मध्व का

१ श्री लोकाचार्य ने 'श्री यक्ष भुषण' नामक ग्रन्थ में भक्ति-मार्ग का विशिष्ट शास्त्रीय विवेचन किया है।

२ सूर और उनका साहित्य (द्वितीय संस्करण)—डा० हरबंसदास शर्मा पृ० ६०।

३ हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति-आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन—डा० हिरण्मय पृ० २६।

४ "The work of Sri Madhavacharya is but a continuation of that of Sri Ramanuja and his school"—"Sri Ramanuja and Sri Madhva" Srinivasa Rao Murdi, (Vedanta Kesari, Vol. 29 pp. 151-52)

लगभग सन् ११२७ में कर्नाटक के 'उडुपि' नामक स्थान में हुआ ।^१ इनका पहला नाम बानम्पतीर्थ या और बेद-बेदाङ्गों की विद्या पाकर उन्होंने दक्षिण और उत्तरी भारत के सभी प्रमुख तीर्थ-स्थानों की यात्रा की । तत्पश्चात् उडुपि सौट भाये और अपने सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए ग्रन्थ रचना में प्रवृत्त हुए । उन्होंने 'प्रस्थान त्री' पर अपने विद्वत्पूर्ण भाष्य लिखे और कुल मिलाकर ३७ ग्रन्थ रच डाले ।

माध्व मत के अनुसार परमात्मा विष्णु हैं जो असंख्य गुण सम्पूर्ण हैं । सृष्टि स्थिति, संहार नियम आचरण बोधन बन्धन तथा मोक्ष—इन आठों कार्यों पर केवल परमात्मा का ही अधिकार है । ज्ञान आत्म्य आदि कल्याण गुण ही उनके धरीर हैं । विष्णु परमात्मा स्वतन्त्र और अद्वितीय हैं । परमात्मा में अनेक रूप धारण करने की शक्ति है जो जीव में नहीं है । उसके मूल रूप तथा अवतरित रूप में कोई भेद नहीं है । 'मात्स्य कूर्मादि स्वरूपों से कर वरणादि भवभावों से ज्ञानात्म्यादि गुणों से समवान् अत्यन्त अमिश्र हैं अतएव समवान् और उनके अवतारों में भेद-दृष्टि रखना नितास्त अनुचित है ।'^२

सकृन्ती परमात्म मिथा तन्मात्राधीन सकृन्ती" नामक उक्ति के अनुसार परमात्मा से भिन्न होकर भी उसके अधीन रहते हैं । वह विष्णु (परमात्मा) की माया कपिली शक्ति है । वह भी निरय मुक्त अप्राकृत जलर, दिव्य और व्यापक है । परमात्मा के इगितानुसार उसके कार्य-विधान का सम्पादन करती है । सकृन्ती ही मुक्त और अमुक्त—सबको उनकी योग्यता के अनुसार गृष्टि के समय आत्मत्व प्रदान करती है । समवान् सकृन्ती में स्त्री भाव रहते हैं ।

८ माध्वमत के अनुसार ब्रह्म सत्य है, जीव भगवान् के किकर हैं । जीवों की संख्या अनन्त भागी त्री है । जीव तीन श्रेणियों में आते हैं—(१) भक्ति योग्य (२) निर्य संहारी और (३) तमोयोग्य । तीनों प्रकार के जीवों की मुक्ति का रूप भी असंग-अलग है । "मुक्तिर्नैव मुक्तानु सृति" अर्थात् वास्तविक मुक्त की अनुभूति ही मुक्ति है । मध्वाचार्य ने कर्मक्षय उत्प्राप्ति सय अविच्छेदिवार्ग और भोग नामक मुक्ति के चार प्रकार माने हैं । भोग-मुक्ति के भी सामान्य सामीप्य साक्य्य और सायुज्य नामक चार प्रकार हैं ।

मध्वाचार्य के अनुसार उपासना के दो रूप हैं—(१) शास्त्रानुशीलन, और (२) ध्यान । कुछ साधक शास्त्रानुशीलन से अपरोक्ष ज्ञान पाते हैं और दूसरे समवान् के अर्पण स्मरण में जीव रहकर मुक्ति प्राप्त करते हैं । शास्त्राभ्यास से अज्ञान का आचरण हट जाता है और वास्तविक ज्ञान का बोध होता है । यह ज्ञान परमात्मा के

१ मध्वाचार्य के जीवन-काल के विषय में विद्वानों में मत भेद है । देखिए—

The Date of Madhvacharya—B N Krishna Murli, Annamalai University Journal Vol III (1934), p 245

२ भारतीय ज्ञान—श्री बलदेव उपाध्याय, पृ० ४६१ ।

ही बचीम है। अपरोक्ष ज्ञान के मिसने पर ही परम भक्ति प्राप्त हो सकती है, जो भयबाध की दृष्टि पर निर्भर है। माध्वमत में मुक्ति का सर्वोच्च साधन 'अमसा भक्ति' है। यह बोध रहित निर्मल भक्ति है। यह भक्ति अनन्य और अहेतुकी होती चाहिए। मध्वाचार्य ने पांचरात्र के तर्कों को विक्षेप महत्ता नहीं दी। उन्होंने भागवत-पुराण के साधन-मार्ग का ही अपनाया। माध्वमत में राम, कृष्ण आदि सभी अवतारों की उपासना का विधान तो है, परन्तु राधाकृष्ण का उल्लेख नहीं मिलता।

मध्वाचार्य का इतमठ भारतीय धर्म-साधना में अपना अलग महत्व रखता है। मध्व ने मायाबाध का अखण्ड किया, जिससे भक्ति-मग्न निष्कण्टक हुआ। उन्होंने श्री लंकर और श्री रामानुज की तरह अपने मत में मठों की स्थापना करके सम्पादियों का संघटन किया। उनके पश्चात् उनके शिष्य परमनामाचार्य महाध्वज हुए और फिर सम्प्रदाय में क्रमशः अन्य आचार्यगण हुए। बसिष्ठ भारत में ही नहीं बल्कि उत्तरी भारत में भी माध्वमत का प्रचार हुआ। इस मत के अनुयायी अब विक्षेपकर कर्नाटक (मसूर) प्रांत में और कुछ उत्तर भारत में वृन्दावन आदि स्थानों में पाये जाते हैं।

आळ्वार भक्तों की विचार-मार्ग और श्री मध्वाचार्य की विचार-मार्ग में अनेक बातों में साम्य देखा जा सकता है। आळ्वार तो श्री मध्वाचार्य से कुछ छटाधियों के पहले ही भक्ति-सम्बन्धी अपने विचारों का प्रचार कर चुके थे। चूंकि मध्वाचार्य भी वक्षिण के ही थे और उनके समय तक आळ्वारों के विचारों का काफी प्रचार हो चुका था, अतः बहुत सम्भव है कि श्री मध्वाचार्य की विचार-मार्ग भी उनसे प्रभावित हो। दोनों विचार-मार्गों के साम्य को स्पष्ट करने के लिये एक स्वतन्त्र अध्ययन अपेक्षित है।

निम्बार्काचार्य और उनका सम्प्रदाय

उनक सम्प्रदाय अथवा निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री निम्बार्क आचार्य थे। श्री निम्बार्क के समय का अभी तक निर्णय हो नहीं सका। डा० भांडारकर के अनुसार उनका निधन सन् ११७२ में हुआ था। अधिकतर विद्वान् यह मानते हैं कि ये श्री रामानुजाचार्य के बाद में वाकिरूत हुए। ये ठेगुण ब्राह्मण थे। इनका जन्म कर्नाटक प्रांत के अन्तर्गत बस्नारी नामक जिले के 'निम्बार्पुर' नगर में हुआ था। इनके कई नाम मिलते हैं—निम्बार्काचार्य, निम्बार्किय निम्बमास्कर और नियमार्त्तवाचार्य आदि। यद्यपि ये कर्नाटक में अवतरित हुए थे तो भी इनके जीवन का अधिकतर समय वृन्दावन में ही बीता। सम्प्रदाय के अनुयायियों का विश्वास है कि निम्बार्काचार्य श्री विष्णु के नुरार्ति चक्र के अवतार हैं।

श्री निम्बार्काचार्य द्वारा प्रतिपादित मत द्वैताद्वैत अथवा 'भेदाभेद' कहलाता है। यह भी लंकर के मायाबाध के विरोध में रखा हुआ था। इन्होंने अपने शिष्यावर्गों के स्पष्टीकरण के लिए श्री महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे—(१) वेदास्त पारिजात-सौरभ और

(१) सिद्धान्त रत्न । प्रथम ग्रन्थ 'ब्रह्मसूत्रों' पर संक्षिप्त भाष्य के रूप में है । द्वितीय ग्रन्थ का दूसरा नाम "दसस्वलोकी" है ।

निम्बार्क-मत के अनुसार जीव जगत् और ईश्वर यद्यपि भिन्न भिन्न हैं तो भी जीव तथा जगत् का व्यापार एवं अस्तित्व ईश्वर की इच्छा पर ही अवलम्बित है । जीवार्त्मा अवस्था-मैत्र से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है और अभिन्न भी । जीवार्त्मा अणुरूप है, विभिन्न शरीरों में पृथक्-पृथक् है, अनन्य विशिष्ट और ज्ञानी है । यह जीवार्त्मा अनादि-माया से बद्ध रहता है और तीन गुणों से संयुक्त रहता है । ईश्वर की कृपा से ही उसे अपनी प्रकृति का ज्ञान होता है ।

इस मत के अनुसार ब्रह्म जड़ित, अविभक्त और सदा निर्विकार है । वह सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ तथा सब गुणों का भाग्य भी है । यद्यपि ब्रह्म निर्विकार है तो भी माया के कारण उसका स्वामाधिक आनन्द जगत् रूपों में अनुभूत होता है । ब्रह्म में ऐसी शक्ति है कि वह अपने को अधिकृत एवं अविविक्त रखते हुए ज्ञान स्मारक पदार्थों में उत्पन्न करके आनन्द का उपभोग कर सकता है । जीव और ईश्वर का सम्बन्ध शक्ति और शक्तिमान तथा प्रथ और प्रेम्सी का है । नारायण भगवान्, कृष्ण, परब्रह्म, पुरुषोत्तम आदि परमात्मा के ही विभिन्न नाम हैं । ब्रह्म के चार रूप माने गये हैं—'पर जगत्' अर्थात् परम अक्षरत्वं 'अपर जगत्' अर्थात् सर्वलप्ता और 'अपर जगत्' अर्थात् जीव रूप है । इन्हीं कारणों से ही यह मत मैत्रामैव या ईवाहीत कहलाता है ।

निम्बार्क-मत की साधना रूपिणी भक्ति श्री रामानुज के भी सम्प्रदाय के भक्ति-योग से साम्य रखती है । इस मत में भी प्रपत्ति अवस्था धरणावधि तत्त्व पर विधेय जोर दिया गया है । जीव प्रपत्ति द्वारा ही भगवान् के अनुग्रह का अधिकारी होता है । भगवत्कृपा से आत्मा के अन्तर भक्तिभाव का आविर्भाव होता है जिससे भगवान् के साक्षात्कार की सिद्धि होती है । जीव का जब तक शरीर से सम्बन्ध है जब तक भगवद् भावोत्पत्ति सम्भव नहीं है जब तक जीवभ्युक्ति की दशा भी सम्भव नहीं है ।^१ श्री निम्बार्क के अनुसार भक्ति किसी भी भाव से की जा सकती है, साधक के लिए किसी विधेय भाव को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं । भगवा भक्ति के अभावसे भगवान् के प्रति प्रेम अवस्था रति मिलती है । प्रेम भक्ति इस सम्प्रदाय में पाँच भावों से पूर्ण कही गई है—दान्त दास्य, सख्य दास्य और उज्ज्वल । श्री निम्बार्क कृत 'बैदान्त-पारिजात' की "विद्वान्त रत्नावलि" टीका में इन पाँचों रत्नों का सुन्दर परिचय दिया गया है । यद्यपि प्रथम चारों भक्ति-भावों के प्रति ज्ञेया नहीं दिखाई गई है तो भी अन्तिम भाव—माधुर्य या "उज्ज्वल भाव" को विधेय महत्व दिया गया है । इस सम्प्रदाय में परम उपास्य-देव श्रीकृष्ण हैं जिनके चरणारविन्दों को छोड़कर भक्तों के लिए और कोई मति नहीं है । ब्रह्मा पित्र

१ "बैदान्त रत्न-सङ्ग्रह" — दशमोत्ती के २३३ श्लोक पर टीका ।

जादि भी उसकी बख्ता करते हैं। मठों की इच्छा से वे कृष्ण मठों के ध्यान के योग्य जाकार धारण करते हैं। उनकी शक्ति अभिप्रेत और अप्रमेय है। श्रीकृष्ण केवल स्मरण मात्र से अविद्या पर्यन्त समस्त जनकों के हरने वाले हैं। अतः वे हरि कहलाते हैं।

निम्बार्क संप्रदाय के भक्ति-मार्ग की एक विशेषता—राधा की उपासना है। इस सम्प्रदाय में उपास्य-देव श्रीकृष्णचन्द्र हैं जो अपनी प्रेम और मानुष की अभिप्रेता श्री शक्ति राधा तथा अन्य ब्राह्मादिनी दोनों स्वस्वपा शक्तियों से परिचैष्टित रहते हैं। राधा के स्वस्व का विशेषण इस संप्रदाय के अनेक शास्त्रीय ग्रन्थों में किया गया है। निम्बार्क ने भी राधा को अनुकूल-सौम्या माना है अर्थात् उनका स्वस्व कृष्ण के अनुकूल ही है। श्रीकृष्णचन्द्र जिस तरह सर्वेश्वर हैं उसी तरह राधा भी सर्वेश्वरी हैं। राजिका कृपमानु की कन्या हैं जो कृष्ण के बामांग में सुशोभित हैं, हजारों सखियों से परिचैष्टित हैं और सब कामनाओं का पूर्ण करने वाली हैं। निम्बार्क ने राधा को स्वकीया और विवाहिता माना है। परन्तु यह अवतार-सीता के विषय में ही सत्य है, नित्य सीता में तो स्वकीया और परकीया में भेद नहीं रहता।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जहाँ तक निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति-सामना का धारणाप्रति अथवा प्रपत्ति से सम्बन्ध है, वह भी रामानुज की भक्ति से मिलती जुलती है। किन्तु उसमें एक अन्तर भीष्ट पड़ता है। जहाँ रामानुजाचार्य ने भक्ति भाव की उपनिषदों में बिहित उपासना की कोटि तक पहुँचा दिया और उसके मौलिक रूप को बखल दिया वहीं श्री निम्बार्क ने भक्ति के सहज मूल भाव को सुरक्षित करने की चेष्टा की है। रामानुजाचार्य और निम्बार्काचार्य के सिद्धान्तों में एक और अन्तर यह है कि जहाँ रामानुज ने भक्ति को नाचदल-संस्कीर्ण और सीमा तक ही सीमित रखा—वहीं निम्बार्क ने कृष्ण और सखियों द्वारा परिचैष्टित राधा को प्रधानता दी है। निम्बार्क संप्रदाय में प्रेम-मल्लख राधारमिका पर भक्ति ही भक्ति-साधना का धर्म स्वयं है। कह सकते हैं कि उत्तरी भारत में राधा-कृष्ण-भक्ति का शास्त्रीय रूप से प्रतिपादन करने का पूर्ण श्रेय श्री निम्बार्काचार्य को ही मिलना चाहिए।

श्री निम्बार्काचार्य की विचार-धारा आठव्वारों की विचार-धारा के बहुत निकट है। भक्ति और प्रपत्ति के विषय में तो दोनों में बहुत साम्य है। श्री निम्बार्क के समय तक आठव्वारों के भक्ति-सम्बन्धी विचार समस्त दक्षिण भारत में प्रचार वा बुके से कुछ रामानुज-सम्प्रदाय के माध्यम से और कुछ आठव्वारों के ग्रन्थों से। श्री निम्बार्काचार्य भी दक्षिण के ही थे। अतः बहुत संभव है कि आठव्वारों की विचार-धारा ने उन्हें प्रभावित किया हो। आठव्वारों की तथा श्री निम्बार्क की विचार-धाराओं में बीच पड़ने वाले साम्य को स्पष्ट करने के लिए एक स्वतन्त्र अध्याय ही अनेकित है। विष्णुस्वामी और उनका संप्रदाय

रामानुजाचार्य मध्वाचार्य और निम्बार्काचार्य के साम दक्षिण के वैष्णव आचार्यों में श्री विष्णुस्वामी का नाम भी अस्तेजनीय है, जो स्र-संप्रदाय के प्रवर्तक

मान जाते हैं। लेकिन खेर की बात है कि अभी तक विष्णुस्वामी के ऐतिहासिक अस्तित्व का न तो सम्यक् परिचय प्राप्त हो सका है और न उनके द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक सिद्धान्तों का विश्लेषण और विवेचन हो चुका है। विष्णुस्वामी के व्यक्तित्व उनके समय उनके मठ एवं सम्प्रदाय के विषय में मठ-भेद देखकर कभी-कभी एक से अधिक विष्णुस्वामियों की भी कल्पना की जाती है। इस प्रकार अब चार विष्णुस्वामियों का उल्लेख किया जाता है। एक विष्णुस्वामी तमिळ-प्रदेश के पाम्बय राजा के राजगुरु बेवेरवर मठ के गुरु थे जिन्होंने सर्वप्रथम वेदान्त सूत्रों पर 'सर्वम सूक्त' नामक भाष्य लिखा था। इनका पूर्व-नाम वेदभक्त भी बताया जाता है। दूसरे विष्णुस्वामी काशीपुरम निवासी राजगोपाल विष्णुस्वामी थे जिन्होंने काशीनगर में श्री बदरराज की मूर्ति की स्थापना की। इनके विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि इन्होंने इारिका में एल्लोइजी तथा सप्त-नगरियों में से बय छः नगरियों में विष्णु की मूर्तियाँ स्थापित कीं। प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मीरुप्पल कर्णामृत' के रचयिता भीमासुक्त विस्वमंगल की इन्हीं का शिष्य बताया जाता है। एक तीसरे विष्णुस्वामी का उल्लेख मिलता है जो वल्लभ-सम्प्रदाय के लोगों के विद्वान्त क अनुसार वल्लभाचार्य की गुरु परम्परा के एक प्राचीन आचार्य थे।^१ डा० बीमप्पायु पुट्ट ने "माब्बारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऐनस्स" में प्रकाशित एक लेख के आधार पर यह बताया है कि माब्भाचार्य और छामणाचार्य के गुरु भी विद्यासकर थे जिनका दूसरा नाम विष्णुस्वामी था।^२

डा० माब्बारकर ने विष्णुस्वामी का समय ११ वीं सताब्दी में माना है।^३ प्रो० मट्ट ने कुछ प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि विष्णुस्वामी १०वीं सताब्दी में अवश्य विद्यमान थे।^४ किन्तु फिर भी पुट्ट ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में विष्णुस्वामी के विषय में निश्चित रूप से यह बताना कठिन है कि विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य विष्णुस्वामी का आविर्भाव कब हुआ और कहाँ हुआ। एक जनश्रुति यह भी है कि महाराष्ट्र में प्रचार पाने वाला मायवठ-धर्म भी कि आवे चलकर 'वारकरी सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी मानदेव तथा नामदेव आदि मठ थे, वस्तुतः विष्णुस्वामी मठ का रूपान्तर ही था। इस सम्बन्ध में नामादास के निम्नलिखित प्रसिद्ध श्लोक का उल्लेख किया जाता है :—

१ प्रो० मट्ट भी वल्लभाचार्य को विष्णुस्वामी की शिष्य-परम्परा में नहीं मानते। उन्होंने लिखा है— "The connection between Vishnushwami and Vallabhabacharya cannot therefore be accepted as historically and philosophically correct."—Prof. G. H. Bhatt, (8th Oriental Conference, Mysore.)

२ वल्लभ और वल्लभ सम्प्रदाय (भाग १) पृ० ४२।

३ *Vaishnavism, Saivism and Other Minor Religious Sects* p. 77

४ "Vaishnavism and Vallabhabacharya." (7th All India Oriental Conference, Baroda)—Prof. G. H. Bhatt, p. 449

नाम तिलोत्तम शिष्य सुरसि सदा उवाच ।

गिरा ध्वं—उन्मूलि काव्य रचना प्रमाकार ॥

भास्कराचार्य हरिदास धनुस्वान् मानन्दादाय ।

तिष्ठि मायम् वस्त्रम विहित पुष्प पाशित पराहन् ॥

नन्ददा प्रधान सेवा गुरुव मन वच कम हरिचरण रति ।

विष्णुस्वामि सम्प्रदाय हृद आनन्देव गम्भीर मति ॥

—सप्तमः ४१

परन्तु इसमें सत्यांश कितना है यह कहा नहीं जा सकता । एक अन्य जगत् है, जिसके अनुसार विष्णुस्वामी तमिळ-प्रदेश के ब्राह्मण थे और कावेरी नदी के किनारे रहते थे । इसी कारण उनको कावेरी विष्णुस्वामी भी कहा जाता है ।^१ कहते हैं कि ये ब्रह्म-वेदांगों का अध्ययन कर आचार्य बने । मन्वान् के साक्षात् दर्शन का सीमा इन्हें प्राप्त हुआ और इन्हें ब्रह्म के स्वस्व का ज्ञान तथा भक्ति-मार्ग की अनुभूति मिली । कहा जाता है कि विष्णुस्वामी ने बहुत समय तक भक्ति-मार्ग का प्रचार किया और वे भक्ति को भुक्ति से अधिक महत्व देते थे । उन्होंने वेद उपनिषद्, स्मृति श्रौत योग आदि समस्त ज्ञान-साहित्य के सार-रस में भक्ति को ही माना ।

विष्णुस्वामी के सिखे अनेक ग्रन्थों के माध बताये जाते हैं । परन्तु अभी तक उनकी सिखी बतायी जाने वाली पुस्तकों में से केवल 'सर्वज्ञ सूक्त' ही एक ऐसी रचना है, जो प्रामाणिक ठहरती है । इस ग्रन्थ से विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों और भक्ति-पद्धति का परिचय मिलता है । श्रीचर ने अपनी टीकाओं में इस ग्रन्थ का उल्लेख इस प्रकार किया है, जिससे स्पष्ट होता है यह विष्णुस्वामी की रचना है । "सर्वज्ञ सूक्त" पर लिखित श्रीचरों द्वारा के आधार पर विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के दार्शनिक स्वस्व का अभी भी स्पष्टीकरण हुआ है । विष्णुस्वामी अनुसार 'ईश्वर' सच्चिदानन्द स्वरूप है और वे अपनी "ह्लादिनी संविद् शक्ति" द्वारा आदिमष्ट हैं । 'माया ईश्वर के अधीन है । विष्णुस्वामी के इस ईश्वर को सच्चिद्, नित्य निराश्रित्य एवं पूर्णानन्दमय विग्रह जारी नृसिंह भी कहा गया है । विष्णुस्वामी के दृष्टिके इस प्रकार, नृसिंहावतार मगबाध् जान पड़ते हैं ।^२ श्रीचर विष्णुस्वामी के अनुसार, 'स्याविद्यासंकुत' अर्थात् अपनी अविद्या द्वारा आन्धकारित है और विराट् रूप है । वह 'संकोचमिच्छाकर' अर्थात् संकोचों का जागार—स्वरूप है । वह स्वयं ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी है और स्वयं कुछ भी भोग करता है । जल-ईश्वर की जीव में परस्पर भेद है । कुछ अंशों में विष्णुस्वामी का दार्शनिक मत माध्वमत मिलता-जुलता भीक पड़ता है ।

1 Prof Kane's History of Dharma Sutra, Vol. I p 271

२ बप्पुल्ल धर्म—श्री पराशुराम चतुर्वेदी पृ० २४-२५ ।

हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवियों को प्रभावित करने वाले उत्तर भारत के भक्ति-सम्प्रदाय

पिछले पृष्ठों में संकर के भाषावाद की प्रतिष्ठिता के रूप में दक्षिण में छत्तस बार दार्शनिक सम्प्रदायों और उनकी भक्ति-पद्धतियाँ का संक्षेप में परिचय दिया गया। यह भी दिखाया जा चुका है कि छत्त बार सम्प्रदायों के प्रवक्तृ आचार्यों ने तथा उनके अनुयायी अन्य वैष्णव आचार्यों ने वैष्णव भक्ति और तात्त्विक सिद्धान्तवाद की स्थापना कर संकर के भाषावाद और विवर्तवाद का उद्घाटन किया। इन लोगों ने अपने यत्न का मंडन और विपक्षी यत्न का खंडन करने के लिये प्राचीन ग्रन्थों पर भाष्य लिखने के साथ-साथ अनेक नवीन ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। यद्यपि इनकी दार्शनिक विचार-वाचनों में बोझी-बहुत मिश्रता थी, ता भी सब का सङ्ग्रह—भक्ति-मार्ग को प्रयत्न करना ही था। इन सम्प्रदायों के अनुयायी-भक्तों के द्वारा भक्ति का प्रचार दक्षिण में ही नहीं बल्कि उत्तरी भारत में भी हुआ। इन वैष्णव-आचार्यों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर ईसा की १४ वीं शताब्दी से लेकर १६ वीं शताब्दी के अंत तक उत्तर भारत में कृष्ण भक्त वैष्णव-सम्प्रदाय भी पनपे जिनके द्वारा वैष्णव भक्ति का व्यापक प्रचार प्रयत्न उत्तरी भारत में हुआ। अपनी मधुर भावभाषापूर्ण विश्व-वनीत लक्ष्म-रासि के कारण सब समय राम भक्ति की ओरला कृष्ण भक्ति का स्वर अधिक ऊँचा हो उठा था। इसका फल कृष्ण भक्ति का प्रचारक भाबुक वैष्णव आचार्यों को है। मध्मकाल में रामानन्द के उपरान्त राम भक्ति का प्रचारक कोई उतना समर्थ वैष्णव आचार्य नहीं हुआ। इसके विपरीत कृष्ण भक्ति के क्षेत्र में भी बल्लभाचार्य की चतुर्थ्य आदि आचार्यों ने अनूतपूर्व कार्य किया। इस काल में उपास्य-देव कृष्ण के मिश्र-मिश्र रूप को लेकर पनपने लगे सम्प्रदायों में निम्नलिखित चार प्रमुख सम्प्रदाय हैं —

१—बल्लभ-सम्प्रदाय

२—चैतन्य-सम्प्रदाय

३—राधावल्लभ-सम्प्रदाय और

४—हरिदासी सम्प्रदाय या सत्सी-सम्प्रदाय।

कृष्णोपासना को पहले ही थी मध्म भी विष्णुस्वामी की निम्बार्क आदि आचार्यों ने अपनाया था। विष्णु उनके उपास्य-देव कृष्ण के रूपों में अन्तर था। मध्मार्च के कृष्ण स्वयं विष्णु थे जो सर्वगुण सम्पन्न परमात्मा थे। विष्णुस्वामी ने कृष्ण के गोपात रूप की स्वीकार किया था। निम्बार्क ने अपनी उपासना में राधा-लक्ष्म का भी समावेश कर राधा कृष्ण के युगल रूप को अपनाया था। मध्मार्च की कृष्णोपासना और विष्णुस्वामी की गोपातापासना में अन्तर्वेद के सिद्ध कोई सुझाव नहीं थी। अष्टम शताब्दी के अन्त में कृष्णोपासना का अपना कर दो बल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने उत्तरी भारत के भक्ति-आन्दोलन को एक नई दिशा में मोड़ दिया। यद्यपि इन दोनों ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का मूलभूत रूप से अनुसरण

किया जा तो भी अपने-अपने मत विषेय के कारण अपनी पूजा-पद्धति और भजन-रीतिरों के द्वारा कृष्णोपासना को व्यापक रूप देते हुए कृष्ण धर्म की जन-समाज के अत्यन्त निकट पहुँचाने का प्रयत्न किया। इन दोनों ने अपने राजावत्सल्य अथवा घोषी वत्सल कृष्ण की उपासना द्वारा कृष्ण धर्म में नूतन शक्ति का संचार किया और समस्त उत्तरी भारत की जनता पर अपने असाधारण व्यक्तित्व की छाप डाली।

बिस्व समय ब्रजसूनि में श्री वैद्यक और श्री वत्सल मत के भट्टों ने अपने-अपने साधना-मार्ग का प्रचार प्रारम्भ किया। अगमय उही समय राजा-कृष्ण की उपासना का एक वृद्ध मक्ति-प्रधान सम्प्रदाय प्रचलित हुआ जो 'राजावत्सल्य सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी समय एक अन्य सम्प्रदाय का भी उदय हुआ जिसमें राजाकृष्ण की युगल-उपासना का सही भाव से प्रचार था। इस सम्प्रदाय का नाम 'सखी सम्प्रदाय' पड़ा। उपर्युक्त चार सम्प्रदायों के अन्तर्गत भक्त-कविओं द्वारा हिन्दी में कृष्ण-भक्ति के विपुल साहित्य का निर्माण हुआ। इन चार प्रमुख सम्प्रदायों और उनकी भक्ति-पद्धतियों का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जाता है। यथा —

१ वत्सलभाचार्य और उनका सम्प्रदाय

महाप्रभु वत्सलभाचार्य का जन्म सन् १४४८ ई० में हुआ। इनके जीवन-चरित का विस्तृत परिचय 'वत्सल विविधय' में मिलता है। श्री वत्सल सक्मल घट्ट नामक टीलंग ब्राह्मण के पुत्र थे जो आंध्र प्रदेश के कौकाबाड़ नामक स्थान के निवासी थे। श्री वत्सल की माता का नाम एस्समाबाऊ था। श्री भक्तमल नट्ट बजिक्टर काशी में ही रहा करते थे। वत्सल के समस्त संस्कार, शिक्षा-बीद्या पठन-पाठन काशी में ही हुए थे। कहा जाता है कि वत्सलभाचार्य जी ने १० वर्ष की आयु में ही वेद वेदाङ्ग, दर्शन तथा पुराणों का अध्ययन कर लिया था और वे काशी में प्रसिद्ध हो गये। अपने पिता के निधन के पश्चात् उन्होंने अनेक प्रधान टीर्थ-स्नानों की यात्रा की और अनेक विद्वानों से छात्रार्थ करके मायाबाब का सम्मन और ब्रह्मबाब भक्ति का प्रचार किया। टीर्थटिन में वे बघिय की ओर भी गये थे। इस यात्रा में उन्होंने बघिय के कृष्ण-भाचार्यों के सिद्धांतों का सम्यक अध्ययन किया। यह प्रसिद्ध है कि कनौठक के विजय नगर साम्राज्य की राजधानी में वत्सल ने माध्व मठावलम्बी भाचार्य व्यासराय के तन्नापत्रिख में आयोजित सभा में छात्रार्थ किया था और भुक्ति-मुक्ति दोनों से वत्सलता में उपस्थित नास्तिकों के उद्योग गये प्रश्नों का समाधान कर उन्हें परास्त किया था और भाचार्य की परबरी प्राप्त की। इस विजय पर प्रसन्न होकर राजा कृष्णदेव राय ने श्री वत्सलभाचार्य जी का 'कनकाभिषेक' कर स्थापित किया।

भारतवर्ष के प्रधान टीर्थों में भ्रमण करने के उपरान्त भाचार्य ने कमी कृष्णजन कमी मण्डल और कमी काशी में रहकर अपने भक्ति सिद्धांतों का प्रचार किया। कहा जाता है कि वत्सलभाचार्य जी की प्रथम ब्रज-यात्रा के समय बीरबर्न की

विरिरान बहाड़ी पर एक भवत् स्वल्प का प्राक्तन्य हुआ था, 'विवरमन' नाम से जिसकी बर्षा ब्रजवासी लोग अनन्य भद्रा और मल्लि के साथ करते थे। और अपनी दूसरी यात्रा में जब वे पुनः गोकर्णन पहुँचे तो ब्रजवासियों ने उनकी उक्त स्वल्प के दर्शन कराये। वत्सभाचार्य ने इस स्वल्प का नाम "भीमाव भी" या "योगवर्णनाय" रखा। ऊन्हीं प्रेरणा से उन्होंने भीमाव भी का पाटोसब किया और भागवान् की सेवा-विधि स्थिर की। अन्त में एक बार वे काशी गये और वहीं रहते हुए सन् १६६० में उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की।

वत्सभाचार्य ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के हेतु अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थों का भी निर्माण किया था और "वत्सव विविधय" के अनुसार उनके ३२ ग्रन्थ कहे जाते हैं। परन्तु अभी तक केवल छोटे-बड़े १० ग्रन्थ ही उपलब्ध हुए हैं, जो वत्सव-संप्रदाय में प्रसिद्ध हैं। उनके सिद्धे ११ शतकाव्य इत्येकारमक ग्रन्थ 'पौण्ड्र-ग्रन्थ' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके ग्रन्थों में प्रमुख हैं—ग्रन्थानुष पर लिखा हुआ 'अणु भाष्य', पूर्व मीमांसा भाष्य उत्पत्तीय निबन्ध भागवत की व्याख्या-सुबोधिनी आदि।

वत्सभाचार्य का दार्शनिक सिद्धान्त 'मुद्राईत' के नाम से प्रसिद्ध है। "मुद्राईत मार्तण्ड" में 'पुद्र' का अर्थ 'माया सम्बन्ध रहित' दिया गया है। वत्सभाचार्य ने शंकर के 'बईत' से निकला दिखाने के लिए ही 'बईत' के साथ 'मुद्र' सम्बन्ध जोड़ दिया। शंकर ने बईत में माया-संबन्धित-ब्रह्म को अणु का कारण माना। पर वत्सव ने माया से अलिप्त निरांत पुद्र ब्रह्म को अणु का कारण माना है।^१ वत्सभाचार्य का वह मुद्राईतवाद 'ब्रह्मवाद' या 'अविच्छिन्न परिणामवाद' नाम से भी प्रसिद्ध है।

वत्सभाचार्य के अनुसार ब्रह्म सत्य, चित और आनन्द स्वल्प है। वह व्यापक है और सर्ववर्धमान है। वह स्वतन्त्र है, सर्वज्ञ है और मूर्खों से वञ्चित है। वत्सव के अनुसार ब्रह्म के सगुण और निगुण—दोनों रूप मिले हैं। जो ब्रह्म अणोरस्मीमात्र है वह ब्रह्मा महीमात्र भी है। पर ब्रह्म एक हीकर भी अनेक है और स्वतन्त्र होकर भी जलों के अधीन है। ब्रह्म के तीन प्रकार माने गये हैं—(१) भाषि ईश्विक ब्रह्म, (२) व्यापारिक अर्थात् जगत् ब्रह्म और (३) भाषि भीतिक अर्थात् अणु कनी परब्रह्म।

अणु सत्य है क्योंकि लौकिकमायक भगवान् स्वयं अणु के रूप में फैला हुआ है। ब्रह्म कारण है, जगत् कार्य। जब कारण सत्य है तो कार्य भी सत्य है। वत्सव ने अणु और ब्रह्म के सम्बन्ध को सपेटी गये वत्सव से समझाया है। जिस प्रकार वत्सव को फैलाने पर वत्सव नहीं रहता है, उसी प्रकार ब्रह्म अणु के रूप में फैला है और प्रलय काल में ब्रह्म वत्सव विमटकर कारण ब्रह्म के रूप में सूक्ष्म रूप में हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म का आविर्भाव अणु के रूप में होता है और विरोधाव की अवस्था

१ माया सम्बन्ध रहित मुद्रमित्यणुर्तु बुवा।

कार्यकारण कर्तृ हि मुद्र ब्रह्म न मायितम् ॥

परिचय के लिए ज्ञान प्राप्त करता है। उसके पश्चात् प्रमा-भक्ति का प्राप्तिमान होता है। इसकी तीन सुमियाँ हैं—(१) प्रेम, (२) आसक्ति और (३) व्यसन। व्यसन प्रेम की परिपुष्ट दशा है। जो भक्त इस दशा तक पहुँच पाता है वह चारों मुक्तियों का तिरस्कार कर देता है। उसके भीतर, बाहर, सर्वत्र सब भगवान् जितार्थ पड़ते हैं। पुष्टि मार्गीय भक्ति में ईश्वर के प्रति सुदृढ़ और उत्कट प्रेम की आवश्यकता है। इस प्रेम के उत्कर्ष के लिए भगवान् से बिछुड़ने का ज्ञान और उनसे मिलन की उत्कट अभिलाषा तथा विह्वलता का होना आवश्यक है। इस प्रेम के बिना भविष्य का प्राप्त नहीं हो सकता। भविष्य विद्या से नष्ट होती है और भक्ति विद्या का एक पर्व है। परन्तु यह भक्ति भी भगवान् के अनुग्रह पर ही सम्भव है। भगवान् का अनुग्रह ही पुष्टिमार्गीय भक्त के सभी कार्यों का नियामक है।

श्री बल्लभ ने भक्त को भगवान् की सेवा तीन प्रकार से करने का आदेश दिया है—तनुजा बित्तजा और मानसी। भगवान् के निमित्त ही अपने धरीर और उसके व्यापारों का एक-निष्ठा से अर्पण 'तनुजा सेवा' है। अपने मन और सम्पत्ति से और मन के द्वारा भगवान् की सेवा करना क्रमशः बित्तजा और मानसी' कहलाती है। मानसी सेवा श्रेयस्कर बतायी गयी है। श्री बल्लभ ने तो भगवान् को सर्वमात्र से मजनीय माना है तथा प्रत्येक स्थिति में कृष्ण की धारण लेकर उसे ही अपना रक्षक समझकर भक्त को सेवा उसी पर विश्वास रखने को कहा है। चाहे फल-प्राप्ति में विलम्ब हो जाए। किन्तु भक्त को इसके विषय में तनिक भी चिन्ता नहीं कर केवल यही समझना चाहिए कि वह भगवान् का सेवक है। पुष्टिमार्गीय भक्ति की विशेषता है कि श्री कृष्ण की धारण में गये बिना मनुष्य का ब्रह्मण नहीं हो सकता। जिस प्रकार गीता में 'सर्व बर्मात् परित्यज्य धारसां ब्रज ब्रह्मा नया है, उसा प्रकार बल्लभ मत में कहा गया है—

तस्मान् सर्वात्मता तिर्य श्री कृष्ण धारणं मम ।

बहुभिदैव सततं श्रेयमित्येव मे मतिः ॥

—नवरात्र रसोक्त १

श्री बल्लभ मत का मंत्र है 'श्री कृष्ण धारणं मम'। कहने की आवश्यकता नहीं कि धारणावधि और अनन्य भक्ति ही बल्लभ-मार्गप्रदाय का चरम लक्ष्य है।

श्री बल्लभाचार्य ने भगवत्प्रेम को प्राप्त करने के लिए मार्गचक्र में प्रतिपादित नववा भक्ति की संराहता करते हुए 'सुबोधिनी टीका में उसका साधन-क्रम को अपनाने का आदेश दिया है। किन्तु इन समस्त साधनों में आत्म निवेदन या आत्म-समर्पण को अग्रगण्य महत्त्व देते हुए अंतःकरण प्रयोग' नामक ग्रन्थ में उन्होंने सब समर्पित भक्त्या कृतापोडसि सुखी ब्रज नामक उक्ति द्वारा भक्त का आत्मा सहित पूर्ण रूपेण कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण करने का आदेश दिया है। जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है— पुष्टि-मार्ग में आने के लिए सबसे पक्का आवश्यक बात यह है कि लोभ और वैद—दोनों का प्रलोभन से दूर हो जाए इन पला की आकांक्षा छोड़ दे,

को मोन को अनुसरण करने से प्राप्त होते हैं तथा जिसकी प्राप्ति बह्मिक कार्यों के सम्पादन द्वारा बड़ी गयी है। यह तभी हो सकता है जब कि साधक अपने को मगवान् के चरनों में समर्पित कर दे। इस समर्पण से इस मार्ग का आरम्भ होता है और पुष्पाक्षत मगवान् के स्वप्न का अनुसरण और सीता-सृष्टि में प्रवेश हो जाने पर मग्न।^१

ऊपर कहा जा चुका है कि ब्रह्ममाचार्य ने प्रवृत्ति-मार्ग को ही निवृत्ति-मार्ग से खेच माना था। वे दृष्टव्य थे। उनके गोपीनाथ एवं बिट्ठलनाथ नामक दो पुत्र भी हुए। श्री ब्रह्मजी की देहाश्रुति पर श्री बिट्ठलनाथ उमकी गयी पर बैठे। श्री बिट्ठलनाथ ने सम्प्रदाय के प्रचार के सिधे अनेक प्रयत्न किये।

पुष्टि मार्ग के अन्तर्गत अनेक मन्त्र-कवियों ने हिन्दी में दृष्टव्य भक्ति के विपुल साहित्य का निर्माण किया। 'मधुसूत' पुष्टि-मार्ग की महत्त्वपूर्ण देन है जिसके कवियों ने भोवृष्ट की विविध लीलाओं को लेकर मजन-कीर्तन रखकर हिन्दी के भक्ति-साहित्य के मन्दार को भर दिया। उनके द्वारा उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन में नयी स्फूर्ति का संचार हुआ।

२. चैतन्य महाप्रभु और गौडीय सम्प्रदाय

समस्त उत्तरी भारत का बिद्योपल बंगाल को भक्ति-रस से आप्लावित करने का मय महाप्रभु चैतन्य को है। आप भक्ति रस की समीप मूर्ति थे और वे—उत्कल मधुर भाव का आभ्यस्तमान प्रतीक। चैतन्य महाप्रभु श्री ब्रह्ममाचार्य के समकालीन थे। श्री चैतन्य का जन्म सन् १४८२ में बंगाल के नदिया (साँतिपुर) नामक स्थान में हुआ। इनका जन्म का नाम विक्रमर वा, बाद में वे अपने अनुयायियों द्वारा दृष्टव्य-चैतन्य कहे जाने लगे। बहुत वीर बर्ण के होने के कारण इनका नाम वीर्यम भी पड़ा। अपनी १८ वर्ष की अवस्था में विवाह करके अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ गाहस्प्य जीवन व्यतीत करते रहे। इस समय इनका मुख्य काम यन्वीर अध्ययन और अध्यापन था। इन्होंने समस्त पार्यों में बिद्योपल तर्कशास्त्र में निपुणता प्राप्त की। इनकी प्रथम पत्नी का देहाश्रुत हुआ। अतः दूसरा विवाह कर एक समय पितरों की धाज दिया करने गया-भान पयारे। वहाँ ईश्वरपुरी नामक एक प्रसिद्ध बप्पुब से उन्हींने भेंट की। कहा जाता है कि चैतन्य देव ईश्वरपुरी के व्यक्तिब से बहुत प्रभावित हुए और वही संन्यास लेने का संकल्प लेकर लौटने पर घर-बार त्याग दिया। इनमें बहुत परिवर्तन आ गया। इसका विचार ब्रह्म मये। इन्होंने कमलाक्ष की कही आभाषना की। मोक्ष के सिधे हरिनाथ-स्मरण और कर्तव्य को एक मात्र साधन बतलाकर इन्होंने बर्णमयस्था को व्यर्थ बतलाया। इनकी इस नवीन विचार-धारा के सफलता और इनके सहयोगी इनके शिष्य निरानन्द से जिन्हें वे माई के समान मानते थे। वे पहल घर में कीर्तन मजन करते थे और प्रेम में मस्त होकर गाथा करते थे। इनकी आवा से प्रभाय की अविश्व मारा बहा करती थी।

चैतन्य देव ने भारतवर्ष के प्रमुख तीर्थों में भ्रमण किया। ये दक्षिण भारत में, विशेषकर तमिल-प्रदेश के वैष्णव क्षेत्रों में भी गये।^१ बहुत सम्भव है कि तमिल-प्रदेश की अपनी भाषा में वे भावुक भक्त-कवि आठवारी की रचनाओं से परिचित और प्रभावित हुए हों। श्री टी० एन० रामुली ने लिखा है कि चैतन्य मम्माळवार के भग्न स्थान 'आठवार तिरुवरी' में जाकर उनके पर-संग्रहों की हस्तलिखित प्रतियाँ अपने साथ ले गये।^२ फिर वे पुरी आदि प्रसिद्ध स्थानों में कई वर्षों तक भ्रमण करते हुए अपने शिष्याओं का प्रचार करते रहे। यह प्रसिद्ध है कि श्री चैतन्य अपने अन्तिम दिनों में कृष्ण की भक्ति में इस प्रकार आकाशेष में जाते थे कि वे मुग्ध हो जाते थे। इनका मोक्ष-गमन सन् १५३३ में हुआ।

श्री चैतन्य के निधन में ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्होंने भग्न भाषाओं की भाँति अपने संप्रदाय को व्यवस्थित रूप देने का प्रयास नहीं किया और न उन्होंने 'प्रस्थान बंधी' पर कोई भाष्य ही प्रस्तुत किया। वे प्रेममय कृष्ण की मधुर-भाव की भक्ति में इस तरह भाव-मग्न रहते थे कि अपने मत के तार्किक स्पष्टीकरण के लिए किसी शब्द की रचना करना उनके लिये संभव ही नहीं था। उनके रचित केवल दश श्लोक ही उपलब्ध हैं। इसी कारण उनके शिष्याओं का सुव्यवस्थित रूप उनके अनुयायी पंडिता द्वारा आगे चलकर प्रस्तुत किया गया।

जिस समय चैतन्य का आधिर्भाव हुआ था उस समय बंगाल में विष्णु भक्ति का बहुत कम प्रचार था और कामी-युवा और धार्मिकों की प्रबलता थी। उस परिस्थिति की प्रतिक्रिया चैतन्य पर गहरी पड़ी थी। इसके अलावा जिस वातावरण में चैतन्य का पिछला जीवन व्यतीत हुआ उस पर निम्बार्क विस्मयमय, कपदेव चडीदास और विद्यापति जैसे भक्तों और कवियों का प्रभाव भी पर्याप्त माना में पड़ा था। इन सब के सम्मिश्रण से चैतन्य के ऊपर प्रेममय कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ श्रृङ्गारिक भक्ति का रूप बढ़ गया था। भगवान् का नाम संकीर्तन चैतन्य का आग्रह लोक-प्रिय साधन था, जिसके द्वारा जन-साधारण को अपने आन्दोलन के प्रति आकृष्ट करने में वे सफल हुए। फलतः इनके शिष्यों की एक बड़ी संख्या संगठित हुई जिनमें प्रधानतः निर्या गन्ध और भईठाचार्य नाम के दो महारमा थे। वे दोनों अद्वैत भक्त ही नहीं बल्कि प्रगाढ़ चारु-नेत्रा भी थे। वैष्णव धर्म को लोक-प्रिय बनाने के हेतु निर्यागन्ध ने तो सब के लिए भक्ति का द्वार खोल दिया। चैतन्य की भग्न शिष्य परम्परा में ये भक्तों का विधिष्ठ स्थान है जो "पद मास्वामी" के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन गोस्वामियों ने

1 "He visited all the shrines of Tamil Country and also Conjeevaram, Sri Ranganam Madura, Siyali, Kumba Konam, and Tanjore."—
"Sri Chaitanya Maha-prabhu"—Tritavda Bhikshu : *Bhakti Pradipa Tirtha*, p. 79

2 "The Life of Sri Gouranga"—Sri D. N. Ganguli, p. 45

सुम्बावन को चैतन्य मत के प्रचार का केन्द्र बनाया। सुम्बावन में रहते हुए चैतन्य संप्रदाय की भक्ति का शास्त्रीय विवचन प्रस्तुत करने के हेतु इन गोस्वामियों ने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। इनके तीन के नाम उल्लेखनीय हैं। वे हैं—रूप गोस्वामी की सनातन गोस्वामी और जीव गोस्वामी। रूप गोस्वामी के लिखे “मक्ति-रसामृत सिन्धु” “उज्ज्वल नील मणि” और “सद्गुण भागवतामृत” भक्ति का शास्त्रीय विवेचन करने वाले अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। सनातन गोस्वामी के धीमद भागवत दशम स्कन्ध की टीका तथा “बृहद्भागवतामृत” और जीव गोस्वामी के ‘पद्मवर्त्म’ तथा ‘गोपास चम्पू’ आदि भी प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

चैतन्य मत “अचिन्त्य मेधाभेद” कहलाता है। कुछ लोग चैतन्य-संप्रदाय को माध्यम-संप्रदाय के अन्तर्गत मानते हैं। इस सम्प्रदाय में डा० सुधीस कुमार डे ने अपने “चैतन्य केव एव्ढ मूकर्मेट इन बंगाल” ग्रन्थ में बड़ी निपुण दृष्टि से तत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार माध्यम-संप्रदाय और चैतन्य-संप्रदाय में बाह्यनिक भरातस पर एकता नहीं है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि माध्यम मत की शाखा होने पर भी चैतन्य मत का बाह्यनिक दृष्टिकोण सर्वथा स्वतन्त्र है। माध्यम की मूल दृष्टि ईश की है। लेकिन चैतन्य मत ‘अचिन्त्य मेधाभेद’ है। चैतन्य मत में परम तत्त्व स्वयं श्रीकृष्ण हैं। यह तत्त्व सच्चिदानन्द स्वयम् अनन्त शक्ति से पूर्ण है तथा अनादि है। शक्ति और शक्तिमान में न तो परस्पर भेद है और न अभेद ही। इन दोनों का सम्बन्ध तर्कों के द्वारा अचिन्त्य है। अतः यह सिद्धांत अचिन्त्य मेधाभेद की संज्ञा से अभिविष्ट है। इस सम्प्रदाय में रूप गोस्वामी ने अपने “सद्गुण भागवतामृत” में लिखा है—

एकद्वयं च पृथक्स्वयं च तत्प्रासादमुताशिता।

तस्मिन्नेकत्र नापुच्छन् अचिन्त्यामंतशक्तित् ॥ १।३०॥

श्री रूप गोस्वामी का कहना है—‘श्रीकृष्ण में अनन्त गुण हैं, वे असंख्य अप्राप्त गुणधारी और अपरिमित शक्ति से सम्पन्न हैं और पूर्णानन्द जन उनका विषय हैं। जो ब्रह्म किन्तु ए निर्विषय और अमूर्त कहा गया है वह सूर्य-तुल्य श्रीकृष्ण के प्रकाश-तुल्य है।’^२

श्रीकृष्ण को अनन्त शक्ति जब प्रकट है तब उसे भगवान् कहते हैं, अन्यथा वह ब्रह्म कहलाता है। जब उसकी शक्ति कुछ प्रकट और कुछ अप्रकट होती है तब वह परमात्मा कहलाता है। ब्रह्म विषुद्विज्ञान का विषय है। परमात्मा मोक्ष का लक्ष्य है। परन्तु भगवान् का साक्षात्कार भक्ति से ही संभव है। परब्रह्म के तीन रूप माने गये हैं—(१) स्वयं रूप (२) तदैकात्मक रूप और (३) आवेष्ट रूप। इन तीनों रूपों में कृष्ण

1 Vaishnava Faith and Movement in Bengal—Dr S R. De, pp 19-20

२ “सद्गुण भागवतामृत”—संस्कृत ३० पृ० १२४, १२५।

ही स्वयं रूप हैं। उनके भी तीन रूप हैं—१. द्वारका रूप २. मधुरा रूप और ३. वनसीसा रूप। ये तीनों रूप सत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। तत्कारमक रूप में वे अपनी अभिव्यक्ति को रूप में करते हैं—१. विलास रूप में और २. स्वाधि रूप में। जो रूप सीता विधेय के लिए प्रकट होता है वह विलास रूप है। जब भगवान् अपने स्वयं रूप से अपनी घोड़ी शक्ति का प्रकाश करते हैं तब उनका वह अंश शक्ति स्वाधि रूप होता है। जब वे कुछ कसामों के साथ विधिष्ठ जीवों में प्रकट होते हैं, तब उनका 'आवेश' रूप कहलाता है। भगवान् के अवतार भी तीन प्रकार के हैं—

१-पुरुषावतार २-गुणावतार, और ३-सीमावतार।

परब्रह्म का बाहि अवतार—पुरुषावतार है जिसे 'वासुदेव' कहते हैं। पुरुषावतार वासुदेव के तीन भेद हैं—संकर्षण अनिरुद्ध और प्रद्युम्न। प्रकृति के तीन गुण—सत्, रज, तम—के अविष्टता तीन गुणावतार हैं। वे हैं—विष्णु, ब्रह्मा और कर्मा। गारुड सनकादि भगवान् के अंशावतार हैं और रामचन्द्र कुछ कम्बि बाहि सीमावतार हैं।

अन्तः शक्ति सम्पन्न भगवान् कृष्ण की शक्तियों तीन प्रकार की हैं—अन्तरंग शक्ति बहिरंग शक्ति और तटस्थ शक्ति। भगवान् की अन्तरंग शक्ति स्वयं शक्ति है जो सत्, चित् तथा आनन्द भुक्त है। बहिरंग शक्ति माया कहलाती है जिससे जड़-अकृति का उद्भव होता है। माया भी दो प्रकार की है—द्रव्य माया और गुण-माया। अन्तरंग और बहिरंग—दोनों शक्तियों के बीच की तटस्थ शक्ति से जीव का सम्बन्ध है। अन्तरंग शक्ति के भी तीन रूप हैं—संचिनी संचित और ज्ञाविनी। संचिनी शक्ति के बस पर भगवान् स्वयं सत्ता धारण करते हैं। ज्ञाविनी शक्ति के रूप में भगवान् स्वयं आनन्द स्वरूप हैं और दूसरों को आनन्द देने वाले हैं।

भगवान् जो अपने बस में करने का सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति है। जीव को भक्ति भगवान् की कृपा से ही मिलती है। भक्ति दो प्रकार है—बंधी तथा रागानुया। बंधी भक्ति भगवान् के ऐश्वर्य का मार्ग है। इस भक्ति के अनुगामी जीव भगवान् के मधुरा द्वारिका नाम में प्रवेश पाते हैं। रागानुया-भक्ति का मार्ग माधुर्य-मार्ग है। चैतन्य संप्रदाय का प्रसिद्ध भक्ति-ग्रन्थ 'भक्ति रसामृत सिन्धु' में बंधी और रागानुया भक्ति के शास्त्र पर बड़े विस्तार से लिखा गया है। भगवान् भीकृष्ण की माधमयी लोकसीसा चार भागों से सम्बन्ध रखती है—सक्य वात्सल्य वात्स्य तथा माधुर्य। इन्हीं चार भागों से कृष्ण चैतन्य संप्रदाय में प्रेम-भक्ति होती है। इन भागों में सब से अधिक उत्कर्ष माधुर्य भाव का है, क्योंकि इस प्रेम के अन्तर्गत अन्य प्रेम भागों का भी समावेश है। प्रेम और आनन्द की शक्ति-स्वरूपा योगियों में राधा महाप्राप्त-स्वरूपा है।

मधुर भाव की रति तीन प्रकार की मानी जाती है—१—साधारण रति २—समंजसा रति और ३—समर्पा रति। साधारण रति का उदाहरण 'कुम्भा' है। समंजसा रति का दृष्टान्त कमलपत्नी आम्बबती है। समर्पा रति के उदाहरण ब्रज दो पदा हैं। इस भाव को पारल कर ब्रज भगवान् से प्रेम और उनकी सेवा उनके आनन्द के लिए करते हैं। इस भक्ति-भाव की साधना में किसी प्रकार के विधि नियम

राधास्व भक्ति का ध्यान नहीं होता। यही भाव अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचकर 'महामाव' या 'राधा-भाव' के रूप में परिणत होता है।

चैतन्य मत में रस-साधना ही प्रधान साधना है। स्वयं श्रीकृष्ण चैतन्य स्वभाव कृष्ण के प्रेम में इस तरह तन्मय हो जाते थे कि सारे सुखसुभ सोकर उन्मत्त हो पीसने-चिस्माने भी तय जाते थे। यही भक्ति 'राधा भाव' की कहसाती थी भक्ति में स्वयं राधा स्वयं होकर कृष्ण के प्रेम में 'महामाव' का अनुभव करते थे। इसी कारण लोग चैतन्य को राधा के अवतार के रूप में मानते थे। चैतन्य संप्रदाय को मधुर-भक्ति ब्रह्म-संप्रदाय की मधुरा भक्ति से साम्य रखती है।

भक्त चैतन्य मतों की तरह चैतन्य-संप्रदाय में भी सरसंग नाम महिमा भगवान् की लीला का कीर्तन भजन कृपावन बास भागवत-भरण मुख-सेवा तुलसी-पूजन आदि भक्ति के विभिन्न साधनों पर जोर दिया गया है। ब्रह्मा कि पहले कहा जा चुका है, चैतन्य मत में भक्त भक्ति का द्वार समाज की सभी श्रेणियों के लोगों के लिए खुला है। इस कारण उत्तर भारत के भक्ति-आन्दोलन में भी भक्त भक्त का महत्वपूर्ण योगदान है। इस संप्रदाय के अन्तर्गत अनेक भक्त-कवियों ने हिन्दी में विविध कृष्ण भक्ति-साहित्य का निर्माण किया और हिन्दी-भक्ति-साहित्य को समृद्ध किया है।

३. राधावत्सलीय संप्रदाय

ब्रजभूमि में चैतन्य और ब्रह्म-संप्रदायों के भक्तों ने अपने साधना-मार्ग का प्रचार प्रारम्भ किया था। सोलहवीं शती के पूर्वार्ध में राधा-कृष्ण की मुक्त-उपासना को लेकर एक भक्त संप्रदाय ब्रजभूमि में प्रचलित हुआ जो 'राधावत्सलीय संप्रदाय' कहलाया। इस संप्रदाय के प्रवर्तक श्री हितहरिबंस थे। श्री हितहरिबंस के विषय में यह कहा जाता है कि वे प्रारम्भ में माधव मठावसथी के और बाद में उन्होंने निम्बार्क स्वामी की साधना पद्धति का अनुकरण कर अपना भक्त संप्रदाय बनाया। श्री हितहरिबंस जी ने कृष्णानन्द में एक मन्दिर बनवाकर उसमें राधावत्सलीय जी की मूर्ति भी स्थापित की। लगभग सन् ११४६ ई० में उक्त मन्दिर के प्रथम पट-महोत्सव के समय हितहरिबंस जी ने अपनी कृष्ण-भक्ति-पद्धति का सम्यक् प्रचार प्रारम्भ किया। उन्होंने भक्त भाषाओं की तरह अपने संप्रदाय के लिए किसी दार्शनिक सिद्धान्त का निष्कर्षण किया न कि स्वयं और मान के साधना की आवश्यकता ही बतायी। उन्होंने राधा और कृष्ण की प्रेम और आनन्द-लीला के ध्यान और भजन में तथा पुण्य-मूर्ति की पूजा में परमात्म-प्राप्ति का साधन घोषित किया। उन्होंने कृष्ण से राधा की पूजा और भक्ति को अधिक महत्वपूर्ण बताया।

स्मरण रहे कि राधावत्सलीय संप्रदाय एक सामन-भाग था, तात्त्विक सिद्धांत की दृष्टि से वैष्णव के भिन्न भिन्न चारों के अन्तर्गत माने जाता कोई 'चार' नहीं था। हितहरिबंस के समकालीन भक्त नामादास जी ने अपने भक्तमास में राधावत्सलीय संप्रदाय की कृष्णोपासना पर प्रकाश डाला है। उनका दृष्ट्य इस प्रकार है—

“श्री हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सुदृढ कीज जानि है ।
 श्री राधाचरण प्रभाव हरय प्रति सुदृढ़ जपासी ।
 कुज केलि दम्पती तहाँ की करत जबासी ।
 सरबस भद्रा प्रसाद प्रसिद्ध ताके प्रविकारी ।
 बिधि निषेध नहि बाध अनन्य बलकद प्रतपारी ।
 श्री ध्यात सुवन पथ अनुसरे सोई भसे पहिचानि है ।
 श्री हरिबस गुसाईं भजन की रीति सुदृढ कीज जानि है ।” —अध्याय १०

राधावल्लभीय संप्रदाय को कुछ सोय निम्बार्क मत की कृन्दावनी शाखा मानते हैं और कुछ सोय नैतन्य मत का । परन्तु डा० बिजयेन्द्र स्नातक ने अपने ग्रन्थ “राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य” में यह सिद्ध किया है कि यह संप्रदाय अपनी साधना पद्धति बिचार भावना सेवा-पूजा आदि में किसी संप्रदाय का अनुपपन्न नहीं है ।^१ वास्तव में जोस्वामी जी ने विभिन्न संप्रदायों की पद्धतियों का मान कर अपनी स्वतन्त्र प्रणाली से इस संप्रदाय की स्थापना की । उन्होंने बिधि निषेध के बाह्याचार को एकदम मिथ्यादम्बर और उपेक्षणीय बताया । उन्होंने अपनी बासी से माधुर्य भाव की प्रेम-सस्रुता भक्ति का अनोखा स्वरूप प्रकट किया । उन्होंने प्रेम सिद्धान्त की स्थापना में वैदिक मर्यादा का आश्रय नहीं लिया और नैसर्गिक रूप से प्रवाहित होने वाले प्रेम को सोक या सास्त्र की सीमाओं में बाँधना अनुचित बताया । श्री हितहरिवंश जी के दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं— ‘राधा सुगानिधि’ और ‘हित चौरासी’ । इन ग्रन्थों में राधाकृष्ण की रूप-माधुरी और सेवा-माधुरी का कवित्वमय वर्णन है ।

राधावल्लभीय संप्रदाय का मूल आधार राधा-प्रेम है । इसके भीतर ही साधक का साधन और साध्य निहित रहता है । आस्थापन करने पर यह प्रेम ही ‘रस’ कहलाता है । इसमें राधाकृष्ण प्रेम को निष्काम प्रेम की संज्ञा दी गयी है । इसमें राधा की आराधना के बिना कृष्ण की आराधना का निषेध है । इसमें राधा के बिना कृष्ण की कल्पना ही नहीं है । श्री हितहरिवंश ने राधा को परकीया भाव से पूजक रक्ता और राजिका जी को दृष्टवैची के रूप में मानने का उपदेश दिया । उनके अनुसार राधा की सत्ता स्वकीया-परकीया के रूप में न होकर स्वतन्त्र रूप में है । श्री बलदेव उपाध्याय ने लिखा है—“हरिवंश जी इस प्रकार न जबठार श्रीकृष्ण को अपना दृष्ट मानते हैं और न गुप्त किणोर नमनजन तथा श्री गुपमानु सत्तो को । वे नित्य बिहारिणी श्री राधा को ही अपना दृष्ट मानते हैं । उनका कथन स्पष्ट है कि राधा स्वतन्त्र पराप्रतिरूपा है । वह महासुख रूपा है । वही सेव्या-आराध्या है ।”^२

इस संप्रदाय के अनुयायियों ने बियोग भावना को न अपनाकर केवल शृंगार की संयोग-लीलाओं को ही अपनाया है । इस संप्रदाय में राधाकृष्ण की मृज-लीला

१ राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य पृ० २१ ।

२ बागवत संप्रदाय—श्री बलदेव उपाध्याय पृ० ४४० ।

मन से जो आनन्द प्राप्त होता है उसे 'परम रस माधुरी-भाव' कहा गया है। वा और कृष्ण का मिलन नित्य वृन्दावन में सम्पन्न होने वाली नित्य-सीमा है। ही वियोग को कोई स्थान नहीं है। 'हरिवंशी' सम्प्रदाय वस्तुतः 'रस सम्प्रदाय' है। यमें प्रेम मूर्ति श्री राधा और कृष्ण के नित्य मिलन के अवसर पर सावक तन्मय व है उनकी सेवाओं में सदा रहता है।

सम्प्रदाय-प्रवर्तक श्री हितहरिवंश स्वयं श्रेष्ठ कवि थे और उनके परचाह इस प्रदाय के अन्तर्गत अनेक भक्त-कवि हुए जिन्होंने अनेक भक्ति-प्रधान ग्रन्थों की रचना ी। इस सम्प्रदाय के कुछ भक्त-कवियों ने बनारस में विपुल भक्ति-साहित्य का र्जन किया है।

'हरिदासी भगवा सखी सम्प्रदाय

सोसहृदी घटी में राधा-कृष्ण की युगल-उपासना को लेकर एक और सम्प्रदाय रचित हुआ जो 'सखी सम्प्रदाय' कहलाया। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी के जिनके नाम पर उक्त भक्ति-सम्प्रदाय को 'हरिदासी सम्प्रदाय' ी कहा जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह मत निम्बार्क-सम्प्रदाय की ही एक शाखा है। श्री स्वामी हरिदास जी प्रारम्भ में निम्बार्क मत के अनुयायी थे और बाद में उन्होंने बोधी भाव को मगधप्रान्ति का एक मात्र साधन मानकर अपनी साधना पद्धति की प्रतिष्ठा की। श्री हरिदास जी ने आरम्भिक काल में अपने सम्प्रदाय को वैष्णव के किसी शाख का भगवा भग्य किसी दार्शनिक सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए माध्यम नहीं बनाया था। उनका एक मात्र उद्देश्य राधाकृष्ण की युगल-उपासना का सखी-भाव से प्रचार करना था। बताया जाता है कि वृन्दावन में श्री स्वामी जी के समय में ही बिहारी जी का ध्वज बननामा गया था।

स्वामी जी के समकालीन भक्त नामादास ने उनकी भक्ति-पद्धति का परिचय देते हुए लिखा है—

'घासबीर जघोत कर 'रसिक' छाप हरिदास की।

बुगल नाम सौ नैम अपत नित कुछ बिहारी ॥

भगमोहन 'हे' कैलि सखी सुख को सचिकारी।

मान कला मन्त्रं स्वाम स्वामा कीं तोये ॥

नामादास जी के कथन से यह विदित होता है कि स्वामी जी मानवता में निष्ठा के और अपने सुमनुर भक्तों द्वारा स्वाभा-व्याम की स्तुति किया करते थे। स्वामी जी की रची हुई 'देविभाक्त' नामक पदावली विख्यात है जिसमें अन्तरंग के मनुरतम भावा की सुन्दर ध्वजना हुई है।

डा० बिजयेन्द्र सावक ने सखी सम्प्रदाय को निम्बार्क सम्प्रदाय के पृथक माना है। वे लिखते हैं—'कहा जाता है कि निम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्त का अनुसरण करते श्री स्वामी हरिदास जी ने अपना सम्प्रदाय बनाया। किन्तु सखी-सम्प्रदाय की

तमिल के कृष्ण-भक्त-कवि अलवार

तमिल में 'आळ्वार' शब्द अब साधारणतया उन द्वादश वैष्णव भक्तों के लिए प्रयुक्त होता है जिनके पर 'मासामिर दिव्य प्रबन्धम्' में संज्ञीत हैं। 'प्रबन्धम्' में कहीं भी 'आळ्वार' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। केवल एक स्थान^१ पर यह शब्द आया है, परन्तु वैष्णव भक्त के अर्थ में नहीं। नम्माळ्वार की रचनाओं में 'वैष्णव भक्त' के लिए 'अवियार' अथवा 'ननवर' शब्द ही मिलता है।^२ वस्तुतः 'आळ्वार' शब्द उन भक्त कवियों के जीवन-काल के परचाय ही प्रयोग में आया। इसका प्रथम प्रयोग श्री रामानुजाचार्य के समय में श्री नित्यान द्वारा 'प्रबन्धम्' पर लिखी गई टीका में मिलता है।

'आळ्वार' शब्द का एक अर्थ 'मग्न होना' है। इस अर्थ में यह शब्द किसी भी ऐसे भक्त महारमा के लिए प्रयुक्त हो सकता है, जिसने आध्यात्मिक ज्ञान कभी सागर में डोहा नजामा हो।^३ कुछ विद्वानों से पूछा जाता है कि प्रारम्भ में यह शब्द केवल वैष्णव भक्तों के लिए न होकर, 'वैव',^४ जैन-भक्तों तथा मयवान् ब्रूट^५ के लिए प्रयुक्त होता था। 'आळ्वार' शब्द का एक दूसरा अर्थ 'घासन करने वाला' भी है (आळवल = घासन करना)। अतः 'आळ्वार' शब्द से आशय उस व्यक्ति से है जो

१ नानुब्रजन निरुपमादि, पर संख्या १४।

२ निरुपमायमोक्षी, २।२।२।

३ "The word Alvar has peculiar significance of its own. It means one who has sunk into the depths of his existence or one who is lost in a rapturous devotion to the Lord. It is a word quite descriptive of all god-intoxicated men."

—Grains of Gold R. S. Desikan, p. 6.

४ South Indian Inscriptions, Vol. III p. 102.

५ नीलदेवी, मोक्षमता ८९ टीका।

तमिल के कृष्ण-भक्त-कवि आल्वार

तमिल में 'आल्वार' शब्द जब साधारणतया उन हास्य ईर्ष्या वशों के लिए प्रयुक्त होता है जिनके पर 'नालापिर विषय प्रबन्ध' में उल्लेख है। प्रत्यक्ष में कहीं भी 'आल्वार' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। केवल एक स्थान पर यह दृष्ट गता है, परन्तु ईर्ष्या भक्त के अर्थ में नहीं। नम्माळ्वार की रचनाओं में ईर्ष्या वशों के लिए 'अदियार' अथवा 'भगवत्' शब्द ही मिलता है।^१ वस्तुतः 'आल्वार' शब्द उन भक्त कवियों के जीवन-काल के परचाह ही प्रयोग में आया। इसासन अंश श्री रामानुजाचार्य के समय में श्री विस्मयन द्वारा 'प्रबन्ध' पर लिखी गई टीका में मिलता है।

'आल्वार' शब्द का एक अर्थ 'मग्न होना' है। इस अर्थ में यह शब्द किसी भी ऐसे सन्त महारमा के लिए प्रयुक्त हो सकता है, जिसने स्वर्ग-राज्य प्राप्त कर लिया हो। कुछ प्रिन्सिपलों से पता चलता है कि ईर्ष्या वशों के लिए 'आल्वार' शब्द केवल ईर्ष्या भक्तों के लिए न होकर, ईश्वर, ईश्वर वशों का अर्थ भी हो सकता है। 'आल्वार' शब्द का एक दूसरा अर्थ 'होना ईश्वर वश' है (आल्वरस = शासन करना)। अतः 'आल्वार' शब्द है वास्तव में ईश्वर वशों के ही

१ मानमुक्कन निरुक्तान्तरि, पर संख्या १४।

२ निरुक्तान्तरि १।२।३।

३ "The word Alvar has peculiar significance of its own. It means one who has sunk into the depths of his nature. It who is lost in a rapturous devotion to the Lord. It is a word quite descriptive of all god-intoxicated men."

—Grains of Gold R. & L. Inc., p. 6.

४. South Indian Inscriptions, Vol. III p 102.

५. नीलकेशी, मोक्षरत्ना, ८२ टीका।

तमिळ नाम	संस्कृत नाम
१ पोयर्वा आळ्वार	१ सरोयोगी
२ सूतप्पाळ्वार	२ मूतयोमी
३ पैयाळ्वार	३ महायोगी या भ्रातृ योगी
४ तिरुमनिसई आळ्वार	४ भक्तिस्वार
५ नम्माळ्वार	५ शङ्कोप
६ मयूरकवि आळ्वार	६ मयूर कवि
७ कुमसेव्यार	७ कुमसेवार
८ पैरियाळ्वार	८ विष्णुवित्त
९ आंबळ	९ गोदा
१० तोंडरुओपोडी आळ्वार	१० भस्त्रधारेणु
११ तिरुप्पाण आळ्वार	११ योगीवाहन
१२ तिरुमने आळ्वार	१२ परकाश

इस क्रम के आचार पर प्रथम बार को प्राचीन बार के पाँच को मध्य तथा शेष तीन की अन्तिम काल के मानने की परिपाटी भी बसी जाती है। ये सभी आळ्वार तमिळ-भाषी थे और इनकी रचनाओं में इनके तमिळ नाम ही मिलते हैं। अतः ये तमिळ-ग्रन्थ में अपने तमिळ-नामों से ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

‘नात्तायिर विव्य-प्रबन्धम्’

आळ्वारों की रचनाएँ उनके जीवन-काल में संगृहीत नहीं हुई थीं। इनकी रचनाओं के जो नाम आज मिलते हैं, वे आळ्वारों के अपने बिसे हुए नहीं मान्य पड़ते। इनके पद सताव्वियों तक केवल मौखिक रूप में जीवित रहे। इसलिये सम्भव है कि बहुत से पद नष्ट हो गये हों। नहीं सताव्वी के अन्त में भी नात्तायिर ने बड़े परिश्रम से इन पदों का संकलन किया और पद-कठौ बिषय सबका छन्द के आचार पर अक्षय-अलग नाम दिये। आळ्वारों की रचनाओं के संग्रह का नाम तभी से ‘विव्य-प्रबन्धम्’ अथवा ‘अरुळिचेयल’ अर्थात् ‘अनुग्रहपूर्ण ज्ञान’ पड़ा। श्री रामानुजाचार्य के समय में उनका एक शिष्य श्रीरंगमवासी अमुदम ने मुक्त रामानुजाचार्य की स्तुति में तमिळ भाषा में एक ही पद रचे थे जिसको भी ‘रामानुज मुद्रास्वादि’ के नाम से ‘विव्य-प्रबन्धम्’ में समाविष्ट किया गया है। इस पूरे संग्रह के पदों की संख्या ४००० के लगभग है। अतः मुनिवा के लिए इस पद-संग्रह को नात्तायिर विव्य-प्रबन्धम् अर्थात् बार सहस्र पावन पद की संज्ञा दी गई है।

अब आळ्वारों के जीवन-कृत पर संक्षेप में प्रकाश डालकर उनकी रचनाओं और उनके वर्ण-विषय का परिचय दिया जाता है।

१

पोयरी आळवार (सरोयोगी)

आळवार भक्तों की परम्परा में प्रथम तीन आळवारों को 'मुक्ताळवार' कहा जाता है। इन तीनों में भी पोयरी आळवार को 'आदि कवि' कहते हैं।^१ इनका जीवन-कृत विमिराक्षित है। कहा जाता है कि इनका जन्म तमिळ-प्रदेश में कांचीपुरम के उत्तर भाग में स्थित तिरुवेहा^२ के एक ताम्बाम में कमल पुष्प पर हुआ था। इनको विष्णु के शंख का अवतार भी माना जाता है। इनका जन्म ताम्बाम के पूम से होने के कारण इनका नाम 'पोयरी' (ताम्बाम) आळवार पड़ा। 'मुक्ताळवार' ग्रन्थों के अनुसार इनका जन्म ४२० ई० पू० में हुआ था। परन्तु आधुनिक विद्वानों को यह मान्य नहीं है।

'पोयरी' के नाम से एक दूसरे कवि का भी पता जसा है जो तमिळ साहित्य के 'तयक्कल' (दूसरी और तीसरी शताब्दियों) में जीवित थे। इस कवि की रचना 'इमिरी' है जो हाल में प्रकाशित हुई है। 'साप्पिरुपल विरुत्ति' नामक तमिळ-पिंगल व्याकरण ग्रन्थ में 'अन्तावि' छन्द के उदाहरण के लिए जो पद दिये गए हैं, वे पोयरी आळवार के ही हैं। इस ग्रन्थ में 'आर्य रचना के उदाहरण के अन्तर्गत पोयरी आळवार के कुछ छन्दों में से चुटियाँ लिखाई गई हैं। डा० कृष्णस्वामी अय्यर^३ जैसे कुछ विद्वान् कवि पोयरी और पोयरी आळवार को एक ही व्यक्ति मानकर इनका समय दूसरी शताब्दी में निश्चित करते हैं। प्रो० ई० एस० वरदराज अय्यर^४ के मतानुसार इनका समय छठी शती के प्रारम्भ मानना चाहिए। सामान्य रूप से इनका समय चौथी या पाँचवीं शताब्दी माना जा सकता है।

पोयरी आळवार के जीवन की घटनाओं का पता नहीं चलता। अन्त-साध्य के आधार पर इनके स्वभाव चरित्र आदि के विषय में कुछ जाना जा सकता है। पोयरी आळवार बचपन से ही विष्णु के अनन्य उपासक थे। एक पद में उन्होंने लिखा है कि इनके प्राञ्जिक जीवन का पाठावरण भक्तिमय था। अतः अनुमान किया जा सकता है कि इन्होंने बचपन में विष्णु-कथाएँ सुनी होंगी और इनका मन गोपास कृष्ण की नीलाओं में रमा होया। पोयरी आळवार के समकालीन कांचीपुरम के राजा भी वैष्णव भक्त थे।^५ और एक पद में इन्होंने लिखा है— 'मेरा मुँह केवल उस चक्रवाती विष्णु की ही स्तुति करेगा। मेरे कान केवल उन्हीं की गुण-गाथाओं को सुनेंगे।

१. इतिह मुनिवरकळ—एम० राधाकृष्ण पिल्लै, पृ० ४।

२. Early History of Vaishnavism in South India pp. 72-73

३. A History of Tamil Literature—Prof. E. S. Varadaraja Iyer, p. 254.

४. मूबर एड्विज मोती विलरु—पी पी० श्री आचार्य पृ० १०।

को सुनें। मेरे हाथ केवल उन्हीं को नमस्कार करेंगे और किसी को नहीं।^१ इससे योगी आठवार के उत्कृष्ट वैष्णव भक्त होने का पता चलता है। इन्हें योग इत्यादि का भी विधेय ज्ञान था।^२ पंथिग्रियों को यश में कर सर्वथा समझाने के ध्यान में रहने वाले भक्तों की इन्होंने स्तुति की है। एक पर^३ में इन्होंने लिखा है कि मैं किसी परमात्मा की कामना नहीं करूँगा। बुद्धों की संगति में नहीं जाऊँगा और साधु सन्तों की सेवा में ही सर्वथा रूँगा।

ये श्रेष्ठ ज्ञानी थे। वेद-उपनिषदों का भी इन्हें विधेय ज्ञान था। भूम-भूमकर वैष्णव भक्ति का प्रचार करते थे और स्वामी रूप से एक स्थान में न रहे। इन्होंने बुरे बयों का खण्डन नहीं किया है और इनमें धार्मिक सहिष्णुता की भावना बीच पड़ती है जो कि अन्य कुछ आठवारों में नहीं। इनका जीवन बहुत ही सादा था और भक्ति करना ही इनके जीवन का एक मात्र ध्येय था। तन्माठवार और तिरुवन्तूर आठवार जैसे परवर्ती आठवारों ने इनकी भक्ति-भावना की बड़ी स्तुति की है।

रचनाएँ

योगी आठवार के एक-ही पर 'मुदल तिरुवन्तारि' के नाम से मिलते हैं। ये 'अन्तारि' छन्द में रचित हैं और 'विष्णु प्रबन्धम्' के 'श्रवण' विभाग में समूहीत हैं। ये स्तुति पर हैं। इनमें कोई कथा वर्णित नहीं है। पर मुख्यतः भक्ति उपदेश आदि से सम्बन्धित है। इन्होंने अपने एक पर में भक्ति की सबसे सरल मार्ग बताया है—“मल्ल जिस रूप को चाहते हैं, वही उसका रूप है। जिस नाम को चाहते हैं, वही उसका नाम है। मल्ल जिस वस्त्र से भी अपासना करें, उसी वस्त्र से वह भक्ति विष्णु उनका उपास्य बन जाता है।”^४

कुछ पदों में विष्णु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख है और भगवान् मुल लोका इत्यादि का वर्णन है। कवि का मन विधेय रूप से वृष्ण की बाल-भौसाओं में रमा है। तिरुवन्तूरम्, तिरुवन्कटम् आदि तमिळ प्रदेश के विष्णु-स्वतों में विराजमान विष्णु के अवतार-रूपों की भी स्तुति है।

भूतताठवार (भूतयोगी)

भूतताठवार का जन्म 'बुदरम्परा' छन्दों के अनुसार “तिरुवन्तार मल्ल” (वर्तमान महाबलीपुरम्) में मारुती पुत्र पर हुआ था। इनकी रचना में भी इनके जन्म-स्थान “मामल्ल” का उल्लेख मिलता है। इन्हें विष्णु की मरा का अवतार माना

१ मुदल तिरुवन्तारि पर ११।

२ बुदर एहिय कोली विलवु—पी पी० पी आचार्य पृ० १६।

३ मुदल तिरुवन्तारि, पर १४।

४ वही, पर १४।

जाता है। उनके जीवन-युग के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। ये पोयरी आळ्वार के समकालीन माने जाते हैं। सामान्यतः इनको चौथी या पाँचवीं शती में जीवित मान सकते हैं। श्री रामच अय्यंगार ने इनका जीवन-काल पाँचवीं शती के उत्तरार्द्ध में माना है।^१

कहा जाता है कि ये वास्यावस्था से ही सन्त, पवित्र, निष्कलंक ज्ञान के अपूर्व भण्डार और श्रेष्ठ भगवद् अनुयायी थे। इनकी रचनाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि इन्होंने वेद उपनिषदों को अवश्य पढ़ा था। ये भी पोयरी आळ्वार की तरह भूम-भूमकर भगवद् भक्ति का प्रचार करते थे और लोगों को उपदेश देते थे। एक स्थान पर स्वामी रूप से ग रहे। कहा जाता है कि ये सिद्ध-महारामा थे। इनका जीवन अत्यन्त साधा सा और इन्होंने अपना साध जीवन भगवद् भवन में बिताया। मम्मालवार ने इनकी बड़ी स्तुति की है। सूतत्ताळ्वार ने अपने एक पद में तमिळ भाषा के प्रति अपने अपार प्रेम का परिचय दिया है। 'सूत' का अर्थ पंचसूत संघासित जीवन है और सूतत्ताळ्वार का विश्वास था कि अपना भौतिक अस्तित्व भगवान् पर ही पूर्णतया आधारित है।

रचनाएँ

सूतत्ताळ्वार के छी पद 'तिरुवन्तादि' छन्द में रचित मिलते हैं और 'इरुटाम तिरुवन्तादि' के नाम से 'प्रबन्धम्' के 'इरुपा' विभाग में संगृहीत हैं। ये स्फुट पद हैं। इनमें किसी कथा का निर्वाह नहीं है। कवि के समाधिभय क्षणों में मानस से निकले हुए अनुभूतिपूर्ण उद्गार भावमयी भाषा में अभिव्यक्त हुए हैं। भगवद् गुण भक्ति की महिमा धारणापति आदि बर्णन-विषय हैं। कवि ने विष्णु के अनेक अवतारों का स्मरण किया है। कुप्पु की बान-भीमार्जों की ओर भी संकेत है। अनेक वैष्णव मन्दिरों की स्तुति की गई है। पर्वतीय-क्षेत्रों का वर्णन करते समय प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है।

रहस्यवाद की सुन्दर झलक कहीं-कहीं दीख पड़ती है। इनकी रचना का प्रथम पद बहुत प्रसिद्ध है—'प्रेम के द्विप में अभिज्ञापा का भी ज्ञान, सिम्ब हृदय की बाठी लगाकर, स्नेह प्रवित् ज्ञात्मा के साथ मैंने नारायण के सम्मुख ज्ञान का दीप जलाया।'^२

पेयाळ्वार (महायोगी या भ्रान्त योगी)

कहा जाता है कि पेयाळ्वार वर्तमान मद्रास नगर के अन्तर्गत 'मैसापुर' नामक स्थान में किसी कुएँ के ताल कमल पुष्प से प्रपट हुए। जबकि इन आळ्वारों के जन्म

१ आळ्वारकळ कामगिरी—प्रो० एम० रामच अय्यंगार, पृ० ११।

२ इरुटाम तिरुवन्तादि, पद १।

परिवार इत्यादि के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं। इसलिये इनकी ऐसी उत्पत्ति की कल्पना कम-मानस ने की होगी। मग्राध में पैयाळवार के नाम से एक मन्दिर भी है। श्री सम्प्रदाय वाले इन्हें विष्णु के अवतार मानते हैं। कहते हैं कि भगवद् भक्ति के परमादेश में इन्निष्ठ होकर ये रोते, हँसते, बाते गाते और चिन्ताते थे। भक्त लोगों ने इन्हें पावन समझकर इनका नाम 'पैयाळवार' रख दिया था।

इनका जीवन-काल भी विवाद का विषय रहा है। साधारणतया इनको पोयर्षी आठवार और भूतत्ताळवार का समकालीन माना जाता है। ये परम ब्रह्म-भक्त थे और जीवन भर ब्रह्म-भक्ति का प्रचार करते रहे। ये एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रहते थे और सदा भ्रमण कर लोगों को उपदेश देकर उनके अज्ञान-अन्धकार को दूर करते थे। इनका जीवन अत्यन्त सादा था और जन कीर्ति आदि का मोह किंचित भी नहीं था।

पोयर्षी आठवार, भूतत्ताळवार और पैयाळवार—इन तीनों को 'मुनित्रय' भी कहते हैं। साम्प्रदायिक मतानुसार ये तीनों अयोनित्रय थे और भगवान् द्वारा भक्ति-प्रचार के लिए भेजे गये थे और इनका जन्म एक ही महीने में हुआ था। इस प्रकार इन्हें समकालीन ठहराने का प्रयत्न किया गया है। ये तीनों आठवार पूर्वपरिचित नहीं थे। इनके एक-दूसरे से परिचित होने के सम्बन्ध में एक घटना बहुत ही प्रसिद्ध है। एक दिन पोयर्षी आठवार भक्ति-प्रचार करते हुए 'ठिन्दोइन्नूर' नामक स्थान में जा पहुँचे। वहाँ भी पड़ी थी। भारी वर्षा होने लगी और अन्धेरा भी छा गया था। भीसते भीगते पोयर्षी आठवार आगे और वर्षा से अपने को बचाने के लिए और रक्त गुजारने के लिए स्थान ढूँढ़ने लगे। आखिर उन्हें एक छोटी सी कुटिया के बरामदे में छिपने के लिए अवसर मिल गया और ये विभाम करने लगे। चौड़ी बेर के बाह एक दूसरा व्यक्ति वहाँ जा पहुँचा और उसने पोयर्षी आठवार से अपने लिए सबकुछ माँगी। यह व्यक्ति भूतत्ताळवार थे। पोयर्षी आठवार ने यह कहकर कि यहाँ एक आदमी बैठ सकता है, वो बैठ सकते हैं। भूतत्ताळवार को भी बैठने की जगह थी और दोनों आध्यात्मिक बर्बाद करते रहे। इसने में वहाँ एक तीसरे आदमी का भी आना हुआ जिसने भी वर्षा से अपने को बचाने के लिए उन दोनों से चौड़ी अवसर माँगी। ये पैयाळवार थे जो वहाँ से वहाँ जा पहुँचे। पोयर्षी और भूतत्ताळवार ने यह कहकर कि यहाँ एक आदमी बैठ सकता है, वो बैठ सकते हैं। तीनों बैठ सकते हैं, पैयाळवार को भी जगह थी। अब तीनों धके होकर भगवद् पूज्यमान करने लगे कि अचानक उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों उनका बोझ में कोई अन्य व्यक्ति भी उपस्थित हुआ है। वे तीनों भक्त अपने मध्य साक्षान् भगवान् को पाकर प्रसन्न हुए। भगवान् ने उनसे कोई वर माँगने को कहा। अब अपने कीर्ति के अलावा और क्या चाहिए? तीनों भक्तों ने भगवान् से यही प्रार्थना की कि हम सर्वत्र आपका ही पूज्यमान करते रहें और आप ही का स्मरण हमें शरदा रहे, आप यही वरदान दे दें। कहते हैं कि उस समय विष्णुसोक सा वहाँ छा गया। उस समय तीनों आठवार आनन्दानन्द में थे और उनके मुँह से कविता

पूट निकली । चीनों ने चीन-सी पद पाये । इस घटना को पुष्टि पोयरी आळ्वार के एक पद से होती है । इस घटना में आळ्वारों के सिद्धांतों का मूल है । इससे इनकी विद्याल-हृदयता का परिचय मिलता है ।

कहा जाता है, पेयाळ्वार ने ही तिरुमल्लिस्तुर् आळ्वार को जो पहले कट्टर शैव भक्त थे, शास्त्रीय वाद-विवाद में परास्त किया और उनको परम वैष्णव भक्त बना दिया । इस सम्बन्ध में एक कथा भी प्रसिद्ध है । इससे सात होता है कि पेयाळ्वार बड़े जानी थे ।

रचनाएँ

पेयाळ्वार के ही पद 'मुंडाम तिरुवैतादि' के नाम से 'प्रबन्धम्' में संगृहीत हैं । ये 'तिरुवैतादि' इन्द्र-विरोध में रचित स्पुष्ट पद हैं । किसी कथा का आधार नहीं लिया गया है । इनमें भक्त-हृदय के वे उद्गार अभिव्यक्त हुए हैं जो कठोर से कठोर हृदय को भी द्रवित करने वाले हैं । भयभर पुण भक्ति की महिमा शरणागति आदि के विषय वर्णित हैं । इनसे कवि के वेद उपनिषद्, गीता आदि के ज्ञान का परिचय मिलता है । एक पद में कवि ने कहा है— 'बहु ईश्वर है पृथ्वी आकाश, आठों दिशाओं वेद वेदाङ्ग सर्वत्र अस्तनिहित हैं । पर आश्चर्य यह है कि उसका निवास है मेरे हृदय में ।' इन्होंने भक्ति को सबसे सरल मार्ग बताया है । विष्णु के विभिन्न अवतारों का भी उल्लेख है । कृष्ण की बात-मीताओं की ओर संकेत है । कहीं-कहीं प्रकृति का सुन्दर चित्रण मिलता है ।

तिरुमल्लिस्तुर् आळ्वार (भक्तिसार)

तिरुमल्लिस्तुर् आळ्वार का जन्म कांचीपुरम के पास स्थित 'तिरुमल्लिस्तुर्' (महंछपुर) नामक ग्राम में हुआ था । सम्प्रदाय में इनको विष्णु के चक्र का अवतार माना जाता है । इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती प्रचलित है, जिसके अनुसार वे कार्यक मुनि तथा कनकापी नामक अम्बर के संयोग से उत्पन्न हुए थे और माता के परिणाम पर देने पर 'तिरुमाळ्वर' नाम के एक ब्याह ने उस अव्यक्त शिशु का पालन-पोषण किया था । इनके समय का निर्णय करना कठिन है । परन्तु इतना निश्चित है कि वे पल्लव-राजाओं के शासन-काल में ही जीवित थे । श्री राघव वर्मण्वर इनका जीवन-काल छठी शताब्दी के उत्तरार्ध तथा सातवीं शती के पूर्वार्ध में मानते हैं । तिरुमल्लिस्तुर् के कुछ पदों में स्वर्णित सम्बन्धी कुछ उल्लेख प्राप्त होते हैं । एक जगह इन्होंने अपने की निम्न-जाति का बताया है ।

कहा जाता है कि वास्तविकता में वे कभी किसी स्त्री का स्तन-पान नहीं करते थे । वे एक बृद्ध दुर्य यह समझकर कि यह कोई असाधारण वाक्य है इन्होंने पाय का दूध पिलाने लगा और आळ्वार के दुग्ध-पान करने के परवाना प्राप्त में शेष बचने

भासे ब्रह्म को बड़ कुद पीठा बा और अपनी पत्नी को भी पिताठा बा । कुछ दिनों के पश्चात् उस बृद्ध पुत्र्य को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम 'कणिकम्पन' रखा गया । आगे चलकर 'कणिकम्पन' तिरुमळिसई का प्रधान सिष्य बन गया ।

यह प्रसिद्ध है कि तिरुमळिसई प्रारम्भ में कट्टर शैव थे और इनका नाम शिवबाक्म^१ था । इन्होंने शैव धर्म पर कुछ ग्रन्थ भी रचे थे और शैव-धर्म का प्रचार किया था ।^२ पेयाळ्वार और इनमें शास्त्रीय वाद-विवाद हुआ था और अन्त में शिव बाक्म पराजित होकर पेयाळ्वार के सिष्य बन गये और अपना नाम 'तिरुमळिसई' रखा था । उत्पश्चात् ये शैव और बौद्ध धर्मों के कट्टर विरोधी बन गये और वैष्णव धर्म के पक्षे समर्थक हो गये । इनकी रचनाओं में अन्य धर्मों का सङ्गन मिलता है । एक स्थान पर इन्होंने लिखा है— 'भ्रमण या जैन भूर्त्त है, बौद्ध भ्रम-जाल में पड़े हैं, शैव निर्दोष ब्रह्मासी हैं । विष्णु की पूजा नहीं करने वाले निन्द्य श्रीली के हैं ।'^३ इससे इनके कट्टर वैष्णव-मन होने का पता चलता है ।

तिरुमळिसई के पदों को देखने से विदित होता है कि इन्होंने महामारुत रामायण, विष्णु पुराण आदि ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन किया था । ये संस्कृत और तमिळ के बड़े विद्वान् थे । अनुमान किया जा सकता है कि पेयाळ्वार के सम्पर्क में जाने के पहले तिरुमळिसई ने जैन बौद्ध आचार्यों के यहाँ रहकर विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन किया होगा । तभी इन्होंने स्वयं अपने को इन शास्त्रों में विद्वान् कहा है । इनको सांख्य ध्याय वैशेषिका पञ्चतान्त्र के योग-दर्शन का भी ज्ञान था । इनकी रचनाओं में श्री वैष्णव संप्रदाय के शार्ङ्गिक सिद्धान्तों का मूल झोट देखने को मिलता है । इनकी रचना में ही प्रथम बार आळ्वार-साहित्य में पाँचरात्र धर्म के ब्रह्मवाय का वर्णन मिलता है ।^४

तिरुमळिसई सिद्ध-योगी थे । इनकी योग-शक्ति के सम्बन्ध में कई किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं । कहा जाता है कि जबकि तिरुमळिसई शैव-धर्म को छोड़कर वैष्णव बन गये थे, इसलिये शिवजी ने विष्णु की उपासना में सीन आळ्वार की परीक्षा लेनी चाही । शिव जी ने स्वयं प्रकट होकर तिरुमळिसई से वर माँगने को कहा । तिरुमळिसई ने यद्यपि कुछ माँगना नहीं चाहा तो भी शिवजी के बार-बार आग्रह करने पर उनसे पूछा कि आप मुझे मोक्ष दिला सकते हैं और मेरी जाय को बड़ा सकते हैं ? शिवजी ने इन दोनों कायों में अपने को असमर्थ बताकर और कुछ माँगने को कहा । इस पर

१ आळ्वारकल कालविलै—श्री एम० रामच बर्मनार, पृ ३६ ।

२ "Bhaktikara" Sri Salla—"Vedant Kesari" Vol 31 p. 189

३ गानगुञ्जन तिरुमत्तादि, पद १ ।

४ Journal of Indian History Madras, Vol., 21 (1942) p. 83

विस्मयिस्वई हूँ पड़े। शिवजी इसको अपनी अवहेलना समझकर क्रुद्ध हुए और उन्होंने विस्मयिस्वई को मत्त कर देना चाहा। परन्तु विस्मयिस्वई की हृदय-शक्ति और योग-शक्ति को देखकर उनकी प्रशंसा की और 'मक्ति-सार' नाम उनकी दिया। कहा जाता है कि विस्मयिस्वई आठवार ने अपनी योग-शक्ति से 'भूक्ति-सार' नामक प्रसिद्ध छन्द-योगी तथा अन्य अनेकों मतवाहियों को पराजित किया।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार विस्मयिस्वई ने एक बूढ़ा स्त्री को जो उनकी सेवा करती थी मुक्त कर दिया और उस स्त्री के सौम्य पर मोहित तरकारीन पत्न्य राजा ने उससे विवाह कर लिया। कुछ समय के पश्चात् राजा ने उस स्त्री के सौम्य को और भी बढ़ा देकर उसका रहस्य पूछा। राजा ने पुन यौवन को प्राप्त करने की इच्छा है 'कणिकमन' से जो विस्मयिस्वई आठवार का शिष्य था और जो राजा के यहाँ मिला मंगने आठा था, अपनी इच्छा प्रकट की और विस्मयिस्वई को बुला जाने को कहा। 'कणिकमन' के यह कहने पर कि विस्मयिस्वई राजा के प्रसन्नता में नहीं जायेंगे, राजा क्रुद्ध हुआ और 'कणिकमन' को बेश-निकासे का बख दिया। कणिकमन ने विस्मयिस्वई के पास जाकर सारा वृत्तान्त सुनाया तो विस्मयिस्वई भी उसके साथ निकलने को तैयार हो गये। फिर उन्होंने मन्दिर के अन्दर जाकर प्रार्थना की—'हे वात्सल्यमय भगवान् ! कणिकमन इस नगरी को छोड़कर जा रहा है और उसके साथ मुझे भी जाना होगा। इसलिये आप भी आदि शेष स्त्री दया को समेटकर मेरे साथ चलने की कृपा करें।' कणिकमन सहित विस्मयिस्वई आठवार के नगर के बाहर जाने पर नगर में अन्धकार छा गया। इस दुर्बस्था को देखकर राजा विस्मयिस्वई और कणिकमन के पास आया और दया माँगने लगा। विस्मयिस्वई ने जब राजा पर दया कर, भगवान् से अपने लौटने की प्रार्थना की और भगवान् ने भी ऐसा ही किया। पुन वे अपने निवास-स्थान को आ पहुँचे। उस स्थान पर स्थित मन्दिर आज भी 'यमोक्तकारी' के नाम से प्रसिद्ध है।

कहते हैं कि एक बार विस्मयिस्वई कुम्भकोणम नामक नगर में स्थित विष्णु मन्दिर के दर्शनार्थ गये थे। वहाँ कुछ ब्राह्मण वेद-पाठ कर रहे थे। विस्मयिस्वई को देखकर उन्हें नीच जाति वाला तथा वेद-वाच्य के समर्थ का अनधिकारी समझकर ब्राह्मणों ने वेद-पाठ बन्द कर दिया। विस्मयिस्वई उनके अभिप्राय को समझकर वहाँ से उठकर अन्ध चल गये। जब ब्राह्मणों ने पुन वेद-पाठ शुरू करना चाहा तब किसी को भी याद नहीं आया कि उन्होंने वहाँ वेद-पाठ बन्द किया था। उसे विस्मयिस्वई का अपमान करने का काम समझकर, वे विस्मयिस्वई के पास जाकर क्षमा माँगने लगे। विस्मयिस्वई ने उन्हें वेद का वह वाक्य बताया जहाँ वे उन्हें प्रारम्भ करना था। यह भी कहते हैं कि श्री वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायियों में तिसक लगाने

के लिए भी पूर्ण का प्रयोग इन्होंने ही पहले-पहल किया था ।^१ बुद्ध-परम्परा-ग्रन्थों के अनुसार ये सैकड़ों वर्ष जीवित रहे ।

रचनाएँ

तिरुमळिसई आळ्वार की दो रचनाएँ 'प्रबन्धम्' में संगृहीत मिलती हैं—
 "नानमुक्कन तिरुमन्तादि" तथा 'तिरुक्कम्बिरुत्तम' । यह भी कहा जाता है कि इन्होंने कई रचनाएँ की थीं और उनसे संतुष्ट न होकर उन्हें कानेरी नदी में डाल दिया और कई रचनाएँ सट्टा के प्रवाह में बह गयीं और केवल "नानमुक्कन तिरुमन्तादि" तथा "तिरुक्कम्बिरुत्तम" प्रवाह के साथ न बहकर अपने आप किनारे की ओर भौंचि जायीं ।

"नानमुक्कन तिरुमन्तादि" आळ्वार की रचनाओं में सबसे पहले रचित माधुम पढ़ती है । इसमें 'अन्तादि' छन्द में रचित १०० पद एकत्रित हैं । इसमें दिव्यु को परमेश्वर मानकर विष और ब्रह्मा को उनकी कृति बताया गया है । भक्ति-मार्ग की स्पष्टता भगवान् के बारम्बार प्रेम बाधि बिशिष्ट गुणों का वर्णन है । सभी पद भक्ति तथा उपदेशपरक हैं । दिव्यु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख है । पर कृष्णवतार में कवि की आस्था है । सत्तार की सादृशीयता भगवद्-स्मयन करने से ज्ञानम्, धारणामति बाधि विषय भी वर्णित हैं । कहीं-कहीं प्रकृति-वर्णन की सुन्दर छटा है ।

'तिरुक्कम्बिरुत्तम' में १२० पद हैं । पद विविध रूपों में हैं । इसका पूर्वाङ्क वीप्पुव-अर्चन के उपदेशों से सम्बन्धित है । वैद उपनिषदों का सार दिया मिलता है । 'नानमुक्कन तिरुमन्तादि' की अपेक्षा इसमें दर्शन के गूढ़ तत्त्वों का विवेचन है । उत्तराष्ट्र के कुछ पदों में एक विरहिणी नायिका के रूप में भगवान् से मिलने के लिए आतुरता प्रकट की गई है । आळ्वार-साहित्य में प्रथम बार नायक-नायिका के बीच विरह-मिलन के रूप में भगवान् और भक्त के बीच मिलन-आतुरता तिरुमळिसई की रचना में ही वर्णित हुई है ।

नम्माळ्वार (छठकोप)

आळ्वार-घोष्ठी में नम्माळ्वार का स्थान सर्वोपरि है ।^२ दक्षिण के समस्त वीप्पुव भक्ति-साहित्य के इतिहास में नम्माळ्वार को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।^३ नम्माळ्वार छठकोप पराकुश बहुलामरुल मारन बाधि नाम से भी प्रसिद्ध है । कहते हैं कि दीघवावस्वा में 'छठ' नामक बावु पर जो मनुष्यों को पीड़ित करता है, अपना कोप प्रदर्शित कर इन्होंने जगाया था । अतः इसका नाम 'छठकोप' पड़ा ।

1. History of Tamil Language and Literature—Prof S. Valiyapuri Pillai, p 120
2. The Holy Lives of Ashvats or Dravida Saints—A. Govindacharya p 191
3. Studies in Tamil Literature and History—V R. R. Dikshitar p. 105

‘बहुत नामक पुष्प को धारण करने से ‘बहुनाभरण’ तथा अन्य मतावसंधियों को अपने छर्क कपी संकुश से परास्त करने से ‘परंकुश’ नाम इनको मिले ।^१

मम्माळ्वार का जन्म पांडिय देश में तिरनेलवेली जिले में ताम्रवर्णी नदी के किनारे पर स्थित तिरुकुक्कुर (वर्तमान आळ्वार तिरुनयरी) में हुआ था । जिस तरह अन्य आळ्वारों को विष्णु के आयुष-विशेष या आश्रुपण-विशेष का अवतार माना जाता है, उसी प्रकार मम्माळ्वार को विष्णुकसेन का अवतार माना जाता है । इनको ‘भवयवी’ तथा दोष आळ्वारों को ‘अवयव’ भी कहते हैं । इसका जीवन-कास बहुत से विवाह का विषय रहा है । यह पाँचवीं सती से नवीं सदी तक दोसापमान है । गुप्तराजरा-यन्त्रों के अनुसार इनका जन्म क्रिस्तियुग-प्रारम्भ के ४१वें वष में अर्थात् आश्व से १००० वर्ष पूर्व हुआ था । यह मठ बिन्दवसनीय नहीं हो सकता । आधुनिक विद्वानों में डा० कृष्ण स्वामी आर्यभार इनका जीवन-कास छठी सताब्दी में मानते हैं ।^२ श्री टी० ए० पापीनाथ राव ने यनापसाई के सिद्धान्त के आधार पर, इनका काल नवीं सताब्दी बताया है ।^३ श्री बी० आर० आर० दीक्षितर ने वेमबोडुडी नाम-ग्रन्थ के आधार पर इनका समय सातवीं सताब्दी माना है ।^४ यही मठ अधिक समीचीन मान्य पड़ता है ।

मम्माळ्वार के पिता का नाम करिमारम तथा माता का नाम उदयनर्ब वा । इनके पिता पाण्ड्य राजा के यहाँ एक उच्च पदाधिकारी के और आगे चलकर वलुक्किळ नाडु नामक एक छोटे राज्य के अधीश हो गये । बहुत समय तक कोई संतान न होने पर करिमारम ने पत्नी सहित तीर्थाटन कर श्री विष्णु भगवान् से पुत्र-सौभाग्य प्रदान करने की प्रार्थना की । कहा जाता है कि उस पर विष्णु भगवान् ने स्वयं इनके पुत्र रूप से अवतार लेने का वायदा किया था । जनश्रुति के अनुसार नामक मम्माळ्वार ने जन्म लेने के उपरान्त १० दिनों तक न तो अपनी आँखें खोली और न अपनी माता का दूध पिया और न रोया भी था । अतएव इनके माता-पिता बारहवें दिन उन्हें स्वागीत विष्णु-मन्दिर में किसी हमसी के वृक्ष के कोटर में छोड़ आये । वहीं पर मम्माळ्वार १५ वर्ष तक योग-मुद्रा-धारण किये पड़े रहे और कहते हैं कि विष्णु भगवान् ने इनका वासन-पोषण किया था ।

योग-मुद्रा से इनके जाग्रते के सम्बन्ध में एक विचित्र घटना बतायी जाती है । कहा जाता है कि मधुरकवि नामक एक विद्वान् काञ्चन उत्तर भारत क विभिन्न तीर्थों में घूमते हुए जब अयोध्या पहुँचे तब उन्होंने बलिष्ठा दिशा में एक विचित्र प्योति स्थम्भ देखा । उन्हें ऐसा लगा कि वह प्वाति-स्तम्भ उनका आभरण कर रहा है ।

१ श्री भगवद् विषयम्—ए० रत्ननाथ मुदामियर, पृ० १८-१९ ।

२ *Early History of Vaishnavism in South India*.

३ *History of Sri Vauknavas*, pp 18-21

४ *Studies in Tamil Literature and History* pp 104-105

इस धार्मिक निमग्नता से आकर्षित होकर मधुर कवि इबारों भीम वसिण की ओर, उस ज्योति की बिम्बा में बसे । कई पुष्प-स्रोतों को पार करते हुए, अन्त में ताम्रवर्णी नदी के किनारे पर स्थित मन्दिर के इसी कुल के पास आ पहुँचे । अब उन्हें स्पष्ट हो गया कि वह ज्योति योग-निष्ठावस्था में विराजमान नन्माळ्वार के शरीर से ही स्फुरित हो रही है । इन्होंने कौतूहलवश एक पत्थर उठाकर नन्माळ्वार के सामने पटक दिया । उसकी आवाज सुनते ही 'नन्माळ्वार' की आँखें खुल गयीं और दोनों के बीच आध्यात्मिक चर्चा होने लगी । युवक नन्माळ्वार की ज्ञान-राशि से बूझ बाह्य विज्ञान मधुरकवि इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने नन्माळ्वार को निज गुरु के रूप में अपनाया । तत्पश्चात् मधुरकवि ने अपने आचार्य के मुख से निकलते जाने वाले पदों को मन्त्राक्रम लिपिबद्ध किया । ये ही अब नन्माळ्वार की रचनाओं के नाम से संज्ञाहित हुए हैं ।^१

यद्यपि सभी गुरुपरम्परा-ग्रन्थ एक ही स्वर से बोधित करते हैं कि नन्माळ्वार ने इसी के पैर के कोटर में रहते हुए आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया था और बुनिया से उनका कोई सम्बन्ध न था । तथापि नन्माळ्वार की रचनाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि ये समाज में अवस्थ रहे थे और मनुष्य जीवन की समस्याओं का सामना इन्हें भी करना पड़ा था । अतः इनकी रचनाओं में तत्कालीन समाज का चित्रण मिलता है । कुछ पदों में तमिळ-मद्रेच के अनेक स्वर्णों का ऐसा वर्णन है जो उन स्वर्णों को बिना इसके सम्भव ही न था । इनकी रचनाओं में इनके पूर्व के तमिळ-साहित्य में प्राप्त होने वाली सभी साहित्यिक परम्पराओं का निर्वाह हुआ है । अतः कहा जा सकता है कि इन्होंने तमिळ-साहित्य का नन्मीर अध्ययन किया था । ये संस्कृत के भी बड़े विद्वान् थे । क्योंकि इनकी रचनाओं में वेद उपनिषद् तथा पीठा के सार का समावेश हुआ है ।

नन्माळ्वार की अन्य जीवन-वटनाओं का पता नहीं चलता । ये अविवाहित ही ही रहे और सांसारिक वस्तुओं में इनका मोह न था । कहा जाता है कि वे केवल ३३ वर्ष तक ही जीवित रहे ।

रचनाएँ

नन्माळ्वार के निम्नलिखित चार ग्रन्थ 'दिव्य-ग्रन्थम्' में समाविष्ट हैं —

- १—तिरुविक्कतम
- २—तिरुवाचिरियम
- ३—पेरिय तिरुवन्तादि और
- ४—तिरुवायमोळी ।

'तिरुवायमोळी' नन्माळ्वार का सबसे बड़ा ग्रन्थ है और यह 'दिव्य-ग्रन्थम्' का पूरा चौथा भाग बन गया है ।

‘तिरुविदलम’ को आम्बेद का सार कहा जाता है। इसमें १०० पद हैं। इसमें भगवान् के प्रति प्रेम और लग्न भाव के सम्बन्ध में विस्तार से कहा गया है। कवि ने स्वयं को बिरहिणी नायिका के रूप में और भगवान् को प्रियतम-नायक के रूप में मानकर माधुर्य भाव से भक्ति-भावना प्रकट की है। नायिका का प्रियतम से मिलने के लिए आतुर होना समस्त प्रकृति को अपने प्रतिबुल पाना, बिह्वल होना नायक की प्रतीक्षा करते-करते बीषा होना, मेघ, पत्नी द्वारा सम्बोधन, अन्ध में मरने तक को तयार हो जाना आदि बातों का विषय वर्णन है। कथा में प्रबन्धात्मकता की छटा है। ऊपर से देखने पर यह एक लौकिक प्रेम-काव्य माना जा सकता है। परन्तु इसमें कवि ने बिरहिणी नायिका के रूप में भगवान् के प्रति अपनी स्थिति का ही वर्णन किया है। यह मधुर भक्ति का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। यह रहस्यानुसृतियों का भण्डार है। कवि ने तमिळ के ‘संस्कृत’ के काव्यों में प्राप्त होने वाली लौकिक प्रेम सम्बन्धी सभी साहित्यिक परम्पराओं को लेकर उनका उपयोग इस प्रकार कर दिया है।

‘तिरुवाविरयम’ में ७ पद हैं तथा ‘विरिय तिरुवन्तावि’ में ८७ पद हैं। इनको क्रमशः यजु और जगर्ब वेदों का सार कहा जाता है। इनमें कोई कथा वर्णित नहीं है। सभी पद भक्ति तथा उपदेशपरक हैं। इनमें भगवत् स्वरूप, गुण, विभूति भक्ति-तत्त्व, चरणारवि तत्त्व आदि की चर्चा है।

‘तिरुवायमोळी’ तन्माळवार के ग्रन्थों में हो नहीं सकी समस्त आळवार साहित्य में सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। ‘तिरुवायमोळी’ का अर्थ है—‘गंत महात्मा के मुख से निकली हुई दिव्य वाणी’। ‘वायमोळी’ पद प्राचीन तमिळ-साहित्य में ‘वेद’ के लिए प्रयुक्त हुआ है।^१ इसमें १,१०२ पद हैं जो विभिन्न राग रागिनियों में गाने योग्य हैं। ‘तिरुवायमोळी’ को सामवेद का सार कहा जाता है। इसके स्पष्ट पद पद्यों में बटे हैं और प्रत्येक पद्यारहों पद में फल-बुति है। इसमें भक्ति उपदेश परछायावि मुक्त-महिमा आदि विषय वर्णित हैं। उच्चकोटि के दार्शनिक विचार भी अभिव्यक्ति हुए हैं। माधुर्य और सख्य भाव से भक्ति का विवेचन हुआ है। इसमें भी अनेक वर्णकों में नायक-नायिका के माध्यम से जीवात्मा-परमात्मा सम्बन्ध की रोचक व्याख्या हुई है।

प्रसिद्धि

तमिळ के भक्ति-साहित्य में तन्माळवार को जो स्थान प्राप्त हुआ है, वह पावर ही अन्य किसी कवि को मिला हो। इन्हें दिव्य कवि भी कहते हैं^२। इनके वर्णों में व्याप्त उच्चकोटि के दार्शनिक विचार ही भी वैष्णव मत के मूल द्रोष्ट हैं। इस

१. शांति सिद्धरम्—पी० पी० आचार्य पृ० ११।

२. ‘शक्तिपुरेक एव कवित्वमिति दिव्य कवि’—विष्णुसूरिकथामृतम् पी० पी० पी० जगन्नाथराचार्य, पृ० १२।

कारण इन्हें 'भी वैष्णव-कृत-पति' भी कहा जाता है।^१ तमिळ-ग्रन्थ के अनेक वैष्णव-मन्त्रियों में भी विश्नु की 'दिव्य पावुका' भी शठकोप के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिसे भक्त लोग अपने सिर पर चारख करते हैं। इनके नाम पर अनेक प्रशस्ति-ग्रन्थ लिखे गये हैं जिनमें मधुरकवि कृत 'कम्पिणुळ चिदत्ताम्पु' 'आचार्य हृदय' 'पावुका सहस्रम्' 'श्राविड उपदेश-रत्नावली' शठकोपरम्तादि आळ्वार अनुसृति 'दिव्यसूरि चरितम्' मुख्य हैं। इनमें नम्माळ्वार की बड़ी स्तुति की गई है।

कहते हैं कि तमिळ के कवि चक्रवर्ती के नाम से विख्यात कम्बर द्वारा रचित 'रामायणम्' को जगन्नाद् भी रचनाय ने तमी स्वीकार किया जब उन्होंने नम्माळ्वार की प्रशंसा में 'शठकोपरम्तादि' की रचना की। कवि कम्बर का कहना है—'क्या विद्वत् के समस्त काव्य-संग्रह नम्माळ्वार के एक शब्द की बराबरी कर सकते हैं? क्या सद्योत ऋषुमासी के सामने जमक सकते हैं?'—इत्यादि। प्रसिद्धि है कि जब कम्बर ने जगन्नाद् भी रचनाय के सामने 'शठकोपरम्तादि' के पदों को गाकर सुनाया तो भगवद्विग्रह में से आवाज निकली—'ये ही हमारे आळ्वार (नम्माळ्वार) हैं।' तमी से इसका नाम 'नम्माळ्वार' हो गया।

इन्हें वसिष्ठ का समस्त वैष्णव-अमल 'बहुम-भूषण-भास्कर' कहकर पुकारता है। ब्रह्माण्ड पुराण, मत्स्यपुराण मार्कण्डेय पुराण आदि में नम्माळ्वार (शठकोपाचार्य) सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। वे तमिळ-वेद-प्रणीता भगवा तमिल वेद व्यास' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।^२ जिस इमली-वृक्ष के कोटर में रहकर नम्माळ्वार ने ज्ञानोदय प्राप्त किया था वह आज भी आळ्वार तिरुवनुरी में विद्यमान है और भक्त उसके दर्शन कर जाते हैं।^३

नम्माळ्वार की रचनाएँ 'श्राविड वेद सागर' के नाम से प्रसिद्ध हैं।^४ कहा जाता है कि रामानुजाचार्य ने दण्ड-मूर्तियों पर माध्य मिलते समय अपने सन्देशों का समाधान नम्माळ्वार की रचनाओं को देखकर ही किया था।^५ वेदान्तवेदिकाचार्य ने भी वेद-रहस्यों को नम्माळ्वार की रचनाओं को पढ़कर ही समझ था।

नम्माळ्वार की 'तिरुवायमोळी' पर अनेक माध्य भगवा टीका-ग्रन्थ लिखे गये हैं। तेनुनु और कन्नड़ भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। संस्कृत में 'सहस्र पीठ'

१ 'शठरिपुरेक एव कमलापति दिव्य कवि' —दिव्यसूरि कवामृतम् : श्री पी०भी जगन्मोहाराचार्य पृ० १२।

२ ज्ञान सिद्धरम्—श्री पी० भी आचार्य पृ० २६।

३ वही, पृ २४।

४ वही पृ० १००।

५ "It is Tiruvaymoli that has shaped the furniture of Sri Ramanuja's capacious mind and heart."—R. S. Desikan, "Vedanta Kesari", May, 1961 p. 47

के नाम से यह स्मोकों में बहुतित है। जहाँ तक 'तिल्लायमोळी' के साहित्यिक महत्त्व का प्रश्न है, यह निर्विवाद है कि इसने परवर्ती भक्ति-साहित्य को बहुत प्रभावित किया। इसके उच्च आदर्श को परवर्ती कवियों ने अपने सामने रखा है। अनेक नैयाकरणों ने नम्माळवार के पदों को ही चेष्ट उदाहरणों के रूप में उद्धृत किया है।

मधुरकवि आळवार (मधुरकवि)

मधुर कवि तथा नम्माळवार—दोनों की जानियाँ एक-दूसरी से अभिन्न सम्बन्ध रखती हैं। मधुरकवि आळवार का जन्म तिरुक्कुरुर के समीपवर्ती ग्राम तिरुकोल्लूर में एक अग्र छिन्नी ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। श्री रीप्पुब सम्प्रदाय में इन्हें बिप्पु क बाहुन 'गवड़' का अवतार माना जाता है। पुष्करम्परा-ग्रन्थों से भी इनके जीवन-वृत्त पर बहुत कम प्रकाश पड़ता है। मधुरकवि ने बचपन में वेद तथा अन्य शास्त्रों का निबन्धन अध्ययन किया था। संस्कृत तथा तमिळ—दोनों भाषाओं में पाण्डित्य प्राप्त किया था। बचपन से गीत-रचना करते थे और सुमधुर कंठ से गाते थे। कदाचित् इनकी मधुर-ध्वनि से प्रभावित होकर लोगों ने इन्हें 'मधुरकवि' के नाम से पुकारा होना। इनके असली नाम का पता नहीं चलता।

कहते हैं मधुरकवि भक्त भक्त थे। इन्होंने बिद्या के साथ प्रेम और भक्ति को भी महत्त्व दिया था और ये साधु-समर्थों की संघति किया करते थे। परन्तु किसी में भी अपने मुख होने की योग्यता न देखकर, अन्त में ये सत्पुरुष की खोज में बकेसे ही निकल पड़े। इन्होंने बलिण और उत्तर के विभिन्न तीर्थ-स्वानों के दर्शन किये, पर कहीं भी सत्पुरुष प्राप्त नहीं हुआ। कहा जाता है कि जब ये अनेक तीर्थों में घूमते हुए बाहिर अयोध्या पहुँचे तब इन्होंने बलिण-दिशा में आकाश में एक क्योति-पुञ्ज को देखा। उस तेज-पुञ्ज का पता लगाने की तीव्र इच्छा से उसे सत्यकर बलिण दिशा में लम्बे मार्ग को पारकर अन्त में तिरुक्कुरुर आ पहुँचे, जहाँ नम्माळवार इसी-वृक्ष के कोटर में समाधिरूप थे। समाधिस्थित्या से जगाने के उद्देश्य से मधुरकवि ने नम्माळवार से यह प्रश्न किया कि यदि सत् पदार्थ (सूक्ष्म चेतना छिन्नी) असत् (जड़ प्रकृति) के अन्तर प्रविष्ट हो जाता है तो वह क्या धारिणा और कहाँ निधाम करेगा? नम्माळवार ने जब ज्यों ज्यों और उत्तर दिया कि वह उसी का आहार करेगा तथा वहीं पर निधाम भी करेगा। इस सूक्ष्म उत्तर का आशय समझकर मधुरकवि इसने प्रभावित हुए कि नम्माळवार का शिष्यत्व ग्रहण किया।^१ जिस सत्पुरुष की खोज में ये निकले थे उन्हें नम्माळवार के रूप में पाकर इन्होंने अपने जीवन को नव्य समझ और मुख की सेवा में ही अपना जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। उस समयाने में एक क्योमूड ब्राह्मण का निम्न जाति के एक पुत्रक को कुछ भागना आश्रिकाटी घटना थी। नम्माळवार इनके लिए मुख ही नहीं माता पिता तथा ईश्वर तक थे। प्रसिद्ध है

कि मधुरकवि ने शेष जीवन गुरु-सेवा में ही अर्पित किया था। कहा जाता है कि १६ वर्ष में गुरु की सेवा में रत रहे और उनके मुख से निरगत पदों को लिपिबद्ध करते रहे। जब मम्माळ्वार ने अपने ३२ वें वर्ष में इहलोक-बीता समाप्त की, तब इन्हें गुरु के वियोग में अत्यधिक दुःख हुआ। गुरु के पदों को साधारण जनता में प्रचार करना ही अपने जीवन का एक मात्र ध्येय समझा। गुरु के स्मरणार्थ इन्होंने उनके जन्म-स्थान तिरुकुछूर में उनकी एक चिन्ता (मूर्ति) स्थापित की। गुरु की महिमा गाते हुए विभिन्न स्थानों में जाकर उनके परकृष्ट पदों का महत्व साधारण जनता को बताया और जनता में भक्ति-भावना जगा दी। गुरु मम्माळ्वार को इन्होंने ईश्वर-गुप्त समझा था और उनके पदों को 'देव-वाणी' और उनको 'देव-कवि' कहकर स्मरण किया। कहा जाता है कि प्रसिद्ध तमिळ-सध (कवि-सम्बन्ध) में जाकर इन्होंने मम्माळ्वार के एक-एक पद में व्याप्त महान् गूढ़ रहस्य को समझाया और मम्माळ्वार के श्रेष्ठ कवित्व का भी परिचय दिया।^१

मधुरकवि आयु में अपने गुरु मम्माळ्वार से बड़े थे। गुरु के गोतोकनाम के पश्चात् भी ये १५ वर्ष तक जीवित रहे। कहा जाता है कि इन्होंने आळ्वारों में सबसे सम्भी नाम प्राप्त की थी और १७१ वर्ष की अवस्था में अपने पाँच तिरुकुछूर में गुरु का स्मरण करते हुए अपनी इहलोक-बीता समाप्त की। चूँकि मधुरकवि अपने को मम्माळ्वार का बास मानते थे इसलिए मम्माळ्वार की पादुका को 'मधुरकवि' नाम प्राप्त है।

रचनार्थ

मधुरकवि आळ्वार की एक मात्र रचना 'कण्णिगुळ चिस्तांडु' उपलब्ध है जो 'विषय प्रबन्धम्' में संश्लिष्ट है। इसमें केवल ११ पद हैं, जिनमें गुरु मम्माळ्वार की महिमा गाई गई है। गुरु को इन्होंने ईश्वर-गुप्त समझकर उनकी स्तुति प्रस्तुत की है। श्रेष्ठ गुरु की आवश्यकता गुरु के लक्षण भक्ति की आवश्यकता जाति विषयों की भी नहीं है। कहा जाता है कि कवि-वन्द्यार्त्ता कवर ने चण्कोपाचार्य (मम्माळ्वार) की प्रशस्ति में 'चण्कोपरन्तावि' नामक ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा 'कण्णिगुळ चिस्तांडु' से ही प्राप्त की थी।^२

'तिरुवायमोळी' के पाठ का आरम्भ 'कण्णिगुळ चिस्तांडु' के पठन के बाद ही होता है।

कुलक्षेत्राळ्वार (कुलसेखर)

केरलपीय राजा कुलसेखर का आळ्वार-भक्तों में एक प्रमुख स्थान है, जिनकी तमिळ वैष्णव-भक्ति-साहित्य को देन बहुत ही स्वाधनीय है। 'केरलोत्पत्ति' नामक

१ 'Vedanta Kesari' Vol. 32. — "Madhura Kavi" Sri Salla, p. 34.

२ भक्ति पृष्ठा—श्री एतिहासम् नाम्नु, पृ० १६।

ग्रन्थ में केवल ग्रन्थ के वैरवंचीय शास्त्रों की संशोधनी की गई है। ये शास्त्र 'वेष्माळ' नाम से भी प्रसिद्ध थे। अतः कुलदेवराळ्वार को 'कुलदेवर वेष्माळ' भी कहते थे। कहा जाता है कि राजा इडवत की पुत्र-प्राप्ति के हेतु अपार तपस्या के फलस्वरूप उनके पुत्र-रत्न के रूप में कुलदेवर का जन्म हुआ। इडवत ने अपने पुत्ररत्न को अपने कुल का 'देवर' मानकर उनका नाम कुलदेवर रख दिया था। कुलदेवराळ्वारों में कुलदेवराळ्वार को विष्णु के वलस्पति की श्रीस्तुम-मणि का अवतार माना जाता है।

कुलदेवराळ्वार के जीवन-काल के विषय में अनेक मत हैं। डा० माय्यारकर इनका समय १२ वीं शती में मानते हैं।^१ उनका तर्क है कि चूंकि कुलदेवराळ्वार मुक्त्युपाय रामोपासक थे। और रामोपासना १२ वीं शती में ही विकास को प्राप्त हुई इसलिए उनका काल १२ वीं शती के आस-पास मानना ही उचित है। परन्तु वस्तु सिद्धि मिश्र है। कुलदेवराळ्वार जिसने राम-भक्त थे, उसने ही कृष्ण भक्ति भी थे। कुलदेवर के पहले के आळ्वारों ने भी रामोपासना की थी। डा० कृष्ण स्वामी बम्बवार ने कुलदेवर का जीवन-काल सातवीं शताब्दी में माना है।^२ कुलदेवराळ्वार की रचनाओं में उपसंख्य अन्तःश्लोक तथा शिलालेखों^३ के आधार पर कहा जा सकता है कि ये आठवीं शताब्दी में जीवित थे।^४ अनेक विद्वानों ने यह स्वीकार कर लिया है।^५ कुलदेवराळ्वार ने अपने को अग्रिय कुल^६ का तथा 'कौमु' देश का राजा बताया है और अपनी राजधानी 'कौम्बी'^७ (वर्तमान कवलीन) का उल्लेख किया है। अपनी रचना 'मुकुन्दमाता' में इन्होंने 'विजयनगर' तथा 'पद्मसरर' नामक अपने दो मित्रों का परिचय दिया है।^८

राज-परिवार में उत्पन्न होने के कारण कुलदेवर की शिक्षा का सर्वोत्तम प्रबन्ध हुआ था। विभिन्न शास्त्रों और ताना-बसाना में इन्होंने विद्वत्ता अर्जित की। संस्कृत तथा तमिळ-दोनों भाषाओं में समान रूप से पारंगत प्राप्त किया। सन्निव होने

1 "Vaishnavism, Servism and other minor Religious Sects"

2 History of Tirupati—Dr S Krishnaswamy Iyengar, Vol. I p. 166.

३ १२ वीं शती के एक शिलालेख में कुलदेवराळ्वार के एक घर की कुछ परिष्परी पढ़ ली गई है—जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि इनका जीवन-काल अथवा उससे पूर्व था।

४ आळ्वारकल कालनिर्णय—श्री राजव माय्यार—पृ० १११।

5. Studies in Tamil Literature and History—V R. R. Dikshitar, p. 106.

६. वेष्माळ तिरुमोळी, ८ ३।

७. वही, १ २।

८. वही, १ : १०।

८. मुकुन्दमाता—स्तोक ४० (प्रकाशक श्री बी० बी० के० रंगाचारी बामनगडा)

कि मधुरकवि ने शेष जीवन गुरु-सेवा में ही अर्पित किया था। कहा जाता है कि १६ वर्ष के गुरु की सेवा में प्य रहे और उनके मुख से निरूप पदों को लिपिबद्ध करते रहे। जब गम्माळ्वार ने अपने ३२ वें वर्ष में इहलोक-बीजा समाप्त की, तब इन्होंने गुरु के वियोग में अत्यधिक दुःख हुआ। गुरु के पदों को साधारण जनता में प्रचार करना ही अपने जीवन का एक मात्र ध्येय समझा। गुरु के स्मरणार्थ इन्होंने उनके जन्म-स्नान तिरुक्कुरूर में उनकी एक छिन्ना (मूर्ति) स्थापित की। गुरु की महिमा गाते हुए विभिन्न स्थानों में जाकर उनके उत्कृष्ट पदों का महत्त्व साधारण जनता को बताया और जनता में भक्ति-भावना जगा दी। गुरु गम्माळ्वार को इन्होंने ईश्वर-तुल्य समझा था और उनके पदों को 'देव-वाणी' और उनको 'देव-कवि' कहकर स्मरण किया। कहा जाता है कि प्रसिद्ध तमिळ-सूत्र (कवि-सम्बन्ध) में जाकर इन्होंने गम्माळ्वार के एक-एक पद में व्याप्त महान् गूढ़ रहस्य को समझाया और गम्माळ्वार के श्रेष्ठ कवित्व का भी परिचय दिया।^१

मधुरकवि बामु में अपने गुरु गम्माळ्वार से बड़े थे। गुरु के दोलोकवाच के पश्चात् भी ये १३ वर्ष तक जीवित रहे। कहा जाता है कि इन्होंने आळ्वारों में सबसे लम्बी बामु प्राप्त की थी और १७१ वर्ष की अवस्था में अपने पाँच तिरुक्कुरूर में गुरु का स्मरण करते हुए अपनी इहलोक-बीजा समाप्त की। चूँकि मधुरकवि अपने को गम्माळ्वार का दास मानते थे इसलिए गम्माळ्वार की पादुका को 'मधुरकवि' नाम प्राप्त है।

रचनार्थ

मधुरकवि आळ्वार की एक मात्र रचना 'कण्ठिनुळ चिस्तांडु' उपलब्ध है जो 'दिव्य प्रबन्धम्' में संकृष्ट है। इसमें केवल ११ पद हैं, जिनमें गुरु गम्माळ्वार की महिमा आई गई है। गुरु को इन्होंने ईश्वर-तुल्य समझकर उनकी स्तुति प्रस्तुत की है। श्रेष्ठ गुरु की आवश्यकता गुरु के लक्षण भक्ति की आवश्यकता आदि विषयों की भी वर्णन है। कहा जाता है कि कवि-वक्त्रवर्ती कंवर के छठकोपाचार्य (गम्माळ्वार) की प्रशस्ति में 'छठकोपरन्तारि' नामक ग्रन्थ मिलने की प्रेरणा 'कण्ठिनुळ चिस्तांडु' से ही प्राप्त की थी।^२

'तिरुप्पायमोळी' के पाठ का आरम्भ 'कण्ठिनुळ चिस्तांडु' के पठन के बाद ही होता है।

कुलक्षेत्राळ्वार (कुलक्षेत्र)

केरलक्षेत्र राजा कुलक्षेत्र का आळ्वार-भक्तों में एक प्रमुख स्थान है, जिनकी तमिळ रीत्युक्त-भक्ति-साहित्य को रस बहुत ही रसावलीय है। 'केरलोत्पत्ति' नामक

१ 'Vedanta Kesari' Vol. 32.—"Madhura Kavi" Sri Salla, p. 34.

२ जति पृष्ठ—पी एठिरानुनु नामुडु, पृ० १५।

त्व में केरल प्रान्त के केरवंसीय घासकों की बंसावसी दी गई है। ये घासक 'रत्नाळ' नाम से भी प्रसिद्ध थे। अब कुसुदेवराळवार को 'कुसुदेवर रत्नाळ' भी कहते थे। कहा जाता है कि राजा इक्ष्वाकु की पुन-प्राप्ति के हेतु अपार तपस्या के अवसर पर उनके पुत्र-रत्न के रूप में कुसुदेवर का जन्म हुआ। इक्ष्वाकु ने अपने पुत्ररत्न को अपने कुल का 'देवर' मानकर उनका नाम कुसुदेवर रख दिया था। सुसरम्परा-ग्रन्थों में कुसुदेवरराळवार का विष्णु के अवतार की कौस्तुभ-मणि का अवतार माना जाता है।

कुसुदेवरराळवार के जीवन-काल के विषय में अनेक मत हैं। डा० माधवारकर इनका समय १२ वीं शती में मानते हैं।^१ उनका तर्क है कि चूंकि कुसुदेवरराळवार मुख्यतया रामोपासक थे। और रामोपासना १२ वीं शती में ही विकास को प्राप्त हुई इसलिए उनका काल १२ वीं शती के आस-पास मानना ही उचित है। परन्तु वस्तु स्थिति मिश्र है। कुसुदेवरराळवार जितने राम-भक्त थे उतने ही कृष्ण भक्ति भी थे। कुसुदेवर के पहले के आळवारों में भी रामोपासना की थी। डा० कृष्ण स्वामी मर्यंगर ने कुसुदेवर का जीवन-काल सातवीं शताब्दी में माना है।^२ कुसुदेवरराळवार की रचनाओं में उपलब्ध अन्तःसाक्ष्य तथा विमानेकों^३ के आधार पर कहा जा सकता है कि ये आठवीं शताब्दी में जीवित थे।^४ अनेक विद्वानों ने यह स्वीकार कर लिया है।^५ कुसुदेवरराळवार ने अपने को अग्रिम कुल^६ का तथा 'कौगु'^७ देश का राजा बताया है और अपनी राजधानी 'कौस्सी'^८ (वर्तमान कवली) का उल्लेख किया है। अपनी रचना 'मुकुन्दमाला' में इन्होंने 'विजयनगर' तथा 'परमसरर' नामक अपने दो मित्रों का परिचय दिया है।^९

राज-परिवार में उत्पन्न होने के कारण कुसुदेवर की शिक्षा का सर्वोत्तम प्रबन्ध हुआ था। विभिन्न शास्त्रों और मान्य कृतियों में इन्होंने विद्वत्ता अर्जित की। संस्कृत तथा तमिळ-दोनों भाषाओं में समान रूप से पांडित्य प्राप्त किया। सत्रिय होने

1 "Vaishnavism, Saivism and other minor Religious Sects"

2 History of Tirupati—Dr S. Krishnaswamy Iyengar, Vol. I. p 166.

३ नवीं शती के एक शिलालेख में कुसुदेवरराळवार के एक घर की कुछ वस्तुयाँ उद्धृत हुई हैं—जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि इनका जीवन-काल प्रथम उससे पूर्व था।

४ आळवारकालानिलै—वी राजव मार्यंगर—पृ० १११।

5 Studies in Tamil Literature and History—V R. R. Dikshitar p 106.

६ रत्नाळ शिखोली, = १।

७ वही, १ १।

= वही, १ : १०।

८ मुकुन्दमाला—स्तोत्र ४० (प्रकाशक श्री बी० बी० के० रंभाचारी काशीनाथ)

के कारण ये क्षत्र विद्या में भी निपुण सिद्ध हुए। इन्होंने पास के छोटे राज्यों को जीतकर एक बड़ा क्षत्रिणासी राज्य कायम किया। कहा जाता है कि पुत्र की योग्यता से पूर्णतः संतुष्ट होकर राजा रुद्रप्रथ ने कुससेखर का राज-तिलक कराकर स्वयं जनवास ले लिया। बचपन से ही कुससेखर ने बचपन कच्चाई सुनी थी और इनका मन मक्ति की ओर झुका हुआ था। इनके यहाँ वैष्णव मठों का बड़ा आदर-सत्कार होता था और भगवद् बर्चा भी होती थी। सिंहासनाब्द होने के कुछ काल ही के पश्चात् राजा कुससेखर का मन साधन-सम्बन्धी कार्यों से उन्नत गया। कहा जाता है कि एक दिन इन्होंने स्वप्न में भगवान् के दर्शन किये तथा तत्पश्चात् इनका मन मक्ति को छोड़कर किसी दूसरे कार्य में नहीं लगा। राज्य को त्यागकर धीरंगम् की भक्ति-गोष्ठी में जा मिलने की इच्छा उत्पन्न हुई।

कुससेखरराज्य की तीव्र भक्ति-भावना को लक्ष्य करने वाली बनेक जनधुतियाँ प्रचलित हैं। जब से राजा कुससेखर का मन साधन-सम्बन्धी कार्यों में नहीं लगा तब से अमात्य तथा राज-परिवार के लोगों को बड़ी चिन्ता हुई। कहा जाता है कि हर बार जब ये राज्य त्यागकर धीरंगम् जाने की तैयारी करते तब अमात्य इनके पास किसी एक नये वैष्णव भक्त को भेज देते और उस वैष्णव भक्त का आदर-सत्कार करने के लिए कुससेखर बह जाते थे। इस प्रकार इनकी धीरंगम्-यात्रा स्थगित होती जाती थी। यह तो कहा जा चुका है कि कुससेखर के यहाँ वैष्णव भक्तों का बड़ा सम्मान था। भक्तों के प्रति राजा की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई भक्ति को देखकर अमात्य तथा राज-परिवार के लोगों को ईर्ष्या हुई और उन लोगों ने राजा के मन में भक्तों के प्रति बहिष्कास पैदा करने के लिए एक उपाय रूढ़ा। उन्होंने एक मूर्खवान रत्नमाभा को खिसाकर उसके चोरी हो जाने की बात कुससेखर से कही और चोरी का अपराध वैष्णव-भक्तों पर लगाया। राजा का हृदय विश्वास था कि वैष्णव भक्त ऐसा अपराध नहीं कर सकता था। कहा जाता है कि राजा ने एक पक्ष में विपक्ष को डाँटकर लाने को कहा और यह कह कर कि अमर किसी वैष्णव भक्त ने चोरी का अपराध किया हो तो यह सर्व मुझे मार डाले नहीं तो मुझे कुछ न करे, उस पक्ष के बन्दर ह्रास डाले। विपक्ष ने राजा को कुछ नहीं किया और इस प्रकार भक्तों की निष्कलङ्कता स्थापित की। इस घटना से अमात्य लोगों का बड़ा अपमान हुआ और उन लोगों ने राजा से शमा माँगी।

कुससेखर की राम-भक्ति को लक्ष्य करने वाली बनेक जनधुतियाँ प्रचलित हैं, जिनमें प्रमुख दो-एक को यहाँ दिया जाता है। एक बार जब ये कथावाचक से रामायण का व्याख्यान सुन रहे थे और उसमें सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण को निपुण कर देने की भी रामचन्द्र का आह्वान की निपुण सेवा से मुक्त करने का प्रसंग।

१ अर्जुनसहस्रनामि रत्नां भीमकर्मजापु ।

एकदम रामो बभूवैश्व कर्षं पुष्ट भविष्यति ॥

—वाल्मीकि रामायण ६-२४ २१

आया, तब कुलसेखर ने तमय होकर, राम की सहायता के लिए अपनी समस्त सेनाओं को प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी। कपाचाचक के यह कहने पर ही कि राम अकेले ही सबको मारकर सीता सहित बिजयी होकर लौटे कुलसेखर ने अपनी सेना की वापस बुलाया। एक अन्य मन्त्र पर जब कपाचाचक ने कहा कि राजा ने सीता का हरण किया इन्होंने धीरज का पर बहाई कर सीता जी को लाने की आज्ञा सेनापति को दी और स्वयं समुद्रतट तक आकर समुद्र में उतरने लगे। कपाचाचक के यह कहने पर कि श्री रामचन्द्र राजा को मार कर सीता जी सहित लौटे, ये राजमहल की ओर वापस आये।

अन्त में जब कुलसेखर श्रीरंगम् के विद्यालयाय मन्दिर के प्रांगण में भगवान् की मत्त-मन्त्रियों में सम्मिलित होकर मुख्य मन्त्रादि से इवित जीवन विद्या की अपनी तीव्र उत्कंठा^१ का संवरण न कर सके तब राज्य ऐश्वर्य को त्यागकर पुष्प लेखों के दण्ड के लिए निकल पड़े। श्रीरंगम्, तिरुपति आदि वैष्णव स्थलों के दर्शन इन्होंने किये। दिव्यमूरिचरितम्^२ में कहा गया है कि इन्होंने अपनी पुत्री ईसा का विवाह जनवान् श्री रंगमाय के साथ कराया। तमिळ-जनता के बीच में कुलसेखर सम्बन्धी प्रसिद्धियाँ ही बहुत अधिक प्रचलित हैं। परम्परा-ग्रन्थों के अनुसार इन्होंने अपनी तीव्र मत्त-मायना को पक्षों में अमिश्रित कर अपने ६० वें वर्ष में अपनी रहनीका समाप्त की। इनके पद मत्त-हृदय को बहुत ही इवित करने वाले हैं। कुलसेखर ने अपने एक पद^३ में भगवान् से यह प्रार्थना की है कि अगले जन्म में वे इन्हें कम से कम बड़े सीढ़ी बना दें जिस पर चढ़कर मत्त मन्त्रान के दर्शन के लिए वैशाख में प्रवेश करते हैं। आज भी वैष्णव मन्दिरों की सबसे ऊँची सीढ़ी को 'कुलसेखर सीपान' कहते हैं।

रचनाएँ

कुलसेखरबाळार के नाम से दो रचनाएँ मिलती हैं। एक तमिळ भाषा में है और दूसरी संस्कृत में है। इनकी तमिळ-रचना 'वेस्वाळ तिरुमोळी' कहलाती है, जिसमें १०१ पद हैं। कबल ये ही तमिळ पद 'दिव्य-प्रबन्धम्' में संवृष्ट है। इनकी संस्कृत-रचना 'मुकुन्दमाता' के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें ४० स्तोत्र हैं।

श्री के० रामपिण्णारली^४ 'मुकुन्दमाता' को कुलसेखरबाळार इत नहीं मानते। उनका तर्क यह है कि श्री कुलसेखर के नाम से एक से अधिक राजा केरल में हुए

१ वेस्वाळ तिरुमोळी १ : १।

२ इसे विद्या अष्टावलिह ग्रन्थ मानते हैं।

३ वेस्वाळ तिरुमोळी ४ : १।

४ श्री मुकुन्दमाता—संपादक : श्री के० रामपिण्णारली (द्रुमिका भाषा),
प्रकाशक अष्टमती विरचविद्यालय।

ये इसलिये यह कहना कठिन है कि यह किस कुन्धोत्तर की यह रचना है। 'मुकुन्दमासा' को तमिळ कुन्धोत्तराळ्वार की रचना न मानने के सम्बन्ध में श्री पिष्टारट्टी का कथन है कि चूँकि तमिळ कुन्धोत्तराळ्वार मुख्यतः राम-भक्त थे और 'मुकुन्दमासा' के रचयिता ने केवल कृष्ण की ही स्तुति की है इसलिये यह रचना तमिळ आळ्वार की नहीं हो सकती। पर 'मुकुन्दमासा' का आद्योपांत ब्रह्मयन्त्र करने से पता चलता है कि उसमें कृष्ण की ब्रह्मना ही नहीं बल्कि राम-ब्रह्मना भी है।^१ और हमारे आळ्वार बिल्वने राम भक्त थे उतने ही कृष्ण-भक्त भी। 'पेरमाळ तिरमोळी' तथा "मुकुन्दमासा" में अनेक स्थलों पर भाव-साम्य बोध पड़ता है।

अतः 'मुकुन्दमासा' के तमिळ कुन्धोत्तराळ्वार कृत होने में किंचित् भी संशय नहीं है। अतः श्री पिष्टारट्टी का मत अमान्य सिद्ध होता है।^२

१. पेरमाळ तिरमोली

इसके पद ब्रह्मणों में विभाजित हैं। पद विभिन्न राग-रागिणियों में जाने योग्य हैं। प्रथम पाँच ब्रह्मणों के पद वारम निवेदनपरक हैं। इनमें श्रीरङ्ग की भक्त-मन्थनी में सम्मिलित होकर नृत्य-मञ्जनादि करने की कवि की तीव्र उत्कण्ठा सांसारिक जीवन के प्रति कवि की विमुक्तता भगवान् के सम्मुख कवि की बीनता तथा अगले जन्म में श्री बैकट-गिरि में भगवान् कृष्ण की सेवा में प्रस्तुत किसी भी वस्तु के रूप जन्म लेने की सखी कामना आदि बातें भावमयी भाषा तथा हृदय को द्रवित करने वाली शैली में वर्णित हैं। छठे ब्रह्मण में बाल गोपाल की विभिन्न भेष्याओं का विवरण वर्णन है। सातवें ब्रह्मण में कृष्ण की शिशु-सीमाओं के रसास्वादन से बंजित माता देवकी के कष्ट विज्ञाप का वर्णन है। आठवें ब्रह्मण में दधरवी राम को पालने में कौशल्या के सोरी बाने का तथा नवें ब्रह्मण में राम के वन-गमन पर दधरव-विज्ञाप का वर्णन है। अन्तिम ब्रह्मण में सम्पूर्ण रामायण की कथा संक्षेप में भी गई है।

२. मुकुन्दमासा

यह कीमल-कान्त पञ्चावली में रचित सेपद्यायी विष्णु की कवि की 'भीतांबसि' है। इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। इनमें इसके ४० स्लोक तक मिलते हैं। इस छोटी-सी रचना में कवि ने अपार कविरस-सक्ति का परिचय दिया है। यह संस्कृत का सबसे सुन्दर, स्तोत्र-काव्य है तथा टीकाकार राघवानन्द के अनुसार यह "मुकुन्द

१. श्रीनाथ नारायण बासुदेव, श्रीकृष्ण भक्त प्रिय ब्रह्मवाणे।

श्री परमनाथाम्युत बीरनारे श्रीराम परब्रह्मण्ड हरे मुरारे ॥

—श्री मुकुन्दमासा स्लोक ३६।

2. It is therefore clear that the views of Mr. Pishtaroti are untenable and incorrect. —Dr. K. C. Varadachari.

—Journal of Sri Venkateswara Oriental Research Institute
Vol III pt. II p 168

मष्टाक्षर मन्त्र' का सफल प्रतिपादन करने वाला प्रन्थ है।^१ १७ वीं शती के श्री राघवानन्द ने इस पर टीका लिखी है जो 'मुकुन्दमासा-शास्त्र-दीपिका' नाम से प्रसिद्ध है। साधारण माया-मोह के जाल से मुक्त होकर सर्वथा भगवान् के मुख-गान में लसीन रहने का उपदेश दिया गया है। कवि ने कृष्ण भगवान् की विभिन्न शीतानों को जोर भी संकेत किया है।

पेरियाळ्वार (विष्णु चित्त)

आळ्वारों में 'पेरियाळ्वार' का एक विशिष्ट स्थान है। 'विष्णुचित्त' इनका वक्षपन का नाम था। जाति के ये ब्राह्मण थे।^२ इनकी रचनाओं में इनके ब्राह्मण कुलोत्पन्न होने तथा पांडिय राज्य के अन्तर्गत प्रसिद्ध श्री विस्तिपुत्तूर नामक गाँव में इनका जन्म होने के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर अपने समकालीन पांडिय राजा 'वत्समदेव पांडियन' का उल्लेख किया है। वत्सम देव (शासनकाल: ईस्वी ७४०-७९७) ने इन्हें अपने ज्ञान-गुरु के रूप में अपनाया था।^३ अठ्ठ अक्षिणोष्ठ विज्ञान् इनका जीवन नाम आळ्वों शती में मानते हैं।^४ इन्हें एक राजा ने 'पट्टर पिरान (श्रेष्ठ ब्राह्मण) की उपाधि भी प्रदान की थी।

बुद्ध-वरम्परा-ग्रन्थों के अनुसार पेरियाळ्वार के पिता का नाम मुकुन्दाचार्य था और माता का नाम पद्मा था। वक्षपन से ही विष्णुचित्त का चित्त विष्णु की उपासना में रम गया था। ये साधारण ब्राह्मणों से भिन्नता प्रतीत होते थे और अपना अक्षिणोष्ठ समय भगवद् ध्यान में व्यतीत करते थे। शास्त्राध्ययन इनका विषय न हो सका। इन्होंने एक कथावाचक पौराणिक से कृष्ण-कथा प्रसंग में यह श्लोक "प्रसाद परमो नाथो भगवद्गुणोपायतः। बभ्रुःश्रुतमर्षिप्यमीत्याह मात्स्योपजीवनः"^५ सुनकर यह निश्चय किया कि प्रतिदिन श्री भगवान् के श्रीचरणों में पुष्पमासाओं का समर्पण करना ही भगवद्गुणोत्साह को बढ़ाने वाला श्रेष्ठ कार्य है। तत्पश्चात् इन्होंने एक सुन्दर बघीचा लगाया। निम्न नदीन सुमनों का जपन कर उनकी माताएँ पूँबकर स्थानीय विष्णु-मन्दिर के "वटपञ्चामी" के चरणों में अर्पित करते थे और अक्षिणोष्ठ समय मन्दिर में ही व्यतीत करते और विष्णु-सहस्रनाम की माया करते थे।

- १ श्री मुकुन्दमासा (भूमिका भाग) — श्री के० राम पिछारटी प्रकाशक अन्नमरी विश्वविद्यालय।
- २ श्री हेमचन्द्राय जीयरी ने अपने ग्रन्थ "छत्ती हिस्दरी प्राक श्री दीप्ताक्ष सेवक" (पृ० ११०) में यलती से इन्हें "परया" जाति में उत्पन्न बताया है।
- ३ भगवान् बहर्ता भक्त — श्री पी० श्री० आचार्य, पृ० १८।
- ४ आळ्वारचर्य काळनिने — श्री एन रायच अय्यमार पृ० १९।
- ५ विष्णु सूरि कथामृतम् — श्री पी० श्री० अर्णगाचार्य पृ० १७।

कहते हैं कि तत्कालीन पांडिय राजा बल्लभदेव ने शास्त्र-मर्मज्ञों की एक सभा बुलायी थी और यह बोधसा की थी कि जो विद्वान् उस सभा में जाकर वैदिक प्रमाणों का निरूपण कर ठीक तरह से पठ्याह को निवारित करेंगे उन्हें पुरस्कार और और प्रदान किया जायगा। एक दिन "बटपन्नछामी" ने स्वप्न में प्रकट होकर पेरियाळ्वार को आदेश दिया कि पांडिय राजा के दरबार में जहाँ विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि शास्त्रार्थ में भाग ले रहे हैं, तुम भी शामिल होकर सार्वभौम ज्ञान की उपमन्त्रि का मार्ग दिखाकर मेरे प्रेम और भक्ति का महत्व सर्वसाधारण को बता दो। विष्णुचित्त ने इस कठिन कार्य के लिए अपने को कम योग्य समझा। परन्तु भयान् की आज्ञा का पालन करना तो वाही बात भयान् पर भरोसा रखकर ये पांडिय राजधानी मधुर में जाकर राजा द्वारा संवर्धित विद्वानों की गोष्ठी में शामिल हुए। इन्होंने विभिन्न वर्गजन्मी बहियों की उठाई गई समस्त संकाओं का समाधान प्रस्तुत कर उन्हें शास्त्रार्थ में पथस्त कर दिया और वह धारित किया कि जो लक्ष्मी-नारायण ही वर देता है जिनके घरलों में धरण लेना ही हितकर है और मोक्षदायक है। राजा ने विष्णुचित्त के अकांक्ष्य तर्कों से प्रभावित होकर उन्हें विजयी घोषित किया। बाळार को दम्पारि के साथ "पट्टर पिण्डम्" की उपाधि भी प्राप्त हुई। राजा ने बाळार को सम्मानित करने के लिए उन्हें हाथी पर बिठाकर नगर में एक कुपुस निकाला। कहा जाता है कि उस समय श्री विष्णुचित्त ने अपनी प्रतिष्ठा को भवरनुग्रह का ही फल समझकर आकाश की ओर देखा तो धामात् विष्णु महात्मसी के साथ बल्लभक होकर प्रकट हुए। विष्णुचित्त ने अपने अवाप्त देव के वर्धन कर अपने जीवन का भग्न समझा। भयान् की दिव्य-संभल-श्रीमा को देखकर इनकी प्रवृत्ति की सीमा न रही। परन्तु उनके मन में एक विचित्र चिन्ता पैदा हुई कि भयान् की यह शीघ्रता पाँच बिबड़ न जाय। उसके लिए इन्होंने प्रार्थना की कि वह अनुभव शीघ्रता वहाँ कटोड़ों बर्ष आसक्त रहे।^१ जहाँ दूसरे बाळारों ने भयान्नुग्रह की ही वाचना की है, श्री विष्णुचित्त ने स्वयं भयान् को भी असीम आश्चर्य के मग्न-कामनाएँ अर्पित कीं। इसी कारण उन्हें "पेरियाळ्वार" अर्थात् "महान् बाळार" विश्व प्राप्त हुआ।^२

पांडिय राजधानी में प्राप्त भन उक्ति को लेकर पेरियाळ्वार अपने निवास-स्थान श्री विसिपूतुर की लौट आये और उस वन को अपने इष्टदेव की सेवा में अर्पित करने की इच्छा से "बटपन्नछामी" के मन्दिर के "मोयुर" को बनाने में लगा दिया। तत्परान् भी वे पूज्यत सुमन जपन कर माछार् पूजने और बटपन्नछामी के घरलों में अर्पित करने के दिव्य-कार्य में लगे रहे। पुष्पाञ्जलि के साथ यीर्वाञ्जलि

१. तिरुवत्ताडु—पर ११०।

२. उचरैय रत्नमस्ता—पृ० १५।

भी करते रहे। ये संस्कृत के भी बड़े पंडित थे। कहा जाता है कि कल्पमूर्खों पर इन्होंने एक टीका लिखी।¹

रचनाएं

पेरियाळ्वार के पद 'तिरुप्पावलि' तथा 'परियाळ्वार तिरुमोळी' नामक दो संग्रहों में मिलते हैं और ये पद "दिव्य-प्रबन्धम्" के प्रथम भाग में प्रारम्भ में दिये गए हैं। 'तिरुप्पावलि' में १२ पद हैं। इसमें पेरियाळ्वार ने यह मंगल-कामना की है कि अय्यान् का अनुपम सौन्दर्य करोड़ों वर्षों तक वास्तव रहे। कवि ने इन पदों में विष्णु के विभिन्न अवतारों का भी स्मरण किया है तथा भक्तों को सदैव भयवत्सेवा में ही तल्लीन रहने का उपदेश दिया है। "तिरुप्पावलि" का धार्मिक महत्त्व आधुनिक है। 'मिथ्य पाठ' में इसको स्थान प्राप्त है तथा इसका पाठ भी वैष्णवों के घरों में प्रतिदिन होता है।²

'पेरियाळ्वार तिरुमोळी' में आळवार के ४६१ पद संग्रहीत हैं। बास कृष्ण की मधुर-मीठाओं में कवि का मन रम गया है। अतः कवि ने कृष्ण के विगु-रूप और सारस्व से आकर्षित होकर हृष्य-श्रावक भाविकता के साथ बासकृष्ण की विविध श्रेष्ठियों का वर्णन कर वास्तव्य उस की ऐसी अद्भुत भारा प्रवाहित की है, जो समस्त तमिळ-साहित्य में कहीं भी देखने को नहीं मिलती। इसमें कृष्ण का अमोघसब मोक्ष में हर्षोत्साह, कृष्ण को पाने में रखकर यद्योरा का सोरी गाना कृष्ण का अम्दा मामा को हुमाना कर्ण-वेध संस्कार, दृष्टिबोध परिहार, मालम-भोरी गोपियों की यद्योरा से शिकायतें कृष्ण को वाय बराने बन भेजने पर यद्योरा का विनाश कृष्ण के अपार सौन्दर्य पर गोपियों का मोहित होना मुरली-माधुरी आदि अनेक प्रसंगों का सरस वर्णन है। विष्णु के सोढने मन्थने किसने, रोज, हँसने आदि का कवि ने धार्मिक चित्र उपस्थित किया है। दीपावकाल की विभिन्न अवस्थाओं में विष्णु की श्रेष्ठियों में होने वाले परिवर्तनों की मानों मनोबलान्तरिक व्याख्या इसमें हुई है। वास्तव में सैकड़ों वर्षों से बन्धों को जिताने, पिनाते मुलाते और प्यार करते समय तमिळ-प्रदेश की माताएँ जो मधुर सौन्दर्य-गीत पाया करती थीं उनको साहित्यिक रूप देकर पेरियाळ्वार ने तमिळ साहित्य की महान् सेवा की है। पिच्छं तमिळ कहलाने वाली इन मोठों की रीती के प्रणेतृ स्वयं पेरियाळ्वार ही माने जाते हैं। इनके बाद अनेक कवियों ने इस विशिष्ट 'पिच्छं तमिळ' काव्य-रीती को अपनाया। पेरियाळ्वार के कुछ पदों में राम-कथा के कुछ प्रसंगों का भी वर्णन मिलता है।

आँडाळ (गोदा)

वैष्णव-मठ-कविविषी आँडाळ का तमिळ के भक्ति-साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। 'आँडाळ' नाम से प्रसिद्ध वैष्णव भक्त कवि-समूह में आँडाळ ही एक मात्र

1 Dr K. C. Varadachari—J S V O T Vol II (1949) p 454

2 History of Tamil Literature—E. S. Varadaraja Iyer p 277

स्त्री थी। बाळार भी बिस्वीपुत्र मिवासी पेरियाळवार भक्तों का विद्युत्पुत्र की पत्नी पुत्री थी। सम्प्रदाय में बाळार को मुद्देवी का बंध माना जाता है।^१ 'गुरु-वरम्परा' ग्रन्थों के अनुसार बाळार का जन्म कसियुगारेम के ८७ वें वर्ष में हुआ था। परम्पु बाळार की एक रचना में प्राप्त ज्योतिष से सम्बन्धित एक विवरण के आधार पर जनेक आधुनिक विद्वानों ने बाळार का जन्म सन् ७१६ ई० में माना है।^२

बाळार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक बहुत प्रचलित कथा है। कहते हैं कि नियमानुसार पेरियाळवार एक दिन प्रातःकाल अपनी बाटिका में भक्तान् को अर्पित करने के लिए पुष्प-वसन कर रहे थे। अचानक उन्हें तुलसी-बनों के बीच एक तपस्वी बालिका कुम्भी की ओर पड़ी दृष्टिोत्तर हुई। पेरियाळवार तो अविवाहित थे ही। उस बालिका को देवी सरस्वती समझकर घर ले जाये और अत्यन्त स्नेह के साथ उसका पालन-पोषण करने लगे। पुष्प-बाटिका में प्राप्त होने के कारण पेरियाळवार ने उस बालिका का नाम 'कोई' (पुष्प का पुष्प) रखा।

पेरियाळवार की योग्यपुत्री के रूप में बाळार भीरे-भीरे बढ़ी हुई। पेरियाळवार की कृटिया के सरस भक्तिमय वातावरण में पलने के कारण बाळार का मन भक्तान् विष्णु में स्वाभाविक रूप से रम गया। विष्णु के सर्वांग सुन्दर रूप असीम शक्ति और सरस लीलाओं ने बाळार को मुग्ध कर दिया। पूजा और मजन में वे पेरियाळवार की बहायता करती थीं। भक्तवन में बाळार पून लोड़ जाती और पिठा

१ *History of Tirupatu* Vol. 1 — Dr S. Krishnaswamy Aiyengar p 161

२ बाळार ने अपनी रचना 'तिरुप्पावे' (पर ११) में ज्योतिष से सम्बन्धित एक विवरण दिया है। यह है—अपाकाल में गुरु का अस्त तथा शुक्र का उदय एक ही समय होना यही तिथिपावे का रचना-काल बताया गया है। यह घटना ज्योतिषियों के अनुसार १८ विसम्बर सन् ७१६ ई० को अपाकाल में हुई थी। गुरु-वरम्परा ग्रन्थों में बाळार की आयु १६ वर्ष की बतायी गयी है। अतः उक्त तिथि से १६ वर्ष घटाकर अनुमानतः बाळार का जन्म सन् ७१६ ई० में हुआ माना जाता है।—बाळार काळमिर्ल : एम० रावण बम्पवार पृ० ८३।

३ (क) 'कोई' ही 'गोदा' का शुद्ध रूप है। इस शब्द के अनेक धर्म हैं। 'विष्णु-सुरि-वरित्तन्' नामक गुरु-वरम्परा ग्रन्थ में 'कोई' या 'गोदा' का धर्म 'वाक शक्तिशायिनी' दिया गया है।—बाळार काळमिर्ल पृ० ६६।

(ख) सर जोनियर मिलिम्स ने अपने संस्कृत-संग्रही कोष में 'गोदा' को 'सामवेद (संहिता) की एक प्रसिद्ध लेखिका बताया है। श्रुति पेरियाळवार संस्कृत के भी बड़े पंडित थे इसीलिए कहावित् उन्होंने अपनी पुत्री के लिए भी उस प्रसिद्ध लेखिका का नाम रखा होगा।

—कोई अत्यन्त कारक वेत्तम—भी बी० भी० आचार्य, पृ० ६४।

हारा भगवान् को अर्पित करने के लिए माताएँ प्रार्थना करती थीं। कहा जाता है कि भगवान् प्रेम में इस तरह तन्मय हो जाती थीं कि भगवान् के लिए मृची हुई पुष्प माताओं को स्वयं पहनकर दर्पण में अपना सौन्दर्य देखा करती थीं। वे यही देखा चाहती थीं कि उनका सौन्दर्य उनके प्रियतम भगवान् को आकर्षित कर सकेगा कि नहीं। एक दिन इस प्रकार श्रृङ्गार करते समय पेरियाळ्वार ने देखा लिया। यह विचार कर कि एक बार पहनी मयी माताएँ भगवान् पर बढ़ाये योग्य नहीं होतीं अपनी पुत्री के इस निरप्य बुराचरण पर बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने आँडाळ को बहुत डाँटा और एक दूसरी माता बताकर उस दिन भगवान् की सेवा में अर्पित की। कहते हैं कि जब वे उस दिन रात को निम्नाप्रस्त ही सो रहे थे तब स्वप्न में भगवान् ने आकर संदेश दिया—'मुझे आँडाळ द्वारा पहनी गयी माताएँ ही अधिक पसंद हैं और आये उन्हीं माताओं से मुझे आभूषित करो।' तभी से आँडाळ का नाम 'वृद्धिकोक्त नाञ्चियार' (अर्थात् पहनी हुई माता अर्पित करने वाला) पड़ गया।^१

कहते हैं कि आँडाळ के असाधारण व्यक्तित्व का परिचय पाकर वे अपने दृष्टिकोण को आँडाळ द्वारा पहनी गयी माताओं से ही असंशय करते थे। ज्यों-ज्या आँडाळ की अवस्था बढ़ती गई त्यों-त्यों भगवान् के प्रति आँडाळ का अनुराग भी बढ़ता गया। जब वे पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हुईं तो पेरियाळ्वार उनके लिए सुयोग्य वर ओझने में मये। योग्य वर न मिलने के कारण वे बहुत चिंतित हुए। जब आँडाळ को अपने पिता की पिन्ता का कारण मानूँ मृत्वा तो उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया—'मैंने भीरंगम् के भगवान् को ही अपने पति के रूप में चरणी कर लिया है। यदि कोई कहे कि मैं किसी दूसरे की हूँ तो अपने प्राण त्याग दूँगी।'^२ कहा जाता है कि उसी दिन रात को भगवान् रंगनाथ ने स्वप्न में आकर पेरियाळ्वार को आदेश दिया—'मैंने प्रियतमा आँडाळ को सभी आभूषणों से अलंकृत कर भीरंगम् से आओ और मैं उससे पारिणयग्रहण करूँगा।'^३ आश्चर्य और आनन्द के साथ पेरियाळ्वार कुछ दिनों आँडाळ को एक घिबिका में बिठाकर, बन्धु मित्र^४ सहित मंगल बातों के साथ भीरंगम् से मये।

१ माताधिर विष्णु प्रबन्धम्—सम्पारक एत० कृष्णमाचार्यवर आँडाळ वचनम् पृ० ६६।

२ नाञ्चियार तिहमोटी—पद १५।

३ श्री पदकुवाहन संकित इत्य 'विष्णुसूरि चरितम्' नामक काव्य में श्री रंगनाथ के साथ आँडाळ के विवाह का वर्णन आठकोय संस्री में विस्तार से मिलता है। इसमें लिखा है कि इस अवसर पर नम्माळ्वार, तिबमनीयाळ्वार कुल्लोचराळ्वार आदि शेष सभी आळ्वार आए हुए थे और उन्होंने धार्मोर्बजन दिये।
—(विष्णुसूरि चरितम्, आँडाळ वचनम्, पद ३-७ पृ० १२५) तथा *Journal of Indian History* Vol 13 pp 181-203 Article on Divya Suri Charitam by Sri. B. V. Ramanujan M. A.

भी रंगनाथ के मन्दिर में वैरिपाळवार ने विधिपूर्वक विवाह-संस्कार करके आठार को भयबाहू को समर्पित किया। आठार अपनी अधिसाया को पूर्ण देखकर बहुत प्रसन्न हुई। वर्षगृह में प्रवेश कर भयबाहू की छिप-छीमा पर वहीं तो एक विष्णुमूर्ति का वहाँ ध्यात हो गया और आठार विष्णु की चमक के सदृश उस व्योम के द्वारा भयबाहू में उभा गई। इस प्रकार आठार ने अपने प्रेम द्वारा भयबाहू को जीत लिया। 'आठार' (अर्थात् भयबाहू पर प्रेमाधिक्य करने वाली) शब्द भी इस कृत्तमा को सूचित करने वाला है। बल्लिष्ठ के सभी वैष्णव भक्तों में अब भी प्रतिवर्ष आठार का विवाहोत्सव भूमशाम के साथ मनाया जाता है। बुध-परंपरा शब्दों के अनुसार आठार की आयु, अन्तर्धान के समय १६ वर्ष की थी।

अतपि वैरिपाळवार को अपनी पुत्री आठार को भयबाहू को सौंपकर 'समुद्र' बनने का छीमास प्राप्त हुआ था। तो भी पुत्री का विधोम उन्हें अतृण्नीव हो गया। अपने निवास-स्थान की बिस्तीपुत्तर को लौट जाने पर, पुत्री की अनुपस्थिति में रात गतावरण उन्हें सुना दीज पड़ा। पुत्री के विधोम में उन्होंने अनेक पर माने हैं। एक पर में वे कहते हैं— 'मेरी एक पुत्री थी जिसकी कीर्ति समस्त संसार में फैली थी। पर अब मेरे अद्विष्ट नैनो काका भावज अबे हर से गया। अब मैं उस अनुपम पुत्री को कहाँ पाऊँ ?''^१

रचनाएँ

आठार महान् भक्ति होने के साथ ही उच्च कोटि की कवयित्री भी हैं। इनकी रचनाएँ तमिळ-साहित्य का ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय साहित्य को तीव्र प्रभाव करने वाली हैं। कई पौराणिक तथा पारचात्य मित्राओं तथा दार्शनिकों ने मुक्त-कण्ठ से आठार की रचनाओं की काव्य कला और विचार-बाध—दोनों की दृष्टियों से बड़ी प्रशंसा की है। आठार की निम्नलिखित दो प्रसिद्ध रचनाएँ 'विष्णु प्रबन्ध' में संश्लिष्ट हैं—

१—तिरुप्पावी

२—नाञ्चिवार तिरुमोळी।

१—तिरुप्पावी

इसमें १० पर हैं जो विविध राम रासिनियों में बाने योग्य हैं। इसमें तमिळ-कव्याङ्ग की एक पुरानी प्रसिद्ध प्रका 'मार्कण्डी कोण्डु' (काञ्चनिकी घट) बलिष्ठ है। गद्दीकों में श्लोक 'मार्कण्डी' में अब कुछिका योग्य वर की प्राप्ति के लिए यह घट रखती है। मोनों का विश्वास है कि इस प्रकार घट रखने से अन्त-वारिनिधियों को ही नहीं बल्कि बर्षा, वन-जान से समस्त देश को भी लाभ पहुँचता है^२। तिरुप्पावी के भाव-शोक

१ वैरिपाळवार तिरुमोळी—१ अ : ४।

२ तिरुप्पावी—अध १।

की विशेषता यह है कि काल स्नान की परिधि को चौंकर आँडाळ स्वयं गोपी बन जाती है और अन्य सहेलियों के साथ अपने उपास्य देव 'कृष्ण' के पास घट की फल प्राप्ति के लिए पहुँच जाती है। अतः 'तिरुप्पारै' में आँडाळ ने अपनी ही कहानी कही है। 'तिरुप्पारै' का अर्थ विषय संक्षेप में इस प्रकार है—'मार्गशीर्ष' की पूर्णिमा के दिन आँडाळ अपनी सहेलियों से 'मार्गशीर्षी नोम्बु' का अनुष्ठान करने के लिए कहती है और यह विरवाच दिलाती है कि भगवान् जबस्य हमारी इच्छित वस्तुओं को प्रदान करेंगे। आँडाळ 'तिरुप्पारै' के प्रारम्भ के कुछ पदों में 'मार्गशीर्षी नोम्बु' की विशेषता तथा विभिन्न विधान आदि का वर्णन करती है।^१ इस व्रत का प्रधान अंग—उपाकास में बैठकर स्नान कर जाना है। अतः आँडाळ अपनी सहेलियों से सबेरा हो जाने की सूचना देती है और निद्रा टककर अपने साथ चलने को कहती है।^२ अब सभी सहेलियाँ एकत्र हो गयीं तो आँडाळ कृष्ण तक पहुँचने के लिए सफ़्त मार्ग का अन्वेषण करती है और सहेलियों के इस का लेकर कृष्ण भगवान् के निवास-स्थान की ओर चलती है। द्वारपालक से अपना परिचय इस प्रकार देती है कि हम योपियाँ श्रीकृष्ण भगवान् की पीठ पाकर जाने के लिए जायी हैं और द्वारपालक से प्रार्थना करती है कि वह उनके जाने का समाचार श्रीकृष्ण तक पहुँचा दे।^३ अब आँडाळ कृष्ण से मिलने से पहले उनकी प्रिया 'नय्यिलै' (तमिळ की 'राधा') से निबध्न करती है कि वे उन्हें श्रीकृष्ण से मिलने दें।^४ 'नय्यिलै' को प्रवृत्त करने के पश्चात् आँडाळ श्रीकृष्णभगवान् का यशोगान करती है और श्रीकृष्ण को जमझी है। श्रीकृष्ण से सहेलियों सहित अपने जाने का कारण बताती है और प्रार्थना करती है कि उनकी अभिसामाएँ पूर्ण हो जाएँ।^५

इन पदों में आँडाळ के भक्ति-भाव और तत्कालीन साम्य जीवन के सौन्दर्यपूर्ण सजीव चित्र देखने को मिलते हैं। प्रकृति का भी रसपूर्ण वर्णन है। 'तिरुप्पारै' का धार्मिक महत्त्व आस्पष्टिक है। वैष्णव मन्त्रियों में और वैष्णवोपासकों के घरों में 'मार्गशीर्ष' महीने के तीसरे दिन आयन्त पड़ा और भक्ति के साथ 'तिरुप्पारै' के पद गाये जाते हैं। आँडाळ द्वारा प्रचारित यह 'मार्गशीर्षी व्रत' समस्त दक्षिण भारत में ही नहीं सुदूर स्वाम देश में भी सत्ताष्टियों से मनाया जाता है।^६

२—नाम्बियार तिरुमोली

इसमें १४१ म्पुट पद हैं। यह विभिन्न राग-रामिनियों में जाने योग्य है। इसमें लीलात्मक कृष्ण को अपना प्रियतम और अपने को उनकी प्रेमिका मानकर रचे गये

१ तिरुप्पारै—पद १ से ५ तक

२ वही, पद १६

३ वही, पद २१ से ३० तक

४ वी.वी.पी. साचार्य का लेख : "Voice and Vision of Andal" Souvenir All India Writers Conference 1959, p. 154

५ वही पद ६ से १५ तक

६ वही, पद १७ से २० तक

श्री रंगनाथ के मन्दिर में वैरियाळवार ने विधिपूर्वक विवाह-संस्कार क्यकर आंठाळ को भयबाहू को समर्पित किया। आंठाळ अपनी अनिताया को पूर्ण देखकर बहुत प्रसन्न हुई। गर्भगृह में प्रवेश कर भयबाहू की शिप-शैया पर नहीं तो एक दिव्यासोक या वहाँ व्याप्त हो गया और आंठाळ विष्णु की कमर के सहस्य उस ज्योति के द्वारा भयबाहू में समा गई। इस प्रकार आंठाळ ने अपने प्रेय द्वारा भयबाहू को जीत लिया। आंठाळ (अर्थात् भयबाहू पर प्रेमाभिन्त्य करने वाली) सम्भव भी इस घटना को सूचित करने वाला है। ब्रह्मिण के सभी श्रेष्ठ मन्त्रियों में अब भी प्रतिवर्ष आंठाळ का विवाहोत्सव कुमवाम के साथ मनाया जाता है। मुख-परपरा सखों के अनुसार आंठाळ की आयु, अन्त्याज के समय १६ वर्ष की थी।

यद्यपि वैरियाळवार को अपनी पुत्री आंठाळ को भयबाहू को सौंपकर 'समुद्र' बनने का सीमाव्य प्राप्त हुआ था तो भी पुत्री का वियोग उन्हें असहनीय हो गया। अपने निवास-स्वाग की विस्तीर्णतर को लौट जाने पर पुत्री की अनुपस्थिति में धारा वातावरण उन्हें सूना बीच पड़ा। पुत्री के वियोग में उन्होंने बनेक पद गाये हैं। एक पद में वे कहते हैं—“मेरी एक पुत्री थी जिसकी कीर्ति समस्त संसार में फैली थी। पर मर भरे अक्षयिनी नदी बाला माघव उसे हर ले गया। अब मैं उस अनुपम पुत्री को कहाँ पाऊँ ?”

रचनाएँ

आंठाळ महात् महान होने के साथ ही उच्च कोटि की कवयित्री भी हैं। इनकी रचनाएँ तमिल-साहित्य को ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय साहित्य को और प्रभाव करने वाली हैं। कई पौराण्य तथा पाश्चात्य विद्वानों तथा शार्पलिनों ने मुक्त-कण्ठ से आंठाळ की रचनाओं की काव्य कला और विचार-मार्ग—शैली की दृष्टियों से बड़ी प्रशंसा की है। आंठाळ की निम्नलिखित दो प्रसिद्ध रचनाएँ दिव्य प्रबन्ध^१

१—विष्णुार्च

२—माध्वियार विष्णोळी।

१—विष्णुार्च

इसमें १ पद हैं जो विभिन्न राज-रायिनियों में पाने योग्य हैं। इसमें तमिल-समाज की एक पुरानी प्रसिद्ध प्रथा 'माघली नोम्बु' (कारवायिनी बत) वर्णित है। महीनों में श्रेष्ठ 'मार्गशीर्ष' में जब भुवठियाँ योग्य वर की प्राप्ति के लिए यह बत रक्ती हैं। लोगों का विश्वास है कि इस प्रकार बत रखने से बत-शार्पिणियों को ही नहीं बल्कि वर्षा बन-वान से समस्त देश को भी लाभ पहुँचेगा। २ विष्णुार्च के माध-सोक

१ वैरियाळवार विष्णोळी—३ ५ : ४।

२ विष्णुार्च—पद १।

की विवेचना यह है कि कास स्वाम की परिधि को लापकर आन्डाळ स्वयं गोपी बन जाती हैं और अन्य सहेलियों के साथ अपने उपास्य देव 'कृष्ण' के पास व्रत की फस प्राप्ति के लिए पहुँच जाती हैं। वर 'तिरुप्पारै' में आन्डाळ ने अपनी ही कहानी कही है। 'तिरुप्पारै' का अर्थ विषय सन्नेप में इस प्रकार है—'मार्गशीर्ष' की पूर्णिमा के दिन आन्डाळ अपनी सहेलियों से 'मार्गशीर्ष गोप्पु' का अनुष्ठान करने के लिए कहती है और यह विश्वास दिलाती है कि भगवान् जबस्य हमारी इच्छित वस्तुओं की प्रशान करेंगे। आन्डाळ 'तिरुप्पारै' के प्रारम्भ के कुछ पदों में 'मार्गशीर्ष गोप्पु' की विवेचना, तथा विभिन्न विधान आदि का वर्णन करती है।^१ इस व्रत का प्रधान अंग—उपाकाश में उठकर स्नान कर आना है। वर आन्डाळ अपनी सहेलियों से सबेरा हो जाने की सूचना देती है और निद्रा तनकर अपने साथ बसने को कहती हैं।^२ जब सभी सहेलियाँ एकत्र हो गयीं तो आन्डाळ कृष्ण तक पहुँचने के लिए सफस मार्ग का अनुपेक्षण करती है और सहेलियों के व्रत का लेकर कृष्ण भगवान् के निवास-स्थान की ओर चमटी है। द्वार पालक से अपना परिचय इस प्रकार देती है कि हम गोपियाँ श्रीकृष्ण भगवान् की पीठ पाकर बसाने के लिए आयी हैं और द्वारपालक से प्रार्थना करती हैं कि वह उनके जाने का समाचार श्रीकृष्ण तक पहुँचा दे।^३ अब आन्डाळ कृष्ण से मिलने से पहले उनकी प्रिया 'नयिनी' (तमिल की 'राधा') से निवेदन करती है कि वे उन्हें श्रीकृष्ण से मिलने दें।^४ 'नयिनी' को प्रसन्न करने के पश्चात् आन्डाळ श्रीकृष्णचन्द्र का स्मरण करती है और श्रीकृष्ण को बसती है। श्रीकृष्ण से सहेलियाँ सहित अपने जाने का कारण बताती हैं और प्रार्थना करती हैं कि उनकी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाएँ।^५

इन पदों में आन्डाळ के भक्ति-भाव और तत्कालीन ग्राम्य जीवन के सौन्दर्यपूर्ण छायाचित्र देखने को मिलते हैं। प्रकृति का भी रसपूर्ण वर्णन है। 'तिरुप्पारै' का भाविक महत्त्व आत्यधिक है। वैष्णव मन्दिरों में और वैष्णवीवासकों के चारों में 'मार्गशीर्ष' महाने के तीसों दिन बरसत थड़ा और भक्ति के साथ 'तिरुप्पारै' के पद गाये जाते हैं। आन्डाळ द्वारा प्रचारित यह 'मार्गशीर्ष व्रत' समस्त दक्षिण भारत में ही नहीं छुड़र स्वाम देश में भी सदाकियों से मनाया जाता है।^६

२—माधिकायार तिरुमोली

इसमें १४१ स्तुत पद हैं। पद विभिन्न राग-रागिनियों में गाये गये हैं। इसमें भीमानाथक कृष्ण को अपना प्रियतम और अपने को उनकी प्रेमिका मानकर रचे गये

१ तिरुप्पारै—पद १ से ५ तक

२. वही पद ६ से १२ तक

३. वही, पद १६

४. वही, पद १० से २० तक

५. वही, पद २१ से ३० तक

६. श्री पी० पी घाबाय का लेख : "Voice and Vision of Andal" Souvenir All India Writers Conference, 1959, p. 154

कर संयासी की तरह जीवन बिताते रहे । मे अपने को 'भगवान्' के दासों का दास कहना पसन्द करने से और भक्तों की सेवा को भगवत्सेवा के सुस्पष्ट समझे थे । अतः इन्हें तोंडरडीपोडी आळवार (मच्छीघिरेणु) अर्थात् भगवत् दासों के चरणों की धुनि कहकर नाम पुकारने लगे । सम्प्रदाय में इन्हें बिष्णु की वनमाता का अङ्ग माना जाता है ।

तोंडरडीपोडी आळवार के जीवन-काल का निर्णय करने में कठिनाई है । इनकी रचनाओं में उपलब्ध कुछ उल्लेखों के आधार पर इनका समय आठवीं शती के उत्तरार्ध में माना जा सकता है ।^१ कुछ विद्वान् इन्हें विस्तारण आळवार तथा तिरुमंगे आळवार का समकालीन मानते हैं ।^२

तोंडरडीपोडी के सम्बन्ध में एक कथा बहुत ही प्रसिद्ध है । इसकी पुष्टि में आळवार ने कुछ पद प्राप्त होते हैं । कहा जाता है कि एक दिन प्रातःकाल ये निम्नानुसार अपने तुलसी-वन में भगवान् का नाम-स्मरण करते हुए व्यापारियों को सुघार कर पानी मगाने में व्यस्त थे । उस समय देवदेवी नामक एक वेश्या बोल-नरेश के बत्ता भवन में अपने मृत्यु पीठ आदि का बड़ा सुन्दर प्रदर्शन कराकर तथा पुरस्कार प्राप्त कर अपनी बहिन तथा सन्तियों के साथ मौन रह चुकी थी । आळवार के तुलसी-वन ने उनको इनका आकर्षित कर दिया कि वहीं छोड़ी देर बिताकर आने की इच्छा से प्रेरित होकर तुलसी-वन में आ पहुँची । दूर से ही वैजस्वी नवयुवक तम्पासी आळवार को देखकर देवदेवी उन पर मुग्ध हो गयी । परन्तु देवदेवी के मनमोहन रूप-लोभ्यता का कुछ भी अन्त आळवार पर नहीं पड़ा । देवदेवी ने जिसको अपने कम का दर्ब था आळवार के इन तिरुत्कार भाव को देखकर मन ही-मन निश्चय किया कि मैं इनको अपने बग में बन्दे ही यहाँ से जाऊँगी । उसकी बहिन तथा अन्य सन्तियों ने उसे समझाया कि यह महात्मा बड़े विरक्त हैं और इन पर मारी-लोभ्यता कुछ भी असर कर नहीं सकेगी और इनके मन को बिचलित नहीं कर सकेगा । देवदेवी ने उनकी बात नहीं मानी और यह कहकर उन्हें भेज दिया कि मैंने यह प्रणय कर लिया है कि इन्हें किसी-न किसी तरह अपने बग में बन्दे ही यहाँ से लौटूँगी । देवदेवी ने अपना वस्त्र पहनकर तोंडरडीपोडी आळवार के सम्मुख जाकर उनका चरणों में गत हुई । आळवार ने यह पूछा कि तुम क्यों हो और यहाँ क्यों आयी हो ? देवदेवी ने हाथ जोड़कर कहा कि मैं वेश्या हूँ । अब तम जीवन से मुझे दूरणा पैदा हो गई है और अपना उद्धार करने का इच्छा से आपका नाम आई हूँ । आप मुझ पर दया कर, इस उपवन में रहने दें और जो रमनाय को सेवा में मुझे भी अपना जीवन व्यतीत करने का अवसर दें । तोंडरडीपोडी ने अपनी सहज सरसता के कारण देवदेवी की बातों पर विचारा कर उसे वहाँ रहने की अनुमति दे दी । तत्पश्चात् देवदेवी तुलसी-वन की वृद्धि में आळवार

१. आळवारकड चवत्तमोली—स्वामी चिरम्बन्तार पृ० ७५ ।

२. *History of Sri Vaisnavas*—T A Gopinath Rao p 26

की सङ्गम्यता करने लगी। कुछ समय के पश्चात् एक दिन जब देवदेवी पूत चुन रही थी तब बड़े जोर से बर्षा होने लगी। आठवार को भीभी देवदेवी पर बपा आनी और उन्होंने उसे अपनी कुटी के अन्दर बुला लिया। बहुत देर तक पानी का बरसना बन्द नहीं हुआ तो देवदेवी को उसी कुटिया में रह जाना पड़ा। अनुकूल बरसत पाकर देवदेवी ने मुक्त संन्यासी से अपने शरीर को स्वीकार करने की प्रार्थना की और अपने स्वसाधन से उनके मन में काम की ज्वाला उत्पन्न कर दी। भक्त का चित्त जलायमान हो गया और भवबाध की रूप-सुधा से हटकर यहिंत नारी की ओर जा चिपका। देवदेवी जिस उद्देश्य के लिए वहाँ आयी थी आखिर उसकी पूर्ति हुई। देवदेवी के प्रेम-पाश में पड़कर आठवार ने भगवान् को विस्मृत कर दिया। कुछ समय के बाद जब देवदेवी ने अनुमति किया कि इस संन्यासी के साथ रहने में विशेष आनन्द नहीं है, तो वह उन्हें छोड़कर वहाँ से चली गयी। भगवान् को भक्त की इस रक्षा पर बड़ा दुःख। एक रात को कोई अपने को ठोंडरडीपोडी आठवार का सेवन बताकर सोने की एक बासी देवदेवी के घर से आया जिससे प्रसन्न होकर देवदेवी ने आठवार को अपने पास बुला लिया। परन्तु वह स्वर्ण-पाश राबमहल का था। वह दूसरे ही दिन आठवार कोटी के अपराध में पकड़े गये और उन्हें कारावास का दर्ज मिला। कहते हैं कि फिर भी रंजनाथ ने राजा के स्वयं में प्रकट होकर आठवार को मुक्त कर देने की आज्ञा दी। आठवार को अपने अपराध पर परमात्माप हुआ। जब उन्होंने केळ से ही नहीं नारी-प्रेम से भी मुक्त होकर, फिर से भगवत्सेवा तथा भक्ति में तन-भग को समयाया। आठवार की यह चारणा थी कि भगवत्सेवा की सेवा भगवत्सेवा से भी ब्रेष्ठ है। वे मन्दिर में जाने वाले समस्त भक्तों की चरण-भूति का सेवन कर भजन-कीर्तन में रत रहने लगे।

रचनार्थ

ठोंडरडीपोडी आठवार की दो रचनार्थ उपलब्ध हैं —

१—तिस्माळ

२—तिस्पाळी एलन्नी

‘तिस्माळ’ का अर्थ है ‘पवित्र माता’। इसे कवि की ‘गीतावलि’ कह सकते हैं। यह ४४ पदों का एक गीत-संग्रह है। अधिकतर पद आत्मनिवेदनपरक हैं। कवि ने भगवान् के सम्मुख अपनी शीतला का प्रकाशन कर अपने को उनके दातानुदास के रूप में मञ्जीकर करने की प्रार्थना की है। इसमें उल्लेख भक्ति-भावना के साथ काम्य सीत्सर्व भी मिलता है। तमिलनाडु में एक प्रसिद्ध कहावत है—‘तिस्माळ’ अरियान तिस्माळ अरियान’ अर्थात् जो ‘तिस्माळ’ को नहीं जानता वह तिस्माळ (विष्णु) को नहीं जानता। इससे ‘तिस्माळ’ का महत्त्व स्पष्ट होता है।

ठोंडरडीपोडी आठवार की दूसरी रचना ‘तिस्पाळी एलन्नी’ विशेष महत्त्व की है, क्योंकि इसको ‘निष्पानुसम्भान पाठ’ अर्थात् ‘निस्पपाठ’ में स्थान प्राप्त है। अतः इसका भावन निस्पप्रति प्राप्त-काम प्रत्येक विष्णु मन्दिर में होता है, जिससे इस रचना

का धार्मिक महत्त्व जाना जा सकता है। 'तिरुप्पाळी एमन्नी' से तात्पर्य 'ममबान् को जमाने के सुप्रभात गीतों' से है। इसमें केवल १० ही पद हैं। प्रत्येक पद में प्रातःकास होने की सूचना देने वाले प्राकृतिक लक्षणों का वर्णन कर ममबान् से अपनी रीया से उठने की प्रार्थना की गई है। प्रत्येक पद में प्रातःकालीन वातावरण का सुन्दर चित्रण है। प्रकृति के ऐसे सुन्दर सजीव चित्र अव्यक्त विरसे ही मिलते हैं। पदों में शब्द-बन्धन चित्ताकर्षक है।

तिरुप्पाण आळवार (योगीश्वर)

तिरुप्पाण आळवार को मुनिश्वर अथवा 'पाण पेस्माळ' भी कहा जाता है।^१ इनका जीवन-वृत्त तिमिराक्षिप्त है। गुरु-परम्परा-ग्रन्थों में इनको 'अमोनिज' कहा जाता है। इनका जन्म-स्मान श्रीरंगम् के बसिए भाग में कावेरी नदी के किनारे पर स्थित 'उरैयूर' गाँव था। कहा जाता है कि ये उरैयूर के किसी ब्राह्मण के शिष्य में पड़े हुए थे। वहाँ से 'पाणन' कुल का एक व्यक्ति इन्हें ले आया और वही ने इनका पालन-पोषण किया। 'पाणन' कुल के लोग मायक होते थे और वे राजाओं और बनी भोगों के यहाँ बीछा आदि बाद्य-यन्त्रों के साथ मायन कर उनसे पुरस्कार प्राप्त कर जीविका कमाने वाले थे। एक समय तमिल-समाज में उन्हें बड़ा घोरतः प्राप्त था। परन्तु हमारे आळवार के समय में 'पाणन' जाति एक दिम्ब जाति मानी जाती थी। 'पाणन' कुल में पतने के कारण आळवार का नाम भी 'तिरुप्पाण' ('पवित्र प्राण') पड़ा।

गुरु-परम्परा-ग्रन्थों में तिरुप्पाण आळवार का जीवन-वृत्त बहुत ही संक्षिप्त रूप में मिलता है। इनकी रचना में भी कहीं इनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने वाला कोई भी उल्लेख नहीं है। इनके समय का निर्णय करने के लिए कोई आधार उपलब्ध नहीं है। गुरु-परम्पराओं के अनुसार इनका जन्म कलियुग के १४३ वें वर्ष में हुआ था। तोंडरडीपोडी आळवार ने अपने एक पद में कहा कि 'तिरुप्पाण' का ही स्मरण कर यह सिद्ध है— हे ममबान्, नीच जाति में उत्पन्न होने पर भी अपने भक्त होने के कारण तुमने भक्त को अपने पास बुला लिया और यह साबित किया कि नीच वह है जो तुम्हारा भक्त नहीं चाहे वह उच्च कुलोत्पन्न क्यों न हो।^२ अधिकांश विद्वान् अनुमानतः तिरुप्पाण आळवार को तोंडरडीपोडी आळवार का समकालीन मानकर उनका समय आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा नवीं शती के पूर्वार्ध में निश्चित करते हैं।

जनश्रुतियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तिरुप्पाण आळवार बचपन से ही गायन-विद्या में निपुण थे। बीछा बजाकर वे मधुर गीत गाया करते थे

१ शब्दिक मुनिवरकळ—श्री राधाकृष्ण पिल्लै पृ० ३८।

२ तिरुमालै—पद ४२।

और सोल मग्न-मुग्ध से होकर सुनते थे। स्वयं भी ये भक्ति-परक पद गा-गाकर तमसावरण में मूर्छित हो जाते थे। भूत-परम्पराओं के अनुसार ये “मयबद्धान विषय सार्वभौम” के नाम से भी प्रसिद्ध थे।

तिरप्पाण आठवार श्रेष्ठ वैष्णव भक्त थे। उन दिनों धीरंगम का मन्दिर वैष्णव भक्तों का मुख्य केन्द्र था। चूँकि आठवार की पाण्डु जाति निम्न कोटि की मानी जाती थी और उस जाति के लोग बसुन्ध समझे जाते थे इसलिए ये विष्णु के वर्णाश्रितार रूप भी रंगनाथ के मन्दिर में प्रवेश कर भक्त गोष्ठी में जा नहीं सकते थे। इनके जीवन की सबसे बड़ी कामना यही थी कि धीरंगनाथ के सौम्य-स्वरूप के दर्शन कर अपने जीवन को नव्य बनाएँ। परन्तु पाण्डु कुसौलप्रभ होने के कारण मन्दिर में प्रवेश करने के बाग्य से वंचित रहे। अतः ये कावेरी के दक्षिणी छट पर एक कुटी बनाकर रहने लगे और वहीं बड़े होकर धीरंगनाथ के मन्दिर की ओर देखते हुए प्रतिदिन धीरंगनाथ की स्तुति में मीठ पाते रहे। मधुर मीठ गा-गाकर आत्मविमोह हो जाते थे और उन्हें अपने शरीर को कुछ तक नहीं रहती।

कहा जाता है कि भगवान् ने तिरप्पाण की दीप्त भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें मन्दिर में प्रवेश कराकर अपने दिव्य दर्शन देने का निश्चय किया और उसके लिए एक उचित अवसर भी ढूँढ़ा। एक दिन एक विचित्र घटना घटी। धीरंगनाथ के मन्दिर का ‘भोक्तारंग’ नामक एक बाह्य पुजारी अपने साधियों के साथ धीरंगनाथ की मूर्ति के अभिषेक के लिए बड़े में कावेरी-जल लेकर जा रहा था। कावेरी-छट से मन्दिर की ओर जाते समय उन लोगों ने देखा कि तिरप्पाण आठवार मार्ग के समीप भगवद् भजन में तल्लीन होकर बीछा बजाते हुए सम्मग्नता में बैठे हुए थे। यह सोचकर कि तिरप्पाण निम्न जाति का है और इसलिए अपवित्र है उन लोगों ने तिरप्पाण से मार्ग से दूर हट जाने के लिए कहा। चूँकि आठवार भगवद् भजन में समाविष्ट थे इसलिए वे उन लोगों की आज्ञा न सुन सके। पुजारी समेत अन्य लोग आठवार को वहाँ से भाग जाने के लिए हुलस आवाज में चिल्लाते लगे। परन्तु तिरप्पाण गायन में इतने मग्न थे कि उनके चिल्लाते का कोई असर इन पर न पड़ा और वे इस से मत न हुए। ‘भोक्तारंग’ को अब क्रोध आया और महुँकारपत्र उसने एक बत्पर आठवार पर ठेक दिया। आठवार के चिर पर चोट सभी की ओर बून बह निकला। अब तिरप्पाण भाग पड़े और शमा-बाचना करते हुए वहाँ से चले गये। भोक्तारंग को अपने घूर कार्य पर परवास्ताप होने लगा। जब वह उस दिन रात को चिन्ताग्रस्त होकर सो रहा था तब धीरंगनाथ ने स्वप्न में प्रकट होकर आदेश दिया “तुम्हारे कैंके हुए पदों से मेरे चिर पर ही चोट लगने ली है। तुमने बड़ा अग्न्याय किया है। तिरप्पाण मेरे श्रेष्ठ भक्त मित्र और दास हैं। अतः तुम अपने आर्वाचित के रूप में उन्हें अपने कर्णों पर बिठाकर लामो और मेरे सम्मुख उपस्थित करो। यही तुम्हारे पाप का उचित प्रायश्चित्त है।” दूसरे दिन प्रातः काल भोक्तारंग मुनि भगवान् की आज्ञा का पालन करने के हेतु आठवार के पाठ आया और उसने आठवार से क्षमा

सी। भगवान् का आदेश सुनाकर आळवार को अपने कर्णों पर बिठाकर श्री रंगनाम मन्दिर में ले जाया। 'मुनि की पीठ' पर आसक्त होकर मन्दिर के अन्दर प्रवेश करने के कारण आळवार को 'मुनिवाहन' भी कहा जाता है। कहते हैं कि श्री रंगनाम के मन्दिर में प्रवेश कर तथा मूर्ति के सौन्दर्य का आस्वादन कर तिरुप्पाण आळवार को अपना आनन्द मिला जिसका लम्बे की दृष्टि मिलने पर। आत्म-विमोह होकर आळवार ने भगवान् के सौन्दर्यपूर्ण प्रत्येक भगवत् का वर्णन (मत्त से चित्त तक) किया और भगवान् की स्तुति में अनेक पद गाये। अन्तिम पद^१ में इन्होंने गाया कि—
“जिन जीवों ने इस असीमिक सादर सौन्दर्य को देखा है, वे किसी बुरी वस्तु को न देखें।” कहते हैं जब आळवार ने भगवत् सौन्दर्य-वर्णन समाप्त किया तब वहाँ दिव्यासी-सा सर्वत्र व्याप्त हो गया और उस ज्योति में तिरुप्पाण आळवार अन्तर्निहित हो गये। पुनः-विरम्भ प्रसन्न के अनुसार उस समय आळवार की आयु १० वर्ष की थी।^२

रचनाएँ

'अमलनादिपिरान' तिरुप्पाण आळवार की एक मात्र रचना है। यह १० पदों वाली एक कविता है। इस कविता का आरम्भ 'अमलना', 'आदिपिरान' आदि भगवत् गुण विशेषों से होने के कारण इसका नाम 'अमलनादिपिरान' रखा गया। तिरुप्पाण आळवार की अन्य रचनाएँ अप्रसङ्ग नहीं होती। 'अमलनादिपिरान' में श्री रंगनाम के अद्भुत सौन्दर्य का मत्त से चित्त तक वर्णन है। प्रत्येक पद में विष्णु की विभिन्न सीमाओं की ओर विक्षेपकर कृष्ण सीमाओं की ओर संकेत है। दोनों पदों में वरुणों का वर्णन है।

'अमलनादिपिरान' का आदिक महत्त्व अत्यधिक है। इसकी वैष्णव मन्दिरों में 'नित्यानुमंथान' अर्थात् 'नित्य-पाठ' में स्थान प्राप्त है। श्री वेदान्त वेदिकाचार्य ने जिनके अनेक अन्य समिद्ध और संस्कृत-वागों भाषाओं में मिलते हैं, आळवारों की रचनाओं में से केवल 'अमलनादिपिरान' पर ही टीका लिखी है। उसका नाम है 'मुनिवाहन भोगम्'। इससे इसका आदिक महत्त्व जाना जा सकता है।

तिरुमगै आळवार (परकाश)

आळवार-वरम्भरा में तिरुमगै आळवार अन्तिम आळवार माने जाते हैं। सम्प्रदाय में इन्हें विष्णु का दारुणांग माना जाता है। इस आळवार का जन्म कोल राज्य में तिरुवाप्पी तिरुमगरी नामक दिव्य-स्थान के पास अवस्थित 'तिरुगुरैयूर' नामक स्थान में हुआ था। इनकी जाति का नाम कट्टर था। इस जाति के लोग जंगली पहाड़ों में बास कर भूपार से जीविका चमाने वाले व्यापक हैं। इनके पिता

१. अमलनादिपिरान—पद सं० १०।

२. विष्णु मूर्ति कथामृतम्—ओ पी० बी० अण्णाराचार्य पृ० २२।

चोल राजा के यहाँ सेनापति थे। तिस्रमै का पहला नाम 'दीक्षम' था। कलियन,^१ 'आठ्वारी' 'परकात्म' आदि कई नामों से भी प्रसिद्ध है।^२

अब आठ्वारों की अपेक्षा इस आठ्वार का जीवन-वृत्त इनकी रचनाओं में प्राप्त अन्त-साक्ष्य के आधार पर बहुत कुछ मिला जा सका है। इन्होंने 'परमेश्वर विष्णुपर' नामक ग्रन्थ का जल्लेख किया है, जिसका निर्माण पल्लव मन्त्रीमन्त्र द्वितीय (ईस्वी सन् ७३१ से ७६९ तक जीवित) के शासन-काल में हुआ था। चित्तालेखों^३ से भी पता चलता है कि तिस्रमै आठ्वार का जीवन-काल आठवीं सदी के उत्तरार्ध में था। अनेक आधारों को प्रस्तुत कर प्रो० एच० वैयापुरि पिस्सै इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तिस्रमै आठ्वार ईस्वी सन् ८०० तथा ८७० के बीच में जीवित थे।^४

तिस्रमै आठ्वार कुछ विद्या में निपुण थे। जब चोल राजा ने इनके पिता की मृत्यु के पश्चात् इन्हें अपना सेनापति बना दिया। राजा के विरोधियों को बड़ी आसानी से परास्त कर देने के कारण इन्हें 'परकात्म' (अर्थात् शत्रुओं का 'कात्तन'—धम) कहते थे। इनकी वीर्यता से प्रसन्न होकर चोल राजा ने इन्हें 'तिस्रमै' नामक प्रदेश का सामन्त राजा बना दिया। उत्तरार्ध में 'तिस्रमै' मन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। जिस प्रकार मुद्र-कला में कुशल है उसी प्रकार संघीत मृत्यु मालक काव्य-कलाओं में भी वे चारंगत थे। वे तमिल और संस्कृत—दोनों भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित सिद्ध हुए। इनकी रचनाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि इन्होंने अपने पूर्व के तमिल-साहित्य का बग़ीर अध्ययन किया है और अपनी रचनाओं में विभिन्न काव्य धर्मियों की कुशलतापूर्वक अपनाया है। आठ्वार मल्ल-कवियों में सबसे श्रेष्ठ साहित्यिक मर्मज्ञ थे ही हैं।

तिस्रमै बड़े ही रसिक थे। अपने पास वीर्य तथा जीवन की सारी सुविधाओं के रहने से वे बड़ा बिलासितापूर्ण जीवन बिताते थे। बहुत समय तक वे अविवाहित रहे। इनके विवाह तथा बाद के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक वस्तुस्थितियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि उस समय 'तिरुवेस्तुत्तम' नामक गाँव में एक वीर्यवान् वीर रहते थे जिनके एक कन्यती कन्या थी। सड़की का नाम 'कुमुदवल्ली' था और उसकी लावण्याता इसकी अत्यधिक थी कि बड़े-बड़े राजा उससे विवाह करने को इच्छुक हुए। तिस्रमै ने कुमुदवल्ली के रूप से मोहित होकर उसके पिता से कुमुदवल्ली के साथ विवाह करने की अपनी इच्छा प्रकट की। दो घंटों पर कुमुदवल्ली तिस्रमै से विवाह

१. नात्तायिर विषय प्रबन्धम्—सम्पादक की एच० इण्डुमाचारियार—तिस्रमै वीरवन्, पृ० ४।

२. *Epigraphia Indica*, Vol. IV p. 334.

३. *History of Tamil Language and Literature*—Prof. S. Velayuthi Pillai, p. 128.

करने को तैयार हुई। एक छत यह थी कि सबसे पहले तिरुमंगे को परम वैष्णव भक्त बनना चाहिए। दूसरी छत यह थी कि प्रतिदिन १००८ वैष्णव भक्तों को भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करना चाहिए। दोनों छतों को स्वीकार कर तिरुमंगे ने कुमुदवल्ली से विवाह कर लिया। प्रतिदिन १००८ वैष्णव भक्तों के भोजन का प्रबन्ध किया गया। कुछ समय के अनन्तर तिरुमंगे को सारी सम्पत्ति इस कार्य में लक्ष्य हो गयी। यही नहीं तिरुमंगे ने इस कार्य में राजकोष का पूरा धन भी समाप्त कर दिया। भोजन राजा को इस बात का पता चला तो उसने तिरुमंगे से राजकोष के सम्पूर्ण धन को सौटा देने की आज्ञा दी। चूँकि तिरुमंगे राजा के धन को सौटा न सके इसलिए उनको गिरफ्तार कर कारागार में भेज दिया गया। कहा जाता है कि यहाँ रहते हुए तिरुमंगे को दैवी प्रेरणा से कांचीपुरम् में एक स्थान पर जमीन में गड़ी हुई किसी पुण्य सम्पत्ति का पता चला। आळवार ने इस सम्पत्ति को प्राप्त कर राजकोष का सम्पूर्ण धन सौटा दिया और बचीबूझ से मुक्त कर दिए गये। कुमुदवल्ली को दिए गये भजन का पालन करने के लिए, जब कोई दूसरा मार्ग न मिल पड़ा तो उन्होंने अपने जातीय पैदा आका-आसना—प्रारम्भ कर दिया। द्रव्य जुटाने के लिए इन्होंने क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना पड़ा। परन्तु मृत्युद्वार से जो कुछ भी मिलता उसे वैष्णव भक्तों को सेवा में अर्पित करते थे। कहते हैं कि भगवान् आळवार को सुमार्ग पर जाने के लिए स्वयं एक बनी बाह्यल यात्री के रूप में उस रास्ते से जाये जहाँ तिरुमंगे तथा उनके साधियों ने ग्राह्यल यात्री के सारे धन को लूटा। परन्तु प्राप्त धनराशि को वे जल नहीं सके। यह विचार कर कि बाह्यल ने किसी मन्त्र को प्रयोग किया होगा, उन लोगों ने यात्री को डाँटकर यह धन बचाने को कहा। इस पर बाह्यल यात्री ने तिरुमंगे को अपने पास बुसाकर जगहें बेद-सार-स्त्री अप्टाशर मन्त्र का उपदेश दिया। तिरुमंगे को मान्य हुआ कि बस्तुतः विष्णु भगवान् ही उनका उद्धार करने के हेतु जाये हुए थे। उस समय से आळवार के जीवन में महान् परिवर्तन आ गया और वे एक श्रेष्ठ भगवत् भक्त बन गये।

आळवार का यह युग आत्मिक संघर्ष का था और प्रत्येक धर्मानुयायी अपने अपने धर्म के प्रचार के कार्य में लगे हुए थे। बौद्ध और जैन धर्म पठानगुप्त हो चुके थे यद्यपि पूर्ण रूप से उनकी शक्ति न मिटी थी। ईव सन्ध अपने धर्म को श्रेष्ठ साबित कर लोगों को ईव भक्त बनाने के कार्य में लगे हुए थे। तिरुमंगे ने भी अपने युग की भाँव को यही भाँति समझ कर सारे देश में घूम घूमकर वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। इन्होंने बौद्ध तथा जैन धर्मों का उच्छेदन भी किया था। कहते हैं कि ज्ञानपट्टिम में स्थित भगवान् बुद्ध की स्वर्ण मूर्ति को इन्होंने तोड़ डाला और उससे प्राप्त धन

1 *History of India, Pt. I Ancient India, Prof K. A. Nilakanta Sastri, p 267*

से थीरलम् के मन्दिर का तीसरा प्रकार (बहार बीहारी) बनवाया ।^१ इन्होंने ही थीरलम् के मन्दिर में गम्माळ्यार के पर्वों के मायन का प्रबन्ध किया था । ये दसिष्ठ और उत्तर भारत के सभी प्रमुख वैष्णव स्थलों के—कम्बाकुमारी से बद्रिकामन तक के वैष्णव क्षेत्रों के दर्शन कर आये । इन्होंने इन सभी स्थानों का बख्त अपनी रचनाओं में किया है । कहा जाता है कि इन्होंने दूसरे भक्तावसम्भियों के ठान नामिक भाव-प्रतिपाद में भी भाग लिया था । एक अवधुति के अनुसार इन्होंने प्रसिद्ध सैव-सन्त तिरुञ्जान सवम्बर को भी नामिक चर्चा में परास्त किया था । परन्तु इसका कोई आधार नहीं है ।^२ गुरु-परम्परा-ग्रन्थों के अनुसार वे १०३ वर्ष तक जीवित रहे और इनका देहान्त 'तिरुगुरकुडी' नामक स्थान में हुआ ।

यह निश्चय है कि तिरुर्मय बाळ्यार तमिळ तथा संस्कृत—दोनों भाषाओं के प्रकाशक पंडित थे । वे सहस्र कवि और प्रकृति-सेवी भी थे । तमिळ की काँई भी काव्य-शैली ऐसी नहीं जिसमें इन्होंने मधुर कविताएँ नहीं रची हों । 'नायु' 'मधुरम्' 'चित्तम्' 'विस्तारम्' नाम के चार प्रकार की काव्य-शैलियों में सफ़ल रचना करने के कारण इन्हें 'नायु कवि पेस्माळ' (काव्याचार्य) भी कहा जाता है । भक्त भी उल्लेखोक्ति के थे ही । इनके मत के अनुसार मुष्क उपस्था धर्म है और तब-व-भक्ति ही मोक्षदायिनी है । इनके सम्बन्ध में एक आलोचक का कहना है कि तिरुर्मय बाळ्यार ऐसे भक्त थे जो "भारमा को सुख की रूप में सुझाना और शरीर को छपा की ठंडक में मानना चाहते थे ।"

रचनाएँ

संख्या की दृष्टि से 'नामागिरि विषय-प्रबन्धम्' में संवृद्धित पर्वों में सबसे अधिक पद तिरुर्मय बाळ्यार के हैं । ये सभी पद विविध राग रागिणियों में हैं । इनकी निम्नलिखित ६ कृतियाँ निम्नलिखित हैं —

- १—पेरिय तिरुमोळी
- २—तिरुक्कुन्ताडकम्,
- ३—तिरुनेल्लुन्ताडकम्,
- ४—तिरुनेल्लु तिरुमर्
- ५—चिरिय तिरुमन्ना
- ६—पेरिय तिरुमन्ना ।

ये छ कृतियाँ वैष्णवों के बीच में 'वेदांग' के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

'पेरिय तिरुमोळी' में १०८८ पद हैं । अनेक पद तीर्थ-यात्रा करते समय तिरुर्मय बाळ्यार ने जितने भी वैष्णव विषय-सौंदर्यों के दर्शन किये थे, उनमें विराजमान विष्णु

१ काव्यनाम मतिपेदुत्तेर—बी पी० श्री० आचार्य पृ० ४० ।

२ बाळ्यार कालनिर्णय—बी एम० रायन अपूर्वपाद, पृ० १३० ।

की अर्चावतार-मूर्तियों की स्तुति में गाये गये हैं। कवि ने प्रारम्भ के कुछ पदों में जीवनावस्था में किये गये अपने कुटुम्बों पर पापघाताप प्रकट कर भगवान् के चरणों में आत्म-समर्पण की भावना व्यक्त की है। अधिकांश पद शार्दूलिक विचारों से भरे पड़े हैं। कृष्ण-कथा के प्रसङ्गों का भी बहुत मिसठा है। कुछ पदों में तमिळ के उच्च साहित्य की 'बहुम' काव्य-शैली में नायिका की विरह-वेदना नायक से मिलने की आसुरता मेघ कोकिल भ्रमर इत्यादि द्वारा सन्देश भेजना आदि वर्णित हैं।

'तिरुक्कुरत्तायकम्' में २० पद हैं तथा 'तिरुवेमुत्तायकम्' में ३० पद हैं। इनमें सांसारिक माया-भोग के बन्धनों से विमुक्त होकर परम वास्तव्यमय भगवान् की चरणों में जाने का उपदेश है। इस मन्त्रावर को पार करने के लिए उसी को एक मात्र सहायक कहा है। 'तायकम्' शब्द का अर्थ है 'सहायक छोड़ी' जो बूझों के लिए चलने में और पर्वत पर चढ़ने समय पैर के न फिसलने के लिए सहायक होती है। एक मात्र भगवान् को ही वह सहायक छोड़ी कहा गया है। 'तिरुवेमुत्तियक्क' एक सम्भा पद है। इसमें कवि को आत्मसमर्पणपूर्ण भाव व्यक्त किये गये हैं।

'चिरिय निरुमडल' तथा 'चेरिय तिरुमडल' में तमिळ-समाज की मजस प्रथा का वर्णन है। नायक और नायिका के बीच प्रेम के विकास को कई अवस्थाओं में विभाजित कर वर्णन करने की परम्परा, 'बहुम' काव्य-शैली में मिसती है। पहले यह प्रेम गुप्तावस्था में ही रहता है। धीरे-धीरे विकसित होकर वह उस अन्तिम दशा में पहुँच जाता है जब नायक सोक-मर्यादा की भी परवाह न कर अपने इष्ट प्रेम की अग्नि-परीक्षा देने के लिए भी तैयार हो जाता है। अगर उसे अपनी प्रिया की प्राप्ति न करने में बाधा पड़े तो वह 'मडस' पर चढ़कर मरण को प्राप्त करने को प्रसन्न होता है। दोनों 'मडस' कृतियों में तिरुमंग न लौकिक प्रेम की तीव्रता स्थापित करने वाली 'मडस' प्रथा का आधार सिया है। परन्तु कवि ने अपने को विरहिणी नायिका मानकर प्रियतम भगवान् को प्राप्त करने के हेतु 'मडस' पर चढ़कर अपने तीव्र प्रेम की परीक्षा देने की घोषणा की है।^१

१६ वीं शती के हिन्दी-कृष्ण-भक्त कवि

ईसा की सोलहवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशिष्ट महत्व रखती

- १ ताड़ के पत्तों का बना छोड़ा जिस पर चढ़कर निराला प्रेमी प्रसन्नहृदय करने की घोषणा करता है और अन्त में अपनी प्रेमिका को प्राप्त करता है।
- २ जिस प्रकार सुखीमय में दूरवर तक पहुँचने के लिए विभिन्न-दशाएँ बतायी गयी हैं और अन्तिम दशा में प्रेम की तीव्र-चरीशा होती है, उसी प्रकार 'मडस' भी प्रेम की 'अग्नि-चरीशा' है। जब की इस बराकाप्ता पर पहुँच कर प्रेम की चरीशा में उगीम होकर लम्बे घटत प्रेम का परिचय देकर प्रेमी—प्रेमिका को बताता है और प्रेमिका—प्रेमी को।

है। सामाजिक भावना की पैदाइश यह साहित्य सृजना उस समन्वयकारी रूप को प्रस्तुत करती हुई दृष्टिगोचर होती है जिसके पीछे अराजकताओं और सहस्राब्दियों तक की परम्पराएँ निहित हैं। अर्न्तब्राह्मण सामनाओं का बैसा सुन्दर सामयिक इस अराजकता के साहित्य में दोष पड़ा बैठा पहल कभी प्रस्तुत नहीं हो सका और न आज तक सम्भव ही हो सका है। साहित्य-जगत् और नीति की निवेष्टी का पावन तीर्थयात्रा इसी अराजकता में सम्भव हो सका। विभिन्न युगों के अनेक स्तरों के बीच से मन्त्र-मन्त्र किन्तु अन्धकार यति से बहती हुई अनेक विधाओं से उत्पत्ती होती हुई आने वाली विभिन्न विचार-धाराओं को आत्मसात् करती हुई भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की सिद्धांत-सार-मुद्रा से प्राणियों के अन्तःकरण को कृप्य करती हुई भारतीय साहित्य की इस निवेष्टी ने साहित्य-खाने को इतना समान्य भर दिया कि आज भी उसकी तरंगों में मन्त्रज और मन्त्राहुत करने से चिर शांति प्राप्त होती है।^१

गुप्तगी मूर्त, आसली जैसे महान् कवि इस अराजकता में ही हुए हैं। यह हिन्दी का बीरबल्लभ युग था। इस अराजकता को हिन्दी साहित्य के इतिहास में छोड़ दिया जाय तो हिन्दी-साहित्य में कुछ भी नहीं रह जाता। यह एक अरुणत विरोधाभास है, किन्तु है सच। हिन्दी की साहित्य-सम्प्रदाय की परछाई के लिए एक अराजकता के साहित्य का मूर्त्याकन बर्णित है।

उसी अराजकता से नवी अराजकता तक तबिल भक्ति-साहित्य की पावन भूमि को विविध कर उत्तर की ओर प्रवहमान वैष्णव-भक्ति-परिवा अन्धकार यति से बहती हुई विभिन्न सम्प्रदायों की विचार-धाराओं को आत्मसात् करती हुई सोलहवीं अराजकता में हिन्दी की विधात भक्ति-भूमि को आन्ध्रप्रदेश कर देती है। यही तक कृष्ण-भक्ति-काव्य का इस भक्ति-परम्परा से सम्बन्ध है, सोलहवीं अराजकता में ही कृष्ण काव्य का विशेष निर्माण हुआ जिस पर बहिराण के विभिन्न वैष्णव-भक्ति-सम्प्रदायों की विचार-धाराओं का प्रभाव देखा जा सकता है। “सोलहवीं अराजकता के पहले भी कृष्ण-काव्य सिखा गया था लेकिन यह सब-का-सब था तो संस्कृत में है। जैसे बबदेव कृत ‘वीर-भाविन्द’ या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में जैसे मैथिली की कविता ‘परावती’। इन भाषा में मिली हुई सोलहवीं अराजकता से पहले की प्रादेशिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।”^२

सोलहवीं अराजकता के अन्धकार-कृष्ण-काव्य में अनेकानेक रचनाएँ विभिन्न सम्प्रदायों की विचार-धाराओं की आधारभूमि पर ही मिली मिलती हैं। कृष्ण-भक्तों से अन्धकार-संघ में यद्यपि साध्य की एकता भी अर्न्तः सभी के कृष्ण की अपने आराध्य

१ परमात्मन सागर—मं० डा० श्रीराम नाम शुक्ल—भूमिका में डा० हरचंद सात रात्री—पृ० १।

२ नाम-महात्म्य की कविता, अन्धकार कृष्ण १६४० ‘अन्धकार’ नामक लेख में डा० श्रीराम नाम। “अन्धकार और अन्धकार सम्प्रदाय” पृ० २० से उद्धृत।

के रूप में ग्रहण किया था तो भी उनकी सेवा-विधि तथा कृष्ण के विभिन्न रूपों सम्बन्धी माध्यमार्थों में थोड़ा-बहुत अन्तर था । इसी कारण विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों की स्थापना हुई जिनमें ब्रह्मम राधावल्लभीय गौडीय निम्बार्क और हरिदासी सम्प्रदाय प्रमुख हैं । अधिकांश हिन्दी कृष्ण मत्त-कवि इनमें से किसी न किसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे । कुछ सम्प्रदाय-मुक्त कवि भी थे । सोसहृदों राधाश्री के निम्नलिखित प्रमुख हिन्दी कृष्ण-मत्त-कवियों का परिचय आगे दिया जाता है (जिनकी रचनाओं तक ही इस तुलनात्मक अध्ययन की परिधि को सीमित रखा गया) ।

१ ब्रह्मम-सम्प्रदाय —

१—मुरदास २—परमानन्द दास ३—नन्ददास ४—रसतान ।

२ राधावल्लभीय-सम्प्रदाय —

१—हितहरिदास, २—दामोदरदास (सिक्क जी) ३—हरिराम व्यास ।

३ गौडीय सम्प्रदाय —

१—गदामर भट्ट २—सूरदास मदनमोहन ।

४ निम्बार्क सम्प्रदाय :—

१—श्री भट्ट २—हरिव्यास जी ।

५ हरिदासी सम्प्रदाय —

१—स्वामी हरिदास २—विट्ठल विपुलदेव ।

६ सम्प्रदाय-मुक्त-कवि —

१—मीराबाई २—रहीम, ३—नरोत्तमदास ।

महाकवि सूरदास उनकी रचनाएँ और वर्ण्य विषय

महाकवि सूरदास हिन्दी साहित्य-मगन के ठेजोमय सूर्य हैं । इनकी रचनाएँ इनके जीवन-काल से अब तक अनगिनत भयभङ्ग मछों और साहित्यमानुरागी रसिक जनों को असीमित आनन्द प्रदान कर रही हैं । सगीतमों के लिये ठा मूर के पद मानों प्राण हैं । इस महान् कवि की रचनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन कर हिन्दी साहित्य के सुषोम्य विद्वानों ने अन्तःसारय और बाह्य साध्य के आधार पर सूरदास के जीवन पर प्रकाश डालने का पर्याप्त प्रयत्न किया है । परन्तु सर्वसम्मत जोबनी अब तक सिधी नहीं जा सकी है ।

सूर कृत रहे जाने वाले चारों की सूची डा० हरबल्लाल चर्मा ने इस प्रदान की है^१ —

१—सूर सारावली २—मानवत माध्य ३—सूर रामायण ४—गायर्षन लीला (सरम लीला) ५—भैरवगीत ६—प्राणप्यारी ७—सूर माठी ८—सूरदास के विनय आदि के स्फूर्त पद ९—एवावली महारम्य १०—साहित्य सहरी, ११—दशम

स्कन्ध नावा १२—मात-सीता १३—मात सीता, १४—हृष्टिफुट के पद १५—सुर
पत्नीसी १६—मम-ममपत्नी १७—सुर-सागर, १८—सुर सागर-सार, १९—उभा
रस-केवि-कीरुहम २०—दान-सीता २१—व्याहारी, २२—सुरराजक २३—सेवा
कम, २४—हरिबंश टीका (संस्कृत) २५—राम-जन्म ।

इसमें से कुछ प्रकाशित हैं और कुछ अप्रकाशित हैं । इन रचनाओं की प्रामा-
णिकता के विषय में विद्वानों के विभिन्न मत हैं । डा० ज्योत्स्नर वर्मा एक मात्र 'सुर
सागर' को ही सुर की प्रामाणिक रचना मानते हैं^१ । डा० शीतवपानु पुष्ट, मुचीपम
धर्मा तथा हारकादास परीख आदि विद्वानों ने 'साहित्यलहरी' और 'सुर सारावली' को
भी प्रामाणिक^२ सिद्ध किया है ।^३

यहाँ सुर की प्रमुख तीन रचनाओं पर प्रकाश डाला जाता है । यथा—

१ सुरसागर

यह सुरसास की अत्यन्त विद्यालकाय और महत्त्वपूर्ण रचना है । उपसम्भ
'सुरसागर' भाष्य के तरह ही आठ सस्कृतों में विभाजित है । हो सकता है कि
सुरसास के स्कन्ध रूप में ही इसकी रचना की हो ।^४ इसमें प्रथम, ममम और दशम के
पूर्वार्ध और अन्त्यार्ध विद्याल और महत्त्वपूर्ण हैं । छेप छतने महत्त्वपूर्ण नहीं । सम्पूर्ण
पदों की संख्या ४१७८ है । सुरसागर में श्रीकृष्ण की मात-सीताओं तथा और
योगियों के प्रति उनकी अनेक भेटाओं तथा योगियों के विरह का चित्रण वर्णित है ।
भाष्य के कथाओं और तत्त्वों को सुर ने इसमें अपनी भावना के अनुसार ही प्रस्तुत
किया है ।

२ सुर सारावली

इसकी कुछ विद्वानों ने 'सुर सागर' की 'अनुक्रमणिका' यथा 'मुची-मम तक
कहा है । परन्तु वास्तव में यह एक स्वतन्त्र रचना है और इसकी रचना में भी अनेक
मिस्रता है । इसमें कुल ११०७ श्लोक हैं । इसमें सुर ने इस संसार को हनी के

१ सुरसास—पृ० १७ ।

२ मध्वराय और अस्मत्त तन्त्राचार्य—पृ० २१८ ।

सुर सौरभ (प्रथम भाग), पृ० १ ।

सुर निर्णय—पृ० ११६ ।

३ श्रीकृष्ण चारि श्लोक शिरो बह्या को समसाई ।

बह्या नारद को बड़े, नारद व्यास सुनाई ॥

व्यास बड़े सुरदेव तो हारत कथ बनावी ।

सुरसास लौई बड़े पर भव्या करि माह ॥

—सुरसागर (प्रथम स्कन्ध), पृ० ६० २०३ (समा)

सेस का कपक माया है जिसमें सीता-गुरु की अमृत सीताएँ निरन्तर बसती हैं । इस कपक का निर्वाह अस्त तक किया गया है । अबतारों के बलन में भागवत का अनुकरण है । नदी कल्पनाओं का भी आशय लिया गया है । अन्तिम माय में रविमणी के प्रसन्न के उत्तर के रूप में ब्रह्म कृपावन, राजा यद्योरा तथा राजा आदि सीताओं का समावेश है ।

३ साहित्य सङ्ग्रह

इसकी सूरदास के दृष्टिकोण परों का संग्रह तथा रस वर्णन और नायिका मेघ की एक ऐति-प्रधान रचना कहा जाता है । इसमें ११५ पद हैं । 'साहित्य सङ्ग्रह' के आचार पर कुछ विद्वानों ने सूर की मल्लि-भावना को शृङ्गार के कर्म से साक्षि और दूषित भी ठहराने का प्रयत्न किया है । परन्तु डा० हरबंधनाम यमी का कहना है—“सूर ने अपने आराध्य की अनेक प्रसन्न-पूण सीताओं के मधुर पान का जो स्वर प्रकट किया है—उसमें सरसता है किन्तु कर्म नहीं बिह्वलता है किन्तु वाचना नहीं सीम्बर्ग रसपान की आकुल निराशा है किन्तु ऐन्द्रिय मोलुपता नहीं । बाध्य की तरलता है किन्तु हृदय के घाव मुसकान की मारकता है किन्तु चेतना के साथ अनुभूतियों की बलता है किन्तु स्थिरता के साथ । कहीं तक कहें—सौक्यता है परन्तु असौक्यता के बाव ।”

परमानन्ददास उनकी रचनाएँ और वर्ण्य विषय

परमानन्ददास द्वारा रची हुई मानी जाने वाली रचनाएँ निम्नलिखित हैं —

१—बाग सीता २—मृग चरित्र ३—उदय सीता ४—मंस्कृत रत्नमाला
५—दीर्घ सीता, ६—परमानन्द जो के पद ७—परमानन्द सागर ।

उपर्युक्त ग्रन्थों में पहले ५ ग्रन्थ अप्रामाणिक और अनुपमम्ब हैं । छठा ग्रन्थ सातवें का ही वर्ण माय है । 'परमानन्द सागर' जो उनके मध्य द्वारा उनके पदों के लिए दिया हुआ नाम है, उनकी प्रामाणिक रचना ठहरती है ।^१ 'परमानन्दसागर' का विस्तार लगभग २००० पदों तक जाता है । यह संख्या गणितकार और कोकरीजी में में प्राप्त इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों पर आधारित है । परमानन्ददास जी के पदों में 'परमानन्द' नाम की निम्नलिखित छापें मिलती हैं —

१—परमानन्द प्रभु २—परमानन्द स्वामी ३—परमानन्द दास ४—दास परमानन्द, ५—परमानन्द ।

इन पदों के वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में डा० दीनदयालु मुक्त लिखते हैं —
'उसके पदों में रसज्ञ स्वयं पूर्वादि दृष्टि के मधुर-वसन और प्रेम्-पीत तक का

१. सूर और उनकी साहित्य—द्वितीय संस्करण पृ० ४६ ।

२. परमानन्द सागर (पद-संग्रह)—डा० गोवर्धन माध गुप्त पृ० १२ ।

ही मुक्कतः वर्णन है। गुरदास जी ने तो स्वयं कई स्थलों पर अपनी रचना में कहा है कि वे भागवत के अनुसार अपने विषय को लिख रहे हैं। परमानन्द दास के पदों में इस प्रकार का उल्लेख देखने को नहीं मिलता। उन्होंने कुछ स्तुत पद ब्रह्म तृतीया दीपमालिका राव बन्म-मूसिह, बामन अवतारों की प्रशंसा आदि विषयों पर भी लिखे हैं जो बहुधा बल्लभ-सम्प्रदायी वर्णोत्सव-कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं।^१

इन पदों का क्रम रागों के अनुसार न होकर, विषय के अनुसार है। कवि का काव्य-विषय मुक्कतः श्रीकृष्ण की किशोर-सीसा यात्रा था। परमानन्द सागर^२ में 'गुर साबर' की तरह भागवत की सम्पूर्ण कथा का समावेश न होकर, केवल दसम स्कन्ध पूर्वार्द्ध कृष्ण के मधुरा-व्रत और मँवर-नीत का वर्णन है। इनके अधिकतर पद कृष्ण की बाब-सीसा गोपी प्रेम और गोपी-विरह पर लिखित हैं। इनके अतिरिक्त राधा को लेकर मान अष्टिता मुगत सीसा रास आदि पर तथा अन्य स्तुत विषयों पर भी इनके पद उपलब्ध होते हैं।

नन्ददास उनकी रचनाएँ और अर्घ्य विषय

नन्ददास ने अल्प अष्टछापी कवियों की तरह स्तुत पद भी रचे थे पर साब ही इन्होंने अनेक स्वतन्त्र-ग्रन्थों की भी रचना की जिनमें कुछ अब अनुपलब्ध हैं। फाँसीसी विज्ञान् दासी ने अपने इतिहास (सन् १८७० ई० में) में श्री नन्ददास के ३० ग्रन्थों का उल्लेख किया है। परन्तु डा० दीनदयालु गुप्त के अनुसार नन्ददास के निम्नलिखित ग्रन्थ ही प्रामाणिक हैं —

१—रस मंजरी २—अनेकार्थ मंजरी ३—नाम मंजरी ४—ब्रह्म स्कन्ध
५—ब्रह्म सगाई, ६—गोवर्धन सीसा ७—मुद्यामा चरित ८—विरह मंजरी,
९—रस मंजरी, १०—ब्रिमली मंजरी ११—रास पंचाध्यायी १२—मँवर मोत
१३—सिद्धान्त पंचाध्यायी।

'रस मंजरी' ग्रन्थ का विषय नायक-नायिका मेह है। 'अनेकार्थ मंजरी' में एक-एक शब्द के अनेक अर्थ बोझावट करके दिये गये हैं। 'नाम मंजरी नाममाला' में अमर कोश के आचार पर शब्दों के पर्यायवाची रूप दिए गये हैं। इसमें राधा का मान वर्णन भी है। 'ब्रह्म स्कन्ध' में भागवत ब्रह्म स्कन्ध के उद्गीष्ट अध्यायों का भाषानुवाद है। कवि को इसको लिखने की प्रेरणा तुमसी के 'रामचरितमानस' से मिली थी। यह अपूर्ण रचना है। 'ब्रह्म सगाई' में कृष्ण के साथ राधा की सगाई होने का उल्लेख है। यह कथा भागवत में नहीं है। कृष्ण गावड़ी बनकर छल से राधा का कात्पनिग विष छताछे हैं और इस प्रकार ७८ में सगाई स्वीकृत करने में सफल होते हैं।

'गोवर्धन सीसा' में कृष्ण चरित की सीसाओं का वर्णन और मुखपान है। 'मुद्यामा चरित' में कृष्ण की ब्यामुता मत्तवससता मैत्री-निर्वाह आदि भावों को

दिखाया गया है। विरह मंजरी में मन्दरास के 'द्वादश मास विरह की कथा' का चित्रण है। इसमें ब्रजवायिभियों की विरह-व्यथा का मार्मिक वर्णन है। 'रूप मंजरी' में रूपवती और रूपमंजरी के रूप तथा उसके लौकिक प्रेम का त्याग तथा इष्ट के साथ प्रेम करने का वर्णन है। दोहा-चौपाई की शैली में वर्णित इस कथा का आचार भाष्यत से निमा गया है। 'दक्षिणसी मंगल' में कृष्ण-रक्षिमणी के विवाह की कथा है, जो भागवत पर आधारित है। कथा-कथन कल्पना को भी स्थान मिला है।

'रास पंचाध्यायी' में भागवत् ब्रह्म स्कन्ध पूर्वार्ध के पाँच अध्यायों में वर्णित रास-सीसा का वर्णन रोसा छन्द में हुआ है। अथवा कोमलकाश-पदावली और श्रुति-मधुर माया-सीसा के कारण यह ग्रन्थ हिन्दी का 'पीठ-गोविन्द' कहा जा सकता है। 'जैवर पीठ' में चण्डब-भोरी-सम्बाद के रूप में निपुण पर समुण की विजय और योग और ज्ञान-मार्ग पर प्रेम की विजय दिखायी गयी है। ऐसा समझा है कि यह सूरदास के 'भ्रमर पीठ' से प्रभावित होकर लिखा गया हो। 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' में 'रास पंचाध्यायी' में वर्णित रास-स्निग्धा की आध्यात्मिक व्याख्या की गई है। ऐसा समझा है कि रास-प्रसंग के शृङ्गारिक वर्णनों की अलौकिकता पर की गई संकाओं का छात्त्रीय समाधान प्रस्तुत करना ही इसकी रचना में कवि का उद्देश्य था।

'जम्दनास की पदावली' में पदों की संख्या ७०० और ८०० के बीच में है। विषय की दृष्टि से इन पदों में पृथ्वीमार्गीय बर्षोत्सव सम्बन्धी समयम समी प्रसंगों का वर्णन मिलता है। बाललीला पर मन्दरास की कोई स्वतन्त्र रचना नहीं मिलती है। परन्तु इनके पदों में कहीं-कहीं उक्तका भी समावेश है। इनकी पदावली के मुख्य विषय इस प्रकार हैं—गुरु-स्तुति यमुना-स्तुति, लीला-वच, कृष्ण-वन्द्य बघाई पासना बालरूप गोचारण गोप्योहन पतनट, बाल-लीला हिडोला राधा-कृष्ण अनुप्राण केसि कृष्ण-रूप वर्णन राधा-रूप-वर्णन, राधा-कृष्ण का विवाह वर्णन रास राधा मान, होतो फूल मंडली, बसन्त अगिठठा, मरुहार बर्षा, दीप-मालिका अक्षय तृतीया आदि त्योहार। मन्दरास के काव्य में जाया की मधुरता तथा शब्दों की सजावट है। इनलिए और कवि यक्षिमा, मन्दरास यक्षिमा की उक्ति प्रचलित हो गयी है।

रसखान जमकी रचनाएँ और अध्द-विषय

'रसखान' हिन्दी के सुप्रसिद्ध मुसलमान कृष्ण-मठ कवि हैं, जिनकी देव कृष्ण काव्य की उक्ति प्रसंगनीय है। इनका जीवन-वृत्त तिमिराश्रित है और इनका प्रामाणिक जीवन वृत्तान्त अभी तक लिखा नहीं जा सका है। 'प्रियसिंह सरोज' १ गोस्वामी

१ प्रियसिंह सरोज में लिखा है कि रसखान कवि सदैव इलाहीम पिहानी बाले ई० १९३० वि० में हुए। ये मुसलमान थे। श्री मद्रास में आकर कृष्णचरण की जल में ऐसे डूबे कि फिर मुसलमानी धर्म त्यागकर मानास्ट्री पारक किये हुए गुजरात को रज में मिल गये। इनकी कविता निपट ललित-भापुरी है। यही हुई है।

राधारण कुछ 'नक्तमाल' बाबा बेनी माधव दास कुछ 'मूल चौसाई चरित' आदि में रसखान के सम्बन्ध में उल्लेख हैं। रसखान के निम्नलिखित बोद्धे तथा २५२ बेम्पुसव की बातों से पता चलता है कि ये किसी बादसाह खानदान के थे :—

“देखि नगर हित ताहिबी, दिल्ली नगर नखान।

छिनिहि बादसा-बंस की, ठलक छाँडि रसखान ॥”

—प्रेम बाटिका बोद्धा ४८

कुछ लोग इन्हें सैयद इब्राहीम पिहामी बाने समझते हैं। परन्तु कवि रसखान उनके विषय व्यक्ति थे।^१ रसखान के बन्म-संवत् और निबन्म-संवत् का निर्णय करना कठिन है। पंक्ति चन्द्रोदर पादिय^२ और बैरमिस^३ ने इनका जन्म-संवत् १९१५ लिखा है। परन्तु इसका कोई आधार नहीं दिया है। पंक्ति रामचन्द्र गुप्त केवल उनके कविता-काल का जन्मेश करते हैं जो उनके अनुसार संवत् १९४० है।^४ कवि ने अपनी रचना 'प्रेम-बाटिका' में एक बोद्धे में उसके रचनाकाल का उल्लेख किया है :—

“बिनु सागर रस इनु सुभ बरस सरत रसखान।

प्रमदायिका रवि बजिर, बिर हिय हरवि बखान ॥

इस बोद्धे के आधार पर 'प्रेम-बाटिका' का रचना-काल संवत् १९७१ निकलता है। यह प्रकट है कि रसखान दिल्ली छोड़कर पोर्बन बने थे और वहाँ कोत्बामी बिट्ठलनाथ ने (संवत् १३७२ १९४२) रसखान का प्रवेश बस्नम संप्रदाय में कराया था। प्रचलित किम्बदन्तियों से अनुमान किया जा सकता है कि जब ये कृत्वाक बने, तब काशी बयस्क व्यक्ति अवस्थ थे। अतः इनका जन्म संवत् १५३० के आस-पास ही मानना समीचीन होगा। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का अनुमान है कि रसखान का जन्म १९ वीं शती के मध्य में हुआ होगा।^५ चूंकि 'प्रेम-बाटिका' की रचना संवत् १९७१ में हुई इसलिए रसखान का निबन्म-संवत् १९७४ के अवयव माना जा सकता है। डा० दीनदयालु गुप्त रसखान को अष्टछाप कवियों के समकालीन मानते हैं।^६

रसखान की दो रचनाएँ मिलती हैं —

१—प्रेम-बाटिका

२—गुजान-रसखान

१ बजमानपुरी सार (बसवा संस्करण) पृ० १४०।

२ रसखान और उनके काम्य पृ० २।

३ कृत्य-काम्य की कपरेखा, पृ० ६८।

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र गुप्त पृ० २३२।

५ हिन्दी साहित्य—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० २०७।

६ अष्टछाप और बस्नम संप्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त पृ० २२।

‘प्रेम-वाटिका’ में ५९ बोहे हैं जिनमें प्रेम की महिमा का वर्णन है। कवि ने प्रेम को ईश्वर से भी बढ़कर प्रधान दिखाने का प्रयत्न किया है। इनका प्रेम रीति कासीन कवियों का-सा वाचनामूलक न होकर सच्चा प्रेम है जो भगवत्प्रेम में परिणत होता है। कहीं-कहीं आध्यात्मिकता की भी झलक मिसरी है।

‘सुखान-रसखान’ में कवित और चर्चये हैं। ‘राम रत्नाकर’ में रसखान के १३० पद्य संयुहीत हैं।^१ इन पद्यों में मुरलीधर मनमोहन और गोपी-कृष्ण प्रेम का प्रधानतः वर्णन है। अन्य लीलाओं का वर्णन नहीं है। इसमें निमग्न-व्यथा का अभाव है। कुछ छन्दों में बास रूप का भी वर्णन मिसरा है।

रसखान की भाषा सरल सरस ब्रजभाषा है जो अपने मार्मिक के लिए प्रसिद्ध है। हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य को इनकी बेग अमूर्त है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं — ‘सहज आत्म-समर्पण अक्षय्य विश्वास और अनन्य निष्ठ की दृष्टि से रसखान की रचनाओं की तुलना बहुत थोड़े भक्त-कवियों से की जा सकती है।’^२ मार्कण्डेय जी का यह कथन है— इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दुन बारिए।’

हितहरिवंश उनकी रचनाएँ और वर्ण-विषय

राधावत्सल सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हितहरिवंश जी का हिन्दी कृष्ण-काव्य के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

श्री हितहरिवंश जी का ब्रजभाषा तथा संस्कृत—दोनों पर समान अधिकार था। प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ ‘राधा सुधा-निधि’ के रचयिता आप ही हैं। कुछ विद्वानों ने प्रमत्तता इसे प्रबोधानन्द सरस्वती की रचना बताया है।^३ इसमें २०० सुन्दर स्तोकों में राधारानी की प्रशंति गायी गई है। चूँकि श्री हितहरिवंश जी को इष्टाराध्या राधा है, इसलिए उसकी पूजा उपासना बन्दना प्रशंति के लिए उन्होंने इसकी रचना की है। इस स्तोत्र-काव्य का प्रमुख ध्येय—श्री राधा को इष्टाराध्या के रूप में प्रस्तुत

१ ब्रजमाजुरी सार, पृ० २०२।

२ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

३ (A) “The Stotra Kavya named “Radha Suda Nidhi” printed in 2 parts from the Bhakti Prabha Office Hugli (1924-25) is wrongly ascribed to Prabodhanand .. It is obviously a case of appropriation by the Chaitanya Sect of a work composed by Hit Harivansh of Radhavallab Sect”—Early History of Vaishnava Faith and Movement in Bengal Dr S K. De, p. 99

(b) द्वितीय साहित्य—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १६९ १६०।

करना ही है। 'राधा सुधा-निधि' की पदावली कोमल-काव्य और सरस है। यह हिन्दी अनुवाद सहित 'बाब' ग्राम निवासी बाबा हितदास द्वारा प्रकाशित है।

श्री हितहरिवंश की की संस्कृत में दूसरी रचना 'यमुनाष्टक' है। यह यमुना की बचन में बाठ स्तोकों में लिखा हुआ प्रशस्ति-काव्य है। ब्रजभाषा में श्री हितहरिवंश की की वा रचनाएँ प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं।

१—श्री हित-बीरासी २—श्री हित स्फुटबाणी।

श्री हित-बीरासी, मधुर ब्रजभाषा में सरस-कोमल-पदावली में रचित ५१ पदों वाली एक उत्कृष्ट रचना है जिसके कुछ पद बचरेख और विद्यापति के पदों की याद दिलाते हैं। यह रचना हित सम्प्रदाय में गीता अध्या भागवत के समान पूज्य मानी जाती है और सभी साम्प्रदायिक कवियों ने इसे आदर्श रूप में अपनाया है। इसमें राधा-कृष्ण के प्रेम, सम्मोग कुम्भ श्रीका रास मान नखच्चिन्न आदि का वर्णन है। इसके पद मित्र-मित्र रागों में विभाजित हैं।^१ हित-बीरासी के ऊपर अनेक टीकाएँ निकली हैं —

(क) हित बरगीबर की टीका (१६ बीं छती)

(ख) पोसबामो सुकलाम बी की टीका (१७ बीं छती)

(ग) श्रीकृष्ण बी की टीका

(घ) श्री पुपसदास की टीका

(ङ) प्रेमदास बी की टीका

(च) केशिदास की टीका (१५ बीं छती टीका)

(छ) श्री रतनदास बी की टीका आदि।^२

'श्री हित-स्फुटबाणी' में ११ पद ३ तर्क २ छन्द २ कुटुम्बिया तथा एक अलिप्त—कुल २१ मुक्तक संगृहीत हैं। परन्तु पदा के प्रकीर्ण होने पर भी उसे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का स्थान प्राप्त हो गया है। इसका बर्ण-विषय कृष्ण भक्ति की महत्ता है।

इसके अतिरिक्त श्री बचरेख अपाध्याय ने और तीन ग्रन्थ इनके नाम से बढाये हैं —

१—आशास्तव २—चतु-स्तोकी तथा ३—राधास्तव ग्रन्थ।^३

१. ये सब विभाज्य भाग सात हैं विभाजन में ठोड़ी में चतुर घातावली में हैं अर्धे । सप्त है धमाधी में जुगल बसन्त कैलि बेर्गाधार पंच होय रत्न सौं सनें । सारंग में बोलता है बार ही बहार एक गीत में सुहृदो मय मोरी रत्न में सनें । पद कल्पान निधि कान्होरे केधारे बेरबानी हित बू की सब बीरह राग में सनें ।

—श्री हितानुव तिल्लु—हितबीरासी—आरकादास बी महाराज कवस्तुति

कवित्त—पृ ९४।

२. आपबन्-सम्प्रदाय—श्री बचरेख अपाध्याय पृ० ४२६।

३. वही पृ० ४२६।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दो और रचनाएँ इनके द्वारा रचित बतायी हैं —

१—वृन्दावन श्रवण २—हित युधा सागर ।

चूँकि इन दोनों ग्रन्थों का उल्लेख 'राधावत्सल भक्तमाल' 'साहित्य रत्नावली' आदि साम्प्रदायिक ग्रन्थों में नहीं मिलता इसलिए ये हित हरिवंश जी की प्रामाणिक रचनाएँ मान्य नहीं पड़तीं । नागरी प्रचारिणी सभा की बीज रिपोर्ट में हस्तलिखित पुस्तकों के विवरण में 'प्रेमसता' नामक ग्रन्थ का रचयिता श्री हितहरिवंश को बताया है ।^१

शामोदरवास (सेवक जी) उनकी रचनाएँ और वष्य विषय

श्री हितहरिवंश जी की बाणी के पूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करने वाले भक्त रसिकों में श्री सेवक जी का स्थान सर्वोपरि है । राधावत्सल-सम्प्रदाय में इनको एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है । राधावत्सल भक्तमाल,^२ भक्तमामावली^३ जैसे साम्प्रदायिक ग्रन्थों में इनकी स्तुति की गई है । सम्प्रदाय की अनेक बाणियों में सेवक जी का वर्णन मिलता है । नमवतमुदित ने तथा उत्तमदास ने अपने 'रसिक भगवत्पात्र' और त्रिवाचास ने अपने 'सेवक चरित्र' में विस्तार से इनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला है ।

'सेवक जी की बाणी' श्री हित जीराजी का मर्मोद्घाटन करने से तथा साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का विवेचन करने से हित जीराजी की पूरक बाणी मानी जाती है । अतः गुरु की रचना के साथ ही 'श्री हित जीराजी सेवक बाणी' के नाम से प्रकाशित हुई है । यह १९ प्रकरणों में विभक्त है । सरल तथा सरस ब्रजभाषा में लिखित इसमें १८७ पद और २१ श्लोक हैं ।^४ यद्यपि इसका बर्ण्य विषय प्रमुख

१ हासलिखित हिन्दी ग्रन्थों का बीरहर्षाचार्यिक विवरण, सन् १९२६ १९३१
—संपादन डा० पीताम्बरदास बह्माल ।

२ सेवक तम सेवक नहीं, धर्मिन मोक्ष प्रदाय ।

—राधावत्सल भक्तमाल, पृ० २३२ ।

३ सेवक जी तम को करे भजन तरोवर हूँ ।

मन बच कैं करि एक बत पाये श्री हरिवंश ॥

बाग बिना हरि नाम हूँ सियो न जाके देख ।

पार्व तोई बस्तु को जाके है यत एक ॥

—भक्त नामावली

४ त्रिपरी १९ कुई ८ पावा ४, तोटक १४ रट्ट ८ लवया १७, मानती ६, मदिरा १, गणवती १, सोरठा २० कुडमिया २२, गहू ४ फ्यार ४, किरिट ३, बुमिल २ बमिलका १, रोसा १, बगडक १ बारायस ४ बोहा ६, एवम ६ ।

कम से भी हित भी की प्रशंसा है, तो भी "भी हित रस रीति प्रकरण" और 'भी हित मल्लभ प्रकरण' जाति कुछ प्रकरणों में राधा-कृष्ण भी कुल-क्रीड़ा का वर्णन है। 'सेवक बाणो' की प्रशंसा में स्वामी चतुर्भुजदास ने लिखा है —

सेवक बाणो के नहि जानै ।

ताको बल रसिक नहि मानै ॥

मिथबन्धुओं ने 'सेवक बाणो' के अतिरिक्त उनके 'मक्ति परिचावली मंजस नामक एक ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है।' परन्तु यह न तो प्राप्य है और इसका उल्लेख 'राधावत्सल' मल्लभास और 'साहित्य रत्नावली' में मिलता है।

हरिराम व्यास 'उनकी रचनाएँ' और वर्ण्य-विषय

मल्ल सिरोमणि व्यास जी का पूरा नाम हरिराम शुक्ल था। 'व्यास' तो उनकी उपाधि थी। इनका वर्णन नामादास के 'मल्लभास' मयवतमुरित के 'रसिक-संगम्यमास' तथा उत्तमदास के 'रसिकमास' में विस्तार से मिलता है। राधावत्सल सम्प्रदाय के अनेक कवियों ने अपनी बाणियों में व्यास जी का स्मरण किया है जिससे इनके राधावत्सलीय होने का प्रमाण मिलता है। नामा जी के 'मल्लभास' में व्यास जी के परिचय में दिये हुए छन्द का शीर्षक "भी हरिवंश जी के शिष्य व्यास जी" है और उत्तमदास हृत 'रसिकमास' में शीर्षक "भी हितवर्धन व्यास जी की चरित" है।

हरिराम व्यास जी उच्च कोटि के मल्ल और दार्शनिक होने के साथ साथ कुशल कवि भी हैं। संस्कृत में तो वे पूर्ण पंडित थे ही। इनके नाम से दो संस्कृत ग्रन्थ 'नवदत्त' तथा 'स्वर्गमं पद्यति' विख्यात हैं। नामरी प्रचारिणी समा काशी की खोज रिपोर्टरों में इनके नाम से मिश्रलिखित रचनाओं का उल्लेख मिलता है —

१—रागमाला^१—इसमें १०४ श्लोक हैं। यह संपीठ-शास्त्र का ग्रन्थ है।

२—रस के पर^२—इसमें ११०० पर हैं।

३—व्यास जी की बाणो^३—इसमें १२०२ पर हैं।

४—पदावली^४—इसमें २०७ श्लोक हैं।

५—रासर्पवाध्यायी^५—इसमें ११२ पर हैं।

६—व्यास जी की साक्षी^६—इसमें २४ पर हैं।

मिथबन्धुओं की दो हुई सूची और नामरी प्रचारिणी समा की उपर्युक्त सूची में विधेय अंतर नहीं है। श्री विद्योकी हरि के पर-संग्रह में व्यास जी के २०० पर

१ मिथबन्धु विमोह (प्रथम भाग) पृ० ११२।

२. खोज रिपोर्टर, वर्ष १९०६-नामरी प्रचारिणी समा काशी

३ वही, " १९०२ ११ "

४ वही, " १९१२ १४ "

५ वही, " १९२० २२ "

है।^१ इन पुस्तकों का निरीक्षण करने पर यह निश्चय निकसता है कि केवल 'व्यास जी की बाली' ही व्यास जी लिखित प्रामाणिक रचना है। माधुम कहता है कि इसी एक ही कृति के पर्वों का विभिन्न छीपकों में संग्रह कर अलग-अलग नाम दिये गये हैं। प्रकाशित 'व्यासबाली' में पद-संख्या ७२६ है और साथ में १४६ साक्षियाँ और बोहे भी हैं।^२ ये दोनों भागों में विभाजित हैं। प्रथम भाग में 'रस विहार रस' के १०१ पद हैं तथा द्वितीय भाग में 'रस विहार के ४२२ पद हैं।

'सिद्धान्त रस' के सम्पूर्ण पद सिद्धान्तपरक नहीं हैं। आरम्भ में वृन्दावन मधुपुरी, वसुधा महाप्रसाद तथा नाम रूप की स्तुति है। 'श्री साधुम की स्तुति' प्रकटण में समस्त प्रसिद्ध मन्त्रों का मल-मास है। शेष पदों में विनय विरह, मनोपदेश भक्ति ज्ञान आदि विषयों की चर्चा है। इन पदों में इन्होंने जीवन के व्यवहार-पक्ष का आकलन करते हुए सांसारिक दृष्टि से वस्तुओं का विस्तेषण-निवेदन किया है। इनमें व्यवहार-पक्ष की प्रधानता है। मुख्य सैद्धान्तिक अवधारण से दूर रहकर लौकिक बरातन पर ही व्यास जी ने अपनी बात कही है।^३ 'रस-विहार' के पदों में राधाकृष्ण की कुल-क्रीड़ा जल-क्रीड़ा समय-विहार योद्धा शृंगार मर्यादित मान होती हिरोत्ता आदि अनेक विषय बखिण्ड हैं। 'रस पंचाध्यायी' असल रूप से पद-माल की गई है।

पदाधर मट्ट : 'समकी रचनाएँ' और सव्य विषय

वैतन्य सम्प्रदाय के कवियों में श्री पदाधर मट्ट का स्थान प्रधान है। ये राधा कृष्ण के अवलम्ब कपाटक के और महाप्रभु वैतन्य के समवासीन थे। दुर्गापूजक इनके सम्बन्ध में बहुत कम बिबरण मिलता है।

पदाधर मट्ट की रचना प्रधानतः पदों के रूप में ही मिलती है। 'मोहिनी बाली पदाधर मट्ट की' के नाम से संवृद्धि बाली में पदों के अलावा कुछ संलुप्त के शेष और वृन्दावन की प्रशंसा में लिखित १४ रोला छन्दों का 'मोमपीठ' भी सम्मिलित है। 'मोमपीठ' पदाधर मट्ट की की बाली का ही एक भाग है, न कि पृथक रचना बल्कि कि कुछ विद्वानों की भ्रान्त धारणा है। यद्यपि रास के कुछ पदों में यक्षीदा नन्द, बर्पाई, बन्ना, वसुधा, बंजी, बर्पा, बसन्त होती हिरोत्ता आदि विषय बखिण्ड हैं, तथापि अधिकतर पदों में राधा-कृष्ण के शृंगार, रास विस्तार विवाह तथा मान आदि का विस्तार से वर्णन है। एक-या स्वतन्त्र पर श्रीकृष्ण की वज्र-गोकुल-सीमाओं का भी वर्णन मिलता है। अन्य पदों में नाम-माहारम्य तथा रस्य भाव भी भी व्यंजना हुई हैं। इस संग्रह में छोटे-बड़े सभी प्रकार के पद हैं, जिनकी संख्या ८० के लगभग है।

१ ब्रजमाधुरी सार—श्री विद्योती हरि, पृ० ११८।

२ श्री व्यास बाली (दुर्गाधर वरतन्य) पृ० ४०।

३ राधावत्सल सम्प्रदाय साहित्य और सिद्धान्त—डा० विजयेन्द्र त्यागक, पृ० १८२।

क्य से भी हित भी की प्रशंसा है, तो भी 'धी हित रस रीति प्र
मत्तमम प्रकरण' बाबि कुछ प्रकरणों में राधा-कृष्ण की कुछ
'सैबक वाली' की प्रशंसा में स्वामी जगुर्भूषण ने लिखा है —

सैबक वाली के गहि मानै ।

राकी बात रसिक गहि मानै ॥

मिथबन्धुओं ने 'सैबक वाली' के अतिरिक्त उनके 'मति
नामक एक ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है।' परन्तु यह न तो प्रा
उल्लेख 'राधावत्सल' भक्तमाल' और 'साहित्य रत्नावली' में मिलता
हरिराम व्यास 'उनकी रचनाएं' और वर्ण विषय

भक्त चिरोमणि व्यास जी का पूरा नाम हरिराम भुक्क
उनकी उपाधि थी। इनका वर्णन नामावाच के 'भक्तमाल' भक्तवत्स
जनम्यमाल' तथा उत्तमराम के 'रसिकमाल' में विस्तार से मिलता
सम्प्रदाय के अनेक कवियों ने अपनी बाणियों में व्यास जी का स्मरण
इनके राधावत्सलीय होने का प्रमाण मिलता है। नामा जी के 'भक्त
के परिचय में दिये हुए ग्रन्थ का शीर्षक "धी हरिबंध जी के शिष्ट
और उत्तमरास कृत 'रसिकमाल' में शीर्षक "धी हितवधामित व्यास ५

हरिराम व्यास जी उच्च कोटि के भक्त और दार्शनिक हो
मुदात कवि भी हैं। संस्कृत में तो वे पूर्ण पंडित थे ही। इनके नाम से
'नवरत्न' तथा 'स्वर्ण पद्म' विख्यात हैं। नामटी प्रचारिणी सभा
रिपोर्टों में इनके नाम से निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख मिलता है

१—राधमाला^१—इसमें ६०४ श्लोक हैं। यह संपीठ-शास्त्र ५

२—रस के पर^२—इसमें ११०० पर हैं।

३—व्यास जी की वाली^३—इसमें १३७२ पर हैं।

४—पदावली^४—इसमें ५०७ श्लोक हैं।

५—रासपंचाव्यासी^५—इसमें ११२ पर हैं।

६—व्यास जी की राखी^६—इसमें २४ पर हैं।

मिथबन्धुओं की भी हुई लूची और नामटी प्रचारिणी सभा की उ
में विशेष अंतर नहीं है। श्री विद्योबी हरि के पर-संग्रह में व्यास जी

१ मिथबन्धु विनोद (प्रथम भाग) पृ० ११२ ।

२. कोक रिपोर्ट, वर्ष १९०६-८-नामटी प्रचारिणी सभा, काशी

३ वही " १९०६ ११ "

४ वही " १९१२ १४ "

५ वही " १९२० २२ "

है।^१ इन पुस्तकों का निरीक्षण करने पर यह निश्चय निकसता है कि केवल 'व्यास जी की बाणी' ही व्यास जी लिखित प्रामाणिक रचना है। मान्यम पड़ता है कि इसी एक ही कृति के पदों का विभिन्न धीर्यों में संग्रह कर अलग-अलग नाम दिये गये हैं। प्रकाशित 'व्यासबाणी' में पद-संख्या ७२१ है और साथ में १४६ साक्षियाँ और दोहे भी हैं।^२ ये दोनों भागों में विभाजित हैं। प्रथम भाग में 'सिद्धान्त रत्न' के १०१ पद हैं तथा द्वितीय भाग में 'रत्न बिहार' के ४२२ पद हैं।

'सिद्धान्त रत्न' के सम्पूर्ण पद सिद्धान्तपरक नहीं हैं। प्रारम्भ में कृष्णायन मङ्गुटी ममुना महाप्रसाद तथा नाम रूप की स्तुति है। श्री साधुन की स्तुति प्रकरण में समस्त प्रसिद्ध भक्तों का मद्य-गान है। शेष पदों में विनय निरह, मनोपदेश मति मान आदि विषयों की बर्णना है। इन पदों में इन्होंने जीवन के व्यवहार-मय का आकलन करते हुए सांसारिक दृष्टि से वस्तुओं का विस्तारण-विवेचन किया है। इनमें व्यवहार-मय की प्रधानता है। मूलम, 'सिद्धान्त' अवमाहन से दूर रहकर सौकिक बरातल पर ही व्यास जी ने अपनी बात कही है।^३ 'रत्न-बिहार' के पदों में राजा-कृष्ण की कुछ-झीड़ा अस-झीड़ा सयम-बिहार, पोरस शृंगार नकसिल मान होमी हिडोला आदि अनेक विषय बलिष्ठ हैं। 'रत्न पंचाम्यायी' अलग रूप से पद्य-बद्ध की गई है।

गदाधर भट्ट उनकी रचनाएँ और वष्य विषय

चैतन्य सम्प्रदाय के कवियों में श्री गदाधर भट्ट का स्थान मूढम्य है। ये राजा कृष्ण के अनन्य उपासक थे और महाप्रभु चैतन्य के समकालीन थे। कुर्मायबय इनके सम्बन्ध में बहुत कम विवरण मिलता है।

गदाधर भट्ट की रचना प्रधानतः पदों के रूप में ही मिलती है। 'मोहिनी बाणी गदाधर भट्ट की' के नाम से संशुद्धि बाणी में पदों के असाधारण कुछ संस्मृत के पीठ और कृष्णायन की प्रशंसा में लिखित २४ रोला छन्दों का 'योगपीठ' भी सम्मिलित है। 'योगपीठ' गदाधर भट्ट जी की बाणी का ही एक भाग है, न कि पृथक् रचना जैसे कि कुछ बिहानों की भ्रान्त बारणा है। यद्यपि रत्न के कुछ पदों में मधोदा, नन्द, बर्बाई बन्दना ममुना बंशी बर्बा बसन्त, होसी हिडोला आदि विषय बलिष्ठ हैं, तथापि अधिकांश पदों में राजा-कृष्ण के शृङ्गार, उस विभास बिबाह तथा मान आदि का विस्तार से वर्णन है। एक-दो स्थान पर श्रीकृष्ण की ब्रज-गोकुल-सीमाओं का भी वर्णन मिलता है। अन्त पदों में नाम-माहात्म्य तथा शैव भाव की भी स्मरणता हुई है। इस संग्रह में छोटे-बड़े सभी प्रकार के पद हैं, जिनकी संख्या ८० के लगभग है।

१ ब्रजबापुटी तार—श्री विजयोयी हरि, पृ० ११८।

२ श्री व्यास बाणी (दुर्वास बसन्तम्य) पृ० ४०।

३ राजावत्सल सम्प्रदाय साहित्य और सिद्धान्त—डा० दिव्येन्द्र त्वाटक पृ० १८३।

भट्ट की संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे। अब इनकी भाषा कहीं-कहीं संस्कृत समित बीच पड़ती है और काव्य-शायी बहुत सुन्दर बन पड़ी है। बालोचक रामचन्द्र गुप्त ने लिखा है—‘संस्कृत के बुझांत पठित होने के कारण शब्दों पर इनका बहुत विस्तृत अधिकार था। इनका वह-विम्यास बहुत ही सुन्दर है।’^१

सूरदास मदनमोहन उनकी रचनाएँ और व्यंग्य-विषय

सूरदास मदनमोहन बकबर के दरबार की ओर से नियुक्त संजीवे के बन्धीम थे। इनका असली नाम ‘सूरदास’ था और ये मदनमोहन के बन्धुमित्र थे। अपने नाम के साथ अपने दृष्टिकोण के नाम की अनिवार्यता स्थापित करने के कारण इनका वास्तविक नाम छिप गया और ये ‘सूरदास मदनमोहन’ के नाम से ही प्रसिद्ध हुए।^२

सूरदास मदनमोहन के अनेक पर कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं। इनकी कविता सरस और मनोहारिणी तथा नाम सुरदास होने से इनके अनेक पर ‘सूरदास’ में कुछ-मिल पड़े हैं। परन्तु इनके समस्त पदों में ‘सूरदास मदनमोहन’ की छाप मिलती है। ‘सूक्त बाणी की सुरदास मदनमोहन की’ नाम से प्रकाशित संग्रह में इनके १०५ स्तुत पर हैं। डा० सरस्वतीदास अग्रवाल ने अपने ग्रन्थ में इनके केवल १२ पर दिये हैं और उन्हीं को प्रामाणिक माना है। पदों में बास रूप बँधी बिबाह, बँडिया होनी, बमार, प्रप द्विदोला बाबि विषय बँडित हैं। नव-सिख रास-बिलास तथा मान का भी बहुत ही सुन्दर वर्णन मिलता है।

श्री भट्ट उनकी रचनाएँ और व्यंग्य विषय

श्री भट्ट निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रथम ब्रजभाषा कवि थे। इनको निम्बार्क-चार्य की तीसरी पीढ़ी में माना जाता है। श्री भट्ट रामकृष्ण दास द्वार “श्री गुरु-परम्परा स्तोत्रम्” के अनुसार श्री भट्ट की के पूर्व साम्प्रदायिक गुरु-परम्परा में १२ आचार्य तथा १७ भक्त हुए थे।^३ ये सम्प्रदाय में ब्रजभाषा के प्रथम कवि ही नहीं बल्कि सम्प्रदाय की उत्पत्ति की आधार-विज्ञा भी माने जाते हैं। श्री विद्योती हरि लिखते हैं—“बास्तव में केवल कादम्बीरी श्री ने आचार्योचित बड़े कार्य किया जिसके कारण निम्बार्क-सम्प्रदाय की नींव सदा के लिए मजबूत हो पड़ी। आपके विषय श्री भट्ट की ने तो भाग्य सम्प्रदाय-मन्दिर पर बसवा ही रख दिया। गुरुदेव यदि भगवान् के ऐश्वर्य के पूर्ण प्रतिपादक थे तो मन्त्री भी माधुर्य के लक्ष्य मजबूत।”^४

श्री भट्ट छप्पकोटि के भक्त थे और उन्होंने अन्तिम समय तक सम्प्रदाय की आचार्य गद्दी को सुधोमित किया था। जिस प्रकार स्वामी हरिदास श्री के अनुयायी

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र गुप्त पृ० २२२।

२ ब्रजभाषा—पृ० ७१२ ७१३।

३ श्री गुरु-परम्परा स्तोत्रम्—रामकृष्णदास।

४ ब्रजभाषा की सार—श्री विद्योती हरि, पृ० १०८ (संस्करण २०११)।

उन्हें श्री रामाङ्गण की मुख्य शक्तियों में से श्री ससिता सखी का अवतार मानते हैं, उसी प्रकार इस सम्प्रदाय के लोग इन्हें श्रीहृत् सखी का अवतार मानते हैं। श्री रूप रसिक हस्त एक छप्पय मापक सम्बन्ध में प्रसिद्ध है :—

जै वर धावे धरण माप जय तिनके हरही ।

तत्त्वबर्णो ते होये हस्तमा मस्तक भरही ॥

श्री भट्ट संस्कृत तथा ब्रजभाषा—दोनों में प्रकाश पंडित से। सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि इन्होंने १०००० पर ब्रजभाषा में सिते से और ये सब गृह्यार रस के से। कहा जाता है कि भट्ट जी ने गद्दी स्वीकार करने के पूर्व अपने गुरु कदाच कारमीरी के सम्मुख उन पदों को उपस्थित किया जिसको गुरु ने कसियुग के लोगों के लिए व्यर्थ समझकर जमुना जी में फेंक देने की आज्ञा दी। जब उम १०००० पदों में केवल ६ पर उपलब्ध है जिसको 'जमुना जी का प्रसाद' कहा जाता है।^१

भट्ट जी ने ब्रजभाषा में 'छप्पय सरनापति स्तोत्र' नाम से १०० पदों की—एक रचना की थी। यही ग्रन्थ 'आदिवाणी' अथवा 'गुप्त छतक' के नाम से प्रसिद्ध है। पं० रामचन्द्र शुक्ल जी के अनुसार भट्ट जी ने 'आदिवाणी' और 'गुप्त छतक' नाम से दो भिन्न ग्रन्थ रचे थे।^२ परन्तु वास्तव में 'आदिवाणी' और 'गुप्त छतक' एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं। रामाङ्गण की 'गुप्त मूर्ति' की उपासना का प्रतिपादन करने के कारण इसका नाम 'गुप्त छतक' पड़ा और ब्रजभाषा में रचित प्रथम रचना होने के कारण 'आदिवाणी' नाम इसको प्राप्त है। साम्प्रदायिक मतानुसार 'आदिवाणी' केवल 'गुप्त-छतक' का ही विस्तेरण है।^३ जैसे कि नाम से स्पष्ट है, इसमें १०० पद हैं। उनके अलावा अष्ट में और दो दोहरे दिये गये हैं। एक में रचना-नाम का उल्लेख और दूसरे में फल-प्राप्ति की प्रार्थना है। विषय के अनुसार 'गुप्त छतक' के पद छ भागों में विभाजित हैं—

१—विद्यामय सुख

२—ब्रजमीमा सुख

३—सेवा सुख

४—सहज सुख,

५—गुप्तसुख तथा

६—उत्सव सुख।^४

इन पदों में भट्ट जी ने रामाङ्गण के अनुपम सौन्दर्य और ब्रज के आनन्दमय वातावरण में उनकी सरस लीलाओं का सुमधुर तथा सुमंस्कृत ब्रजभाषा में वर्णन किया है।

१ श्री गुप्त-छतक (द्रुमिका) पृ० ४१, ४६।

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २२७।

३ गुप्त-छतक (द्रुमिका), पृ० १। ४ ब्रजभाषापुरी तार, पृ० १२६।

हरिभ्यास जी उनकी रचनाएँ और वर्ण्य-विषय

श्री हरिभ्यास देव श्री आचार्य भट्ट के अन्तरंग और प्रमुख शिष्य थे। आप निम्बार्क सम्प्रदाय की इक्तीसवीं पीढ़ी के महान् आचार्य हुए।

भ्यास जी के सम्बन्ध में उल्लेख श्री कृष्ण रसिक में 'हरिभ्यास रसामृत' तथा स्वामिनीदास ने 'श्री हरिभ्यास हृद्भूषिणी' में किये हैं। 'श्री आचार्य पण्डित' नामक संस्कृत ग्रन्थ में भी इनकी जीवनी पर्याप्त विस्तार से दी गयी है। नामादास के भक्तमास^१ में और प्रियादास की टीका में इनकी उत्कृष्ट वैष्णवता और उद्दाम भक्ति-भावना का वर्णन मिलता है।

हरिभ्यास जी माधुर्य भाव के उपासक थे। निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत होते हुए भी उन्होंने 'रसिक-सम्प्रदाय' नाम से एक शाखा जमायी। इस मत में भगवान् के शृङ्गारी कृष्ण की उपासना की प्रथा होती है। इस शाखा के भोग 'हरिभ्यासी' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

हरिभ्यास जी ने संस्कृत में निम्नलिखित ग्रन्थ रचे थे —

१—सिद्धान्त रत्नावलि,

२—अष्टधाम

३—तत्त्वार्थ पंचक

४—पंचसंस्कार निरूपण

५—प्रेम भक्ति विवर्धिनी—श्री निम्बार्क अष्टोत्तशत नाम की टीका।

इनकी एक मात्र हिन्दी रचना 'महावाणी' है जिसकी इन्होंने अपने कुछ के भावेदानुसार 'गुप्त घटक' के भाष्य के रूप में लिखा था। 'गुप्त घटक' एक साधारण ग्रन्थ है तो 'महावाणी' काव्य-गुणों से शोभित एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें राधाकृष्ण की मित्य-विहार सीमार्गों का बड़ा भाविक और हृदयस्पर्शी वर्णन है जो एक मछ-कवि की आत्मानुभूति की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति है। इसमें भक्त मानसिक दशा के भाषावेष में पहुँचकर विषय के छाय तादात्म्य स्थापित कर उसमें पूर्णतः अपने को खो जाता है। 'महावाणी' की भाषा कोमल श्रवभाषा है जो सुन्दर प्रसाद गुण युक्त स्नेहादि वर्तकारों से अर्थ-यामीय मिले हुए है।

१. लखैर नर श्री सिध्द निध्द छबरज यह धारै ।

विधित बात छसार संतमुख कीरति गारै ।

कीरतिन के बृन्द संघ स्वाम सनेही ।

ज्यों जोगेस्वर सध्द भगो सोभिन बनेही ।

धीमर्दु चरन रज करति कै सकल सुधि जादी नई ।

श्रीहरिभ्यास तेज हरि भजन-बल देवी को बीसा रई ।

हरिष्मास भी पदों में अपना नाम 'हरिष्मिया' रखते थे। इनके पदों की रचना मुक्त होने पर भी उसका आस्थादन प्रासंगिक रूप में किया जा सकता है। श्री महाबाहो' में पाँच मुख हैं —

१—सेवा २—उत्सव ३—मुरत ४—सहज और ५—सिद्धान्त।

सेवा मुख' में निरय बिहारी श्री राधा-कृष्ण की अष्टयाम सेवा का वर्णन है। प्रारम्भिक ३६ पदों में पूर्व बाबायों का 'मलियों' के रूप में स्मरण किया गया है। 'उत्सव मुख' में निरय बिहार के नैमित्तिक उत्सवों का आनन्द का वर्णन है जिससे सच्चियों को निरय महीन मुख का अनुभव होता है। 'मुरत मुख' राधा और कृष्ण के परस्पर एक-एक के मुख सागर में निमग्न रहने का वर्णन है। 'सहज मुख' में स्वाभाविक प्रेमावस्था में बिमोर होने का वर्णन है। श्रीकृष्ण अपना बाह्यादिनी शक्ति श्री राधा रानी के साथ निरय-बिहार का मुख मुन्दावन धाम में अनुभव करते हैं। 'सिद्धान्त मुख' का विषय अत्यन्त पम्मीर है। इसमें कृष्ण परम के सिद्धान्तों का जैसे उपास्य तत्त्व, धर्म तत्त्व, सती नामावली आदि का वर्णन है। इनके अनुसार अपार माधुर्य की मूर्ति सौन्दर्य रख-सिम्भु श्री सर्वेश्वर कृष्णचन्द्र ही एक मात्र परात्पर तत्त्व हैं और त्रिगुण निराकार ब्रह्म उस सीमा नायक के चिन्त मात्र हैं। 'सकी नामावली' में प्रधान सगियों तथा उनका उनामों की वर्ण है। संक्षेप में यही 'महाबाहो' का अर्थ-विषय है।

हिन्दी के कृष्ण मल्ल कवियों में हरिष्मास जी का सम्मानपूर्व स्थान है। श्री बलदेव उपाध्याय ने टीका ही लिखा है —

"निम्नांक महाकवियों में श्री हरिष्मास देव जी का वही स्थान है जो बल्लभ मठानुयायी कवियों में मूरदास जी को प्राप्त है। दोनों ही हिन्दी कविता-कामिनी के कसेवर की घोषित करने वाले दो रत्न हैं तथा अपने भक्ति-सम्प्रदाय के आगम्य मान हीरक हैं।"

परशुराम देव उनकी रचनाएँ और खण्य विषय

परशुराम देव हरिष्मास जी के हादस शिष्यों में सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। बड़े मल्ल होने के साथ ही एक श्रेष्ठ कवि भी हैं। ये सगुणोदासक तो थे ही। परशु त्रिगुण ब्रह्म पर भी कबीर की भाँति बाध्य-रचना रहने की है। इनके ११ पदों का पठा जाता है —

१—विधि सीता २—बार सीता ३—बाबनी सीता, ४—विप्रमतीसी ५—जाय सीता ६—परावनी ७—रामरचनाम सीता निधि ८—सौख निषय सीता ९—हरि सीता १०—सीता समझी ११—जगज सीता १२—निज कर सीता १३—निर्वाण।

प्रथम चार ग्रन्थ विषय और नाम-साम्य की दृष्टि से कबीर के कहे जाने वाले इन्हीं नाम वाले ग्रन्थों से कुछ मिलते-जुलते हैं। 'नाथ सीता' में महापुरुषों के नाम दिये गये हैं। 'हरिमीता' में भगवान् की सीताओं का दार्शनिक विवेचन है। 'नक्षत्र सीता' में नक्षत्रों का दार्शनिक निरूपण है। 'निज रूप सीता' में भगवान् के स्वरूप का विवेचन है। 'निर्वाण' में संसार की सारहीनता का परिचय देकर संसार में त्याग और भक्तिक मक्ति का उपदेश दिया गया है। इन १३ ग्रन्थों का संप्रह ही 'परशुराम सामर' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें २२०० श्लोक और छन्द छन्द और १०० पद हैं। यह अभी अप्रकाशित है और इसकी एक हस्तलिखित प्रति 'समेनाबाद' में सुरक्षित है।

रूप रसिक ओ 'उनकी रचनाएँ' और ग्रन्थ-विषय

निम्बार्क सम्प्रदाय में श्री रूप रसिक भी एक महान् भक्त दार्शनिक और धर्म प्रचारक के रूप में प्रख्यात हैं। इनके जीवन-कृत पर विशेष विवरण कुछ नहीं मिलता।

रूप रसिक की तीन रचनाओं का परिचय हिन्दी-ब्रह्म में मिलता है।^१

१—बृहदोत्सव मणिमाला

२—हरिभ्यास यशामृत और

३—नित्य बिहार पदावली।

'बृहदोत्सव मणिमाला' एक बृहत् ग्रन्थ है जिसके पदों की संख्या १११४ है।^२ इसमें ब्रह्म के अतिरिक्त वस्तु व्यवहारों का भी वर्णन है। परन्तु विशेष रूप से राधा-कृष्ण के जन्म मंगल बधाई नित्य वस्तु, होरी झुला आदि समस्त उत्सवों का ही विषय वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह 'महावाली' के 'उत्सव सुख' का अनुकरण कर लिखा गया है। यद्यपि इन दोनों में वैदिक और वायिक उत्सवों का वर्णन मिलता है तो भी 'बृहदोत्सव मणिमाला' में वैदिक उत्सवों को प्रधानता दी गई है।

'हरिभ्यास यशामृत' में पुनः-महिमा वर्णित है। इसमें कृष्ण भक्ति के स्वरूप पर भी बनेक पद श्लोक और श्लोकिका मिलती हैं।

'नित्य बिहार पदावली' में १२० पद हैं, जो नित्य-कृष्ण-जीता पर लिखे गये हैं। ब्रजसीता के पद इसमें नहीं हैं।^४

स्वामी हरिदास 'उनकी रचनाएँ' और ग्रन्थ-विषय

हिन्दी ब्रह्म-नाथ को अर्जुन करने वाले कविरत्नों में सली-संप्रदाय के

१ निम्बार्क-माधुरी, पृ० ७४ पृ० ७५।

२ बही पृ० १११।

३ बही पृ० १००।

४ बही पृ० १४।

प्रवक्तृ स्वामी हरिदास का एक महत्वपूर्ण स्थान है। स्वामी जी के जन्म-स्थान जन्म संवत्, माता पिता गुरु आदि के विषय में विद्वान् एक मत नहीं हैं।

स्वामी हरिदास जी का कवितावास संवत् १६०० और १६४४ के बीच पड़ता है। इनकी सम्पूर्ण काव्य रचना पदों के रूप में ही मिलती है। स्वामी जी सिद्धहस्त गायक थे ही अतः इनके पद विविध राग-रागिनियों में गाने योग्य हैं। इनकी रचनाओं के विषय में विद्वानों में मतभेद नहीं है। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार इनके अनेक संग्रह प्राप्त हुए हैं जिनमें 'हरिदास जी की बानी' तथा 'हरिदास जी के पद' मुख्य हैं।^१ ५० रामचन्द्र गुप्त ने इनकी तीस रचनाओं का उल्लेख किया है —^२

१—हरिदास जी की ग्रन्थ

२—स्वामी हरिदास जी के पद तथा

३—हरिदास जी की बानी।

मिथम्बुओं में और एक ग्रन्थ 'मरचरी बैराम' को हरिदास जी कृत माना है।^३ परन्तु इनमें से उपलब्ध होने वाली केवल ही रचनाएँ हैं। पहली रचना सिद्धान्त के पद हैं और दूसरी 'केसिमास'। ये दोनों निम्बार्क माधुरी में प्रकाशित हैं। 'सिद्धान्त' के पदों की संख्या १८ है और 'केसिमास' के पदों की संख्या १०८ है। पाण्डे इन्हीं दो रचनाओं का उल्लेख डा० दीनदयालु गुप्त ने 'साधारण-सिद्धान्त और रास के पद' से किया है।^४ 'केसिमास' में कुल रूप राधाकृष्ण के निरव-विहार प्रदर्शित, मान दान होसी, रास आदि विषय वर्णित हैं।

विद्वत्स विपुलदेव इनकी रचनाएँ और वर्ण्य विषय

हरिदासी सम्प्रदाय में जो विद्वत्स विपुलदेव का नाम बहुत प्रसिद्ध है। परन्तु इनके जीवन-कृत पर बहुत कम विवरण उपलब्ध है।

श्री विद्वत्स विपुल की रचना स्पष्ट पद हैं जो श्रीराम संग्रहों और राग कल्पद्रुम में प्राप्त होते हैं। इनके ४० पदों में २६ पद 'निम्बार्क माधुरी' में दिये गये हैं।^५ इन पदों के द्वारा उन्होंने स्व सम्प्रदायवर्तित परम्परागत रस-सिद्धान्त एवं उपन्यास तत्त्व की परिपुष्टि की है। इन पदों में स्वामी हरिदास जी के 'केसिमास' का सार

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (चतुर्थ सम्स्करण)

—डा० रामकुमार वर्मा, पृ० २६०।

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास—४० रामचन्द्र गुप्त पृ० १८६।

३ मिथम्बु बिनोद—पृ० ३०२।

४ सप्तशत और अष्टम सम्प्रदाय (भाग १)—डा० दीनदयालु गुप्त पृ० ६६।

५ श्री विद्वत्स विपुल प्रताप अग प्रपट तथा अब तत्क रवि।

आलिस पद रसमय विरचित गायो विविरत एतक छवि॥

—निम्बार्क माधुरी, पृ० २२४।

निरूपित है। राधा-कृष्ण के नित्य-विहार भूता मान शान मोंक-झोंक आदि विषय वर्णित हैं।

मीराबाई उनकी रचनाएँ और वर्ण्य-विषय

कृष्ण भक्ति मीराबाई हिन्दी की सबसे अधिक प्रसिद्ध कवयित्री हैं। इनके ऊपर नयी-पुरानी अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें मीरा का जीवन-वृत्तांत मिलता है। नामादास हस्त 'मक्तमास ५४ वैष्णवकी की बातों २४२ वैष्णवकी की बातों' राधबदास हस्त 'मक्तमास' आदि में भी मीरा सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। मीरा के वर्ण्य-संबन्ध, निबन्ध-संबन्ध आदि के विषय में बिद्वान् एक मत नहीं हैं।

मीराबाई के नाम से निम्नलिखित रचनाएँ बछायी जाती हैं :—

- १—मरली की रो माहेरो
- २—पीठ-गोबिन्द की टीका
- ३—राम गोबिन्द
- ४—सोरठ के पद,
- ५—मीराबाई की ममार, और
- ६—गर्वा पीठ।

परन्तु 'राम गोबिन्द तथा 'राम सोरठा' के केवल नाम मात्र मिलते हैं। 'मरली की रो माहेरो' मीराबाई की रचना नहीं मान्य पड़ती है। इनके पदों में निर्गुण वृद्धाचार हृद्योप सूफी प्रेम-उत्सव इत्यादि समकालीन विचार-धाराओं का प्रभाव भी न पड़ता है। इनकी ब्रजभाषा में राजस्थानी का प्रभाव है। कृष्ण से सम्बन्धित पदों में कृष्ण के प्रति मीरा के प्रेम बिह्व, मिलन आत्म-निवेदन आदि के भाव अभिव्यक्ति हैं। कुछ पद स्वचरित सम्बन्धी भी हैं।

रहीम उनकी रचनाएँ और वर्ण्य-विषय

अमुरीय सातताना^१ अकबर के दरबार के प्रेष्ठ कविराजों में से है। बहुत फजल अमृत कादिर, बहादुरी अमृत बाखी आदि मुत्समान इतिहासकारों के ग्रन्थों में रहीम क जीवन-वृत्त सम्बन्धी विवरण विस्तार से मिलते हैं। ये इतिहास-प्रसिद्ध कवियों के पुत्र थे।

१ हिन्दी के कुछ इतिहासकारों ने हिन्दी भाषा के दो रहीम कवियों का परिचय देने का प्रयास किया है। शिवातह सगर ने 'शिवातह सरोज' में प्रसिद्ध कवि अमुरहीम सातताना के असादा और एक रहीम का उल्लेख किया है जिसके समर्पण में मिनारोबात का एक छन्द दिया है। इसके आधार पर मिश्रकृतियों में भी हिन्दी के दो रहीम कवि माने हैं परन्तु सातताना एक ही व्यक्ति थे और वे अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कवि रहीम ही हैं। ये संपूर्णप्रसार ने यह सिद्ध किया है।
—अकबरी दरबार क हिन्दी कवि पृ० ११५।

पं० रामचन्द्र मुक्त ने रहीम की निम्नलिखित रचनाएँ बटायी हैं —^१

१—रहीम बोहाबली या सतसई २—बरबै नायिका मेव ३—गुज़ार सोरठ, ४—मदनाष्टक ५—रास पंचाध्यायी ६—नगर घोमा ७—फुटकत बरबै ८—फुटकत कवित्त सवै, ९—रहीम काव्य १०—खेटकौतुम् ।

इनके ग्रन्थों में डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार 'रहीम बोहाबली' बरबै नायिका, 'मदनाष्टक' 'रास पंचाध्यायी' और 'गुज़ार सोरठ' प्रसिद्ध हैं।^२ बोहाबली में प्रारम्भ में संवा-स्तुति है। भक्ति, नीति, उपदेश आदि विषयों की वर्णना है। रहीम की रचनाओं में 'मदनाष्टक' और 'रास पंचाध्यायी' दोनों ही कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत आती हैं। 'मदनाष्टक' में केवल आठ चौपे हैं और 'रास पंचाध्यायी' में केवल दो पद ही उपलब्ध हैं।^३

'मदनाष्टक' रचना में कृष्ण की मुरली के व्यापक प्रभाव कृष्ण-सौन्दर्य से उदीप्त गोपी-श्रम-सावना, गोपियों की बिलसता और कृष्ण से मिलने की तीव्र आकांक्षा आदि का वर्णन है। "यह सम्पूर्ण वर्णन विप्रर्णम गुज़ार के अन्तर्गत स्मृति-संचारी के ही रूप में हुआ है। गोपियों में कृष्ण का बड़ी-नाद, उसकी रूप माधुरी तथा उनकी मधुर बात-बोल तथा बोली ने उनका निरुद्ध को और भी उदीप्त कर दिया है और वे कृष्ण से मिलने के लिए सात्तामित्र हो उठती हैं। रहीम के पदों में कृष्ण का रूप-सौन्दर्य का वर्णन मधुर ब्रजभाषा में हुआ है। पदों की सज्ज-योजना सुन्दर और संवितारमय है। भाव और भाषा—दोनों के दृष्टिकोण से ये पद मूरानम के पदों से मिलते हैं। कवित्त और सर्वगों में कृष्ण का बात-कथन-वर्णन उनके गुणों का कथन और साधारण नीति तथा धिया का विषय भाव है।"^४

मरोसमबास उनकी रचनाएँ और वष्य-विषय

मरोसमबास केवल एक छोटी रचना के पद पर हिन्दी के पद्य कवियों की पंक्ति में स्थान पाने वाले अग्रिमिय कृष्ण-भक्त थे।

मरोसमबास के दो ग्रन्थ बड़े जाते हैं—'मुद्रामा बरिब' और 'द्रुब बरिब'। केवल 'मुद्रामा बरिब' प्राप्य है। 'द्रुब बरिब' अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। 'मुद्रामा बरिब' बहुत छोटी रचना होने पर भी इसकी सरस और खेष्ट है कि उसी ने कवि को जमर बना दिया। यह 'बरिब-काव्य' है जो बरान बर्ग में 'हिन्दी कृष्ण-काव्य-सौत्र' में सर्वश्रेष्ठ है। इसकी कथा भीमरमायन के वर्णन स्कन्ध पर आधारित है। यह

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं० २०१४) पृ० २०२।

२ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (चतुर्थ संस्करण)

—डा० रामकुमार वर्मा पृ० १००।

३ रहीम रत्नावली—माधवलकर यात्रिक द्वारा सम्पादित पृ० १२।

४ घरबरी बरबार के हिन्दी कवि—डा० सरसुन्दराद अग्रवाल, पृ० १०१।

एक बाळ्य-काव्य है, जिसमें दोहा, सबैया, और कवित्त छन्दों में सम्बद्ध रूप से कृष्ण-सुखामा मिश्रण की कथा का वर्णन है। छन्दों की संख्या १२१ है। इसकी भाषा प्रवाहमयी एवं सरल है और घंसी आकर्षक है, जिसने अन्य कवियों को इसी के अनुकरण पर 'सुखामा-वर्णन' लिखने की प्रेरणा दी।

कृष्ण-काव्य-जगत् में इसकी विशेषता यह है कि यह राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन न कर, द्वारकावीर्य भीष्मक के हृदय की कोमलता दयाशीलता और सुखामा के साथ उनकी समिद्ध मिश्रता का परिचय देता है। इसमें तीन हृदय के बड़े सजीव चित्र अंकित हैं।

तृतीय अध्याय

“मध्ययुगीन कण्ठ-मक्ति-साहित्य

को

प्रभावित करने वाले ‘प्रबन्धम्’ के तत्त्व”

मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य

को

प्रभावित करने वाले 'प्रबन्धम्' के तत्व

तमिळ-प्रदेश में छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक भक्ति का जो तीव्र आन्दोलन आया उसमें आठबारों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रथम अध्याय में हम यह दिखा चुके हैं किम-किन्त परिस्थितियों से तमिळ-प्रदेश में भक्ति-आन्दोलन का आदिर्भाव हुआ और उसमें आठबारों की दैन क्या थी? उक्त भक्ति-आन्दोलन की जन-आन्दोलन के रूप में व्यापक और विघाल बनाने का पूरा-पूरा योग्य आठबारों को है। आठबार भक्तों ने भक्ति-मार्ग को ही ईश्वर-प्राप्ति का सर्वमुत्तम और राख मार्ग घोषित किया। आठबारों के भक्ति-ग्रन्थान गीतों में एक अद्भुत शक्ति थी जिसने तमिळ-प्रदेश की समस्त जनता को भक्ति-मार्ग पर आकृष्ट किया। उन्होंने ही भक्त आठबारों के घरम और मधुर गीतों को गा-गाकर आत्म-विभोर हो जाते थे। बहु युग भक्ति के भावनेय का युग था और भक्ति ही उस युग की सबसे ऊँची आवाज थी। 'विजयी की समर' के समान आठबारों का भक्ति-सन्देश समस्त दक्षिण भारत के कोने-कोने में पहुँच गया। आठबारों द्वारा प्रसारित भक्ति की धारा नवी शताब्दी के बाद भी अम्याहत गति से प्रवहमान रही।

पहले कहा जा चुका है कि छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का काल तमिळ-साहित्य के इतिहास में भक्ति-काल का नाम से अभिहित है। तमिळ को छोड़कर भारत की प्रायः सभी आधुनिक भाषाओं का बिना नवी शताब्दी के अस्तित्व ही हुआ है। दक्षिण की अन्य भाषाओं में भी भक्ति-साहित्य का आदिर्भाव अविकारित नवी शताब्दी के पदचार् ही हुआ है। नवी शताब्दी से लेकर सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी तक के साहित्य को 'मध्ययुगीन साहित्य' को कहा जा रही है। तमिळ तर समस्त भारतीय आधुनिक भाषाओं के भक्ति-साहित्य का काल इस समय युग में ही पड़ता है।

१. 'आचार्यर विषय प्रबन्धम्'—आठबारों के पदों का संग्रह।

यह देखा जा चुका है कि छठी सताब्दी से लेकर नवीं सताब्दी तक भक्ति का जो शक्तिशाली आन्दोलन तमिळ-प्रदेश में जमा उसने तमिळ में उच्च कोटि के भक्ति-साहित्य को जन्म दिया। तमिळ के इस भक्ति-साहित्य ने दक्षिण की अन्य सगोत्र भाषाओं के भक्ति-साहित्यों को प्रभावित किया हो इसमें शक्यता की बात तनिक भी नहीं है। बाळ्यारों के पश्चात् आने वाली भाषाओं की परम्परा ने मध्ययुग में भक्ति-आन्दोलन को वैश्यापी बना दिया जिसके फलस्वरूप भारत की विभिन्न भाषाओं में भक्ति-साहित्य का निर्माण हुआ। तमिळ-प्रदेश में छठी सताब्दी से लेकर नवीं सताब्दी तक के काल में जन-आन्दोलन के रूप में जिस भक्ति-आन्दोलन के वर्णन होने हैं, ठीक उसी प्रकार के भक्ति-आन्दोलन की झंझी मध्ययुगीन तमिळ तर समस्त भारतीय भाषाओं के भक्ति-साहित्यों में मिलती है। इस प्रकार बाळ्यारों का भक्ति-साहित्य 'प्रबन्धम्' भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ ठहरता है।^१ हमारा उद्देश्य यह स्थापित करना नहीं है कि भारतीय भाषाओं के मध्य-युगीन भक्ति-साहित्यों को प्रभावित करने वाला एक मात्र स्रोत 'प्रबन्धम्' है। कई अन्य स्रोतों से भी प्रभावित किया होगा। परन्तु 'प्रबन्धम्' का जो प्रभाव अन्य साहित्यों पर भक्ति-आन्दोलन के मूल ग्रन्थ के रूप में पड़ा है, वह निर्विवाद है—चाहे तो वह प्रभाव असाधारण रहा हो चाहे उस प्रभाव के माध्यम अनेक हों। 'प्रबन्धम्' अतिशय शक्तिशाली आचार-यज्ञ और विचार-यज्ञों से प्रभावित भाषाओं द्वारा जमाये गये विभिन्न भक्ति-सम्प्रदाय तथा उनके अन्तर्गत स्थित भक्ति-साहित्य इसके प्रमाण हैं।

मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य को विवेचन कर कृष्ण भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले प्रबन्धम् के तरबा का सामान्य विवेचन प्रस्तुत करना ही यहाँ हमारा उद्देश्य है। इन तत्त्वों का प्रभाव मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण-भक्ति-साहित्य पर भी देखा जा सकता है, जिसका विवेचन आगे के अध्यासों में किया जायगा। 'प्रबन्धम्' भक्ति-

- १ 'इत प्रकार प्रबन्धम् भक्ति-आन्दोलन का प्रादि ग्रन्थ बन गया। इसी तक प्रागवत कुराण ही भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ समझा जाता है। किन्तु हमारा अनुमान है कि इस आन्दोलन का मूल ग्रन्थ प्रागवत नहीं प्रबन्धम् है। यह इस कारण कि यद्यपि प्रागवत और प्रबन्धम्—ये दोनों ग्रन्थ एक ही समय में लिखे गये, फिर भी प्रबन्धम् की बहुत-सी कविताएँ दूसरी-तीसरी सदी से प्रचलित जाली या पड़ी थीं। साथ ही यह भी विचारणीय है कि प्रबन्धम् की कविताएँ जनता की भक्ति-साधना की सीधी अभिव्यक्ति हैं। किन्तु प्रागवत की रचना पांडित्य के स्तर पर की गयी है। प्रबन्धम् भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ क्यों माना जाय ? इसका संकेत भी प्रागवत ही देता है, क्योंकि उसका भी मत है कि भक्ति का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था।'

—संस्कृत क चार अध्याय (द्वितीय संस्करण) : श्री रामपारीनिह 'विनकर'

मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले 'प्रबन्धम्' के तत्व] १५७

प्रधान ग्रन्थ है। उसके प्रत्यक्ष के मूल में भी भक्ति का प्रचार ही था। मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले प्रबन्धम् के भक्ति-तत्वों^१ को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है —

१—सामान्य तत्व २—विशिष्ट तत्व

सामान्य तत्वों के अन्तर्गत हम उन तत्वों को लेंगे जिन्होंने सामान्य रूप से मध्ययुगीन भारतीय भक्ति-साहित्य को प्रभावित किया है। विशिष्ट तत्वों के अन्तर्गत हम मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति-साहित्य का प्रभावित करने वाले तत्वों को विशेष रूप से लेंगे। सामान्य भक्ति-तत्व तो सगुण भक्ति साहित्य के अन्तर्गत ही नहीं बल्कि निरगुण भक्ति-साहित्य के अन्तर्गत भी मूलभूतिक रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। ये तत्व भारतीय भक्ति-साहित्य में केवल 'प्रबन्धम्' से ही गये हैं यह बात नहीं है। 'प्रबन्धम्' भी स्वयं वेद तथा गीता से प्रभावित है। परन्तु 'प्रबन्धम्' का महत्व इस बात में है कि उसके भक्ति-बान्धन के विशिष्ट सम्दर्भ में इन तत्वों पर सर्वाधिक जोर दिया और उन्हें भक्ति के आवश्यक तत्व बताया। इन सामान्य तत्वों में परवर्ती भक्ति-साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कुछ तत्वों को प्रमुख रूप से लेंगे —

१—भक्ति का सर्वोपरि महत्व

२—ज्ञान-महिमा

३—स्तुति

४—शरणार्थी अवस्था प्रपत्ति

५—गुरु-महिमा

६—सहस्रं

७—वराध्य

१ भक्ति का सर्वोपरि महत्व

भारतवर्ष में अतिप्राचीन काल से संसार-सुख से दूरकर भुक्ति-साध करने के तीन प्रधान मार्ग प्रचलित रहे हैं — ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग और भक्ति-मार्ग। वेद और काल की परिवर्तिष्ठितियों के अनुसार कभी किसी मार्ग का प्राधान्य रहा है और कभी किसी का। आखिर भक्तों के समय तक ज्ञान-मार्ग और योग-मार्ग (कर्म-मार्ग) जन-साधारण के लिए असाध्य जान पड़ने लगे थे। आखिर भक्तों से भक्ति-मार्ग को इतना आभावादा और सुगम बना दिया कि लोगों ने इसे बड़ी सरलता से अपना लिया

१ केवल भक्ति-तत्वों के वर्गीकरण के विषय में डा० बिजयनाथ मुखर्जी के 'मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले श्रीमद्भागवत के सामान्य तत्व' नामक निबन्ध से सहपता ली गयी है।

—धर्मनिरपेक्ष भारतीय अखिल भारतीय विश्वविद्यालय के हिन्दी-अङ्ग्रेजी विभाग की मासिक पत्रिका पृ० ६८-६९।

यहाँ तक कि कर्म और ज्ञान-भागों में भी भक्ति का साधन रूप में प्रविष्ट कर दिया गया। "कर्म और भक्ति, ज्ञान के साथ साधन-रूप भक्ति और योग के साथ मूल की भेदा-रूप में भक्ति इस प्रकार अन्य भागों में भी भक्ति का समन्वय हुआ। स्वतंत्र रूप से ही भक्ति-मार्ग इतना प्रचलित हुआ कि इसकी लहर ने बलित से उठकर सम्पूर्ण उत्तरी भारत को आप्लावित कर दिया।"^१

प्रबन्धम् में भक्ति की महत्ता सर्वत्र घोषित की गई है। सभी आठव्वारों में भक्ति को ही मुक्ति-साधन का एक मात्र उपाय बताया है। जो भक्ति नहीं करता उसका जन्म भेदा ही व्यर्थ है। पेरियाळ्वार ने यहाँ तक कह दिया है कि जो भक्ति नहीं करता वह अपनी माता के गर्भ को कर्मक पहुँचाता है।^२ सांसारिक दुःख से छूटकर परमानन्द प्राप्त करने के लिए योग तप इत्यादि सब व्यर्थ है। केवल भक्ति ही बेकूछ-प्राप्ति करता सकती है।^३ भक्ति ही मरण को जीत सकती है। अपने शरीर को माना कट पहुँचाकर पश्चिमियों को बसाकर कठिन तपस्वा करने की आवश्यकता नहीं।^४ मन में आकर पंचाभि मध्य बैठकर योग में सीन रहने से भी कोई प्रयोजन नहीं है।^५ भक्ति मात्र के उदय होने से सारा कैस दूर जाता है।

आठव्वारों के अनुसार भयबाध में अनुरक्ति ही भक्ति है। भयबाध का स्मरण मात्र करने से वह भक्त के हृदय में बास करने लगता है। भक्त तत्त्व भक्ति में ही जीन रहना चाहता है। भक्ति से जो सुख मिलता है, वह स्वर्ग के सुख से भी श्रेष्ठ है।^६ आठव्वारों के अनुसार भक्ति का फल भक्ति ही है। भक्ति प्राप्त होने के पश्चात् किसी भी बात की आवश्यकता नहीं होती। उसे पूर्णानन्द का साम होता है। कुछ विलपाळ्वार ने यहाँ तक कह दिया है— हे भयबाध! मैं स्वर्ग की इच्छा नहीं करता केवल सुन्दारी भक्ति करने रहने की मेरी कामना है।^७ अब आठव्वारों के अनुसार

१ आठव्वार और वस्तु-सम्प्रदाय (प्रथम संस्करण)—डा० बीनदयानु गुप्त
पृ० १११।

२ पेरियाळ्वार तिरुमोली ४ ४ २

३ जलमुक्कन तिरुवन्तादि, ७८

४ अनबादा उन्ननु उदिर कावलिदु
उदित्त तिरियन्मुलनेनुन नोनु
तामबादा बादा तवम् वेय्यवेडा

—पेरिय तिरुमोली १ : २ १

५ कायोनु नोनु कनियुदु, बीनु
कनु काल नुलनु मेनु कालम् ऐनु
तोयोदु निन्दु तवम् वेय्यवेडा

—वही १ २ २

६ तिरुमोली २

७ वेवमाळ तिरुमोली, ४ ६

मक्ति साधन ही नहीं बल्कि साध्य भी है। स्पष्ट है कि आठवारी में मक्ति को सर्वोपरि महत्व दिया है। मध्ययुगीन मक्त कवियों ने भी मक्ति को ही सर्वाधिक प्राधान्य प्रदान किया है और ऊपर दिये हुए आठवारी के बिचारों को पुनरावृत्ति है।

२ नाम महिमा

मक्ति के साधन में भगवान् के अनेक नामों में से किसी भी नाम के स्मरण कीर्तन तथा श्रवण का आठवारी भक्तों में भारी महत्व बताया है। आठवारी भक्तों का यह विश्वास है कि भगवान् के सहस्र नामों में से किसी भी एक का सदा मन में स्मरण तथा ध्यान करने से बिना से उसका कीर्तन-भाजन करने से और उसका कामों से श्रवण करने से मन चाली और कर्म दाय होने वाले समस्त पापों का क्षय होता है, मन में पवित्र भाव भर जाते हैं और धृष्ट की वृद्धि हो जाती है।^१ यदा से भगवान् की सेवा में संलग्नता आती है और सबसे भगवान् की मक्ति प्राप्त होती है। मक्ति से सब मुक्त की वृद्धि होती है और एतत् का साक्षात्कार होता है, तदनन्तर मोक्ष मिलता है। तिस्रों आठवारी अपने एक पीठ में कहते हैं— मैंने उक्त 'गणपति' नाम को पहचान लिया है जो पवित्रता (अष्टाशुभ) प्रदान करने वाला है। वह मन देने वाला है, भक्तों के कष्टों और दुःखों को दूर करने वाला है, भगवान् का अनुग्रह प्रदान करने वाला है, शक्ति प्रदान करने वाला है, अन्न देने वाला माता से भी अधिक स्नेह (ममता) विद्या देने वाला है वह कल्याण प्रदान करने वाला है।^२ पैरियाळवार का सुझाव है कि बच्चों को भगवान् के सहस्र नामों से एक को रचना चाहिए। नाम की महिमा अनन्त है। भगवान् का नाम बच्चों को रखने से उन्हें कुशाग्र समय भगवान् का स्मरण भी हो सकता है। इस तरह भगवान् के नामों का उच्चारण सर्वत्र हो सकेगा।^३

१ तिरुवायमोळी— १ १ : १-८

२ "कुलमतस्म येन्यम् तन्निदुम

अविपार पञ्च उपरायिनवेस्ताम्

नितन्तरयेय्युम नीळबिसुम्बु अदलम

अच्छीदु पैरिनितमळिक्कुम

अतन्तरम मद्रुम तन्निदुम

येदा तायिनुमे अयिम येय्युम

नतन्तरम बोस्ती नाम कम्बु कोटिम

नारायणायेन्नुम मायम

—पैरिय तिरुमोळी १ १ २

३ पैरियाळवार ने बच्चों को भगवान् के विभिन्न नाम रखने का उपदेश देते हुए यह सब लिखे हैं।

—पैरियाळवार तिरुमोळी, ४-६ १-१०

प्रायः सभी बाळारों ने नाम की महिमा गावी है। नाम महिमा पर बाळारों के कुछ विचार भी प्रस्तुत किये जाते हैं। (विस्तार मय से उद्धरण संक्षेप में ही दिये गये हैं।)

हमारे पार्श्व और दोषों को 'मार्गयण' नाम विष की तरह मार डालता है।^१
'सुन्दर वनस्याम भगवान्' का नाम लेने वाला कभी नरक नहीं पहुँच सकता।^२

"हे, मम ! भगवान् के नामों का उच्चारण करो, तुम्हारा उद्धार होगा।"^३

"जो भगवान् का नाम-स्मरण करता है वह उसे स्वर्ग तक पहुँचाने वाला है, स्वर्ग उसका पुरस्कार है।"^४

"जो 'नमो नारायण' नाम का उच्चारण करता है उसकी पुण्यति जैसे हो सकती है।"^५

'भगवान्' का नाम सर्वजनों को बरदान स्वरूप है। भगवान् को मूलने वाले को मैं मनुष्य की कोटि में मान नहीं सकता।"^६

'भगवान्' का नाम-स्मरण करने से जो मानव जाता है, उसकी अपेक्षा मुझे इन्द्रलोक पर वासन करने का अधिकार जिस भी बात छूटे नहीं गुना।"^७

"भगवान् की शक्ति से हम पमपय के तिर पर सवार हो सकते हैं।"^८

मृति के लिए सुख सब भगवान् के नाम के अतिरिक्त कुछ नहीं।"^९

१ "मंजुल कंठीर नमुरेय विनेकु
नारायणादेनु नामम्" — गेरिय तिरमोळी १११०

२ कम्बुकु इमिय कलमुकित वन्वन् नामने
नम्पुधिग नारायणात् तम चन्ने नरकम् पुकळ ।"
— पेरियाळ्वार तिरमोळी ४६७

३ नामम् पलचोस्ली नारायणादेनु
नामकेयात् तळेदुन मर्नेवे ।
— मुद्राम् तिरवन्तादि ८ ।

४ ज्ञान-ताळ नम्पुयंनु नारायण तम नामकळ,
तामत्ताळ मद्रुवन परेचादिनात् नामत् । — इष्टाम तिरवन्तादि, ९

५ घोट्टाम तिरवन्तादि ६२ ।

६ इन्नुवे ततिवयानपोय इन्द्रिलोकमळ म
चन्नुवे वरिनुम बेदेन धरंगनागळाले ।" — तिरुमार्ग २

७ नावनिट्टु उळि तर्किट्टामे नयन तमर तर्कळ चीवे
मज्जुननुपुनित्तुमुदत्ता । निर्म नामम् कट्टा । — तिरुमार्ग १

८ 'वैविकिन्पु चावतुम चैवम्मात् नामम्'
— नानमुत्तन तिरवन्तादि, ६९

पर बड़ा ही प्रयास बासा था। ईश्वर-मन्दिरों में आज भी उनके स्तुति-गीत गाये जाते हैं।

नम्माळ्वार, तोंडरडियोडीयाळ्वार, पैरियाळ्वार और कुमट्टेयाराळ्वार के अनेक पर भगवत् स्तुति परक हैं। कुसुमेयाराळ्वार की संस्तुत रचना 'मुकुन्दमाता' तो अष्ट स्तोत्र ग्रन्थ है ही। संस्तुत के स्तोत्र ग्रन्थों में 'मुकुन्दमाता' का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भगवान् की स्तुति करने में मनु को बिचना जानम् आता है। 'मुकुन्द माता' से जो श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं —

“अयत्तु अयत्तु देवो देवकीमन्दनोऽयम्
अयत्तु अयत्तु कुरुषो वृष्टिप्रदप्रसीपः
अयत्तु अयत्तु मेघ इयामताः कोमलांगो
अयत्तु अयत्तु वृष्णी भारतांगो मुकुन्दः”^१

“अमला ईश्वर मुकुन्द कुरुष
गोविन्द शमीवर मायवेति
वस्तु समर्पेऽपि न वक्ति कश्चित्
यहो जगतां व्यसनाभि मुकुन्दः”^२

आळ्वार भक्तों ने भगवत्-स्तवन की बड़ी आवश्यकता बतायी है। मूतलाळ्वार का कथन है कि भगवान् की स्तुति करने वाले ही जीते हैं।^३ भगवान् के गुणों की सीमाओं की स्तुति करना ही तप करने के समान है।^४ पैर राजा कुसुमेयार भगवान् की सेवा में प्रस्तुत होकर सभी स्तुति करना ही सबसे अष्ट मुक्त मानते हैं।^५ पैरियाळ्वार का कहना है कि जो जिज्ञासु भगवत्-स्तवन न करे, उसके क्या प्रयोजन है।^६ नम्माळ्वार ने कहा है कि 'स्तुति के योग्य देवता भगवान् ही हैं। मैं मनुष्यों की स्तुति करने वाले मूर्खों में नहीं हूँ। है कवि। तुम सर्वेश्वर शक्तिशाली गुण-निधान

१ मुकुन्दमाता-कुसुमेयाराळ्वार—सम्पादक एम० बी० बी० के० रंगाचारी (काशीनादा) पृ० १।

२ वही पृ० ७।

३ कडीयाळ्वार आळ्वाराम्मावो-बन्धुविष्टी
भारतन तन नामयत्तु नन्धुयन्तु एतुम ॥

—इरुटाम तिरुमन्नादि २०।

४ एति वनिम्बवन पैर इरुमुरम्।
एण्डीळुम आति मुरैतल तवम् ॥

—इरुटाम तिरुमन्नादि ७७

५ एति इन्दुम तोंडर देवडी एति बामुल पैर्नैवये —नेम्माळ्वार तिरुमोती २४।

६ पैरियाळ्वार तिरुमोती ४। १।

मयबाध की स्तुति करो ।^१ १ दोमरी आळवार ने कहा है कि मेरा मुँह मयबाध के अतिरिक्त किसी दूसरे की स्तुति नहीं करेगा ।^२

आळवारों के स्तुति-गीतों की एक बड़ी विशेषता उनमें संकीर्ण का समावेश है। संकीर्ण का प्रभाव विश्वव्यापी है। मनुष्य ही नहीं पशु संसार भी संगीत के सुस्पष्टकारी प्रभाव से बंथित नहीं है। आळवारों के स्तुतिपरक भक्ति-गीतों को गाते-गाते मनुष्य बहुत-बहुत आत्मसाक्षात्केर से नाच उठते थे। भक्ति के साथ संगीत तथा संकीर्ण के साथ भक्ति—दोनों का एक-दूसरे के सहारे घट्ट प्रचार हुआ है। डा० दीनदयालु गुप्त जी के शब्दों में 'ईसा की साठवीं तथा आठवीं शताब्दियों में जब दक्षिण भारत में धिब और बिष्णु की भक्ति के मार्गों का पुनरुत्थान और प्रचार हुआ उस समय यह कार्य धार्मिक गीता (आळवार भक्तों के तमिल-गीत-प्रबन्धम्) द्वारा अधिक मात्रा में हुआ। भक्ति के प्रचार के साथ इन सनातनियों में संकीर्ण-प्रियता लूट बड़ी। तमिल-मात्रा में उस समय के संगीत के बहुत से नमून अब भी सुरक्षित हैं। उत्तरी भारत में भी दक्षिण का धार्मिक प्रभाव आया और भक्ति आन्दोलन के साथ संगीत का भी मान बढ़ा।^३ तालम यह है कि आळवारों के स्तुति गीतों ने मध्ययुगान्त भक्त-कवियों को बहुत ही प्रभावित किया है। मध्य युग में कीर्तन मञ्जन की जो परम्परा बस पड़ी उसका मूल स्रोत आळवारों का प्रबन्धम् है। मध्य युग के हिन्दी-कृष्ण भक्त-कवियों ने भी गीतात्मक शैली को अपनाया और भगवत्-स्तवम में गीत प्रस्तुत किये।

४ शरणागति या प्रपत्ति

आळवारों के अनेक पदों में 'शरणागति तम्' पर विशेष ध्यान दिया गया है। आत्म-बोधों पर परमात्म पर प्रकट करना अपना आत्म यहीनता का अनुभव करना भगवान् को ही एक मात्र सहाय समझना और उद्धार की प्रार्थना करते उन्हा ही प्रपत्ति या शरणागति है। गीता में श्रीकृष्ण का कथन है—'हे, भारत ! सब प्रकार उस परमेश्वर की शरण जा। तू उस परमेश्वर की कृपा से ही परम धामिनी को और आनन्द स्थान का प्राप्त होगा।'^४ शरणागति में भगवान् का अनुरोध विशेष अव्यक्त है। यद्यपि भक्ति और प्रपत्ति—दोनों में भगवान् के अनुरोध और प्रेम का प्रकट होता है

१ तिरुवायमोळी, १६ ११०।

२ "बाय धवनैयन्मनु बळ्ळतायु"—श्रीराम तिरुवन्मादि ११।

३ सप्तशत और वसन्त तन्त्रप्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त पृ० २६२।

४ तपेव शरणं यच्छ तत्प्रभावेन भारत।

तत्प्रभावात्परां शान्तिं शरणं प्राप्स्यसि शरत्तम् ॥ ६३ ॥

तत्वं वर्तमानस्यैव मायेकं शरणं वज्र।

ग्रहे त्वा तव वायेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा दुष्ट ॥ ६६ ॥

और दोनों का फल भगवान् ही है तथापि दोनों में अन्तर यह है कि भक्ति में साधन विधेय का स्वीकार है प्रपत्ति में साधनानुष्ठान का स्वीकार नहीं है केवल भगवान् का स्वीकार है। प्रपत्ति में भगवत्सेवा भगवान् के नाम-जप-कीर्तन आदि निषेध नहीं लेकिन ये कार्य आवश्यक भी नहीं हैं। सामान्य रूप से शरणागति तत्त्व के अन्तर्गत स्व-दीनों का प्रकाशन भगवान् की भक्तवत्सलता पर हृदय-विश्वास उद्धार की प्रार्थना भगवान् से शरण की याचना आत्म-समर्पण आदि रूप रूप में आते हैं।^१ आत्म-सोप तथा अपनी अकिंचनता का प्रकाशन करते हुए अस्मिन्मान के त्याग दीनता तथा आत्म निवेदन सहित भगवान् से शरण पाने की आर्त्त-मुबार के कितने ही पद आठवार भक्तों ने लिखे हैं। विदर्भगी आठवार ने आत्मसोपों का प्रकाशन कर करण कसित धर्मों में भगवान् की शरण की याचना की है। इनके कुछ पदों का सार देखिए —

“मैं कुन्नी हूँ बिचिठ हूँ ध्याकुल हूँ। सांसारिक मोहबान में पड़कर मैंने कितने ही स्वर्ण दिन लो दिये हैं। विजय की कामना कर नहर पहाड़ों की इच्छा कर, मारी के मोहे-बाल में पड़कर, बचस मन से कितने दिन मैंने गप्ट कर डाले। जब

१ भक्ति और प्रपत्ति का अन्तर समझते हुए भी ए० गोविन्दाचार्य ने लिखा है :-

“One is by Bhakti or loving Him with all energy of one's own will the other by Prapatti or loving him with all the force derived from God Himself when the aspirant has resigned his own will and dispensations of Providence. In the former case (Bhakti) God does not bind Himself to save, whereas in the latter case (Prapatti) He binds Himself to save. Conditions for the former (Bhakti) are untiring devotion and unceasing worship & C., on the part of the creature—the use of self-will whereas conditions for the latter (Prapatti) are implicit trust and effacement of self-will and proneness to the complete operation of God's will alone. The former (Bhakti) is a slender stream of love proceeding from puny efforts, a creature is capable of producing in his heart and this necessarily subject of many accidents but the latter (Prapatti) is the mighty flood of Grace pouring down from God the Creator nothing withstanding the rush of the torrent.”

—“Divine Wisdom of David Samis” pp 207 209

२ ‘पांचरात्र’ (सधमो लक्षित) में प्रपत्ति के छः अङ्गों का इस प्रकार वर्णन है —

“आनुकूल्यस्य संकल्प्य प्रातिवृत्तस्य चर्जनम् ।
रत्नप्यतीति विद्याती योऽपूजैवर्ष तथा ।
अप्रवर्तिष्येपमकार्ष्यं यद्विद्या शरणागतिः ॥’

मध्ययुगीन हृदय ललित-साहित्य को प्रभावित करने वाले 'प्रबन्धम्' के तत्त्व] १६५

क्या कहें ? हे भगवान् ! मैं खोर हूँ कपटावरण धरने वाला हूँ, मरमाने मार्ग पर चलने वाला हूँ बिछाहीन हूँ, लक्ष्यहीन हूँ। अब आपकी दया की कामना करता हूँ।
—(पेरियतिरुमोळी, १ १ १५)

'भारी सौम्य पर मोहित होकर उसे ही धारणत मुख समझ कर मैं पूर्व बन बैठा। मैं अब सज्जित हूँ। आपकी धरण में आया हूँ।'
—(पेरिय तिम्मोळी १ ९ १)

'हे भगवान् ! मैं आपकी धरण में आया हूँ, मुझे स्वीकार करो।'
हे कल्याणिकान्त ! अन्त में मैं आपके पास आया हूँ। इस भक्तिजन की रक्षा करो। २

पेरियाळ्वार ने बनेक पदों में आर्त-मुक्तार की है—“हे भगवान् ! मैं आपकी धरण में आया हूँ। मेरी रक्षा करो। ३

लोहरखीपोरी माळ्वार के दम्भ तो हृदय को इवित करने वाले हैं। नइपते हुए बल हृत्त की कल्लु-मुक्तार इन पदों में सुनाई पड़ती है :—

मेरा अपना कोई घर नहीं, अपनी बसो नहीं और पूछन वाला कोई बन्धु भी नहीं। फिर भी हे कल्याणमूर्ति ! इस पाबित जीवन में आपने धरणों की मुहक धारण देने लगे प्रहृष्ट की। हे जनदयाम, भगवान् ! अब तो मैं भारी सम्पन्न करता हूँ। कोई है मुझे अबलम्ब देने वाला ?”

मेरे मन में कोई ती भी पबितता नहीं मुह से एक भी जिन वचन नहीं निश्चयता। प्रोष के कारण मैं हृत्त-मुक्ति का वचन नहीं कर पाता हूँ। विष्णु वृन्दे वसुधाधियों पर कुरी दृष्टि डालकर बटुवचन बोस देता है। हे तुलसीमाता-भारी ! मेरी गति अब क्या हो सगती है ? कहिए, मुझ पर धारण करने वाले महाप्रभु।”

१ “अम्मा ! वल्लईमेल अडिपेनै आरुकोट्टळ्ळायै”

—पेरिय तिम्मोळी, १ ९ ९

२ अट्ट न वल्लईमेल अडिपेनै आरुकोट्टळ्ळायै”

—वही १ ९ ९

३ “अम्मा ! नी एन्नं कायवेंदुम”

—पेरियाळ्वार निरमाळी १ १० ९

४ “अडिपेनै का कायियिन्ने उरुमुमुदपरिल्लै

वारिल निनपावमल्लम् आडिमेन वरममूर्ति।

कारोळीवन्मने ! कम्पने । कडवचिड्डेन,

आरुळ्ळ ? वल्लं केवळ अम्मा ! अरमयानवत्सल्ले।”

—निरमाळी १९।

५ भगतिन ओर तुलसीविन्ने वायिलोर इमोत्तिन्नम्,

चिन्तिनाय चिदुम मोक्कनै तीविळी वनमाळा।

वुनल्ल आयमार्त्तयाने । पोम्पोवुट्टित्तवर्गग।

अम्मा ! वल्लं केवळ अम्मा ! अरमयानवत्सल्ले।

कुलदेवराज्यवार ने भगवान् की धरण को ही एक मास सहारा माना है। वे कहते हैं— 'मैं बहुत कष्ट भोग रहा हूँ। तुम्हारी धरण क सिखा और कोई धरण नहीं। जिस प्रकार माठा के छुड़ होकर स्थानों पर भी शिष्ट माठा के प्रम पर ही आश्रित है उसी प्रकार हे भगवान्, मैं आप ही के अनुग्रह पर आश्रित हूँ।'^१

ऊपर के उद्धरणों से यह स्पष्ट हुआ होगा कि आठवारों ने धरणावधि तत्त्व पर कितना जोर दिया था। आठवारों की विचारधारा की पृष्ठभूमि में पनपने वाले श्री रामानुज सम्प्रदाय^२ में आगे बढकर धरणावधि या प्रपत्ति तत्त्व को लेकर शास्त्रीय स्तर पर मतभेद हुआ। एक पक्ष के लोग भगवान् के अनुग्रह को सहेतुकी मानने लगे और दूसरे पक्ष वाले उसे निर्हेतुकी मानने लगे। प्रथम पक्ष वाले 'बबकर्स' और द्वितीय पक्ष वाले 'टेम्कर्स' कहलाने लगे। 'टेम्कर्स' पक्ष वाले अपने सिद्धांतों के विशेष आधार 'प्रबन्धम्' को मानते हैं। 'टेम्कर्स' वाला की प्रपत्ति सम्बन्धी मान्यता को बिस्मी और उसके बच्चे के सम्बन्ध से और बबकर्स की मान्यता को बम्बर और उसके बच्चे के सम्बन्ध के उदाहरणों से साधारणतया समझाया जाता है। आश्चर्य की बात है कि श्री बल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में भी आठवारों की वही निर्हेतुकी अनुकम्पा वाली मान्यता स्वीकृत हुई। डा० दीनदयालु गुप्त जी लिखते हैं— 'पुष्टि मार्गीय प्रपत्ति का उदाहरण बिस्मी के बच्चे का दिया जाता है। बिस्मी का बच्चा अपनी माँ को नहीं पकड़ता। बिस्मी ही जहाँ जाती है, बच्चे को मुँह में लटकाकर ले जाती है तथा उसकी रक्षा के लिए सर्वत्र उसके पीछे छिटा करती है। उसी प्रकार भगवान् भी अघल, दीन उपामर्हीय प्रपन्न धरणावधि की रक्षा के लिए अपने कार्य और बर्षों को भी त्यागकर उसके पीछे छिटा करते हैं।'^३

सारांश यह है कि आठवारों के धरणावधि-तत्त्व से परवर्ती भक्ति-साहित्य को बहुत प्रभावित किया है।

४. गुरु-महिमा

आध्यात्मिक साधन के सभी मार्गों में गुरु की आवश्यकता और उसकी महिमा का गायन हुआ है। चाहे मनुष्य मार्ग के भक्त हों चाहे त्रिपुण मार्ग के मठ हों

- १ तन्मुपरसु तडापेत उभ शरणस्तान् धर्तबिस्मै,
बिर् बुल्लुपुम मलपौळिन कृळ बिदुवकोद्दम्मानै ।
धर्तबिगत्तान ईश्वराम् अकदिस्तिनुम अद्बळत्तन
अळळ निर्मगैयळम् पुळ्ळिवियुवै पोम्बुन्नै ।'

—पेरमाळ तिरुमोळी ५. १।

- २ प्रस्तुत प्रकरण के "आठवारों के प्रति श्री रामानुजाचार्य का आश्रय" शीर्षक वाले परिशिष्ट (परिशिष्ट ४) में इस विषय का विस्तार से विवेचन है—देखें।
- ३ अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त पृ० १७०-१७१।

चाहे हठयोगी साधक हों चाहे सूफी प्रेमी—समा ने मुक्तकंठ से आध्यात्मिक माधना में गुरु की आवश्यकता मानी है। गुरु आध्यात्मिक जीवन का पथ प्रदर्शक है। अज्ञान निमिर में गुरु ज्ञान-दीपक है। गुरु की सहायता के बिना मन का मैल दूर नहीं हो सकता और परमात्मा की प्राप्ति असम्भव है। गुरु की कृपा आत्मा को परमात्मा से मिलाने के रास्ते पर ले जाने वाली है। गुरु ईश्वर के सहस्र आदर्शों में है। कृष्ण मूर्तों ने ही गुरु को ईश्वर से भी अधिक पूज्य बनाया है। आठवारा के अनेक पत्रों में गुरु की महिमा पायी गयी है। मधुर कवि आठवारा की एक मात्र रचना 'कृष्णानुष्ठुपिस्ता' का शब्द विषय ही गुरु-भक्ति है। मधुर गुरु को खोज में भटकने वाले मधुर कवि गम्माठवार को गुरु-रूप में पाकर अपने जीवन को धन्य समझते हैं वे गुरु को ईश्वर से भी श्रेष्ठ मानते हैं और गुरु की सेवा को अपना परम धर्म मानते हैं। उनका मत है कि गुरु सगुरु-स्वरूप है। उने अपना शरीरदि सवम्ब निवेदन करत हुए सर्वेश अनुगमन करत हुए, सर्वेश अनुगमन करते हुए अग्रिम गुरु सेवक के समान दिन रात गुरु की सेवा में लगे रहना चाहिए। गुरु-सेवा से सर्वेश्वर समुपलब्ध हो जाते हैं। मधुर कवि ने अपने कथन से ही नहीं बल्कि अपने कर्मों द्वारा भी गुरु-भक्ति की महिमा साबित की है। मधुर कवि गुरु की स्तुति में कहते हैं—

"गुरु (गम्माठवार) का नाम लेते ही मेरी बिह्वल भवत आत्मादन का सा आनन्द प्राप्त करती है।" १

बिद क गुरु से गुरु तन्मा को गुरु ने मुझे उरसता म समझया। श्रेष्ठ गुरु (गम्माठवार) की दासता स्वीकार कर मैं अपने का धन्य समझता हूँ। २ मुझ में बास करने वाले लोगों को गुरु (गम्माठवार) ने दूर किया। मैं श्रेष्ठ गुरु की महिमा रिखा रिखा म फेना दू गा। मैं गुरु की कृपा को याचना करता हूँ।

—(कृष्णानुष्ठुपिस्ता—७)

"पेरियाठवार ने कहा तक कहा दिया है कि निर्मल तथा सरगुणों ने विनूयित गुरु की कृपा पाकर उनके निर्दोषगुणों भयवान् की स्तुति नहीं करने वाला अपनी माँ के धर्म को कर्मक पहुँचाता है।" ३

१ " " " " " " " "

गन्धर्व गुरुद्वार गम्भीरमुद्राल
कृष्णानुष्ठुपिस्ता समुद्रम एतादृशः।"

—कृष्णानुष्ठुपिस्ता १

२ "मिह क बैदियर बैदलमुद्रपोरत
मिहप्यादी एम्बेकुठ निवर्तितान
तकपीर तदकोपन एगम्बिचु पाठ
गुरुद्वारत गद्विर्म पयनेयु । —पही ६

३ पेरियाठवार तिरमोली — ६४-२

तम्माळ्वार ने भी गुह की महिमा पर अनेक पद लिखे हैं। चाहे मुर किसी भी निम्न जाति का हो—‘चांडाल’ क्यों न हो—गुह की महिमा अवर्णनीय है और उसकी सेवा करनी चाहिए।^१

मधुरकवि जैसे बमोवृद्ध शास्त्रण का निम्न जाति के मुक्त तम्माळ्वार को गुह रूप में पूजन करना उस युग में एक क्रांतिकारी कृत्या अवश्य रही होगी। स्पष्ट है कि आळ्वार भक्तों ने गुह को महारूपूर्ण स्तवन दिया है। उन्होंने साथ ही साथ मनुष्य की पहचान जाति से न कर भक्ति और ज्ञान के आधार पर मानकर जाति भेद का मिटाने का सर्वप्रथम प्रयत्न किया है। श्री रामानुजाचार्य के समय में भी आळ्वारों की उत्पत्ति का प्रभाव समाज पर पड़ा। भक्ति के क्षेत्र में गुह धिष्य क जाति-भेद को न मानने वाले आळ्वारों के उच्च भावनों ने जनता पर अमिट प्रभाव डाला। इस कारण निम्न जातियों का जो सामाजिक उद्वार सम्भव हो सका वह भारत भूमि में निश्चय ही ऐतिहासिक महत्व रखता है।^२ मध्ययुगीन भक्त कवियों ने भी गुह-भक्ति की आवश्यकता बतायी है और जाति-भेद को मिटाने का सुन्देश दिया है।

६ सत्संग

‘सत्संग’ भक्ति की उत्पत्ति एवं विकास के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित करने वाला अद्वितीय साधन माना गया है और बहुधा सत्संग और साधुसंग का उसके रूप में ग्रहण किया जाता है। भक्ति-धर्म में एकान्त निष्ठा बनी रखने के लिए साधु समागम भी आवश्यक है। ज्ञान योग और तप की तरह भक्ति की एकमात्र साधना नहीं होती वह व्यक्ति-धर्म ही नहीं है समाज-धर्म है। सामाजिक विषयों के प्रसोचनों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे समाज में रहा जाए जहाँ भक्ति विरोधी परिस्थितियाँ नहीं हों। साधु महारामाओं के साथ बैठने से आत्मा की पामित मिलती है उनके उपदेशों से साध-निष्ठा का ह्रास होता है। उनकी सेवा और अनुकरण से भवभाव के ज्ञान का साक्षात्कार होता है। गीता में श्रीकृष्ण का कथन है—“जो भक्त जन निरन्तर मुझ में मन लगाकर मुझी को प्राणा का वर्णन कर सदा मरी चर्चा

१ ‘कुसुम सांगु जातिकुम तालिनुम कीलितिमु एतनै
नमरादितिसाव चण्डास चण्डासर्लताकिमुय
वत्तसांगु चत्तरत्तवत्त मरिचवन्नवदु घासेमु उल
कत्तम्बार चट्टियार तम चट्टियार एम्मट्टियारवळे ।’

—तिरुवायमोळी, ३-७ ६

2. “—the social uplift of the lower classes to which it has led is of great value in the History of India. —“Outlines of Indian Philosophy Prof. Hiriyana p 413

करते हैं तथा आपस में बोध-विनिमय करते हैं, व निरय सुखी रहते हैं और निरन्तर मुक्त में रहते हैं ।^१

आळवार भक्तों ने सरस्वती को भगवद्-प्राप्ति का उपकरण मानकर सर्वदा भक्तों के समाज में बिराजने का आदेश दिया है । कुसरोल्लखार ने अपने राज भोग को भी त्यागकर भक्तों की मंडली में जा मिलने की अपनी तीव्र उत्कण्ठ प्रकट की है ।

अमृत सम भगवान् की स्तुति कर भगवान् को अपने अन्तःकरण में धारण कर, भगवान् का पुनः-गान कर गाते-गाते थक जाने वाले भक्तों के मस्तिष्क में जा मिलने का सामान्य मुद्दे क्या प्राप्त हो ?^२

“भगवान् की शिष्य सीमाओं का गानकर आनन्दाम् बहाकर मधुबारा से भीगने वाले भगवान् के मन्दिर के प्रांगण में गाते-गाते थोड़े भक्त की चरण धुति को अपने चेहरों पर लगाईंगे ।^३

‘निरन्तर आनन्दाम् बहाकर, आर्त-पुकार कर पुलकित होकर, भगवान् की स्तुति कर गाते-गाते भक्तों को कोई पागल कह बैठे तो कहने वाला ही पूर्णस्नेह प्राप्त है ।^४

भक्तों के बीच में ऊँच-नीच भेद के लिए कोई स्थान नहीं है । वे तो भगवान् के भक्त होने के कारण समान हैं । तोंडरकीपोड़ी आळवार ने कहा है— बोध रहित जीवन बिठाकर भगवान् के ध्यान में सर्वदा लीन रहने वाले (भसे ही नीच कुत्त के बपों न हा) जपर छुट भगवद् भक्त हैं तो उनकी पूजा करो उनकी सेवा करो । उनकी संमति करो क्योंकि वे भगवान् के समान स्तुत्य हैं ।^५

१ भक्तिभक्ता भगवत्प्राप्ता बोधयस्त परस्परम् ।

कथयन्तश्च मां नित्यं पुष्पमिदं च रमन्ति च ।^१

—गीता वेदाङ्ग अध्याय द्वाक ६

२ ‘तिष्ठद्विभिरस तेभिर्न तेभिरङ्गुर्न तिरमावुचञ्च ।

वाट्टमिल वनमाल मावर्न बालसि माल कोल जित्तमराय ।

वाट्टम जियसम्भलेत् अयर्बेत्तुम मेय्यदियारकळ तम

ईदम कथिद्वक्कुमेत् धनुकाकुम कथ पयनावते ।^२

—वेदमाळ तिरमाळी २१

३ ‘आव कोल वस्म कञ्जगीर कौटु धरगल कोयिल तिरमुवत्तु

वेव वेव तोंडर वेवरी चनुमेव एव वेन्निक्काचि वने ।^३

—वही २१

४ वेदमाळ तिरमाळी, २६ ।

५.

इति पुनस्तवर्तुलुम एम्मदियारकळजित्त

तोनुमिन् कोनुमिन् कोचमिन् ऐम्...

—तिरमाळी ४२

साधु-संगति के आदेश के साथ-साथ आठवारों में हरि-विमुख लोगों के संग त्याग का भी उपदेश दिया है। कुसरोच्चराठवार ने लिखा है —

“इस सांसारिक जीवन को शास्त्रतः (वास्तविक) मानकर इसी में सीम रहने वालों से मैं संगति नहीं करूँगा।”^१

“(पतनी कमर वाली) मुन्धर स्थियों के प्रेम-पाश में पड़े रहने वालों से संगति नहीं करूँगा।”^२

“मन की मीस को बुर कर ईर्ष्यादि बुद्धुओं को त्यागकर, पंचेन्द्रियों को कानू में रक्कड़ सर्वदा मगबद्ध-स्तवन में बने रहने वाले तथा विमुक्त भक्तों के दर्शन कर कर सख्त ?”^३

मध्ययुगीन भक्त कवियों ने भी अपने जनक पथों में सत्संग के महत्त्व को प्रकट किया है। हिन्दी के अष्टाध्यायी कवियों ने भी सत्संग-महिमा भक्त और भगवान् की एनता तथा हरि विमुख-संग-त्याग के भावों को प्रकट करने वाले अनेक पद लिखे हैं।

७ वैराग्य

भक्ति-पथ के पक्षिक के लिए सांसारिक विषयों का तथा उन विषयों से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों का त्याग कर उनके प्रति वैराग्य भाव रखना परमावश्यक है। पूर्ण ज्ञान या पूर्ण-आत्म-अवस्था में तो संसार के रागद्वयों से अपने आप छुटकारा मिल जाता है। परन्तु साधन-अवस्था में वैराग्य के अभाव को आत्मभ्रष्टा होती है। जब तक मनुष्य का मन सांसारिक विषय-आकर्षण में मीन रहता है, जब तक वह ईश्वरोन्मुख नहीं हो सकता। वैराग्यवान् के लिए अपनी समस्त इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अतिवार्त्त है। जब इन्द्रियाँ बंध में नहीं हैं तो कैसे अम्यग्रम विद्या प्राप्त हो सकती है ? आठवार भक्तों का कहना है कि जो पंचेन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता है, वही संपन्न भक्त है। सफल साधक है। क्योंकि पंचेन्द्रियाँ ही मनुष्य का सांसारिक बन्धन में बन्धन में सर्वदा डाले रखती हैं। पंचेन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना भक्ति की साधना के लिए प्रथम मोचन बताया गया है।

मनुष्य को ईश्वरोन्मुख होने में बाधा डालने वाले अनेक पदार्थ हैं जिन पर विजय प्राप्त करना ही वैराग्य है। अन्न मनुष्य नरवर शरीर से सम्बन्ध रखने वाले मृदु, घन आदि का मोक्षद्वय शारवत मान बैठता है। वह अपने घर-बार, स्त्री पुत्र

१ “निर्मित वास्तव्यं मेमेने क्लेशानुम्

वैयस्तमोदुम् कुरुवित्तं पाव ।”

—वेदमाठ तिरुमाळी १ १

२ नूनिनेरिडवार तिरत्तं निकुम्

आत्मस्तमोदुम् कुरुवित्तं पाव ।”—वर्ग १ ८

३ वेदमाठ तिरुमाळी १ ७

पशु, वन और वन्य-प्राणियों में अत्यन्त आसक्त होकर अपने को नान्यवान् समझ लेता है। उनके चरण-पीपण की चिन्ता में सर्वदा मूढा रहता है। बुद्धिसमाप्ता को जब भी नहीं छोड़ता। दिन-रात उसी में रत रहता है। अन्त में जब उसकी पंक्ति क्षीण हो जाती है और मृत्यु समीप आती है तब जाकर उसकी आँखें खुलती हैं। बुझाया उसके लिए असह्य हो जाता है। वह रो पड़ता है। तब जाकर मगवान् की धारण में आता है। आठवार भक्तों का कथन है कि बुद्धिमान मनुष्य इस नाशवान् सांसारिक सुख भोग के प्रति पहले से ही वैराग्य-भाव धारण करता है क्योंकि यह ज्ञात होता है कि इनसे बचने पर ही अध्यात्म-प्रकाश भिन्न सकता है।

हावस आठवारों में कुछ अपने प्रारम्भिक जीवन में सांसारिक विषय-वासना में मीन रहे। परन्तु जब उन्हें मान्य पड़ा कि वे सब पतार्थ नष्टकर हैं, तो वे उन सबका त्यागकर वैरागी हो गये। कुसुमेन्दराठवार तो राजकीय सुख भोग तब की तिसांजति का बार-बार छोड़कर वैरागी बन गये। तिसमें आठवार जो पारी भूत बर्कती जैसे कुकुरों से मनोप्राप्त करते थे अचानक नवम् प्रेरण पाकर सब कुछ त्यागकर वैरागी हो गये। आठवारों की जीवनिमें यह स्पष्ट बता रही है कि वे सब सांसारिक सुखों के प्रति वैराग्य भाव रखते थे और वे दूसरों को भी सांसारिक माह-वास में पड़ने से अपने को बचाने का आदेश दिया करते थे।

आठवारों के पदों में वैराग्य के अनेक साधना में निम्नलिखित विषया का विशेष रूप से निरूपण हुआ है :—

- (क) पंचेन्द्रियों पर विजय
- (ख) शरीर के मोहक रूप की निन्दा
- (ग) अर्थ-निन्दा और
- (घ) शरीर की नस्वरता का बोध।

(क) पंचेन्द्रियों पर विजय

पंचेन्द्रियाँ मनुष्य का सुमराह करने वाली हैं। ऐन्द्रिक सुख प्राप्त करने की कामना से ही मनुष्य बन्ध्या करने को भी तैयार हो जाता है। ससार में होने वाले सभी जगहों के कारण पंचेन्द्रियाँ ही हैं। इन इन्द्रियों को मुग पट्टिचान के हेतु माना पाप कर बैठता है और ईश्वर विस्मृत हो विमुक्त हो जाता है। आठवारा के अनेक पदों में इन्द्रियाँ पर विजय प्राप्त करने का आदेश भिन्नता है। इन्द्रिय दमन का अध्यात्म-पथ के पथिक के लिए अनिवार्य दर्शन के रूप में बताया गया है। सभी आठवारा ने एकचरण से साधना की है कि पंचेन्द्रियाँ पर विजय प्राप्त करने बान्धवक का मगवान् के दर्शन मिले।^१ उनका कथन है कि पंचेन्द्रियों के द्वार का

१ "अस्मिन्मनसोऽपि चादमन्तर कोऽपि धाम्

पुरिष वरिष्ठिनाम् बुद्धिना

----- पुनर्निर्माणम् एतिष्ठ ११

बन्ध करण स काम का द्वार खुल सकता है।^१ पंचेगिरियों की तुलना पाँच राजाओं से की गयी है, जो मनुष्य को कोल्हू के गड्ढे में डालकर पीसते हैं।^२ मनुष्य को इन्धिय-कनौ इन राजाओं पर विजय प्राप्त करनी है, तभी सम्प्राप्त-पथ पर बिना किसी रोक-टोक के साधक जा सकता है।

(ख) नारी के मोहक रूप की निन्दा

भारतीय साहित्य में नारी की मलना परम पुनीत मातृ-वृत्ति के रूप में की गई है। परन्तु नारी का भविर जीवन रूप मनुष्य को सम्प्राप्त-पथ से बनाया ही विमुक्त कर देने वाला है। इस कारण भक्ति-साहित्य में उसके मोहक रूप की निन्दा की गई है। भक्ति-साहित्य में नारी के मादक रूप की कबाला से साधक को निरन्तर सचेत रहने का आदेश दिया गया है। त्रिकर्मपञ्चाङ्गार में पञ्चाङ्गाप के रूप में कहा है —

‘सुगतपनी महिलाओं के रूप-आलस्य में पड़कर, अपने कर्तव्य को भूलकर मैंने गरक-मुक्त मोमने से पाप किए हैं।’^३

‘मयूर मुस्कान वाली रमणियों के सुन्दर स्तनों पर मोहित होकर नव मोवमात्रा के सम्मोह-मुक्त के पीछे पड़ा रहा। अब मैं सज्जित हूँ।’^४

अरिभुऐन्नुम वल्लभ्ठी भामयत्तर कोयु धर्मम्
चेरिन्ध वनतिनराय वैन्ने अरिभु धवन तन
वेरोवियेत्तुन वेन्नुवत्तोर कावरे
कारोने वन्धन कळ्ळन ।

— इरुष्टाम तिरुवन्दावि ७ तथा मुन्द्राय तिरुवन्दावि १२ ।

- १ ‘पुम्पुन वळिपदैत्तु अरळिळ्ळिन्ने वैन्नु
नम्पुन वळितिरन्नु काम ननु वर कोळ्ळि’^५

— तिरुवन्धविहत्तम ७६

- २ ‘तौर नवम्बिन्नी ऐन्नु नोय्युम चेळि सिद्दु तिरिक्कुमयेवरे
मेर नव गुडत्तावडत्तु वैन्निप्पाओळिन्नाय’

— तिरुवाय मोंळी ७ १४

- ३ ‘जानेय कनपडवार कयळिल परुडु मायित्तु
जाने जामाविय नरकम पुडुम कावधु चेइडेन ॥’^६

— पेरिय तिरमोळी १ ६२

- ४ “वात्किता मुदवत चिबनुवत पेरन्नीळ
बारराय वनमुर्त्तय्यवे
वेयिनेन धवने विमंयेनळरवि
वेवयन विरवि नोय्यप्पाम

(ग) अर्थ निम्ना

मनुष्य को ईश्वरसे-मुक्त होने से विमुक्त करने वाला एक प्रमुख साधन बन है। मनुष्य अर्थ के सोम में पड़कर किन्तु जान बूझ कर बैठता है। मनुष्य जब तक यह जान नहीं पाता कि बन मायावाद है अस्वायी है तब तक वह बन के मोह को नहीं छोड़ सकता। बन मगवान् के दर्शनों से उसकी आँखों को बन्द करता है। अर्थ के प्रति बनाकर्षण ब्रह्म की ओर उन्मुख करेगा। कुलसेखराळवार तथा तिरुमगै आळवार ने अपार बन राशि को त्यागकर भगवद् भक्ति प्राप्त की। नम्माळवार का कथन है कि मनुष्य को यह समझना चाहिए कि राजकीय सुख भी अस्वायी है, बन मिट जाने वाला है।^१ नम्माळवार के अनेक पदों में अर्थ के मोह को छोड़ने का आदेश है।

(घ) शरीर की तद्वरता का बोध

आळवारों का कथन है कि अगर मनुष्य अपनी देह की तद्वरता और संसार की असारता का परिचय प्राप्त करे तो वह अवश्य ब्रह्म मुक्त जीवन की ओर उन्मुख होगा। तिरुमलिकै आळवार का प्रश्न है —

यह जानकर भी कि आज नहीं तो कस इस संसार को छोड़ना ही पड़ेगा मूर्ख मनुष्य क्यों इस देह में पड़े रहते हैं ?^२ नम्माळवार के अनेक पदों में संसार की असारता तथा मनुष्य-देह की तद्वरता का बोध कराया गया है और जगमें ब्रह्मपूर्ण जीवन बिठाने का सन्देश है।^३ तिरुमगै आळवार ने अपने पदों में हुक्मों की बरगु दत्ता का बिगुण कर आदेश दिया है कि हुक्मों का कष्ट मोचन से पहले ही मनुष्य को ब्रह्मपूर्ण जीवन बिठाकर भक्ति-पथ पर आरुढ़ होना चाहिए।

एभिसेन इन्नेन एन्निनेन एन्नि
एनैय्यर कमविपिन तिरुत्त
नान्निनेन

—तिरुवायमोळी १११।

- १ 'यद्विधेर मुदियिराकि यरसरळ ताम तोळा
इडि विर मुरतगळ मुदुतियम्ब इन्नेय्यर
पोडिधेर मुळ्ळाय पोवाळळ

—तिरुवायमोळी ४ ७ १

- २ 'इमु चारल निम्मु चारल एन्नी वावम रैयवतु
होन्नी निम्मी आळवतिगमे वन्नुम नीय्यर एन्नेली ?

—तिरुवन्त्रविस्तम १६

- ३ "चंङ्गैळ्ळिन् तंयल चंङ्गुळ्ळुङ्गु ईयल
चंङ्गैळ्ळिन् चंङ्गुळ्ळु चंङ्गुळ्ळु उल्ल'।

—तिरुवायमोळी १ ७ ७

मध्ययुगीन भक्त-कवियों ने भी वैराग्य पर जोर दिया है और उसे अघ्यारम पद के पथिक के सिध्द अनिर्वाय साधित किया है। हिन्दी के अष्टछापी कवियों ने भी वैराग्य बारण करने का आदेश दिया है।

ऊपर जिन तर्कों का हमने संक्षेप में विवेचन किया है वे सामान्य रूप से मध्ययुगीन समस्त भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले 'प्रबन्धम्' के तत्त्व हैं। भक्ति आन्दोलन के विशिष्ट सम्दर्भ में आठ्वार भक्तों ने ऊपर विवेचित भक्ति तर्कों पर विशेष जोर दिया था। आठ्वारों की विचारधारा से प्रभावित होकर अपने-आपने वाले भी रामानुज सम्प्रदाय आदि भक्ति-सम्प्रदायों में वे तत्त्व न्यूनान्धिक रूप में स्वीकृत हुए हैं। विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायों के अन्तर्गत काव्य-रचना करने वाले (१५ वीं शती के) हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने भी उन तर्कों का अपने भक्ति काव्यों में स्थान दिया है और उन्हें भक्ति-पथ के आवश्यक साधनों के रूप में स्वीकार किया है।

प्रबन्धम् के विशिष्ट तत्त्व

प्रबन्धम् जहाँ विमुक्त भक्ति ने विभिन्न तर्कों का विवेचन प्रस्तुत करता है, वहाँ वह काव्य की कभी-कभी पर भी उत्तम ग्रन्थ साबित होता है। आठ्वार भक्तों ने 'प्रबन्धम्' में भक्ति-तर्कों के बीच-बीच में अपने आराध्यदेव विष्णु के विभिन्न अवतारों को और उनकी अनन्य सीमाओं का भी गायन किया है। 'प्रबन्धम्' ने भक्ति-आन्दोलन के विशिष्ट सम्दर्भ में भक्तों की सामयिक विधाया की पूर्ति के लिए कुछ भक्ति-तर्कों के अतिरिक्त अवतारी विष्णु की विभिन्न सीमाओं का काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया था। भक्तों ने प्रबन्धम् में वर्णित भगवत्सीमाओं में 'ब्रह्माण्ड छोड़कर काव्यात्मक' का भी समावेशन किया था। प्रबन्धम् में वर्णित विभिन्न भगवत्सीमाओं तथा उनके काव्योचित चित्रण ने परवर्ती भक्त कवियों को बहुत ही प्रभावित किया है।

प्रबन्धम् में विष्णु के सभी अवतारों का न्यूनान्धिक रूप में वर्णन मिल जाता है। आठ्वारों के अनुसार परब्रह्म विष्णु विभिन्न युगों में अनुयों के उद्धार के निमित्त अवतार लेते हैं। अब पृथ्वी में अपने कैल जाता है और अमान अवतार पृथ्वी को कबलित करता है तब कृपाविष्णु अवतार अपनी कल्याण को प्रकट करने के हेतु अवतार लेते हैं। मन्माठ्वार ने यहाँ तक कह दिया है कि अपने ही अंशमूर्त अवगलित जीवों को जाना बर्तन-सुख प्रदान करने के निमित्त भगवान् अवतार लेते हैं। बहने का तात्पर्य यह है कि आठ्वारों ने विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं देखा। फिर भी विष्णु के दो अवतार—रामावतार और कृष्णावतारों ने उनको विशेष रूप से आदर्शित किया। इन दोनों अवतारों में भी कृष्णावतार में उनका मन जितना रहा उतना रामावतार में गरी। श्रीकृष्ण की विभिन्न सीमाओं का उन्हींने ऐसा मनीष वर्णन प्रस्तुत किया है जहाँ उन्होंने स्वयं उन सीमाओं का अवलोकन किया हो। उनके कोमल माधुर्य और कवि-हृदय ने कृष्ण सीमाओं में ही अपनी अभिव्यक्ति की आह-धुनि देयी। अतएव उन्होंने सीमानायक कृष्ण की विभिन्न सीमाओं का रघुवर्ण

बर्णन प्रस्तुत किया और उनका भाव पत्रक स्वच्छन्द रूप से वाक्य-श्रोम में उठ सकने जिससे कि उष्ण कोटि के सरस कृष्ण-काव्य का निर्माण उनके द्वारा हो सका।

प्रथम अध्याय में हम बता चुके हैं कि कृष्ण से सम्बन्धित अनेक कथाओं को जन्म-भूमि तमिळ-प्रदेश है। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में जबकि सीता द्वारा प्रसारित भागवत-धर्म का दक्षिण की ओर आगमन हुआ, तब कृष्ण-चरित म तमिळ प्रदेश के बाल-नेत्रता 'मायोन' से सम्बन्धित अनेक कथाएँ मिल गयीं। बिष्णु के अवतार रूप में श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा हुई और उनकी विविध सीताओं का जन-मानस में प्रचार हुआ। आळवार्ता को कृष्ण-सम्बन्धी अनेक कथाएँ प्राचीन पुराणों में मिलीं। साब ही साथ आळवार्ता में सीता म प्रबन्धित अनेक कथाओं को कृष्ण चरित में मिला दिया। कल्पना का भी सहारा लेकर उन्होंने उन कथाओं में बर्णित माना सीताओं का काव्योचित चित्रण अपने भक्ति-काव्य में प्रस्तुत किया।

प्रबन्ध में कृष्ण-चरित क्रमबद्ध रूप से नहीं दिया गया है। स्मरण रहे कि 'प्रबन्धम्' एक व्यक्ति की रचना नहीं है। चौबी-पैंचबी शताब्दी से लेकर आठवीं शती शताब्दी तक का शीर्षकास में विभिन्न समयों में अवतरित भक्तों के पदों का संकलन है। अतः उसमें कृष्ण-चरित को क्रम-बद्ध रूप में प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती। यही प्रसंग हम श्रीमद्भागवत पुराण के विषय में कुछ कहना आवश्यक समझते हैं। क्योंकि भागवत पुराण को आधाररूपतया मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति-साहित्य का आधार ग्रन्थ माना जाता है। भागवत में कृष्ण-चरित क्रमबद्ध रूप में वर्णित है। उसमें भक्ति-तरंगों का शास्त्रीय विवेचन हुआ है। यहाँ कुछ प्रश्न उठ सकते हैं। क्या प्रबन्धम् भागवत से प्रभावित है? भागवत का रचना-काल क्या है? क्या भागवत प्रबन्धम् से प्रभावित है? श्रीमद्भागवत के रचना-काल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। अधिकांश विद्वान् उसे नवीं शताब्दी के बाद की रचना मानते हैं।¹ अनेक विद्वान् श्रीमद्भागवत का कई दृष्टियों के परीक्षण कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वह अवश्य नवीं शताब्दी या उसके पश्चात् की रचना है और उसकी रचना दक्षिण भारत में हुई थी। डा० हर्बर्टसाला जी दर्शा लिखते हैं :— 'यदि श्रीमद्भागवत पुराण को हम नवीं शताब्दी की रचना मानें और उसका दक्षिण-देश में सिद्धा हुआ स्वीकार करें तो उस समय की धार्मिक परिस्थितियों के ठीक क्षेत्र में श्रीमद्भागवत का विषय उत्तरता है। श्री शंकराचार्य जी का अठैत-मत प्राचीन भागवत धर्म का पोषक था। भक्ति-पद्धति में जिस नवीन तत्वों का समावेश आउधार और अहिंसा भक्तों के सम्पर्क में बढ़ रहा था उनको

1 (i) C. V. Vaidya JBRAS (1925) p. 144 ff

(ii) R. G. Bhandarkar—*"Vaishnavism, Saniam"* p. 49

(iii) Pargiter—*"Ancient Indian Historical Tradition"* p. 80.

(iv) Farquhar—*Outline of Religious Literature of India*, p. 229 ff

(v) Winternitz—*"Indian Literature"* Vol. I. p. 556

धंकराचार्य जी ने अपने मत में कोई स्वाम नहीं दिया और न उन्हीं भक्ति को ही सर्वोपरि माना। श्रीमद्भागवत पुराण में इसके विरोध में ही भक्ति की ओर उदात्त प्रतिपादित की गई है। श्रीमद्भागवत पुराण में इस बात का उल्लेख है कि कलियुग में नारायण के भक्त नहीं-नहीं होते परन्तु त्रादिक केष में जहाँ कि ताम्रपर्णी कृतमाता, कावेरी और महानदी नदियाँ बहती हैं विरोध रूप से होते। इन नदियों के जल का पान करने वालों के हृदय सुख होते।^१ इससे पता चलता है कि भागवत-पुराण की रचना के समय तमिल देश में कृष्ण भक्ति का पर्याप्त प्रचार हो चुका था।^२

श्रीमद्भागवत एक ही व्यक्ति की रचना मान्य पड़ती है। इस विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। उसमें कृष्ण-कथा क्रम-बद्ध रूप से वर्णित है और भक्ति-तत्त्वों का विवेचन शास्त्रीय स्तर पर हुआ है। भागवतकार ने अपने अपार पांडित्य का परिचय दिया है। वह सप्रसरण सुनाया गया ग्रन्थ मान्य पड़ता है। परन्तु प्रबन्धम् के एक व्यक्ति की रचना न होने के कारण उसमें कृष्ण-कथा क्रम-बद्ध रूप से नहीं मिलती। फिर भी प्रबन्धम् में भागवत-वर्णित अधिकांश कृष्ण-लीलाएँ मिल जाती हैं। प्रबन्धम् में मिलने वाले भक्ति-तत्त्वों और कृष्ण-लीलाओं को मुख्यवस्तुत्व रूप में बचवा क्रमबद्ध रूप में प्राप्त विद्या प्राप्त तो प्रबन्धम् और भागवत के बर्णन-विषय में विशेष अन्तर नहीं होत पड़ेगा। डा० विजयेन्द्र स्नातक का भी कथन है कि 'भागवत पुराण में जिस कोटि की प्रशंसिपरक भक्ति का विधान हुआ है उसके समान कोटि की भक्ति साधनी साधारणी के भाट्टकार भक्तों में प्रचलित थी। भागवत का गुणानुसार और लीला वर्णन छीक बीसा ही था जैसा भागवत पुराण में है।'^३ प्रोफेसर हूपर ने भी भाट्टकारों की भक्ति-साधना को भागवत-पुराण के समकल ठहराया है।^४ भागवत के कुछ अंश को बिद्वान् प्रगल्भ भी मानते हैं। कुछ भी हो हमें इतना कहना है कि वर्तमान रूप में श्रीमद्भागवत भाट्टकारों के समय में नहीं था। यहाँ वह कहकर कि भागवत बहुत बाद की रचना है। ईप्साव-जनों के भक्ति-भाव को टेन पहुँचाना हमारा उद्देश्य नहीं है। हमें इतना कहना है कि अगर भागवत का वर्तमान रूप उस समय मिला होता तो भाट्टकार उगम ब्रह्म नाम उद्य सक्ने से और ब्रह्म भागवत का अनुकरण कर ब्रह्म-वद रूप से कृष्ण-वर्णित प्रस्तुत करने। परन्तु ऐसा नहीं प्रतीत होता। उल्टे भागवत में कृष्ण-कथा की व्यर्थव्यर्थ रूप में और भक्ति का शास्त्रीय विवेचन देखकर ऐसा अनुमान करना पड़ता है कि भागवतकार ने अपने ग्रन्थ की भक्ति के सद्यु-ग्रन्थ

१ श्रीमद्भागवत ११।१।३८-४०।

२ सूर और जयका साहित्य (द्वितीय संस्करण) — डा० हरबंग लाल घर्म
पृ० १४०।

३ शाबाबस्तव संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य — डा० विजयेन्द्र स्नातक
पृ० १२१।

४ Hymns of Alvars—J S M. Hooper (Introduction), p. 18.

के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है और उसने किन्हीं अन्य स्रोतों को मध्य ग्रन्थों के रूप में स्वीकार किया है। उन मध्य ग्रन्थों में प्रबन्धम् भी एक हो सकता है। प्रबन्धम् के भक्ति-प्रधान पदों का प्रचार जीवी-जीवनी सताब्दी से होना भागवत में प्रबन्धम् में वर्णित सभी विषयों का प्राप्त होना तथा भागवत की रचना का दक्षिण भारत में होना हमारे अनुमान को और भी पुष्ट कर देते हैं कि भागवतकार को प्रबन्धम् की परम्परा से थोड़ा परिचय अवश्य था। प्रबन्धम् का आधोपान्त अध्ययन करने से मान्य पड़ता है कि प्रबन्धम् के रचयिताओं को श्रीमद्भागवत से प्रभावित होने की आवश्यकता नहीं थी। प्रबन्धम् में ऐसी बहुत सी चीजें मिलती हैं जो भागवत में नहीं हैं। कृष्ण की कुछ सीमाओं का वर्णन भी प्रबन्धम् में मिलता है जो भागवत में नहीं है। भागवत में 'राधा' का उल्लेख भी नहीं है, परन्तु प्रबन्धम् में 'नयिनी' के नाम से राधा का ही वर्णन है। बाद के साहित्य में राधा-कृष्ण की केसि-श्रीकान्तों का का वर्णन प्राप्त होता है वह पहले से ही प्रबन्धम् में है। तमिळ के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पी० श्री० आचार्य का मत है कि प्रबन्धम् में मिलने वाली पेरियाळ्वार द्वारा वर्णित कृष्ण की अनेक सीमाएँ भागवत पुराण से भी पूर्व की हैं।^१

प्रबन्धम् ने भागवत को कितना दिया या प्रबन्धम् ने भागवत से कितना लिया होगा—इन बातों पर मूढम रूप से कुछ कहना दुस्तर कार्य है। चूँकि शताब्दियाँ बीत गयीं अतः अब इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। फिर हमारा उद्देश्य यहाँ यह दिखाना भी नहीं है कि भागवत प्रबन्धम् से कितना प्रभावित है बल्कि प्रबन्धम् भागवत से कितना प्रभावित हुआ होगा। यह दोष का कोई दूसरा स्वतन्त्र विषय हो सकता है। हमें यहाँ कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित प्रबन्धम् के उन विविष्ट तत्वों का सामान्य परिचय देना है जिन्होंने परवर्ती साहित्य को प्रभावित किया है। ये विविष्ट तत्व दक्षिण की समस्त भाषाओं के कृष्ण-भक्ति-साहित्य में ही नहीं बल्कि दक्षिण में पनपने वाले विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायों व माध्यम से उत्तरी भारत की भाषाओं के मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति-साहित्य तक में गूनाधिक रूप में स्वीकृत हुए हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है प्रबन्धम् में कृष्ण-सीताएँ बय क्रम से उपसर्ग नहीं होतीं। परन्तु प्रस्तुत कर दूँगे पर प्रायः सभी कृष्ण-सीताओं का वर्णन बय-तत्र मिल जाता है। प्रबन्धम् में बय-तत्र वर्णित कृष्ण-सीताओं को बय क्रम के अनुसार देने का प्रयास यहाँ किया गया है। कृष्ण की बात-सीताओं का वर्णन पेरियाळ्वार ने जितनी मामिलता से प्रस्तुत किया है वह अद्वितीय है। इनसे प्राचीन काल में (दली शताब्दी) पेरियाळ्वार ने बात-सेताओं का ऐसा राजीब चित्र अंकित किया है जो बात-मनोवृत्ति का मूलम परिचय देता है। तमिळ में पेरियाळ्वार का

१ श्री पी० श्री० आचार्य के "हृत्पाठ्यकार" नामक लेख—"तिरुवोपनिषद्",

कास्तूर २ इस्सु २।

वास-वर्णन एक आदर्श छोड़ गया है—परवर्ती कवियों के लिए। कृष्ण की किशोर सीताओं और गोपी-प्रेम का भी पयाप्त विस्तार से वर्णन प्रबन्धम् में मिल जाता है। बाळवारों ने गोपी-प्रेम तथा बिरह के वर्णन में तमिल की अनेक काव्य कविताओं का उपयोग किया है। त्रिभुवा अनुकरण परवर्ती कवियों ने किया है। मध्ययुगीन कृष्ण-मत्त-कवियों ने विशेष रूप से वास-कृष्ण की विभिन्न सीताओं का ही विस्तार से वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम का भी वर्णन प्रमुख रूप से मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य में मिलता है। जैसे तो मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले अनेक विविध तत्व प्रबन्धम् में मिल जाते हैं, जिनको सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत करना कठिन है। विस्तार भय से सूक्ष्मता में नहीं जाकर प्रबन्धम् के उन विविध तत्वों को स्पष्ट रूप से ही निम्नलिखित चार शीर्षकों के अन्तर्गत देते हैं —

१—श्रीकृष्ण की विविध सीताएँ

२—श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप-माधुरी

३—श्रीकृष्ण का परमेश्वरत्व

४—श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों की प्रेम भावना —

(१) वात्सल्य भाव और

(२) माधुर्य-भाव।

(१) श्रीकृष्ण की विविध सीताएँ

('प्रबन्धम्' में कृष्ण-सीताएँ क्रम-बद्ध रूप में नहीं मिलतीं किन्तु यहाँ पर्याप्त अध्यवसाय के पश्चात् प्रबन्धम् में इधर इधर मिलने वाली कृष्ण-सीताओं को एकत्रित कर क्रम-बद्ध रूप से नीचे दे रहे हैं। जो सीताएँ 'प्रबन्धम्' में हैं और मामलत में नहीं हैं या कुछ भिन्नता के साथ हैं, उनका उल्लेख मयास्यान किया गया है।)

कृष्ण सीता का सूत्रपात—अवतार रहस्य

बाळवार भट्टों ने सर्वत्र श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में माना है। बाळवारों के अनेक पदों में विष्णु भगवान् के शीर-शागर बीज का वर्णन मिलता है।

विष्णु शेष नाभ पर शयन कर रहे हैं।^१ उनके कर्णों में सरयु सोमित हैं।^२ श्री देवी और भूदेवी उनके पास बिराजमान हैं।^३ विष्णु मोक्ष-निद्रा में लीन हैं।^४ नारदादि मुनिजन बाध बजाते हैं।^५ तुलसी-भासा प्रणित कर वैष्णव उनकी स्तुति करते हैं।^६

१ "अत्रिय आनन्दसूक्त" — वैरिय तिरुमोळ, २

२ "शुद्धाब्धि संतु" — वैरिय तिरुमोळी २ १०-६

३ "तिरुमोळी मन्त्र" — बही ३ १० १

४ "अत्रिय योगसू" — वैरिय तिरुमोळ, ८

५ "तन्मुद्रुम शारदामुम" — तिरुमाळ तिरुमोळी १ ५

६ "कोत्तायई मन्नुत्ताय" — वैरिय तिरुमोळी २ १०-२

मल्ल और सिद्ध पुरष उन्हें पूजने रहते हैं।^१ यही विष्णु देवों की प्रार्थना पर पृथ्वी में हृष्णावतार लेते हैं। माळवार्थों ने हृष्णावतार के अनेक कारण बताये हैं—देवमोक के देवगणों की बेदना को दूर करने के लिए^२ पृथ्वी तथा पृथ्वी में रहने वाले मनुष्यों के उधार के लिए^३ पृथ्वी के बोझ को कम करने के लिए^४ भूदेवी के कष्ट को दूर करने के लिए^५ देवगणों की प्रार्थना पर^६ बभ्रु-बाल्मर्षों को सत्तामे वाले ऋषि का भज करने के लिए^७ देवकी के किये वध का फल देने के लिए^८ (पिता) बभ्रुदेव के परो पर पड़ी गृहस्था को छोड़ने^९ अपने छह बच्चों को छो देने वाली माता के गर्भ को सफल बनाने हेतु,^{१०} क्षीर-सागर वासी श्री विष्णु वा श्रीहृष्ण के रूप में अवतार हुआ।

श्रीकृष्ण का प्रादु भाव

पुरातन नगर उत्तर मधुरा में^{११} बभ्रुदेव-पत्नी देवकी के पवित्र गर्भ^{१२} से हस्त मल्ल के दसवें दिन^{१३} श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। जन्म के समय ऐसा लगा मानों सहस्र सूर्य एक साथ उदित हुए हों।^{१४} देवकी-पुत्र का वध करने के हेतु फैलाये गये कस के छूर ब्राम से बचकर^{१५} सभी दिन घोर अन्धकार में दिने-दिने बभ्रुदेव द्वारा गन्ध गोप के यहाँ कृष्ण साये गये। दैवी महिला यशोद्य के पुत्र के रूप में^{१६} बलराम

- १ 'मल्लवत्सुम भगवत्कमुम'—पेरियाळ्वार तिरमोळी ४-२९
- २ 'विष्णोळ चमरर बेवने तीर'—वही १२१९
- ३ 'मन्नुय्य मन्नुमकिल मन्नुय्यय्य'—पेरियाळ तिरमोळी ११०
- ४ 'पारेम पेरम मारम तीर'—पेरिय तिरमोळी २१०-८
- ५ 'नुवर्णित्तियम तिसर्गै सुपर तीर'—वही ८-८-२
- ६ 'देवरीरवळ'—'तिरवायमोळी' ६४५
- ७ 'सायुवनरी नयिनु कन्नै वात्तिप्पवु'—वही ३५३
- ८ 'एम भोगु मोदात कोलो'—पेरियाळ्वार तिरमोळी २२६
- ९ 'तन्ने कात्तिल पेव तिसगु ताळवित्त'—पेरिय तिरमोळी ७-५१
- १० 'मन्नळ चक्कुरै कल्लिडे मोह इळ्ळ'—पेरियाळ्वार तिरमोळी ३३१
- ११ 'तायैरुत्त वित्तरकम वेय्य'—तिरुप्पवु ३
- १२ 'मल्ली मूडुर वड मयुरैयिल'—तिरवाय मोळी ११९
- १३ 'बभ्रुदेवर तम्पुडेय विल्लम पिरिया देवकी तन वयिट्टित'—पेरियाळ्वार तिरमोळी १२९
- १४ 'कतिरायिरमिरवि वत्तपेरित्तमोनु'—वही ४११
- १५ 'वन्न वने वत्त कारिवन तिसनु'—नाच्चियार तिरमोळी ३-८
- १६ 'वैव नदी यगोयेरु पोत्तन्न वेवैरुन्नियाम'—पेरियाळ्वार तिरमोळी, १२१

के अनुब के रूप में^१ गोर्षों के मायक के रूप में—^२ गोकुल दीपक^३ का आविर्भाव हुआ ।

कृष्ण का जन्मोत्सव

पेरियाळ्वार ने कृष्ण के जन्मोत्सव का बड़े विस्तार से वर्णन किया है ।^४ कृष्ण के जन्म पर गोकुल में बड़ा हर्षोन्मास और कोसाहस हो रहा है । गौर-अम्बु धिष्णु के दर्शन के लिए बौढ़ रहे हैं, गिर रहे हैं और फिर उठकर बौढ़ रहे हैं । बड़े उत्साह के साथ मन्द बाबा के यहाँ भोग जा रहे हैं मार्गों कोई अवशुत वस्तु डूबने का रहे हों । कोई कहता है—‘सो बह है हमारा छोटा राजा ।’ कोई पुछता है—‘कहाँ है, हमारा बास राजा ?’ कोई अपने आनन्द को बासी में नहीं बस्ति माने में व्यक्त करता है तो कोई माथकर अपना आनन्द प्रकट करता है ।^५ अत्यधिक हर्ष में प्लासे अपने यहाँ के भी बड़ी आदि को औरों को बांट देते हैं और सासी मटकों पर माथ उटते हैं । इनमें से हर एक अपने को मूल गया है । हर कोई संसार से नाता छोड़कर आनन्द में मस्त बीगता है । छाप गोकुल ऐसा बीगता है, मार्गों वह किमी बिशिष्ट प्रम-आन फँस गया हो । शुभ बातों देने की उत्कंठा से कोई बाता है तो कोई मन्द बाबा के घर जाकर पूछता है कि मेरे बास राजा कहाँ हैं ? धिष्णु को देखकर कोई कहता है कि हमने ऐसे सर्व-भुन सवाल मुक्त धिष्णु को कहीं-नहीं देखा । कोई कहता है कि बालक संसार का साधन करेगा । कोई कहता है कि यह हमारा सीमाग्य है कि ऐसे निराले धिष्णु और उसकी माँ के दर्शन कर सके । हाँडियों में सुवन्धित बल भर रखा है । हाथ मलकर रैह पर हस्ती लेपकर धिष्णु प्रेम से नहलाया है ।

नामकरण संस्कार

गोकुलवासियों ने सब मिसकर अपने घरों को तोरण^६ इत्यादि से जलंकृत किया । कृष्ण के जन्म के बारहवें दिन^७ मेघ में निपुण पण्डितों^८ से ‘जनकनाम ।

१ ‘बलदेवर कीळ कन्दुय’—गान्धिवार तिरमोळी ४११

२ ‘घायरकळ नायकनाय’—पेरियाळ्वार तिरमोळी १११

३ ‘घायर पांडिगु अन्नि बिळकनाय’—वही २२५

४ पेरियाळ्वार तिरमोळी—प्रथम शतक

५ ‘गोकुलार बिळुवार उरुगुलिप्पार

गायुवार नैपिरान एमुत्तानेप्पार

गायुवारकमुम पत्तरी कोडु निगुदु

गायुवारकमुम आयिदु आइप्पाडिये ।’—पेरियाळ्वार तिरमोळी, ११२

६ तिळ्पेमुत्ताण्डकम, ३

७ पेरियाळ्वार तिरमोळी ११४

८ तिरवाय मोळी, ४९८

कृष्ण ! श्रीधर ।^१ आदि भाषों से पुकार कर बासक का नामकरण संस्कार कराया गया । सौगों न कृष्ण' नाम से विष्णु को प्रमपूर्वक पुकार कर अमृत वा-सा मानन्द पाया ।^२

अन्य सीसाएँ

१ पुतना-वध—कुष्ट मन वाले कंस के द्वारा भेजी गयी राक्षसी^३ एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर^४ श्रीकृष्ण के प्रति अपने ही पुत्र का सा प्रेम भाव दिखाकर^५ विष भरे अपने स्तन से कृष्ण को दूध देने आयी । स्वयं पान करने वा बहाना कर^६ कृष्ण ने भी दुग्ध रूप से आयी हुई राक्षसी के पद्मपत्रपूर्ण भाव को समझकर, उसके वास्तविक रूप से परिचित होकर उसके प्राणों को पी लिया ।

२ छन्द ब्रज्ज छबवा शकटासुर वध—शकट के रूप में आने वाले राक्षस का पाश प्रहार द्वारा वध ।

—तिरुवायमोळी २१-८ ।

३ घुटनों और हाथों क बस रोंगकर बिहार करना ।

—पेरियाळवार तिरुमाळी १४१ ।

४ पैर की रोंगसी को मुँह में लेकर चूमना ।

—वही, १२१ ।

५ बिजिली के निनादित होते घूम में बसना ।

—वही, १२-६ ।

६ चारी के बँकुर के समान शीशों वा निबस आना—और बासक वा हैसना ।

—वही १७-२ ।

७ छोटे बड़े होने पर बिना घुटनों की सहायता के पैरों बसना ।

—वही १-७-४ ।

८ झुमते हुए बाफर माता को चूमना देना ।

—वही १२२ ।

९ सैत की हाँडियों को जमीन पर झुड़वाना ।

—वही, १४११ ।

१ तिरुवाय मोळी, २१-७

२ कन्निकुळ चिस्ताडु २

३ पेरिय तिरुमोळी ११०-७

४ वही १-२-७

५ वही १ ४-७

६ इरुशाम तिरुवस्तारि, ८

१० बच्चों को पूँछ को पकड़कर बुलाना ।

—पेरियाळ्वार तिरुमोळी, २४-८ ।

११ बच्चों के कानों में चोटियों को बाँसकर उल्टे कराना ।

—वही १-४२ ।

१२ बिना घोबोहल के समय भी बच्चों को खोल देना ।

—वही, २४-७ ।

१२ बिना गोबोहल के समय भी बच्चों को खोल देना ।

—वही २४-७ ।

१३ बाँसों को बन्द कर मन्त्रजल लाना और ह्रींकारों में रखे हुए बूझ को घर पेट प्रीति ।

—वही २४६ तथा २-७-१ ।

१४ लोतली बोली बोलना ।

—वही १६४ ।

१५ बन्ध बिसीना—माँ से बन्ध को पकड़ कर बेटे की प्रार्थना करना ।

—वही १४३ ।

(यह सीसा भावगत में नहीं है। डा० जगदीश गुप्त ने भी स्वीकार किया है कि पेरियाळ्वार ने ही इसका वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि यह प्रसंग ज्योतिषिक लोक-ग्रन्थित परम्परा के कारण कृष्ण को बास-प्रीति के साथ समाधिष्ट हुआ है।^{१)}

१६ मृत्तिका बलण—पेरियाळ्वार तिरुमोळी २३-८ ।

१७ माता यद्योदा को मुख में ग्रहण कर धारण करना ।

—वही १२१८ और ११६ ।

१८ कृष्ण द्वारा माता को हीरा दिखाना ।

—वही २-१-२ ।

(यह सीसा भावगत में नहीं है। सम्भव है कि यह तमिल लोक-कथा के आधार पर ही वर्णित है। छोटा बच्चा मुँह को बहुत कम संकर विचित्र आवाज पैदा कर माँ को डराने की चेष्टा करता है। ऐसे तमिल में 'ज्योतिषिकादृतम्' कहा जाता है। अन्य ग्रन्थों में कृष्ण को डराने के लिए हाँक का वर्णन मिलता।)

१९ स्तनपान की हूट और माता द्वारा प्रेयपूर्वक स्तनपान करने के लिए बुलाना ।

—वही २२३ ।

२० गहने के लिए बुलाना ।

—वही २४२ ।

२१ बर्लु-वेरुम संस्कार ।

—वही २-२८ ।

२२ हृष्टि-बाय परिहार के लिए कृष्ण के हाथ में बँधे बाँस आना (तमिल में इसको 'बायिदुवस' कहा जाता है) ।

—वही २-८२ ।

२३ उल्टी पड़ी ओखली पर लड़े होकर मासत-बोरी ।

—वेरियाळ्वार तिरमोळी १ १० ७ ।

२४ ऊसस बन्धन ।

—वही १ २ १० तथा ७-८ ।

२५ ऊसस को खींचत हुए बाला और दो वृत्तों को गिरा देना ।

—वही १ ३ १ ।

(यह क्या कुछ दिमलता के साथ बल्यन मिलती है । भावगत में बहा गया है कि वसति कुबेर के मशहूर पुत्र नर कुबेर और मयि प्रोब को नारद के घाघ से समसाजुन वृद्ध हो गये थे, कृष्ण ने उनका चहार किया । वेरियाळ्वार उन वृत्तों में अमुरावैव मानते हैं ।)

२६ गाप-बासिकाओं के कंकण को घुरा ने जामा और उनसे फस छीरना ।

—वेरियाळ्वार तिरमोळी २ १-६ ।

२७ दधि-पाइव और बर्तन को मोटा देना—यह भावगत में नहीं है ।

(जब यद्योदा मासत-बोरी के अपराध पर कृष्ण को पकड़ने दीड़ी, तो कृष्ण किसी घर के अन्दर घुस पड़े । उस घर में दधि-पाइव नामक खाता रहता था । कृष्ण ने दधि-पाइव से प्रार्थना की कि माता के प्रहार से उन्हें बचाने के लिए कहीं वह उन्हें छिपाये । दधि-पाइव ने कृष्ण की प्रार्थना पर उन्हें मिट्टी के एक बड़े बर्तन के अन्दर रख दिया । जब यद्योदा ने भी उस घर के अन्दर आकर पृष्ठा कि कृष्ण वहाँ जामा कि नहीं तब दधिपाइव ने कहा कि कृष्ण वहाँ नहीं जाये । इस पर माता लौट गयी । माता के लौट जाने की सूचना पाकर कृष्ण ने दधिपाइव से अपने को बर्तन से बाहर करने की प्रार्थना की । दधिपाइव ने जब उत्तर लिए एक शर्त बनायी कि उसको और कृष्ण को पृष्ठान के लिए सहायक सिद्ध होने वाले बर्तन को मोटा देने का वायदा करने पर ही वह कृष्ण को बर्तन से बाहर करेगा । कृष्ण ने ऐसा ही किया ।)

२८ यज्ञादा से गोपियों की शिक्षापूर्व ।

—वेरियाळ्वार तिरमोळी २ १० से १—१० ।

२९ कृष्ण के बलराम और अन्य नामों ने साथ बड़ों को चराने के लिए जाना ।

—वही १ २ २० १-८ ५ और १-१ १ ।

३० हाँदियों से मकान सामा और यामो (मिट्टी के) बर्तनों को जमीन पर पटक देना और अपनी छायाज मुजर रहता ।

—वही, २-६ १ ।

३१ पीचारण के लिए प्रथम बार बन जाना और माता का विनाय ।

—वही ३ २ १ और ३ ३ १ ।

३२ बली बजाना ।

—वही ३ ९ १ से १०

३३ विविध शृङ्गार मजाकर बन में विहार ।

—नाचिबवार तिरमोळी, १४ १ व १४ २ ।

३४ बत्तासुर वध—यमुना के तट पर बत्सचारण के समय एक दैत्य बह्मर्षी में बहड़े का रूप धारण कर बुरा किया। कृष्ण ने उसे पूँछ सहित पिछले पैर पकड़ कर अम्बरिल में घुमाकर एक वृक्ष पर बंधे मारा।

—पेरियाळ्वार तिरुमोळी ११४।

३५ बकासुर वध—जक रूप धारण करके आए हुए एक दैत्य ने कृष्ण को निपट लिया। किन्तु कृष्ण ने उसे बाँध धीरकर मार डाला।

—वही २-५४।

३६ बेनुकासुर वध। —तिरुक्कन्तविरुत्तम, ८०।

३७ कामिय नाग के सिर पर नाचना। —नाच्चियार तिरुमोळी १२-७

और पेरियाळ्वार तिरुमोळी २१०-३

३८ काविय वमन। —पेरियाळ्वार तिरुमोळी ३-६-७ और ३-६-६।

३९ प्रलम्बासुर वध।

४० दावानस पात।

—पेरियतिरुमोळी ११ ६-७ और तिरुवायमोळी ३ ६ १।

४१ वन भोजन। —नाच्चियार तिरुमोळी १२ १।

४२ सीमानिकन को स्वर्ग देना—यह भागवत में नहीं है।

(सीमानिकन कृष्ण का मित्र था। वह कृष्ण से उनके चक्रायुध को माँगता था। कृष्ण ने कहा कि उसे उसके हाथ में देने पर वह उसके सिर को काट देगा। सीमानिकन ने शक प्रकट किया। इस पर कृष्ण ने चक्र को उसके हाथ में दिया तो चक्र ने सीमानिकन के सिर को काट दिया और वह स्वर्ग पहुँच गया (कृष्ण के मित्र होने कारण)।

—पेरियाळ्वार तिरुमोळी २-७-८।

४३ सात वृषभों का वध में कर कृष्ण का 'नयिनी' को कन्या सुख के रूप में प्राप्त करना—

(तत्त्वासीन प्रथा के अनुसार सात वृषभों को कृष्ण ने वध में लिया और नयिनी को प्राप्त किया। भागवत में एक बुरारी वषा है, जिसमें कहा गया है कि अयोध्या के नन्दविराट राजा की पुत्री को कृष्ण ने सात वृषभों का वध में कर प्राप्त किया।)

४४ वेणु-बाहुरी—पेरियाळ्वार तिरुमोळी ३ ६ ८।

४५ और हरण—नाच्चियार तिरुमोळी ३१ और पेरियतिरुमोळी १०-७-१

४६ 'बुरम्' पेड़ के रूप में बड़े असुर का वध।

—भागवत में उस वृक्ष के लिए असुर बहना नहीं है।

(गोविंदों के बहना को लेकर कृष्ण जिन पेड़ पर चढ़े वह एक राक्षस का परिवर्तन रूप था। कृष्ण ने उस पेड़ को गिरा दिया और राक्षस

का बंध किया। भामवत में उस पैर में बमुरावेष्ट का उल्लेख नहीं है, जबकि प्रबन्धम् की कथा में है। —वेरियाळवार तिस्रोळी

४० भीषियों के साथ कृष्ण के मुख्य (कुरबै कुरु) रातबीसा।

—तिस्वायमोळी १ ६:१

४८ इन्द्र मल मंग।

—वेरिम तिस्रोळी २-३ ४ वही ४२३

४९. मोबर्नन भारण—वेरियाळवार तिस्रोळी १ १ ६ तथा

तिस्नेहुम्ताम्बकम् १३

५० कैलि बब।

—वेरिम तिस्रोळी १ २-८

५१ यधुरा यमन।

—वही १-७-१

५२ कुम्भा पर अनुकम्पा।

—वेरियाळवार तिस्रोळी १ ६ ४

५३ कुम्भमापीड बध।

—वही, ४-७-७ और तिस्रोळी ४२ तथा

वेरिम तिस्रोळी २ २-८

५४ मल्ल निग्रह।

—वेरियाळवार तिस्रोळी २ २-८ तथा

वेरिम तिस्रोळी ४१

५५ फंत बब।

—तिस्वाय २३ तथा वेरिम तिस्रोळी ३ १० ३

और ३ १०-२

५६ बुध साम्बीपनि को उनके पुत्रों को लौटा देता।

—वेरियाळवार तिस्रोळी ४-८ १

(विद्याध्ययन के बाद बुध-दक्षिणा में बुध के पुत्र को जो समुद्र में प्रवास क्षेत्र में डूबकर मर गया था, लाने के लिए कृष्ण ने समुद्र-जल में लिहाय करने वाले धंस रूपवारी पंजजन नामक दैत्य का पता लगाकर उसको मार डाला। फिर संयमनी पुरी जाकर यमराज से बुध-पुत्र को प्राप्त किया और बुध साम्बीपनि को लौटा दिया।)

७७ बकिमली हरण।

—वेरियाळवार तिस्रोळी ३-६ ३ तथा

तिस्वाय मोळी ७-१० ६

७८ गरवामुर बध।

—वेरियाळवार तिस्रोळी ४ ३ ३

७९. डारकापुरी का स्थापन।

—वही, ४-६ ४

८० पारिवाठापहरण।

—वही ३-६ १ और २ १-६

८१ बाणामुर बध।

—वेरियाळवार तिस्रोळी ४ ३ ४ तथा

तिस्वायमोळी ३ १० ४

८२ पीण्डक बध।

—वेरिम तिस्रोळी २ ४-७ तथा

तिस्वन्त निरुत्तम १०७

८३ तिगुपान बध।

—तिस्वाय मोळी ७-१ ३ और ७-२ १०

८४. कृष्ण द्वारा दम्भबध का बध।

—बुद्धाम निरुत्तमादि २१

१५. शीपरी का कृष्ण की शरय्य लेना । —वेरिय तिरुमोळी २ १-६
 १६. कृष्ण का दूत-रूप में जाना और दुर्योधन के झूठे, बपट भासन पर
 बैठकर अपना दिव्य-रूप दर्शन देना । —वही २ १-८
 १७. पार्व शारदी के रूप में जाना । —वही २-१ १
 १८. कृष्ण के चरणों पर अर्पित पुष्पों को शिवजी का अपने सिर पर चारय्य
 करना । —तिरुवायमोळी २-८ १

(महाभारत युद्ध के समय अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र की आवश्यकता पड़ी । चूँकि वह शिवजी का अस्त्र या अंत शिवजी की पूजा करने की आवश्यकता का पड़ी । उसके लिए तैयार होने पर कृष्ण ने अर्जुन से अपने चरणों को दिखाकर वही पुष्पों को अर्पित करने की कहा । अर्जुन ने ऐसा ही किया । उस दिन रात को शिवजी के सिर पर इन पुष्पों के बर्धन अर्जुन के किये और शिवजी आकर पाशुपत अस्त्र दे गये ।^{१)}

१९. पीठा उपदेश । —तिरुवाय मोळी ४-८ १ तथा ३ १-७
 २०. अर्जुन के चोड़ों को बतलाना ।

—वेरियाळवार तिरुमोळी ४ २ ७ ।

(जब अर्जुन के रथ के चोड़ों को बहुत प्यास लगी तब उस स्थान पर कृष्ण ने बरणास्त्र का प्रयोग कर जल उत्पन्न किया और चोड़ों की प्यास बुझायी ।^{२)}

अप्युत्तिष्ठित प्रबन्धम् की कृष्ण-सीताओं के अवसोवन से स्पष्ट हुआ होगा कि प्रबन्धम् में भागवत में उपलब्ध अधिकांश कृष्ण-सीताओं का वर्णन मिल जाता है और कुछ ऐसी कोनाएँ भी प्रबन्धम् में वर्णित हैं जो भागवत में नहीं हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि आठवारों में सर्वत्र भागवत निरपेक्ष दृष्टिकोण पाया जाता है । फिर बाधुनिकतम विद्वानों की भागवत के कास-निर्णय की उपलब्धि के अनुसार आठवार भक्त भागवत-काल से पूर्व के ठहरते हैं, अत आठवारों का भागवत-समाप्ति होने का प्रश्न ही नहीं उठता । प्रबन्धम् में वर्णित कृष्ण-सीताओं को परलोक पर एक और बात स्पष्ट हो जाती है कि आठवारों में वास-सीताओं (गोभूत सीताओं) का जितने बड़े विस्तार और बड़ी मार्मिकता से वर्णन प्रस्तुत किया है, उतना बहुत सीता या हारका-सीता का नहीं । आठवारों द्वारा वर्णित ये कृष्ण सम्बन्धी वास सीताएँ निश्चय ही भर्तृ के हृदय में अवश्य प्रेम को उत्पन्न कर देने वाली हैं । इसमें

१. तिरुय प्रबन्धम्-कथामृतम् (प्रबन्धम् की टीका) —श्री अण्णराचार्य स्वामी

आश्चर्य की बात नहीं यदि हम यह अनुमान करें कि परवर्ती मल्ल-कवियों ने अर्थात् मध्ययुगीन कृष्ण-मल्ल-कवियों, विशेषकर अष्टाछापियों ने आळवारी द्वारा वस्तुतः उस वास-सीताओं से प्रभावित होकर उन्हें अपने भक्ति-काव्या में स्थान दिया हो।

भगवत्सोसाओं में आळवारी की सम्मयता

आळवारी की वास-सीता-वर्णन की धृति में एक वैचित्र्य है। यह यह कि आळवारी ने वास-सीताओं का वर्णन कथाओं के रूप में प्रस्तुत न कर, उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया है—मानों वे हमारे सामने प्रत्यक्ष चटित हो रही हों। कहने का तात्पर्य यह है कि आळवारी ने वास-कृष्ण से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित किया हो ऐसा प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए पेरियाळवार के वास-सीता-वर्णन को ले सकते हैं। वहाँ यशोदा या देवकी के कथन होने चाहिए वहाँ कवि ने स्वयं यशोदा या देवकी के स्थान पर अपने को वस्तुतः कर कहा है। ऐसा सयता है मानो कवि स्वयं वासक (कृष्ण) की दैत रेल करता हो और वासक की सीताओं में वास होता हो। इस बात का स्पष्ट करने के लिए पेरियाळवार ने कुछ पदों का उद्धरण भी देते हैं।

वहाँ कवि वासक कृष्ण के धर्म्य का वर्णन प्रस्तुत करता जाहता है वहाँ यह कहता है —

“देवकी द्वारा देवी महिमा—यशोदा को छोड़े यसे सुन्दर वासक के अपने घर की जमीनी की भूँ में मकर जूते समय उसके भूँ को देखने जाये। है देवियों। आकर देखिए।”^१

“देव-शोक के देवियों की वेदना को दूर करने के हेतु पहले बसुदेव-पुत्र-रूप में अवतरित वासक (कृष्ण) के सुन्दर नयनों को आकर देखिए।”^२

इस प्रकार अनेक पदों में दुष्टों को हटाकर अपने वासक (कृष्ण) का धर्म्य गिाना जाहता है। यही नहीं, कृष्ण को वासन में सिटाकर यशोदा के लोरी

१ “सीतारकटल जलमुदल देवकि
कौरेकुळनाळ प्रगोबरकुम्भोत्तम
दैवकुळवी विडित कुम्भोत्तम
वासरकमलपळ कापीरे पळवापीर । बसु कापीरे ।”

—पेरियाळवार तिकमोळी १२१

२ “विष्णोळमरंजळ वेरनीतोर मुन
मप्लोळ बसुदेवर तम मकनाइ बसु
तिगोळमुरंतेय बळकिनाम
रम्यळ दुरंदरा कापीरे कवळवीर । बसु कापीरे ।”

—वही, १-२११

गाने के अवसर पर कवि स्वयं कृष्ण-सीताओं का स्मरण कराकर उनकी स्तुति कर हुए उन्हें सुनाने के लिए सोपी बाठा है। चन्द्र को बुलाते समय यद्योश के स्थान पर कवि कहता है —

मिरा यह नाच मेरी कमर पर बैठकर तुम्हीं को बुला रहा है, अपने बड़े-बड़े ज्योतिर्मय सोचनों से। यदि तुम क्षिप्त करना चाहते हो तो उसको पुनः मत्त को यह चक्रवर्ती भगवान् है यह समझ लो। हे चन्द्र! तुम्हें भी ऐसा पुनः होता तमासुम होता कि तुम्हारे इस व्यवहार से कितना दुःख होमा। हे पुनः-हीन अमाये बन्दी जा बामो।^१

कवि ने अनेक स्थलों में यह भूलकर कि उसे कृष्ण-सीताओं का कथा-रूप वर्णन करना है यह अनुभव किया है कि वह भी उन सीताओं में भाग ले रहा है बिदेय रूप से कृष्ण की स्तनपान करने कृष्ण का शृंगार करने कृष्ण की सेवा करने तथा कृष्ण के वन में गोचारण करने जाने के अवसरों में कवि ने स्वयं क यद्योश के स्थान पर कल्पित कर अपने उत्सार सीधे प्रकट किये हैं। इस कारण अनेक स्थलों में ऐसा सजीव वर्णन मिलता है, जिसमें घटनाएँ प्रत्यक्ष होती सी दीखती हैं। यह सीसी की विशेषता की ओर ही नहीं बल्कि कृष्ण-सीताओं में कवि की तन्मयता की ओर भी संकेत करता है। अनेक परवर्ती कवियों ने भी कृष्ण-सीताओं में इस प्रकार तन्मयता भाव दिखाया है। पुराणों की कथा-सीसी को स्थापन कर परवर्ती कवियों ने कृष्ण-सीताओं में तन्मय होकर भावपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है।

२ श्रीकृष्ण की अतीतिक रूप-माधुरी

श्रीकृष्ण की विभिन्न सीताओं का गान करने वाले प्रायः सभी बल्ल कवि श्रीकृष्ण के अतीतिक रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हुए हैं। कृष्ण के रूप-वर्णन में सौन्दर्य की बितनी भी कवि-कल्पनाएँ हो सकती हैं उन सबका प्रयोजन करने की प्रवृत्ति इन कवियों में पायी जाती है। आठवार मत्तों ने कृष्ण में अतीतिक शक्ति के साथ अतीतिक एवं अपरिचीम सौन्दर्य के भी वर्णन किये हैं। अत आठवार ने कृष्ण की विभिन्न सीताओं के साथ ही साथ उनकी मनोहारिणी और प्रतिक्षण लक्ष्मी आकर्षण उत्पन्न करने वाली छवि का भी पद-पद पर अद्भुत किया है। श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होने की प्रवृत्ति सभी आठवारों में पायी जाती है। कुछ में तो वह इतनी बाधे

१ 'आकरवर्तयत तर्कव्यक्त मत्तर चिह्नित,
घोषतै मैलिस्सु उन्नये बुद्धि काट्टुम काय
तवत्तरिदियेन अगिरा छलम केप्पारे
मरन्द बेराद मतमत्तैवैत वा कण्ठाय ।'

ममी और प्रगाढ़ है कि कृष्ण के किसी चरित किसी भी सीमा का बगन बिना उनकी अनिच्छा छवि के वर्णन के सम्भव ही नहीं हो सका। आठबार रूप-बलन करने कभी तो स्वयं ही मुग्ध हो सेते हैं कभी योगियों के माध्यम से उन्हें रूपासक्त चित्रित करके सुखानुभूति प्राप्त करते हैं। आठबारों ने प्रमुखतया कृष्ण के दो रूपों की छवि का वर्णन प्रस्तुत किया है —

१—कृष्ण का बाल-रूप और

२—कृष्ण का किशोर रूप।

कृष्ण के बाल-रूप का लील्य

कृष्ण के बाल-रूप के लील्य पर सर्वाधिक मुग्ध होने वाले आठबार वैरियाळ-बार हैं। इन्होंने २० पदों में बाल-कृष्ण के रूप-लील्य का नवविध-वर्णन प्रस्तुत किया है। प्रत्येक पद में प्रत्येक बंग की सोमा का बड़ा ही सरस वर्णन है —

"कृष्ण क चरण छिते हुए कमल के समान सुन्दर हैं।" ^१

उन चरणों में कुछ काचम के बीच बंठित मोती रत्न और हीरे के समान अंगुलियाँ घोमित हैं। ^२ सर्वत्र कवि ने सम्पूर्ण बाल-कृष्ण का बहु मोहन रूप ही बताया है जिसके वर्णन में बहु अपने को लो जाता है। सुन्दर सिन्दूर रंग के कोमल पुह के बीच प्रगाढ़ युक्त चाँदी के अंगुर जैसे दाँत निकले हैं। ^३ कमल इस बीच मधु-पान करने वाले भ्रमरों की भाँति कृष्ण के मुख पर सुन्दर लसकावसों प्रीड़ा कर रही है। ^४ बालक के मुस चन्द्र से चन्द्रमा की तुलना कर कवि कहता है—

१ "

बाबकमलपल्ल काभीरे पबळबायीर । बम्बु काभीरे ।"

—वैरियाळबार तिरमोळी १ २ १

२

"मुल्लु मल्लिपुम बल्लिरमुम नल्लोप्पुम
तल्लोप्पतिलु तल्लेय्येडवार पोस एंमुम
बल्ल बिरल्लुम मल्लिबन्धन पावण्ड
मोतिर्दिट्टववा कालीरे ओण्णुवतीर । बम्बु कालीरे ।

—वही १ २ २

३

कोसलकम पबळपेमुबार बाविनिड

कोमळ वेळी मुळ्ळोप्पल बिल पल्लिलव ।"

—वही १ २ ३

४

"बेकमलपुविल तेनुल्लुम बडे पोस

पेकिवत बम्बु उन बबळबाय मोडप्य ।

"

—वही, १-८ २

“हे व्योतिर्मय रत्न पर विराजमान होकर सर्वत्र प्रकाशमान भव । तुम चाहे जिसकी भी चाँदनी बिम्बाओ बीर पूर्ण बनो फिर भी (मेरे) इस बासक के मुख-सौन्दर्य को तुम प्राप्त नहीं कर सकते ।”^१ “बासक के मुँह से टपकने वाली नार का सौन्दर्य कमल-पत्र पर से गिरने वाली घुतिपुक्त ओस की बूबों के समान है ।^२ बासक की प्रत्येक चेष्टा में कवि को सौन्दर्यानुभूति होती है । विष्णु का स्तन-दान करना बन्धुमा सुमाना तामी बजाकर हँसना फिर ऊँचा करके हिमाला छोटे कौमल पेरों पर अस्थिर पति से जाना आदि प्रत्येक क्रिया-कलाप में कवि ने सूक्ष्मता से सौन्दर्य का अनुभव किया है और उन सौन्दर्य को मयाप्रति छद्मों में व्यक्त किया है ।

वेश-भूषा

पेरियाळ्वार ने बास-कृष्ण की वेश-भूषा का बड़ा ही मोहक चित्र संकित किया है । जिसने ही प्रकार के आभूषणों की कल्पना कर उन सबसे कृष्ण की भूषित बताया है । जिसने ही प्रकार के पुष्पों के नाम गिनाकर उन सबसे कृष्ण को सम्बोधित बताया है । कृष्ण अपने सज्जन जलधर सहस्र ब्याम बागं शरीर पर बिघुत की सी कण्ठिबाला पीताम्बर पहने हुए हैं ।^३ लाल कमल जैसे पत्तों में पायल कमल की किसी हुई पंखड़ियों सहस्र शोभित पंगुलियों में अंगुष्ठियाँ कमर में स्वर्ण से निर्मित नमरबन्ध और निनादित होने वाली किक्किली, हाथों में बंजर हाथों की पंगुलियों में हीरे मोती से अंकित स्वर्ण अंगुष्ठियाँ सुन्दर बाहों में विविध आभूषण कानों में कुम्बल माये पर ‘बुट्टि’ (एक आभूषण विशेष) आदि विविध आभूषणों से भीकृष्ण वर्णकृत है ।^४

- १ ‘बुट्टुम ओळिबट्टम बुळुम व्योति परम्भेनुम
एतर्न वेय्यिनुम एम मरुम मुळम वैरोम्बाय

” — पेरियाळ्वार तिरुमोळी १४१

- २ “बहर धंरुयमलरवाय मेकिळ्ळमनिपु बुळुमि पोळ
इरंकोण्ड वेम्बायूरि पूरि इट्टिरु बीळ निम्बु

” — वही १-७७

- ३ “निम्बुओडिमुम और वैय्तिक्कुम बुळ्यरिवैडुमुमय
विमल तुल्लुम घरसिल्लुम नीतकचिच्चुडैयडेय

— वही १-७३

- ४ “वेळमलरकमिल चिट्टुळुवोल पिरतिल
चेरनिळ्ळनिकुम कित्तिनियुम घरैयिल
लकिय पोम्बडुम ताम्ब नम्मायुळ्ळिय
बुळुम पोम्बनियुम मोविरुम कीरियुम
मंगमऐयैयुम तोळवर्तियुम बुळ्ळियुम
मरुमुम बाळिकुम बुट्टियुम व्योतिलक”

— वही १११०

बासक के बसते समय बिकिरणी की "जलार बलार"^१ की ध्वनि निवारित हो रही है। मन्ने के रस से भरे बर्तों में छिद्र करने से रस के बाहर निकलते समय जो 'कण-कण' की ध्वनि निकलती है उसी के समान जमूत भरे अपने मुह से 'कण-कण' की ध्वनि से कृष्ण हँसते हैं।^२

कृष्ण के किशोर-रूप का सौन्दर्य

गोकुल की गोपियों को मुग्ध करने वाले कृष्ण का मोहक रूप का बर्णन बाल्यार मत्तों ने अनेक स्वप्ना में किया है। विदेह रूप से पेरियाळ्वार ने कृष्ण के किशोर-रूप के सौन्दर्य का गोपियों के माध्यम से आस्वादन कराया है। गोचारण कर बसराम तथा अन्य साधियों के साथ सीढ़ने वाले कृष्ण के बाल्यार सौन्दर्य पर गोपियाँ मुग्ध हो जाती हैं — "मन्द-कुमार कृष्ण 'कम्प सता है मृदुल पुण-सम वसन पहले कृष्ण कमर में सुन्दर देशमी कपड़े को बाँधे गले में सुन्दर और भुगम्भित मुमनों की माता चारण किये मोर मूक के मिर पर धोमित होते सग्या के समय अन्य बासकों के साथ बन से सीढ़ रहे हैं।^३ ' माँ पर सिं दूर तथा प्रकाश मुक्त तिलक धोमित है।^४ कृष्ण के अन्य साधियों के साथ बन से सीढ़ते समय मन्द-मर्जय सा स्वर उठ रहा है। 'कृष्ण का बिहम जैसे अघों को और उन पर लेबन वाली मधुर मुस्कान को देखकर है सखी। मैं मोहित हुई।' गावों के पीछे चरीर की जाति को सर्वत्र बिहीर्ण कर अपने सुन्दर चेहों को मधुर-मंजो से मल्लहत कर सुन्दर कमल जैसे नवनों से बेलज्जर बिजगु की मधुर ध्वनि कर गाते हुए, हँसते हुए, नाचते हुए अपने अन्य साधियों के साथ बाले बाले माहल को देखकर (मिठी पुत्री) मुग्ध हो गयी।' (माता का वचन)। मुरली बजाते समय कृष्ण के अपार सौन्दर्य का चित्रन ही सुन्दर

१ "तोडर बंकिनि बलार बिलारेल

तू मू बोगमनियोमिय

—पेरियाळ्वार तिरमोली १-७-१

२ 'अमरकदन तिर बालोत्तूरी कणकय बिरिल वसु' —वही १-७-४

३ "बन्तिनुम इवय्यन घाट रोणु

बायोवतिववरे विरिल कुल

मुस्ते मल मर मगर केव मगरजिनु

पस्तावर बुडाय मूडे।"

—वही १-८-२

४ "मिगुरमितगतन तिरुदिमेल।

तिरुतिथ कोरम्पुम तिरुमुलमुम"

—वही १-८-१

५ "बावपमनिर्दिपिन्ने तल्लरवादिन बीळ

तन तिरुमेनि मिन्दोटी तिरुळ

मीन मल मरकु को नेत्तिरताडिनिनु

पस्तावर बुडाय मूडे

विभिन्न आठवारों ने अंकित किये हैं। कृष्ण के असीकिक और अपरिशील सौम्य का वर्णन करते-करते सत्त कवि थकते नहीं। कृष्ण के मन-सौहृद रूप की सौन्दर्यनिष्ठता में आठवार सुषुप्त हो बैठते हैं। तिरप्पायल आठवार ने अपनी एक मात्र रचना 'ममल्लाविपिरान' में भगवान् के सौम्य का 'नकसिल' वर्णन ही प्रस्तुत किया है। परबर्ती कवि कृष्ण के रूप-सौम्य सम्बन्धी इन विषयों से बहुत प्रभावित हुए हैं। मध्य-युगीन कृष्ण-वक्त कवियों ने अपने काव्यों में श्रीकृष्ण के असीकिक रूप-माधुर्य का सुन्दर चित्र अंकित किये हैं।

२ श्रीकृष्ण का परमेस्वरत्व

सीमाशायक श्रीकृष्ण के लोक रंजक रूप का सामोपान वर्णन करते हुए भी बालकृष्ण के सीता-सामर में गोठा समायें हुए श्री आठवार सर्वत्र इस बात का ध्यान रखते हैं कि श्रीकृष्ण परब्रह्म विष्णु के अवतार-स्वरूप हैं। वे प्रत्येक पद में श्रीकृष्ण के परमेस्वरत्व की घोषणा करते हैं। आठवारों के अनुसार परब्रह्म विष्णु विभिन्न युगों में मनुष्य के उद्धार के लिए अवतार लेते हैं। जब पृथ्वी में अधर्म फैल जाता है और मज्जान आठवार पृथ्वी को कबलित करता है, तब हृषीकेश भगवान् अपनी बरणा को प्रकट करने के हेतु अवतार लेते हैं। कृष्णावतार की सीमाओं का वर्णन करते हुए श्री बीच-बीच में वे विष्णु के पूर्व अवतारों और उनकी सीमाओं का भी गायन करते हैं। आठवारों के समय में अवतारों की कथाएँ बहुत ही प्रशंसित हुई थीं। भगवत् धर्म के विस्तार के साथ-साथ विष्णु भगवान् के विभिन्न अवतारों की कथाएँ—ब्रह्मावतार की कथाएँ जिनमें विष्णु के मत्तज्जल रूप कल्याण-सिन्धुत्व साथ-संकल्पत्व आदि मण्डित विविध युगों के प्रमाण मिलते हैं व्यापकता प्राप्त कर जन-साधारण के बीच में भक्ति-प्रचार का सरल माध्यम सिद्ध हुई। आठवारों के पदों में विष्णु के विभिन्न अवतारों की सीमाओं का सामोपान वर्णन है। आठवारों ने विष्णु के इन विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं देखा। सब अवतारों को एक परब्रह्म विष्णु के विभिन्न रूपों में ही देखा। फिर भी इनका मन कृष्णावतार में सबसे अधिक रहा।

श्रीकृष्ण की सीता का चेट्टा का वर्णन करते समय यह कहने को आठवार नहीं भूलते कि कृष्ण बर-ब्रह्म विष्णु के अवतार स्वरूप हैं। कृष्णावतार की सीमाओं का उल्लेख करते समय श्रीकृष्ण की असीकिक शक्ति का परिचय देकर इनके अतिमर्त्य (Super human) और अद्भुत कार्यों की ओर इशारा ध्यान आकर्षित

श्रीलक्ष्मणसंस्कृत मिथिल
कल्याणसिन्धु पाणि कुनितु धारोड
धारासिन्धु बरकिल्दु धारासिन्धु
धारासिन्धु एन मन्त्रार्थसिन्धु

—पेरिआळ्वार तिरुमोली, १४-७

करते हैं। सर्वत्र यह स्थापित करने की प्रवृत्ति दिखाते हैं कि ये कृष्ण परब्रह्म बिष्णु के ही अवतार हैं जिन्होंने इसके पूर्व अनेक अवतार लिये हैं और उस श्रृंगार की कड़ी के रूप में उन्होंने कृष्णावतार भी लिया। इस प्रकार कहने में कवि का उद्देश्य थी कृष्ण के परमेश्वरत्व का स्थापन करना है। एक ही प्रसंग में कृष्णावतार के साथ अन्य अवतारों का भी उल्लेख करना कदाचित् यह सिद्ध करने के लिए है कि श्रीकृष्ण सामारण व्यक्ति नहीं परब्रह्म के अवतार हैं। बाल-कृष्ण के कठिपय अतिमानुषिक कुर्यों तथा पृथमा-वय सकलामूर-वय कासिमरमन गोवर्धन-वारण आदि का वर्णन करते समय तो कृष्ण का अतिमानुष रूप प्रकट होता ही है। अन्य अवसरों पर भी जालवार अपनी ओर से यह कहने को नहीं भूलने कि कृष्ण बिष्णु के अवतारों में से हैं। कृष्ण की विभिन्न बास-मुसम घेष्टाओं का वर्णन करते समय भी जालवार उनकी पूर्ण अतिमानुष सीमाओं का भी जिक्र कर बैठते हैं। काव्य-कला की दृष्टि से यद्यपि यह एक दोष है तथापि कवि का उद्देश्य कृष्ण का सन्तान बिष्णु के अन्य अवतारों से स्थापित करने का होने से यह क्षम्य है। उदाहरण के लिए देखिए—श्रीकृष्ण की माँग पर मथोदा द्वारा अन्न को बुलाते समय भी कवि बिष्णु के अन्य अवतारों की ओर संकेत कर बैठता है—“हे नीलाम्बर शिखर विद्यात अन्न ! मेरा पुत्र तुम्हें बुला रहा है। इसका तिरस्कार मत करो, यह समझकर कि यह छोटा बालक है। समझ लो यह बालक वही है जो एक बार बट-पत्र पर सोया था। यदि वह अपनी शक्ति बिलाना चाहे तो अभी उठकर तुम्हारे ऊपर झुककर तुम्हें पकड़ सकता है। अतः इसकी उपेक्षा मत करो।” यह समझकर कि यह बालक है तुम इस बाल-वगरी का तिरस्कार मत करो। राजा बत्ती से जाकर पूछो इसकी फिर दोबारा शक्ति के सम्बन्ध में। यह वही महान् मान' (बिष्णु) हैं जो तुम्हें दीप्त ही आ पहुँचने का आदेश दे रहा है। हे पूर्णवन्द्य ! तुम अपनी इस बुद्धिमत्ता और शक्तिहीनता को कैसे समझोगे कि तुम मेरे लाल के सेवक होने के भी लायक नहीं हो।” स्पष्ट है कि कवि कृष्ण के परमेश्वरत्व की ओर संकेत करना चाहता है।

- १ “बालकनेन्दु परिचयम् अय्येल पण्डोकराज
आतिनिर्लेख्यम् चिदरकनयन इव
मेतेष्ट्यादन्दु विदित कोत्सु केकळमेत
जाले मनिपारे मामति । मकिम्बोडिबा”

—पेरिपासवार तिरमोली १४-७

- २ “विरियनेन्दु एतिर्लाजिगत इवळत कण्डाय
चिदमयिग बालेये मावलिचिडेन्नेन्दु केळ
चिदमयिग कोळ्ळिन् नीयुम उन तेरेरुतिरे काज
निरमनी । नेडुमान विरेणु उनेऽदुडुलिगाम ।”—वही १४-८

राम-कृष्ण अभेद भाव

कृष्णायतार के साथ रामायतार का भी आळ्वारों ने कुछ विस्तार से गायन किया है ("आळ्वारों की राम भक्ति" अध्याय बाला परिशिष्ट देखें) । यद्यपि कृष्णायतार की अपेक्षा रामायतार का वर्णन-विस्तार कम है, तो भी आळ्वारों ने रामायतार के जो भी प्रसंग मिले हैं, उनके द्वारा वे राम के बिष्णु के अवतार होने की बात साबित करते हैं । पैरियाळ्वार के एक श्लोक में रामायतार और कृष्णायतार की भीमताओं का वर्णन साथ ही साथ ही शक्तियों के सम्पादन द्वारा कराया गया है ।^१ कृष्ण को सम्बोधित करते समय भी है योबुल तिह है सीता-पति है बिष्णु आदि नामों से सम्बोधित कर राम-कृष्ण-अभेद को स्थापित करते हैं ।^२ कहने का तात्पर्य यह है कि आळ्वारों ने सर्वत्र कृष्ण के परमेश्वर-स्वरूप की ओर संकेत किया है और बिष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई भेद नहीं देया है । यही प्रकृति मध्ययुगीन अनेक कृष्ण भक्त कवियों में भी देखने को मिलती है । सभी भक्त-कवियों ने कृष्ण के परब्रह्म स्वरूप की स्थापना कर राम-कृष्णादि अवतारों में अभेद भाव दिखाया है । हिन्दी के महान् कृष्ण भक्त कवि मुरदास तथा राम भक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी राम कृष्ण-अभेद भाव से दोनों अवतारों की स्तुति की है ।

४ श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों की प्रेम भावना

'प्रबन्धम्' में नगवान् के प्रति प्रेम के विविध रूपों एवं भावनाओं का जिनान व्यापक उद्घाटन हुआ है । उनके सर्वत्र अभ्यक्त दुर्भस हैं । नगवान् से प्रेम करना ही परा-भक्ति का एक मात्र उद्देश्य है । श्रीकृष्ण और गोपियों का पारस्परिक प्रेम कृष्ण भक्ति साहित्य का मेरुशृङ्खल है । 'प्रबन्धम्' में किसी की अन्य बात पर उतना ध्यान नहीं है जितना गोपी भाव की भक्ति पर । बाद के भक्ति-साहित्य में इस की गोपिकाओं की प्रेम-भावना की बड़ी प्रतिष्ठा हुई और उसे ही आदर्श-रूप में माना गया । नारद भक्ति-मूर्त में और शास्त्रिण्य भक्ति-मूर्त में चरम आदर्श-रूप में ब्रज-गोपिया को ही माना गया है ।^३

प्रेम मानव हृदय का एक प्रबल पल है । आळ्वारा ने इस प्रेम की बड़ी सुन्दर और विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है । इस प्रेम की व्यक्तिमूर्ति मुख्यतया चार प्रकार से मानो जाती है —

१ पैरियाळ्वार तिरुमोळी ३ १ १ लै १० ।

२ 'एन बिद्वायर तिरुमै । तीर्त मन्नाडा । बिन्दुदु चेरुमाले ।

—पैरियाळ्वार तिरुमोळी ३ १-२ ।

३ यथा ब्रजगोविन्दानाम् ॥—नारद भक्ति-मूर्त मूल २१ ।

यथा एव तद्वानाहस्तुभोगाम् ।—शास्त्रिण्य भक्ति-मूर्त मूल १४ ।

१—वास्य भाव

३—वात्सल्य भाव

२—सख्य भाव

४—मातृभ्य भाव ।

'प्रबन्धम्' ने वात्सल्य और सख्य भाव पर ही विशेष जोर दिया है । प्रबन्धम् में प्रीति के इन दोनों भावों को अग्रिम्यक्ति गोपियों के माध्यम से सबसे अधिक उदात्त रूप में बहुत ही बिस्तृत भाव-पटन पर हुई है ।

वात्सल्य भाव

वात्सल्य भाव कृष्ण-भक्ति परम्परा का एक प्रधान तत्त्व है । माळवारी के वाल भाव-चित्रण में वात्सल्य भाव का सुन्दर परिपाक हुआ है । यशोदा के माध्यम से कवियों ने वालस्य रस की स्मिम्ब धारा प्रवाहित की है । वात्सल्य भाव की प्रीति अन्य सब प्रकार की प्रीतियों से उत्तम नहीं जा सकती है । क्योंकि वह निष्काम प्रीति है । सन्तान के भोले भावे और निष्पत्त रूप और गुण पर किम माता-पिता का मन सहज ही नहीं रीझता ? अपने बच्चे और स्वार्थ को भूलकर पितृ की परिचर्या में किम माता ने अपने स्वार्थ को नहीं भुला दिया ? अपनी मन्तति के बिछोह में किम माता-पिता का हृदय नहीं छुपटाता ? बागम्य भाव एराजी है क्योंकि स्नेह पात्र के बबोध और बसक्त हावे के कारण स्नेही अपने स्नेह के बधने में कुछ नहीं चाहता । पितृ की मीठी-मीठी और तुलसी बाते सुनने उमकी प्रीतियों और बिबिध धेन्याओं का बबसोदन करने में मातृ-हृदय जिस आनन्द समपना तथा सुखि आ अनुभव करता है वैसे पितृ-हृदय में नहीं होता ।

मातृ रूप की प्रतीक यशोदा है । यशोदा के भाग्य की सहायता करते-करते भक्तों ने अनेक बार उनके सुख की कल्पना देवताओं भूपियों तथा मुनियों की पक्ति के परे बतलाकर बार-बार भोग आनन्द इत्यादि पर सगुण भक्ति की इस पुष्प अनुभूति की बिबिध घोषित की । कृष्ण के दौलत बाल्यकास और बिचोर-काम में यशोदा के मातृ-हृदय का सुन्दर बिकास बिबिध है । कृष्ण की बालावस्थ में भोले-भाले उल्लिखों के प्रति उनकी परस्पर भावना उनके गम्बरपन के प्रति उनकी गोम भावि मातृ-हृदय के स्वाभाविक बिबिध है । पितृ-कृष्ण की माँ के रूप से बिबर बिचोर-कृष्ण की माँ के रूप तक उनकी बिबिध अनुभव है । वात्सल्य के समान और बिबाग—दोनों ही पर माळवारी ने दिताये हैं ।

संयोग वात्सल्य के अन्तर्गत वाल-मुलम-प्रीतियों के सूदन बिबिध के लिए वेरियारद्वार ने पितृ की इस बिबिध बिबिध स्थितियों की कल्पना कर प्रत्येक स्थिति में बास की स्वाभाविक धेन्याओं का बड़ा ही सजोब बिबिध बिबिध दिता है । इस बिबिध वाल-बालेन धोमी को तमिळ में 'विष्ट तमिळ' कहन है । (इसका बिबिध परिबध अन्य दिता गया है ।) इस 'विष्ट' तमिळ धोमी के जन्म-दाना वेरियारद्वार है । इस धोमी का अनुकरण धेन्याँ करबी कवियों ने दिता है । वेरियारद्वार ने माता धोमी

वात्सल्य के ऐसे जितने ही बिज्र पैरियाळवार ने प्रस्तुत किये हैं। पहली बार कृष्ण के माँ परान के लिए जंगल की ओर जाने पर मातृ-हृदय छपटाटा है। उसे एक क्षण के लिए भी पुत्र-वियोग बसहा सा सपता है। पैरियाळवार ने अनेक स्थलों पर वियोग वात्सल्य का हृदय-द्रावक वर्णन किया है। पुत्र को जन्म देकर तुरन्त उससे संबंध रहने वाली अभागिनी देवकी के मातृ-हृदय के उरवारों को कुसरोळारवाळवार ने बाम्ब रूप दे डाला है। शिशु की पिच्छाओं की कल्पना मन ही मन कर देवकी उस सुख से संबंध अपने को कोसती है।^१ बहु बच्चे से प्यार करने के लिए प्रतिक्षण तड़पती है।

वात्सल्य रस से रंजित गोपियों को ब्रजायना की संज्ञा दी गई है।^२ वात्सल्य भावना की मुख्य प्रतीक यशोदा ही हैं। पर कुछ अन्य गोपियाँ भी इससे भौत प्रांत हैं। इन गोपियों में वे ब्रजांगनाएँ जिनमें वात्सल्य प्रधान है। कृष्ण की बाल-सीसामा में जगका हृदय पूर्ण रूपेण रम जाता है। ब्रजायनाओं का यह वात्सल्य भाव बड़ी मैहता का बहाया गया है। यही भक्ति क स्तर में निष्काम रूप धारण करता है। आळवारी के वात्सल्य भाव पित्राणों ने परवर्ती कवियों को बहुत ही प्रभावित किया और वात्सल्य भक्ति की भी प्राथम्य प्रदान किया।

मधुर भाव

प्रबन्धम् में भक्त और मयबाध के बीच स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को धोपित करने वाले संदर्भों पर हैं। लोह में प्रेम क जितने भी भिन्न-भिन्न सम्बन्ध हो सकते हैं उन सबको आळवारी ने लोह से हटाकर ईश्वर क साथ बाँड़ा है। यहाँ तक कि ऐन्द्रिय विषयों में अमुरक्त सोंगों को संसार विषय से हटाने के लिए आळवार मत्ते ने ईश्वर को ही उनकी विषय प्राप्ति का साधन बटाया है। नम्माळवार, तिदमर्ग आळवार आदि ने भक्ति में स्त्री भाव को प्रमाणता दी है। लोह-पक्ष में जिसे हम शृंगार रस कहते हैं, भक्ति-पक्ष में बड़ी मधुर रस कहा जाता है। कृष्ण-भक्ति क क्षेत्र में स्त्री भाव का प्रतिनिधित्व गोपियाँ करती हैं। य कृष्ण में इतनी तस्तीन है कि उनकी काम रूपा प्रीति भी निष्काम होती है। अत संयोग और वियोग—दोनों ही अवस्थाओं में गोपियाँ का प्रेम एक रूप है। श्रीकृष्ण क प्रति गोपियों क अनन्य प्रेम को चित्रित करने वाले अनेक प्रसंग 'प्रबन्धम्' में हैं।

भक्ति के क्षेत्र में मायक-मायिका-सम्बन्ध को स्वतन्त्र रूप से प्रतिष्ठापित करने वाले आळवार भक्त ही थे। आळवारी ने ईश्वर से जितने भी सम्बन्ध स्थापित किये

१ वेदमात्र तिदमोळी ७-१ से १०।

२ ब्रजायनानुप्रबाहू "

तथा ब्रजायनानामानुभावोर्नवत ग्रह तासाईश्वरे पुत्रभावोर्नवते ।

तस्मात् सांप्रदाहृतम् । —भाष्यं चतुर्मास भावगवलीटिका

हैं, उनमें नायक-नायिका सम्बन्ध बहिक महत्त्व का है। इस मधुर-भाव को काव्य रूप देने के लिए आठवारों ने लौकिक प्रेम-व्यवस्था के क्षेत्र में प्रवृत्ति सभी कवियों का सहारा लिया है और उनके माध्यम से भौतिक प्रेम की अभिव्यक्ति की है। आठवार पूरे तमिल के सप्त-साहित्य के लौकिक प्रेम-काव्या में नायक-नायिका सम्बन्ध के सर्वोच्च विभाग—प्रेमों पक्षों की जिन दशाओं का निर्वाह किया गया था उन सबका आठवारों ने प्रयोग कर नायक-नायिका भाव से अर्थात् मधुर भाव से भक्त और ईश्वर के सम्बन्ध को पट्टी बार अभिव्यक्त किया था। नायक-नायिका के बचन के रूप में प्रेम के माना प्रकार के प्रसंग प्रस्तुत करने की परम्परा तमिल के प्राचीन साहित्य में चली आ रही है। अब तमिल में उपलब्ध सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'तोरुकाप्पियम्' वैवाचरणिक विषयों के अतिरिक्त कविता की सामग्री का विवरण भी प्रस्तुत करता है। यह ग्रन्थ "कृष्णोच्छ" पद्य में कविता-विद्या का परिचय देकर उन प्रसंगों की ओर संकेत करता है जिनका वर्णन रत्नानुसूति की परिष्कृति के लिए आवश्यक है। प्रती जीवन से सम्बन्धित प्रसंगों को एक सूत्र में बाँधकर उन्हें नाटक-सदृशों से युक्त एक धारावाहिक उपमास का रूप दिया गया है। प्रेम काव्य में 'तोरुकाप्पियम्' के अनुसार निम्न-लिखित प्रमत्ता का क्रमानुसार होना आवश्यक है।^१ सबसे पहले किसी सुन्दर प्राकृतिक वातावरण में नायक-नायिका का मिलन संयोगवत् होता है। एक-दूसरे के सौन्दर्य पूरा आदि से आकर्षित होने हैं। यह आकर्षण प्रेम में परिणत होता है जो प्रतिदिन विकसित होता रहता है। प्रेमी किसी बहाने से प्रेमिका से मिलने के लिए आता है। प्रेमिका की चलो से उद्यमता पाँवता है जो दोहा के बार-बार मिलने के लिए बसकर पैदा करती है। प्रेमी-प्रमिका का मुक्त मिलन होता रहता है और प्रेमी प्रेमिणी से गान्धर्व-विवाह भी कर लेता है। प्रेम की बात बढ़ती जाती है और आठपास के सीम बान्धनिक स्थिति का—उन दोनों के सम्बन्ध का अनुमान कर लेते हैं। समाचार फैल जाता है और क्रियो के बचन द्वारा गुरुजना तक पहुँच जाता है और प्रेमी-प्रमिका का परिणय मनाने का अनुमति माता-पिता से मिल जाती है। परिणय-पूर्व काल "कृष्ण" (प्राग्बर्ष वैवाहिक काल) कहलाता है। इस प्रेम-व्यवस्था के अन्तर्गत नायक-नायिका का प्रथम मिलन दोनों के एक दूसरे से प्रेम प्रवर्तन नायक के मुक्त आवसम के कारण मार्ग में गन्धाम्ब विपत्तियों का नायिका द्वारा निवेदन आदि अनेक प्रसंग आते हैं। परिणयोत्तर काल "कृष्ण" (शम्भार काल) कहलाता है। पति-पत्नी का प्रणय बसह, पति के अपन कार्य निमित्त विदेश चल जाने से पत्नी की बिछ-पेहना बिसाव या बिछ सङ्ग के उपयुक्त बचन शोभा का पुनर्मिलन आदि कई प्रसंग इस "कृष्ण" प्रेम-व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार के विभिन्न प्रसंगों का विलुप्त बहाने नायक नायिका यदि सहो दोहने वान आदि पात्रों के बचनों के द्वारा इन प्रेम-काव्य-व्यवस्था में

१: विलुप्त विवरण के लिए देखिए— कृष्णविमल पदु इरैय्यार कृष्णोच्छ ।"

प्रकाशक—श्री सिद्धाश्व भूर्पतिप्पु कलकत्ता, मद्रास ।

प्रस्तुत किया जाता है। एक और बात उल्लेखनीय है कि प्रेमी प्रेमिका के प्रेम-सम्बन्ध का समाचार सुनकर भी उनके माता-पिता उनके विवाह के लिए सहमत नहीं होते तो प्रेमी 'मडम' पर चढ़कर अपने तीव्र प्रेम की परीक्षा देकर प्रेमिका को प्राप्त करने की चापला करता है। प्रेमाग्रस्त नायक नगर के किसी बीराहे पर खड़े होकर अपनी प्रेमिका का बिना दिमाकर मह बमकी देता है कि प्रेमिका के न मिसने पर वह 'नडम' पर चढ़कर आरम-हत्या तक कर डालेगा। छाड़ की तीली शक्तियों से बने धोड़े पर सवार होने से शरीर में जोड़ सगती है और उससे खून बह निकसता है। यह प्रेम की परीक्षा है जिस पर उत्तीर्ण होने पर प्रेमी को प्रेमिका अवश्य मिल जाती है।

आळवारां न प्रम-काम्य की ऊपर बलिष्ठ पडाति को पुण-रूपेण अपनाया। संघ-साहित्य क बड़ी नायक-नायिकाओं के रूपन पाई सहेसी तथा दर्शक क पचन भादि प्रमर्शो को लेकर आळवारा ने प्रेम-सम्बन्ध का सर्वाङ्गीण विवेचन प्रस्तुत किया है। हम पत्रि म प्रेम के दोनों पक्ष—संयोग और वियोग—की सभी दशाओं का सर्गोपाग वर्णन किया जाता है। आळवारां न पूर्ववर्ती प्रेम सम्बन्धी काव्य कवियों से साम उठाकर लौकिक प्रेम के स्थान पर असौकिक प्रेम अर्थात् भक्त और परमात्मा के सम्बन्ध का स्पष्ट किया। इसी कारण प्रबन्धम् में संपूरीत अधिकांश रचनाएँ, विशेषकर सम्माळवार तिरमंग आळवार, कुलघसरयळवार और आंडाळ की रचनाएँ माधुर्य भाव से ओतप्रोत हैं।

आंडाळ का स्वतः सिद्ध माधुर्य भाव

जहाँ हमारे आळवारां की भगवान् के प्रति सपूर भाव को अमल्यत करने के लिए स्वयं को स्वी रूप में कल्पित करने की आवश्यकता थी वहाँ आंडाळ के विषय में उस कल्पना को भी आवश्यकता न थी। वह स्त्री थी। अतः उनका पुण्य रूप भगवान् से प्रेम सीधा था और स्वाभाविक भी। आंडाळ को कल्पन से ही "भुरसी माधव ने आकर्षित कर लिया था। वह भगवान् की अपनी पहनी हुई मासाएँ अपित करती थी और मुकुर में यह देसा करती था कि क्या वह सीसानायक को बरने योग्य है? आंडाळ का प्रेम थीर धीरे बढ़कर पूर्णवस्था को पहुँच जाता है तो उनकी निम्ति रूपण-मिसन के लिए भुली गावी की सी हो जाती है। वह कहती है—“बैसे ब्राह्मणों व यम म देवताभा को सकय करके अपित की जाने वाली हवि को कोई जमसी तियार भु पने मगै बैसे ही जमघर घंजघर भगवान् को सत्य करके जमरे हुए मेरे उरोजां को यदि मानवों के उपभोग्य बनाने की चर्चा बसी तो है मगम में जीवन धारण नहीं करूँगी।”

१ 'बानिई बानुम घग्गानबकु सरयवर बेम्बिदिस बहुत घवि बानिई तिनिशोर नरि पुनुनु बरप्पहुम भोपुनुम बेवरोप इनिईयाडी तंगु उत्तकमपु उमरत सरर एन त-मुसेबड गानिबब केन्दु परमुगडन बाठविस्तेन कण्ठाय मम्मपन ॥'
—नाटिकापर निरमोटी १ २१

आळवार की कविता प्रेम-वीरिता मारी की विभिन्न भावावस्थाओं का सुन्दर चित्र है। कभी तो प्रियतम से मिलने की आशा करती है कभी प्रियतम की निष्पूरता पर कसल-प्रसन्न करती है प्रिय-विषय विच्छेद में अपनी बयसीय स्थिति का वस्तुन करती है। मिश्रण के लिए तत्पर होती है। इस प्रकार के कितने ही भावों से आळवार के गीत आतमोत है। क्रोशिस मयूर आदि पेटन तथा मेघ शंख आदि निर्जीव वस्तुओं तक से प्रिय की बातें कर बैठती है और अपना सम्बन्ध प्रियतम तक पहुँचाने का मिश्रण सबसे करती है—“मन्द हाथी के समान बैठने वाला मेघो ! मुक्ता-मिषि बरसान वाले है बानिया तुम्हीं बताओ ! सुन्दर साँवरे की बात क्या रही ? हृदय में कामलि जल रही है और मसम पवन के रूप में बाहर भी अग्नि-आरा बह रही है। इस आभी रात में मैं इस तरह दोनों ओर से मुपस रही हूँ। मेरी इस वधा पर तमिळ तरस तो खाओ।” हे मेघो ! तिरुवैकट पर्वत पर बास करने वाले दीपसायी मयबाहु द्वारा दिया गया वचन कितना विचित्रसनीय का। अब वह रात से कितना दूर हो गया। वह पुरुष जो मोगों का रसाक कइसाता है, अज्ञान ‘स्वी-मता’ के रूप का कारण बना अगर इस प्रकार का अपभाव संसार में फैल जाय तो कौन रतकर बाहर करेगा। २

आळवार की दोनों रचनाएँ—“तिरुप्पाव” और “नाञ्चियार तिरुमाळी” मयूर-माध के महिषीय उदाहरण हैं। तिरुप्पाव में वीरुप्पा को प्रसन्न करने के निमित्त मोयिमों द्वारा प्राप्त प्रतर्पण (वत्सापिनी व्रत) का वर्णन है। “तिरुप्पाव” में आळवार स्वयं गोपा एनकर अन्य सन्निधियों को कात्यापिनी व्रत रखने के लिए आह्वान करती है। “नाञ्चियार तिरुमाळी” के छोटे वराक में आळवार ने स्वयं में माधव के साथ होने वाले अपने विवाह वर्णन किया है—

“सखि सुमयुर तपना रैसा।

अमुसुवन को घाटे रैसा ॥

धन सहस्र बरसत तन घाये।

पुर मय तोरन से प्रति भाये ॥

१. आमुत निवि केरियुम मापुकिन्काळ। केरुत्तु
चामत्तिनिरकोण्ड ताळान्न वातियने।
चामत्तीपुळ पुत्तुन्नु क्कुवय्यदु इटवयुम
पुयत्तोर तैन्दुमुक्कु ईकिन्नकाय नानिरुपेने।

—नाञ्चियार तिरुमाळी ८२

२. मत्तयान पोनेनुग मापुकिन्काळ केरुत्तु।
पतिपाट याळवीरकाळ। पतिर्बेबाव वणियेस॥
वये रैत्तानेमुम नील वयक्तार नरियारे।

—वही, ८६

बर-बर पट पर बहु जन आये ।
 रच गज सुम्बरतम बहु लामे ॥^१
 प्रियतम हरि को आत देखे ।
 लखि, सुनपुर सपना बैसा ॥
 अल मुहम ब शेल बरामे ।
 मपल पद मन-मोहन गये ॥
 लखित मध्यम में प्रिय आये ।
 कर में कर नै नेत्र मिलाने ॥
 मम प्रिय मायब को आते बैसा ।
 मुल बासी को अपनाते बैसा ॥^२

—(मावानुवाद)

बाँहाळ में वे सब आते बैसने को मिलती हैं, को योपिया में हैं । बाँहाळ ने श्रीकृष्ण की उपासना योपी माव से ही की थी । इस प्रकार बाँहाळ ने मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों के सम्मुख मधुर भाव का एक उच्च आदर्श खड़ा रखा था ।

'प्रबन्धम्' में योपी-प्रेम को चित्रित करने वाले अनेक प्रसंग हैं । योपियों के इस अनेक-रूप प्रेम की छोटी प्रमुख रूप से निम्नलिखित प्रसङ्गों में मिलती है —

- १—वेणु माधुरी और उसका प्रभाव,
- २—रास-लीला (बाळवारों की 'कुरबंकूच') ।
- ३—रास (बाळवारों की 'नयिली') और कृष्ण की केलि-प्रीड़ाएँ ।
- ४—भ्रमरवीथ (बाळवारों का 'भ्रमर-संगदश') ।

'प्रबन्धम्' के इन प्रसङ्गों में वर्णित योपी-प्रेम को परबर्ती कवियों ने बड़ी उत्तरता और निष्ठा के साथ हृदयमय एवं आत्मसात् कर अपनी सहज प्रतिभा और यक्ति-भावना से उसे और भी मिथान्त मन्मीर और हृदयकारी बना दिया ।

१ वेणु-माधुरी और उसका प्रभाव

योपियों का कृष्ण की ओर आकृष्ट करने में श्रीकृष्ण की मुरली का बड़ा हाथ है । कृष्ण के मुरली-बाज में एक अद्भुत शक्ति है जो समस्त अह-वैतन जगत् को अपने वध में कर लेती है । 'प्रबन्धम्' में वेणु-माधुरी के प्रभाव का बड़ा ही विलुप्त वर्णन है । परबर्ती कृष्ण भक्त-कवि इससे बहुत प्रभावित हुए हैं और इसका प्रतीकार्य भी लिया गया है ।

मुरली की ध्वनि सभी प्राणियों के मन को हर लेती है । उनका सबसे अधिक प्रभाव योपियों के हृदय पर पड़ता है । 'पिरियाळवार तिरमाळी' के तीनों शतक के

छठे दशक में मुरली-भाबुर्न और उसके प्रवास का सुन्दर वर्णन है, जो संक्षेप में भीषे दिया जाता है —

‘कृष्ण ने अपने पवित्र अंगर में मुरली को रखकर बजाया । किशोरा आश्चर्य । उस ध्वनि को सुनते ही कौमुद्वल से पूरित स्तनवासी गोप कुमारिकाओं के कोमल शरीर पुलकित हो गये और वे प्रभाववश छास, समुर जादि के बन्धनों की भी परवाह न कर बाहर भायीं और सूक्ष्म पुष्प-समूह की तरह एकत्रित हो गयी ।’^१

‘गोविन्द ने अपने चिबुक के बायें भाग को बायें मुँह की ओर झुकाकर, दोनों हाथों को मुरली पर रखकर अपनी झकड़ियों को एक बिलसल प्रकार से कर, हवा भरकर भीषे के जोठ को संकुचित कर बेलु को बजाया । उस समय मृगप्रवली मयूर-सम-सुन्दर गोप-कुमारियों के केश-बन्धन छूट गये ।’^२ (कामवश) अस्त-व्यस्त होने वाले भरणे वस्त्रों को अपने कटों से सम्भाल कर वे कृष्ण की ओर देखती रहीं ।”

‘गोविन्द ने जब बेलु-गात किया उस समय उसके नाच-आत में फँसकर अप्सरायें भी कुम्हारन की ओर भायीं । कुम्हारन में आकर पिसे हुए मन आनन्दामु से पूरित पुष्प-सम-नयन हीली बनी लट पसीजे हुए ललाट से छुट होकर भग्न होकर बेलु-गान का आनन्दान कर रही थीं ।”^३

- १ ‘नाचनम वेरिय हीचिनिन बालुन मतीवीरकळ । इहु घोर मपुदम कळीर सुखलम्पुत्तियुवय तिवमात सुय बायिल कुळलतोरी बळिय कोबलर चिबमियर इळ कुली कुलुकमिण्य उडलुळबिम्बु ऐंगुन कामलुम कडमु कविस्मर्त पाति वन्नु कविन्नुनिम्पुनरे ।’

—वेरियाळवार तिवनोळी ३-६ १

- २ ‘इडवळी इडलोळीनु बाइत्त
इरळ कूटपचवम नेरिन्नेर
कुडवमिष पडवाय कड कुड
गोविन्दन कुळलतोडु कविन वोडु
मडमधिल्लतोडु नागपिरी वोले
मदीवारकळ कूतल धविळ निम्पुनरे ।

—वही, ३६२

- ३ “
कानिळम पडिपर वन्नुबंतीन्नी
मन मुडकि धतकळ्ळकळ वनिण्य
तैमळु वेरि कूतलविळ्ळवेनि
वेरन्नेवि वेत निम्पुनरे ।”

—वही, ३६३

'कृष्ण के बेलु-नाद का सुनकर तिलोत्तमा उबंसी रग्ना आदि अप्सरायें भी मोहित हुई और अपने नृत्य गान तक को छोड़कर स्वर्ग और मुक्तोद के बीच में स्थिर रह गयीं ।'^१

'बलु-नाद का प्रभाव इतना था कि बीला बजान में निपुण तबल मारवादि महयिया ने बीला-नादम को उत्काम त्याग दिया । किन्नर नामक दैव-जाति के लोग अपने किन्नर वाद्य को आगे न धूने की धपन कर मिथित हो गये ।'^२

कृष्ण की अत्यन्त मृदु उ गतियीं मुरसी क छिन्नो पर बसने लयीं । साध कमल-सम नेत्र बर हो गये । बली बजाने के परिधम से मूल केवित हो गया । मीठों के ठपर पचीने की बूँदें बम भयीं । इस प्रकार भोग श्रेष्ठित सौन्दर्य क साथ गोविन्द द्वारा बंधी बजाते समय पक्षियों का समूह भीड़ त्यागकर भा गया और कृष्ण क सामने इस प्रकार फैल गया मानों काटे हुए वृक्षों का बन ही सामन पड़ा हो । गायों के भुण्ड पर फैलाकर छिर झुकाकर कानों को बिस्तृत हिमने भी नहीं देते थे (क्योंकि कान के हिमने स गानामृत के नष्ट होने का स्वाभाविक मय उन्हें था) ।'^३

१

मेगधेयोऽनु तिलोत्तमं धरन्ते
उद्वलितपरवरं केतुकि मपपी
बानकम पद्मिनि बाम तिरपिमूरी
आशमवाहमभारिणर तामे ।'

—पेरियाळवार तिरुमोळी ३९४

२

गम्भारबुडेय तुम्बुर घोऽनु
गारबनुम तम तम भीमं परम्पु
किन्नर मिबुनैकमुम तम तम
किन्नरम तोऽनुकिलोमैयुनरे ।'

—वही ३९५

३

बिब विरललल तडबोवरिमारबेकम
बोडबेम्बाम कोवळिय
कुडनयैयुडवम कुडतिप्य
पोविन्दन कुडल बोऽनु कडिन पोऽनु

परबयिन यमळळ कडु पुऽरम्पु
बम्पु बून्पु पडुकाडु चिक्कप
करबेयिन गम्भळळ काल परप्पिरुडु
कविळितरंली बेविवाडु विस्ताने ।'

—वही, ३-१-८

“मुरली के सुमधुर नाद को सुनने वाले मृगयारु को समीपवर्ती बगों में खर रहे थे तत्क्षण बास करने को भी मूल गये। खाने के लिए मुँह में पहासे से रखी बास के बीरे बीरे नीचे गिर जाने का भी ध्यान नहीं करते थे। अमृतमय मंजीर-बास में फँसकर बेसुध हो गये। इधर-उधर लेशमात्र भी न हिलकर गतिहीन हो खिन्नि हुए बिना की भाँति निस्तब्ध भाव से बड़े रहे।”^१

२ रास-सीता (भासचारों की ‘कुरवैकूट’)

यद्यपि ‘प्रबन्धम्’ में कहीं भी ‘रास’ शब्द का प्रयोग नहीं है, तथापि रास-सीता का बीजा वर्णन परवर्ती साहित्य में मिलता है, ठीक उसी का वर्णन ‘कुरवैकूट’ प्रसंग के अन्तर्गत ‘प्रबन्धम्’ में मिल जाता है। तमिळ-प्रदेस में कई जगहों पर प्रचलित की जिनमें कृष्ण द्वारा गोपियों के साथ किये गये बनेक प्रकार के नृत्यों के उल्लेख हैं। इन नृत्यों में ‘कुरवैकूट’ का विविष्ट स्थान प्राचीन तमिळ ग्रन्थों में बताया गया है। आठवार पूर्व यथोक्त काल की रचना ‘विमलविहारम्’ में इस ‘कुरवैकूट’ का उल्लेख है जिसकी आठवारों में ‘प्रबन्धम्’ में अपनाया है। श्री दीक्षितार कुरवैकूट का परिचय देते हुए लिखते हैं —

“This Kuravai Kuttu, we proceed to identify with Rasa Krida which is described in Bhagavata (X Ch. 33) According to a description in the Silappadikavam, the celebrated Tamil classic of 2nd Century A D seven or nine Cowherdesses engage in it each joining her hands to those of another This dance is said to have been originally danced by Krishna with Cowherdesses.”²

इसी कुरवैकूट का वर्णन ‘प्रबन्धम्’ में मिलता है या रास-सीता में साम्य रक्षता है। ‘प्रबन्धम्’ में मिलने वाला रास-सीता-वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है — “सुन्दर सुगन्धित वनमाता श्रीकृष्ण के कमर पर घोमित है। सुन्दर-वंश से युक्त मुकुट को सिर पर धारण कर, सुन्दर मुकुट के कमर पर बाँधकर कानों पर सुमनों के गुच्छे रखकर सौम्य मुक्त कुसुमा से घोमित कुतुम्बवासी गोप-कुमारिकाया क बीच कुरली बजाते हुए”^३ कई मोहित कर उनके करों को अपने करों में मकर नृत्य करते

१ ‘अष्टम मास गणपति मेहक मरुतु

मेहक कुसुम कईबाय बलि बोर

इरुतु बायुम तुनु गायुने देवरा

एळुतु चित्तरेण्ड कोलेनिष्ठनने।” — पैगियाळवार तिरुमोळी, ३६-६

2. “Krishna in early Tamil Literature” article by Sri V R R. Dikshitar in “Indian Culture” Vol IV (37-38), pp 267-70.

३ पैरमात्र तिरुमोळी ३६

४ तिरुवायमोळी, ४२-२

मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले 'प्रबन्धम्' के तत्त्व] २०५

करते^१ आनन्दित होते थे। राहुद ब्रह्म और लमत का-सा आनन्द लेते हुए^२ श्रीकृष्ण में लक्ष्मीवती कुमारिकाओं के साथ खेलते-खेलते प्रेम प्रवाह बहाया था।^३

आठबारों के कुम्भकृत-वर्णन में परवर्ती संस्कृत साहित्य में रास-लीला की संज्ञा प्राप्त की होती।^४

३ राधा (आठबारों की 'मप्पिन्नी') और कृष्ण की केलि-क्रीड़ाएँ

कृष्ण की प्रेमिकाओं में तमिल ग्रन्थों में 'मप्पिन्नी' का विशिष्ट स्थान बताया गया है। प्रबन्धम् में ही नहीं बल्कि उससे पूर्व के 'चित्तमणि' 'चित्तपथिकारम्' 'मणिलेखनी', आदि ग्रन्थों में कृष्ण की प्रमुख प्रेमिका 'मप्पिन्नी' का उल्लेख है। आठबारों ने भी 'मप्पिन्नी' का वर्णन कृष्ण की प्रमुख प्रेमिका—घोषी के रूप में सर्वत्र किया है। कृष्ण-मप्पिन्नी की केलि-क्रीड़ाओं को सूचित करने वाले अनेक प्रसंगों का वर्णन प्रबन्धम् में है। तमिल कवियों के अनुसार वह लक्ष्मी का अवतार है। कृष्ण ने तत्कालीन प्रथा के अनुसार सात घुप्यों को बध में कर कन्याशुक्र के रूप में 'मप्पिन्नी' को प्राप्त किया था। मप्पिन्नी के अपरिमित सौन्दर्य का वर्णन अनेक स्थलों में किया गया है। "मुम्बर कुत्तलवाली मयूर जैसी कोमल देहवाली मप्पिन्नी" का उत्कृष्ट पैरियाळवार में किया है। आठबारों भी 'तिरप्पाय' के पदों में वहाँ ने अपने का घोषी मानकर भक्त घोषियों को बसाने का वर्णन करती है वहाँ श्रीकृष्ण की प्रमुख प्रेमिका (मप्पिन्नी) का भी उल्लेख करती है :—

“आयो घो मप्पिन्नी” हैमी ।

लक्ष्मी रूपे कुम्भकृते ।

विबलमाधवपुण्डपुशोमे ।

सूक्तक दितटे कुटिल कये ।

१ तिरनेकुत्ताण्डकम् १६

२ तिरवायमोळी ८-८-४

३ पैरिय तिरमोळी १-८-८

४ “इसके अतिरिक्त कुरबंजुट्ट नामक तमिल नृत्य-विरोध का भी इसी लीला प्रसंग में उल्लेख है। श्रीकृष्ण इस नृत्य में स्वयं भाग लेते थे। यह नृत्य श्रीकृष्ण की रासलीला का समकक्ष प्रतीत होता है। अतः पाँचवीं-छठी शताब्दी में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बल्लि के आठबारों के लक्ष्मीवती और राधाकृत घुपस केलि-विनोद का कोई न कोई रूप विद्यमान था जो परवर्तीकाल में और स्पष्ट होता गया।”

—राधाबल्लभ मध्वाय मिश्रान और माहिष्य डा० विजयेन्द्र स्वामिन

वर्णन-वर्णन आभार-जीवन

सुम प्रियतम को दे करके ।

॥११॥

यही 'नप्पिन्नी' परवर्ती संस्कृत साहित्य में तथा उसके माध्यम से मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति-साहित्य में 'राधा' नाम धारण करती है।^१ श्री बीसितार ने लिखा है — 'We venture to conjecture that Nappinnal is the Tamil name of Radha.'^२

४ भ्रमर-गीत (आसुवारों का भ्रमर-सन्देश)

'प्रबन्ध' में कृष्ण वियोग में तरपने वाली नायिका द्वारा कृष्ण के पास सन्देश भेजने के अनेक प्रसंग हैं। जब नायिका नायक के आगमन की प्रतीक्षा कर बड़ जाती है तब वह कोकिल भ्रमर आदि चेतन प्राणियों से रात में आदि निर्जीव वस्तुओं से अपनी स्थिति का परिचय देकर निर्दयी स्वामी के पास सन्देश ले जाने की प्रार्थना करती है। इनमें भ्रमर द्वारा सन्देश भेजने के प्रसंगों का उपयोग "सिद्धम आळवार और नम्माळवार ने किया है।"^४ इन प्रसंगों में प्रेम-पीड़ित नायिका (नीयिनी) निर्दयी नायक (श्रीकृष्ण) के पास सन्देश भेजती है। इस सन्देश में नायिका की दुर्दशा का हृदय-द्रावक वर्णन है नायक की निर्दयता कष्टपूर्ण व्यवहार आदि का भी उपासमं भरे सन्धों में वर्णन है। इसी प्रसंग का विस्तार कर परवर्ती कवियों ने 'भ्रमरगीत' काव्य रचा होया।

१ सिद्धमार्थ—२० (श्री नन्दुरी रंगाचार्य का अनुवाद)

२ इनमें कृष्ण के साथ उनकी एक प्रमुख गोपी का भी वर्णन है। इस गोपी का नाम 'नप्पिन्नी' है। कल्पना की जा सकती है कि यह राधा ही है।
—डा० एमि अचवाल हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पुर पुराणों का प्रभाव

पृ० १६२।

३ V R R Dikshitar "Indian Chitras" Vol. IV (37-38)

pp. 267-70.

४ (१) वैद्य तिलकोटी ३-६१ से १०

(२) वही, ४४१ से १०

(३) तिरुविचलन १४

चतुर्थ अध्याय

‘भक्ति : तुलनात्मक अध्ययन’

बालवार भक्त और १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि भक्ति-सुलनात्मक अध्ययन

भक्ति की व्याख्या और महिमा

‘साधना’ और ‘उपासना’ का अर्थ मार्गों की ओरता अधिक भक्ति-व्यप की घेष्टता और महत्ता का प्रतिपादन बीपुब चितन-धारा का मबस ठेका स्वर रहा है । ‘भक्ति का मूल व्युत्पत्त्यर्थ है भगवान् का सेवा प्रकार’^१ । किन्तु भक्ति की परिभाषा इस अर्थ तक सीमित नहीं रही । भगवान्, भक्त और उनके सम्बन्धी की विभिन्न व्यवस्थाओं के आधार पर भक्ति के अर्थ में संकोच या विस्तार होता रहा ।

भक्ति की सबसे अधिक प्रचलित और सरल परिभाषा भक्तराज दादिस्य की है, जिनके अनुसार ईश्वर में परा अनुक्ति ही भक्ति है । दादिस्य ने धारमरति के अविरोधी विषय में अनुराग को भी भक्ति कहा है ।^२ अविच्छिन्न रूप में कुछ आरम स्वरूप में रत रहना ही आरम रति है ।^३ इस प्रकार जहाँ दादिस्य की प्रथम परिभाषा ईश्वर में समुल रूप के उपासकों की दृष्टि में है, वहाँ दूसरी में निधुल अभ्यक्त की उपासना करने वाला के दृष्टिकोण का भी समावेश है ।^४

“नारद भक्ति-मूत्र” में बताया गया है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है ।^५ नारद जी ने आपे लिखा है कि ‘भक्ति अमृत स्वम्पा है, जिसका पाकर मनुष्य सिद्ध और मुक्त हो पाता है जिसे पाकर मनुष्य किसी भी बन्धु की दृष्टि नहीं

१ यह ‘भक्त’ सेवापाय धानु से भाव में ‘चित्तम्’ प्रापय सपाकर बना है ।

२ “सा बरानुरक्तिरीकरी”—दादिस्य भक्ति-मूत्र २ ।

३ “धारमरतिविरोधेनैति दादिस्य”—नारद भक्ति मूत्र संख्या १८ ।

४ प्रेम दर्शन—१८ में मूत्र की व्याख्या पृ० २४ ।

५ प्रेम दर्शन—पृ० २४ ।

६ “सा स्वस्तिम् परम प्रेमदया—नारद भक्ति-मूत्र २ ।

करता। न बहु शोक करता है, न बहु दुःख करता है। न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न उस वस्तु से उत्साहित होता है। वह आत्मानन्द के साक्षात्कार से सांसारिक विषयों से निरलस होकर मस्त रहता है।^१ तारक जी के मत से कोरा प्रेम भक्ति नहीं है। माहारम्य ज्ञान अपेक्षित है। कोरा प्रेम पार प्रेम सा है।^२

भीमव्मागवत में भक्ति का सधरण इस प्रकार दिया गया है—‘मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म बही है जिसके द्वारा भगवान् कृपण में चकित हो भक्ति ऐसी हो जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे। ऐसी भक्ति से आनन्द स्वरूप भगवान् की प्राप्ति करके भक्त हृत्कृत्य हो है।^३ भगवत्कार के अनुसार सम वृत्ति को भक्ति कहते हैं जिससे सांसारिक विषयों का ज्ञान देने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक वृत्ति निष्क्राम रूप से भगवान् में लग जाय।^४

श्री निम्बार्कचार्य का मत है कि क्पादि विषयक कर्पात् भगवान् के रूप गुण आदि के विषय से समग्र चित्त को व्याप्त करने वाली मनोवृत्ति ही उत्कृष्ट भक्ति है।^५

श्री बल्लभाचार्य ने भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की है—भगवान् में माहारम्य ज्ञान पूर्वक मुहक और सतत स्नेह ही भक्ति है। भक्ति का इससे अधिक सरल कोई दूसरा उपाय नहीं है।^६

तारक पांचरात्र के अनुसार प्रेम परिसुप्त मन का भगवान् के प्रति स्वार्थ रहित होकर सदा प्रवाहित होते रहना ही भक्ति है।^७ “भक्ति रसायन” में भक्ति की

१ समस्त स्वरूपा च (१) मस्तस्वभा पुमान् सिद्धो भवति समुतो भवति तुप्तो भवति (४) मारक-भक्ति-गूढ ।

२ पराप्रप्य न किञ्चिदुपलभति न शोचति न द्वेष्टि न हसते मोक्षसाही भवति (३) तत्रापि न माहारम्यज्ञानस्वाभाविक-भगवत्स्वरूप (२२) तद्विहीन आराधनाभिः । (२१)

—नाम्न भक्ति-गूढ ।

३ तत्त्वं तुलां परोक्षमो यतो भक्तिरप्योद्यते ।

यद्युत्तम्य प्रतिहृता यमप्रपन्ना तंप्रसीवति ॥—भाषवत १२९ ।

४ भाषवत रचय १ अध्याय २१ श्लोक ३२ ३३ ।

५ “इन्द्रिय-वृत्ति बहवश्चिद्विपरस्वभाविक-भगवत्स्वरूप गुणादि विषयक-वाक्यरूपयति मनोवृत्तिः”

—भगवत् सम्प्रदाय नि० श्री बमदेव उपाध्याय पृ० १४८ से उद्धृत ।

६ माहारम्य ज्ञान पूर्वस्तु मुहकः शक्तोपिहः स्नेहो भक्तिरति प्रोत्तरतया मुनितनवाप्यता ।

—उत्तार्पदीप निबन्ध ज्ञान नापर बम्बई दलीट ४६ पृ० १२० ।

७ मनोवृत्तिरविचिन्ता हरी प्रमपरिष्कृता ।

प्रतिर्तिविनिष्ठ स्या भक्तिर्विज्जनाचरी ॥—भाष्य वापरात्र

व्याख्या इस प्रकार की गयी है—“भक्त की उस वृत्ति को भक्ति कहते हैं जो आप्सारिक साधना से शरीरमुक्त होकर भगवाद् की ओर प्रवाहित होती है।”^१

श्री कृष्ण गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ—‘हरि भक्ति रसामृत सिङ्घु’ में भक्ति की अत्यन्त विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने भक्ति का यह साराण दिया है—“श्रीकृष्ण का अनुकूल रूप में अनुशीलन जिसमें श्रम किसी प्रकार की अभिसाया न हो और मान कर्म जादि का उस पर आबरण न हो ता भक्ति कहलाती है।”^२

‘आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति की परिभाषा करते हुए लिखा है—“यदा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। जब पूर्य मान की वृद्धि के साथ यदा भावना के सामीप्य-साम की प्रवृत्ति हो उसकी सत्ता के कई रूपों के साधनाकार की वाचना हो तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए।”^३ वास्तव में भक्ति प्रेम का ही स्वरूप है। प्रेम में जिस प्रकार विपन्न हाजी है, उमो प्रकार भक्ति में भी होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति की व्याख्या विद्वानों में अपने अपने ढंग से की है। सारांशतः यह कहा जा सकता कि ईश्वर के प्रति भक्त का परम प्रेम (अथवा सम्मान) ही भक्ति है जो मईतुनी है और जो मोक्ष-प्राप्ति के लिए सरल परम्पु राजमार्ग है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भक्ति की व्याख्या में आचार्यों ने विशेष रूप से सेवा प्रेम और अनुरक्ति को ध्यान में रखा है।

आठवार भक्तों ने और आनन्द-आसीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने भक्त-जीवन की रम्य भूमिका प्रस्तुत की है। आठवारों का नित्य जीवन का क्षण-क्षण तन्मयावस्था का सजीव उदाहरण था। ‘प्रबन्धम्’ इसका दिव्य प्रमाण है। अत्यन्त आठवार भक्त भक्ति के वैज्ञानिक विवेचन से पचड़े में नहीं पड़े। भाये जाने वाले भक्तों के लिए जो मार्ग उन्होंने उन्मुक्त किया उगी पर बसतार परबनों आपाओं ने जीवन की वृत्तव्यता समझी। अतः ‘प्रबन्धम्’ को भक्ति का सद्य ग्रन्थ ही मानना चाहिए। भक्ति के साराण विवेचन आदि का कार्य परवर्ती आपाओं का था। फिर भी आठवारों के साहित्य तथा आनन्द-आसीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के साहित्य में भक्ति के विविध रूप के दर्शन होने ही हैं। भक्ति का वास्तवीय विवेचन न करने पर भी आठवारों ने तथा आनन्द-आसीन हिन्दी कृष्ण भक्त-कवियों ने भक्ति की महिमा का गायन अवश्य किया है। आठवारों ने योग वारस्या आदि को व्यर्थ मित कर

१ इत्यस्य समबद्धमन् पाठसहितोक्तता।

सदेने जनतो भक्ति भक्तिरित्यामिमीयते ॥ —भक्ति रसामृत १३

२ “धम्मनिताजिता धूम्यं ज्ञानदर्मात्तमावृत्तम्।

धानुबुद्धेन कृष्णानुगतम भक्तिरसमा ॥

—हरिभक्ति रसामृत सिङ्घु पूर्ण विमल लहरी पत्रिका ११।

३ विस्तारवि (भाग १)—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ० ४० संस्करण १९८१।

भक्ति की ही सरल तथा निश्चित रूप से फल देने वाली कहा है ।^१ साधारण दुख से छुटकर परमानन्द प्राप्त करने के लिए योग तथा इत्यादि सब व्यर्थ है, केवल भक्ति ही बंधुष्ट-प्राप्ति करा सकती है ।^२ भक्ति से जो सुख मिलता है, वह स्वर्ग के सुख से भी श्रेष्ठ है ।^३ वसिष्ठ के दुष्प्रभाव को दूर करने के लिए एक मात्र साधन भक्ति है ।^४ भक्ति-पथ पर आकर व्यक्ति कभी नरक नहीं पहुँच सकता ।^५ भक्ति के बिना जीवित व्यक्ति अपनी माँ के गर्म को कर्मजित करने वाला है ।^६ आठवारों के अनुसार वह जीव जीव नहीं है जिसने हरि की भक्ति नहीं की । वह जीव अपराधी है पृथ्वी के लिए मार-स्वरूप है तथा वह भीखी ही मरक भोगी है । तन्माळ्वार ने कहा है कि भगवान् भक्तों के लिए सुख है, दुस्तरों के लिए दुःख है ।^७

आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण भक्त-कवियों ने भी मुक्त कंठ से भक्ति की महिमा घोषित की है । मुरदास जी ने कहा है कि भक्ति के बिना भगवान् दुःख है ।^८ नन्ददास भक्ति की महत्ता का वर्णन करते हुए भगवान् से प्रार्थना करते हैं— हे भगवान् तुम्हारी वीर्यपथी भक्ति के बिना कोई सिद्ध भी मुक्ति नहीं पा सकता । ज्ञानी योगी तथा कर्ममार्गी लोगों को परम पद पाना बहुत कठिन है । अष्टांग विधि के अनुसार कर्म करते हैं । किन्तु अन्त में तुम्हारी दारण आकर और तुम्हारी भक्ति पाकर ही

१ वेरिय तिदमोळी १ २ २ ।

२ नामुलन तिदवन्तादि ७२ ।

३ तिदवाय मोळी ५ २ १० ।

४ तिदमार्त २ ।

५ इरव्टाम तिदवन्तादि २१ ।

६ वेरियळ्वार तिदमोली ४ ४ २ ।

७ "वत्त ईयदियवदवकेळियवन विरक्तमुक्तरिय ।
वितकन भलरमवळ विदमुन नम भवमपेदमविकळ
मत्तव कई वेरुन वळविनित उरविदे पाप्पुण्डु
एतिरन उरतिमोडु इवविदमु एगिय एळिव ।

—तिदवायमोळी १ १ १ ।

८ हे जन तमुमि सोवि विचारि ।

भक्ति बिनु भयवत दुःखन कहत नियम मुकारि ।

+ + +

गुरु श्री योगिन्द नन्दन बिनु कहे दोऊ नर शारि ।

—गुरु सागर (प्रथम स्कण्ड) पर संख्या ३०२, भा० प्र० ल० वाली ।

मुक्ति-साम प्राप्त करते हैं।^{११} श्री हित हरिर्बन्ध मनुष्य शरीर की सार्थकता भक्ति से ही मानते हैं — मानुष को तन पाई भजो रघुनाथ बा।^{१२} श्री हरिराम व्यास ने भक्ति को ही भवसागर से पार जाने का एक मात्र उपाय कहा है तथा उन्होंने भक्ति क अतिरिक्त अन्य सभी मार्गों को असत्य माना है — सब तारिखे को एक उपाय।^{१३} — सभी भक्ति और सब भूतों।^{१४}

सगुण निगु न ब्रह्म और भक्ति

भक्ति जिस उपास्य देव के प्रति होती है, उस आराध्य ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं—निर्गुण या परब्रह्म और सगुण या अपरं ब्रह्म। सगुण सविषय साकार और सोपाभि है निगुण गुण विषेपण साकार और उपाभि से परे है। निगुण ब्रह्म वह है जिसे किसी विषेपण, बिम्ब या सदाण से सजित नहीं किया जा सकता। सगुण ब्रह्म वह है जिसको किसी गुण बिम्ब या विषेपण द्वारा पहचाना जा सकता है और जिसका स्वस्व हृदयगम किया जा सकता है। वास्तव में ब्रह्म निराकार भी है और साकार भी। आळ्वार भक्तों ने यद्यपि ब्रह्म के दोनों रूप—सगुण और निगुण माने हैं तथापि उन्होंने सगुण ब्रह्म की महत्ता स्थापित की है। योगीआळ्वार का कथन है— “भक्त जिस रूप की चाहते हैं, वही उसका रूप है जिस नाम को चाहते हैं, वही उसका नाम है। भक्त जिस ढंग से भी उपासना करें उही ढंग से बिष्णु भगवान् उनका उपास्य बन जाता है।”^{१५} आळ्वार जन्मपामी निगुण ब्रह्म का भी वर्णन करते हैं और

- १ सब बिधि कहत ग्यान है कोई, भक्ति बिना सोइ सिद्ध न होई ।
तुम्हरो भगति प्रमी रस सरवर, मोक्षादिक जाके बस निर्हार ।
तिहि तजि के कैवल्य ओष को, करत कलेस बित्त ओष को ।

+ + +

हो प्रभु बहुतक भोगी, तजि तजि भोग भये मन ओषी ।
हृद ध्यांग ओष प्रभुसरे, ग्यान हेतु बहुते तप करे ।
प्रति भव जाति कहीं तें छिर, तुम कहैं कर्म समर्पण करे ।
तिनकर गुण भयो मन कर्म सब लीनो प्रभु तुम्हरे कर्म ।
काया प्रबल करि पाई भक्ति, जामे संग छिरत सब भुक्ति ।
ता करि प्राप्त तत्त्व को पाई बैठे सहज परम पति पाई ।

—वचन स्कन्ध अध्याय १६ मन्दवास-गुप्त पृ० २६१ ।

- २ श्रीहित स्फुट वाली बी पृ० १ ।

- ३ व्यास वाली, पृ० ८६ ।

- ४ वही, पृ० ८७ ।

- ५ “तमबन्ध एवमुदयम प्रबुद्धम ताने
तमस्कन्धनु एषेर नृपेर-तमदरुनु
एव्यन्मम विबित्तु इमपादिरुपरे
प्रबन्धमात्रियाणाम ।”

—मुरम तिरवन्तादि ४६ ।

साम ही साथ रत रूप सगुण ब्रह्म का भी । किन्तु उन्होंने सगुण ईश्वर की उपासना का ही विधि महत्व दिया है । आठवारों के अधिकांश पीठ विभिन्न मन्दिरों में विमुपित भगवान् के अर्चावतार स्वरूपों की स्तुति में रचे गये हैं । उनके आराध्य सगुण ब्रह्म हैं जिनके विशिष्ट गुणों रूपों और शक्तिया का मायोपाय वर्णन उन्होंने प्रस्तुत किया है । नम्माळ्वार ने सगुण साकार ब्रह्म को ही सर्वमुत्तम सिद्ध किया है ।^१ अधिकांश आठवारों ने सगुण ईश्वर की उपासना का भाव ही अपने पदों में प्रकट किया है । अनेक पदों में उन्होंने अपना यह निश्चित मत तथा अनुभूति प्रकट की है कि सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप में सुपम और दीप्त फल देने वाली है । पेरियाळ्वार का विभिन्न चेष्टाएँ करने वाले भक्त्यात्म भगवान् के नाम-रूप ही अधिक प्रिय है । माण्डाळ सीमानायक कृष्ण के मनमोहन रूप पर मुग्ध हैं । स्पष्ट है कि आठवार सगुण ब्रह्म का उपासक हैं ।

आलोच्यकासीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने भी सगुण भक्ति पर जोर दिया है और कहीं-कहीं निगुण भक्ति पर ध्यान रखा है । सूरदास और मन्मदास के भँवर पीतों का गोपी-उदय-संवाद इसी सगुण-निगुण एवं भक्ति ज्ञान के विचार का प्रकट करता है । इन कवियों ने सगुण ईश्वर की भक्ति को अधिक प्रभावशाली सिद्ध किया है । सूरसागर के आरम्भ में 'अपिगत गति कछु कहत न थावै' वाले पद में सूरदास ने निगुण उपासना में होन वाली कठिनाई का उल्लेख किया है । वे कहते हैं—“निगुण ईश्वर की गति न तो कहने में आती है और न उस अभ्यक्त पर मेरे मन की भावमयी कृति ही ठहरती है । इसलिये सब प्रकार से अभ्यक्त ब्रह्म तक पहुँचने में अपने को असमर्थ पाकर मैं सगुण ईश्वर की भक्ति करता हूँ और उनकी सीमा के पथ गाता हूँ ।^२ परमानन्ददास ने भी एक पद में सगुण भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए, निगुण उपासना की योग-यापना का काशी में प्रचार करने को कहा है, और कहा है—“भक्त सगाकर उदासी बध पारण करने वाले संस्थाधी लोग कभी में हैं । हम तो यही ब्रह्म में सुन्दर स्वाम के उपासक हैं ।”^३ नन्मदाळ ने भी निगुण ईश्वर की

१ तिरुवायमोळी ३ ६ ११० ।

२ अपिगत गति कछु कहत न थावै ।

ज्यों धूँप भीठे पल को रत प्रसरपत ही थावै ।

परम स्वार सबही गु निरन्तर अमिन तोव उपजावै ।

मन-बानी को अपम-अपौचर, सो जानै जो पावै ।

बप देख-मुक्त-जाति-अगति-बिनु निरासंभ रिज पावै ।

सब जिहि अपम विचारहि तातें मुर लगन-बद पावै ॥”

—सूर सागर (प्रथम स्कन्ध) प० सं० २ भा० प्र समा काशी ।

३ अनि अनि बुझाइन के पासी ।

नित प्रति करन कमा धनुरापी स्वामा स्वाम उपासी ।

पा रण की जो मरम न जाने आप बसी मा कासी ।

—परमानन्द सागर (भ० डा० पाकपन काप गुप्त) प० सं० ३१६ ।

कुलभञ्जा तथा उसको छोड़कर सगुण ईश्वर की भक्ति को अपमाने का भाव प्रकट किया है ।^१

मीरा के प्रभु तो गिरधर नाम हैं । मीरा ने भगवान् के सगुण रूप को ही स्वीकार किया है । वे कहती हैं —

तू नागर मन्त्रमुमार, तो छौं लाम्यो मेहरा ।
मुरली मन हर्यौ, बिसर्यो प्रहृष्योहारा ॥^२

मीरा—

मेरो मन बसिगो गिरधर नाम सौं ।
मोर मुकुट पीताम्बर, गन बजसो भास ।
गङ्गा के सम डोमल, हो अनुमति को लाभ ।
कात्तिबरी के तीर हो, कागड़ा गङ्गा चराय ।
× × ×
मीरा के प्रभु गिरधर हो, मुनिये बिस लाय ।
तुम्हरे बरस की भुखी हो मोहि कसु न सोहाय ॥^३

रसज्ञान में निपुण ईश्वर और भक्ति के विषय में कोई कथन नहीं किया । परन्तु उन्होंने जितना भी वाक्य लिखा है उससे उनकी भक्ति सगुण ही रही या सरसी है । रसज्ञान के निम्नलिखित सर्वमैं से स्पष्ट है कि उनके दृष्ट नहीं गोपी-वत्सल कव्य है :—

‘गावैं गुनी मनिका दम्बक और सारख छैल सबै गुन गाव ।
नाम धनगत मनन मनैस सो, बड़ा बिसोचन पार न बावैं ॥

१ धन बिचि कहत कि निर्भुच ज्ञान, तिहि समान कुपेठ नहि ज्ञान ।

× × × ×

जाके रूप न रस न किया, तिहि सातव प्रबलै हिवा ।

साहजहि सुख समाधि सपाई सेत हैं तारैं तुमरो पाई ॥

वे यह समुझ सकय तुम्हारो, हमो मन लोयो बात हमारी ॥

वे भइमुन प्रबतार नु सेत, बिस्वहि प्रतिवास्तन के हेत ॥

नाम रूप मुन कर्म धनगत, धनन गनत कोऊ महे न धन ।

× × × ×

तारैं तब मयतिहि अनुसर, तुम्हरी दया मनायो कर ।

कब मोरै मन्त्रगहन बहिई, मधु बटाछत बिरो रस भविई ॥

—मन्दरास प्रयागजी (इमाम स्कप भाषा) मं० १४, पृ० २१६ ना० प्र०
समा, बायी ।

२ मीरा की वरावली—मं० परमुराम चतुर्वेदी पृ० न० १०५

३ वही, पृ० सं० १०५

भोगी बली तपसी प्रथ सिद्ध निरन्तर बाहुि समाधि लगावत ।
ताहि भहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ बँ नाच नचावत ॥^{११}

भक्ति के प्रकार

भक्ति को आचार्यों ने प्रमुखता से भावों में विभाजित किया है : (१) गौली भक्ति और (२) परम भक्ति । यह विभाजन भक्ति के साधन और साध्य पक्ष पर आधारित है । मन की एकाग्रता से भगवान् का ध्यान कीर्तन भजनादि भक्ति का 'साधन' पक्ष है । साधन भक्ति में बाह्य साधनों द्वारा साधक-भक्त इष्ट की ओर उन्मुख होता है । भगवान् में परानुरक्ति या सिद्ध ब्रह्मा की भक्ति उसका साध्य पक्ष है । गौली भक्ति वर्षादि साधन भक्ति के भी दो भेद हैं—बघी और रागानुपा ।^१ बघी भक्ति शास्त्रोक्त विधि विधानों द्वारा की जाती है । बघी भक्ति को कुछ लोग मर्दादा भक्ति भी कहते हैं । इसके अनेक धर्म हैं जैसे—साधु-संलग्न इष्ट्य हेतु मोमादि त्याग कीर्तन आदि । जिस माद से भगवान् के प्रेम में अपूर्व रस का आनन्द होता है और जिस प्रेम-माद से भक्त के हृदय में परम शान्ति और आनन्द उत्पन्न होता है, उस 'रागानुपा भक्ति' कहते हैं । श्री रूप स्वामी ने रागानुपा भक्ति के भी दो भेद किये हैं—काम कया और सम्बन्ध कया ।^२ बघी भक्ति और रागानुपा भक्ति—दोनों साधन-पक्ष की हैं ।

साधन कया भक्ति के पाँच भेद माने गये हैं—

- १—उपासक,
- २—उपास्य
- ३—पूजा इष्ट्य
- ४—पूजन विधि और
- ५—संन-अप ।

तत्त्व-अर्थों में संन अप को विद्वेष महत्त्व दिया गया है और इसके पाँच तत्त्व माने गये हैं :—

- १—पुरुष-तत्त्व
- २—मन्त्र-तत्त्व
- ३—जनस्तत्त्व
- ४—देवतत्त्व, तथा
- ५—म्यात तत्त्व ।

इन तत्त्व प्रतीकों में भक्ति का संन योग का अर्थ माना है ।

१ रत्नायन का अमर काव्य—दुर्गादासर विध १०० ५२

२ 'बघी रागानुपा भक्ति का द्विधा साधनाभिधायक ।'

—प्रभिमक्ति रत्नामृत-निगम (पूर्व विभाग २) इलाक ३

३ 'सा काम कया सम्बन्ध कया भक्ति भवेद्द्विधा ।'

जब सब कामनाओं से रहित होकर भक्त की भगवान् में परामुरक्ति हो जाती है तब वह परामक्ति कहलाती है । इसमें भक्त पूर्ण शान्ति की अवस्था को पहुँचता है और उसे किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं रहती । परामक्ति साध्य स्वक्या है । इसमें साम्य (सक्य) की प्राप्ति के अतिरिक्त किसी भी साधन की आवश्यकता नहीं रहती ।^१ परामक्ति ६ प्रकार की मानी गई है :—

१ सिद्धा—हर क्षण में भगवान् का स्मरण करते रहना ।

२ प्रेम भक्त्या—भगवान् के प्रेम में मग्न उत्तम संयाय में प्रसन्न और वियोग में विकस होता ।

३ निष्कामा—भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी सुख या माध की माह न करना ।

४ कुर्बाना—सारे उद्योग को ईश्वरपदम देकर ।

५ धनत्याग—अन्य साम्य त्यागकर एक भगवान् का आश्रम ही लेना ।

६ निगुणा—मक्षिण बिम्ब में एक मात्र भगवान् को सब कृष्ण समझकर किसी भी साधना से भगवान् में समान ।^२

परा भक्ति के ये जो ६ भेद हैं, वास्तव में ये भक्ति-प्राप्त के ६ पहलू हैं जो एक-दूसरे से स्वतन्त्र नहीं हैं ।

धीमदभागवत में साधक के स्वभावानुसार भक्ति ४ प्रकार की बताई गई है—सात्विकी, राजसी तामसी तथा निगुणा ।^३ तामसी भक्ति निम्न कोटि की है । वह क्रोध से हिंसा बन्ध और मत्सरता को लेकर भेद-दृष्टि से की जाती है ।^४ राजसी भक्ति लौकिक विषय तथा और ऐश्वर्य की कामना से भेद-दृष्टिपूर्वक केवल प्रतिमादि के पूजन के रूप में की जाती है ।^५ जो भक्त पापों के नाश के लिए अपने पाप-पुण्य सब मण्डवापित कर देता है और आनन्द भाव से ईश्वर में आसक्ति रखता है वह सात्विक भक्त है ।^६ चौथी भक्ति—‘निगुणा भक्ति’ को ‘सुखा-सार’ भक्ति कहा गया है । इसमें किसी वस्तु की कामना नहीं रहती । यह निष्काम भक्ति है । यही अनन्य भक्ति है ।

धीमदभागवत के सप्तम स्कन्ध में साधना-पक्ष की ध्यान में रसकर भक्ति के २ भेद माने गये हैं जो ‘नवना भक्ति’ अथवा ‘नवविधा भक्ति’ के नाम से प्रसिद्ध हैं । इस ‘नवना भक्ति’ के प्रकार हैं—प्रणय, कीर्तन, स्मरण, पादसेवक अथवा चन्दन

१ प्रेम भक्ति योग—श्री देवदान जी महाराज पृ० १० ।

२ वही पृ० ४४-४५ ।

३ धीमदभागवत, (तृतीय स्कन्ध) अध्याय २८, श्लोक ७-१४ ।

४ धीमदभागवत, १ २८-८ ।

५ वही १ २८-२ ।

६ वही १-२१ १० ।

दास्य, सख्य और आत्म निवेदन ।^१ प्रथम तीम—भक्त्य और कीर्तन और स्मरण—घटा और बिश्वास की कृति क सहायक है । पादसेवन अर्चन बन्धन रूप सम्बन्धी साधन हैं तथा दास्य सख्य और आत्म-निवेदन भाव सम्बन्धी साधन हैं । भक्तों ने पीछे कहे तीन भाषा के अतिरिक्त वास्तव्यादि अन्य भाव भी भगवाद् क साथ लगाये हैं । दास्य सख्य और आत्म निवेदन 'साधारणिक भक्ति' से सम्बन्ध रखते हैं और भक्त्य कीर्तन स्मरण पादसेवन अर्चन और बन्धन सभी भक्ति क वर्ग हैं । अन्तिम आत्म-निवेदन इस लक्ष्य भक्ति की चरम परिणति है । आत्म-निवेदन में साधन और साध्य एक हो जाते हैं । वैधी भक्ति का परमवसान साधारणिक भक्ति होता है और साधारणिक भक्ति आत्म-निवेदन में पूर्णता को प्राप्त करती है । यही आत्म-निवेदन आत्म-समर्पण में परिवर्तित होता है जिसमें परल्लापति का भाव सर्वोपरि रहता है ।

अब हमने भक्ति के भेद-प्रभेदों की संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत की है । इस प्रकार भक्ति का साधारणिक सात्त्विक बिशेषण आचार्यों का कार्य था । अब कहा जा चुका है कि आठवार भक्तों ने इस प्रकार भक्ति का सात्त्विक बिशेषण प्रस्तुत नहीं किया है । कहीं भी उन्होंने भक्ति के भेद-प्रभेदों को दिशाने की आवश्यकता नहीं समझी है । यह भी कहा जा चुका है कि 'प्रबन्धम्' भक्ति का लक्ष्य-पद्व है, लक्षण-पद्व नहीं । परवर्ती आचार्यों द्वारा किये गये भक्ति के बिबिध भेदों उपभेदों के उदाहरण प्रबन्धम् में मिल जाते हैं । आसाध्यवासीम हिन्दी कृष्ण भक्त-कविता में से कुछ में भक्ति क प्रमाण की चर्चा की है । मुरदास ने भक्ति के चार प्रकारों का उल्लेख किया है—

१—सात्त्विकी

३—सामग्री और

२—रागी

४—सुखा सार ।^२

मुरदास ने भगवत् प्रतिपादित लक्ष्य भक्ति क अतिरिक्त एक प्रेम-संश्लेष भक्ति का भी उल्लेख बसंत-मन क अनुसार किया है । उन्होंने दसवें प्रेम संश्लेष भक्ति का उल्लेख इस प्रकार है —

१ भक्त्य कीर्तन बिशेषः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं बन्धनं सत्यमात्मनिवेदनम् ॥

इति वृत्तापिता बिश्वो भक्तिप्रभेदसंज्ञका ।

स्मियते भगवत्पदा लक्ष्यस्य धीतमुत्तमम् ॥

—श्रीमद्भाष्यवत् (छाया ४ स्तार २१ २४)

२ 'माता भक्ति चारि प्रकार, सत रज तम गुण मुपानार ।

भक्ति सात्त्विकी चाहति मुक्ति, रजोगुणो धन बुद्धि धनरति ।

तमोगुनी चाहे या भाई मन बेरी कपो ही मर जाई ।

गुण भक्ति मोक्ष को चाहे मुक्ति ही नहि दबगाई ॥

.. ..

—गुस्तागर (तृतीय स्तव्य) का प्र समा बानी ।

‘भक्त्य श्रीरत्न स्मरण पावत अरुण बन्धन दास ।
सख्य और आत्म-निवेदन, प्रेम लक्षणा दास ॥’
परमानन्ददास ने भी इन भक्तियों का उल्लेख किया है —

“तासे ब्रह्मा भक्ति भली ।

जिन जिन कीनी तिनके मन ते मैकु न धनत चली ।
भक्त्य परीक्षत तरे राजरिपि कीर्तन करि मुकुटेव ।
सुमिरन करि प्रह्लाद निर्भय भयो कभला कगे पवसेव ।
प्रभु अरुण, मुकुन्दक सुत बंधन ब्रह्मदाय हनुमन्त ।
सला भाव भजुन बस कीन्हें श्री हरि श्री भगवन्त ।
बलि आत्म समर्पण करि हरि रासं अपने पास ।
अद्वैत प्रेम भयो गोपिन को बलि परमानन्ददास ॥”^१

श्री सेवक श्री नै स्पष्ट कहा है कि यद्यपि कीर्तन यदि नवधा भक्ति क उपगन्त
इसकी प्रम-लक्षणा भक्ति उपलब्ध होती है और श्री हितहस्त्रिच ने भी मही किया पा —

“यद्यनादिक चित्तलस्य योग्य रूप तप लब्धे ।
शरीर कर्म सकाम सकल तद्वि सब भजे ।
साधन विधि प्रयास ते सबन बिहावहीं ।
भक्त्य भक्त्य सुमिरन सेवन चित्तलावहीं ।
अर्चन भक्त्य भक्त्य दासभक्त लक्ष्य और आत्मसमर्पण ।
ये भक्त लक्षणा भक्ति बढ़ाई तब नि प्रम ललल पति ॥

—श्री हित सुखा सागर (श्री सेवक बाणी जो) पृ० २६१ ।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि यद्यपि आळ्वार भक्त ने भक्ति के भेद
मही किया है तथापि उनकी रचनाओं में भक्ति के विविध रूपों के वर्णन मिलते हैं ।
जिस ‘नवधा भक्ति’ की संज्ञा मिली है, उस भक्ति में उदाहरण पर्याप्त मात्रा में
‘प्रबन्धम्’ में मिल जाते हैं । आत्मोपकासीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की रचनाओं में
भी नवधा-भक्ति के अनेक उदाहरण हैं । यथा—

नवधा भक्ति

अवस्था

अवस्थान् के नाम में महत्ता गुण तथा उनकी जीताओं का अज्ञानपूर्वक सुनना
या सुनना अवस्था भक्ति है ।^२ यद्यपि भक्ति की अवस्था यह है जब बिना

१ गुर साराबमो तथा मूनापर, व० प्र०, पृ० ५ तथा पृ० २६ ।

२ परमानन्ददास ब्रह्मसंग्रह, पृष्ठ सं० ३१४ ।

३ अवस्था नाम चरित गुणयोगी भुक्तिमन्त्र ।

— श्रीहरि भक्ति रत्नामृत निगु, (पूर्व विभाग) पहली २, पृष्ठांक १२ ।

मनवान् के मुग्ध और परिम के मुने मल बेचन रह्य जावा है । आठवारों की सम्पूर्ण रातों मनवान् के नाम और लीला सुनने और सुनाने से सम्भव रहती है । लीलाओं का वर्णन कर उनकी समाप्ति में उन्होंने बहुतों उनके मुने और सुनाने का माहत्म्य बनाया है । दैसिए—

(१) बिन्धु बिल (पेरियाळवार) के इन लीला-गीतों का भजन करने वाले वैकुण्ठ-बाठ प्राप्त करेंगे ।^१

(२) कुसुमोच्चर के इन तमिळ-गीतों का भजन करने वालों के कष्ट दूर होंगे ।^२

(३) परकामम् (तिरुमूर्ति आठवार) के इन गीतों का गायन करने वाले बल्ले के पाप मिट जायेंगे ।^३

(४) गोविन्द की लीलाओं का वर्णन करने वाले इन गीतों का गायन कर प्रसन्न होंगे वाले भक्त का मनवान् की शरण प्राप्त होगी ।^४

अथवा ली आठवारा ने धरत-वर्तिका की महिमा पाई है । नम्माळवार का कहना है कि मेरे काम सर्वथा मनवान् की लीला के गान की फला का ही ध्यान करेंगे ।^५ पोमये आठवार ने कहा है कि मनवान् के पावन नामों का भजन करने वाले नरक नहीं पहुँचेंगे ।^६ ठोडरन्निगोडी आठवार कहते हैं—“अथवा मुग्ध शरीर बिद्रुम योनि मुँह, कमल-दल-लोचन वाले पनस्याम मनवान् ने—अभ्युत 'देवों के अधिपति' गोठुल नायक आदि नामों के सुनने से वा भाग्य प्राप्त होता है उसकी तुलना में इन्द्रमाट्ट पर भग्न करने से प्राप्त होने वाले सुख की भी मैं नहीं चाहता ।”^७

१ अस्ताक्षरिणर्कभर्गव वरामुरता विस्तारान् विद्रुधितान विरित ।

ओस्तर्प्ता द्युविध पादल इवं पत म अस्तार वीप ध्वन्याम अमिहस्मरे ।

—पेरियाळवार तिरुमाळी २ १ १० ।

२ कौचर शोन कुलमेखरन सोम शोन

इनु बल्लवकु एवलीमुस्समै । —पेरियाळ तिरुमोळी ८ १ ।

३ कर्नपार वनुवम अस्ताम कसिपवोलीमाले

विनेपार पादल पाद बावम् मिस्तारै । —पेरिय तिरुमाळी ६-१ १० ।

४ पेरियाळवार तिरुमाळी २ ६ ११ ।

५ “वेरिक्कन्नार निम कीनिरुक्किपेम्बुम वरिक्कले” —तिरुवायमीळी ३ ८-१ ।

६ मुदल तिरुवन्तादि ८७ ।

७ वरुवामालेपोम मैमि वरुववाय वमलवेवला ।

ववकुना ववरैरे । वापरन कानुमे । एम्बुम

इक्कुवै तविर वाम वीप इगुमोरन वानुम ।

ववकुवै पेरिनुम वेवेम वरुववानगरत शळाले ।

—तिरुवायमी २ ।

मुरदास, नन्ददास तथा अन्य आसीष्वाधीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने भी कृष्ण की अनेक सीमाओं का चिन्तन किया है और उन सीमाओं की समाप्ति में बहुधा उनके सुनने और सुनाने का माहात्म्य कहा है। अबल भक्ति का प्रभाव मुर के शब्दों में सुनिष्ट —

(१) 'बो यह सीमा सुने सुनावे तो हरि भक्ति पाइ सुख पावै ।'^१

(२) "बो पर स्तुति सुने सुनावे, पूर सा ज्ञान-भक्ति को पावे ।"^२

(३) "पूर कह्यो भी मुझ जगन्नाथ, कहै सुने तो ठरे भवपार ।"^३

रासर्पबाध्यायी की समाप्ति में अबल भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए मन्दास लिखते हैं —

बो यह सीमा पावै बिराई सुन सुनावै ।

प्रेम भक्ति तो पावै सब सबके भिन्न भावै ॥

अबल कीर्तन सार-सार सुमिरन को है पुनि ।

प्यान सार हरि प्यान सार भुतिसार गुणो गुनि ॥"^४

परमादास कहते हैं —

'जबन कथा ह्यममुन्दर की राम कृष्ण रसना महि कुरनि ।

मानुस जनम कहाँ पावैये प्यान बरे स्याम बसुर मति ॥

बो यह मोर परन मुझ राखत सब परलोक करत प्रतिपान ।

'परमादास' को काकुर घति मपीर बीनानाम स्याम ॥"^५

मोराबाई के काव्य में भी अबल भक्ति की महिमा अनेक स्थलों पर बतायी गयी है—

"राम नाम रत पोवै मनुष्या राम नाम रत पोवै ।

तब कुसंग सतसंग बँठ नित हरि चर्चा मुन सीव ॥"^६

भक्त अपने प्रिय मयबान् का नामक कथन भक्तों से ही सुनने की इच्छा रखत हैं, बल्कि परिचयों की बोलिया में भी उसी का मुल गान सुनत हैं। बाळार कहती है—
'पिन्ने में पड़े शुक्र नी सवा गोविन्द' गोविन्द' कह कर चित्साठा है। अगर मैं सतका नुस गान को महा हूँ तो वह बचारा और भी जार म 'गोविन्द, गोविन्द'

१ मुर सागर (नवम स्कन्ध) भा० प्र० समा कावी ।

२ बही, (दराम स्कन्ध), भा० प्र० समा कावी ।

३ बही (दराम स्कन्ध) भा० प्र० समा कावी ।

४ मन्दास पञ्चावली रास बंध्याध्यायी, पृ० १४ भा० प्र० समा कावी ।

५ परमानन्दताप — मं० भा० गो० भा० मुद्रण पर मं० २२१ ।

६ मीरा की कविताएँ — मं० भा० गो० भा० मुद्रण पर मं० २२१ ।

कहकर भगवान् की पुकारता है ।^१ इस प्रकार मूर की एक योरी भी पपीहे के साथ प्रेम दिखाती हुई कहती है—

बहुत दिन बीबी कपीहा प्यारो ।

बसत माळ से बोमत भयो विरहन्बर कारो ।

×

×

×

आहि लागे सोई ये जाने प्रम बाण घनियारो

मूरबात प्रभु स्वाति वृष जयि तय्यो सिधु करि पारो ।^२

कीर्तन

भगवान् के नाम गुण माहारम्य सीता बायि का वरुण धान तथा उष्ण स्वर से पाठ कीर्तन बहुलाता है ।^३ कीर्तन की महिमा सभी भक्तों ने मुक्त कंठ से स्वीकार की है । आळ्वारों के समस्त पद स्तुतिपरक कीर्तन ही हैं । वैष्णव मन्त्रियों में गाने के निमित्त ही वे रचे गये । इन कीर्तनों को गा गाकर भक्त आत्म-विमोह हो जाते थे ।

गुण-नाम भगवान् का ही हो सकता है । उन्हीं में आनन्द है सीकिक पुरणों के गुण-नाम में नहीं । नम्माळ्वार ने सीकिक पुरणों का गुण-नाम करने वाले नवियों की चेतावनी दी है— हे नवि । तुम नरवर मनुष्यों का गुण गान भूलकर भी मत करो । उस अनन्त आनन्दवाता भगवान् का गुण-नाम करो ।^४ पैरियाळ्वार कहते हैं—'भगवान्-स्तवन नहीं करने वाले मनुष्य जो जल पीते हैं, जो वस्त्र पहनते हैं उन मनुष्यों का दुर्भाग्य है ।^५ भगवान् का गुण-नाम (कीर्तन) करने वाले भक्तों के चरणा के स्पर्श से ही यह पुष्पी घन्य है ।^६ पैरियाळ्वार आगे कहते हैं कि मेरी

१ 'वृद्धिलिङ्गु विळि एप्पोडुम
योम्बा । गीविग्बा । एम्पुळ्ळुम
इन्दुक्कोडु वैरप्पनारिस'
उत्तरळ्ळुमनैगनैज उयवडुडुम"

—नायिच्यार तिरमोळी १२ ६

२ मूर तगार, (रसम सान्द) का प्र० गभा कारी ।

३ 'नाम सीनागुणादीनामुक्कर्ममाया तु कीर्तनम् ।'

—श्री हरिमाति रसामून सिन्धु पूर्व विभाग २ सहरी स्तोत्र २६

४ 'वस्त्यन गुण्डु म्मु म्मु बाधर्मैळ्ळुम पुनवीरवाळ ।

कोस्ता कुरैविमन वडिडुस्तान तदम कोदिस एन

वस्त्यन मणिबन्गन तामैक्कवि चोस्तवमिन्जो ।

—तिरवायवाटी ३ ६ ५

५ पैरियाळ्वार तिरमोळी ८ : ४ १

६ 'मायै नरनिगने नरिम्पु त्तुवारवळ सविचय

पाव मुळि वडुत्तान इम्पुनवन वारिवयम वेळते ।'

—पैरियाळ्वार तिरवाटी ८ ४ ९

बिहारी भगवान् की स्तुति के अतिरिक्त कुछ नहीं करेंगे।^१ भूतताळवारा के अनुसार भगवान् के गुणों की लोलाओं की स्तुति करना ही तप करने के समान है।^२ चेर राजा कुसुमेसर भगवान् के नाम-मंकीर्तन में सतत भक्तों की सेवा करने में ही व्यंष्ट सुख मानते हैं।^३

आळवारा के स्तुति-गीतों की एक बड़ी विशेषता उनमें संगीत का समावेश है। संगीत का प्रभाव विश्वव्यापी है। आळवारा के स्तुति परक भक्ति गीता को पाठे-पाठे भक्त बहुधा मानव्यतिरेक से गाव उठते थे। विभिन्न राग रागिणियों में माने योग्य आळवारा के कीर्तनों में जनता पर अमित प्रभाव डाला है।

सूर आदि अष्टछाप भक्तों का सम्पूर्ण काव्य भी भक्ति के कीर्तन साधन और उसका बड़ा अंश प्रेम भक्ति के पथ रूप में ही लिखा गया है। अष्टछाप-भक्त पद रचयिता ही नहीं थे, बल्कि उच्च कोटि के गायक भी थे। यद्यपि उनकी कीर्तन भक्ति का मूना उनका सम्पूर्ण काव्य ही है। कीर्तन को महिमा और उनके प्रभाव का वर्णन सुरदास इस प्रकार करते हैं — "सोपास के गुण मान ते जा मानव्य मिसना है उसके जाने जप तप तथा तीसरीटन क्या चीज है ? हरि-कीर्तन से पुण्यार्प मिमसा और तीन सोक का मूल तुच्छ प्रतीत होगा।"^४ परमानन्ददास के मत में भगवान् कृष्ण की कृपा का प्रत्यक्ष गुणों का कीर्तन आदि भक्ति के साधन सङ्गमदायक हैं।^५

१ 'नाबहु जन्मैयस्मास परिपावु

मानईमुबैम एम बचमसु

"—वेरियाळवारा तिकमोळी १ १ १

२ "एसी पणिगतवन परै इरिमुख एणोसुखुम

आसि पुरेशम तयम् ।"—इरिष्टाम तिकमोळी ७७

३ मातमुम्बेळा मारवयेगु घळंतु मेइतमुम्ब लोळु

एसी इन्दुरम लोडर येवडी ऐसी वास्तमेन मेवये ।

—वेरियाळ तिकमोळी २ ४

४ जो सुख होत पुपानहि पाये ।

सो गहि होत जप तप के कीने कीरिह तीरव गृहाये ।

दिये येन गहि आरि पदारव करन नमन बिन साये ।

तीन सोक तूण मम करि मेघत नगनन्यन उर धाये ।

बंगी बट बुन्दावन यमुना तजि बेकुच को जाये ।

गुरदास हरि को मुमिरन करि बहुरि न भव जल छाये ।

—मूरमापर सं० मूर समिति पद सं० १४१ ।

५ संगल थापी नाव उबार ।

गंगर वरन कनर करबंगन गंगर जन की लदा संघार ॥

मीराबाई ने कहा है— भगवान् के नाम लेने और गुणवान् करने से पाप भट् बायेवे और भग्न सफल होमा ।^{११}

स्मरण

भगवान् के नाम उनके गुण साहाय्य उनकी सर्वव्यापकता सीता बादि का सदा ध्यान रचना तथा उन्हीं के स्मरण में सीत रहना 'स्मरण भक्ति है ।^{१२} इस भक्ति के माधम में भगवान् के नाम का जप विशेष महत्व रखता है । साधक की चित्तवृत्ति इस ध्यान में इसकी रम जानी चाहिए कि बसते-फिरते आते-जाते इष्टदेव ही का स्मरण बराबर आता चाहिए । स्मरण भक्ति का उदाहरण मन्माद्वार से सुनिए । वे कहते हैं—जो बल में पीठा है जो मात आता है जो पान आता है सभी बरगुणें गुणमयी बोलती हैं सभी में भगवान् का स्मरण आता है ।^{१३} स्मरण भक्ति की महिमा प्रायः सभी भक्तों ने कही है । पैरियाद्वार कहते हैं कि जो भगवान् का नाम स्मरण नहीं करते वे बड़े पापी हैं । जिस व्यक्ति का मन भगवान् का स्मरण नहीं करता वह व्यक्ति इस पृथ्वी के लिए मार-जबकप है ।^{१४} पोमरी आठवार का कथन है कि प्रातःकास से लेकर थोड़ा भक्त जिसका स्मरण करते हैं जिसका जप करते हैं, वह भगवान् का ही नाम है ।^{१५} पैरियाद्वार कहते हैं कि भगवान् का स्मरण मन में

बेजत भगत पूजन भगत पावत भगत चरित उदार ।

भयस करम कपस मुनि मंगल कीरति जगत निधान ।

अनुरित भगत ध्यान धरत मुनि मंगल मति परमार्थदाता ॥

—परमानन्द सागर मं डा० गोबिन्द म नाथ गुप्त पर सं० १८७ ।

१. मेरा मन राखि राम रटै है ।

राम नाम जप सीत प्रीति कोटि पाप कई है ।

—मीरा की पदावली मं परशुराम जगुर्बेदी पर सं० २०० ।

“ध्यानं कवगुणबोधासबाधो मुप्यु चिन्तनम् ।”

—हरिभक्ति रत्नामृत सिन्धु पुन विभाग लहरी २ स्तोत्र ३३ ।

३. उन्मुम बोह बरहुम सीर तिमूम बेडिभमुमेस्पाय

कण्ठन एम्पेदमलेभुं कण्ठन नीर मस्को

मण्णिमुठ घबन बीर बडम मिक्कबनूर बिन्को

निम्बाव एव इठमान पडुनूर तिरक्कोनूरे । —विद्यापमोटी १७-१ ।

४. मेमि पैर तटकंकाइनं मिनेत्पिनावनं मेन्नुई

भुवि-पारंभमुन्नुव जोडिने बांरी पुत्तै निमिप्पिने ।

—पैरियाद्वार विमोटी ४६१ ।

५. काने उन्मु उन्नवन्नवर्ननुम कण्ठन

मेनेत्तानेवरपोर बेदुपडुन-बोरेवडन ।

एक बार करने मात्र से भगवान् मन में बास कर बैठते हैं ।^१ वृषा-सिन्धु भगवान् का नाम-स्मरण नहीं करने वाले व्यक्तियों को मनुष्यों की कोटि में मानने को तैयार नहीं हैं ।^२ उनके अनुसार वे मनुष्य निम्नकोटि के प्राणी हैं । ठोंढरबिषोयी आळवार की मान्यता है कि भगवान् के नाम का स्मरण करने वाला भक्त नहीं पहुँच सकता ।^३

आलाङ्घ्यकासीय हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने भी स्मरण भक्ति का पर्याप्त महत्त्व माना है । हरि-स्मरण भक्ति के विषय में मूरनाथ जी का कहना है— 'सब का हरि मनवान् का स्मरण करना चाहिए । हरि-स्मरण से सब सुख प्राप्त होते हैं । मृति और स्मृति सब का मत है कि भगवान् के घरलों में चित्त लगाना । हरि-स्मरण के बिना मुक्ति नहीं है । दिन रात छंदी का स्मरण करो । मेरे बिचार में छी बातों की बात यह है कि हरि का स्मरण करो ।'^४

परमानन्ददास ने अपनी स्मरण भक्ति का परिचय देते हुए कहा है कि मैं सबैय बसोबा नन्दन का ही चित्तन करता हूँ ।^५ परमानन्ददास जी का एक और प्रसिद्ध पद है जिसमें कवि ने कहा है— 'हे हरि मुझे तुम्हारी सीसा की याद आती है ।

घोरप्रियावदिते प्रोत्तुष्टुम प्रोर्पमपुम

पेराली कोष्टान पेयर ।^६

—मुरन तिरुवन्तावि ६६

१ "नैजाल निमप्परियनेमुम निर्लपेट्टु एन ।

नैजमे । पेचाम निनैवकुकास नैजलु

पेरालु मिर्लुन पेदमान एन कोनो ?

घोरालु निर्पु उर्नलु ।^७

—मृन्नाम तिरुवन्तावि ८१

२ "विरमताकु एत्तुत्तुवपाम चैवम्मान नामम

भक्तारै मानिडमार्त्तयेमन ॥"

—इरटाम तिरुवन्तावि ८४

३ तिरुमाली, १२

४ 'हरि हरि हरि सुमिरो सब कोई हरि सुमिरत सब सुख होई ।

हरि समान द्वितीय नहि कोई, हरि चरननि राखो चित्त कोई ॥

मृति स्मृति सब देखो कोई, हरि सुमिरत होई तो होई ।

हरि हरि हरि सुमिरो सब कोई, बिन हरि सुमिरन मुक्ति न होई ॥

—सूर सागर (द्वितीय स्कन्ध) पद सं ४६२३ ना० प्र० समा काशी

५. बहि बहि चरन कमल भायो तहो तहो मन मोर ।

×

×

×

चित्तन करौ बसोबा नन्दन मुदित सोन घघ मोर ।

×

×

×

परमानन्ददास की बीबनि योपनि बट शकमोर ॥

—परमानन्द सागर (मं० डा० पोवर्चन नाथ मुरन) पं० नं० ८४६

तुम्हारी मोहिनी मूर्ति मेरे मन के भीतर-ही भीतर अनेक बिज उपस्थित कर रही है। तुम्हीं बताओ जिसका तुम एक बार अपना उपयोग बं डेते हो वह तुम्हारी बंक जबलोकन और मूढ मुस्कान को कैसे भूल सकता है ? तुम्हारी याद कभी प्रमाद आसिगन का मुन् देती है ता कभी तुम्हारे मधुर स्वर में मिसकर पाने लगती है। जब तुम छिप जाते हो तो याद में मरी बतना 'कहाँ हो, कहाँ हो' कहकर इधर-उधर दौड़ने लगती है। कभी मेरी अन्तरात्मा नेत्र मूँदकर तुम्हें सर्वस्व अर्पण करती हुई मनमामा पहनाती है। इसी प्रकार मैं स्वाम के ध्यान में बिरह की मड़िया को बिठा रही हूँ।^१

पाद-सेवम

जो भोक्तृ-सेवा एक स्वाभाविक सेवक अपने स्वामी की करता है और यज्ञा पूजक स्वामी के चरणों में अपने मन का समस्त है, भगवान् के प्रति भक्त की ठीक उसी प्रकार की सेवा पाद-सेवा है। साक म सेवक का जो व्यवहार अपने स्वामी के प्रति होता है, वैसा कार्य भगवान् के लिए भक्त को करना चाहिए। इस सेवा के लिए भगवान् का बाह्य अवस्था मानस प्रत्यक्ष स्वल्प होना आवश्यक है। पाद-सेवन की आरम्भिक अवस्था—मूर्तिपूजा, गुणपूजा तथा वैष्णव पूजा में होती है। इन सेवा के सम्प्राप्तों व बाद जब भक्त को दास्य प्रेम में एकग्रता आ जाती है तब वह मानसिक पदम में भगवान् के समौष्टिक चरणों की सेवा करता है। इस प्रकार बाह्य तथा मानसिक—दोनों प्रकार के पाद-सेवन से भोक्ताभ्य का भाव छूट जाता है और भक्त में भगवान् के प्रति दीनता और अकिञ्चनता का भाव जागृत होता जाता है।^२ भोक्तृ के प्रति वह उदासीन होकर नितात्म निरपेक्ष हो जाता है।

आळ्वार भक्तों ने विभिन्न वैष्णव मन्दिरों में विराजमान भगवान् के अर्चा-विग्रहों की पाद-सेवा की थी। मुद्र-स्तुति में मिले पद्ये मधुर कवि आळ्वार के 'वध्निमुद्र

१ हरि तेरी लीला को लुपि जावति ।

जयस नैन मन मोहनी मुरति मन मन बिज बतावनि ।
एक बार जाय जिलत मयाकरि गो बने हितरावति ।
मूढ मुतकानि बंक प्रबलोकनि जसो मनोहर भावति
बबहुत निबड निमर आसिगनि बहुरुज, निर स्वर गावति ।
बबहुत लज्जत बसाति 'कसाति' करि संगहीन उठि पावति ।
बबहुत गवन मूर्ति अन्तरगति जनजाता पहिरावति ।
परमानन्द प्रभु स्वाम ध्यान करि ऐसे बिरह गंवावति ॥

—परमानन्द गागर (दा भो० मा० गुप्त) पद में २६४

कहा जाता है कि हम हमराजत'का जाने वह को गुनकर आचार्य बल्लभ
भक्त देहानुगमान लो बडे ५ ।

—संगर

२ अष्टाक्षर और वस्तुम संश्रय पृ ५७८

‘बिरताइ’ के पद युद्ध-पात्र सेवा-मार्ति के उदाहरण हैं। इसी प्रकार ‘कुसयेखराठवार’ जैसे भक्तों न भगवत् भक्तों के प्रति भी सेवा और श्रद्धा का भाव प्रकट किया है और उनको साजान् भगवान् का स्वरूप कहा है। इन भक्तों न मानसिक पाद-सेवा-साधन में कृष्ण के शरणों की हृदय मन्दिर में स्थापित कर उनका प्रेम और श्रद्धा से पूजा की है। पौयसी आठवार कहत है—‘ह भगवान्। अगर न किसी की चाह करूँगा तो वह आपक शरणों की सेवा हो है। मैं आपसे शरणों को अपने चिर पर धारण करूँगा (उसमें मुझे पीरब है)।’^{१२}

मन्माठवार कहत है—“भगवान् के श्रीशरणों की स्तुति न करने वालों को जन्म-मरण रोग-दुःख आदि का कष्ट भोगना पड़ता है।”^{१३} मन्माठवार ने एक दूसरे पद में कहा है—‘हे भगवान्! आपक शरणों के सिवा मुझे और कोई शरण नहीं चीखती। मेरे प्राण भी आप ही के हैं।’^{१४} भूतताठवार अपने मन को संबोधित करके कहते हैं—“हे मन! तू श्री बँकटबासी के शरण बसना पर जाकर लग जा।”^{१५}

“पुरुषोत्तम के शरण ही तब एक मात्र सहारा है। सबदा तू उसी का स्मरण

१. वेदमण्ड तिरमोटी १. १ और

‘नास्ता धर्म न बभूविष्ये मंत्र कामोपभोगे

यत्तद्भर्ष्यमदत्तु भगवान् पूर्वकर्मानुबन्ध

एतत्पार्ष्ण्यं नम बहुमत जगत् जन्मास्तरप्ति

त्वत्पादाभ्योऽहं पुण्यता निरक्षमा भक्तिरस्तु।”

—मुकुन्दमाता रसोक ५

“नित्यं त्वत्परचारिण्यपुण्यं ध्यानमृता स्वादिता

अस्माकम् चरतीहहास सतत सपद्यता बीजिन्।”

—बहा रसोक २०

२. “नाडिमुम निप्रद्विधे मातुबेन नासतोदम

नाडिमुम निप्रद्विधे पादुपेन-वृद्धिमुम

पोप्राप्तिप्रभिनान पोप्राप्तिवे कृद्देक

एप्रकृषि एम्मे एप्रकृ १”

—मुदम निरवन्तादि ८८

३. ‘विरप्तिरपु मुप्ति विवि दुरनु विन्मुम

इरन्कुमुम इन्पुडितमेमुम-नरप्येस्साम

एवमे एन्पुस्साम एन्पुडिते ? यत्तद्विद्वान्

पादमे पैताप्यवस १”

—पेरिय तिरवन्तादि ८०

४. “घारैरनु निर्यादमे शरणादसतोतिशाय अनरकोर

माद नातोन्मिलेन एनबाविमुम उमरे १”

—तिरवायमोटी १ : ७ : १०

५. ‘पौट्ट चसटम । पौट्ट

मविबेदवदन मसरदिरु विसन

मविबेदवदन पैराडु १”

—इरव्याम तिरवन्तादि ७२

कर, सेवा कर ।”^१ तिस्रोंगे बाल्यार कहते हैं— हे भगवान् ! अपने मोर्छों की माता आपने करणों पर कवित कर, सबसे आप ही का स्मरण कर, मैं आपकी घरण में जाया हूँ ।^१

आसोष्यकासीम हिन्दी कृष्ण भक्त कविया ने भी पाद-सेवा का महत्त्व बताया है । सूरदास जी ने कई पदों में वास्तव भाव से भगवान् के पाद-सेवा करने का उपदेश दिया है । जिन गरणों की पाद-सेवा सूरदास जी अपने मन-मन्दिर में करते थे उनके विषय में कहते हैं :—

“भक्ति मम मन्द मन्द करन ।

परम पंकज अति मनोहर सकल मुद्र के करन ।

सनाक झंकर ध्यान ध्यावत नियम प्रवरन करन ।

मेघ दारद प्रबि सुगारद सप्त चित्त करन ।

पद पराव प्रताप हुलस रमा सोहित करन ।

परति पदा भई पावन तिहुर भर घटन ।

×

×

×

सूर मज घरनारविन्दन मिटें न जगम मरम ॥^३

परमानन्ददास पाद-सेवा की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं— मदन मोपास की सेवा मुक्ति से भी अधिक मीठी है । भक्ति के अधिक इस सेवा के रस को जानते हैं । उन्होंने भगवान् की करण-सेवा के सम्मुख सब धर्मों को बहा दिया और न भगण कवन स्मरण तथा ईश्वर मूल-दान का माधन करते रहते हैं । “इन अधिक भक्तों के हृदय से प्रेरित होकर परमानन्ददास ने भी भगवान् के करणों में सेवा उनकी सीता में प्रेम बढ़ाया है ।”^४

१ ‘उद कण्ठाय भजेते ! उत्तमन पर्यायम
उदकण्ठाय शेष कमलस्तम्भास—उदकण्ठाय ।’

—हरिश्चन्द्र तिरवन्तादि ७७

२ ‘शक्तिपारित ओमपसर मलकोण्ड उग
पादमे परबी मायनिमु एग
नादिनाम वमु उग निद्विद्विद्वेने ।’

—पेरिय तिरमोटी १ ६-८

३ सूर सागर (प्रथम स्कन्ध) पद सं० १०८ भा० प्र उमा वागी ।

४ “सेवा मदन मोराल की मुक्ति हू त मीठी ।
आने रगिज उगातिरा गुड़ गुन मित्र मीठी ।
करन वमन रज मन बली धर्म बहाए ।
पवन ववन, चित्तन बज्यो पावन गुन माए ।

मीराबाई का निम्नलिखित प्रसिद्ध पद पाद-सेवा की ओर संकेत करता है —

“मन रे परस हरि न करन ।

मुषय क्षीतल कवल कोमल, त्रिविध क्वाला हरण ।

जिन करन ग्रहमात्र करते, इन्द्र पदवी धरन ।

जिन करन प्रभु अटल कौनै, राखि अपनी तरन ।

जिन करन ब्रह्माण्ड मैद्यो नक्षत्रिणां सिरी धरन ।

जिन करन प्रभु परस सीमे, तरी वीतन धरन ।

जिन करन काली माय नाम्यो गोपनीया करन ।

जिन करन गोमरधम भार्यो, इन्द्र पद को यम हरन ।

बानि मीरा सास गिरधर, धाम तारन तरन ।”^१

अर्थम

अब उसी आदर के साथ भगवान् के स्वरूप की पूजा अर्चन भक्ति कहलाती है । बर्चवितार रूप में भगवान् मन्दिर की मूर्ति में सद्गुरु और भक्त जनों में बिद्यमान हैं । इन तीनों रूपों को भगवान् का स्वरूप समझकर भक्त अपनी प्रिय से प्रिय बस्तु उन्हें अर्पित करता है । भक्त अपने प्रेम को प्रदर्शित करने के लिए जो भी कार्य करता है उसमें त्याग का भाव प्रवास रूप से निहित है । मानसिक अर्चना में भगवान् का ध्यान और आत्म-समर्पण पर्याप्त है । उनमें दाह्य उपचारों की आवश्यकता नहीं है । परन्तु स्नान रूप की पूजा में अनेक उपचारों की आवश्यकता है । जम्दन पुष्प पुष्प दीप, नैवेद्य ठाम्बूल आदि के समर्पण द्वारा अर्चन भक्ति की जाती है । इस प्रकार की अर्चन भक्ति के उत्सेह आठवारों की रचनाओं में मिलते हैं । गम्माळवार कहते हैं—
‘हे भक्तों ! केवल पुष्प फल वस वस रूप आदि अर्पित कर भगवान् की पूजा करना भी पर्याप्त है ।’^२ गम्माळवार का यह कथन सीता वाक्य —

“पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमहं नामि प्रयत्नात्मानम् ॥”^३

बेद पुराण विदधि के रस लियो निबोई ।

गाय करत ध्यान्य भयो शार्यो सब छोड़ ।

परमानन्द बिचारि के परमारव ताप्यो ।

राम कृष्ण पद प्रेम बाझ्यो सीता रस थाप्यो ।”

—परमानन्दसागर पद संख्या ८३६

१ मीरा की पदावली पद संख्या १ ।

२ “वरिवरिल ईशनेय्यादि विरिवट्टेवस्तुदवीर
विरिवरिवट्टे नम्रीर तुय वुरिवट्टुम पुके पूजे ।”

—तिरवायमोडी १६१

३ सीता अध्याय ६ श्लोक २६

यै प्रभावित वीग पड़ता है। एक दूसरे पर में तन्माळवार का उगवेन है— 'गुन्दर मुमन वस धूप दीप गमेन मयवान् नी अर्चना करनी चाहिए।' ^१ दूसरे को इवित कर वस वयन धूप दीप आदि अर्पित कर पूजा करने पर भक्त को प्राप्ति पूरी होती है। ^२ मूठताळवार का कहना है— 'अर्चन आधुपण वरन गौरम मुक्त सकेन पूज आदि अर्पित करने के साथ ही पूजा कर मयवान् के वरगों की वरना करनी चाहिए।' ^३ चौथी आठवार अर्चन भक्ति का उल्लेख इस प्रकार करते हैं— 'बेकट पर्वत में वेद-पारायण में निपुण बाह्यस्य सोम धूप दीप पुण्य वस आदि अर्पित कर दिया दिया में मयवान् की पूजा करते रह्ये हैं।' ^४

आशोध्य काम के कतिपय हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने अर्चन भक्ति का महत्त्व विरामाया है। मुरबास बी ने मुरसावर क मयन मन्त्र में अम्बरीष की वचा में अर्चन-भक्ति का उल्लेख किया है। परमानन्ददास बोधीरूप में अपने इष्टदेव को छानक (कलक) अर्पण करने के लिए उनका आह्वान करते हैं और कहते हैं— 'हे मोहन ! मैं तुम्हारी छाक लेकर आई हूँ। तुम्हें बुझाने-बुझाते हार गई। तुम कहाँ हो ? मैं राह भूल गई थी बड़ी बटिनाई मे तुम्हें भोज पाई और वृद्धी-बृद्धते यहाँ तक आ पाई हूँ। उसी समय तुम्हारी बखी का मयूर नाच मेरे काम में पड़ा। देखो मेरे अँखों में परीमा या गया है, और मेरा अँखस भीम गया है।' ^५ इस गोपी-वक्त्रना में परमानन्ददास का ही दूसरे भावित्य बगल में अम्योक्ति रूप से अपने इष्ट देव को अर्चन भक्ति भेंट कर रहा है।

- १ 'तौमुतु मामसर नीर बुडर धूपम कोरु
एनुदुमेन्नुम इनुमिकपावतिल
वमुवित तोल पूरळ पाम्पणव्यस्त्रिय ।
तनुनुमाद धरियेन उनपाम्पळ ।

—तिरुवायमोली १ ३-६

- २ तिरुवाय मोली १ ५ २
- ३ 'बरेकवमनरुण्डमुम वान कसमुम परुमुम
विरिणोतिम्ब वैव्यस्त्रियपुम-तिरीत वडोनु
आदिवकम निनु अलिनडियिणये
ओरिण्यनिवुरम ।'

—दरवाम निगवन्तारि ७६

- ४ 'बरेयवमरेववी बाहवारवळ नापुम
पुटे बिठरुम पुप्पुननुम एगि विरी विरीयिम
वेरियरवळ वेमिरुम बेवटमे । विरुवाम
अरियवाप नापुवम्वुर ।

—मुस निगवन्तारि १०

- ५ मुमनों डेर डेर मैं हारी ।
कहाँ ओ रहे वकनों मन मोहन तेनी न छानक मुहारी ॥

नन्ददास ने भी 'ब्रह्म स्तव्य भाषा' में वहाँ परण रा कृष्ण की पूजा कराई है और 'रप मंजरी' में कम्पकरी के कृष्ण-मन्दिर के आराध्य देव कृष्ण की इन्धुमति द्वारा पूजा करने का उल्लेख किया है वहाँ उन्होंने अर्चन भक्ति का रूप दर्शाया है।
 यन्त्र

भगवान् के माहात्म्य को हृदय में धारण कर उनकी स्तुति करना मतमस्तक होकर बितय करना तथा उनको प्रणाम करना बन्दन भक्ति है। बहुधा अर्चन यन्त्र साधन-साधन हुआ करते हैं। सौक्यिक व्यवहार में बड़ों के प्रति जो विनय और आदर सूचक प्रणाम करते हैं वही सम्मान और विनय भक्त भगवान् के प्रति प्रदर्शित करते हैं। कीर्तन करते समय जब भक्तों के हृदय में प्रमत्त प्रवाहित होता है, तब वे नाच उठते हैं। बाळ्यारों की ओरनिर्गो से यह जाना जा सकता है कि वे भगवान् का नाम स्कीर्तन तथा बन्दन कर लगभग वी तरह की रा पड़ते कभी हँसते कभी माते और कभी नाचते थे। उनकी विभिन्न प्रेम दशा को देखकर लोग उन्हें पावल तक समझ लेते थे। भुमसेखराळ्यार ने उसी भयवद् प्रेमोन्मत्त दशा की कामना की है।^१ पेरियाळ्यार कहते हैं— दिन रात भगवान् का ध्यान कर, मत मस्तक होकर, हाथ जोड़कर भगवान् की बन्दना करते रहने वाले भक्त जिस मय में रहते हों, वहाँ के लोगों ने बड़ा भाग्य प्राप्त किया है।^२ राजा भुमसेखर की कामना यही है— 'धीरंगम के मन्दिर में शोभित भगवान् की स्तुति तब तक करूँगा जब तक जिह्वा धुल न आवे। मैं उस दिन की कामना करता हूँ जब कि मैं हाथ जोड़कर पुष्प अर्पित कर भगवान् की बन्दना में लीन हो जाऊँ।'^३

भुल परी घाबत मारम में क्यों हूँ मैं न पैड़ी पायो ।
 बूझत बूझत यहाँ सौ घाई तब तुम बैनु बजायो ॥
 बेजो मेरे धन की पसीना जर की धंधल भीनो ।
 परमानन्द प्रभु' प्रीति जान के पाय घातिगल बीनो ॥

—परमानन्द सागर (सं० डा० गो० ना० पु०) पद सं० ६४

१ वेङ्गमाळ तिरमोळी २ २

२ "बुधमोहिनिचितानोम धेनु दृष्टिपादि विद्याधेनु
 विष्णु नाममरमोर इराण्यकस एति बाळ तिरमोहिनिपूर
 करमद मुक्ति बन्धनेरद्वैतकप कोणु के तोलुम पत्तरवळ
 इरवदुरिसिधनुम मानिहर एतवळ वेङ्गार कोलो ।"

—पेरियाळ्यार तिरमोळी ४४-

३

पवित्रपत्तरवधैयित पत्तिओस्मिन्म
 कोविनी नाबुर वतुली एन तन वीचळ
 रोयम्मनर दूड एट्ट कोलो कृष्णुम नाळ ?'

—वेङ्गमाळ तिरमोळी १ :

पेयाभवार अपने मन को संबोधित कर कहते हैं— हे मन ! भुविहावतार कर अपनी भक्तवत्सलता को दिमाने वाले विष्णु भक्तान् के चरणों की बन्दना कर उनकी स्तुति कर । १ पोयर् आळवार का कथन है कि भगवान् के सहस्र नामों का स्मरण कर हाथ जोड़कर बन्दन करने वाले भक्त कभी नरक नहीं पहुँचते, उन्हें कोई ब्रष्ट नहीं उठावेगा के भुक्ताम पर जा नहीं सकते । २

आभोष्य कासीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने भी बन्दन भक्ति की महिमा का वर्णन किया है । मूर के काव्य का एक अंश उनकी वर्णन भक्ति के भाव को प्रकट करता है । निम्न प्रार्थना तथा स्तुति के भावों को प्रकट करने वाले उनके परमन्दन भक्ति के उदाहरण हैं । मूर ने निम्नलिखित पद में भक्तान् की कृपा की याचना कर उनके चरणों की बन्दना की है —

चरण-कमल बंधों हरि-राइ ।

जाकी कृपा पैगु मिरि लंघ संधे लों राख कुछ बरसाइ ।

बहिरो सुन भूम पुनि धोली रंक चली तिर छत्र बराइ ।

मूरदास स्वामी कवनामय, बार बार बन्दी सिंहि नाइ ॥” ३

मन्ददास ने भी अपने कई ग्रंथों को कृष्ण की बन्दना और स्तुति के साथ प्रारम्भ किया है । रस-मञ्जरी मान-मञ्जरी मनेकाव-मञ्जरी रूप-मञ्जरी, मिथ्यान्त ईशाध्यायी दशम स्कन्ध भागा आदि ग्रंथों के प्रारम्भ में कवि ने कृष्ण की बन्दना की है ।

परमानन्ददास कहते हैं— मैं जयदीन के उन चरण कमलों की बन्दना करता हूँ जो मामों के पीछे चोन्ते थे । जिन फूल में भरे पदों को शायियों में हृदय से सजा रखा है और यन्मु एवं चतुराजन ने हृदय-कमल में स्थिर कर रखा है । जो पद

- १ “कृष्णित्तुम अंतिप्पोमुमु परिपाय
इरुमृग इरुमिपुन तावम पुट्टिन्देगुम
चित्तिप्पिअग्न तिप्पमान तिप्पगिप्पे
बोदित एम्मेवने ! चालुत ।”

—मूरान निम्नम्पारि ६३

- २ “निर्नयान अदरपहार बैप्रक्रित बैरार
निर्नयेनुन तीरुक् तिरुक्क वेरुमार-निनैरु
वरियार्नन्नेयाने चायिरम वेर बैरुक्
वरियानेवर्क सोगुररान ।”

—मूरान तिप्पम्पारि ६३

- ३ मूरदास (दशम स्कन्ध) पर सं १, भा प्र० मथा, वादी ।

कमल रमा के हृदय के भूषण हैं जो तीन लोक-पावन कर्ता हैं उन चरण-कमलों की बगदना करता है।^१

माराबाई ने भी अपने अनेक पदों में गिरधर की बगदना की है —

“हमारो प्रणाम बाँके बिहारी को ।

भारे घुछुट भापे तिलक चिराजे कुण्डल प्रमकाकारी को ।

अपर मधुर बर बंशी बजावे, रीझ रिझावे राधा प्यारी को ।

यह छवि देख मयल आई मीरा मोहम गिरिबर धारी को ।”^२

वास्य सख्य और आत्म-निवेदन

गवधा भक्ति के अन्तिम तीन गंग—वास्य सख्य और आत्म-निवेदन भावों से सम्बन्ध रखते हैं। अतः इन भक्तियों का वर्णन आये ‘भक्ति के विभिन्न भाव’ के अन्तर्गत किया गया है।

प्रेम रूपा भक्ति

आठवार भक्तों के अनुसार भगवान् सभी भावों से भजनीय हैं।^३ भग्माठवार और पोषण आठवार का मत है कि जल अपनी इच्छा और रसि के अनुसार किसी भी प्रकार से भगवान् की भर्जना कर सकते हैं। पोषण आठवार कहते हैं कि भक्त भगवान् के जिस रूप को चाहते हैं वही उसका रूप है। भक्त जिस रंग से भी उपासना करें, उसी रंग में विरागु भगवान् उनका उपास्य बन जाता है।^४ फिर भी आठवारों ने भक्ति में मुख्य स्थान प्रेम को दिया है। आठवारों के लिए प्रेम भक्ति का पर्यायवाची है। भूतआठवार कहते हैं— प्रेम के दिव में अभिवादा का घो दासकर स्निग्ध हृदय की बाती लगाकर स्नह इवित आत्मा के साथ मैंने नारायण के सम्मुख जान-बीज जसाया।^५ आठवारों के द्वारा प्रतिपादित भक्ति प्रेम-रूपा

१. अरन कमल यन्त्री जगदीश के ओ गोपन संग पाए ।

जि पर कमल घूरि लपटाई कर यहि गोपिन उर लाए ॥

जि पर कमल सम्मुखतुरानन हुई कमल अस्तर राखे ।

जि पर कमल रमा कर मुयन तेव भगवत मुनि भाखे ॥

जि पर कमल सोनबय पावन धनि राजा के पीठ धरे ।

सो पर कमल ‘दास परमानन्द’ नावत प्रज पीछूध भरे ॥

—परमानन्द मायर (मं० दा० गो० मा० शुक्ल) पद म० १

२. मीरा की पदावली पृ० सं० २

३. तिब्बतपत्रिका ११:२

४. पुष्प तिब्बतपत्रिका ४४

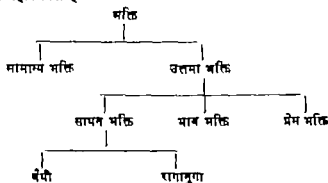
५. ‘अने लकड़िया घायले बैय्या’

इन्दुरतु चिते इतु निरिया—मन्थुदति

भक्ति है। इस मोक्ष में प्रेम-सम्बन्ध के जितने भी रूप हो सकते हैं, उतने ही भावों का प्रकट करने वाले भक्ति के प्रकार हो सकते हैं। आठवारों में भगवान् के साथ सब प्रकार का प्रेम सम्बन्ध स्थापित किए हैं। भगवान् के प्रति उत्कट प्रेम को प्रकट करने वाले आठवारों के चिह्नमें ही पद हैं। भक्ति को प्रेम-सम्बन्ध में परिचित कर आठ-वार भावों में मध्ययुगीन भक्त कवियों के लिए एक आधार छोड़ रखा था।

मध्य युग में भक्ति का विवाद विवेचन करने वाले श्री रूप गोस्वामी ने प्रेम रूपा भक्ति को सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया है। उनके शेरों ग्रन्थ 'उत्कृष्ट नीलमणि' तथा "भक्ति रसामृत सिन्धु" भक्ति के उत्कृष्ट लक्षण ग्रन्थ हैं।

श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति का विभाजन निम्न प्रकार से किया है और प्रेम भक्ति को सर्वोपरि महत्व दिया है —



भक्ति मात्र सामान्य भक्ति है। उत्तमा भक्ति उत्कृष्ट भक्ति है। उत्तमा भक्ति के छ गुण हैं —

- १—कर्मों दूर करने की शक्ति। भक्ति के द्वारा समस्त कर्मों दूर किए जा सकते हैं जो पाप-जनित हैं अथवा अविद्या जनित हैं।
- २—दुःख एवं कष्टों को दूर करने की शक्ति। दुःखों द्वारा मनुष्यों की और दुःख को उत्पन्न होती है।
- ३—मारा के प्रति उद्यमोन्मात्ता उत्पन्न करने की शक्ति।
- ४—प्राप्ति में बैठलाई अर्थात् स्वयं की प्राप्ति में दुर्लभता।

ज्ञानभुवन विद्योद्दिनेन नारद
ज्ञान तमिळ पुरिष नाम ।”

—इच्छाम निवृत्त्यादि १

१. धर्म्याभिप्रायिनाम्नं ज्ञानकर्मदानवृत्तम्।
धाम्नुद्वयेन हृत्कामुदीनं भक्तिरसता ॥

—भक्तिरसामृतसिन्धु, पूर्व विभाव १, श्लोक १

४—साङ्गानन्द की बिरोधात्मकता का प्रति उत्पन्नता ।

५—श्री कृष्ण को आकर्षित कर बना में रखने का शक्ति ।

उत्तमा भक्ति का प्रथम सोपान साधन भक्ति है । साधन भक्ति में भक्त बाह्य साधना द्वारा इष्टदेव की ओर उन्मुख होता है । (इन साधनों को चर्चा पीछे हो चुकी है ।) साधना भक्ति का द्वारा भाव रूपा भक्ति की प्राप्ति होती है । उसका लक्षण हम प्रकार किया गया है—परमेस्वर की ज्ञानिनी, संघिनी और संविन नामक जो तीन शक्तियाँ हैं उनमें से प्रथम का जोनों में प्रेम रूप में प्रकट होने कासा संघ पुत्र तत्त्व कहलाता है । वही भाव है । उससे हृदय में अवस्थित अभिसायाओं का उदय होन लगता है । भाव से अभिसायाओं की किरणों सूर्य से सूर्य की किरणों का समान ही पुन्ती हैं जो समस्त वृत्तियों को अपने रंग में रंग लेती हैं ।^१

भाव भक्ति का वह परिष्कार होता है तब वह रस रूप प्रसा भक्ति में परिणत होती है । भाव का परिष्कार हो जाता है 'साङ्गानन्द' हो जाता है तब भाव प्रेम में बदल जाता है और चित्त सम हो जाता है और चित्त में 'अनन्य ममता' उत्पन्न हो जाती है । यह प्रेम-भक्ति या तो बंसी भाव या रामानुजा भाव—दोनों से ही उत्पन्न हो जाती है । परन्तु यह इष्टदेव के 'प्रसाद' से ही उत्पन्न हो जाती है । इष्टदेव का यह प्रसाद अपवा रूपा 'केवम' हो सरता है अथवा माहात्म्य प्राप्त न हो सकता है । प्रेम भक्ति का उदय इस प्रकार होता है—सर्वप्रथम यदा हमसे माधु-नम्र इतम भजन प्रिया इसमें अनन्य-निवृत्ति इससे मिष्टा इससे रुचि हमने आभक्ति हमने भाव और उसने प्रेम का उदय होता है ।^२

ऊपर बड़ी लयी भक्ति की कोटियों में प्रेम-भक्ति का सर्वोच्च स्थान है । 'नारद भक्ति-सूत्र' में प्रेम भक्ति का विद्वान् विवेचन किया गया है । इन भक्ति को पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है अमर हो जाता है सुप्त हो जाता है और ममत्व के अतिरिक्त उसे किसी भी बात की चिन्ता नहीं रहती ।^३ यह प्रसा भक्ति परा भक्ति भी कहलाती है और इसी को 'भूमात्म्य' कहते हैं । इसमें भक्त की चित्तवृत्ति और कर्मगत का प्रवाह अविच्छिन्न रूप से भगवान् की ओर प्रवाहित होना रहता है और उसकी समस्त प्रियायें ईश्वरयोग्य होती हैं ।

'नारद भक्ति-सूत्र' में प्रेम रूपा भक्ति का महत्त्व में ११ आयतियों का उल्लेख किया गया है जिसके कारण वह एक हीतर भी ११ प्रकार की होती है । यथा—

१ सुख सख बिरोधात्मक म सुर्वाणु साम्य मात ।

वचिर्मिचित्तमाधुप्यवृत्तो भाव उच्यते ॥

—भक्ति रसमय निष्पृ पूर्व विमल लक्ष्मी १ प्वाक. ३

२ हिन्दी और बंगाली व्यक्तय वचि—दा रत्ननुमारी पृ० २३८

३ नारद भक्ति-सूत्र सूत्र ४

- १—गुण महारम्भासक्ति
- २—रूपासक्ति
- ३—गुणासक्ति
- ४—स्मरणभासक्ति,
- ५—दास्यासक्ति
- ६—सत्त्वासक्ति,
- ७—काम्पासक्ति,
- ८—वात्स्यासक्ति,
- ९—आत्मनिवेदनासक्ति,
- १०—समयासक्ति
- ११—परम विरहासक्ति ।

प्रेमा भक्ति की पराकाष्ठ पर पहुँचते हुए भक्तों में ये सभी भासक्तियाँ स्वयं ही आ जाती हैं, जसा कि ब्रज की गोपियाँ में । प्रेम-भक्ति में सर्वोत्कृष्ट होने के कारण ही गोपियों का उदाहरण साहित्य मार्ग आदि भक्ति-आचार्यों ने प्रस्तुत किया है । परन्तु सभी अन्य भक्तों में कोई न कोई भासक्ति बिद्यमान रहती है । पूर्ण भक्ति का रास प्रवृत्ति है इसलिये प्रवृत्ति की प्रगाढ़ता भक्ति मार्ग का उत्कर्ष विषयक गुण है । और भासक्ति में भी प्रवृत्ति प्रगाढ़ बनती है । अतः भगवान् में जितनी भासक्ति होयी उतनी ही भक्ति घेरे होगी । शायद भाव में मधुर भाव की प्रगाढ़ता है । भक्ति के सभी सहाय में भासक्ति का समाग्न है । जो भासक्ति निवृत्ति मार्ग में शेष है वही भक्ति मार्ग का गुण है । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भक्ति में उक्त विविध भासक्तियों में से एकका उदय आचरितिक और कारितिक होता है । जब तक कि भगवत् सुपहस हो अपनी-अपनी विसृष्टि दासि एवं दास के अनुसार एक या एकाधिक भासक्तियों परमात्मा के प्रति प्रेम का कारण होती है । ये भासक्तियाँ एक ही प्रेम-बीज से प्रसूत मित्र-मित्र वस्तुस्थिति हैं । एकका समान महार समझना चाहिए ।

हमने ऊपर प्रेम-रूपा भक्ति का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया है । आठवार भक्तों और आत्मोपनिषद् हिन्दी कृष्ण भक्त-वर्णिका में प्रेम-रूपा भक्ति की प्रधानता थी । प्रेम-रूपा भक्ति के आ विविध रूप ऊपर बखर्किये हैं, के सब दोनों दोनों के भक्तों की भक्ति में देखने को मिल जाने हैं । प्रेम-रूपा भक्ति की जो ११ भासक्तियाँ नारद भक्ति-गुण में बतायी गयी हैं उनको व्यक्त करने बात अनेक पर आठवारा के और आत्मोपनिषद् हिन्दी कृष्ण भक्त वर्णियों के मिलने हैं । हम प्रत्येक आगस्त्रि के गुण उदाहरण दोनों दोनों के भक्त-वर्णियों के वाक्यों में से सीधे लेते हैं । यथा—

१ गुण माहात्म्यासक्ति—ईश्वर के गुण और उनकी महत्ता का ज्ञान और उनके प्रति शान्तात्मकता प्रेमा भक्ति में 'गुण माहात्म्यासक्ति' कहलाती है। यह प्रेमा भक्ति का प्रथम सोपान है। इस भाव को आळवारों ने तथा आसाव्यकासीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने विमल भगवान् की भक्तवत्सलता वास भाव सहार-सीमा बाहि प्रसंगों में व्यक्त किया है। आँखा 'तिरप्पार्य' में भनवान् के गुणों पर मोहित होकर कहती है— 'हे, सीमों सीमों को मापने वाले ! तुम्हारे बरणा की स्तुति करती हूँ। सँका-नाशक दाय की स्थापना करने वाले ! तुम्हारी शक्ति की स्तुति करती हूँ। हे कपट, शकट के भँजनकारी ! तुम्हारे सुम-यश की वय हो। वछड़े (के रूप में जाने राक्षस) को पत्थर-सम फेंकने वाले ! तुम्हारे पद कमलों की बन्दना करती हूँ। मिरि को बरकर दल बमान वाले ! तुम्हारे अर्पणित गुणों की कीर्ति गाती हूँ। हे विघ्न धासी ! तैवीध देवमणों के भय का हरने वाले ओ न्नुमायी ! सर्वशक्तिमान्। सधु ताप करने वाले ! विमल मुक्त रूप बरकर भक्त-पाप हरने वाले ।^२ तिरप्पाण आळवार भगवान् के गुणों की महिमा गाते हैं— 'भगवान् पवित्रता के आकर हैं, आदि प्रभु हैं, महान् हैं। मुक्त दास को स्वीकार करने वाले विमल हैं। नीति के मिरिबर हैं। दया सिन्धु हैं।'^३

हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के अनेक पदों में गुणमाहात्म्यासक्ति व्यक्त हुई है। सूरदास जी का निम्न पद देखिए :—

हमती हुई भक्ति फल पायो ।

बी नापाम मिरा तो मीकौ, नतद जगन जल छायो ॥

कहाँ हम या मोकुम की सीपी बरनहीन यदि जानि ।

कहाँ वे श्री कमला के बल्लभ मिलि बैठी इक पति ।

नियम ज्ञान मुनि ध्यान धनोबर, तै भए घोष निवासी ।

ता ऊपर सब हो देखि बी, मुक्ति कौन की दासी ॥

१ "अम्मु इम्मुलकन अळवय । अडि पोटी
केम्बु गु तिमिमर्क वेदाय । तिरस पोटी
पोम्मुक्कळम उरैत्ताय । पुरम्पोटी
अम्मु कुप्पिता ऐरिम्माय । अळम् पोटी
अम्मु कुदैया एडुत्ताय । गुणम बोटी ।"—तिरप्पार्य २८

२ मुप्पुल्लुवर धमरकु मुम्मेकु
अप्पम तन्निडु म कसिणे । मुप्पिनेळाय
केप्पमुदैयाय । तिरमुदैयाय । वेनुगु
केप्पम कोडुबुम विमला । मुप्पिनेळाय । —वगी २०

३ धमनबादिराम, १

जोग कथा ऊँची पासनीं मति कही बारम्बार ।
 सूर स्याम तजि दान भजे जो ताकी बननी छार ॥^१
 मोरारई के निम्न पद में साराण्य के माहात्म्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति है —
 मन है परत हरि के वरन ।
 “सुभग झीतल कंबल कोमल त्रिविध ब्याला हरन ।
 जिन वरण प्रह्लाद परसे इष्ट पवनी वरन ।
 जिन वरण ध्रुव घटस कीने’ राति अपनी सरन ।
 जिन वरण ब्रह्मांड मैद्यो, मज सिखा तिरी घरन ।
 × × ×
 जिन वरण गोबरपन चारुयो, इष्ट पद को गय हरन ।
 बाति भीरा सात गिरवर, प्रगम तारनतरन ॥ ^२

२ कथासक्ति—पुण माहात्म्य का ज्ञान भक्त के हृदय में आस्था जगाता है। जब वह आस्था स्व-सौन्दर्य के दर्शन से अनुराग में परिणत होती है, तब वह स्वासक्ति बटुसाती है। आळवारों की रचनाओं में स्वासक्ति का बहुत ही प्रबल रूप व्यक्त हुआ है। तिरमंगी और ताडरडिपोडी आळवार जैसे भक्तों की जीवितियों से प्रकट है कि उनके प्रतिमाय पर माने से पहले उनकी सोच-वृत्ति स्व-सौन्दर्योपासिनी थी या सोच से मुझकर कामांतर में साराण्य के रूप में झुक गयी। मन्दरास रसगान आदि हिन्दी कवियों की जीवितियों से भी यह प्रकट है। आळार और मीरा में यह आसक्ति अपनी पूर्णता के साथ व्याप्त है। प्रिय के सुन्दर वरन, उनका कमल-मल सोहन और उनकी बाँकी चितवन ने आळार और मीरा को मोहित कर लिया है। पैरियाळवार को एक गापी अपनी सखी से कहती है—‘हे सखी! पावन माधे पर सिम्पूर का विलक घोमित है। अति मनाहर कषपाय से अलङ्कृत कृष्ण गदन तक पहुँचने वाली मधुर मुरली-स्वनि का निवासते हुए जा रहा है। उसके रूप ने मुझे पाह लिया है। अनुपम समिध्वं जाता यह कृष्ण मेरे अत्यधिक प्रेम और प्रेम-मात्र का टीक समझते हुए भी यदि वह मार्ग में आवेगा तो मैं अपने बन्धु को उसके द्वारा चोरी से जाने का अपराध जम पर लगाकर (बहाने से ही) उसे रोक भूँगी और उसने माठी से समान सुन्दर एवं मन्दहाण पुस्त भक्तों को देगूगी^३।’ योरी

१ सुरसागर (दत्तम स्वयं) पद सं ४८१४ भा० प्र० सभा काशी ।

२ मोरार जी पदावली पर सं० १

३ निम्पूरमित्तगतन निरुनेऽमेत
 निर्दालय कोरकुम तिरपुळुन

चम्पमोम्पुताह चार्यान्वर्ध
 चरितरत्नम् इष्योचि पोरमाचित
 पनु कोण्डानेगु बर्द्धल वेल
 पबटवाय मुदबनुम चाव्योव तोडी । ’—पैरियाळवार निरमासी १४६

अव्यय कहती है 'इत्यु क सीगर्व नी समानता कौन कर सकता है ? मैंने ऐसी चीन्मर्ग-रूप-राशि कहीं भी नहीं देखी । मेरे हाथ के कंकण भी नीचे गिर रहे हैं । मेरे वस्त्र भी अस्तव्यस्त हो रहे हैं । (काम बड़ा) मेरे स्तन भी मेरे बदन से नहीं हैं । 'बाँझा कहती है—'धी रगम् के मेरे प्रियतम सुन्दर केदा बासे हैं, सुन्दर मयन बासे हैं, सुन्दर वदन बासे हैं । (मेरा मन उनके रूप पर इतना आसक्त है कि) मेरे हाथ के कंकण स्वयं गिर रहे हैं । २"

हिन्दी-कृष्ण मत्त कवि परमानन्ददास के निम्नलिखित पद में आराध्य के मोहन रूप पर आसक्ति प्रकट हुई है —

'पिय मुक्त हैरत हो बै रहिए ।

नैननि की मुक्त कहत न धारि जा करम सब सहिए ॥

बुनहु पोपस नास पाँइ नामी भसो पोष से बहिये ।

हो आसक्त भई पा बप बड़ भाग से सहिये ॥

बुन बहु मयक बसुर तिरोमनि मेरी बाँह हड़ गहिये ।

परमानन्द स्वामी' मन मोहन बुन ही निरबहिए ॥ ३

मरवाण ने निम्नलिखित पद में हरि के रूप-सीगर्व का चित्र खींचा है —

(धर्म ही) जैसे कहीं हरि के रूप रहति ।

धरने तम में मेह बहुत बिधि, रसना जानै न मन बसति ॥

जिन देखत ने धारि बचन बिनु जिनहि बचन बरसन न तिसति ।

बिनु जानी ये जर्मणि प्रेम जल, मुमिरि-मुमिरि का रूप बसति ॥

बार-बार बछितात यह कहि कहा करौ जो बिध न बसति ।

दूर सकस संगति की यह पति वही समसाव छपड़ पनुति ॥ ४

मोरा तो मदन मोहन के रूप पर मुग्ध हो चुकी है । गिरधर नामर ने के रूप में उन्हें मोह लिया है । मोराबहुती है :—

१ एगहु म इबनपोषारै ममाय ।

कष्टरियेनही । बनुकाँनाय

मोम् म निस्साबसै बळ्ळु

मुक्तिगिळ मुनमुन एन बमिस्सबे ।—नेरियाळ्वार तिरमोली, ३ ४२

२ एळिमुईय धम्मनमीर । एन्नरगसिन्नमुवर

बुळ्ळनळ्ळर, बायळ्ळर कण्णळ्ळर कीप्पुळ्ळम

एत्तु कमनप्पुबनकर एम्मानार एम्मुईय

बळ्ळनबर्नईतामुम बळ्ळनबर्नयेयाळ्ळनरै ।

—नाचियार तिरमोली ११२

३ परमानन्द नामर (गं० ३१० गा० ३१० गुमां) पृ० गं० १२२, पद गं० ३१६

४ मुरतामर (दयाल स्वयं) पद सं० ४१५२ गा० ३० ममा कारी ।

मिष्ट बंदट छत्र घटके ।

महारे राजा निष्ट बंदट छत्र घटके ।

देव्यां वप भवनमोहन री, मिष्ट पिपुष न मटके ।

बारिज भवां घसक मठवारी, वप वप रस घटके ।

देव्यां कट देहे करि मुरली देव्यां पाग सर मटके ।

मीरा प्रभु रे वप लुभाणी गिरधर नागर मटके । ११

१ पूजासक्ति—कृष्ण की पूजा में अनुराग पूजासक्ति क्या प्रेमा भक्ति है । आठवार भक्ता ने तथा कामोष्प कामीन हिन्दी-कृष्ण भक्त कवियों ने इस भाव की भक्ति रसुतियों में की है । अर्चन बम्बन बाबि मे सीन होना भी पूजासक्ति है । नवधा भक्ति के विवरण में पीछे इसका उल्लेख हो चुका है ।

४ स्मरभासक्ति—मिरलार प्रभु क ध्यान में हो सीन रहना स्मरभासक्ति क्या प्रेमा भक्ति है । प्रिय के वियोग पर मर्वा उसी का स्मरण कर, अन्य सब कुछ भूलकर बिस्म हाने की अवस्था है । इस भासक्ति को व्यक्त करने बाग अनेक पद दोनों दोनों के कवियों के वाक्या में मिलते हैं । इस भासक्ति का बर्णन विस्तार से आगे माधुर्य भाव के अन्तर्गत किया गया है ।

५ वास्यभासक्ति—मगवान् के माहात्म्य की स्वीकृति का अनिवार्य परिणाम भक्ति के क्षेत्र में वास्य भाव की जायति है । यही वास्य भक्ति है । इसमें जालंबन की महत्ता से साथ काम्य अपनी सगुता का अनुभव भी करता है । कवियों के विनय पदों में यह भाव व्यक्त हुआ है । आगे वास्य भाव के अन्तर्गत इसका विवेचन होगा ।

६ सख्यभासक्ति—सख्य भाव से की जाने वाली भक्ति सख्यभासक्ति क्या प्रेमा भक्ति है । 'सख्य भाव' के अन्तर्गत आगे इस भक्ति का परिचय दिया गया है ।

७ वात्स्यासक्ति—स्त्री-पुरुष में प्रेमभाव की वैसी व्यापकता और तीव्रता है, उसी भाव से मगवान् की भक्ति करना 'वात्स्यासक्ति' कहलाती है । गोपी-कृष्ण संयोग तथा राव-सीता के पक्षों में इस भाव की अभिव्यक्ति हुई है । 'मयूर भाव' के अन्तर्गत आगे इसका विवेचन प्रस्तुत करेंगे ।

८ वात्स्यासक्ति—यह वात्सल्य प्रेमभाव की भक्ति है । कृष्ण की बात सीता तथा यशोदा-बिरह में यह भाव व्यक्त हुआ है । वात्सल्य भाव के अन्तर्गत इस भासक्ति का विस्तृत परिचय दिया गया है ।

९ निबद्धभासक्ति—आठवार भक्तों के अनेक पद आत्मनिवेदन के रूप में ही बने हैं । दोनों दोषों के कवियों के विनय और बिरह—दोनों प्रकार के पदों में इन भासक्ति की अभिव्यक्ति हुई है ।

१० तन्मयासक्ति—प्रेम की प्रगाढ़ मजबूती में प्रेमी भक्त की समस्त चेतना प्रियपथ में केन्द्रित हो जाती है। जब तक प्रेमी अपने प्रेमास्पद में अपने को इतना मीन न कर दे कि जल-बैठे छाते-पीते सते जायते वह उसी के ध्यान में मग्न रहे, जब तक उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। यह तन्मयता प्रेमासक्ति की जान है। गोपियों की तन्मय मजबूती को प्रकट करने वाले आठवारों के तथा आसोष्मकासीम हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के पदों में तन्मयासक्ति व्यक्त हुई है। 'मधुर भाव' के अन्तर्गत माने इसका विवेचन किया गया है।

११ परम विरहासक्ति—मगवान् से बिछड़ने की परम दुःखपूर्ण अनुभूति और जयसे पुनर्मिलन की उत्कट अभिलाषा 'परमविरहासक्ति' है। यह प्रेम भक्ति मधुर-भाव तथा वासत्य भाव के वियोग पथ में व्यक्त हुई है। कवियों के विरह भाव के पदों में प्रिय के वियोग में लक्ष्मण कर मिसल के सिद्ध तरसने वाली आरामा के दर्शन होते हैं।

भक्ति-रस और भक्ति के विविध भाव

भक्त मुनि ने अपने 'नाट्य शास्त्र' में रसों की संख्या नौ मानी है। परन्तु उन्होंने भक्ति को कोई स्वतन्त्र रस नहीं माना। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने भी भक्ति को कोई रस न मानकर केवल भाव ही माना है। पण्डितराज जयधाम भी भक्ति को भाव मान मानने की कवि को छोड़ नहीं सके। भक्ति-रस का पूर्ण विवेचन करने और भाव को रस रूप में प्रतिष्ठित करने का योग आचार्य स्व गोस्वामी जी को है, जिन्होंने अपने भक्ति-विषयक ग्रन्थ 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में इस रस का विराट विवेचन प्रस्तुत किया है।

भक्ति रस की निष्पत्ति किस तरह होती है और कहाँ होती है ? यह विचारणीय है। श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति रस को दो प्रकार का माना है—

(१) मुख्य भक्ति-रस और

(२) सौख्य भक्ति-रस।

मुख्य भक्ति-रस के अन्तर्गत धाम्नि प्रीति, प्रेम बरसत और मधुर बताये गये हैं, और सौख्य भक्ति-रस के जहाँने सात भेद—हास्य अद्भुत और, बह्ण रोग भयानक तथा बीमरस—किये हैं।^१ भक्ति रस की निष्पत्ति के सम्बन्ध में श्री रूप गोस्वामी ने कहा है—“विभाव अनुभाव भावि की परिपुष्टि से भक्ति परम रस-रूपा हो जाती है। विभाव अनुभाव, सात्विक भाव तथा व्यभिचारी भावों से भक्तों के हृदय में स्वाधरस को प्राप्त कराई गई जो कृष्ण रति-रूप रपायीभाव है वह भक्ति में परिणत होता

१ हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, दक्षिण विभाग सहरो २, प्लोफ २३-२८ पार

है। जिनके हृदय में पूर्ण भग्न की भयंकरता होना है। जिनके पाप-दोष भक्ति से दूर हो गये हैं। जिनका चित्त प्रसन्न और उज्ज्वल है, जो भावबल में रत है, जो रसिकों के सारस में रजित है जो जीवनीयुक्त योगिन् के चरणों की भक्ति को ही अपनी मुक्त की मानते हैं और जो प्रेम के अखण्ड हृद्यों को करने वाले भक्त हैं उनके हृदय में जो आत्मस्वरूप रति स्थिर होती है वही दोनों प्रकार के (पूर्व और इस भग्न के) संस्कारों से उज्ज्वल बनी रति रस रूपता को प्राप्त होती है। यही रति अनुसृत कृष्णारवि बिम्बाबादि के संसर्ग से उक्त भक्तों के हृदय में प्रीतिजन्य और चमत्कार की पराकाष्ठा को प्राप्त होती है।^१

इस भक्ति रस की निष्पत्ति मधुर तथा पूर्ण मन्कार मुक्त भक्त के हृदय में होती है। श्री कृष्णोत्पत्ति की तरह काव्य प्रकाशकार अतिशयगुण तथा मर्मद में भी रस की निष्पत्ति नामना और पूर्ण संस्कार से मुक्त हृदय में मानी है। सेविन काव्य रस और भक्ति-रस में जोड़ा बहुत अन्तर है। भक्ति रस के अङ्ग इस प्रकार हैं —

१. बिम्बाब—बिम्बाबों के द्वारा ही कृष्ण रति-न्यायी भाव 'रसाम्बा' का हेतु होता है। ये बिम्बाब दो प्रकार के हैं—एक आत्मजन और दूसरा उद्योग।^२
आत्मजन—कृष्ण रति के आत्मजन बिम्बाब विषय रूप से कृष्ण और आचार रूप से कृष्ण-भक्त हैं। कृष्ण बाहे स्वयं रूप में ही भयंकर अन्य रूप में, जैसे मोक्ष प्राप्त आत्मजन है। कृष्ण भक्त बाहे माधक हो बाहे सिद्ध—दोनों ही प्रकार से आत्मजन हैं।

उद्योग—कृष्ण रूप व उद्योग बिम्बाब उनके गुण बटा प्रकाशन और गुण भग्न बन्य बन्य हैं।

२. अनुभाव—कृष्ण रति स्वीयीभाव—नृत्य विनृत्यित मोक्ष अनुभाव द्वारा जन्मा स्वयं भूमन साधनोत्पत्ति साधनता बट्टहाय पूर्ण और द्विधा है।^३

३. सार्विक भाव—ये सार्विक भाव में भाव मही हैं। ये तो भावों के बाह्य साधन भाव हैं। प्राचीन काव्यशास्त्र में दिये जाठ सार्विक भाव की रूप योग्यता में भी दिये हैं। ये—स्वयं रोमांच स्वर रंग रूप, वैभव अथ और प्रत्यक्ष हैं। रूप योग्यता में दिये गिना दिये और रंग—तीन बिम्बाबों में बिम्बाजिन करते हैं।^४

४. व्यक्तिवारी भाव—इन्हें संबारी भाव भी कहते हैं। ये संख्या में तैनीय हैं। इनके नाम ये हैं—निर्बन्ध विषय ईन्य गति विषय मर एवं संका आवेग

१. हरिचरितरत्नावलि, रसिता बिम्बाब लहरी १ स्तोक २ ११ पु० १२० १२१
२. भक्तिरत्नावलि, रसिता बिम्बाब लहरी १ स्तोक २ १
३. लहरी २ १-१२
४. लहरी ३ १ १ २

उत्साह अपस्मार, व्याधि मोह मति आतस्य प्रीति स्मृति बितर्क चिन्ता मति, धृति हर्ष भीक्षुवम अमर्ष असूया आदि । ये संघारी भाव कभी तो कृष्ण रस से स्वतन्त्र होते हैं और कभी परतन्त्र ।^१

२. स्वायी भाव—स्वायी भाव के भी भेद हैं—रति हास भोक ज्ञोष, उत्साह भय कुपुष्पा विस्मय और निर्वेद । वैष्णव भक्ति रस का मुख्य स्वायी भाव श्रीकृष्ण-विषयक 'रति' है ।

मम्मट आदि अलंकारिकों ने कहाँ भक्ति को 'भाव की काटि में ही रसा कहाँ वैष्णव लोग उसे 'रस' ही मानते हैं ।^२

भक्ति के विविध भाव

कहा जा चुका है कि लोक में मानव प्रेम के जितने रूप हैं उन सभी प्रीति सम्बन्धों को भक्तों ने भगवान् के साथ जोड़ा है और उसी के अनुसार भक्ति के भावों का नामकरण भी कर दिया है । इन भावों में वास्य भाव सख्य भाव वारस्य भाव और मधुर भाव विशेष उल्लेखनीय हैं । भक्ति के इन चार भावों के अतिरिक्त पाँचवाँ भाव 'शान्त भक्ति' का भी है । इन भावों को 'रस' की संज्ञा भी दी जाती है ।

वास्य भाव की भक्ति

वास्य भक्ति के अन्तर्गत उन सभी भावों की व्यवज्ञा होती है जिन्हें एक स्वामि भक्त सेवक आश्रापानक पुत्र और शिष्य अपने प्रभु माता-पिता, और गुह के प्रति विभिन्न परिस्थितियों में प्रकट किया करते हैं । अपने इष्टदेव को अपना दयालु प्रभु, पिता गुह समझकर भक्त उनके सामने अपनी अज्ञानता बीमता अपने दुःख शोच आदि का वर्णन करने में अपनी रक्षा और उद्धार के लिए माना प्रकार से याचना करने में विशेष आनन्द पाते हैं । भक्त भगवान् की सर्व सामर्थ्य की ध्यान में रखकर उन पर अपनी अनम्याधमता प्रकट कर माना प्रकार से उनकी कीर्ति का गान करते हुए उनकी इषाहृष्टि पाने के लिए सदा कातर रहते हैं । भगवान् के चरणों में आत्मसमर्पण कर अपन उद्धार की प्रार्थना करते हैं । उनकी दारण में रहते हुए जहाँ में विभीन हा जाने के घुम अबसर की प्रतीक्षा में सदा रहते हैं ।

आठवार भक्त में तथा आलोच्यवाचीन हिन्दी कृष्णभक्त कवियों में कुछ से वास्य भाव से भक्ति की है । इनके पदों में वास्य भक्ति के अंग—आत्मनोय प्रसादन चिन्तन, याचना बीमता समर्पण तथा भगवान् की सामर्थ्य की अनुभूति आदि के भाव स्पष्टित हैं । विष्णुसे आठवार अपने को भगवान् का दास कहने में अत्यन्त आनन्द पाते हैं । ये कहते हैं—

१ भक्तिरतामृत तिग्गु ६ बि० सहरी ४ । १

२ "विभक्त भागवतरसमाप्तम् ।"—भागवत भक्ति-प्रधान ग्रन्थ है । उसमें भक्ति रस-रूप में ही प्रतिपादित हुई है ।

म देकर तुमने गोपास कृष्ण की दासता स्वीकार कर ली है। पहले निम्न मनुष्यों की संघति में रहकर भगवान् से विमुख रहने वाले मन ! आज तुमने उस भगवान् की दासता स्वीकार कर ली है जिसकी स्तुति ब्रह्म विष्णु इन्द्र आदि देव मनु अमणित्त भक्त निरन्तर करते रहते हैं।”^१ तिरुमल्लिर् आळ्वार कहते हैं— ‘हे भगवान् ! तुम मेरे लिए प्रेम-मूर्ति हो। अमृत हो। मेरे लिये सब कुछ हो। मुझ इस दास के लिये सर्वदात्म्य हो। हे भगवन् ! मैं तुम्हारा आज्ञाकारी दास हूँ। मुझ पर तुम कृपा करते रहो। आज और कम ही मही सर्वदा तुम्हारा अनुग्रह ही मेरा सर्वस्व है। मैं भली-भाँति समझ गया हूँ कि तुम्हारे सिवा और कोई सहाय नहीं।”^२

तन्माळ्वार कहते हैं— ‘हम ठा। भगवान् के दास हैं, बिरकास से। पीढ़ियों से उनके दास रहते आए हैं। उस परम पिता की शेष रहित सेवा करने में कस्यास है।”^३

१ “वेयम अजियन चियिन वेरियनेय्युम चितर पेच्चकेट्टिरुम
रे एन नेचमेय्याय। एनकु प्रोम्मुम चोत्सावे

“ “ “

आमर नायकुडु इन्दु अहिर्मे तोळिल पुन्नाये।”

—पेरिय तिरुमोळी २१८

‘वर्हि वलरुम पजिम्बेत्ती कळ्पितर
पातु तामरैयुम ईगुनुम, अमरर्केनुम निम्पुत्तुम बेकटत्तु
आतुत्तुनुकु इन्दु अहिर्मे तोळिल पुन्नाये।

—वही २१९

२ “अन्पावाम आरमुवमावाम अजियनुकु
इन्पावाम एन्नामुम नीयावाम पोन्पावे
केत्त्वा। बिळरोळियेन केयवने। केहिम्प्री
आळ्वारकु अजियेन नामाळ।”

—नाम्मुपन तिरुवर्गालि १९

‘इन्द्राक नाळ्वार इमिरिचरिनुम
निम्प्राक निम्वळ एन्पासरे-अम्प्राक
नान उर्म्म अम्पि इतैन कन्दाय-आरणे।
नो वेन्ने पम्प्रीपिते।”

—वही, ७

३ ओट्टिबिल कालमेत्ताम उटनाय मति
बनुविना अहिर्मे वेप्पुकेयुम नाम
तेटी कुरलदरी तिरुबेकटत्तु
एट्टिग वोट्ट वयोति एन्ने तर्त्तं तर्त्तैके।”

—तिप्पावमोटी १११

एक ब्रह्म स्वयं पर वे कहते हैं— हे भगवान् ! तुम भरे पिता हो माता हो—मेरे सब कुछ तुम्हीं हो ।^१

आत्मसोप प्रकट कर लाइरडिपोही आळवार ईश्वर भाव से भगवान् की शरण की याचना करते हैं । तबपते हुए भक्त-हृदय की वरुण-गुहार इन पद्यों में हमें सुनाई पड़ती है । वे कहते हैं—“मेरा अपना कोई घर नहीं । अपनी कोई बनीन नहीं और पुष्टे बासा कोई बापु भी नहीं । फिर भी है कल्याणमूर्ति । इस पाबिब जीवन में आपके घरणों की शरण मेंने ग्रहण नहीं की । हे धनध्याम भगवान् ! अब तो भारी प्रभदन करता हूँ । कोई है मुझे अबसम्भ देने बासा ?^२ मेरे मन में मोड़ी सी पवित्रता नहीं मुँह से एक भी हित वचन नहीं निकसता । प्रीति के कारण मैं हृदयवृद्धि का इमन कर नहीं पाता हूँ । किन्तु दूसरों पर कुरी दृष्टि डालकर कटुवचन बोल देता हूँ । हे तुमसी मासापाये ! भरी अब क्या बसा होगी ? कहिये मुझ पर सायन करने वाले महाप्रभु ।^३ हे भगवान् ! तुम्हारे दर्शन की प्राप्ति करने के माग ते विमुख रहने वाले मोनों की संघति में मैं रहा, मैं मूर्ख हूँ । मूर्खों में भी निम्न कोटि का हूँ । अब आपकी शरण में आया हूँ ।^४ सुखर स्थियों के प्रेम-पाश में, स्व-भाल में बन्द रहकर मूढ़े संसार में अपने सारे समय को मैंने बीबा दिया । मैं झूठा हूँ नीच हूँ । अब आपकी शरण आया हूँ ।^५

१ “वेदा ताव भी विरचित तमी नी ।”

—वेरिय विस्वन्तादि ५

२ “अरिस्तेन कावियिस्ते उरबु मद्रोदरिस्ते
पावननिम्पाय मुलम पट्टि तेन परम मुनि
कारीजीवन्मते । कल्पाने । कदविन्दुः ।
आल्लार ? कळकच अम्मा । अरपमानपरस्ताने ।

—विदमाने, २६

३ मलितल धार तुडमैपित्त कायितोरिस्तेस्तिनै
जिहतिनाल वेदुम मोरकी तीविजीवन्माता
पुनस्तत्याय मालैयाने । पोम्मी वृष्ठ तिरवरंगा ।
एनक्कुरनिवहरि येस्तेस्ताय ? एम्मेयाळुई कोवे ।

—वही ३०

४ कातिरळनय मैनिक्कन्मते । उम्मेरकायुव
भार्गमोदुरिमादृष्टा जनिचरित्त तुरिनाय
मुनित बन्धु निन्दुन मुन्ननेन मुन्ननेने ।

—विदमाने, ३२

५ येम्पेस्ताय पोक्किट्टु विरिगुळारित्त पट्टु
पोय्येरुनाय पोदिमु कीळ पोन्वन्नेन बन्धु निन्दु
एयने । अरणने । उन्नळ मुमार्ग तन्मान
वोय्यनेन बन्धु निन्दु न वोय्यनेन वोय्यनेन ।

—वही, ३३

तिरमगे आठवार दास्य भाव से भगवान् की कृपा की याचना करते हुए कहते हैं— मैं बुद्धी हूँ बिधित हूँ, प्याकुल हूँ। सांसारिक मोह-जाल में पड़कर मैंने किये ही स्वर्ण दिन खो दिये हैं। बिजय की नामना कर नगर पहायों की इच्छा कर नारी के मोह-जाल में पड़कर, चंपस मन से रिक्त पिन मैंने नष्ट कर डाले। “ अब क्या करूँ ? हे भगवान् । मैं खोर हूँ, कपटाचरण करने वाला हूँ, मन मान मार्ग पर बसने वाला हूँ, दिवाहीन हूँ सक्रयहीन हूँ। अब आपकी दया की कामना करता हूँ।^१ हे कल्याणिबान । अन्त में मैं आपके पास आया हूँ। इस अकिंचन की रक्षा करो। ” कुलदेवआठवार ने भगवान् की शरण को ही एक मान सहारा माना है। वे कहते हैं— मैं बहुत कष्ट भोग रहा हूँ। हे भगवान् । तुम्हारी शरण के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं। जिस प्रकार माता क ब्रूट होकर त्यागन पर भी ताम्र माता क प्रेम पर आश्रित है उसी प्रकार मैं भी आप ही क अनुग्रह पर आश्रित हूँ।^२

आष्टाष्ट ने भी एक स्थान पर स्वयं को ‘बोकिन्द’ की दास्य कहा है।^३

दास्य भक्ति से ओत-मोत मुरदास के अनेक पद मिलते हैं। दास्य भाव को प्रबल करते हुए मूर कहते हैं— ‘नग्ननग्न की शरण में आकर मेरा मृगु मय छू’ दया मैंने अम्य भक्ति के बिहों को मंड कर कृष्ण भक्ति के बिगु चारण कर लिये हैं। भयक पर त्रिलक बाग म तुमसी पत्र और कष्ट म बनमाला आदि बिन्हा को देखकर मुझे लोग दयाम का दास कहते हैं। यह सुनकर मेरा मन प्रसन्न होता है। सबसे बड़ा

१ “धिमये बेडी मीविने पेदल्को

हेरिबेमाहरबये मरवि

क्रमनार कष्ट कनबिनुम पसुदाय

घोळिबन कळिब घामादुळळ”

—पेरिय तिरमोळी १११

‘येन्दिमे बेडी बीळयोर्दु किरकी

वेरुणार कलबिये कदवि

मिन्दुवा निस्ता मेविनेपुडयेन एन येइयेन ?

—वही ११४

‘कळयेनानेन पडिब बेइतिरयेन

कष्टवातिरितलेनेमुम

येत्तियेनानेन येरुदियेयेन

बिइयेनतिरबडु वेडुन ।

—वही ११५

२ पडु म घोन्दुधियेन पाइये धाडु बाबियानेन

घाडुन बाइयेन घडियेन घाडुकोष्टरडाये ।

—वही १-१-६

३ येरवाळ तिरमोळी १ १

४ नाञ्चियार तिरमोळी १ ६

मुक्त तो मुझे यह है कि मैं वासवृत्ति से भगवान् की झूठन प्रछाद रूप में पाठा हूँ।^१ अपने दोषों को प्रकट कर सूर ईश्वर से शरण की मागना करते हुए कहते हैं —

“अब मैं नाथ्यों बहुत गुपित

काम श्रेष्ठ को पहिर चोतना कठ विषय की भात ।
महामोह के मुरुर बाजत निवा शम्भ रसात ।
भरम भयो मन भयो पलायन अतत कुसंस्त आत ।
तृप्ता नाह करत घट भीतर नामा विधि है तात ।
माया को कटि फेरा बाँधो लोम तिलक दिया भात ।
कोटिक कला काशि वेपराई जल यल सुधि नहि कात ।
सूरदास की सबे अविद्या दूरि करी नारदास ॥”^२

परमानन्ददास वास्य भाव से विनय करते हैं—“हे कृपावन्त स्वामी ! आप मुझे भी अपने शरण-कमलों का मधुप बना लीजिये मेरी आप से यही प्रार्थना है—

‘अपने चरन कमल को मधुकर हमसू काखे न करतु कू ।
कृपावन्त नयनत मुताई इहि विनती बित भरतु कू ।
शोतन घातवज की छाया कर धंजुब सुलकारी कू ।
पदम प्रवाल गैल अनियारे कृपा कटाकट मुरारी कू ।
परमानन्ददास’ रस लोभी आप्य बिना क्यों पार्य कू ।
बाजो इवत रमापति स्वामी तो मुम्हरे डिग जावै कू ॥”^३

मीराबाई कहती हैं—

हरि म्हारा बीबन्ध प्राथ प्रचार ।
धीर घातिरो आ म्हारा य बिध तोषु सोक ममार ।
ये बिध म्हाबै अग वा मुहाबी, निरदया सब संसार ।
मीरा रे प्रभु दासो रावसो मीरयो पैक निणहार ।^४

सूरदास मदनमाहन इस प्रकार विनय करते हैं—

मेरी गति तुम ही अनेक तोष पाऊँ ।
चरन-कमल-जल-धनि पर बिर्क-सुख बहूँ ।
पावन जो पेतो प्रभु तो न घनत जाऊँ ॥

१ सूरसागर (प्रथम स्कन्ध) पद सं० १७१ ना० प्र० सभा काशी ।

२ वही (प्रथम स्कन्ध) पद सं० १११ बा० प्र० नया काशी ।

३ परमानन्द सागर (गं० डा० पो० ना० गुप्त) पद सं० ८७२, पृ० १०६

४ मीरा की पदावली (सं० परमुराम बनुरेदी) पद सं० ४ नया संस्करण ।

५ अत्र माधुरी सार, पृ० १०२

सद्य भाव की भक्ति

सौक्य व्यवहार में जो मित्रता का आदर्श उपस्थित किया जाता है, उसी आदर्श भाव को सत्य भक्ति में भक्त भगवान् के प्रति रखता है। मित्रता के उच्च आदर्श के अनुसार मित्रों में परस्पर किसी प्रकार के स्वार्थ की अपेक्षा नहीं रहती। यतएव सद्य भाव द्वारा निस्वार्थ भक्ति की पुष्टि पूर्ण रूप से होती है। जिस प्रकार वास्तव्य भक्ति के अन्तर्गत भक्त भगवान् के साथ पूरी स्वतन्त्रता से व्यवहार करता है, उसी प्रकार सत्य भाव की भक्ति में भक्त भगवान् के सम्मुख अपने हृदय की बातों को व्यक्त करने में किसी भी प्रकार सन्देह भय अथवा छोटे बड़े का अनुमन नहीं करता। यदाकि दोनों के बीच जो सम्बन्ध स्थापित होता है उसमें समानता के भाव की पूर्ण प्रतिपत्ति है। यही सत्य भाव की भक्ति का महत्त्व है। 'नारद भक्ति-सुत्र' में प्रमासक्ति के प्यारु भक्तों में वस्यसक्ति भी एक है जिसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं।

बृष्ण के वासोदेव विभिन्न वन तथा गोचारण समय के कृष्ण गोप और ग्वालों के परस्पर व्यवहार और उनके प्रीति भोज आदि प्रसंगों में सद्य प्रेम के चित्र भक्त कवियों ने अंकित किए हैं। आठवार भक्तों के काव्यों में सद्य भक्ति भाव की अभिव्यक्ति करने वाले प्रसंग बहुत कम हैं। किन्तु वासोदेवकामीन हिन्दी बृष्ण भक्त कवियों के काव्यों में सत्य भक्ति के प्रसंग प्रचुर मात्रा में हैं।

बृष्ण सखाओं की अपनी मधुर सीमाओं में भी अपने साथ रखते हैं। मात्स्य छोटी में वे अपने सत्ताओं से सहायता मने हैं।^१ गोचारण प्रसंग में सद्य प्रेम प्रपाड़ रूप में प्रकट होता है। सद्य प्रेम के बलीभूत होकर कृष्ण अपने सत्ताओं के साथ ही गार्ह चरते हैं और उनके सुग के लिए आनन्द-प्रसन्न भरे वेल खेचते हैं। उनके साथ गाते हैं और भाषते हैं। सभासा के साथ बैठकर भोजन भी कर लेते हैं।^२ इन प्रसंगों में कवियों ने सत्य भक्ति की ओर संकेत किया है।

गोप बालकों के साथ वन से सीटने के प्रसंग का वर्णन करते हुए वैरिषाठवार कहते हैं— मुरली की मधुर ध्वनि सर्वत्र व्याप्त होकर सुनत बालों को मोहित कर लेती है। बिपिन बालों को बजाते हुए जाने वाले गोप बालका की बड़ी मोह्यी के साथ बृष्ण भी जा रहा है।^३ बृष्ण के मित्र—गाव बालक छोटी तसवार, वनप

१ वैरिषाठवार तिरमोडी २ १

२ नाचिषार तिरमोडी १२ १

३ तत्तन्नुम तौरनुम तनुम्मी एंगुम
तन्नुमी एररुम मत्तनितावरीती
बुल्लनङ्गुम गोतनुवादी एंगुम
गोतिगव वरिन्दु बूदुम वङ्गु

सीसाबन्ध एवं उत्तरीय को उसके अपेक्षित समय में देने के लिए हाथ में तैयार रखकर उसके पीछे जा रहे हैं। स्वयं कृष्ण तो अपने एक हाथ से अपने प्राण-समान मित्र किसी बासक के हाथ का अवलम्बन करते हुए और दूसरे हाथ में गायों को कुसाने के साधन बंस को धारण कर ब्रज सौट रहा है। मोर पंख से सोमित केस-पास से कुछ कृष्ण अपने गोप सखामों की गोष्ठी में आये ठहरकर जाना प्रकार से गान व नृत्य करते हुए जा रहा है।^१

हिन्दी के अष्टछाप कवियों ने सत्य भक्ति के सुन्दर उदाहरण कृष्ण की बास सीसा और घोषारण-सीसा क अतिरिक्त 'सुदामा बरिष्ठ भंजन' नामक प्रसंग में मिलते हैं। इस प्रसंग में सूर ने भगवान् को सबसे बड़ा मित्र कहा है और सत्य भक्ति की महत्ता का उल्लेख किया है। सुदामा मित्रभाव से कृष्ण के पास जाये। उस समय कृष्ण ने सुदामा के साथ खेळ मित्र का सा व्यवहार किया —

हुरि से देखे बसबीर,
अपके बाल सखा सुदामा मलिन बसन प्रब छीन सरीर।
बीछे हुते प्रपंक परम दधि बनिगनी जमर डोसावत तीर।
जठि प्रकुलाह प्रनमने लीने मिलत नैन भरि धाए नीर।^२

वचा—

ऐसी प्रीति की बातें जानें।

सिंहासन तजि जले मिसल की सुनत सुदामा नाई।^३

माचारण प्रसंग में सूर की सत्य भक्ति का और भी प्रगाढ़ रूप प्रकट हुआ है।

सत्य प्रेम के बलीभूत होकर सूर के कृष्ण भगवान् सत्ता मत्तों के साथ साथ चराखे हैं। उनका सूर के लिए आमोद-प्रमोद भरे खेल रचते हैं —

१ "पस्मिन्नुष्पदाक उडेबाळ चाट्टी
पर्वकचुम्बोप्पत तळ नहुवे
मुस्तै मल नरभतर बेरै मत्तरबिम्बु
पत्तापर बुळाम नहुवे
।"

—नेरियाळवार तिल्लोसी ३ ४ २

'हुरिबेपुम तेरिबित्तम चेष्टु कोमुम
मेताबेपुम तोळनमार कोण्डो
ओळ कयाल ओरवन तन तोळवेनिद्रु
धानिरयिकम मोळनुरित्त बंगम

—बंदी १ ४ १

२ सूरतापर (दगम रकथ) पद मं० ४८४६ पृ० १६८६ भा० प्र० नया कागो।

३ ' ("), " ४८४८ पृ० १६८६, "

“बराबत बन्दाबन हरि पाई ।

सखा लिए संग सबल श्री रामा डोलत हैं सुखपाई ।

कीड़ा करत कहीं तहीं सब मिलि घालन्य बडाइ-बडाइ ।

कागिर गई गइयाँ बन बीषिनि बैसी प्रति पकुताइ ।

कोऊ पए खात गाइ बन घेरन कोऊ पए बछब भिवाइ ।

धामुहि रहे घरेलै बन में बहूँ हलवर रहे जाइ ।

बभीबट झीतन जमुना तट अतिहि परम सुखबाई ।

सुर इयाम सब बैठि बिचारत सखा कहीं बिरभाई ।”

नन्ददास के कुछ पर भी कृष्ण की गोचारण तथा छाक-मीसा क है । परन्तु नम उतना प्रगाढ़ रूप नहीं है जितना मूर में है । नन्ददास क ‘मुरामा भरित के न्तिम छम्बा में सख्य भक्ति की महत्ता पर कहा गया है— जो गुरामा की तरह स्य भाव का मजेगा उतको सब सुख प्राप्त होगा ।”

ऐसे जो कोऊ हरि को भजै हरि उबारता ते सुख सेजे ।”

परमानन्ददास की रचनाओं में सख्य भक्ति का माधपूर्ण वर्णन हुआ है । सख्य भक्ति का रसास्वादन करते हुए पात्र रूप से परमानन्द गोचारण और छाक के पक्षों अपने सखा कृष्ण में बहृत है —

घाज बहि भीठो मदन घोपाल ।

भावत मोहि तिहारो भूठो जँघस मयन बिसाल ।

घाने पात बनस्ये डोला रिये सखन को बँट ।

जिन नहीं पावो सुनो रे भया मैरी हुयेरी बछ ॥

बहुत बिनन हम बसे कुमुदवन हृण तिहारे ताप ।

ऐसो स्वाद हम बबहूँ न चाख्यौ सुन घोडस के नाप ॥

घागुन तसत रसावत म्मानन मानुस सीता रूप ।

‘परमानन्द प्रभु’ हम सब जानत तुम त्रिभुवन के भूष ॥”

रसस्य-भाव की भक्ति

वामस्य भाव की भक्ति अग्य नव प्रकार की भक्तियों से उत्पन्न होती का अभी है । क्योंकि वास्तव्य भाव भक्ति का शुद्ध भाव है । इसमें निष्ठात्म प्रेम का भाव बर्णित रहता है । इस प्रकार की प्रीति की भक्ति क आत्मा से साजन की आरम्भिक व्यवस्था में सीविज वामपाई अभी पीछे ही छूट जाती है । वास्तव्य प्रेम में स्नेह-भाव के अन्वेष और प्रगल होने क कारण स्नेही को उत्पन्न वदत में कुछ प्रान्न करने की

१ मुरामार (रसप्रबन्ध) पद सं० १११० वृ० ८३४ मा प्र ममा वासी ।

२ नन्ददास आचार्यजी (मुरामा भरित) वृ ५१५ मा० प्र० गमा वासी ।

३ परमानन्द सागर (सं० गो० मा० गुणम) पद सं० ६४३ वृ० ६२८

हृच्छ नहीं रह जाती। वात्सल्य भाव की सुखिता मुखमन्मता तथा प्रबलता का अनुभव पितृ-हृदय की अपना मानु-हृदय ही अधिक करता है। यही कारण है कि वात्सल्य भाव की भक्ति करने वाले मऊ न अपने का मसोबा की स्थिति में अधिक रखा है।

बाळार मऊ में परिमाळार ने वात्सल्य भाव के बहुत ही सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। जितने विस्तृत और विस्तार रूप में वात्सल्य जीवन का चित्रण परिमाळार ने किया है उतने विस्तृत रूप में तमिळ के किसी दूसरे कवि ने नहीं किया है। शेष से लेकर बीमार्य—अवस्था तक के समय से लगे हुए न जाने जितने चित्र मौजूद हैं। परिमाळार ने केवल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं किया है बल्कि बापको की अष्ट-प्रकृति में पूरा प्रवेश किया है और बाप भावा की सुन्दर स्वामादिक व्यञ्जना की है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने महाकवि मूरदास के विषय में आ मिला है वह परिमाळार के विषय में भी सत्य है। द्विवेदी जी ने लिखा है—“मसोबा के वात्सल्य में वह सब कुछ है जो माता-सम्बन्ध की इतना महिमाघाती बनाए हुए है। ‘मसोबा’ के बहाने मूरदास ने मानु-हृदय का ऐसा स्वाभाविक सरस और हृव्यप्राणी चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। माता मरार का ऐसा पवित्र रहस्य है जिस कवि के अतिरिक्त और किसी का व्याख्या करने का अधिकार नहीं। मूरदास वहाँ पुनर्जन्मी जननी के प्रेम प्लावित हृदय को छूने में समर्थ हुए हैं, वहाँ विधाविनी माता के बन्धु विपत्ति हृदय को छूने में भी समर्थ हुए हैं।”^१ यों कहा जा सकता है कि मूरदास हिन्दी के परिमाळार तमिळ के मूरदास हैं।

परिमाळार ने अपनी लघु रचना ‘तिरप्पळ्ळामाणु’ में मूरदास को शिष्य रूप में कल्पित कर उन्हें वात्सल्य भाव से कई सहस्र वर्ष जीवित रहने का आशीर्वाद दिया है—जय हो प्रभो ! जय हो ! तुम्हारी मुजामों ने जगन्मूर् और मुष्टिक नामक मस्तों को पछाड़ा है। इन्द्र नीलमणि सूर्य वीतिभुक्त दिव्य मयमय शरीर बारी। तुम्हारा मंगल हो ! अनेक सत महस काटि बपों तब तुम्हारा चरण-बमलो की खोजा बनी रहे ! तुम, चिरायु हो !”^२

माता मसोबा के हृदय के प्रत्येक उद्वार का उसका प्रत्येक उच्छवास को परिमाळार ने बड़ी मार्मिकता के साथ दर्शाया है। कृष्ण-जन्म के कुछ दिनों के बाद मसोबा अपनी सहेलिया से कहता है—पामन में छोड़ा ऐसा पत्र प्रहार करता है कि

१ मूर साहित्य—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १२६ १३० ।

२ “पल्लामु पल्लामु पल्लामिरल्लामु
पम कोटि मुराविरम
मल्लामु निष्ठोळ मलि बम्मा । उन
पेम्बडी वेम्बतिरल्लामु ।”

चसकं टूटने का मय होने सपना है। सोने में लछा मूँ लो कमर तोड़ देता है। छाती से लपट मूँ लो पेट फाड़ देता है। हे सबि ! मुझसे नहीं हाजो इस छिमु की सार-संज्ञा !
 है क्या सबि ? १११

छिमु क प्रत्यक्ष मय के सौन्दर्य पर माता दुग्ध हो जाता है और बानी सृष्टियों से बाहर देखने को कहती है—“छिमु के प्रत्यक्ष मय क सौन्दर्य का दखो। छिमु क बनने पौरों की समझो को मुँह में लेकर चुनते समय लच्छा कोनत बरगार बिम्बों की सुन्दरता को बाहर दखो। हे सबि ११२ मन्त्रा चमत्ता को सम्बोधित कर कहती है—“मेरे तास के मापे पर बाधुनरु डोल रहा है। सोने की बिजिली सुनपुर निगार कर रही है। मेरा तास गोबिन्द जमीन पर चुन में टूटने के बल रेंपटा हुआ बैठ रहा है। — मेरा मन्त्रा जो मेरे लिए बन्धु क समान बन्धु है, तुम्हें बुला रहा है, माने लम्हे कोनत करों से तुम्हारी ओर सजित कर। बपर तुम इस बन-गाम के साथ बैठना चाहाम तो मेरों के पीछे चितो मत। ११३ हे सबि ! ओजिन्दय रब पर बिराजमान होकर सर्वत्र प्रकाशमान होने पर भी तुम मेरे तास के दुल की बाना के सामने पीक पड़ जाते हो। ११४ मेरा तास मेरी कमर पर बैठकर तुम्हें बुला रहा है।

- १ बिन्दिरत्न लोहितल बिन्दिय रवीतिभुम
 एतत्तत्त्वोदितं मन्त्रोदिततिभुम
 ओजुस्वी दुहितल परलत पादभिभुम
 मित्रुस्वित्तानन्द्याल नाग भित्तित्तन मंगल ।

—देविन्दुवार तिस्रोटी ११-२

- २ कोरेस्तुल्लतात कोरेस्तुल्लोतल
 रीरेस्तुल्लोती पिहित, चुर्बस्तुल्लुम
 पादस्तुल्लतल काकोरे बरल्लोतलीर । बन्धु काकोरे ।

—बही १-२ १

- ३ तनमुल्लत, चुर्बित्तुल्लत, तनमुल्लत, दोय
 पोयमुल्लत, बिबिपीयार्च दुल्ल रिपतल्लिगुल ।

—बही १४-१

एल बिन्दुदुल्लत एल्लोदुल्लतु पंपिपल
 तनबिरल्लोदुल्लत कादित्तुल्लत
 लंजनल्लुल्लोदुल्लत कोदुल्लत उरदित्त
 बिबिप मरपारे मामती ! बकिस्तुल्लोतीबा ।

—बही १४२

- ४ बन्धुम कोदुल्लोदुल्लत कुल्लुम कोदित्तुल्लोदुल्लत
 एल्लनं देविन्दुम एल्ल मन्त्र मुल्लम देविन्दुम ।

—बही १४३

इसे कुछ मत हो । हे पुत्रहीन अमाये जन्सी आ जाओ ।^१ 'मेरे साल के सुन्दर मुख से अमृत सम सार टपक रही है । मेरा साहसा तोतली बोली से तुम्हें पुकार रहा है । मेरे सर्वप्रिय पुतारे के पा कुसाने पर भी तुम नहीं आओगे तो तुम्हें मैं बहरा समझूँगी ।'^२

माता को मोरी याकर शिशु के सुसाने में कितना मानस है ! कागहा बीरे बीरे वीरों पर बसने लगा । यद्योबा बीटी है । कागहा घिसलिसाकर हँसता हुआ आकर उससे सिपट जाता है और उसे प्यार करता है । उसके मुँह से बसु-रस की धारा की धारा प्रवाहित है । वह शिशु-कुम्भज माँ के हृदय में अमृत प्रवाहित कर देता है ।^३ बच्चे को स्तन-पान करने के लिए माता कुसाती है—“मेरे साल ! कमल-पत्र पर मोती सम पड़ी ओख-बूँदों की तरह तुम्हारे मुख-कमल पर पसीने की बूँदें हैं । फिर भी तुम दूध में रोस रहे हो । बच्ची दूध पीने आ जाओ । बीड़े हुए आजा जिससे कि तुम्हारी किकिरी मितारित हो उठे । गाते हुए, झूमते हुए, गाबते हुए आओ । मीट मत आओ । दूध पीओ ।”^४

१ धोरसलै मेसिचन्नु उर्मये कुदिह शरदुम काल
तरन्तरिचियैल जन्विरा । जलम धेय्याये
मवज्जपेराव मसज्जस्सेयेल वा कप्पाय ।

—देरियाळवार तिरमोळी १४४

२ अळक्किमवायिम धमुवचूरल तेळिचुरा
मळमैमुद्राव इळ चोत्सास जम्मेवडुकिन्दान
कुळकम धिरीवरम कूबकूज नी पोदियेल
पुळ पिसावाकावे निन धेवीपुकर मामती ।

—वही, १४५

३ कमकुडम तिरवालोत्तुरी कल कल चिरस्तुवसु
मुय्यनु तिरु मुत्तम तम्प एम मुक्तिन वण्णन तिरमार्वम
तन्नेयैदु कु तन वायमुवम तन्नु एम्पैराळिपिचिन्दान

—वही १-७-४

४ अंकमलम्पोवकलित्त अलि कोळ मुत्तम चित्तिनार्बोम
अंकमल मुत्तम विपपंतीय वेइतु इम्मुद्रुत्तु
अकमेत्ताम पुळ तियाक अळ य बेटाम धम्म । हिम्म
अकमर्क्कु धमुवळित्त अमरर बोवे । मुस मुषाये ।

—वही, २११

बीर—

पोदयोव किकिरीचळ ओतिरकुमोय्यालियावे
वाडिप्पाटी वरविनदुर्व पर्वनायमेन्दु इन्द्रेण

बात-सुलभ चैष्टाओं का तो बेरियाज्जवार से सूक्ष्म वर्णन प्रस्तुत किया है। कान्हा पड़ोस के बच्चों से भड़का करने के बाद चुपके से घर जा जाता है। पड़ोसिने अपने रोने वाले बच्चों को साथ लेकर पड़ोस को घर लेती है और धिक्कावत करती है। कान्हा हँस रहा है। कान्हा पड़ोस के घरों से मजबूत छुटकर ही नहीं खाया बल्कि घाने के बाद क्षामी घरों को पत्थर पर से मारता है और उनके टूटकर बिखरने की जामान पर कुछ होकर लामियी बजाया हुआ नाच उठता है। पड़ोसिने पड़ोस से इसकी धिक्कावतें करती है।

पहली बार जब कान्हा बीएँ घराने के लिए बग की ओर जाता है, उस पड़ोस का बलपना और सामकास को ठीक समय साजक के सोठने तक उसकी चिन्ता और बबराहट का वर्णन हृदय-त्रासक है। पुत्र विमोघ एक क्षण के लिए भी माता को भ्रष्ट है। पड़ोस अपने को कोसती हुई कहती है—'अनभार्य' नामे मेरे पुतारे को मैंने बड़े सबेरे ही स्नान कराकर बग भेज दिया। पार्श्वों को घराने के लिए बग में बसते समय उसके कोमल चरणों को कष्ट पहुँचा। इसको यहाँ रखकर उसकी माता चैष्टाओं को देखते ही रहने के बहने मुझ पापिनी ने उसको बतल दे दिया हूँ।^१ उसके यहाँ रहने पर भले ही सुन्दर केचक्षामी गोपिकाएँ आकर उसकी कूर्प चैष्टाओं की धिक्कावत मुझ से करें मैं उसकी बरबाह नहीं करती। तबम-प्रिय पुत्र को मैंने ममानर बग में बच्चों को घराने भेज दिया। पापिनी हूँ मैं हूँ।^२ जब कान्हा बग से लौटता है, तो माता के आनन्द की सीमा नहीं रहती और वह पर्व के साथ कहती है कि इस पुत्र को प्राप्त कर मैं बन्धू हूँ।^३

भाविपाडी बर्चेलितदुःख भवमुक्तेषु कृतवाडी
शोडीयोडी पोव जिङ्गडे । कसपा । नी पुर्नकुवाये ।

—पेरियाज्जवार तिरुमोळी २-२ १०

१ पेरियाज्जवार तिरुमोळी २-२ १

२ अञ्जनपणुनी सायर कीलक्कोलुन्दिने
भजनभाट्टी मर्कळ लोचनतिरियामे
कञ्जनैककाङ्गळ कळलडिळळ मोवनकन्दिन चिन
एव चैयन्पिर्ल्ल वेंबोत्तिकनेन एक्के पाममे ।

—वही १-२ १

३ बन्नक्कळ कुळल नावर बन्नु धलपुट्टिङ्ग
बन्निप्पल्लैडु इप्पाडी एणुम तिरियामे
कन्मुत्तिकनियामे कानदरिडक्काङ्गिन्नि चिन
एन्कळरियामी वेंबोत्तिकनेन एक्के पाममे ।

—वही १ १ १

४ पेरियाज्जवार तिरुमोळी, १-१ १

माता मछोबा के मातृ-हृदय का चित्र तो अनेक कवियों ने अंकित किया है। परन्तु उस अभागिनी देवकी की और जिसको बिधि की बिहम्बला से पुत्र को वध देते ही वृष से बिधुङ्गना पड़ा कवियों का ध्यान कम मपा है। उस (काव्य-सौन्दर्य में) अपेक्षिता नारी का मन पुत्र वियोग में किन बातों का स्मरण कर लड़पटा होमा इसका बड़ा ही हृदय-द्रावक वर्णन कुससेखराळवार ने प्रस्तुत किया है। देवकी विनाय करती है—“हे विष्णु पुत्र ! तुम्हें पासने में सिटाकर लोरी गाते-गाते सुसाने का भाव्य मुझे नहीं मिला। मैं अभागिनी हूँ। अँजन लये हुए सुन्दर भजन बामुपण से असंख्य कोमल काँति युक्त शरीर वाले बालक का आनिमन करने का भाव्य मुझे नहीं मिला।” तुम्हारे कोमल करों से बिलसाकर ‘बाबा’ कहकर पुकारते हुए सुतन का भाव्य तन्त्र को मिला, मेरे पतिदेव (बसुदेव) को नहीं मिला। तुम्हारी वास-बेष्टाओं को बेसकर पुनक्ति होने का शीमाव्य मछोबा को मिला मुझे नहीं। मैं अभागिनी हूँ।’ (हरदादि)।

आमाध्यकाजीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कविता में मूरदास और परमानन्द ने विशेष रूप से बाल-लीला के पद बहुत गाये हैं। मूर सागर में कृष्ण की बाल-लीला तथा कृष्ण वियोग में यशोदा बिह्व क संपूर्ण पद मूर की बालस्य भक्ति के प्रमाण हैं। मूर का मातृ-हृदय बाल रस की अभिसाया कर कह छठा है —

“मेरी मामूरिया पोपास बैगि बड़ो किन होई
इहि मुन मपूर भयन हँति कबहुँ अनजि कहोये मोहि ।

१ ऐलपोर कुळमेन मकन तसेसो
एट्टेम्बु उल्ल एमबायिई निरब
तासोतितितुम त्रिद्विर्नैविस्तान
तापरिल कडवायिन ताये ।

—वेरमाळ तिरमाळी ७ १

मडसिपार जेबिब विरलमैसुम
मकयोड, मकम्बु मल्लेमिकिदर
त्रिद्वर्क कण्डिदम्पेद्रितेन मस्तो ।
वेयबा । केतुवेन केतुवेने ।
उत्तमपावनेमुरेय निचरेळ ।
विरनिमुत बडवदन्निमुम बादड
मन्मन पेद्रुतम मस्विनेपिल्ला
म बडवोम बसुदेवन पेद्रुतने ।
निरविसेन घोम्बु म पेद्रुतेन एस्मान
वेवर्तम यशोव पेद्रुळ ।

—बही ७ २

—बही ७ : १

—बही ७ २

यह साधना अधिक दिन दिन प्रति कबहुँ ईश करै,
मो बैसत कबहुँ हंसि मायब पयु ई बरनि परै ।
हस्तपर संग छिरे जब भाँसत करन शब्द सुख पाऊ
छिन छिन झुपित जान पय कारण हों हठि निकट बुलझै ।
धायम निधम नेति करि पायो छिन्न जनमान न पायो,
सुरदास बालक रस लीला मन प्रसिन्नाय बड़यो ॥^{१२}

कृष्ण का बास-वीर्यवर्ष भी अनौछा है । यद्योवा ही नहीं बल्कि जब की सभी माताएँ उस वीर्यवर्ष पर मुग्ध हैं । सूर कहते हैं कि उस अपार सुन्दरता-सिन्धु की बेबस एक बूँद ग्रहण करने की शक्ति ही उनकी अकिंचन अनुमति में है —

‘सतम हीं पा छबि झर भारी
बाल गोपाम भगी इन नैननि रोग बसाइ सुन्दारी ।
नट भठकनि मोहिन मसि बिबुका तिलक भाल सुलकारी ।
मनहुँ कमल भलि छावक वंगति उठत मधुप छबि मारी ।
लोचन ललित कपोलनि काजर छबि उपकत प्रविकारी ।
मुख में मुख प्री छबि बाढ़ति हंसत बें बें किलकारी ।
धम्मबसन कलकत कबि बोलति बिधि नहि परत बिचारी ।

निकसति जोति अवरनि के बीच छूँ मानो बिबु में बीजु उजारी ।
सुन्दरता को पार न पावति क्य बेलि म्हातारी
सूर सिन्धु की बूँद भई मिलि मति यति बुष्टि हमारी ॥^१

सूर के विमोघ-वासस्य-वर्णनों में वासस्य शक्ति प्रगाढ़ रूप में प्रकट हुई है । कृष्ण के अक्षर के साथ मधुरा जल बाने पर पुन-विमोघ में यद्योवा छूटपटाने सभी । उनकी स्थिति का वर्णन सूर के शब्दों में सुनिष्—

“यद्योवा बार बार यौ जावै ।

है कोई जब में हित हमारी अस्त गुपार्तिह राखै ।
कहा काज मेरे छपन मयन को नृप मधुपुरी बुलायो ।
मुफलक-सुत मेरे प्राण हरन को काल क्य छु पायो ।
जब यह पोचन हरी कत सब मोहि बंदि सै मेसो ।
इतनोई मुख कमल नयन मेरी अंजियनि प्रागै खेलो ।
बासर बदन बिलोकत बीबी निसि निज अंकन लावै ।
तिहि बिचुरत को जियौ कर्मबत ली हंसि काहि बुलावै ।
कमल नयन गुन देखत-देखत अघर बदन कुम्हिलानी ।
सूर कहाँ लयि प्रवदि, जगज्जु ब्रुजित नद कु की रानी ॥^{१२}

१ सुरदासर (बसम स्वरूप) ना० प्र० समा काशी ।

२ बही (बसम स्वरूप) पर सं ७ ६, पृ० २६२ ना० प्र० समा काशी ।

३ " (") पर सं १५११ पृ० १२७३ ना० प्र० समा काशी ।

बास-कृष्ण की छवि पर मुग्ध परमानन्द दास कहते हैं —

बास विनोद गोपाल के देखत मोहि भाव ।
प्रेम पुलकि आनन्द मरी असुमति मुन भाव ॥
बलि समेत धन लीमरो आँगन में बाव ।
बदन धूमि मोह सिखी मुन जानि किलाव ॥
सिख बिरचि मुनि देखता आँखी पार न पाव ।
सो 'परमानन्द' आस कों हँसि भसी मनाव ॥^१

सुर के समान ही बासवन्द्य के बिरह की अनुभूति परमानन्द दास को भी होती है । वे कहते हैं —

'गोपाल बिन कसे रहिबो ।
धुतर धन उठाइ मोह से सास कौन सो कहिबो ॥
जी मनुपुरी बिबल लापत है सोच चुल तन सहिबो ।
'परमानन्द स्वामी कों तजिकें सरन कीन की रहिबो ॥'^२

मधुर भाव की भक्ति

सोक में प्रीति के विभिन्न सम्बन्धों में स्त्री-पुरुष के प्रेम में बिधिय आकर्षण है । स्त्री-पुरुष की परस्पर प्रीति को काव्य साहित्य में 'शृङ्गार रस' की संज्ञा दी गई है और उसका स्थायी भाव 'रति' माना गया है । लोकानुभूत स्त्री-पुरुष के प्रेम-सम्बन्ध की व्यापकता को देखकर मल्लों ने भी ईश्वर के प्रति अपने आध्यात्मिक सम्बन्ध की अनुभूतियों को सौकरि शृङ्गार की भाषा और अभ्युक्तियों में प्रकट किया है । सोक-पद में जो शृङ्गार रस है वह भक्ति-साहित्य में 'मधुर रस' कहलाता है । भाव बिभाव अनुभाव, व्यभिचारी आदि शृङ्गार के जितने भी धर्म हैं, वे मधुर रस के भी धर्म माने गये हैं । अन्तर इतना है कि मधुर रस' के अन्तर्गत आसम्बन्ध सोक-मायक न होकर ईश्वर का कोई व्यवहार होता है । एक ओर अन्तर यह है कि शृङ्गार रस तथा शृङ्गार रसाभास—ये दोनों मधुर रस के अन्तर्गत हैं । श्री स्वामीस्वामी ने 'महिरसावृत्तिगुण' में बिरतार से इस मधुर रस की व्याख्या की है । शृङ्गार रस के दोनों पक्षों (संयोग और वियोग) की अवस्थाएँ भी मधुर रस के अन्तर्गत स्वीकृत हुई हैं । साराय यह है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर शृङ्गार रस और मधुर रस में विगत अन्तर नहीं रह जाता । दोनों प्रकार के रसों का परिपाक के लिए जिस विसृष्टि की आवश्यकता है, वह एक ही है । मनुष्य की मनोवृत्ति स्वभाव से ही अल्प प्राणिप्रा की तरह इन्द्रिय-गुण की ओर आकृष्ट रहती है । मल्लों ने इसी मनोवृत्ति

१ बरनामद मल्ल (मं० डा० श्री० ना० दुस्म), पद सं० ८०

२ वही (, ") पद सं० १४० पृ० १८३

को इन्द्रिय सुख से हटाकर ईश्वर की ओर उन्मुख किया है। माना है कि लौकिक वस्तु या व्यक्ति के संसर्ग से जो सुख इन्द्रियों को मिल सकता है, उसका मूल-स्रोत ईश्वर में ही विद्यमान है। इसी कारण भक्ति-साधना में मधुर भाव की महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

भारतीय मनीषियों का मत है कि भक्त में परमात्मा के प्रति उत्तमा तीव्र प्रेम होना चाहिए जितना स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति। स्त्री भाव के प्रेम में ही आत्मोत्सर्ग और आत्म विस्मृति की अवस्था पूर्ण रूप में आती है। पारंपार्य विद्वानों का भी यही मत है। श्री वेराहदास लिखते हैं —

“In the male mind there is predominance of reason concern with active the practical, with doing direction is centrifugal, looking to external achievement In the female mind there is predominance of intuition receptivity concern for being rather than doing direction is centripetal, the well-doing of the object of love rather than well-doing of other external things”

यही कारण है कि भक्ति में स्त्री भाव की बड़ी प्रतिष्ठा हुई है। आठवार भक्तों तथा आत्मोन्मत्तकामी हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की रचनाओं में स्त्री-भाव से होने वाली भक्ति का अधिक परिचय मिलता है। भक्त कवियों ने अपने को स्त्री-रूप में कल्पित कर परमात्मा-पुरुष के प्रति तीव्र प्रेम प्रकट किया है। इन कवियों के लिखे अन्यान्य पदों में इस स्त्री भाव की भक्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

कृष्ण-भक्ति-वाक्य में कृष्ण से माधुर्य भाव का प्रेम करने वाली दो प्रकार की गोपियाँ वर्णित हैं। एक तो वे कुमारिकाएँ थीं जिन्होंने आरम्भ से ही कृष्ण पर मुख्य होकर उन्हें अपना पति माना था और जनमें से कुछ का उत्तम करण भी हो गया था। दूसरी वे थीं जो विवाहिता थीं और जिन्होंने पर पुरुष कृष्ण से प्रेम किया था। गोपियों को आठवार भक्तों ने तथा विशेषकर पण्डितमार्गीय अष्टकाव-कवियों ने बहुधा स्वकीया ही विवृत किया है। यद्यपि कुछ गोपियों का कृष्ण से विवाह नहीं हुआ था, तो भी वे लोक साज कुस-कानि छोड़कर कृष्ण से प्रेम करती थीं। और अपने मनोराम्य स्वाराम्य में अपने को कृष्ण-कान्ता ही मानती थीं। वहाँ गोपियों के मान और कथिता के भाव कवियों ने प्रकट किये हैं, वहाँ भी उन्होंने गोपियों को स्वकीया ही रखा है। आठवारों की राधा ‘भक्तियन्त्री’ तथा हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों की राधिका भी कृष्ण की विवाहिता पत्नी के रूप में ही विवृत हैं।

आठारह तो स्वयं को कृष्ण की पत्नी के रूप में मानती थीं। वे कहती हैं—
‘मोहन गुणमा से पूर्ण मेरा यह धीरे उम बरुणारी पुष्पोत्तम के लिए ही अर्पित है। उस पुष्पोत्तम पतिदेव को अर्पण करके उमरे हुए मेरे लोखों को यदि दूसरे के

उपभोग्य बनाने की (दुमने के साथ विवाह होने की) बात बसी तो मैं बीबित नहीं रहूँगी ।^१ बाळभार ने स्वप्न में 'माधव के साथ होने वाले अपने विवाह का भी बड़ा ही सरस वर्णन दिया है— 'दु दुमियों का माधव उठ रहा था । धन्य ध्वनि सुनाई दे रही थी । उस समय जगमगाती मुक्तावतियों से अलंकृत मण्डप में पुष्पोत्तम ने आकर मुझे अबलामा ।^२ हिन्दी मल्लिकार्जुन भीरा के अन्तर्गत स्वकीया प्रेम को प्रष्ट करते हैं । भीर स्पष्ट रूप से कहती है —

मेरे तो गिरिधर मोपल्ल, दूसरे न कोई ।

बास के तिर मोर मुहुट मेरो पति सोई ॥^३

भीर—

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ ।

गिरिधर म्हारो ताँबीं प्रीतम बैलत रूप सुभाऊँ ॥

× × ×

मेरी उनको प्रीति पुरानी अब विन पल न रहाऊँ ।

× × ×

भीरा के प्रभु गिरिधर भागर बार-बार बलि जाऊँ ॥^४

एक स्थान पर स्वकीया भाव से मूर की गोपी उद्धव से कहती है—

हम बलि मोकुल भाव धराय्यो ।

मन, मन, सब हरि सौं धरि पतिव्रत प्रेम भोग तप लाय्यो ॥

भातु-विता हित, प्रीति, निगम पद्य तत्रि ब्रत भुज भ्रम लाय्यो ।

भावापमान परम परितोषी मुखल बिचि मन राख्यो ॥^५

प्रम में पुनराग की अवस्था माधव के गुण-अवगण अवस्था स्वप्न विन या छाया रूप-वर्णन में होती है । जब नायिका के हृदय में रति उत्पन्न होती है, तब उसे प्रिय-मित्रन की सातगा होती है । इस अवस्था में बिरह की दशाएँ भी नायिका के मन में उपरिचय होती हैं । कभी प्रिय की रूप-मायुरी उसे सुनाती है । कभी प्रिय की स्मृति कभी साह-साह की बिगडा उसे सनाती है । कभी साहस अन्धकार भीर बिजसता आदि भाव मन को मग्न आसते हैं । इन दशाओं को बिबित करने वाले अनेक पं बाळभारों के तथा आलोच्यवालीन हिन्दी रूपण मल्ल कवियों के मिलने हैं ।

बिधोर-रूपण के रूप लावण्य ने ब्रज की गोप-भूमारियों को मुख्य कर आभा है । ऐश्वर्यान्तर की गोती कहती है— 'हे गंग ! मुरली में मधुर ध्वनि निगासते

१. मल्लिकार्जुन तिरमोली १ ४

२. बहो, ६ ६

३. भीरा की बराबरी पद सं० १८

४. बरी पद सं० १०

५. मूर तगर (द्वयम स्वरूप), पद सं० ४१४८, भा० प्र० समा, बायी ।

हुए जाते जनस्याम के जनुस सौम्य पर मैं इतनी मुग्ध हो गयी हूँ कि जनवाने ही मेरे हाव के ककण स्वयं गिर रहे हैं। मेरे बदन भी बस्त-ब्यस्त हो रहे हैं और मेरे स्तन भी मेरे बदन में नहीं हैं।”^१

कृष्ण के कम-माधुर्य पर मुग्ध गोपी की वधा का बर्तन उसकी माँ करती है—
“कमल बल सोचन सुन्दर बदन कृष्ण को यभी मैं मुरली बजाते हुए गाते-भाजते जाते देखकर उसके सौम्य पर मेरी पुत्री इतनी माहित हो गयी कि उसका सरीर अब क्षीय हो रहा है।”^२

कुलसेवाराळ्यार की एक गोपी कहती है—‘सुन्दर सुरभित सुमनों से सदा अलंकृत केसवासी कई मुन्धरियों से युक्त इस बाँध में जब मैंने तुम्हारे आतिगल की लालसा प्रकट की थी तो तुमने यमुना तट पर मिसने को कहा था। तुम्हारी बात पर विश्वास कर जब इस ठंडक में यमुना-तट पर मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। हे जनस्याम! तुमने झूठ ही कहा था?’^३

मुर की गोपी कहती है—

आवति हो जमुना भरि पानी ।

स्याम बरन कछु ली छोटा भिरखि बदन धर-येन मुलानी ॥

मैं उन तन मन मोतल भितयो, सबहीं से उन हाव बिकानी ।

उर बकबकी ठकटकी लापी, तन ध्याकुल मुख पुरति न बानी ॥

कह्यो मोहन मोहिनि तू को है, मोहि नाहीं छोटी पहिचानी ।

सूरदास प्रभु मोहन देखत, जनु बारिच बल-बु ब हिराली ॥^४

और—

तुम्हरे बोलत धावत बेल ।

ना जानी तिहि समय सली री सब तन बदन कि बेल ॥

१ पैरियाळ्यार तिरुमोली १-४४

२

कील चेतामरैकल मिळिरक

कुळमुदियिधेवाड़ी कुनित्तु धायरोडु

धातित्तु बरकिण्डु धायप्पिन्द

अळकु कळु एन मकळयकिम्मे ॥ —पैरियाळ्यार तिरुमोली १-४७

३ एर्यमर पुकुळमायर माबर एनेप्पलक्क इन्दुरिल वन तन

मातुं तळबुबबडु धाधयिम्मे धरिन्दरिम्मे उन तन पोय्य केयेंडु

कूर्मळपोल पनिकूयसेइरी कृति नडुंयिय यमुने धाद्रिल

वार्मबकु म्पिल पुलर निम्पुन वासुदेवा । उन बरडु पालें ।

—पैरियाळ्यार तिरुमोली १-१

४ सूरदासर (दशम स्कन्ध), पद सं २०१० भा० प्र० समा कापी ।

रोम राम में मध्द सुरति की, मज सिद्ध लीं बप देन ।
इते नाम बानी बबलता, सुनी म समुझी संम ॥
तब तकि बकि छूँ बिम सी पत न लगत बिता संम ।
मुगहु सूर यह साँच कि सझम, सुपन किषीं बिठ रीम ॥^१

शुद्धार रति की उत्कट पूर्वपद-अवस्था में प्रेमी सोच सोक-साज और कुस-मर्यादा का भी उत्सर्जन कर देते हैं । पहले कहा जा चुका है कि तिसमें भाळवार तथा नम्माळवार में लौकिक प्रमकाश्य की सभी कड़ियों के सहारे बसौदिक प्रेम की पद्धति बनाई थी । जब नायक को नायिका की प्राप्ति करने में बाधा आ पड़ती है, तो वह 'मदल'^२ पर चढ़कर अपने तीव्र प्रेम की परीक्षा देकर नायिका को प्राप्त करना चाहता है । यह उमिळ लौकिक प्रेम-काव्य की एक कड़ी है । इसके अनुसार केवल पुण्य ही 'मदल' पर चढ़ सकता है । इस अवस्था में वह सोक-साज, कुस-मर्यादा का ही अतिरामण करता है । भक्त कवियों ने इस स्थिति का बर्णन नायिका के विषय में भी कर दिया है । नायिका सोक-साज कुस-मर्यादा की परबाह न कर अपने प्रेम को प्रकट करने के लिए 'मदल' पर चढ़ने को तैयार हो जाती है । तिसमें भाळवार की दो रचनाएँ 'पेरिय तिरुमदल' और 'पेरिय तिरुमदल' नायिका की इस स्थिति का बर्णन प्रस्तुत करती हैं ।

जब की गोपिकाओं ने भी प्रेम की उत्कट अवस्था में पूर्ण रूप से साक-साज का त्याग कर दिया । हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों में भी गोपी प्रेम' द्वारा अपनी प्रेम लज्जणा प्रति का परिचय देते हुए सोक-साज और कुस-मर्यादा की उपेक्षा का भाव प्रकट किया है । इस आशय को प्रकट करने वाला गूर का निम्न पद हृदय है :—

बाई री गोबिन्द लीं प्रीति करत तब हो काहे न हटकी री,
यह लीं जब बलत कलित नई बई बीज बड कीरी ।
पर पर नित इहै धर बानी घट टट की
मैं तो यह सब सही सोक लाज पटकी ।
जब कलित हस्ती समान किरति प्रम लटकी,
बलत में बुद्धि जाति होति कला मन्की ।
जब रजु मिति गौड परी रसना हरि रट की,
घोरे से नहीं छुटति कदक बैर मटकी ।
मेरे बयोहूँ न मितति छाप परी टटकी,
सुरसाज प्रभु की छवि हिरई मेरे घटकी ।^३

मगुर प्रेम की उत्कट अवस्था में बीर भी गूर बादि की गोपियों की तरह

१ शुद्धागर (वचन सङ्ग्रह) पद सं० २३२- ना० प्र० खया वाली ।

२ 'मदल' का परिचय नीचे दिया जा चुका है ।

३ शुद्धागर, (वचन सङ्ग्रह) के० प्रे०, पृ० २३६

कुल-मयी का त्याग कर देती है। मीरा के कुटुम्बियों के 'कुसनासी एक कहने में भी वे विचलित नहीं होती। मीरा को ऐसी बदनामी भी प्रेम की तीव्रता में मीठी लगती है—

“राजा की मूले या बदनामी लगे मीठी।
कोई निम्नो कोई बिम्नो, मैं चलींगी जाल मपुठी।”^१

मधुर प्रेम का संयोग-सुख

प्रेम की पूर्वाभ्यास-अवस्था में जब प्रेम परिपक्वता और हृदय को प्राप्त करता है, तब प्रेमियों का मिलन होता है। यह संयोगावस्था वास्तविक मिलन में अपवा मामसिक अपवा के कास्मिक मिलन में प्रकट हो सकती है। गोपीकृष्ण मिलन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के मन्त और अपने व्यक्तित्व के मोपीभाव में आरोप द्वारा भक्त कवियों ने इष्टदेव के साध्विष्य तथा संयोग की अनुभूति पाने का ब्रह्मास किया है। प्रेम के जो उत्कर्षक मान होते हैं, जो सचारी रूप से मुख्य भाव के सहायक होते हैं तथा कुछ वस्तुएँ और व्यापार भी जो सहीपन विभाव रूप में प्रेम की वृद्धि करते हैं, उन सबका समारोह होना कवियों के भक्त कवियों (आठवार और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि) ने अपने काव्यों में किया है।

आठवार संयोग-सुख की इच्छा से प्रेरित होकर ब्रह्म को सम्बोधित कर कहती है—‘लावसावरा मैं पूछती हूँ। है उबे रज्ज। जरा बताओ तो मेरा बर्ण ‘मावव’ के बर एर का स्वाद है कैसा ? काफूर या कमल सा सुगन्ध कुछ बरवा मधुर मिठास मर ? बताओ तो है बरत। मावव के प्रवाल सम बर का रस है कैसा ?

संयोगावस्था में मानकर बैठने वाली मोपी कहती है—‘सुन्दर केसवासी एक कुमारिका पर कटाव कर, बुरी एक को मिलन का बाबा देकर, तुम अन्य किसी के प्रेम-याव में संयोग-सुख प्राप्त करते हो। तुमने जो वचन मुझे दिया था वह कूड़ा है। कैसी है तुम्हारी माया ? ^२ बिजली-सम पवसी कमर वाली सुन्दरी का साव लेकर भली मैं तुम वसे क्षिप क्षिप के। उसके बूँसट बाल कर बसने को भी मैंने देखा।

१ मीरा की पदावली (सं परमुराम चतुर्वेदी) पद सं० ३३ नवीं संस्करण।

२ कस्पुरम भावमो ? कमलपुनासमो ?
तिरुप्पवळ वेन्नाय तान तित्तियरकुमो ?
मरप्पोचित्त माववन तन बाइजुवे मरुमुम
विरप्पुवळेटकिमुळ ओत्साळी वेन्नाडि।

—माध्वियार तिरुमोळी ७ १

३ कस्मलकू वतलोवती तम कडिवाचित्त धगि ओवती तम पाल।
मरवि वन वत मद्रोदत्तिवकु उरैत ओव पोईवकु पोइ कुरैत,

उस समय संयोगान्न के सिधे किसी दूसरी को आँखों से चुभाते भी मैंने देखा । क्यों उस छोड़कर मेरे पास आये हो ? नहीं जसो ।^१ तुमने मुझसे कुछ में जाने को कहा था । जब मैं आयी तो किसी दूसरी के प्रेम-पास में तुम्हें देता । मुझे देखकर तुम कुछ पुनर्गुनान मये । तुम्हारा हीना-हवासा मैं समझती हूँ । आगे जब तुम मेरे पास आओगे, तब मैं इसका बदला लूँगी ।^२

बीर-हरण के प्रसंग में भी कृष्ण के वाचस्पत्युर्ण सीता कौतुक और गोपियों के प्रेमपूख उपासम्म आदि के द्वारा गोपियों के माधुर्य भाव की व्यंजना की गई है ।^३

आलोष्यकासीन हिन्दी कृष्ण मछ-कविता न प्रेम के संयोग-पक्ष का बहाना भाळवारों की बाराह अधिक विस्तार से किया है । गाने उद्भूत पर मधुर भक्ति के मधोय-सुख को प्रकट करने नाम सूरदास जी के पद हैं —

राधा सङ्कुच श्याम मुख हेरति
बग्नप्रसी वैद्य के प्रावति बज्र ही को प्रिय फेरति ।
बाहु-बाहु मुख से कहि मापत, हर ले कर माँहि छूटत ।
उतहि सपी प्रावत लङ्क्यानी इतहि श्याम मुख छूटत ।
मुख इस हरय कतु नहि जानति श्याम महारस माती,
सुर उतहि बग्नप्रसीन इक टक जगहो के रंग राती ।^४

तथा—

श्याम होति बाते प्रभुता डारि
बारम्बार बिनय कर ओरत जोडि पट गोर पसारि ।

पुरिदुल्लभ मी प्रोवती तर्जने पुनरी धननुखुम मेघनसल
नव तिरताय । जगदलसीपूरे बळकिमुताल उन तन माय ताते ।

—पेरमाळ तिरमोळी ६ ।

- १ मिमोस मुनिर्बयल्लं क्लोभुर्बोकिदल बाय तन बीबिपुदे
पोमोस बावेकु डूडनिदु पोकिमु बोहु नान कधु निम्दुन
कन्पुदुबळी मो कन्पलितदु के बिसिबिदमुकुम कथेन
एनरकु धवळ विदु इ गु वपान इमम भोगे नड नम्बो ।

—बही, ६ : १

- २ एम्मे बडकवेन कुरितितदु इनमममु स्नयिन बरर नितल
ममि धवळ पुनरपुनरु मर्दुर्नरकधु उडरा नैजिड प्राय
पोमिर बावेयें बंयित ताकी बोय्यबयमकाट्टी मो पोविपेनुम
इमम एन कयकलु ईमोड नाळ बडविपेन एन बिनन सीवन मने ।

—बही, ६ : ८

- ३ नाबिबवार तिरमोळी १ । १—१०

- ४ सूरदास (दास राय), पद मं० १७७९, भा० २० गंगा, कापी ।

तुम सन्मुख मैं विमुख तुम्हारे मैं भयराव तुम ताव
 बन्ध-बन्ध कहि-कहि भुवतिन की प्राप करत अनुप्राव ।
 मोको भवो एक बित हूँ कै निबरि लोक कुल कानि
 पुरपति भैहू तोरि सितका सौ मोही निज कर जानि ।
 बाँके हाव पैर फल बाको सो फल लह्यो कुमारि,
 घूर कृपा पुरप सो बोले गिरि सोवर्ण बारि ॥^१

मीरा बाई ने अपने प्रियतम-मिलन के अनेक बिज बंझि किये हैं । वे कहती हैं —

सहेलियाँ ताजम बरि धाया हो ।
 बहुत दिना की बोवती बिछावनि पिय पाया हो ॥

मीर—

म्हारा भोक्तनिमा घर धाया बी ।
 तम की ताप मिटी मुज पाया हिसमिल संगल पाया बी ॥^२
 गन्धदास ने भी बोयी-कृष्ण के संयोग का वर्णन कुछ पदों में किया है :—
 प्राव मेरे नाम प्राए री नापर मंढ छिछोर ।
 बन्ध बिचल जन रात री सजनी बन्ध भान सिखमोर ।
 मयल गावो बीक पुरखो बदनवार सजाबहु पौर ।
 गन्धदास प्रभु संघ रस बतकर आगत करहु मीर ॥^३

मधुर भक्ति का बियोग-पक्ष

प्रेम की परीक्षा बियोग में होती है । प्रेम की संयोगावस्था क मुज का महत्व विरह की वेदना ही कराती है । प्रेम की तीव्रता प्रिय के प्रति विशेष आकर्षण उसके अभाव में सर्वत्र उसका ध्यान और मिसल-भासना की पुष्टि इस विरह भाव की मित्र बिज अवस्थाओं की अनुसृष्टि से होती है । बौद्धिक प्रेम से कहीं अधिक बड़ी पड़ी व्याकुलता की मधुर भावना पतित पावनी रंग्य की तरह मल की हृदय-भूमि में उसके सारों को, उसके कर्मों को पवित्र करती है ।^४ "नारद भक्ति-सूत्र" में भी भक्ति की म्प्राह् आसक्तिमें 'परम बिच्छासक्ति' अधिक महत्व की बतायी गयी है ।

भाट्टचार भक्तों ने काव्य में प्रेम के संयोग-पक्ष की अपेक्षा बियोग-पक्ष का वर्णन बहुत अधिक है । आत्मोपकासीन हिन्दी कृष्ण मल कवियों में सूरदास आदि ने प्रेम की बियोगावस्था का बड़ा भाविक वर्णन किया है । बामा खेचो के कवियों ने

१ सूरसागर (दशम स्कन्ध) पद सं० १६३१

२ मीराबाई की पदावली—पद सं० ११६

३ गन्धदास पदावली, पदावली—पद सं० १२

४ अष्टाङ्ग और बल्लभ सम्प्रदाय—आ० बीनदयानु गुप्त पृ० ६८० ।

विरह की तीव्रता प्रदर्शित करने के लिए काव्य-शास्त्र में कही हुई विधियों की सभी अवस्थाओं जैसे—अभिभावा चिन्ता स्मृति प्रसाप उन्माद व्याधि जड़ता आदि तथा विरह-वेदना से प्रताड़ित शारीरिक तथा मानसिक व्यापारा जैसे—मसितता, पाम्पुता, कुपता अर्बुका दीनता तन्मयता आदि के बड़े ही सूक्ष्मप्राही वर्णन किये हैं। बिस्तार मय से कबल कृष्ण ही उदाहरण नीचे देते हैं -

अबाल विधोय में कोकिल से कहती हैं— मेरे शरीर की हड्डियाँ विषम रही हैं। माँ के समान ये सन्धे-जम्हे नयन कभी बन्द नहीं होते। निधि-दिन इनसे अभुञ्जारा बहती है। पुनः-पुनः मैं बूबकर बिना गोविन्द नामक नाब के मैं कष्ट भोगती हूँ। हे कोकिल ! तू कदाचित् इस व्याधि से परिचित है जिसका नाम प्रियजन विच्छेद से होता है। काव्य-सम कांति युक्त शरीर नाम मेरे प्रियतम को यहाँ भाँसे का निमग्नण दे दे।^१

मम्माल्यार तथा त्रिदगी बाल्यार १ मान-वचन द्वारा विरह में नायिका की रसा का वर्णन कराया है —

“मेरी पुत्री का मन द्रवित हो गया है। उसको ज्यों भर आती है और वह कीर्ण निन्दास सेती रहती है। माना-पीना तो वह बिसतून मूस मरी है। नीप का त्याग तो वह पहल हो कर चुकी है। वह सर्वदा प्रियतम के नाम को ही रटती रहती है। वह अपनी सहसियों से कहना है कि मुझे मेरे प्रियतम के पाम से आभो। हाय री माग्यहीनता ! ऐसी पुत्री मरी है जो मेरे आश्रम में सामन नहीं रह सकती और इस कारण सोच में मुझे पर बसक सा लग गया है।^२

“विधोय पुनः मैं वह अपनी सहसिया तक से मुस्करा कर बातें नहीं करती। अपने स्तनों पर चञ्चल नहीं लगाता। मयनां में भजन नहीं लगाती। अपने कुम्भन को घूमों से अर्बुद नहीं करती। सदा प्रियतम का ही नाम रटता रहती है।^३

- १ एम्पुलिक इनवेस मेनु कण्डळ इमै पोदरा पल मानुम
मुत्पककडल पुरक बकुन्देम्पडोर तोभी पैराहु जळस्किम्पु न
एम्पुईवारे पिरिबुव नो यहु मीपुम परिबिपुमिसे।
पोम्पुरे मेनिबकडळोडिपुडे पुन्निमन परबडुचाय।

—नायिक्यार त्रिदगी ५ ४

- २ आरिमुम उन पैराडू मडोरड
उडकुम निमिद बुव निमैम्पु
कारम्पे पैरिडु ईधर बुईपाळ
क्यम मेनु वन मुमिळ मरताळ।

—पैरिय त्रिदगी २ ७५

- ३ मुट्पम्पु मुदचन तोडियपु परळाळ
मुप मुल चानु कोम्पु चनियाळ

नम्माळ्वार की नायिका कहती है — हे मन्द माण्ड ! अब मुझे तुम्हारे प्रति कोई आकर्षण नहीं रहा । मेरे हृदय को तो प्रियतम ने मया । अब तुम काहे का सताते हो ? धीतस होकर भी बताते क्यों हो ? ^१ (वियोग में) एक-एक क्षण एक-एक युग के समान सगता है । हृदय वियोग में टुकड़ा-टुकड़ा हो जाता है । मेरा शरीर भीण होठा जाता है । आश्चर्य है कि मैं प्रिय वियोग में कैसे जीवित हूँ ? ^२

नायिका समुद्र को देखकर कहती है — हे समुद्र ! दिन रात तुम गरजते रहते हो माना हृदय को द्रवित कर बेचना-खरों को सहाराकर रोते रहते हो ? क्या तुम्हारी भी मेरी धेसी बसा हो गयी है ? तुम किस क वियोग में इस तरह रोते हो ? ^३ वियोगिनी नायिका कहती है — सारा जगत् भीर्य निद्रा में मग्न है । सर्वत्र सन्नाटे का साम्राज्य है । विद्याल सागर की तरह भग्नकार मेरे चारों ओर फैला हुआ है । इस भीरव रजनी में मैं ही केवल जाग रही हूँ । अबर मेरा प्रियतम न आए तो कौन मुझे सौत्थना दे सकेगा ? ^४

वासोध्यकासीन हिम्बी कुप्य भक्त कवियों में सूरदास ने भजुर मल्लि क वियोग पक्ष का पर्याप्त वर्णन किया है । बिरह की महत्ता बतलाते हुए पूर कहते हैं —

कुलम्पड कुम्बळ कल्किनी एनुदाळ

कोल नस्मत्तर कुळकु घाचिपाळ ।

—पेरिब तिक्कमोळी १७२

- १ तनि नैचम मुम्मवर पुळळ कर्कम्बनु तन्मन्नुळ्मडक्
इति नैचम इपु कचवडु माप्पिलम नी नडुवे
मुत्तिवच पैङ्गळी मुलै चुवत्ताम मुळि वुडु तुळ्ळाडक्
पनिनचमास्तमे ! एम्पवाचिपनिप्पियस्से ?

—तिरविदलम ४

- २ पविप्पियस्वाक उडय तप बाई इक्कात्तम इण्णुर
पनिप्पियत्त वेस्ताय तविण्डु एरिचीवुम । ^१

—वर्हा ३

- ३ कामुइचैयर्बोडु एस्से ! इराप्पकल
नी मुटुक्कच पुप्पिलमाय नैचुवकि एंपुत्तिपाम
तौ मुटुत्तन्तिनर्क ऊट्टिनाल तळ्ळ नयम्ब
या मुटुत्तु उडायो ? बाळ्ळी कलै कडसे ।

—तिरवायमाळ २ १ : ३

- ४ ऊरेस्ताम तुची जलचैस्ताम नस्तिळ्ळाय
नीरेस्ताम तेरी घोर नीळिरवाय नीष्टमात्त
पारेस्ताम उष्ट नम्पाम्पन्मात्त वारात्तात्त
घार ? एस्सै ! वस्तिवयेन घाचिक्कात्पार इति ।

—वर्ही २४१

ऊधो बिरहो प्रभु करे ।

क्यों बिनु पुट पट गहत न रस कौं रस न रसे परे ॥
क्यों घर डहै बीज भङ्गुर गिरि, तो सत करनि करे ।
क्यों पट भगल बहत तन भयनौ, मुनि पय धमी मर ॥
क्यों रस सूर सहे सर सम्पुष्ट तौ रवि रघुनु धरे ।
सूर गुणस मय-मय कसि करि क्यों कुल कुलनि डरे ॥^१

बिरहावस्था में मोपियों को भाव-दशा को सूर का निम्निलिखित पद स्पष्ट करता है —

निसि बिन बरपत नैन हमारे ।
सदा रहित बरपा रिनु हम पर जब ते स्वाम निदारे ॥
हृग धंजन म रहत निसि बासर, कर कपोल भये कारे ।
कङ्कुकि-कट प्रघत नहि कबहूँ उर बिच बहुत पनारे ॥
घोसु-सलिन सबे भइ काया पस न बात रिस डारे ।
सूरदास प्रभु यहै परेजी, गोकुल काहूँ बिसारे ॥^२

बिरहोन्माद म उठनी नाना प्रकार की भावनाओं म रंजित हाकर कभी-कभी एक ही वस्तु मिश्र मिश्र रूप म दिवार् बेतो है । उन्ने हुए बादन विरहिणिया के लिए कौंसे मोपण बीज पडते हैं —

बेसियतु कहुँ बिति त यन बोरे ।
मानी मत मदन के हयियनि बसकरि बधन तोरे ॥
स्वाम सुभग तन सुबत गहमद, बरपत धोरे-धोरे ।
कहत न पवन महाबत हूँ वे, मुरन न प्रकटा मोरे ॥
जनी निकति बत-मोति-बत, उर धबधि सरोवर फोरे ।
बिनु बैसा बस निकसि मयन बस, कुछ कङ्कुकि बग्न बोरे ॥
तब तिहि समय धानि एराबति, बजपति सा कर बोरे ।
सब मुनि सूर कागहु-बेहरि बिनु, गरत मात जसैं धोरे ॥^३

परमानन्ददास ने बिरह के विषय म कहा —

बिरह बनिमार्हिन प्रीति को छोड़,
बिनु सागे कैसे प्राप्त है इन नैननि को रोज ।
स्वाम मनोहर बिदुरे लारी री बरी भयो मनोज
परमानन्द बिसुगे जे मर ते हैं राजा भोज ।

१ सूरदास (दास स्वयं), पद म० ४६०४ मा० प्र० ममा बानी ।

२ वही (,) पद म० ३८१४ मा० प्र० ममा बानी ।

३ वही (,) पद म० ३८२१, मा० प्र० ममा बानी ।

परमानन्ददास के निम्नलिखित पद में सोपियों के विरहोद्गार प्रकट हुए हैं—

मारप भायो को खोबे,
बहु प्रभुहारि न देख्यो कोऊ को नैनन कुछ खोबे ।
बाल बिनोब किये नवनम्बन सुमिरि सुमिरि गुन रोबे,
बात्तर पति पुहु काव न भाबै नित भरि भीर न खोबे ।
अन्तरगति की बिबा मानली तो तन अधिक बियोबै ।
परमानन्ददास गोविन्द बिन प्रभुवन जलनु उछेबै ।^१

मीरा का समस्त काव्य एक प्रकार से विरह-काव्य है । मीरा के विरह से भास्तिक वेदना का समावेश अधिक है :—

प्रभु की ये कहाँ गया बैहूरी लपाय ।
छोड़्या म्हाँ बिस्वास संगाली, प्रभ री बाटी जलाय ॥
बिरह समर में छोड़ गया छो, बैहू री नाव जलाय ।
मीरा रे प्रभु कबरे मिलोने, ये बिच रह्याँ न जाय ॥^२

× × ×

और—

रमैया बिन भीर न धाबे ।
भीर न धाबे बिरह सतावे प्रभ की भाव बुलावे ।
बिन पिया बोल मन्धिर अचियारी भीतक बध्य न धाबे ।
पिया बिन मेरी तेज प्रभुली जागत रीच बिहावे ।^३

× × ×

रमैया बिच रह्याँ ए जायाँ ।
तब मय जीवक भीतम बास्याँ ।
मिस बिन जोषाँ बध छव कय मुतायाँ ।
मीरा रे प्रभु भासा बारी वासी कंठ धायाँ ॥^४

शान्ता-भक्ति

इरिभक्तिरसामृतसिन्धु' में श्री कृष्णोत्तामी ने कहा है कि जहाँ सुख-दुःख न हो, द्वेष और मत्तष्टा नहीं हो, समस्त प्राणियों में सम-भाव हो—वहाँ शान्त रस रहता है ।^५

१ छटछाप और बल्लभ सम्प्रदाय—पृ. ६४३ से उद्धृत ।

२ मीरा की परावली—डॉ. परशुराम कपुर्वेदी, पद सं. ६४ (मर्चा संस्करण) ।

३ वही " ७४ (")

४ वही " ७१ (")

५. भास्ति यत्र सुखं दुःखं न द्वयो न च भस्तर ।

समः सर्वेषु भूतेषु न घाति प्रक्षितो रसः ॥

—मक्तिरसामृतसिन्धु, पवित्रम विभाज महरी १ पृ. ३२६

‘संसार की अनित्यता वास्तव्यता का त्याग और ईश्वर भक्ति अथवा ज्ञान द्वारा प्राप्त की गई चित्त की स्थिर अवस्था से चित्त परमानन्द को भक्त अथवा ज्ञानी पाता है, वही पान्त भाव है और काम्य में व्यक्त होकर काम्य शास्त्र के अनुसार शास्त्र रख है। सत्संग उपदेश भक्ति अथवा ज्ञान सम्बन्धी शास्त्रों पर विचार इस रख के उद्दीपन विभाव है। चित्त शान्ति को बढ़ाने वाले पवित्र विचार और भाव अनेक निर्विकलता निरहंकारिता आदि संपादनी हैं और रोमांच प्रकम्पादि हृदय-दीप्तक चिह्न अनुभाव हैं।’

आठवार भक्तों के तथा आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों में मूरदास आदि के पदों में जहाँ वैराग्य आत्म प्रबोध विनय आत्म विवेक आदि भावों की अभिव्यक्ति हुई है वहाँ शास्त्र रख की बात प्रबोधान्वित है। प्रथम तीन आठवार—पोषण आठवार, भूतलाठवार, पैयाळवार की भक्ति प्रमुखतया शास्त्रात्मक है। शास्त्रात्मक के कुछ उदाहरण नीचे देते हैं—

पैयाळवार कहते हैं—‘रे मन ! भगवान् के नामों का उच्चारण करो तुम्हारा उद्वार अवश्य होगा।’^१

तोंडरविपोड़ी आठवार कहते हैं—‘मेरे मन में थोड़ी सी पवित्रता नहीं है। मुझ से मनुष्यचर ही निष्कमता है। श्लोप के कारण मैं डीप का समान नहीं कर पाता। मुझ पर धामन करने वाले महाप्रभु ! मेरा उद्वार हो सकता है ?’^२

तिरमंग आठवार कहते हैं—‘मैं आज समझ गया कि बीबी-बन्ने और बन्नु मेरी महायता नहीं कर सकते। हे भगवान् ! तुम्हारे अनुग्रह करी तमवार म पांमारिण बन्ना को मैंने पाट दिया। पवित्रियों में सबकर मैंने विजय प्राप्त की। अब मैंने अपने को आपकी सेवा में अर्पित कर दिया है।’^३ ‘मुन्दरियों की मंडली में रहकर मुझ भोगने वाले तथा बड़े-बड़े राज्यों पर धामन करने वाले सभी मर गये। मोटकर नहीं आये। तब मैं क्यों वैवाहिक जीवन के गुवा का नामना करूँ ? अब मैं आपके पास आया हूँ।’^४

१ भट्टराज और बरतम संप्रदाय पृ० ६३० ।

२ मुन्दास तिरुवन्तादि ८ ।

३ तिरुमार्त ३० ।

४ तिरुमंगल केन्द्रमन्त्रालय केन्द्रियेन्द्रिय पितृवन्तु
तिरुमंगल की पवित्र अष्टम्युम घोषणाद्वारे
तिरुमंगल ऐम्मुमन्त्रालय इन्द्र और एरिन्नु बन्नु
तिरुमंगल निरिन्द्रियके तिरु विरुमन्त्रालय देखने ।

—, तिरुमंगली ६-- ४

५ पालेन बन्तरपुम कुट्टराळल पत्तवारिधिव
पालेन बन्तरपुम अरुवाति मुन्दासद्वारे
पालेन बन्तर पालेन । मने बाळकने तम्मे
वेष्टेन निम्मेष्टेन तिरुविन्नाकर देखने ।

तिरमर्म बाळ्यार उपदेश देते हैं—“२ मन ! याद रखो ! बुझपा आयमा । कृ तम वासी लममाएँ मिलनर तुम पर हैयेगी । तुम्हें जामते बेनकर के तुम्हारा परिहास करेंगी ।”^१ सरीर क्षीण हो जायगा और मुँह से सन्द कठिनाई से निकल पायेगे । पीठ बूझ हो जायगी और तुम्हें भाठी के मझारे जाना पड़ेगा । तब तुम पर सुम्बरियाँ लाना मारेंगी ।” -- ऐसी बधा के जाने के पहले ही जमी से मगवान् का स्मरण कर मुक्त बन जाओ । रे, मन ! समझ लो ।”^२

जातोष्यफासीन हिन्दी कृष्ण-मल्ल-कवियों में अग्य मर्कों की अपेक्षा गुरबास और परमानन्ददास ने शास्त्रा मक्ति के भाव को व्यक्त करने वाले पद्य अधिक संख्या में लिखे हैं ।

गुरबास कहते हैं—

नमो-नमो हे कृपानिधान ।
 क्षितवत कृपाकटाक्ष तुम्हारी मिटि गयी लम-ग्रस्तान ।
 मोह निशा को तैस रही नहिं मयी बिबेक बिहान ।
 भ्रष्टम छय सकल घट बरस्यी छय छिपी रजि-जान ।
 मै-मेरी धब रही न मेरे छुज्यी बेह-प्रतिमान ।
 जाबे परी आमुहो यह तन मार्य रही प्रमान ।
 मेरे जिय धब यहू ललतता लीला भी मगवान् ।
 जवन करी निति-बासर क्षित ली सूर तुम्हारी प्रान ।^३

और—

सकल लखि मजि मन बरन भुरारि ।
 स्तुति सुमति मुनि जन सब मायत मैं हूँ कहत पुकारि ।
 जैसे गुपने घोड़ बेखियत लैसी यहू संसार ।
 जान बिनै हूँ छिनक मान मैं उपरत नैक-किवार ।
 बारम्बार कहत मैं तोसी जलम-मुषा जनि हारि ।
 पाई भई सु भई सूर जन धबहुँ समुति समारि ।^४

- १ कौमुकुल्लार कृत्रियिक्कु चिरित्तु नीर
 इतेन ? इवमि एम्पान वन्तवेन्निक्कळारमुन
 तिकळेरिकाल चेंबुराम्बन तेवुई
 नरुन नरेंदुर जाम लोळुम एमुनेचये ।

—पेरिय तिरुमोळी ६४-२

- २ कनि चेत्तिसंकुमम नन्बापर कावर्म्भेविद्रिट
 कुतिचेन्नु लम कोतिल तळन्नु इळवावमुन ।

—वही ६४-६

- ३ गुरदासर (दिनीय ग्रन्थ) पर गं १७६ पृ० १२४ ना प्र० समा वासी ।

- ४ वही () १७४ पृ० १२४ " "

परमानन्ददास के निम्नलिखित पद में दान्ता भक्ति का भाव व्यक्त हुआ है—

त मन् का पुरान सुनि बीना ।

अनपायनी भगति महि उपजी छुटे दान न बीना ॥

काम न बिसर्यो बीष न दिसर्यो लोभ न छूट्यो बेबा ।

मोह मलिनता मने महि छुटो बिकल भई सब सेबा ॥

बाट गरि घर मूँसि बिरानो पैठ मरे अपराधी ।

जेहि परलोक जाय अपकीरति सोइ अविद्या साबी ॥

हिंसा लो ममते महि छूटी बीष बया महि पासो ।

परमानन्द साधु संगति मिलि कथा पुनोत न जाती ॥^१

भक्ति में दारणागति तत्त्व

तृतीय अध्याय में हम मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले “प्रबन्धम्” के सामान्य तत्वों के अन्तर्गत दारणागति तत्त्व का उल्लेख कर चुके हैं। अनन्य साध्य भगवत्प्राप्ति में बिद्वान्मूख भगवान् को ही एक मात्र उपाय समझ कर प्रार्थना करते रहने वाले साधनहीन व्यक्ति को प्रार्थना में निहित निश्चयारिमिदा बुद्धि ही प्रपत्ति या दारणागति का स्वरूप है। भाळवारो के तथा आलोच्यकामीन हिन्वी कृष्ण मत्त कवियों के अनेक पदों में इस दारणागति तत्त्व की अभिव्यक्ति हुई है। इस भक्ति में भगवत्प्राप्ति के लिए मत्त गाथन पर नहीं बल्कि भगवान् के अनुग्रह पर निर्भर रहता है। मृतताळवार कहते हैं— मनुष्य एक भोस को खोल सकता है। परन्तु भगवान् के अनुग्रह के बिना वह भोस भर नहीं सकती अर्थात् भगवान् के अनुग्रह की कर्पा-जय के बिना वह भोस भर नहीं सकती। (इसी तरह भगवान् के अनुग्रह पर ही मनुष्य के प्रयत्न सफल होते हैं।^२)

तिरुममिदा भाळवार का कथन है— हे भगवान् ! समस्त विश्व में तुम्हीं हो। सब तुम्हारे अनुग्रह पर ही निर्भर है। इषामिषु भगवान् तुम हो। तुम्हीं भक्तों के हृदय में भक्ति के बीज बोते हो।^३

विस्तार भय से दारणागति तत्त्व को व्यक्त करने वाले भाळवारा के वचन एक-दो पद ही नीचे दते हैं। तोडरहीपाडियाळवार कहते हैं— मेरा अपना कोई घर नहीं जमीन नहीं छूटने वाला दण्ड नहीं। फिर भी हे कल्याणमूर्ति ! इस पार्थिव जीवन में आपने जरागों की मूढ़ दारणा मैं प्रवृत्त नहीं की। अब मैं निष्ठाव है। माटी प्रदान करता है। मुझे आप अपनी दारणा में लीजिए।^४ कुमरोयगाळवार ने

१ परमानन्दगाथर (मं डा मा० ना० पुरन) पं मं० १० ।

२ इरव्हाय निरव्हायि १६ ।

३ नागमुगम निरव्हायि २० खीर ३ ।

४ निरमात—२१

मयबाध की धरण को ही एक मात्र सहारा कहा है— 'हे मयबाध ! मैं बहुत कष्ट मोय रहा हूँ । तुम्हारी धरण के बिना और कोई धरण मुझे नहीं है । जिस तरह माता के कृप होकर स्वामने पर भी शिशु माता के प्रेम पर ही आश्रित है उस तरह मैं भी आप ही के अनुग्रह पर आश्रित हूँ ।' १

मयबाध से धरण पाने के लिए प्रार्थना करते हुए शूरदास कहते हैं—
 'हे प्रभु ! मैं आपकी धरण में आया हूँ । मैं साधनहीन हूँ अपने पापकर्मों के मार से मयभीत हूँ । अब आपके द्वार पर आकर कहा हूँ । अब मुझे आपकी धरण का ही भरोसा है । धरण आये की भजना रखिए ।' २

एक दूसरे पर मैं सूर कहते हैं— 'हे प्रभु ! मेरे गुण अबमुखों की ओर ध्यान न दीजिए । मैंने योग यज्ञ जब उप व्रत आदि कोई भुम कर्म नहीं किया । आपके भजन का भी मुझे बल नहीं है । परन्तु आप श्यामिनि हैं । कृपाशिखु हैं । मुझे आप अपनी धरण में लें ।' ३

१ पेरुमास तिरुमोळी ५ : १

२ सरन आय की प्रभु नाव करिए ।

राखी नहीं धर्म सुखि सीत, तप ब्रत कष्ट, कहा मुख से तुम्हीं बिन करिए ।
 कष्ट बाहों कहों, सङ्गति मन में रहों आपने कर्म लखि बस आब ।
 यही निज सार, आचार मेरी यही, पतित-पावन बिरह बैध गाव ।
 जग्न से एक डक लागि आता रही विषय-विष दास नहिं तुल्य मानी ।
 जो किया छत्र करि सकल संतति लखि तामु ते मूढ़-भक्ति प्रीति ठानी ।
 पाप-मारण ब्रिजे सब कीर्तुं तिते, बखी नहिं कोज यह सूरति मेरी ।
 सूर अबधुन मर्यौ, आह द्वारे पर्यौ, तब गोपास भज सरन तेरी ॥

—शूरदासर (प्रथम स्कन्ध) पर सं० ११ ना० प्र० सत्रा काशी ।

३ प्रभु मेरे अबधुन न बिचारी ।

कीर्त नाव सरन आय की रति-सुत प्रास निचारी ।
 जोय-दा-अप-तप नहिं कीन्ही बैध विमल नहिं भाख्यौ ।
 प्रति रस-गुण स्वान बूठनि क्यों अलत नहिं धित राख्यौ ।
 जिहि-जिहि जोग किर्यौ संकट-बस तिहि-तिहि यही कमायौ ।
 काम-जोय-मद-सोभ-असित हूँ विषय वरम विष जायौ ।
 जो पिरिपति मति घोरि जबधि मैं लै मुरतब बिबिहाय ।
 मम हृत मोय तिबै अनुबा मरि, तरु नहिं मिति नाय ।
 तुमहि समान घोर नहिं बूझौ काहि भबौ हौं दीन ।
 कामी बुद्धित बुधीन बुद्धरसन अपराधी, नतिहीन ।
 तुम हो अदिस, अलत श्यामिनि अविनासी मुख रति ।
 जगन-प्रताप नहिं मैं आख्यौ, पर्यौ मोह की पति ।

परमानन्ददास सरस्वामि की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं—“जो भगवान् की शरण में गये, उनका भगवान् ने अंगीकार कर लिया। उनके सभी बिघों को भगवान् ने दूर किया और उन्हें अमय कर दिया। भगवान् अपनी शरण में आये हुए भक्तों की रक्षा अवश्य करते हैं।”

भगवान् के सामीप्य की कामना

भगवान् की सेवा में प्रस्तुत होकर किसी भी रूप में भगवान् के सामीप्य को प्राप्त करने के भाव कुछ आळ्यार भक्तों ने तथा हिन्दी के कुछ कृष्ण भक्त कवियों ने व्यक्त किए हैं। कुसुमेधराळ्यार अपने जन्म में ही सही, भगवान् की सामीप्य प्राप्ति की कामना कर प्रार्थना करते हैं—

‘मुझे पुनः माघ-संपुष्ट नवंबर नर जोवन बारण करने की कामना नहीं है। मैं अपने को सत्य समझूँगा यदि उस बैकटाक्षम में जिसमें कि शिष्यायी भगवान् का निवास है अमर जन्म में एक अनुमा बनने का सामान्य प्राप्त हो।’

मुझे चाह नहीं कि असीम अनुपम सुख सम्पत्ति अपना अक्षर रमणियों के विनासलास्यों से पूर्ण मादक स्वीय आनन्द प्राप्त करूँ। मुझे चाह नहीं कि निवास विराजु ब अनुत्तम राज भोग प्राप्त करूँ। मैं अपने को सत्य समझूँगा अगर उस

तुम सरवत सबे बिधि समरथ, असरन-सरन मुरारि।

मोह-समुद्र गुर बुद्ध, लोखें भुजा पसारि।

—मुरसागर (प्रथम स्कन्ध) पर सं० १११ पा० प्र० समा, काशी।

१. जाहो तुम प्रमीहार कियो

तिनके कौटि बिघन सब टारे समय प्रतापु बियो।

यहु सातना बई प्रह्लाई सपहि नितक बियो।

निकते सब सध्य ते मरुहिर आपुन राति मियो।

×

×

×

मृतक भये हरि सबे जिबाए दृष्टिहि धमूत पियो।

परमानन्द भगत के मत सो उपमा कौन बियो।

—अष्टदास और बत्सम मग्नदाय पृ० ६७४ स उद्भूत

२. जेव बेहमत जहिरिदि पाव बेडेम

घानेरेस्वेगुन अडिमेतिरमस्ताल

बुनेव कमरुमिरताल तन बेकटल

कोनेरि बाडुम बुदकाय दिरूपेरे।

—देवमाळ निम्नोटी ४ १

बेंकटाचल की जिसमें मधु रसोज्ज्वल माधव कुसुम मंचरियों से पूर्ण नन्दन बनोपम उत्पन्न है, निर्मल निर्मरिणी में एक मीन होने का परम सौभाग्य प्राप्त हो ।”^१

“वीर सागर की बल तर्कों को परिपुष्ट करके प्रोत्सहित भगवान् शिवदायी के पावन पद-कमलों के दर्शनार्थ गीत-रस-महुरी में निमग्नित अमर-समूह के फंकार पृथित बेंकट गिरि की बाटिका में एक चंपक कुसुम बन जाऊँ ।”^२

महापात्रियों को भी अपनी शरण में लेने वाले कृपा-शिखु भगवान् । हे जनासन्त श्रेष्ठ महान् बेंकटवासी । मैं तुम्हारे मन्दिर का यह सोपान बन जाऊँ जिस पर चढ़कर अप्सराएँ देव और भक्त्याण तुम्हारे दर्शनार्थ मन्दिर में प्रवेश करते हैं ।^३

‘संसार भर का शासक होने पर भी भगवा सर्वश्री बीसी अप्सर-रमणियों को प्राप्त करने पर भी मुझे सन्तोष न होया । मुझे केवल चाह इस बात की है कि अपने जन्म में बेंकटवासी भगवान् की सेवा में प्रस्तुत कुछ भी हो जाऊँ ।”^४

कुसुमेश्वरबाळ्यार के पदों में निहित वही भाव रसज्ञान के निम्न पदों में दृष्टव्य है । देखिए, किन्तुनी समानता है :—

- १ आनाह वैस्वत्तु घरम्बीयरकवतवुळ
बालाळुम वेस्वमुम मन्वरवुम धाव बेंडेन
तेनार पुळोले विस्वबेंकटवुनैयिल
मीनाम् पिरक्कुम विविपुडयेनावेने ।

—पैरमाळ तिरुमोळी ४ : २

- २ ओलुयवळ्चेनीपुलवु तन्पाकंडवुळ
कवुयिलुम मायोन कळलिनैकळ काव्यवु
पन्पकडम वरिडनैगल पन्पावुम बेंकटवु
वेन्पकमाड निरुनै तिरुवुडयेनावेने ।

—वही ४ : ४

- ३ वैडियाय वरिडनेकल तीरवुय तिरुमाती
वैडियोने । वकटवा । मिन्कीमिनिनि बावत्त
अडियाडम बालवडम घरम्बीयडमनिडन्तिवकुम
पडियाय किडवु उन्पवळ्वाय काव्येने ।

—वही ४ : १

- ४ उ बडलकावु ओव कुडैरकीळ उरुप्पत्ति तन
अपोकर्ममकुत्त पैडामुम आवरियेन
पेववळ्वायान तिरुबेंकटमैन्नुम
एम्पेडमान पोम्पने दैत ऐतेनुमावेने ।

—वही ४ : १०

“मानुष हौं तो बही ‘रसवान’, बसीं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
 ओ प्रभु हौं तो बहुर बस मेरो, करीं मिल नव को धेनु संसारन ॥
 बाहुन हौं तो बही गिरि को, ओ धर्यौ कर छत्र पुरखर बारन ।
 ओ सम हौं तो बसेरौं करीं मिलि कासि-बो कूल कदम्ब की डारन ॥^१
 ‘ओ रसना-रसना बिलसै तैहि बैहु सदा भिज नाम उचारन ।
 ओ कर मीकी करे बरनी, नू पं कुम्भ कुटीरन बैहु कुहारन ॥
 सिद्धि समधि सबै ‘रसवान’ सहौं ब्रज दैयुका भग संवारन ।
 कास निवास मिलै नु वै ती बही कर्जिबो कूल बरब की डारन ॥^२
 “बा लक्ष्मी प्रब कामरिया पर, राज तिहूपुर को तजि डारीं ।
 घाटहुं सिद्धि नबो निधि को सुल नव की माय पराम बिसागैं ॥
 ‘रसवानि’ बबौं इन भाँतिन सौं ब्रज के बन बाग लक्षण मिहारैं ।
 कोटिहूँ कलधौत के घाम करीत की कुँजत ऊपर डारीं ॥”^३

अनन्याश्रय और भगवान् की भक्तवत्सलता

केवल अपने एक इष्ट का ही आश्रय ग्रहण करना अनन्याश्रय कहलाता है । भक्तों का विश्वास है कि एकान्त प्रेम के बिना प्रेम की उत्कृष्ट स्फूर्ति नहीं होती । अनन्याश्रय भाव को व्यक्त करते वामे पर आळवारों ने तथा हिन्दी-कृष्ण भक्त कवियों ने लिखे हैं । चौबरीपोद्दिआळवार का वचन है— हे मतिहीन मनुष्य लोगो ! गोविन्द के अतिरिक्त कोई अन्य देवता भी है क्या ? नीं तंकर-अष्ट समय न सिवाय अन्य समयों में तुम लोग एक ही जगन्नाथ को पहचान नहीं पाते । समस्त सीजिए कोई उनसे महान् नहीं है । उनके अतिरिक्त अन्य देवता बाल्यविक्रम नहीं है । जिस भगवान् ने संकट-ग्रस्त भक्तों पर मायों का संरक्षण किया था उस भगवान् के पुनोत्तम मेर प्रभु के चरणों की ही शरण्य कीजिए ॥^४

सुरदास अनन्याश्रयता प्रकट करते हुए कहते हैं —

तुम पिनु भूलोइ भूलो डोलत ।

सातबि सागि कोटि देबनि के किरत क्यानि लोलत ॥

१ रसवान का अरथ काव्य (सं० दुर्गाशंकर मिश्र) पृ० ४३

२ वही पृ० ४३

३ वही, पृ० ४३

४ ‘मनु मोर बैरबभुखो ? मतिहला मानिईकाउ ।

उदुबोइमूरी भीरुछ घोरुनेमूद गरमाट्टीर

घडुबेनोमुरिपीर घबनस्नास बैरुमिस्ते

कडुनम मेइत एरुं बठनिष पचिमिन बीरे ॥

बस लगि सरबस बीजै जनकों, तबहीं लमि यह प्रीति ।
 फल माँपत फिरि जात मुकर हू यह बैसन की रीति ॥
 एकनि को बिय-बलि है पुके पुषत नहु न तूटे ।
 तब पहिचानि लखनि कौ छरि, लख-सिख कौ सब भूटे ॥
 कंचन-मनि तबि कंचाँहूँ सीतत या माया के लीन्है ।
 चारि पदारप हूँ कौ दाता भु ली बिसर्जन कीन्है ॥
 सुम कुतब कहनामय कसब अखिल लोक के नायक ।
 'भूरदात' हम हड़ करि पकरे, सब यह करन सहायक ॥^१

परमानन्ददास कहते हैं —

बहुते बेबी बहुते बेबा कीन कीन की मनो मनाई ।
 हों प्रवीन स्वामनुबर कीं कमल करन पावन बनू गाई ॥
 लोक लोक प्रति सब कोऊ ठाकुर अपने भयतन के मुखदायक ।
 मोहि बह अपर जोर मुरली गोपी बसलम मोकुम नायक ॥
 बैब भनुर मानव मुनि ग्यानी हरि को बिघो सब कोऊ बाई ।
 हों बलिहारी 'दास परमानन्द' कदना सागर काहे न नाई ॥^२

जब भक्त जनम्य भाव से भगवान् को भजता है, तब वह निश्चित होकर उस पर निर्भर भी होता है । भक्त को यह हृदय-विश्वास हो जाता है कि भगवान् पर निर्भर होने से वे उसे भगीकार कर लेते हैं । फिर उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता । भक्त को भगवान् की भक्त्यस्तुति का बड़ा सहारा है । भक्त उसकी दया और कृपा पर भरोसा रखता है । इन भावों को व्यक्त करने वाले अनेक पद आठव्वारों के तथा आत्मोपनिषद् हिन्दी रूपस भक्त कवियों के मिस जाते हैं ।

कुलदैवराटव्वार ने लिखा है कि भक्त को किस प्रकार भगवान् पर निर्भर रहना चाहिए जिससे कि वह भक्तवत्सल भगवान् की दया का पात्र हो सकता है । कुलदैवराटव्वार ने कहा है —

“व्यक्तिक क्रोध से शिशु को जन्म देने वाली माता के त्यागने पर भी माता का ही स्मरण कर लेने वाले (माता के प्रेम पर आश्रित बच्चे के समान) बच्चे के समान ॥”^३

१. लुर बिलय बहावली (सं० प्रमुदयान पीठन), पद सं० पृ० २३

२. परमानन्द दापर (सं० बा० बी ना० मुबल) पद सं० ८७७

३. “वरितिनत्ताय ईगुत्ताय अकट्टिडिमुम यदुबळ तन ।

अदत्तनिननो अट्टुन कुट्टिबियदुवे पोन्दिक्कीने ॥”

‘अपने पति के द्वारा बहुत सताने पर भी उसका त्याग नहीं कर उसी की सेवा में तत्पर रहने वाली उष्णकुसोत्पला पत्नी के समान ।’^१

“राजा के द्वारा बहुत अगम्य और कष्ट भोगने पर भी उस पर निर्भर रहने वाली प्रजा के समान ।”^२

“आयुषों से बीर-छाड़कर कष्ट देने पर भी अपनी ही मर्माई के लिए करने वाली बीर के प्रति स्नेह रखने वाली रोगी के समान ।”^३

यह बिचार पारंपारिक कवि यी टी० एच० इलियट की एक कविता में भी देखने को मिलता है । देखिए, कितनी समानता है ! प्रसंग बरा यी इलियट की कविता की उन पंक्तियों को उद्धृत करते हैं :—

*The wounded surgeon plies the steel
That questions the distempered part,
Beneath the bleeding hands we feel
The sharp compassion of the healer's art
Resolving the enigma of the fever chart.*

—East Coker ‘Four Quartets’,
by T S Eliot, p 20

‘तबन समुद्र ही समुद्र का बाकर, किनारे को देख न सकने के कारण निरुप
होकर बार-बार बहान के समने पर ही लीगने वाले (बहान के) पत्नी के समान ।’^४

“अवधि के प्रकाश और गरमी समाने पर भी केवल मुरख की झिरणों पर ही
घिसने वाले कमल के समान ।”^५

१ कष्टारिक्कमने बाइसन तान वैइतिडिनुम
कोटार्त्तमस्तान परिपारकुनकमळ पोत ।”

—वैष्णव तिस्रोटी ५ : २

२ “तान मोरुत्तु एत्तु परम वैइतिडिनुम तारवेस्तन
कोल मोरुत्तुत्तुम कुडि कोन्दिदुत्ते ।”

—वही १

३ “वळ्ळाल वरत्तु कुडिनुम मरत्तु वन पाल
मळ्ळाल काइल मोयळ्ळन कोल मायत्तल”

—वही १ : १

४ “ए नुमपोप करे कावातु ऐरिक्कल बाइमीट्टेनुम
वैयत्तिल वृत्तेवन नाप्परवै पोम्मे ।”

—वही १ : २

५ वेंतळ्ळे वम्पु वळ्ळलैवैइतिडिनुम वैरुमनन
वैरुमनवैर वैरुमनवैरुमन वल्लरावात

मैं केवल हे भगवान् । आपकी सेवा पर निर्भर हूँ । मेरा मन अन्यत्र सुख नहीं पायेगा ।”

कुलदेवार ने बितनी उपमाओं से अपने और भगवान् के सम्बन्ध को ऊपर व्यक्त किया उनके दर्शन अन्यत्र दुर्लभ हैं । हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों में केवल सूरदास जी के एक पद में उपयुक्त प्रकार के विचार व्यक्त हुए हैं । सूरदास कहते हैं :—

“मेरी सब धनत कहीं कुछ पावे ।

जैसे उड़ि कहाँ की पावे, किरि कहाँ पर पावे ॥

कमल-नग को छाँड़ि महुतम और देव कोँ ध्यावे ।

परम पद कोँ धाँड़ि पियासो दुरमति कृप जगावे ॥

बिहि मनुकर धनुज-रस जाखी, क्यों करीत-फल नावे ।

सूरदास प्रभु काम येनु तजि छोरी कीन दुहावे ॥”^१

भक्ति की सार्वकालिकता

आठवार भक्तों की यह मान्यता थी कि भक्तों में जाति विद्या रूप कुल जन और क्रियादि का भेद नहीं होगा । वाहिप और भक्ति के क्षेत्र में ऊँच-नीच का विचार स्वाभाविक नहीं । आठवार भक्तों ने अपनी इस विचारधारा को व्यावहारिक व्यवस्था में भी प्रकट किया है । बारह आठवारा में कुछ निम्न जाति के वे कुछ बहुत ही गरीब थे । उस प्राचीनकाल में अगर मधुर कवि जैसे ब्राह्मण भक्त नम्माळ्वार जैसे निम्न जाति के व्यक्ति को मुँह बन्द में स्वीकार कर सकता था तो इससे और उच्च जाति क्या हो सकता है ?

तोंडरविषोयी आठवार कहते हैं—“विष्णु भक्ति-मार्ग पर चलने वाले निर्मल भक्त सोय चाहे निम्न जाति के क्यों न हों अगर वे भगवान् के भक्त (दास) हैं तो उनकी सेवा अवश्य कीजिए, उन्हें बीजिए और उनसे सीजिए । वे सोय भगवान् के सहाय्य पूजनीय हैं ।”^२ चारों देवों में प्रवीण होकर, मनुष्यों के भेदाद्वेष छोड़कर

वेनुपरवीट्टाविडिनुय विदुवरकोट्टुमा । जन

धनमिल चौकन्ताल प्रकटुळैय मोट्टुने ।

—वेस्माळ तिरुमोळी ५ ६

१ सूर दिनय पदावली—सं० प्रभुदास गीतस पद स २६ पृ० २७

२ पळुतिला थोळ कसादु प्पल जतुपेदिमार्कळ ।

इळिक्कुसलवर्कळ मुम एम्मडियाक्कळकिल

तोळ मिनीर कोडुमिन कोन्मिन एम्मु निम्नोडुन थोरक

वळिपड धवळिनाइपोल मळिळ तिरवरंगलनै ।

बासे बाह्यण सोय भी अगर भक्तों (निम्न जाति के) की अवहेलना करेंगे तो वे उड़ी राख (भक्तों की अवहेलना करते समय) नीच से नीच जाति के हो जाते हैं ।^१

साक्षात्पर्यायी हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने भी भक्तों में ऊँच नीच के विचार को त्याग को कहा है । सूरदास भी कहते हैं —

“कह्यो धुक भी भायवत बिचार ।

जाति पति कोउ धुलत नाही भीपति के दरबार ।”^२

‘बैठत सब सभा हरि कू की । कौन बड़ो को छोड़ ?

सूरदास पारस के पारस मिटति सोहू की लोठ ॥’^३

भक्तवर हरिराम व्यास के अनुसार भक्ति और जाति में बैर है ।

“व्यास जाति तबि भक्ति कर, कहत भायवत बैर ।

जातिहि भक्तिहि ना बने क्यों केरा द्विष बैर ॥”^४

भी हित हरिवंश भक्ति के काम में विप्र-यूद्ध का भेद नहीं मानते । वे कहते हैं —

“बहुँ भी हरिवंश प्रम जग्गार ।

कुल विन कह्यो कीम लो जाक ।

सहज प्रेम रस तबि पाक ।

रंक ईश समुझत भाह्यो ।

विप्र यूद्ध न कीम कुल कात ।

मुनहु रसिक हरिवंश विनास ॥”^५

गुरु महिमा, सत्संग और वैराग्य

आठवारों भक्तों ने भक्ति-साधना में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान माना है । उन्होंने गुरु को ईश्वर सदृश बताया है । सत्संग और वैराग्य की आवश्यकता पर भी उन्होंने जोर दिया है । (तृतीय अध्याय में मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले ‘प्रबन्धम्’ के सामान्य चार्कों का विश्लेषण करते समय आठवारों ने साधुगुरु की

- १ धर्मबोर्डम्यास्य बैरबोर नाम्नुम घोदि
समर्कल्लिग तर्नबराय जातिपतनकळेंसुम
धुमकळें पतिप्यरेल मोडिप्योळ बलबिस ग्रामि
घर्बकळ नाम पुतेयर पोसुम धरंयमागपस्तानि ।

—चिरपाळ, ४३

- २ सूरदास (प्रथम स्कन्ध), पद सं० २३१ भा० प्र० समा बासी ।
- ३ बहू () पद सं० २३०
- ४ व्यासबाली, पृ० १८६
- ५ भी हित बीरमो सेवक बासी, पृ० ५२

विचारों पर प्रकाश डाल चुके हैं। अब यहां संक्षेप में बाळारों के विचारों की पुसगा आसोष्यकासीन हिन्दी कृष्ण मठ कवियों के तरसम्बन्धी विचारों से करेंगे।)

गुब महिमा

मधुर कवि गुब की स्तुति करते हुए कहते हैं—“गुब (गम्माळवार) का नाम सेते ही मेरी जिह्वा अमृत का आम्बावन सा आनन्द प्राप्त करती है। वेद के गुह से पूछ लखों को गुब ने ही मुझे सरमठा से समझाया। श्रेष्ठ गुब की दासता स्वीकार कर मैं अपने को बन्ध समझता हूँ। मुझ में बाध करने वाले समस्त दोषों को गुब ने ही दूर किया। मैं श्रेष्ठ गुब की महिमा बिधा-बिधा में पीसा दूँगा। मैं गुब की कृपा की याचना करता हूँ।”^१

आसोष्यकासीन हिन्दी कृष्ण मठ कवियों ने भी गुब की महिमा स्वीकार की है। सूरदास भी कहते हैं—

गुब बिनु ऐसी कौन करे ?
माता-सिलक मनीहर बाना, लं सिर छत्र बर ।
भवसागर में डूबत राखे, दीपक हाथ बर ।
सूर स्वाम गुब ऐसो समरथ छिन में लं छबर ॥^२

बीर—

हरि गुब एक कम गुप जानि । यामैं कसु सम्बेह न जानि ।

गुब प्रसन्न हरि परसन होइ । गुब के बुझित बुझित हरि कोइ ।^३

हितहरिबन्ध मनुष्य के कल्याण के लिए गुह-वरखों का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक समझते हैं—

जप भी हितहरिबन्ध विचारि के मनुज देख गुब जरस यहि ।^४

सत्संग

सत्संग की कामना कर राजा कुसुमेन्दर ने कहा है—“अमृत-सम भगवान् की स्तुति कर, भगवान् को बन्त-करण में चरण कर, भगवान् का गुण-गान कर नाचते नाचते पक्ष बाने बाने मछों के मंजस में जा मिसरी का सौभाग्य मुझे कब प्राप्त होगा ?”^५ भगवान् की दिव्य सीसार्यों का आनन्दामु बहाकर, अधुबारा से भीगने वाले भगवान् के मन्दिर के प्राङ्गण में नाचने वाले श्रेष्ठ साधुबना की चरण बुझि को मैं अपने मस्तक पर लगाऊँगा ।”^६

१ कृष्णमठ विद्वत्पात्र १ २, ७ ।

२ सूरदास, (बृज स्कन्ध) पद सं० ४१७ ना प्र० समा काशी ।

३ वही () पद सं० ४१६

त्रितीय संस्करण ।

४ भी हित स्तुत बाबी बी पृ० २ ।

५ वेदमाला तिकमोड़ी २ १

६ वही २ १

आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने भी सत्यम की आवश्यकता बताई है। सुरदास जी ने एक पद में साधु-संयति की मुक्ति का ध्यान कहा है—

सुधा बलि छा बन को रस पीज ।

आ बन राम-नाम अमित-रस जवन पात्र भरि लीजै ।

बन बारानसि मुक्ति-अत्र है, बलि तोकों बिराज्यै ।

सुरदास साधुनि की मयति बड़े भाग्य की बाज्यै ॥^१

हिष्टहरिबस जी मे भी सत्यम की महिमा स्वीकार की है—

तनहि राख सतसंग में यनहि प्रेम रख जेव ।

सुख चाहत हरिबस हित कृष्ण कल्पतरु सेव ।^२

हरिराम व्यास सत्यम की महत्त्व देते हुए कहते हैं—

करी सैया साधुन ही सों संग ।

पति पति जाय असाधु संग ते काम करत बित भंग ।

हरि ते हरिबासनि की सेवा परम भक्ति को दाय ॥^३

और—

साधु सरसीरह को सो पूज ।

जिनकी संगति भक्ति दैति, हरि हरत सकल भ्रममूल ।^४

चराम्य

भक्ति-पथ के पथिक के लिए सांसारिक विषयों को तथा उन विषयों से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों को त्याग कर उनका प्रति बैराग्य भाव रखना परमावश्यक है। बाल्यारों ने बैराग्य की आवश्यकता पर बहुत कहा है। वे सभी स्वयं बैराग्यपूर्ण जीवन बिताते थे। (इसका विस्तृत विवरण तृतीय अध्याय में हो चुका है।)

हिन्दी कृष्ण भक्त-कवियों ने भी भक्ति-पथ में बैराग्यपूर्ण जीवन बिताते की आवश्यकता प्रकट की है। सुर न अनेक पदों में सांसारिक सम्बन्धों की निस्तारता प्रकट की है—

हरि ही महापति अभिमानी ।

परमारथ सौ बिरत, विषय रत भाव भगनि नहि नेचहु जानी ।

निति-विन कुचित मनोरथ करि-करि, पावतहुं तुम्हा न दुखानी ।^५

१ सुरदासर (प्रथम स्कन्ध), पद सं० ३४०, ना० प्र० मया काशी ।

२ भी हित स्फुटबासी जी, पृ० ३३ ।

३ भी व्यासवाली पृ० ६४ ।

४ वही पृ० ६२ ।

५ सुरदासर (प्रथम स्कन्ध), पद सं० १८६ ना० प्र० रामा द्वितीय संस्करण ।

हितहरिबन्ध ने सांसारिक विषय रस का प्रपञ्च छोड़ने का आग्रह किया है—

‘सकहि तौ सब परपञ्च तबि, हृन्म-हृन्म गोविन्द कहि ॥’^१

स्वामी हरिदास ने माया मय गुन मय तथा यौवन मय—सभी को मिथ्या कहा है और संसार की तत्परता का परिचय दिया है—

जीलों जीबे लीनों हरि भवि है मन और बात सब बाधि ।

विचल चारि के हुनामना में तू कहा लैइयो लाधि ।

माया मय, गुन मय ओवन मय भुल्यो लपर बिदाधि ।

कहि “श्री हरिदास” लोभ चरप्य मयो काहे की लयै किराधि ।^२

१ श्री हित रघुटवासी जी, पृ० ६

२ निम्बार्क भाग्युरी, पृ० २०४

पंचम अध्याय

“दाशेनिक विचार और रहस्यात्मक दृष्टिकोण”

सुलनात्मक अध्ययन

दार्शनिक विचार और रहस्यात्मक दृष्टिकोण सुलनात्मक अध्ययन

भारत 'अध्यात्म' और 'दर्शन' का देश का है। यही चिरन्तन से वेदात्मक अथवा ऋषिज्ञान की एक सतत धारा प्रवाहित होती आयी है जिसमें अग्रगण्य कर विभिन्न पुनीत भारतीय ऋषि मुनियों बर्मात्माओं और दार्शनिक विद्वानों ने आत्मज्ञ और शांति का अनुभव किया है। इस देश में अनेक दार्शनिक आचार्य हुए हैं, जिन्होंने दार्शनिक तत्त्वों का शास्त्रीय निरूपण प्रस्तुत कर असंख्य-असंख्य संप्रदायों का संगठन किया है। प्रायः सभी आचार्यों ने "प्रस्थान त्री" पर आधार प्रस्तुत करके अपने अपने भक्ति-संप्रदायों की प्रामाणिकता से मुद्रित किया। ईश्वर, अणु, जीव, माया आदि के विषय में अपने एक-समस्त विचारों को व्यक्त कर अपने विद्वानों के प्रकार के लिए विविध तर्कों को रखकर संप्रदाय का संगठन करना ही आचार्यों का लक्ष्य रहा। भक्त के लिए दार्शनिक होना अनिवार्य नहीं है। भक्त के समाधिपथ तलों में निमग्न भक्ति-आर्षों में ईश्वर अणु सम्बन्धी विचारों का आभास बनाया ही मिल जाता है। किन्तु भक्तों का भुक्तान्ता शास्त्रीय परात्म पर सिद्धांतों के विवेचन की ओर नहीं होता। यही भक्त और एक दार्शनिक आचार्य में सामान्य अंतर है।

आठवार तावत दार्शनिक नहीं थे। वे भक्त और रह-छिछ कवि थे। उनका सङ्घ—दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना नहीं था। जगद्गुरु की भक्ति में बिना उनके हृदय की तन्त्री से जो राग स्वतः उत्पन्न हुए, उनका संकल्प ही 'प्रवचन' है। प्रवचन में ब्रह्म जीव जगत आदि के विषय में सिद्धान्तपरक विवेचन नहीं है। परन्तु यह-यह आनुवंशिक वर्ण है। आठवारों का वाक्य—माय और भक्ति-प्रधान है। उनके पास में ईश्वर का निराकार है। उन्हीं का ब्रह्म के भागों में युक्त मान लिया है। उन्हीं पात्रों से उन्हेसों से आठवारों के विचारों की दार्शनिक जाल का परिचय मिल जाता है। यह हमलगा रचना आवश्यक है कि आठवारों का ज्ञान निरिचय रूप में आचार्य

बहुष्टय के कास से पर्याप्त पूर्व का है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि आळ्वारों की भक्ति-प्रधान विचारधारा ने परवर्ती आचार्यों को मूलभूतिक रूप में प्रभावित किया हो। परवर्ती आचार्यों की भक्ति संबंधित दार्शनिक विचारधारा का मूल-स्रोत आळ्वार साहित्य में देखा जा सकता है। श्रुति भी रामानुजाचार्य का काम आळ्वारों के सीधे बाब में पड़ता है अतः इनके विशिष्टाद्वैतवादी वर्णन पर तो आळ्वारों का सीधा प्रभाव है ही।^१ परवर्ती भक्ति-सिद्धान्तों पर उनका उतना प्रभाव नहीं पड़ा जितना कि विशिष्टाद्वैतवादी वर्णन पर। जैसे तो विशिष्टाद्वैतवादी वर्णन की नींव भी नाथमुनि के समय में ही पड़ चुकी थी। श्री नाथमुनि ने ही प्रथम बार 'प्रबन्धम्' का संपादन कर उसकी विचार-धारा का कुछ शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया था। नाथमुनि के पश्चात् आने वाले आचार्यों ने उस विचारधारा को सुस्पष्टस्थित रूप प्रदान कर इसे एक दार्शनिक भूमि पर साफ़ बड़ा कर दिया जिसके फलस्वरूप विशिष्टाद्वैतवादी वर्णन का स्वरूप स्थिर हुआ। यहाँ हमारा उद्देश्य यह स्पष्ट करना मात्र है कि सभी दार्शनिक संप्रदायों का आदिमूर्ति आळ्वारों के पश्चात् ही हुआ है और आळ्वारों ने किसी विशिष्ट संप्रदाय की विचार-धारा की जड़ारहीवारी में बन्ध रहकर कविता नहीं की थी।

आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य विभिन्न भक्ति-संप्रदायों^२ की धामा में परम्पित हुआ है। सम्प्रदाय और उसके अनुयायी कवियों में अन्याय मात्र रहता है,

- 1 "The Alvars provided the soil out of which Ramanuja's teaching naturally sprang and in which later it could bear fruit. He is not really (as has been erroneously asserted) the 'morning star of the Bhakti movement, that is a name far more fittingly given to Alvars; but in him bhakti shines in the full splendour of a great philosophical exposition."

—J S M Hooer "The Hymns of Alvars" pp 7-8.

"उपनीय तु या शिष्यं वैदमप्यापयेत् द्विजम् ।

सहस्यं तर्जं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥"

अथवा

आचार्यं बालमुपवीचेत् ।"

उपयुक्त परिभाषा के कारण आळ्वार भक्त पंचवि आचार्यों की कोटि में नहीं आते तो भी उन्हें भक्त्याचार्य मानने में कोई हानि नहीं है। भक्ति-सिद्धान्त के स्वरूप को सुस्पष्ट करने में उनका बड़ा घाटी हाथ रहा है। उनसे परवर्ती संतों, भक्तों और आचार्यों को भक्ति लाभ हुआ। अतः आळ्वारों की भक्त्याचार्य मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

"भक्त्याचार्यमोहि निर्दिष्टो भक्तिआचार्यसंबन्धः"—मुद्राद्वैत मार्तण्ड ८८ ।

- २ बरतन संप्रदाय राधाब्रह्मन संप्रदाय निम्बार्क संप्रदाय गौडीय संप्रदाय आदि ।

सर्वथा अनेक नहीं। अतः संग्रह की बार्दीनिक मायताओं में और कवियों द्वारा व्यक्त सिद्धान्तों में समानता के साथ कहीं-कहीं असमानता भी देखने को मिलती है। आलोचकासीन हिन्दी कृष्ण भक्ति-नाम्य विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों से अनुप्राणित अवश्य रहा किन्तु सदा सदा अनुयायी नहीं। यह आचार्य और कवि के व्यक्तित्व की मिश्रता का स्वाभाविक परिणाम है। अनेक कवि ऐसे हैं जिन्होंने मायताओं के आग्रह को दृढ़ता के साथ ग्रहण किया है। कुछ कवि ऐसे भी हैं जो सिद्धान्त पक्ष के प्रति उदासीन रहे हैं और अंधवत् स्वतन्त्र भी। यही कारण है कि विभिन्न सम्प्रदायों की छाया में पसने पर भी कवियों की विचारधाराओं में बहुत कुछ समानता देखने को मिलती है।

ग्रह

आलंकारों के ग्रह-सम्बन्धी विचार

यों तो बारह आलंकार भक्तों ने ही ब्रह्म के स्वप्न गुण आदि के विषय में कुछ न कुछ अवलोक्य कहा है फिर भी भग्नालंकार और विक्रमलित आलंकार ने जिनने विस्तार से ब्रह्म के विषय में कहा है उतने विस्तार से अन्य आलंकारों ने नहीं। सामान्यतः सभी आलंकार भक्तों ने अपने दृष्टिकोण की परब्रह्म विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया है। वे ही पुरुषोत्तम हैं। वे ही इस विश्व के कारण हैं। वे आदि-अन्त विनाशक मर्त्योत्पत्ति हैं। वे अंध और कसा रूप में अर्धमय रूप धारण करते हैं। ब्रह्म हाकर भी भक्तों का उद्धार करने के निमित्त देह धारण करते हैं। अतः आलंकारों द्वारा वे अवतारी और अवतार—दोनों ही रूपों में ग्रहण किए गये हैं। जीव रूप में तथा जगत् में जो कुछ है, वह उन्हीं का अंध है। वे ही अन्तर ब्रह्म रूप हैं। आलंकार भक्तों ने ब्रह्म के रस रूप और सौन्दर्यतम रूप का भी वर्णन किया है। उन्होंने ब्रह्म के गुरु और मित्र—दोनों रूप माने हैं।

आलंकार भक्तों के दृष्टिकोण 'ब्रह्म' सर्वव्यापिमान है अद्वितीय है। सब देवताओं से श्रेष्ठ वे ही हैं। भग्नालंकार करते हैं—'मेरे भगवान् ही सर्वज्ञात्मा हैं। वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं उनकी तुलना किसी से नहीं हो सकती। उनके अतिरिक्त और कोई देव ही नहीं है। गिर ब्रह्म इन्द्र आदि सबों के पालक वे ही हैं।' ^१ यही परब्रह्मोक्ति है,

- १ अस्मिन्मति सर्ववन्द्यं नाम्नुल्लङ्घनम्, तद्विरीडिपिममवर तमेवमुत्तु मृगता ।
पावकपुलकपुम पावकम धारण्य, नितमनीर तीकान बुद्धिरिद्विमुमुम् ।
मत्तर बुद्धर विरचम बिरिद्विद्वत मयक मोद मोदक पुरप्तादिद्वी मुल्लङ्घनम् ।
धारण्यवधरामु धीरानिर्मेकवेगं एव
वेदमापानेयस्तानु

धोरमावेवम् अर्द्धपमोपाये ?—विश्वविद्यालय एर ७

जगत् के कर्ता हैं, गोविन्द हैं। उनके गुणों का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।^१ 'वे ही महान् से महान् हैं। वे ही पूर्ण ज्ञाता हैं। वे स्रष्टा गुणों के आकार हैं। मन्त्रार्थ के सागर हैं। वेद उग्राँ की स्तुति करते हैं। वे ही सर्वज्ञानी हैं।^२ वे ही सभी चित्-अक्षिप्त प्राणियों के आधार हैं।^३ वे देवों के अधिपति हैं। तीनों लोकों की सृष्टि प्राप्त कर और सहार के ही करते हैं।^४

विष्णुसहित आळ्वार का कथन है— 'परब्रह्म एक है। वे ही प्राणियों का एक मात्र सहारा हैं। उनकी महिमा किसी से भी वर्णित नहीं हो सकती। विस्तृत रूप सभी का कस्य उसी में मिल जाता है।^५ मयवान् आदिपुरुष के भी आदि पुरुष हैं। अन्त में केवल वे ही रहेंगे।'^६

१ तिरुवायमोळी ३ १ ३

२ पादपुम यवस्म तानाय अवरवर समयन्तोस्म
तोयवित्तन पुलनैन्नुवकुम सोसप्यवान् उन्नविन मूर्ति
आविषैर्यिरिनुस्मान् आनुमोर पट्टिनाव
पावर्नयतिर्नैन्नुवित्तन अवनैपुम कूडलामे ।—तिरुवायमोळी ३ ४ १०

३ The idea of Brahman as adhara of cit—cit is the life-blood of visistadvaita"—P N Srinivasachari: "The Philosophy of Visistadvaita. p 121

मन्नुम श्रीस्म एरियुम नम बापुन्नुम ।

विन्नुमाय विरियुम एरियेनेये । —तिरुवायमोळी १ १० २

४ पौकु मुन्नलकुम पवैत्तळिवकुम

पोवन्नु मुन्नलवन एम्मलवन

आरियनस्मान्

यावर मट्ट एन अमर तुन्नैय १०

—तिरुवायमोळी ८ ४

५ तेव काल देवन श्रीवन्नयेन्नेट्टरप्पर

आवन्नरिपार अवन देवर्चे—श्रीस्म

श्रीस्म मुन्निल्ल इतनैये एत्तवम वेइताळुम

अस्स मुन्निल्लालियान पाल ।

—नानमुन्नन तिरुवन्मावि २

६ आरियान नानवन्नुम अन्नमाय अन्नुत्त

आरियान नानवन्नुम आरियान आरिनी

आरियान नान यावर अत्त नालम नी उरैत्ती

आरियान कालम निन्न यावर अत्तुवन्नै ।

—तिरुवन्माविहत्तम, ८

तिरुमने आळवार वहा क विषय में कहते हैं— 'भगवान् देवों के सार हैं ।' ^१ वही सबके आदि हैं ^२ वही अन्त हैं और वे ही सर्वसोक रखक हैं । ^३ वेरियाळवार के इष्टदेव केराव पुरुषोत्तम भगवान् हैं । परम ज्योति हैं । ^४ वे महान् हैं, देवों के अधिपति हैं । सम्पूर्ण लोकों के रखक हैं । ^५ क्षीर सागर में तपन करने वाले परम मूर्ति हैं । जप की मूर्ति करने के लिए ब्रह्मा की सृष्टि की संहार करने के हेतु यम की सृष्टि की । ^६ वे ही कारण हैं, अविनाशी हैं और परम पुरुष हैं । ^७

आच्छाळ कहती हैं— "चारों देवों में वही बलिष्ठ हैं । वही देवों के अधीप हैं । ^८ वे सब वस्तुओं से परे हैं । उन्हें पूर्ण रूप से समझने की शक्ति किसी में नहीं है । वही देवों के सार-तत्त्व हैं एक मात्र सत्य-तत्त्व हैं । ^९

- १ 'पम्पुनासमरप्पस पीळ्ळाक्किय परमनिष्ठम ।" —वेरिय तिरुमोळी ३-१२
- २ "नौत्तिपाक्किय वेदभामुनिवासर तोट्टाम जरेत्त । मटुक्कु आदिपादिक्कत्ताय ।" —वही ३१-२
- ३ "अस्तमाय अययमाकी अययवैपुतमाकी । अस्तमाय आदिपाकी अस्तवैयवपुम आमाय ।" —वही ४६-२
- ४ "केवावा । पुप्पोत्तमा । क्किल्ल ज्योत्तिपाय ।" —वेरियाळवार तिरुमोळी ४४१०
- ५ वेवरकल नायकने । एम्माने । एच्चसिलेम्मुदेयिन्नुमुदे । एळ लङ्गुमुडयाय । एम्प्या ।" —वही ४१०७
- ६ "वेयरविनसे पार्ळडपमुळ पत्तिकोम्किन्नु परम मूर्ति । उय्य उमकु पडवक वेडो जम्बियल तोट्टिनाय नाम्मुजनं वयमनिचरै पोयवैन्दुक्की कासनैपुम उडने पईत्ताय ।" —वही ४११
- ७ 'उळियत्ताय । चाळि पुन्नेली कप माकरी कोस बिजुत्ताने । बारवा । कडसैक्कडम्माने । एम्मिराम । " ।" —वही ४१०१
- ८ नाडिवाय तिरुमोळी ४१०
- ९ "एप्पोवडुपुम तिट्टु चाकुम एडत्ताय नाम्मरेयिन । ओपोवडाय तिरुवार एन मेडप्पोवडुम कोटारे ।" —वही, ११६

कुलधेसराल्लवार का कथन है— 'वे भगवन् और विद्याओं के सृष्टि-कर्ता थे ही हैं। यन्त्रों की स्तुति के पात्र वे ही हैं।' वे महात्मा हैं। ब्रह्मा शिव इन्हीं की स्तुति करते हैं। वेदों द्वारा उन्हीं की महिमा गायी जाती है।^१

बाळार भक्तों के अनुसार ब्रह्म त्रिगुण भी है और सगुण भी इसी को भगवान् का बिच्छ भगवन्मयत्व कहा है। नम्माळ्वार कहते हैं— "मेरे दृष्टदेव सर्वत्र व्याप्त हैं, अन्तर्यामी हैं। नरक स्वर्गों के अधिपति हैं। मित्रता शत्रुता से परे हैं। अमृत घन हैं। मेरे रक्षक हैं। वे अपने सगुण रूप में तिरुविष्णुकर (स्वान विधेय) में विराजमान हैं।^२ शुद्ध-शुद्ध कलह-सन्तोष सबसे परे अव्यक्त भगवान् अपने सगुण रूप में तिरुविष्णुकर में विराजमान हैं।^३ पुष्प-पाप मिस्र विषोय आदि के प्रभाव से परे सर्व तत्त्व भगवान् अपने सगुण रूप में तिरुविष्णुकर में विराजते हैं।^४

पेरियाळ्वार कहते हैं— "जिनकी स्तुति करने में वेद भी नहीं सकते वही यक्षोबा द्वारा ठगल से (अपने सगुण रूप में) बधि जाते हैं।^५ नम्माळ्वार 'पेरिय तिरुवन्तावि' के एक पद में इस प्रकार भगवान् से प्रार्थना करते हैं— आकाश मृमि सबको अपने में धारण करने वाले हे भगवान्। इतने बड़ होकर भी मेरे कण्ठ

१ 'वेवरैयुम भगुररैयुम विधेयैयुम पडेत्तवै ।
पावचम वल्लु अडि वर्यक भरंगनवरत्तु इन्दुवने ।"

—पेरियाळ्वार तिरुमोळी ८ १

२ "पिरैयेव वडैयानुम विरमानुम इविरनुम
मुरपाय वैरुवैळ्ळी कुरै मुडिप्पाल मरिपानान ।" —वही ४ ८

३ 'नन्कुरनुम वेत्तुम नरकुम शुक्कुमुमाय ।
वेत्तुवैयुम नरकुम विट्टुम भगुवमुमाय
वत्तुवैयुम परम्त वैरुमान एन्नेवास्वान
वेत्तुम नन्कुरुडि तिरुविष्णुकरवैयै ।"

—तिरुवायमोळी ६ १ १

४ 'कण्ड इय्यम तन्मय कलवककळ म तैवमुमाय
तण्डमुम तर्प्पैयुम तळलुम निळलुमाय
कण्डुकोडकैरिय वैरुमान एन्नेवास्वान्नु
तैन्तिरैयुमत्त कुळ तिरुविष्णुकर नन्नगै ।"

—वही ६ १ २

५ वही ६ १ ३

६ 'घापायुम वैरुम धयवू एवव वर्यवैयैयि
ऐरार एन्ने कयिटुत्त कट्टुट्टु एन्नेरुमान ।"

—"भगवान् बळर्त्त मळर" (पी पी पी आचार्य इत्य) पृ० १५
ये उळ त ।

मार्ग से मेरे अन्तर आपने प्रवेश कर लिया है। अब बताओ मैं क्या हूँ कि तुम ? ^१

पेरिय माळवार का कथन है कि भगवान् अन्तर्मायी है। जो उसका स्मरण करता है वह उसके मन में वास करता है। ^२ पेयाळवार कहते हैं कि भगवान् के रूप, रंग को कोई नहीं जानता है (अर्थात् ब्रह्म रूप, रंग से परे निगुण है)। ^३ इसके अतिरिक्त आपका कहना है—“भक्त जिस रूप को चाहते हैं, वही उसका रूप है। भक्त जिस रूप से उपासना करे, उसी रूप से ब्रह्म उसका उपास्य बन जाता है।” ^४

पेयाळवार कहते हैं—“बह ईश्वर है। पृथ्वी आकाश आदों दिशाओं वैद वैश्वार्थ सर्वत्र अन्तर्निहित है। पर आश्चर्य है कि उसका निवास मेरे हृदय में है।” ^५ नम्माळवार तो सारे ब्रह्म को हृदयमय देखते हैं। वे कहते हैं—“जो जल हम पीते हैं, जो मांस हम खाते हैं, जो पान हम खाते हैं—सब मैं भगवान् की आत्मा भक्षवती है।” ^६

ब्रह्म का आत्मन् (रस) रूप

माळवार भक्तों ने ब्रह्म को आत्मन् रूप या रस रूप माना है। ^७ पेरियाळवार अपने दृष्टिकोण को ‘मुन्दर मूर्ति’ कहकर पुकारते हैं। ^८ विद्वान् माळवार

१ पेरिय तिरुवन्तादि ७१

२ उक्तम्पुष्टाय तन्मेवे । उत्तमनेन्दुम
उक्तम्पुष्टाय-उक्तम्पुष्टाय-उक्तम्पुष्टाय ।” —मुन्दर तिरुवन्तादि ६६

३ ‘विरम वेळियु वेळु पवितु करितेन्दु
ईन्दुरवम यामरियोम ।” —मुन्दर तिरुवन्तादि १६

४ अकबर ताम नाम अरिन्तावारेत्ती
इवरिवरेम्पेरमनेन्दु पुवरमिर्
आत्तिपुम वेत्त म तोळवर उत्तपुत्त
मूर्तिपुदवे मुवत्त ।” —मुन्दर तिरुवन्तादि ६४

५ ईर्याय निजवाक्की एलित्तं पुम तामाय
मर्याय मर्यापुष्टाय तामाय—
उत्तर्त्तिपुम्पुत्त उल्ल ।” —मुन्दर तिरुवन्तादि ६६

६ उक्तम्पुष्टाय पदकु नीर तिरुम्पुष्टाय वैदुर्त्तपुम्पुस्ताय
कन्धन एम्पेरमायु म्पु कन्धन नीर मर्या
मन्निपुत्त अकबर नीर उक्तम्पुष्टाय निजमन्निपुष्टाय तिरुम्पुष्टाय
तिरुम्पुष्टाय एन इल्लमन्निपुष्टाय तिरुम्पुष्टाय ।” —निरवायमोटी ६ ७ १

७ “Vaiśṇavāda is the only philosophy of religion that recognises the eternal value of beauty and recognises Brahman as the beautiful and blissful. —The Philosophy of Vaisṇavāda, Prof P N Srinivasachari, p. 219

८ ‘वन्द्यम्पुष्टाय तन्मेवे’ —पेरियाळवार तिरुमोटी १४६

कहते हैं कि भयबाद् आत्मरूप है, यह के समान भयुररूप है।^१ तिरुप्पाण आठवार कहते— मेरे जिन नयनों ने अमृत-सुरस रूप भयबाद् के दर्शन किये हैं, वे किसी दूसरी वस्तु को नहीं देखेंगे।^२

अवतार

आठवारों के अनुसार परब्रह्म विष्णु विभिन्न गुणों में लोकोत्थार के लिए अवतार लेते हैं। जब पृथ्वी में अमर्ष फैल जाता है और अज्ञान अन्धकार पृथ्वी को कवचित्त करता है तब कृपाविभु भगवाद् अपनी कस्या को प्रकट करने के हेतु अवतार लेते हैं। आठवार भक्तों ने अपने दृष्टदेव कृष्ण को परब्रह्म विष्णु के अवतार के रूप में ही सर्वत्र माना है। कृष्णावतार के कारण बताते हुए आठवार कहते हैं— 'देवलोके के देवगणों की सेवा को दूर करने के लिए'^३ पृथ्वी तथा पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों के उद्धार के लिए,^४ पृथ्वी के बोझ को कम करने के लिए^५ सूदेवी के कष्ट को दूर करने के लिए,^६ देवगणों की प्रार्थना पर^७ बन्धु बान्धवों को छटाने वाले कंस का वध करने के लिए^८ श्रीरत्नापर वासी श्री विष्णु का श्रीकृष्ण के रूप में अवतार हुआ।

ब्रह्म के पाँच रूप (उपासना और ध्यान हेतु)

आठवार भक्तों के भक्ति-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन करने से यह जाना जा सकता है कि उन्होंने उपासना और ध्यान के लिए ब्रह्म के पाँच रूप माने हैं।

१. परब्रह्म रूप—आठवारा ने ब्रह्म का विवेचन निम्न प्रकार से किया है—

"ब्रह्म अमर है, आदि पुरुष है^१ तीन देवों (त्रिमूर्ति) में श्रेष्ठ है।^२ मुनिजग आदि उन्हीं की स्तुति करते हैं।^३ वे पवित्र हैं, परम मेधावी हैं, परमात्मा हैं।^४ श्रेष्ठ गुणों से युक्त महान् हैं। स्तुति के पात्र केवल वही हैं।^५

१ 'पारिनि पञ्चैतर्मे देव्योन्मे ।'—तिरुक्कुरताम्बकम् ९

२ आठार कोन अरिन्दरपन एन्नमुर्दिर्क
कष्ट कल्कल मदोम्पुर्नै कासावे ।'—अमलनादिरिपयन १०

३ पैरियळ्वार तिरुमोळी ४-३ ३

४ पैरमाळ तिरुमोळी ११०

५ पैरिय तिरुमोळी ७ १०-८ १ वही, ४-८-२

६ तिरुवायमोळी ६-४ २ ८ वही ६-२ २

७ अमलनादिरिपयन १

१० मुवरिन मुदम्बनाय मुत्तर्न'—तिरुक्कुरताम्बकम् ९

११ विळ मिय मुनिवराल विनु कुम कोडिर्नकनिपाय'—पैरिय तिरुमोळी २ १ २

१२ वकिर्ने वरमदेर्दयै परमात्मानै । —तिरुप्पाणाष्ट, १२

१३ 'पाराट्टिनुम पाराट्ट्यादी'..... ।'—तिरुक्कुरताम्बकम् २६

२. ब्रह्म रूप—ब्राह्मण ब्रह्म के ब्रह्म-रूप की ओर इस प्रकार संकेत करते हैं—“मुनि श्रेष्ठ ज्ञानी—परमात्मा ने तीन बनकर पवित्र रूप धारण किये जिनकी स्तुति वेद करते हैं।^१ प्रथम बार ब्रह्म के पवित्र रूप तीन बताते हैं।”^२

३. अन्तर्यामी रूप—निम्नलिखित उद्धरण ब्रह्म के अन्तर्यामी रूप को स्पष्ट करते वाले हैं —

(क) ‘घनीर में प्राण के समान मिलकर वास करने वाले भगवान्।’^३

(ख) ‘जो उनका स्मरण करते हैं, उनके हृदय में भगवान् वास करता है।’^४

(ग) ‘जपने रूप को ही मेरे रूप में धारण करने वाले मेरे पिता।’^५

“हृदय में वास करने वाले ब्रह्म।”

४. विमल रूप—यह भगवान् के विभिन्न अवतारों से सम्बन्ध रखता है। ब्राह्मणों ने विष्णु भगवान् के विभिन्न अवतार का वर्णन किया (इसका पहले उल्लेख किया जा चुका है)।

५. अर्चावतार रूप—इस रूप में ब्रह्म मूर्तियों में वास करता है। ब्राह्मण मठों में विभिन्न मन्दिरों में स्थित भगवान् विषणु को ब्रह्म के अर्चावतार-रूप में ही देखा जा।^६ निरमल ब्राह्मण कहते हैं— ब्रह्म भगवान् जिसकी स्तुति वेद और मंत्र सोच करते हैं ब्रह्म भगवान् जिसने कण्ठ्यप परम्परावतार धारण किए, बद्ध पुण्ड्र (स्वाम विरोध) के मन्दिर में वास करता है।^७ बाणहवतार लेने वाले तीनों तीर्थों को मापने वाले महाबली का उद्धार करने वाले चारा वेद में स्तुति प्राप्त करने वाले

१ ‘मनिषममूर्ति मूढराकि वेदम विरित रंत पुनितन—पेरिय तिरमोळी २ -८

२ “मुदलाम निव उदयम मून्नेन्दर”—पेरिय तिरमोळी ७०

३ “उदलमिसे उमिरेन कलमोकुम परम्मुडान”—तिरुवायमोळी, १।७

४ “विन्त तमिल मुन्ति निम्मीर”—पेरिय तिरमोळी ४-६६

५ ‘तन्मुदने एम्मुदविन निम्मु एन्त’ —तिरुनेल्लुतायवकम १

६ “The Visistadvaitin equates the Brahman and the Antaryami of the Upanishads with Vasudeva of Pancharatra, the Bhagawan of the Puranas, the Avatar of Itihāsas and the arca of the Alvara — *The Philosophy of Visistadvaita* Prof P N Srinivasachari, p 162.

७ वेदमूर्तल हमपीर वर्णकम

बन्धु बुरदुदवाय निमिषु मावनी वेनविमित मयधन्त

अमलार वम हवतार कील ? एम धन्नुयवरत्ते एम्पारे ॥

—पेरिय तिरमोळी २-८२

मयबाद् भीरामविष्णुकर (स्वात विधेय) में विराजते हैं।^१ तन्माळवार कहते हैं कि यहाँ से बहलु ब्रह्म विष्णुमहेश्वरी के मन्दिर में विराजमान हैं।^२ आठवार भर्त्तों के इन कवनों से उसके द्वारा ब्रह्म के अवतार स्वस्व को मानने की बात स्पष्ट होती है।

ब्रह्म का विराट रूप

'ब्रह्म' शब्द के आदर्श में ही उसके ब्रह्म और विराट होने का अर्थ निहित है। ब्रह्म के इस विराट रूप का वर्णन ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त, अनेक उपनिषदों और श्रीतारिक्त्यों में मिलता है। ब्रह्म को ब्रह्म स्वीकार करने वाले आठवार भर्त्तों ने भी ब्रह्म के विराट रूप का वर्णन किया है। पेरियाळवार ने मयाबा के द्वारा ब्रह्म के मुँह में सपुण्यं सोकों के वर्णन करने का वर्णन किया है।^३ मृत्तिका मलय तथा मयुहाई सेने के समय भी कवि ने समस्त सृष्टि को उनके मुँह के अन्तर्गत प्रवर्णित किया है जो ब्रह्म के विराट रूप का ही प्रतिपादन करता है। पोम्पन आठवार आदर्श वर्णित होकर कहते हैं— 'पृथ्वी पर्वत समुद्र मादत आकाश—सबको निभाने वाले हे मयीम मयबाद् ! क्या उस दिन आपका मुँह इतना बड़ा था ?'^४ पोम्पन आठवार अन्तर्गत कहते हैं— जो मयबाद् पृथ्वी वायु, अग्नि आदि विराट रूप वाले हैं, यही मयेन्द्र के कण्ठ को बुर करने सोइ चले थे।^५

अन्य उपाधियाँ

आठवार भर्त्तों ने ब्रह्म की अनेकानेक उपाधियों का मुक्त हृदय से वर्णन किया

- १ श्रीर कुरुळाय इव नितम मूवडो मय बैथी
वतकनैत म ईरडिमालोबुक्की सोम्पुम

—पेरिय विष्णुमोळी ३४-१

- २ "वेर मुन विरित्तान विवन्मिय कोमिल
मातुव नयिल वेर मानिव चोली ।"

—विश्वनाथमोळी २१०-१०

- ३ लैयुम कालुम निर्मित्तु कटार नीरे
पैय बाट्टी प्पुञ्चिव मंचलत्ताल
दैय नावळित्तुळुक्कु मंगरीत्तिट
वयमेळुम कंदाळ मिळैवायुळे ।'

—पेरियाळवार तिरमोळी ११९

- ४ मन्नुम नन्नैयुम मरिक्कन्नुम माक्कन्नुम
विक्कुम विळु च्चियत्तु मेयैय्यर-एन्निल
यत्तकळु कण्ठ चौराळियाइक्कु मन्नु इव
पुनरळुपुन उम्पो ? उत नाय ।"

—मुक्कम विष्णुमोळी १०

- ५ इरैयुम नितनुम इवविन्नुम मातुम
वैरैयुम नितनुम चोतीयुमावान—चिरैमवन्मिय

है, जिनमें तारिबठ दृष्टि के अतिरिक्त भावार्थकता का भी पर्याप्त योग है। तिरप्पाण ब्रह्म के विषय में कहते हैं—“ब्रह्म अमल है, भावि पुरुष है, भक्तों के रक्षक है, विमल है, देवों के अधिपति है, निर्मल है, नीतिम है।”^{११} तिरुमयि आळ्वार कहते हैं—“मयबान् पवित्र है, महारामा है, पुष्पमूर्ति है, देवाधिपति है, अनेक रहने वाले है, भक्तों के लिए मयूर है, मेरे स्वामी है।”^{१२} तिरुमसिछे भाषणार कहते हैं—“हे मयबान् ! आज मैं समझ गया हूँ, समस्त सृष्टि के कारण तুম हो। जो कुछ आज मैंने प्राप्त किया है, तুম उसका सार हो। जाये जो कुछ मैं सीखूँ वा वह भी तुम्हीं हो। अन्धे नम करने वाले तুম नारायण हो।”^{१३} मम्माळ्वार कहते हैं—“शानी सोल सब हरि की स्तुति करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि मयबान् ही समस्त रोगों को दूर करने वाली औषधि है।”^{१४} मम्माळ्वार मयबान् को बड़े शानी, भक्त-वत्सल भी कहते हैं।^{१५}

बेकम मात मात पडु तुवरम कालजित

बेकम मात कष्टाय तैडी ॥”

—मुद्रस तिरुवन्तादि २६

- १ ‘अमलादिविराज प्रथियाकु एम्मेपादपुत्त
विजयन विजयवर कोन विरयार पोळिल बेळटवन
विजयन विजयन नीतिपानवन मोल मतिळ रंगतम्मान तिर
कमत वारम वन्नु एन वन्निनुस्त्रनपोत्तिन्नुने।”

—अमलादिविराज पद १

- २ ‘पुनिवन धृतिपाकि धुवरारि केवम विरित्तुर्त
पुनितन पूर्ववन्वन धम्मस पुन्निपयम विणवर कोन
तनिपन केवम तानोस्वना किन्नुम तन्निथियाकु
इनिपय एर्त्त एम्पेरमान एम्मुळ किन्ताने।”

—वेरिय तिरुमाळ्डी २ २ ८

- ३ “इनिपरित्तेन इंतदु म नान्मुत्तकु म देइवम्
इनिपरित्त न एम्पेरमान । उर्त्ते-इतिपरित्तेन
काराणुन नी कदुव नी कर्पव नी नकिरिर्बे
नारजन नी नकिरित्तेन नान ।”

—नान्मुत्तन तिरुवन्तादि ६६

- ४ “अरित्तनर एस्ताम अरिये वरुंही
अरित्तनर मोइळळ अरवन्नुम मरन्ते।”

—मान तिरुमयि (भी पी० ओ० भाषार्थ वृत्त पृ० ४ में उद्धृत)

- ५ “बळ्ळने । मपुनूवना । एम मरकटमनैये उर्त्ते निन्नेन्नु
एळ्ळन तन्त एस्ताय । उम्न एवमम बिदुनेन ?”

—तिरुवायमोडी, २ ६ ४

आलोभ्यकासीन हिम्वी कृष्ण भक्त कवियों के ब्रह्म-सम्बन्धी विचार

१ कविवर सूरदास जी के दृष्टदेव पूर्ण पुरुषोत्तम बीडम्पल हैं। उनके सगुण और निगुण—दोनों रूप हैं। परब्रह्म बीडम्पल समस्त विश्व के कारण हैं। वे आदि अन्तिम अक्षर और सर्वान्त्यामी हैं।^१ वे ही अक्षर और कला-रूप में असंख्य रूप धारण करते हैं। बीज रूप में जगत् रूप में और सम्पूर्ण देवता रूप में जो कुछ भी इस जगत् में है वह सब उन्हीं का अंश है। वे ही अक्षर-ब्रह्म रूप हैं और वे ही ब्रह्म विष्णु और शिव हैं। वे सम्पूर्ण रूप उन्हीं से अंश रूप बनकर प्रसूत हैं।

पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म रस-रूप हैं। ब्रह्म को सगुण और निगुण—दोनों बताकर सूर ने ब्रह्म के विश्व-वर्मन्त्र के भाव को स्वीकार किया है। सगुण रूप में वे गुणरूप से नित्य रास-विहार करते हैं। उनका सौम्य अमित है। उनके अनेक रूप हैं। सूर ने ब्रह्म प्रकृति पुरुष आदि की भईतता स्वीकार करते हुए कृष्ण और परब्रह्म का एकीकरण किया है।^२ सूर के अनुसार आरमराम ब्रह्म ने ही अपनी दृष्टि से अपनी अक्षर रूप सृष्टि का प्रसार किया। सूर कहते हैं—

अविपत, आदि अनन्त अनूपम अक्षर पुरुष अविनासी ।
 पुरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विनासी ॥
 जहँ ब्रह्मचरन आदि अक्षर जहँ कुज-नता बिस्तार ।
 तहँ बिहृत प्रिय-प्रीतम बोक नियम भुग पुकार ॥

- १ (क) अविपत आदि अनन्त अनूपम अक्षर पुरुष अविनासी ।
 पुरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विनासी ।—(सूरदासर)
- (ख) आदि सनातन परब्रह्म प्रभु भट-भट अक्षरवामी ।
 सो तुम्हरी अक्षर आदि की, सूरदास के स्वामी ।”
 —(वही १।८६ पृ २६०)
- (ग) आदि सनातन, हरि अविनासी । सब निरन्तर अक्षरवामी ।
 पुरन ब्रह्म, पुरान ब्रह्म । अक्षरानन सिब अनन्त न जाने ॥
 —(वही १।३ पृ० २३३)
- (घ) ‘पुरन ब्रह्म सनातन बेई मैं मुख्य संतार ।’
 —(वही १०।६०४ पृ० ५६५)

- २ ‘सब एक रस एक अर्चित आदि अनादि अनूप ।
 कोटिकल्प बीतत नहिं जामत बिहृत पुनम-नक्षत्र ।
 तत्कल तत्कल जहँ देव पुनि भाषा सब विधि काल ।
 प्रकृति पुरुष भीषति नारायण सब हैं अंश गुणाल ।’
 —सूर सारावली (वे प्रे पृ० ३८) अष्टछाप और दस्तम सम्प्रदाय
 पृ० ४ ७ से उठ प ।

अहं शोचन पर्वत मनिमय, लघन केबरा सार ।
 योपिन मंडल नय्य विराजत निति दिन करत बिहार ॥
 ऐनत-ऐनत कित में आई सृष्टि करन बिस्तार ।
 धरने आप करि प्रकट कियो है हरि पुरुष अवतार ॥^१

जिस ब्रह्म के समुल्लेख और निरूपण—दोनों रूप हैं ब्रह्म इस अर्थ में अवतार भी धारण करता है। निरूपण ब्रह्म ध्यान की वस्तु है परन्तु उपासना की नहीं।^२ वह ज्ञान से जाना जा सकता है पर उससे प्रेम किया नहीं जा सकता। बिना प्रेम के मनुष्य को सम्योप नहीं। अब निरूपण ब्रह्म अच्छा न लिए समुल्लेख बनकर जाता है। वेद-उपनिषद् जिसे निरूपण बताते हैं वही समुल्लेख होकर नन्द की दीवरी में बँधता है।^३ इन्द्र्य पूर्णवतार है, जब-जब ज्ञान प्रकट हुए हैं तब-तब इन्द्र्य ने पञ्चतार धरवर धनुषों का संहार किया। अन्धविश्व के परम ईश अश्वमेध अविनाशी परमानन्द है, तो भी धरि धारण करके मू का भार हरेते हैं।^४

सूरदास ने परब्रह्म इन्द्र्य के बिछाई रूप का वर्णन किया है और बिछाई भारती की भी योजना की है —

नैननि निरसि इयाम स्वरूप ।

रह्यो घट-घट व्यापि सोई क्योति रूप धनुष ।

१ सूर सारावली, १

२ अविगत यति कथु सहत न धार्य ।

(यो गूनी मीठे छल की रस अन्तरगत ही भाव ॥

मन-बानी को धम्म-धमावर सो जाने को पाव ।

रूप-रूप-गुण-जाति-अपति निरु निरालव कित धार्य ॥

सब बिधि धम्म बिचारहि तसे सूर समुल्लेख पद धार्य ॥—सूरसागर १।७ पृ० १

३ (क) वेद उपनिषद् ज्ञान को निरूपण कहते हैं ।

सोई समुल्लेख नन्द की दीवरी में धार्य ॥— वही १।८ पृ० २

(घ) “हस्तात पोषात नन्द के धामे नन्द लक्ष्य न धार्य ।

निरूपण ब्रह्म समुल्लेख जोसावर सोई मुल करि धार्य ॥

—वही १०। ६३ पृ० २४६

४ (ग) जब जब हरि जाया ते ज्ञान प्रकट भये हैं धम्म ।

तब तब धरि अन्धकार इन्द्र्य ने कीही धनुष सहार ।^५

—सूर सारावली (नू सा० प प्र०) पृ० ३

(ग) सुम अश्वमेध अविनाशी परमानन्द सदा गुण रासी ।

सुम समुल्लेख हरयो नन्द धार, नमो नमो सुम्हें धारधार ॥

—सूरसागर १०।४२६७ पृ० १३०६

बरण सप्त पतास जाके बीहू है आकाश ।

सूर चन्द्र नलज पावक सर्व तासु प्रकाश ।^१

और—हरि तू की भारती बनी ।

मही सराव सप्त सावर भूत बासी घोल बनी ।

रवि सति ज्योति जपत परिपूरया हरत तिमिर रजनी ।

उदत कुल उद्भव नम आंतर संजल घटा धनी ।^२

परब्रह्म मुक्ति से अनोचर और समस्त विरुद्ध बर्णों के आश्रय हैं । ये अणु से भी सूक्ष्म हैं और महान् से भी महान् हैं । ये सर्वव्यापक अथवा तथा कूटस्थ होते हुए भी बल अमर होते भी बाहर निकट होते हुए भी दूर, फल प्रदाता होते हुए भी एक रस और सर्व समर्थ हैं । भक्त-कवि सूर की यह धारणा उनकी निम्नलिखित रीतिशैली से स्पष्ट होती है—

अजर, अकृत निराकार, अविद्यत है कोई ।

आदि अन्त नहिं जाहि, आदि अन्तहिं प्रभु सोई ॥^३

और—

कोहि ब्रह्माण्ड करत छिन्न भीतर हृत बिलम्ब न साध ।

तत्को लिये लब्ध की रानी नाना रूप बिभास्यै ॥^४

२ परमानन्ददास के अनुसार श्रीकृष्ण ही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा है, कृष्ण ही एक से अनेक रूप धारण करते हैं और उन्हीं को वेद नेति-नेति कहते हैं ।^२ परब्रह्म पुण रक्षित और सन्तुष्ट—बोले हैं । निम्न छंद ही सन्तुष्ट रूप धारण करता है ।

परमानन्ददास ईश्वर के रस-रूप के उपासक थे । वे कहते हैं—‘कृष्ण रस रूप है अर्थात् उनका संपूर्ण विग्रह रस-निमित्त है । उनका नाम भी रस-रूप है । उसी रस-रूप का उपासक परमानन्ददास है, जिसके हृदय में उस कृष्ण के प्रति प्रेम का

१ सूरसागर (ना० प्र० सभा) पर सं० १७०, पृ १०१

२ मही () १७१ पृ १८१

३ सूरसागर पर सं० १७२३ पृ ११३

४ मही पर सं० ७४४ पृ० ३३

५ मोहन लालदास कुमार ।

प्रसन्न ब्रह्म निरुक्त्य नायक भक्त हिन भवतार ।

....

‘दास परमानन्द’ प्रभु हरि निगम बोलत नेन ॥

—परमानन्द सागर (सं डा यो ना० मुक्त) पर सं० २७

प्रवाह बह रहा है ।^१ परमानन्द दास कहते हैं— 'कृष्ण मुझ के सागर हैं और सन्तों के सर्वस्व हैं । ब्रह्मा, ब्रह्म इन्द्र आदि देव उनका मनन करते हैं ! पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही सबके स्वामी हैं वे ही इस जगत् में सीला अवतार रूप में आते हैं ।'^२ परमानन्द आगे यह भी कहते हैं— 'वे मुख्य तीन देवता—ब्रह्मा विष्णु महेश—कृष्ण वे ही मुख्यावतार हैं और वे अनेक प्रकार के कर देने में मग्न हैं । परन्तु मेरे लो उपास्य देव राधिका बल्लभ श्रीकृष्ण ही हैं ।'^३

३ नम्बदास के दृष्टदेव श्रीकृष्ण परमब्रह्म हैं, परमात्मा और स्वामी हैं ।^४ यह ब्रह्मार्थ ज्ञान-विज्ञान के प्रकाशक सविषदानन्द नन्दनन्दन हैं । कृष्ण प्रकट पुरुषोत्तम पूर्ण ब्रह्म अविभाजी असक्त पुरुष हैं । इनकी शोभा अपार है वे अविमल हैं यदि अन्त

१ रसिक सितोमनि नंदनंदन ।

रसमय रूप मधुप विराजति घोषवत् उष सीतल जवन ॥
नैननि में रस चितवनि में रस वातनि में रस ठगत मधुम पनु ।
गार्वनि में रस मिमजनि में रस बैनु मधुर रस प्रगट पावन बनु ।
जिहि रस मत फिरत मुनि मधुकर सो रस सचित ब्रज कुम्हारन ।
स्याम धाम रस रसिक उपासित प्रेम प्रवाह नु परमानन्द' मन ।

—परमानन्द सारंग, पद सं० ४२६

- २ सतन को सरबनु मुख सागर नागर नंद कुमार ।
परम हृपाल असोबा नदन जीवन प्राय प्राधार ।
ब्रह्मा, ब्रह्म इन्द्रादि देवता जाकी करन विचार ।
पुरुषोत्तम सबही के ठाकुर यह सीता अवतार ॥
सारा-नरक को धर डर नाही बिधि निवेद नहि धार ।

—बही पद सं० २२

३ मोहि जाबे देवाधिदेवा ।

मुखर स्याम कमल हल लोचन मोकुननाथ एक हैं मेवा ॥
जो जानिये सकल बरदायक गुन बिचित्र हीजिये सेवा ।
तीन मुख्य देवता—ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेवा ॥
सब एक सारंग गवा कर जब बनधुन धान्यकटा ।
गोपीनाथ राधिका बल्लभ ताहि उपासत 'परमानन्द' ।

—बही पद सं० २३६

- ४ हृदय धनावन परम ब्रह्म परमात्म स्वामी ।

—नम्बदास सिद्धान्त-पंचाध्यायी पृ० १८६

से हीन हैं ।^१ कृष्ण अद्भुत रूप वाले हैं, परमात्मा हैं, सर्वान्तर्दामी हैं ।^२ वे प्राणिमों के रक्षक पालक और उनके कर्मों को देखने वाले हैं । वे सबतार लेकर भू का भार धरल्य करते हैं ।^३

नन्ददास के अनुसार ईश्वर ब्रह्मा है—“ब्रह्म कस्मिन्, जननीध ।”^४ और वह अनन्त रूप होता हुए एक है— हरि अनन्त सब एक ।^५ वह जगत् का निमित्त और उपादान—दोनों कारण है—

“जो प्रभु क्योति जगत्तमय कारण करम प्रमेव ।

विष्णु हरज सब कुछ करन नमो-नमो तिहि देव ॥”

४ श्रीराधाई ने कृष्ण को ‘कविनाथी’ की संज्ञा दी है । श्रीरा ने एक स्वन पर सिखा है कि ममबान् श्रीकृष्ण मेरे हृदयेध हैं । चाहे तुर्य चन्द्र पृथ्वी वन आकाश का नाथ हो जाय परन्तु कृष्ण स्थिर ही रहेवे ।^६ श्रीरा अत्यन्त कहती हैं—

प्रभु तुम पुरख बहुर हो पुरख सब बीजे हो ।

श्रीरा व्याकुल विरहिनी अपनी करि लीजे हो ॥”^७

१ जैतई कृष्ण धरजगद रूप, चिरकम उदारा ।

—नन्ददास त्रिदाम-वैवाध्यायी पृ० १६१

(क) परम नाम कृष्ण व्यान विज्ञान प्रकाली ।

—वही पृ० १६४

(ख) लखन लखिबानम् नंद नंदन ईश्वर भत ।

—वही, पृ० १८४

२ भोक्तुन अद्भुत रूप

वरजसमा परबहुर, लखन के अन्तर्दामी ।

नाराहन मधवान धर्म करि सबके स्वामी ।

—वही अ० १ पृ० ११६

३ पर भुन सब सबतार बन नाराहन जोह ।

सबको साधय सबवि-भुन नंद नन्दन लोई ॥

—वही पृ० १८३

४ नन्ददास अन्धावली (ना प्र लना राधी) अनेकान् संजरी

५ वही (, ")

६ वही (, ") पृ० ४६

७ मेरा चिया मेरे हिध बलत है, ना कहूँ प्राप्ती जाती ।

जरा जायगा पुरख जायना जायबी बरनि आकासी ।

पवन पायी बाजु हो जायैसि छटल रहे कविनासी ॥

—श्रीरा की वरावली (सं० परमुराम जगुबेरी) पृ० ८ प्रथम संस्करण

८ श्रीरा की वरावली । (सं० परमुराम जगुबेरी) पृ० सं० १२६

५ स्वामी हरिप्रसाद जी अपने इष्टदेव को ही परमात्मा परमब्रह्म मानते हैं—
'परमात्म परब्रह्म करि विस्तारन जगज्जाल ।
जनपालन जय-जय सब रास बिहारीनाम ।'^१

हरिप्रसाद जी ने ब्रह्म को रस-रूप और नित्य माना है—
नित्य विह्वल जहाँ नित्य कैसोर होज
नित्य सहचरित सय नित्य नबरग ।
नित्य रस रास जस्नात प्रानन्द उव
नित्य प्रतिकास परमास अंग-अय ।^२

६ रसज्ञान के रूप में भी विष्णु के अवतार ब्रह्मा और शिव से अष्ट तथा पूर्ण ब्रह्म हैं। उन्होंने अपने काम्य में अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण को परब्रह्म के रूप में चित्रित किया है। उनके आराध्य श्रीकृष्ण सर्वोपरि हैं। कई स्थानों पर उन्होंने 'दाँकर से मुर जाहि मज आवि कहा है। एक स्थान पर वे कृष्ण का ब्रह्मत्व दिखाते हुए कहते हैं—

वार्ध गुनी गनिका गणय धीर सारथ तौस सबे गुन गावत ।
नाम धनत गनत गनेस क्यों ब्रह्मा जिनोचन पार न पावत ॥
जोगी जतौ तपसी धर सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छडिया भरि छाछ ये नाच नचावत ॥^३

७ नरोत्तमदास ने श्रीकृष्ण को परम ब्रह्मासु और अन्तर्यामी ब्रह्म के रूप में चित्रित किया है—

अन्तर्यामी आप हरि जानि भक्ति भी पीर ।
सोबत स ठाढ़ो दियो नही मोमती तीर ॥^४
जिनके करण से समस्त जगत् का संताप नष्ट होता है—
पाप मुबामा बिघ्न के, सोबत हैं हरि आप ॥^५

निष्कर्ष

ब्राह्मचारियों के और आसौध्यवासीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रह्म गणकम्पी विचारों के अनुदीप्तन तथा परीक्षण में यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों शाखा क

- १ निम्बार्क साधुरी पृ० ६३
- २ वही पृ० ६०
- ३ रसज्ञान का धर्म काव्य—(दुर्गादास मिश्र) पृ ३२
- ४ मुबामा चरित—नरोत्तमदास (वे० प्र०) दाग म० ११
- ५ वही दोहा म० २३

कवियों के विचारों में बहुत दूर तक साम्य है। आठवारों की अपेक्षा हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में दार्शनिक विवेचन की भाषा अधिक है, क्योंकि आठवारों के परचाए ही दार्शनिक विवेचन की पद्धति प्रबल हुई। आठवारों के और हिन्दी के वृष्टस्यपी कवियों के ब्रह्म-सम्बन्धी विचारों को मोटे तौर पर देखने से यह अन्तर देखा जा सकता है कि वहाँ आठवारों के अनुसार श्रीकृष्ण परब्रह्म विष्णु के अवतार हैं, वहाँ हिन्दी के वृष्टस्यपी कवियों ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना है और विष्णु को उन्हीं का बंध माना है।^१

जीव

आठवारों के जीव विषयक विचार

आठवार भक्तों ने जितने विस्तार से ईश्वर के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं, उतने विस्तार से उन्होंने जीव के विषय में विवेचन प्रस्तुत नहीं किया है। फिर भी उनके कुछ पदों से ईश्वर और जीव के सम्बन्ध जीव-स्वरूप और जीव की अस्ति-सामर्थ्य आदि के विषय में कुछ परिचय अवश्य मिल जाता है। आठवार भक्तों ने जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध भंस और घंटी देख-सेपी शरीर शरीरी के रूप में माना है। आठवारों के ये जीव-ब्रह्म सम्बन्धी विचार विधिष्ठाईतवादी दर्शन में मिलते हैं।

श्री पी एम० श्री निवासाचार्य अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वि फिलासोफ्रे आफ विभिष्ठाईत' में लिखते हैं—“The truth of Brahman as the Sarivin of all beings is clearly intulted by the Alvares”^२

तन्माआठवार के अनुसार जीव सब भगवान् से उत्पन्न किये गये हैं। वही उनके स्वामी हैं।^३ सभी जीव भगवान् की अपनी संपत्ति हैं। वे जीव भगवान् पर आचारित हैं। वही इन जीवों में बास करता है।^४

१ एले आशकता पुस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्
इन्द्रारि व्याकुल लोभं मूढयन्ति पुये-पुये।” —भाषवत १।१।९८

२ *The Philosophy of Vististadratta*
—Prof P N Srinivasachari p 246.

३ “विनुमिन पुडुडुम बीडु वेइतु वम्मुयिर
बीडुडयानिरे बीडु वेइमिले। —तिस्नाय मोळी १ २ १
“गीर तुमैतिरुई वेर मुडल माइल इरे
वेमिन उयिडु चवम गैर निरैयिस्ते।” —वही १ २ ३

४ “विन मीतिरुप्याय। मरैमेल निर्याय कइरैर्याय।
भय मोतुन्नाय। इवटुळैनुम मरैन्नुर्वाय।
एन मीतुयन्नु पुरवष्टत्ताय। एनताबी
वळ मीताबी वरुवामुले ओळिप्पामो ?” —वही १-२ ५

तिरमसिसई आठवार मे जीव और शरीर की बंधन और मर्त्य का सम्बन्धी बताते हुए कहा है—“समुद्र में तरंग उठती है और वे उसी में समा जाती हैं। तरंगों का समुद्र से अलग अस्तित्व नहीं है।^१ उसी तरह जीव भी भगवान् से अलग होते हैं और अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं। उनका अलग अस्तित्व नहीं है। जीव भगवान् के अंग-रूप हैं।”

मन्माळवार न मर्त्य वस्तुओं में भगवान् के निहित रहने का भाव अपने एक पद में प्रकट किया है—“जो जस हम पीते हैं, जो भात हम खाते हैं जो पान हम हम खाते हैं—सबमें उसी का समावेश है। सारा अणु दृष्टान्त है।”^२

अंग रूप जीव अन्त में अंश रूप ब्रह्म में लीन हो जाता है इस तरह को स्पष्ट करते हुए भाग्यी आठवार कहते हैं —

जिस तरह सरिता सागर की ओर प्रवाहित है सुमन सूर्य की किरणों की प्रतीक्षा में है उसी तरह जीव भी भगवान् में लीन होने के लिए उन्मुख है।^३

तिरमसई आठवार का कहना है कि “जिस प्रकार गरम द्रव्य सौंहे पर पानी की बूँदों आसने से वे स्वयं भाङ्ग होकर सौंहे में विलीन हो जाती हैं (और फिर उनका अलग अस्तित्व नहीं रहता) उसी प्रकार मैं (जीव) भगवान् में लीन हो जाना चाहता हूँ।”^४

१. सामुद्रोद्भि तरंगः अवयवसमुद्रो न तारंगः ।

—आचार्य शंकर द्वारा ‘पञ्चमी’

२. “तन्मुच्छं तिरित्छं म तरंगवेत्ताद्वयम्
तन्मुच्छं तिरित्छं नु घट्टुकिन्तु तन्मयम्
निम्मुच्छं पिरमित्तु निर्मितुम तिरित्तुम्
निम्मुच्छं घट्टुकिन्तु नीर्म निम कम निम्नुते ।”

—तिरमसईविरचित १०

३. “उन्मुम बोध पदकुजोर तन्मुम वेदित्तुमेस्तम ।
कल्पम्”

—तिरमसईविरचित १०-१

४. “वेपथु कवकसे धार घोषू
उपथु कतिरकसे मोरधुम-अपिधम
तपथुमे मोरधुम घोष तामरगान केठ वन
घोरवनमे मोरधुम उन्मु । ...”

—मुदाग तिरमसई १०

५. “इरमसईविरचित और पोत एम्पेराधुम एन तम ।
मरम्पेराधुमिच्छु घट्टिमे दूम्प उन्मु पोतेन ॥”

—तिरमसईविरचित १

परब्रह्म का अंध-रूप जीव इस संसार की माया में पड़कर अपने सत्य स्वरूप को बिस्मृत कर जाता है। वह जीव अपनी आत्मा में स्थित किन्तु प्रच्छन्न आत्मार्थ और ईश्वरीय ऐश्वर्याभि भुजा को भूल जाता है। बट-बट में व्याप्त ईश्वर के अन्तर्धानी स्वरूप से वह भ्रममग्न रहता है। वह वह भी नहीं जानता कि मैं परब्रह्म का अंध हूँ। अविद्या के कारण वह यह जान नहीं पाता कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए।^१ यदि किसी प्रकार से ज्ञान से भक्ति से अथवा भगवान् की कृपा से यह माया-बननिका छू जाती है तो जीव फिर अपने आनन्द स्वरूप में आ जाता है।

हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के जीव-सम्बन्धी विचार

बाळ्यार मत्तो के और आसोष्यकासीन हिन्दी कृष्ण भक्त-कवियों के जीव सम्बन्धी विचारों में बहुत समानता है। हिन्दी कृष्ण भक्त कवि भी बाळ्यारों की तरह जीव और ईश्वर के बीच अंध-अंधी सम्बन्ध को मानते हैं। कविवर मुरारि जी का मत है कि ब्रह्म ही अपने बिम्ब अथ से अनेक जीव रूप में स्थित है। जीव और ईश्वर की अद्वैतता का भाव मुर ने कई स्थानों पर व्यक्त किया है।^२ मुर ने जीव को भगवान् की चेतन-प्रतिमा का ही स्वरूप माना है। एक ही भगवान् की ही चेतन-प्रतीति बट-बट में व्याप्त है। मुर कहते हैं कि समस्त तत्त्व प्रकृति पुरुष वैराग्य तथा सम्पूर्ण जीव योपास कृष्ण के अंध हैं।^३ स्पष्ट है कि मुर ने ईश्वर और जीव के अंधी-अंध सम्बन्ध का समर्थन किया है।

भीकृष्ण का मत रूप जीव इस संसार की माया में पड़कर अपने सत्य स्वरूप को भूल जाता है। वह भ्रम और अविद्यावश अपने ईश्वरीय अंध-रूप सत्य रूप को बिस्मृत कर इष्टिम वर्म आदि को अपनी आत्मा का वर्म समझने लगता है। यही भ्रम उसके दुःख और राग द्वय का कारण है। मुरारि कहते हैं—'जीव का दुःख मूल तो तनु के संघ होता है। जानी जीव अपने को अस्थिर मानता है। जीव कर्म बन्धन में पड़कर अनेक घरीर धारण करता है। अज्ञानी धन वैश्यों को देखकर भुलाने

- १ "इर्बयम्मे नस्त इर्बयम्मे तीय
इर्बयम्मे तीय धर्मिन्नुम-इर्बयम्मे ताम
एमान धर्मिन्नु नीयन्नीयम् इर्बयम्मे
एमान धर्मिन्नु एन ?"

—पेरिय तिरुमन्नादि ३

- २ 'सहस्र रूप बहुव्यय पुनि एक रूप पुनि बोय।

—मुर सारावसी मुरसागर (बै प्र०) पृ १४

- ३ 'सकल तत्त्व ब्रह्माण्ड देव पुनि माया सब बिधि काल।

प्रकृति पुरुष भीषति नारायण सब हूँ भंज पुपाल।

—मुर सारावसी, (सु० सा० बं० प्रे) पृ० १८

में पड़ जाता है। परन्तु शारीरी शरीर के भेदों को नहीं मानना सब जीवों को एक रस मानता है। आत्मा तो अशरीर और अविनाशी है, उससे लिए सबसे बड़ी फौसी महंता, ममता ही है।^{११}

मूर कहते हैं— ईश्वर के अंग रूप जीव का स्वल्प पाँच भौतिक शरीर नहीं है। ईश्वर के समान ही वह जीव निम्न है और अन्त-मरण के बन्धन में नहीं पड़ता है। जीव चेतन है वह प्रत्येक घट में है। घट उत्पन्न होते हैं और फिर नष्ट हो जाते हैं। किन्तु चेतन जीव निरन्तर रहता है, जिस प्रकार प्रत्येक घट में सूर्य का प्रकाश रहता है, परन्तु उस घट के नष्ट हो जाने पर सूर्य नष्ट नहीं होता वह निरन्तर ही रहता है। ईश्वर का अभिन्न अक्षर रूप भी है बड़ी सब घटों में एक रूप से स्थित है। जो आत्मा इन्द्रियाँ को चेतन करती है वह ईश्वर का ही रूप है।^{१२}

मन्दरास ने जीव को ब्रह्म के अंग-रूप में मानकर एक पद में कहा है—
“अप्यक्त-अप्यक्त वा अनुपम विद्वद्भिर, उसमें क सब भूतों के तुम विस्तार हो। तुम सब के परमेश्वर और स्वामी हो। समस्त विद्वद्भिर तुम्हारे हाथ है। तुमसे हम सब उठी

१ जिस करि कर्म अन्त बहु पाव । किरत-किरत बहुने मम धावे ॥
प्रह प्रहृ न कम परिहरे । पावे पावो फिरिबो टरे ॥
तन स्मृत प्रह दूबर होई । परमात्म की पै नहि रोई ॥
तनु मिथ्या उन भगुर जानी । चेतन ओव सब बिह मानी ॥
जिम की मुक्त-मुक्त तन तन होई । जो बिबरे तन के सब सोई ॥
बैह मिमानी जीर्णहि जार्न । शानी तनु अमिप्त करि भाग ॥

× × × ×

जीव कर्म करि बहु तन पावे । प्रमानी तिहि बैलि मुक्तार्थ ॥
शानी सब एक रस जानै । तन के भेद भेद नहि मानै ॥
धाम अजन्म सब अविनाशी । तारो बैह-भोह बड़ जानी ॥

—मूर सागर ११४ पद सं० ४११ पृ० १२३ १२४

२ (क) चेतन घट-घट है या भाइ । उची घट-घट रवि प्रभा सखाइ ।
घट उचल बहुरो नहि जाइ । रवि निन रहे पखही भाइ ॥

—बड़ी पद सं० १२४, पृ० १३४

(ग) अनिर अक्षर रूप मम जान । जो सब घट है एक लमान ।
मिथ्या तन की मोह बितार । जाहु रही भारे गृह-बार ।
करत इष्टमनि चेतन जोइ । मम स्वल्प जानी तुम सोइ ।

—बड़ी, पद सं० १२४ पृ० १३२

प्रकार उत्पन्न होते हैं जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग उत्पन्न होते हैं । मैं तुम्हारा बाप हूँ । मेरा धर्म तुम से है ।”^१

परमानन्ददास भी ईश्वर-बीज की अद्वैतता और उनका धंधी-वंश सम्बन्ध मानते हैं । वे कहते हैं— भोमों ने अपने अंधी गोपास की स्मृति मुझा दी और उन्होंने संसार को ही सत्य मान लिया है । जो योयी हैं वे योपाभ्यास करें, ज्ञानी ज्ञान करें कर्ममार्गी कर्म में लगे किन्तु हमारा वचन तो अपने गोपास का गुरुगान करने का है ।^२ इससे ईश्वर-बीज की अद्वैतता और उनके धंधी-वंश सम्बन्ध का भाव प्रकट होता है ।

एक स्थान पर मीराबाई ने भी बीज और ईश्वर की अद्वैतता स्वीकार कर कहा है—

“तुम बिच हूँ बिच धरतर गछी जैसे सुरज घामा ।”^३

मीरा ने आत्म-समर्पण और आत्म-विस्मृति के द्वारा अपने इष्ट की सहानुभूति को आमन्त्रित करते हुए उस जगत् तक पहुँचने का प्रयत्न किया है । मीरा के अनेक पदों में बीज को परमात्मा से मिलने की तीव्र आकांक्षा प्रकट होती है—

‘प्रभु बी से कहीं पया नैहवा लगाय ।

×

×

×

मीरा रे प्रभु कबरे मिलोये ये बिच रह्या न जाय ।”^४

१ (क) व्यक्त-अव्यक्त को बिस्व प्रभु, वेद वस्तु प्रभु तुम्हरो क्य ।

तुम सब सुतनि को बिस्तार, देह प्राण इन्दी प्रहंकार ॥

—नन्ददास पदम स्कन्ध पृ० २४१

(ख) तुम परमेश्वर सबके नाथ, बिस्व समस्त तिहारे हाथ ।

तुम त हम सब उपजत ऐसे, धनित ते बिस्फुरित गन जैसे ॥

—बही पृ १०८

(ग) अब कहत कि हों तुम्हरो बेरी तुमते प्रपठ जनन यह तेरी ॥

—बही पृ १११

२ माई हों अपने गुपासहि पाऊ ।

तुम्हरे स्थान कमल दल लोचन देखि-देखि भुज पाऊ ॥

के ग्यामी ते प्यान बिचारी के भोगी ते भोग ।

करमठ होई ते करम बिचारी के भोगी ते भोग ॥

×

×

×

अपने धन की मुक्ति राजी है मांगि लियौ संसार ।

परमानन्द भोक्तुन मपुरा में बन्धी न यह बिचार ॥

—परमानन्द सागर, पद सं० १०२, पृ० ३१८

३ मीराबाई की परावसी (सं० परमुरान कानुबेदी) पद सं० ११४, नवी संस्करण

४ बही (" ") पद सं० १४

जगत्

आल्लवारों के जगत् विषयक विचार

आल्लवार भक्तों ने अपनी रचनाओं में इस बात को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है कि यह जगत् जीव तथा सम्पूर्ण वैश्वव्यापक परब्रह्म के ही अंग हैं। उनके अनेक पदों में परब्रह्म के अंग-रूप जगत् की उत्पत्ति के विषय में विस्तार से कहा गया है। सम्माळ्वार कहते हैं— समस्त देवता समस्त जीव सम्पूर्ण जगत्, वायु, आकाश आदि को अपने अंग-रूप में रखने वाला ब्रह्म से बढ़कर और कौन-सा देव हो सकता है ? १” अथवा सम्माळ्वार कहते हैं— हे भगवान् ! समस्त जगत्, वायु आदि को अंग रूप में रखने वाले महान् से महान्, तुमने कैसे मेरे अस्त-व्यस्त में बान कर लिया ? २”

कई स्थानों पर आल्लवार भक्तों ने ईश्वर का ही इस जगत् का निमित्त और उपादान कारण कहा है। सम्माळ्वार कहते हैं— हमने पहले (अति प्राचीन काल में) कोई जगत् नहीं था न कहीं जीव था। वेबन ब्रह्म ही था। ब्रह्म को अपनी सीमा के विस्तार की इच्छा हुई तब उगने ब्रह्म की उत्पत्ति की—(विष्णु ब्रह्म के नाभि कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ)। ब्रह्मा ने अग्न देवों टीना सोऊ (जगत्) आदि की सृष्टि की। ३” तिरुमयिरी आल्लवार ने भी यही कहा है कि ब्रह्म ने सृष्टि-विक्रम की

१ 'पावर्ण्युलकमुम पावकम धरुण्ड
नितम श्री ती काम पुडिरिबिगुमुमुम
मतर पुडर निरुपुम बिरिगुडन मयंक
श्रीह पोवळ पुत्तुगिन्नी मुळुबनुम
धरुण्ड करन्नु श्रीरामिर्न सेर्त्त एम
वेरुमार्नयस्ताडु श्रीह मावेइवम
मडुवयमोपाये ?

२ पुबिपुम इव बिगुमुमुम निद्रकत जीयने
सेबियनबळि पुडुन्नु एन्नुग्याय-यबिगिडु
यान वेरियन श्री वेरिर् एन्नुवर्नपाररिचार ?

३ पावर्ण्युलकमुम पावकमित्ता
मेरुवम वेरुप्पाळ कालत् इम्पशोत्
केस्ताम धरुम्पेरल तनि वित्त श्रीरुना
माडी देइव ताम्पुयम् कोळ मुळ
इन्नु मुक्कपोवनोडु तेनुवतनुतनी
मूवन्नरुम रिर्त्त उत्तो
मायवन्नकुळ कामवन्नदिये ।

— निरुवाचिरियम् पद ७

— वेरिय तिरुवन्नादि ७१

— निरुवाचिरियम्

इच्छा से ब्रह्मा की उत्पत्ति की, जिसने ब्रह्म के आवेश पर समस्त जगत्, सब भादि की सृष्टि की।^१ ब्रह्म और जगत् की जड़ता को स्पष्ट करते हुए तिरुमयिर् आठवार ने कहा है—‘तुम्हीं जगत् हो जगत् तुम्हीं में है। तुम्हीं देवों के अधिपति हो। तुम्ही मायु, मणि बिद्या आदि हो।’^२

गम्माळवार कहते हैं—‘ब्रह्म ही इस जगत् का उत्पन्न इसका पालन और संहार करते हैं।’^३ योगी आठवार का कहना है कि ब्रह्म जगत् की रक्षा इस प्रकार करता है, मार्गों कोई वस्तु पेगी के अन्तर सुरक्षित हो।^४ गम्माळवार ने एक पद में जगत् और ब्रह्म की जड़ता को बहुत ही स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि भगवान् ने अपने अन्तर ही इस विद्यामय जगत् की सृष्टि की जिस कारण उस परमज्योति की जामा समस्त जगत् में व्याप्त है।^५ एक अन्य स्थान पर गम्माळवार कहते हैं—‘हे भगवान् ! तुम्हीं इस जगत् का आधार हो तुम्हीं जगत् हो जगत् के प्राप्ति तुम्ही हो।’^६

जगत् सम्बन्धी आठवारों के विचारों से यह विदित होता है कि उन्होंने

१ ‘नाम्मुच्चनै नारायणत् पडैस्तान्नाम्मुच्चनुम
तान् मुच्चमाय चंकरनेस्तान् पडैस्तान्’ १” —नाम्मुच्चन तिरुमयिर् १

२ ‘नीये उल्लेस्ताम् निम्नच्छे निर्पन्नुम
नीये तवत्तवेचनुम—नीये
एरिबुडवम् पाल वरनुम एन विरीयुन मण्डल
इदबुडवमाय इवे ।” —वही २०

३ ‘पौन्नुमुच्चनुम पडैतलितलित्तुम
पोन्नु मुच्चवन् एम्मवन् ।” —तिरुवायमोळी ५४२

४ ‘पुनमेय मुच्चित्तन—तनमाक
पेरकलनुच्चोच्चनुम पेरारमार्बनार
घोरकलत्तु उन्नत्तु ।” —मूट्टाम तिरुमयिर् ४३

५ ‘परंज्योति नी परमाय निन्निकम्पु पिन मन्नेर
परंज्योतिपिन्पिन पडिपोलि निरुक्कम्पु
परंज्योति निन्नुन्ने पडव्वरुम पडैत एम
परंज्योति । गोविन्दा । पन्नेरवक्कमोडुंने ।” —तिरुवायमोळी १११

६ ‘उत्तप्पिन् तिरियुम वळ्ळिकत्तियाम् उत्तप्पाम्
उत्तबुवके घोवियवामाय ।” — — — — —
—वही १-२-७

जगत् को सत्य और नित्य माना है।^१ चूँकि जगत् सत्य और नित्य ब्रह्म का अंश है, अतः वह भी सत्य और नित्य है।^२

आष्टधार मन्त्रों ने जहाँ इस जीवन को अनित्य तथा माया से युक्त कहा है, वहीं उनका अभिप्राय जगत् से मर्त्य संसार से है। आष्टधार मन्त्रों ने जगत् और संसार का वास्तवीय ढंग से कोई भेद नहीं किया है। बस कि मूल आदि हिन्दी-मुष्ण मन्त्र-कवियों ने जगत् और संसार का भेद स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। परन्तु उनके विचारों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने जगत् और संसार का भेद अवरुद्ध माना है। जहाँ वे जगत् को ब्रह्म का अंश मानते हैं वहीं उनका अभिप्राय नित्य और सत्य जगत् ही है और जहाँ वे अनित्य माया प्रभावित जगत् का वर्णन करते हैं, वहीं उनका तात्पर्य संसार से ही है। संसार की अस्थिरता और अस्थिरता का कवियों ने वर्णन किया है। अज्ञान के कारण माया के बंध होकर संसार को जीव नित्य मानता है और उसे ही आनन्द-निकेत मान लेता है। वह भ्रम में पड़ा रहता है। मन्माष्टधार कहते हैं—'हाय ! मैं क्या कहूँ इस संसार की 'वृत्ति' के विषय में। जगत् के सृष्टा एक मात्र धनवान् के होते हुए भी उसका स्मरण न करके साग अपने अल्प ज्ञान (अज्ञान) से हत्या भ्रमचार आदि शूर हाथ कर सर्वथा सुख-दुःख की भिन्ना लिये माया के बंध में होकर भ्रम में पड़े रहते हैं।'^३

कुलदेवताष्टधार कहते हैं— इस भिन्नापूर्ण सांसारिक जीवन को छोड़कर और सत्य मानकर इस संसार में जीव रहने वाले लोगों से मैं संगति नहीं करूँगा।^४ तौडरदिपोरी आष्टधार का कथन है— सत्य को भूम कर (मायाबन्ध) मर्त्य के मोह जाल में पड़कर भिन्नापूर्ण इस संसार को सत्य मानकर मैंने समय नष्ट किया। मेरे स्वामी ! अब केवल आपके अनुग्रह की आशा रखकर आपसे पास आया हूँ। मैं कूटा

१ "The Philosophy of Saraxopa —R. Ramanujachari

Annamalai University Journal 1933 p 20

२ हमरथ रहे कि आष्टधारों ने जगत् को सत्य और नित्य माना है जब कि भी शास्त्राचार्य ने जगत् को निष्ठा कहा है। (अपभ्रंश) शब्द के मायाचार का अर्थ करने वाले परवर्ती सभी आचार्यों ने आष्टधारों के अनुसृत विचार का ही समर्थन किया है।

३ "ओ ओ ! उत्तमतिथिः । इन्द्रोत्तरिक
मर्त्योत्तरिकी वीरतिरन्तु जगुमिन्तु
तदन्तु तेन्तु उत्तमतिथिः मर्त्योत्तरिकी
निर्गुणोत्तरिकी देविकी देविकी तदन्तु " ।
यस मायाबन्धो मानसिको

—विश्वामित्रचरितम्, ९

४ "मेधित्वा बाल्यकर्म मेधित्वाकौस्तुभ इत्
वैद्यस्तन्मोक्षं कुरुवतिस्ते मान ।"

—परमाष्ट विष्णोटी, १ १

है, मैं भूटा हूँ ।”^१ तिरुमल्लिच आठवार ने कहा है— यह संसार अनित्य है । नहीं कोई वास्तविक सुख नहीं है । मामावस बीच इस सांसारिक सुख को स्थायी सुख समझ बैठता है । यह जानकर भी कि आज नहीं तो कल इस संसार को अवश्य छोड़ना ही पड़ेगा भूखें मनुष्य क्यों इस देह के मोह में पड़े रहते हैं ?^२ तिरुमल्लिच आठवार ने इस संसार के माया-मोह से अपने को बचाने का आदेश दिया है ।

आमोष्यकालीन हिन्दी-कृष्ण-भक्त कवियों में सूर जाति ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह जगत्, बीच सम्पूर्ण देव आदि योपान के घंघरू हैं ।^३ सूर के अनुसार इस जगत् का सर्जन इसका पालन और सहार ईश्वर ही करते हैं । वे कहते हैं कि ‘यह जगत् सगळे इस प्रकार मिळता है और इस प्रकार जगही से समा जायदा जैसे पानी का झूलझुला पानी से ही बनता है और पानी में विजीत हो जाता है ।’^४ इस प्रकार अनेक पदों में सूरदास जी ने जगत् के घंघरू रूप जगत् की सत्यता का प्रतिपादन किया है । कई स्थानों पर उन्होंने ईश्वर को इस जगत् का निमित्त तथा संपादन कायस्थ बताया है ।^५

सूर ने जगत् और संसार में भेद दिखाया है । वहाँ के जगत् को सत्य और निरय मानते हैं, वहाँ के संसार को मिथ्या मानते हैं । सूर ने कहा है—

१ मेय्येत्ताम पीकबिदु बिरिकुत्तारिणपदु
बोय्येत्ताम बोदिमु बोध पोन्नकनेन वन्नु निम्बु
ऐयनै । धरंपने । जप्पन्नुमैमुनाई तमाल
पीय्यनेन वन्नु निम्बुने पीय्यनेन पीय्यनेन ।^६ —तिरुमार्ग ११

२ इण्डु आदल निम्बु बारस धन्निमासुन बीकलु
घोम्पु निम्बु बाळलनिर्नै कण्डुम नीवर एन कोतो ?
वन्नु बारळलान पावबोदैयोम्पु वाक्कि नेल
वेम्बु वेम्बु देवराय इवत्तिक्ताद वन्वने ?^७ —तिरुक्कम्पविदित्तम ६६

३ सकल तत्व बाळाल्ल देव पुनि माबा तव विनि काल
प्रकृति पुस्य भी वलि नारायण तव है धंसा गुपल ।
—सूरदासर सूर साराबमी (बै० प्रे०) पृ० ३८

४ प्रभु तुव नम तमुनि नहि वरै ।
जव तिरजत बालत सहारत पुनि क्यों बहुरि करै ॥
क्यों पानी में होय बुबबुबा पुनि ता जाहि तमाइ ।
त्योंही सब जग प्रपन्न तुम तैं पुनि तुम जाहि विस्ताइ ॥
—सूरदासर (बा प्र० घमा) पद सं० ४६२० पृ० १७११

५ नम पुत्र तू बैलि बिचार, कारण करन हार करतार ।
—सूरदासर (प्रथम स्कन्ध) में प्रे० पृ० २१

‘निध्या यह सत्ता घोर निध्या यह माया ।
निध्या है यह वैह कष्टो क्यों हरि बितराया ।
तुम जाने जिन जीव सब उत्पत्ति प्रलय समाहि ।
दरम मोहि प्रभु राखिये बरस कमल की छाँही ।’^१

भूत सत्ता मन और माया की करतूत है । एक पदम मूरदास जो कहते हैं— ‘हे माधव ! मेरा मन सब प्रकार से पोष है । यह अज्ञान मन मबिया-अव्यकार में पड़कर अनेक प्रकार के विषय कृत्य करता है । उक्त य मायिक कृत्य ऊपर से बड़े रमणीय संसार के फूल के गमान सुन्दर और रंगीत भाव होते हैं, परन्तु अन्तुत है ने सारहीन और दुःखदायी । यह मन दुःख-कूप में गिरता है । इसको करतूत का कहीं ठक बयान करे । हे प्रभु ! आप ही इसका उद्धार कर सकते हैं ।’^२

मन्ददास ने भी ब्रह्म और जगत् की अर्द्धता को मानते हुए ब्रह्म को ही जगत् का निमित्त और उत्पादान कारण बताया है । वे कहते हैं— ‘जो ब्रह्म अतिर्मय और अव्यय है, वही अमर रूप से जगत् का उत्पादान कारण है और वही उसका करने वाला निमित्त है ।’ ‘दशम स्कन्ध भाषा’ में मन्ददास कहते हैं— ‘हम जगत् का आधार ब्रह्म की सत्ता अवस्था मन्त्रक है, जब यह जगत् ब्रह्म की माया में लीन हो जायगा तब तब समस्त केवल एक ब्रह्म हो रह जायगा ।’^३

मन्ददास ने जगत् और संसार में मय माना है । सत्ता निध्या है और अनित्य

१ मूरसागर (दशम स्कन्ध—वै० प्र०) पृ० १२८

२ भाषी ब्रह्म मन सबही विधि बोध ।

धति उन्नत निरुक्त, मंगल, विन्ता-रहित अतोष ॥

नहायुक्त अज्ञान तिमिर नहै, जगत् होत भुक्त भाषि ।

तेली के कृष्ण लो नित भरमत्त, मज्जत न सारगपाणि ॥

×

×

×

क्यों कपि सीत-हरण-हित पुँवा निमित्त होत लोनीन ।

एवौ सत्त बुधा तज्जन नहि बचहूँ, रहत विषय-पाषीन ॥

सेमर बुत नुर्य धति निरसात, मुक्ति होत लग-भुष ।

परसत बौध भुक्त उन्नत भुक्त बरत भुक्त क बुध ॥

×

×

×

घोर कहीं लो बहो एक भुक्त या मन क हृत्त काज ।

मूर पतिन भुक्त वलित-उपारन, एही विरह की लाज ॥

—मूरसागर (ना० प्र० मभा), पद मं० १०२, पृ० ११

३ मन्ददास उन्मादली (दशम स्कन्ध—भाषा) ना० प्र० सभा

है। अन्तर्हि 'विद्वान्त पंचाध्यायी' में संसार को बहाने वाली वाय तथा प्राण बँटने वाला पंचा कहा है।^१

आठवारों के उपरान्त जगत् और संसार में स्पष्ट विवेक ब्रह्म-सम्प्रदाय के कविओं ने ही दिया है। अन्य सम्प्रदाय के कविओं में यह भेद स्पष्ट नहीं मिलता। साधारणतः संसार की भाँति सभी में जगत् और संसार को पर्यायवाची माना है और उसकी नग्नता अछाया और मिथ्यात्व का वर्णन किया है।

राधावल्लभीय-सम्प्रदाय के कवि हरिराम व्यास ने लिखा है।

‘एक एकरे सब जग भूयो।

माया रचित प्रपञ्च कुटुम्ब की मोह-आल सब भूयो।’^२

स्वामी हरिदास लिखते हैं—

हरि को ऐसी ही सब जेत।

‘भूय तृष्णा जग व्यापि रह्यो है कहुँ बिजौरो न जेत।

जनमद ओवनमद राममद ज्यो बँझि में जेत।

कहु हरिदास यहै जिय जाली तीरप को सी जेत।’^३

माया

आठवारों के माया-विषयक विचार

आठवार मछों में दो प्रकार की माया की बर्णना की है। एक भगवान् की शक्ति स्वक्या माया है। भगवान् की वही माया सृष्टि (जगत्) का कारण है। एक दूसरी माया है जिसके अन्तर्गत जीव है। भगवान् उस माया के अधीन नहीं हैं जो माया भगुण को अपने बन्ध में कर लेती है। इस माया से जीव संसार में बेचता है। यह भगवान् की माया से भिन्न है। आठवार मछों ने माया के इन दोनों भेदों के सत्य-असत्य नाम नहीं दिये हैं। परन्तु परवर्ती व्याख्याओं ने (ब्रह्मसूत्रों) इसी को ‘विद्या माया’ और ‘अविद्या माया’ की संज्ञा दी है। आठवार मछों ने कुछ पदों में विशेष रूप से सृष्टि विकास के प्रसंगों में भगवान् की शक्ति स्वक्या माया का उल्लेख किया है। अविद्याय आठवारों ने भगवान् को अनेक स्थानों पर ‘मायन्’ अर्थात् ‘माया मय’ कहकर भक्ति-भाव से पुकारा है।

नम्माळ्वार कहते हैं— ‘जब कोई जगत् नहीं था कोई जीव नहीं था केवल ब्रह्म ही था, तब ब्रह्म ने अपनी शक्ति स्वक्या माया से प्रेरित होकर सृष्टि विकास के

१ बड़े आठ संसार पार जिय कन्ने कञ्जन

परल लक्षण कचना करि प्रकटै श्रीनन्दनम्बन।

—विद्वान्त पंचाध्यायी नम्बदाय मुक्त पृ० १११

२ व्यास वाली (उत्तराख) पृ १११

३ निम्बार्ड आपुरी, पृ० २०४

हेतु पहले प्रह्ला की उत्पत्ति की, जिसने समस्त जगत् और जीव की सृष्टि ब्रह्म के आदेश पर की। वही 'माया युक्त' बाबि देव ही मेरे स्वामी हैं।^१

तिरुमल्लिचै आळ्वार कहते हैं—“हे भगवान् ! तुम बाबि देव के रूप में ज्योति रूप में उसके तप्य रूप में वेद रूप में आकाश के घाम पृथ्वी के रूप में गोपालक के रूप में न जाने कितने रूपों में तुम दृष्टिगोचर होते हो। यह कैसी है तुम्हारी माया ?^२ गोपालक के रूप में गोपिका के प्रेमी के रूप में देव और मनुष्य के रूप में तुम जाये हो। हे माया युक्त ! तुमने सर्वत्र अपनी माया को ही बसाया है।^३ तिरुमल्लिचै आळ्वार सम्मन कहते हैं—“हे भगवान् ! तुम पृथ्वी में हो आकाश में हो हमारी चिन्तन-शक्ति की पकड़ में नहीं आते हो। तुम्हारे यह कैसी माया है ?”^४

गम्माळ्वार कहते हैं—“हे ठीका भोका को मापने वाल भगवान् ! तुम्हारी विचित्र माया शक्ति के पतस्वरूप उत्पन्न में तुम्हीं से अपने पाप-दोषों को दूर कर

- १ ‘यावत्कृतकमुप यावद्विस्तार
मेस्वरुप वैष्णवात् कातत् इदंपीडु
केस्वाम्य धरुप वैरुप तनि वित्त घोष्ठा
नाकी वैरुप माम्बुलकोमुमुळ
ईप्पु, मुक्कळीचनोडु देवुवतनुतली
मुवततुम विळैल जन्ती
माम्बुकडुपुळ माम्बुलविमै ।’

—तिरुवाचिरियम्, ४

- २ “आदिमादि भी ओरुण्डमादिपातलात्
ज्योतिपाद ज्योति भी धनुर्मेविल चिर्मेरिनाय
वेरुमाकी वैत्तिवराही विम्बिलोडु मन्नुमाय
आदिपाही आयनाय मायम एन्न मायमै ?”

—तिरुवन्मदिरुत्तम ३४

- ३ आयनाकी आयरमंगेवेय कोल विदम्बिनाय
आया । निम्बेवावर वरुतर ? अवरलोडु इम्परमाय
माया । मायमार्ग कोल । अन्गुरी भी वनुत्तमुव
माया मायमादिनाय उन मायमुटुम मायमै ।’

—वही, ४१

- ४ “मन्नुडाय कोल ? विम्बुडाय कोल ? मन्मुळ जयकी निगु
एन्मुमेम्बकम्बुडाय कोल । एन्न मायमै ?”

—वही, ४२

घरलु मे लेने की प्रार्थना करता है। 'सुख-दुःखपूर्ण संसार स्नेहपूर्ण बरक, मानव पूर्ण स्वर्ग' नामा जीव आदि विविध सृष्टि रचकर देख ही तुम बिछाते हो। तुमही माया विविध है।'^१

आठवार भक्तों ने जिस दुसरी माया की चर्चा की है, वह जीव को भ्रम में डालने वाली है। यही माया जीव को लौकिक विषयों में फँसाकर उसको भ्रम में डालती है। म्यामोह द्वारा जीव छोड़ मोह मुक्त-मुक्त राव-रूप आदि भावों की सृष्टि में भ्रमता है। इसी माया को यौ ब्रह्ममाकार्य श्री ने अविद्या माया कहा है और उसका अनेक नाम दिए हैं; जैसे—अज्ञान अम्यास भ्रम स्वप्न आदि। आठवार भक्त ने इस अविद्या सृष्टि माया का बहुत विवरण किया है। यही माया जीव को अनेक त्रास नवाती है और उस जीव से भ्रमपूर्ण संसार की सृष्टि कराकर दुःख-माल में उसे बाँधे रखती है। नम्माळ्वार कहते हैं—'अज्ञान के कारण मैं सदा बैठा था कि सब कुछ मैं हूँ, सब कुछ मेरा ही है। मैं अपने वास्तविक स्वयं को भी मूल नया था।'^२ अर्थात् समस्तत्मक संसार की सृष्टि करने वाली माया का वर्णन वैसा कि नम्माळ्वार ने किया है, अन्य आठवार भक्तों ने भी किया है। इस माया को कहीं-कहीं सब को भ्रमाने वाली मिथ्या में मोह उत्पन्न करने वाली बताया है। इस माया के अनेक रूप हैं; जैसे—जन की मूर्खता दुष्ठा समझा मोह, अहंकार, काम-क्रोध, लोभ तथा अनेक मानसिक विकार। इस माया के विविध रूपों का आठवारों ने वर्णन किया है और कहा है कि अन्य अति बड़ा मयबनुमह से ही इस माया से जीव छूट सकता है। ब्रह्मपूर्ण जीवन से भी इस माया के फन्दे से कोई बच सकता है।

नम्माळ्वार कहते हैं—'नया नहीं, माया-अन्य इस संसार के विषय में। समस्त जगत् की सृष्टि कर उसका पालन करने वाले सर्वसत्त्वमाह् मयवान् का

१. 'ब्रह्माजीवकल्लममबाधना। नित
पन्मामाय वस्त्रिपरविमित वडिक्किम्पु पाल
तोम्मावत विर्नसोडर्कळ' मुरलरिम्पु
निम्मात्ताळ वेम्पु निर्बन्तु एंवान्नु कोत्तो ?'

—तिरुवायमोळी १-२-२

२. 'तुम्पुमुम इन्पुमुमाकिण् वैडिर्नमाय उन्नककनुमाय
इन्पमित वेन्नरकाकी इन्पि नन्वान स्वर्कळुनाय
नन वन्नुविरकळुनाय पन्न-वत मायनयवन्नुकनाळ
इन्पुक्क इन्पिळ् वाट्टे उडयार्न वैडु एन्नुव वस्तत्तिमने ।'

—वही १-१०-७

३. 'याने एम्मे वरियकित्तले
याने एव तन्ने एन्डिक्कोन ।'

—वही, १-२-६

स्मरण नहीं कर जीव अपने अस्पृशान (अज्ञान) के कारण द्रव्या अस्वाचार आदि कृत्य कर सुख-दुःख की चिन्ता सिये माया के बरा होकर माना में ही मटकते फिरते हैं ।^१

विरमर्शगी आलस्यार का कथन है— 'माता-पिता परात्री सम्मान आदि क मोह पाप में पड़कर मैंने कष्ट भोगा है । मृगतममिया के मोह-वास में पड़कर मैंने मसार में हो नरक पहुँचाने योग्य माना पाप-कर्म किये हैं ।^२ माया-अन्य इस मसार में मैं सम्पत्तीन भटकता रहा । सज्जनों से कोई हितवचन बोस नहीं सका । अज्ञान में पड़े मैंने बासर के रूप में कई मिश्रणीय कार्य किये हैं ।^३ अब मेरे लिए कोई सहारा नहीं है । पाप ही पाप करके मैं महापापी बन गया । हे मामामय मासक ! तुम्हीं मुझे अपनी चरण में से लो ।'^४ विरमर्श आलस्यार भाग उपदेश दत्त हैं— संसार क प्रतिपाद्य (जो भाष पहुँचाने वाला मोह है) छोड़कर भगवान् की भक्ति में लीन हो जाओ ।^५

बेइशम वेधुतल तनमनु
पुस्तारिबार्थ्य पोटनारकास्टी
कोस्वन मुबसा अस्तनपुयसुम
इनपवेइर्क इन्पुग्यछी
तोम मामापप्पिरबिपुल नींका
पस्मामापतळ शुमानसित्तै ।'

१ "ताये तर्त्तियेम्पु म तारये किळ मरळ्ळैम्पु म
मोये पट्टोळ्ळिन्नेन" ...

—विष्णाचिरियम्, ६

२ "मानेय कम्मइबार मपरिकल पट्टु मानिसल
माने मानबिप मरकम्, पुट्टु पावम् बेइतेने ।'

—नेरिय निरमाळी १६१

४ "पट्टु ल ओम्पु मिसेन पावये बेइनु बाबियानेन
मट्टु लोम्पुट्टिरियेन मायने । एंऊळ मापवने ।"

—वही १६२

पट्टु म अत्तईमन अडियेने छाट्कोळ्ळट्टाये ।

५ "नागामान बावम् बिट्टु मन्नेरि मोरनजुरिल
बावम्पन्नु पुट्टापान बवरी वम्पुनुमे ।

—वही १६६

मम्माळ्वार कहते हैं— 'विचित्र है इस माया-बन्धु ससार की हालत । कुरे लोय सुख भोगते हैं और बन्धु सोग दुःख भोगते हैं और यह ससार सन्हीं को नामा कष्ट पहुँचाता है ।' १ 'आमोद-प्रमोद को धम को स्त्री-सुख को, जीवन को नाशवान् देखकर भी यह सांसारिक जीव मोहबन्धु कुछ समझ नहीं पाता ।' २ इसी प्रकार अन्य आठवार भक्तों ने भी अविद्या ब्रह्मणी माया का जो जीव को भ्रमपूर्ण ससार की सृष्टि कराकर अनेक दुःख-आल में बन्धे रखती है बहुत विवरण किया है ।

आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने माया के विषय में जो विचार प्रकट किये हैं वे आठवारों के विचारों से बहुत मिलते-जुलते हैं । सूरदास मन्दास आदि अष्टसप्तो कवियों ने आचार्य बल्लभ के अनुसार माया के दो भेद—विद्या और अविद्या—माने हैं । विद्या माया ब्रह्म की बलवर्तिनी एवं शक्ति है । उसके द्वारा ब्रह्म समस्त जगत् का निर्माण करता है । अविद्या माया जीव को काम क्रोध मोह मोह आदि के द्वारा बन्धुमूढ कर उसे पर भ्रष्ट करने वाली है । सूरदास और मन्दास ने माया के दोनों रूपों का विवरण किया है ।

विद्या के स्वस्व को स्पष्ट करते हुए सूर कहते हैं—

बहुिर जब हरि की इच्छा होय ।

देखै माया के बिसि जोय ।

माया सब सबही उपचार ।

ब्रह्म तो पुनि सुखि उपार ।

मन्दास विद्या का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

तो माया जिनके धर्मीन रहत मृषी बस ।

विश्व प्रभाव प्रतिपाल प्रत्यकारक भाषुस बस ।

अविद्या माया का वर्णन हिन्दी भक्त-कवियों ने विस्तार से किया है । यही माया जीव का भ्रम-आल में बन्धे रखती है । उसका बाह्य स्वस्व आकर्षक है, परन्तु आन्तरिक रूप असत्य है । उसकी सबसे बड़ी शक्ति यह है कि वह जीव को अपने पास में बन्धु मेली है, जिससे छूटना असम्भव कठिन हो जाता है । केवल भगवान् की हृपा से ही उसका प्रभाव छूट सकता है ।

सूर ने इस माया का वर्णन निम्नलिखित पद में कि सुन्दर ढंग से किया है—

- १ 'नम्रगुणस्तार भुक्त्वन्ति नम्रगुण करन्तेक
एकवारत्त वर बिर्लै कृष्ण इवैयैन् चलकियर्क ?

—तिरवायमाळी ४-६ १

- २ 'कोष्ठाददुम कुलम् पुनैपुम तमबद्धार बिळु नितिपुम
बन्धार पु पुञ्जलाळुम मनीयोळिय माहतल
कब्धाडुन उत्तकियर्क कडस बन्धा ।'

—वही ४-६ १

बिजली सुनी बीज को बिज दे, कसें तुम गुन गाव ?
 माया मटी लकड़ि कर सीधे कोटिज नाच नचाव ।
 बर-बर लोम सापि लिये डोलति भावा स्वाम बनाव ।
 तुम ली कष्ट करावति प्रभु जू मेरी बुधि भरमाव ।
 मन अविज्ञान-तरंगनि करि करि, मिथ्या निता बचाव ।
 तोबत तपने में बन्धी सपति, लयी दिखाव बीराव ।
 महा मोहिनी मोहि भ्राममा, प्रपचारपहि सपाव ।
 क्यों हुती पर-बधू मोरि के ल बर-भुवय बिसाव ।
 मेरे तो तुम बति तुमहीं गति, तुम समान को पाव ?
 सुरदास प्रभु दुम्हरी कृपा बिनु को ली बुझ बितराव ।^१
 मूर ने इस भाषा को निपुणारिका कहा है—

भावा की विपुलात्मक भावो । लत-रज-लम लाके गुन भावी ।
 लिन प्रबलहि महत्त्व जपायो । तले अहंकार प्रगटायो ।
 झूँकार बिपी त्रिनि प्रकार । लत ले मन सुर सात बकार ।
 रजगुन से इश्रिय बिस्तारी । तमगुन ल तम्माबा सारो ।
 लिनत पंचकल जपजायो । इन सबको इक धंज मजायो ।
 × × ×
 'बहु धंजा चेतन नहि होइ । कष्ट हुआ सो चेतन होइ ।
 तारें लक्ति भावनी घरी । कष्टवादि इजोय बिस्तरी ।
 चोइह मोट मये ता नहि । इत्यादि ।"^२

वस्तुतः सम्प्रदाय के कवियों ने अनिश्चित जय सम्प्रदायो के कवियों ने भी भावा के विषय में ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं । निम्नार्थ सम्प्रदाय के हरिध्यान जो करते हैं— भावा बिगुन प्रबल यवन की धीच न भाव तात ।"^३

राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवि श्री हरिनाम व्यास ने लिखा है—

१—“भावा रचित प्रबल कुटुम्बी मोह जान सब छूट्यो ।”

२—“बीबत मरे न भावा छूट जान कर्म मुह छूट ।

तुम कलक लजन मुल देता गिर छुन सब छूट ।

कष्ट रत राधा कष्ट है बिच विचार न छूट ।

लाजु न लो गुन नहि बुरी हरि जान रत नहि छूट ।

व्यास दास पर बारे जग की बुल सागर नहि छूट ।^४

स्वामी हरिनाम जी का भावा के विषय में कहना है—

- १ सुरदास (श. ३० म. १) पर मं. १७ पृ. १७
- २ सुरदास (श. ३० म. १) पर प. ३२४ पृ. १३४
- ३ निम्नार्थ माधुरी पृ. १३
- ४ श्री ग्यास वाली पृ. २३१

“तुमरी माया बाओ पसारी बिबिज मोहै मुनि मुनि करके सुने कोइ ।”^१

मोक्ष

आठवार भक्तों के विचार

संसार-बुद्ध से छूटकर ज्ञानत्व-प्राप्ति की मुक्ति-अवस्था सनमम सभी वर्गों को माध्य है, यद्यपि भिन्न-भिन्न मतों में इस ज्ञानत्व भोग की स्थितियाँ और लोक भिन्न-भिन्न बताये गये हैं। आठवारों के अनुसार भक्ति का फल ही मुक्ति है।^२ आठवार भक्तों ने कहीं भी मुक्ति का सैद्धान्तिक विवेचन नहीं किया है, बस कि परवर्ती भक्ति-साहित्य में मिलता है। भक्ति-ग्रन्थों में साधारणतया चार प्रकार की मुक्ति का निर्बंध मिलता है। वे हैं—सालोक्य सामीप्य साक्य्य और सापुण्य।^३ इन मुक्तियों का सैद्धान्तिक रूप प्रबन्धम् में देखने को नहीं मिलता। किन्तु इन चारों मुक्तियों की अनुभूति आठवार भक्तों ने पूर्ण रूप से की है इसमें कोई संदेह नहीं।

मोक्ष का सुख दो प्रकार से हो सकता है—देह रहते वर्तमान जीवन्मुक्त अवस्था का सुख और देह त्यागने के पश्चात् ईश्वर रूप के बल पर प्राप्त मोक्ष अवस्था के सुख। ‘प्रबन्धम्’ में इन दोनों प्रकार के मोक्ष का वर्णन हुआ है। जीवन्मुक्त अवस्था का सुख देह-त्याग के बाद के मोक्ष-सुख की अपेक्षा अधिक उत्तम माना गया है। आठवार भक्तों ने अपने अनेक पदों में जो मानसिक प्रबोधन संसार की अनित्यता और माया मोह की निम्ना से सम्बन्धित हैं, जीवन्मुक्त-अवस्था प्राप्त करने के उपायों को बताया है। इस अवस्था के अपूर्व ज्ञानत्व के सामने उन्होंने जीवन मुक्ति-अवस्था के बाद के मोक्ष-सुख की उपाशा कर दी है।

ब्रह्माठवार कहत हैं—“हे भयबाहू ! मेरी एक माध प्रार्थना है—जो मोक्ष तुम अपने भक्तों को देना चाहते हो क्या वह तुम्हारे स्मरण माध से मुझे मिलने वाले ज्ञानत्व से अधिक सुखपूर्ण है ?”^४ (मैं मोक्ष नहीं चाहता केवल आपका स्मरण

१ निम्बाक मातुरी पृ० २ २

२ ‘घोषु कोषु घादिवीरमाले धर्मिनात्
बाह्यत मनस इततवस्तार्कत
वैकुण्ठम काव्यार विरिणु ।”

—नाममुक्तावलि ७६

३ सालोक्यसातत्वित्तामोप्यसाक्य्यकृतबनपुत ।
वियवान न गृह्णन्ति विना मस्तेवम जना ॥

—धीमदभाषवत ३ २६ १३

(i) सालोक्य — भयबाहू के निरय नाम में निवास (ii) सामीप्य — भयबाहू की निरय समीपता (iii) साक्य्य भगवान् का सा रूप तथा (iv) सापुण्य — भयबाहू के विग्रह में लया जाना ।

४ ‘घोषुषु वैकुण्ठम । यातुरीप्यतु उमरिष्यातु’
एन पदवनेयु इवति भी निपुण्डलित
वैकुण्ठ तम विमलितुम मद्रिनिती ? भी यवतु
वकुण्ठ मेमुरवतुमवान ।”

—नेरिय तिलवन्तावि १३

करते रहने में ही मुझे अपूर्व सुख प्राप्त है ।) अन्त मछ भक्ति से वा भाग्य प्राप्त होता है, उसकी तुलना में मोक्ष के सुख को सुख समझने है । सम्पादकार का कहना है—“सर्व जगत् की भूमि पर उनकी रक्षा धरु करने रहने वाले मेरे पिता भगवान् हैं, जिनके चरण कमलों को अपने गिर पर धारण करने की इच्छा में प्रेरित मेरा मन उनकी स्मरण कर प्रेम में प्रतिष्ठित होकर दिव्यात्म प्राप्त करना ? । अन्ध पदार्थों की प्राप्ति करने की इच्छा से हमारे लोग मने ही मारे मारे फिर अपने ही हमारे सोम मोक्ष-पद प्राप्त करने की इच्छा रखें परन्तु अन्ध मछ इन जीवों की कामना नहीं करते । वे तो केवल भक्ति में ही परमात्म प्राप्त करने हैं ।”^१

छोहरकीपोरी आठवार कहते हैं—‘सुखर धारी सुख मनश्चाम भगवान् का गुण गान करते रहने में मुझे वा सुख उपलब्ध होता है । उसके करने अन्ध इन्द्रजोक पर धारण करने का सुख (मोक्ष का सुख) लिया प्राय तो भी मैं छोटे नहीं चाहूँगा ।’^२ तिरमनिर्द आठवार कहते हैं—‘भगवान् मेरे मित्रों की इच्छा का अनिच्छित मुझे किसी हमारे मोक्ष-सुख की कामना नहीं ।’^३

सम्पादकार के अनुसार बात कोई स्थान है परन्तु अनुभूति मात्र है । वे कहते हैं—“ज्ञान प्राप्ति के परबल परबलियों की वन में कर संसार के स्वप्न को समझने हुए, सुख-दुःख की विमता की पुन मातात्मिक पात्र को स्वामने पर मोक्ष का मा

१ ‘उत्तम पदितुष्ट एते धरकल्लत
बुद्धिमात्र बुद्धितुष्ट धर्मात्मा
द्विद्विद्विपुष्ट भैरिका
सम्पित्तपीनोरस समुद्र
वैस्तत्ताम विरप्ति विरुष्ट धीव मोरवृ
धर्माधोर धर्मात् तिबबोद्धुमद्वि
द्वर्ष मायाधैरिबिबुधमम
मुद्रिगोत्र नम्बीरु वैरिमु
बोद्धवैरिगोत्रो तिरिगोत्रो बुद्धिने ?

—विष्णुविष्णु ७

२ ‘धर्मात्मा । धर्माधैरे । धर्मात् तम बोद्धमे । एम्मु
इष्टुर्ष तबिर बाव कोय इष्ट तोलक धाष्ट
जन्तुर्ष वैरिमु वैरिमु

—तिरमनिर्द २

३ ‘वीरताम दोरवेदगी वीरिगोत्रोनिमु
बुद्धिमात्र धर्माधैरिगोत्रो बोद्धवैरिगोत्रो ? बुद्धिने ।’

—तिरमनिर्द विष्णु १०८

आठवार भक्तों ने सर्वत्र मोक्ष-प्राप्ति के लिए भगवान् के अनुग्रह की आवश्यकता बतायी है।

आसौभ्यकासीन हिन्दी-कृष्ण-भक्त कवियों ने चार प्रकार की मुक्ति (सामीप्य, सामोक्ष्य, साख्य और सायुष्य) का निर्वचन किया है।

सूरदास कहते हैं—

‘सिद्ध सगुण स्वाम सुखर को मुक्ति नहीं हम जारी।’^१

हरिराम व्यास कहते हैं—

‘लोक बेद कर्म बर्म छोड़ि मुक्ति चारि।’^२

आठवार भक्तों की तरह कुछ हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने भी जीवन-मुक्ति-व्यवस्था के बाव के मोक्ष-सुख की खोज कर ली है। एक पर में सूर जीवन-मुक्त-सुख के आगे बेकुण्ठ के सुख को हीन बताते हुए कहते हैं— ‘जो सुख पौषाम के मुख-गान में है वह जप तप बर्म बाहि के करने में नहीं। ब्रज निवास के सामने बेकुण्ठ का सुख भी त्याग्य है। हरि के सुमिरन से संसार-दुख छूटा है, और जीवन-मुक्ति का परमानन्द मिलता है।’^३

श्री हरिराम व्यास ने मोक्ष की शक्ति के समस्त खोज की है —

‘ताके बल धर्म धरे रसिक व्यास से न डरे
लोक बेद कर्म बर्म छोड़ि मुक्ति चारि।’^४

नन्ददास ने जीवन-मुक्ति के सुख का वर्णन किया है। संसार की माया के बुझ से छूटकर प्रेम-मक्ति की संयोग और वियोग अवस्थाओं की आनन्द-व्यवस्था में भक्त ईश्वर के सतत ध्यान में जिस साञ्जिध्य का अनुभव करता है, वह स्वर्ग (मोक्ष) सुख से भी श्रेष्ठ है। यह नन्ददास जी की रास पंचाव्यायो की निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होता है —

१ सूरदासर, वे० प्र० ५४४

२ व्यास बाजी, पृ० २६६

३ जो सुख होत गुणानहि पायें।

सो सुख होत न जप-तप कीन्हें कोटिक तीरथ न्हायें।

बिरे सेत नहि चारि पदारथ, बरन-कमल बित्त लायें।

तीनि लोक तुल-सम करि तेजत नन्द-नन्दन डर लायें।

बंसीबट कुम्हारन, अनुता तजि बेकुण्ठ न जाय।

सूरदास हरि को सुमिरन करि बहुरि न भव-अन धाय।

—सूरदासर (का० प्र० समा) पर सं० १४६, पृ० ११९

४ व्यास बाजी, पृ० १४६

‘पुनि रंजक धीर ध्यात पीय परिरम्भ दिवो बभ ।

कोटि सराग मुख मीग, दिनक संगल मुयते तव ।’^१

परमानन्द का मन मोक्ष की कामना नहीं करता । किन्तु वह कीदृश के पर-पंकजों में ही रहकर आनन्द पाता है । वे गोपी-रस से कहते हैं—‘भगवान् सख्यासियों की मुक्ति है मैं सोफ-कामना करने वालों को काम-राशि है मैं मर्मादा-वर्म के रसको को बर्म-मार्ग का मुख दे दें । परन्तु मेरा मन सदा दृष्ट क पद-पंकजों में ही रहता है । यदि कोई कहता है कि योगाभ्यास से ज्योतिष ह्य की सवात्मक मुक्ति मिलती है तो मुझे ऐसी मुक्ति नहीं चाहिए । मैं तो एक ध्यात-रंग में रंजी हुई हूँ । इस एक से मिलकर मैं सबका अपबाध सह सुंवी ।’^२

विरहासक्ति में ही चारों प्रकार की मुक्ति का आनन्द मूर की गोपियों सेनी है । मूर का निम्न पद दृष्ट्य है —

“ऊपौ सुये कैहु तिहारो ।

हम धबलनि की सिजवन धाए, सुयी ग्यात तिहारी ॥

निरगुन कहौ कहा कहियत है तुम निरगुन अति भारी ।

तेबत तुलन स्याम मुखर की, मुक्ति लही हम चारो ॥

हम लालोक्ष्य, सक्ष सापुम्पो, रहित समीप तवाई ।

सो तजि कहत धीर की धीरे, तुम अति बड़े पवाई ॥

हम मुरत तुम बनुर ही, बहुत कहा अब कहिए ।

बे ही नाम फिरत भठकत कत, सब मारम निज कहिए ॥

तुम अज्ञान कर्नहि उपदेसत ज्ञान अब हमहीं ।

निति दिन प्यान मूर प्रभु की अति, देखत जित नितहीं ॥’^३

मीराबाई का भी इस संसार में ही उनके गिरिधर गोपाल से साक्षात्कार हो जाता है और आनन्द ही आनन्द वा अनुभव होना है—

म्हारो घोसगिया घर घाग्यो जो ।

तनवी ताप मिज्या मुख पात्वा, हितमिल मगत पाग्यो बी ।

१ मगदनात प्रभावली रास पंचाध्यायी अ० १ (भा० प्र० समा)

२

मुक्ति हेतु सख्यासिनी की हरि कामिनि हेतु काम की रास ।

परमिन हेतु बरम की मारम मो जन रई बर-धनुज वास ॥

जो कौन कहे जोति सब धार्ये लखेहु छिरी न निहायै बीम ।

‘विरमानन्द’ स्याम रंग रात्री लई तहीं बिसि इह अंग लीय ॥

—परमानन्द धामर (म० डा० पा० भा० धुकर), पर म० २११

३ सुरनामर (भा० प्र० समा) पर म० ४२१८, पृ० १२१२

धनरी कुप सुख मोर मगन भया, म्हारे श्रीमन् वाक्यो जी ।
 बंदा हैन किमोदण कुला, हुरन भया म्हारे छाक्यो जी ।
 कम-हन म्हारो छीतल सबकी मोहन घांगण भान्यो जी ।
 सब भणतारां कारन सायां म्हारा परन निमाक्यो जी ।
 भीरा बिखन गिरमर नापर मिज कुप बंदा धाक्यो जी ।^१

हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने सामुद्र्य और साहस्य मुक्ति की अपेक्षा सामोस्य और सामीप्य मुक्ति की कामना विशेष रूप से प्रकट की है। पुरदास ने अपने पदों में एक चिरन्तन आनन्दमय भोक में चलने की कामना प्रकट की है। मूर की निम्नलिखित पंक्तियों को देखिए—

- १ कहीं री बलि बरन सरोबर, जहाँ न प्रम बियोध ।
 जहाँ भ्रम निसा होति नहि कबहुँ, सोई धामर मुख जोय ॥^१
- २ बलि सबि सिहि सरोबर जाहि ।
 बिहि सरोबर कमल, कमला, रजि, बिना बिकसो हि ॥^२
- ३ मुखा बलि तावन की रत बीजे ।
 जा बिन राम नाम धर्मिस्त-रत, सबन-पाव जरि सीजे ॥^३

रसज्ञान में किसी भी रूप में कृष्ण के सम्पर्क में रहने की कामना की है। यह एक प्रकार से सामीप्य मुक्ति ही है। कृष्ण के सम्पर्क से जो आनन्द जाता है वही समये सिध मोक्ष का मुक्त है—

मानुष ही तो बही रसज्ञानि'
 बसो ब्रज योकुन पाँव के ग्यारन ।
 जो पशु हों तो कहा बस मेरो
 बरो नित नय की येनु मंजारन ॥
 पाहन हों तो बही मिरि को
 जो बरमो कर छत्र पुरन्दर धारन ॥
 जो कप हों तो बसेरी करी,
 मिसि कानिगी कून कबख की डारन ॥^४

१ भीरा की पद्यावली (नवी संस्करण)—सम्पादक परमुराम चतुर्वेदी पद सं० ११२

२ पुरदासर (भा० प्र० लभा) पद सं० ३३७

३ बही () ३३८

४ बही () ३४०

५ रसज्ञान का धामर काव्य—संपादक दुर्गाशंकर मिश्र पृ० ४३

रहस्यात्मक दृष्टिकोण

'व्यक्त जगत् के सम्बन्ध में सोचने से व्यक्ति' उसका कारण रूप 'अव्यक्त' पर स्वभावतः या पहुँचा। अपनी दिव्य कल्पना-शक्ति को कदम धपने अनुदिक कथित न कर उसने उस ब्रह्मात् और अनन्त शक्ति की कल्पना को स्थिर करने उससे साक्षर सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की। अपने बहुत जीवन में पूर्णता पाने के लिए उसने अपने को ही उस ब्रह्म का अंग समझा। शक्ति एवं मन्त्र पदार्थों में उसने अविनाशी और साक्षर सत्ता की खोज की। उस सत्ता के साथ उसने भिन्न भिन्न प्रकार के सम्बन्ध स्थापित किये। मानवीय सम्बन्धों में सबसे मधुर और तीव्र सम्बन्ध 'दाम्पत्य भाव' का होता है। इसलिए उसने उस परमात्मा को पुरुष या स्त्री और अपनी 'आत्मा' को स्त्री या पुरुष मानकर मिसन-बिरह सम्बन्धी प्रभेदों से पूर्णता पाने का प्रयत्न किया। उस जाम्पारिमिक सत्ता का एकान्त विराम क्षणों में आभास पाकर उसके विरह में मानव मन तड़प उठा और ब्रह्म और आत्मा के तादात्म्य की अवस्था को जब बाली मिश्री सब बहू मातात्मक या साधनात्मक 'रहस्यावाद' कहाया।

मानवीय सम्बन्धों को लेकर ब्रह्म की परम सत्ता का भाव तथा साक्षात्कार के मातात्मक पक्ष का नाम ही 'रहस्यावाद' है। वस्तुतः रहस्यावाद की अनुसृष्टि की अभिव्यक्ति बाधातीत है। उसका विषय गुँगे के मुँह का तरहूँ बाली से परे है। वह एक अतीतिक अनुभव है और अनुसृष्टि का विषय है। फिर भी कुछ विद्वानों ने रहस्यावाद की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। एबतिम अकरहिम के अनुसार रहस्यावाद मपवसत्ता के साथ एकता स्थापित करने की कला है। रहस्यावादी बहु व्यक्ति है जिसने किसी न किसी सीमा तक एकता को प्राप्त कर लिया है। अपना जो उसमें विरवास करता है और जिसने इस एकता-सिद्धि को ही अपना काम लय बना लिया है।^१

डा० रामगुमार बर्मा के अनुसार रहस्यावाद आत्मा की उस अन्तर्हित प्रकृति का प्रकाशन है जिसमें बहु दिव्य और अतीतिक शक्त से अपना शान्त और निर्दम सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और वह सम्बन्ध यही एक बड़ पाता है कि पाना में कुछ अन्तर भी नहीं रह जाता।^२ डा० स्वामसुन्दरदास लिखत है— ब्रह्मात् और अनन्त सत्ता के प्रति जिसमें भाव प्रवृत्त किया जात है, वही अविना रहस्यावाद की कही जा सकती है। दूसरे शब्दों में व्यक्त जगत् में पदार्थों की अनुसृष्टि की अभिव्यक्ति 'रहस्यावाद' है। कला के साथ में यह एक सीमा विवृष्ट है, जिसके दस विविध चरणों के मूल में विद्यमान कारण मूल रहस्यावादी अन्तर्गतता पर मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसका प्रति अनुमान अति आत्म-समरूप की भावना का अभिव्यक्ति किया

१ Practical Mysticism p. 3

२ कबीर का रहस्यावाद—डा० रामगुमार बर्मा, पृ० ५

जाता है।”^१ श्री गंगाप्रसाद पांडेय ने अनुसार ‘मनुष्य जब से अपनी मानवीय विषमता में अथवा प्राकृतिक व्यापारों की विधासता में किसी एक असंश्लिष्ट शक्ति के प्रभाव तथा अस्तित्व की कल्पना करने लगा उसी से रहस्यवाद का बीजारोपण हुआ। रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके आवासेस में प्राणी अपने ससीम और पार्विक अस्तित्व से उस असीम एवं अपार्विक महा-अस्तित्व के साथ एकात्म्य का अनुभव करने लगता है।”^२

अप्युक्त मर्तों से परमात्मा के प्रति बीबारमा के आत्म निवेदन मितन के प्रयत्न और मितन की ध्वनि ही निकलती है। इस प्रकार रहस्यवाद के विषय—आत्मा, परमात्मा और जगत् हैं। इसका दृष्टिकोण सांसारिक दृष्टि से उदासीनतापूर्ण आध्यात्मिक है। दार्शनिक क्षेत्र में आत्मा-परमात्मा की एकता का सिद्धान्त प्रतिपादन किया जाता है। जब सत्ता की साहित्य में अभिव्यक्ति होती है तो वह अस्पष्ट और रहस्यमय होने के कारण रहस्यवाद कहलाती है।

रहस्यवाद की सत्ता दर्शन और काव्य—दोनों में ही रहती है। परन्तु ‘रहस्यवाद’ शब्द केवल काव्य में ही प्रयुक्त होता है; क्योंकि दर्शन का रहस्यवाद बुद्धि-प्रधान होता है और काव्य का भाव-प्रधान। काव्य में ज्ञान और भाव—दोनों का सम्बन्ध होते हुए भी भाव की प्रधानता रहती। दर्शन में भाव के लिए कोई स्थान नहीं रहता। इसलिये दर्शनार्थि को शास्त्र कहा जाता है। ज्ञान-प्रधान रहस्यवाद के मूल में सांसारिक अनित्यता की उदासीनता माया की सृजना से भय तथा ज्ञान-चिन्तना आदि प्रमुख तत्व होते हैं। जाहना का रहस्यवाद अपने प्राणों में तीन मुख्य तत्व लेकर चलता है—१ मानव-प्रेम २ आश्चर्य का भाव और ३ आत्मा की परमात्मा से बिच्छानुभूति। तुलसी और कबीर के रहस्यवाद में इसी मानव प्रेम से अभिविष्ट रहस्य की भावना है।^३

१ हिन्दी साहित्य और विनिप्रवाद—पृ० १२७ से उद्धृत।

२ देखिए—‘छायावाद और रहस्यवाद’—यंगप्रसाद पांडेय।

विशेष विवरण—“रहस्य” शब्द व्युत्पन्न प्राचीन है। परन्तु छात्र हिन्दी में जिस रहस्य भावना और रहस्यवाद की खोज करते हैं, वह धर्म की दृष्टि से संश्लेषी में “मिस्टिज्म” का पर्याय है। ‘Mystic’ शब्द ग्रीक “Mys” शब्द से बना है जिसका अर्थ है ‘अंध और जो कुछ समझ कराना।’ बाद में यह बीबन और मृत्यु की पहचान के अरम सत्तों को समझने वालों के धर्म में प्रयुक्त होने लगा और धर्म-विकास पाकर “रहस्यवाद” परमोच्च के साथ प्रत्यक्ष मितन के परम प्रयत्न के धर्म से विह्वलित हो गया। हिन्दी में इसी धर्म को लेकर व्याख्या हुई है।

३ साहित्यिक निबन्ध—श्री राजनाथ शर्मा, पृ० ३४६

आळ्वार भक्तों के काव्य में रहस्यात्मक दृष्टिकोण

आळ्वार भक्तों के ऐसे अनेक पद हैं, जो रहस्यानुभूति-परक हैं। नम्माळ्वार, तिरुमयै आसवार और आण्डाळ के ऐसे पदा में जिसमें रहस्यानुभूति झमकती है, जीवामा-परमात्मा के विरह-मिलन की ओर संकेत हैं। इन कविता में नायिका (जीवामा) के माध्वम से नायक (परमात्मा) के सौन्दर्य नायिका की नायक से मिलने की तीव्र उत्कर्षा विरह की बेदना और अन्त में प्रिय-मिलन से मुक्त प्राप्ति आदि का वर्णन किया है। इसी कारण से विद्वान् इन पदों को उष्णकोटि की रहस्यानुभूति से जोतप्रोत मानते हैं। हम पहले कह चुके हैं कि आळ्वार भक्तों ने तमिळ की प्राचीन सौक्तिक प्रेम-यद्धति का प्रयोग कर असीक्तिक प्रेम का वर्णन किया है। इस प्रेम-यद्धति में और सूफी प्रेम-यद्धति में बहुत कुछ साम्य है। अन्तर यह है कि आळ्वार भारतीय परम्परा के अनुसार परमात्मा को पुरुष (नायक) और जीवामा को स्त्री (नायिका) मानकर करते हैं। उस प्रेम-यय की कठिनाइयों और विरह की बेदनाओं का प्रिसन-मुख आदि का बसा ही हृदय-शासन वर्णन आळ्वार काव्य में मिलता है। जैसा कि सूफी काव्य में मिलता है। प्रेम की परीक्षा "मदल" पर चढ़ने की दशा में होती है। "मदल" प्रेम की अग्नि परीक्षा है जिसमें जलीएँ होने पर दिया को प्रिय मिल सकता है। अपनी रचना "विदिवित्तम" में नायिका की विरह-दशाओं का वर्णन मात्र करना नम्माळ्वार का उद्देश्य नहीं। वह साक्षात्कार आशय भी रखता है। नम्माळ्वार तो उष्णकोटि के रहस्यवादी कवि माने गए हैं।^१ कवि की साक्षात्कार प्रेमी ऐसी उष्ण कोटि की है कि कविता और दर्शन की धाराएँ उसमें समानांतर होकर बहती हैं, कोई विर्षण नहीं पड़ता। जैसे अन्तः समिता सरस्वती गंगा और यमुना के बीच हो ऐसा ही नम्माळ्वार और तिरुमयै आळ्वार की कविता सरिता के समय उपभूतों के बीच उतरा साक्षात्कार अर्थ है। काव्य के क्षेत्र में इसी का दूसरा नाम "रहस्यावाद" है।

भक्तों ने साधना द्वारा साम्य की प्राप्ति के लिए अनुभूति की विजयी अवस्थाओं का वर्णन किया है उतनी ही आस्थाएँ रहस्यावाद की हा सकती हैं—

१ परमात्मा के प्रति आत्मसर्व, बुद्धिहस और मित्रासा की भावना

'मानव' विसृत प्रवृत्ति की मोद में पला है। सृष्टि के आधिपत्य से ही प्रवृत्ति उठती फिर छाड़ती रही है। प्रवृत्ति से ही अपने सबसे पहल सम्पन्न दलित के दान

1 "Some of his (Nammalvar's) poems, couched in the language of human love reveal beautiful depths of mystical passion and longing for which there are few parallels in any Indian vernacular —" *A Metaphysique of Mysticism*

किये । प्रकृति के उपादानों में ही मानव ने अद्भुत शक्ति के वर्तन किये । अतः कवि हृदय में सर्वप्रथम कुतूहल आश्चर्य विस्मय और विस्मया की भावनाएँ अंकुरित हुई । प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व एक महाशक्ति से स्पर्शित दिखाई दिया । आठ्वार भक्तों के कुछ पदों में यही भाव व्यञ्जित हुए हैं यथा—

१— 'युग बीतते जाते हैं । हम केवल निवेदन करते रहते हैं । हे परमात्मन् ! तुम मधुर मन्त्रहास लिए फिर कास से विराजमान हो । हम निस्सहाय तुमको पुकारते रहते हैं । अब तक तुम्हारे नाम और स्वस्व रहस्यमय ही बने रहे हैं । '

—पोबरी आठ्वार

२— 'मैं सर्वदा उसकी वचक शोच में रत हूँ । तब वह मुझे नहीं मिल पाता । पर वह मेरे निवेदन के बिना भी मुझे अपना लेता है और मेरे हृदयकुण्ड में बिहार करता है । फिर भी हाय ! मैं उसको देख नहीं पाता । '

—येयाळ्वार

३— 'वह अज्ञात परमात्मा पुण्योत्तम युग-युगों से चिर-यौवन में ही बीसता है । बाल का कटाक्ष प्रभाव भी अपने चिह्नों को उस पर अंकित नहीं कर सकता । धनकी ओर को आनन्द की एक अशुक्ल धारा प्रवाहमान है जो सबों में अवश्यामीय है । वर्तमान मृत, भविष्य के भय से दूर चिरन्तन और चिरकाल से वह अपनी सीमाएँ करता जा रहा है । उस अज्ञात विद्याल पारावार में मैंने कुछियाँ खायीं । '

—तिरुमर्ची आठ्वार

४— 'क्या आप राज मुकुट पर शोभित शोभायमान कांतिकुल मोती-सम हैं ? क्या आप अयाच रत्नाकर की यहिराई में पड़े हुए अमूल्य रत्न हैं ? क्या आप वह अमर दीपक हैं, जो मुनों से अन्धकार को औरकर जसता रहता है ? क्या आप वह आदिम प्रकाश हैं, जिसने इस पृथ्वी की सृष्टि के उपादान को आपोक्रित किया था ? क्या आप जीवन-धारा के उत्तम-स्वान हैं, जिससे सृष्टि की धारा निरन्तर बहती रहती है ? आप क्या हैं ? '

—नम्माळ्वार

१ उर्बचार मार उग पैस्सी ? अळितोरळि
उर्बचारार उन्नुल्लन्तली ? उर्बचारार ?
विण्णकत्ताय । मन्नाकत्ताय । वेळत्ताय । नन्नेव
पन्नाकत्ताय । नी किडस्त पाम । "

—मुदम । तस्वत्यादि ६८

२ धुम्पुम सिक्कन्तादि, पद सं०

३ पैरिय तिरुमोळी पद सं०

४ "आदिमानिरुमेन्को ? अविक्केळ पोम्पुलमेन्को ?
आदि मन्मथिरुमेन्को ? तविदिन और विळक्कमेन्को ?
आदिवन्मोति एन्को ? आदियम्पुडनेन्को ?
आतुमिस्त कालतर्त्त अन्नुतम अयत्तमेये ।

—तिरवायमोळी १४४

२ अखिल विश्व में परम सत्ता की भीषी तथा व्यापकता

साधक में कुतूहल विरम और जिज्ञासा की भावना के अनुसार परम सत्ता के अस्तित्व का विश्वास बढ़ ही जाता है। उसके बाद अनुभूति अविनाशिक तीव्र होती जाती है। फलतः उस बिन्दु की प्रापेक वस्तु में प्रकृति के कण-कण में परम सत्ता की अनुभूति होती है। अन्त में इस परम सत्ता की व्यापकता इतनी बढ़ जाती है कि समस्त सृष्टि परम सत्ता के रंग में रंजित और प्रकाश से प्रकाशित दिखाई देती है। आत्मवारी के कुछ पदों में ये भाव दृष्टव्य हैं —

१— विद्याल म्योम पूँज उठ विजयी कइकी । बज्रपाव का मयानक मार हुआ । बहु जा, बर्पा-काल । मैं मयन की ओर दसता रहा । उसकी अनुपम आभा का रेखाएँ खींच पड़ी और बहु बहु व्याम-बीया म मैम-मणि-रब पर बढ़कर भाया ।”^१

—सूत्राच्छवार

२— ‘सरसोम्बला सौदामिनो क्पी विजय-वराका कहुरानी हुई मार निगाहित बस क्पी विजय-दुद्धी बजाती हुई वगन-मडल-बाब भ्रमण करने वाली नीरव-राधि मेरे म नस-वटन पर बाप ही के स्मृति-विन अंकित करती है ।”^२ —पेयाटवार

३— सुपमा जरी उपा को नीरव-बेला म बिड़िया की मधुर सुरीसो तान में प्रभु के बिभागमन का सखेस मैं पातो हूँ । मैं आशा युक्त मयमा से देखती हूँ । पर जानती नहीं कि प्रियतम कब आवेगे ।”^३ —माण्डाड

४—“मेरे प्रिय का स्वर तो सब पहाड़ों में गूँज उठता है और उनकी आवाज प्रत्येक सहूर में और पवन में सुनाई पड़ती है । सर्वत्र उसकी आभा व्याप्त है । समस्त विश्व के समान विद्याम, उस प्रभु का मैं रेत के कण-कण में देखता हूँ । असीम सागर के समान व्यापक उस प्रभु को सागर की प्रत्येक बूँद में देखता हूँ ।”^४ —नम्माळवार

१ हरष्टाम तिरवन्नादि, पद सं०

२ “एळिल कोण्डु मिन कोळियेण्डुल बेकत ।

तोळिन कोण्डु तान मुळ की तोणु न एळिल कोण्ड ।

नीरमेयमेन्न बैणुमान निरमपान ।

कार वानम कारुण्य कलमु ॥”

—सूत्राच्छवार तिरवन्नादि, ८९

३ काने येळुतिरमु करिय कुदवि कर्चरुळ ।

मानिन वरवु कोट्टी मरुत पाणुन मेरुम्मे कोना ?

नीलमनीयेरमान मुबरापतियेयेरमान ।

प्रातिनिधयेरमान चबल चार्नेपुरैरिक्कट्टन ।”

—माध्वपार निरवन्नादि ६ ।

४ तिरविल्लु, पद सं० १०

३ बर्षन-सासता और सम्बन्धों की स्थापना

अब साधक को सृष्टि के कण-कण में उसी परमसत्ता की अनुभूति होने सकती है, तो उसे उस परम सत्ता का साक्षात्कार करने की साधना होती है। साधक को साध्य अत्यन्त निकट ही प्रतीत होता है—इस निकटता से अनेक प्रकार के सम्बन्धों की सृष्टि होने लगती है। इन सम्बन्धों में मायक-मायिका (पुरुष-स्त्री) सम्बन्ध बहुत ही प्रसिद्ध माना गया है। पुरुष और मायी के सम्बन्ध द्वारा वियोग और मिसन के जितने भी बिचारों की अभिव्यक्ति होती है, वे सच्ची अनुभूति हैं। विरहानुभूति की व्यंजना बाळ्यारों के अनेक पदों में हुई है यथा—

१—“कोमल ! मेरे शरीर की समस्त हड्डियाँ प्रथित हो रही हैं। निश्चिन्त मेरे प्यासे नयन जागते ही रहते हैं। (नीच को पास भी फटकने नहीं देते)। प्रभु के बर्षन अनुग्रह से बन्धित मैं व्याध-सरिता में बह रही हूँ। प्रेम भरे हृदय की विरह-वैषम्य को तो तू मसी-मांति जानती है। तू कृपया मेरे प्रभु के पास जाकर मेरी इस बीम बसा का समाचार दे जा।”

—बाळ्यार

२—“(मेरे मन रूपी) उस प्रेम वियोग विषम्य विरहिणी की क्या वधा हो गयी है। वह पापमयी दहर-उधर फिरती है। अपने प्रियतम के आगमन का आनन्द पूर्ण सन्देश सुनकर वह हर्षोन्मत्त हो रही है। राका-रजनी में वह अकेली ही अपने करों को (उस अजसीम आकाश) स्पर्श की ओर बढ़ाकर बिज्जाती है—मैं देखती तो नहीं हूँ कि प्रभु अपने स्पर्श के द्वार पर कब मुझे पुकार रहे हैं।”

—तिरुमोळी बाळ्यार

३—“प्रभो ! उस विरहिणी को आप अपने वर्णन से बन्धित रहते हैं, क्यों ? (माता का बचन) मेरी सुन्दर, मधुरीयना पुत्री के विरहमाधुरी से मधुर मुस्कान और हँसी अब विदा ले चुकी है। अपनी सन्धियों तक के लिए वह उदास और वेदनामय बीज पड़ती है। वियोग-व्यथा से विरह होकर वह अपने कोमल अङ्ग पर चम्पन नहीं लगाती और न अपने मीन-नयनों में दर्जन लगाती है। उसके कैस जो शरीरमुक्त नव

१ “इत्युक्त्वा इतरेण वैकुण्ठकम् ।
हर्म्योदन्ता पद्म लल्लभम् ।
सुन्दरकन्दल पुष्पकुर्व्वुन्मदवैभवंतु धीर
तोषी पैरायु उल्लसिकम्बुजम् ।

अनुभूयारै पिरितुव नो
यतु नीपुय धरि कुपिने ।
वीणुमैनिस्सकल सन्नेहिपुई
पुन्निवर्त्तै वरवदुवाय ।”

—माळ्यार तिरुमोळी १४

२ पेरिय तिरुमोळी पद सं० ७-१-२

वार्त्तिक विचार और रहस्यात्मक दृष्टिकोण—सुसनात्मक अध्ययन]

३६१

कुसुमों से समार्सित होते थे जब सोमा दुग्ध पीत रहे हैं। वह आपके नाम को ही रटती है आपके बिनाप में तड़पती है। "प्रभो! आप उस बिरहिणी को अपने दर्शन से बंचित रखते हैं क्यों?"

—तिरुमंगल आळवार

४—"मेरी प्रिय तनया जो नाम के तबस विसमय के समान स्वर्ण कान्ति युक्त थी जब बिरह-अंधा में पीसी पड़ गयी है। दीए होकर इतनी पतली हो गयी है कि उसके हाव के कंकण भी स्वर्ण नीचे पिर जाते हैं। जब मुत्त पचित चाक जग्नहार तथा सुगन्धित चन्दन भी उसके बिरहात्म में तप्त बरम पर बड़े आवाज कर देते हैं। समूत दुग्ध पीतल किरणों को भेजने वाला चन्द्र भी मानों मेरी पुत्री के लिए धमकने वाली भाग की क्वासा ही बरसा रहा हो। दूर के समुद्र-मार्जन की तरह इसका हृदय भी बियोग-बिनाप में आन्वोसित है। प्रभो! आप इस बिरहिणी को अपने दर्शन से बंचित रखते हैं क्यों?"

—तिरुमंगल आळवार

५—"छात्र जगत् दीर्घ निद्रा में मग्न है। सर्वत्र सप्ताटे का साम्राज्य घामा है। बिनास सागर की तरह अन्धकार मेरे चारों ओर फैला हुआ है। इस मीरव

१ 'तुळम्पु मुक्कल तोळियकु चळ्ळळ।
मुस मुस चाणु कोणु चप्पिळ।
तुळम्पु मुळळचळ्ळळ एळुवाळ।
कोस नम्मसर तुलकु' चनियाळ।
बळम्पु मुन्नीचैयम मुम्मळ्ळत्त।
मासेमुम मासिम मोळियाळ।
इतम्पडीपिळकु एन निनन्तिस्माय ?
इडेवेस्त एस्त पिराने ।'

—पेरिय तिरुमोळी २-७-२

२ चान्तमुम मुचुम चम्पनचुळम्पुम।
तडमुत्तंणु चरियिमुम तळ्ळाम।
पोत बैलिचळ किरि कुडमेविमुम।
पोरुडल पुतम्पिमुम पुतम्पुच।
मात्ताविर मेनि चम्पमुम बोळ्ळाम।
बळ्ळळम इरै निस्सा एन तम।
इत्तिळपिळकु एन निर्नन्तिस्माय ?
इडेवेस्त एस्त पिराने ।"

—वटी, २-७-१

रक्ता में मैं ही एकांतता में जाय रही हूँ । अगर मेरा प्रियतम नहीं आए तो कौन मुझे छाँत्वना दे सकेगा ?”^१

—तन्माळ्वार

४ मिलन

अन्त में साधक और साध्य का सहामिसन ही अहम् और परम की एकाकारिता है । आत्मा और परमात्मा के एक रूप होने पर परमात्मत्व की प्राप्ति स्वाभाविक ही है । लम्बी प्रतीक्षा के बाद जब अन्त में प्रियतम से प्रिया का मिलन हो जाता है, तब उसके आत्मत्व का भी पारावार नहीं । इस मिलन पर युगों की बेचना दूर हो जाती है—

‘युगों से मैं अपने प्रियतम की बात खोहती हुई उसकी प्रतीक्षा में खिचम खड़ी रही । एक दिन अचानक एक प्रायत्नक मेरे द्वार पर आया और खट-खटाने लगा । कैसी विचित्रा प्रभावपूर्ण दृष्टि थी उसकी ! मुझे पुलकित कर देने वाला बाहु जग या उसके कटास में ! आश्चर्य और भय से दृष्टि में मंज-मुख सी रह गयी । यह पूछने की शक्ति मुझ में नहीं थी कि आप कौन हैं । परन्तु मेरे कौतूहल को शान्त करने वाला मुझे हर्षोन्मत्त कर देने वाला चिर कास से प्रस्थापित वह उत्तर उनके मुँह से निकला—मैं हूँ तुम्हारा प्रभु, जिसकी प्रतीक्षा में तुम बिबध हो गयी थी ।’^२

इस प्रकार हम देखते हैं कि आळ्वार भक्तों के अनेक वर्ष सालाणिक वर्ष से युक्त हैं । उनमें उच्च कोटि की रहस्य भावना या रहस्यानुसूति निहित है । जब आळ्वार भक्त सकल रहस्यवादी कवि भी होते हैं ।

आलोच्यकालीन

हिन्दो-ज्योति-मति-काव्य में रहस्यवात्मक दृष्टिकोण—महाकवि सूरदास के कुछ पदों में उनके रहस्यवात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है । रहस्यवाह भक्त की

- १ “करीस्ताय तु की उलहेन्नाम तसिञ्जळाय ।
नीरेस्ताय तेरी ओर नीळिरवाय नीञ्जलाल ।
पारेस्ताय जळ नम पाम्पयान बारानाल ।
घार ? एरने ? बसिबनेयैल घाबिकाप्पार इनिये । —विद्यावामना ५.४.१

- २ “इनि एप्पावम बसोइतुम ? ओस्सीर
एम्बळु इम्मये चळ्ळ वेनुमैयान-घडुम
तुनियेत्तौतु इम्पये तवकिन्नुतु ओर
तोडुत्तौमेरिये वयम तोळ्ळवडुम
मुनिये वानवरात बर्बरप्पडुम
मुत्तिनै पत्तर ताम नुक्किन्नु ओर
कनिये कारन वेडुतु एम्पुळ्ळम कोप्प
कळ्ळनै इन्नु, कळ्ळुयेयेये ।”

—देविश तिरमाळी, ७-१ व

आत्मा की सबसे ऊँची उड़ान है जब वह परमात्मा की ओर अग्रसर होता हुआ उसके अग्रगण्य निष्ठ पहुँच जाता है। यों तो मगबाबू की सारी सीमा ही रहस्यारम्य है। जोब को अनन्त (ब्रह्म) का अनुभव अचरज की बात अवश्य है। जिस मगबाबू या मयबदनुग्रह से यह अचरज सम्भव हो जाता है वह स्वयं कम रहस्य की वस्तु नहीं है। अतः अपने अनेक पदों में मूर ने मगबाबू की सीमा और उसकी अनुकम्पा के प्रति आश्चर्य प्रकट किया है। वर्तमान प्रयोग में हमारा तात्पर्य उन पदों से ही है जिनमें रहस्यवादी अनुभूति की मूर्त मिलती हो अर्थात् मगबाबू वियोग से कागर मत्त की आत्मा एक असीमिक रहस्य-शोक की सृष्टि करती हो। जहाँ निगुण मन्त्रों का रहस्यवाद मूर्त चित्तों की उद्वेगा करता है वहाँ मूर के रहस्यारम्य पदों में मूर्त चित्त स्पष्ट रूप से आते हैं। इस प्रकार के रहस्यवाद को कुछ विद्वानों ने समुग रहस्यवाद की संज्ञा दी है। इसमें नाम रूप और गुणों का सहारा मान लेकर रूप गुण का अतिप्रमाण करने की चेष्टा होती है। मन्त्रों के रहस्यवाद में तो एतद्वत् उनका विरुद्ध होना है।

मूरदास जी ने जहाँ अयोक्ति-पञ्चति का प्रयोग किया उसमें उनके रहस्यारम्य दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। रूपक के आशय से नकारात्मक चित्तों को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। निम्नलिखित प्रसिद्ध पद में मूर ने एक आदम रहस्य-शोक की रूपमा की है—

बर्बाद ही। बनि करन-सरोवर जहाँ न प्रम वियोग।
बह प्रम निता होति नहि बर्बाद सोइ सागर गुण जोग।
जहाँ सनक-सिब हंस धीन मुनि, नष्ट रवि प्रभा प्रकाश।
प्रसूतित कमल निमिष नहि सति हर गुंजत निगम मुबास।
जिहि तर मुमय मुक्ति-मुक्तोच्छ्वस मुरत-ममृत-रस पीत्र।
तो तर सारि कहुनि बिहंगम इहाँ रहि कीत्र ॥”

उप्युक्त पद में अयोक्ति के आशय से अनेक मन को ‘बर्बाद’ और ‘बिहंगम’ नाम से पुकारा गया है।

निगुण रहस्यवादी कवि ब्रह्म को रास्यमय देखते हैं। मूर जैसे मनुग रहस्यवादी कवियों के लिए इन्द्र जैसे ही रहस्यमय लोग पड़ते हैं। मूर का निम्न लिखित पद दृष्टव्य है—

अविगत-मति बहू बहत न धाव।
ज्यों मूर्त मीठे रूप की रस अंतरगत ही भाव।
परम स्वार सबही सु निरन्तर धमिन तोय उपजाव।

मन-बानी की प्रथम प्रबोधन, सो जानै जो पारै ।

क्य-रेख-मुन-जाति-बुगति-विष निरालम्ब मिल जायै ॥^१

सूर ने कृष्ण की जानक सीताओं में रहस्यात्मक संकेत दिये हैं । काली कमरी का रहस्य कृष्ण स्वयं बाल-सीता में बताते हैं—

“यह कमरी कमरी करि जानति ।

जाके मिलनी बुझि हृदय में सी मिलनी अनुमानति ॥

या कमरी के एक रोम पर, बारी बीर पठम्बर ।

सी कमरी तुम बिबिध गोपी जो सिद्ध लोक प्रहम्बर ॥

कमरी के बल धनुर लंहारे, कमरिहि तैं सब भोग ।

जाति-वांछि कमरी सब पैरी सुर सब यह जोय ॥^२

यह कमरी कृष्ण की योग-माया है जिसे हम अपनी बुद्धि से विभिन्न रूपों में समझते हैं ।

श्रीकृष्ण और राधा के मिलन-सुख और संयोग के वर्तन में सूर ने इस प्रकार के आध्यात्मिक संकेत दिये हैं । राधा-कृष्ण के प्रेम की वही पूर्णता साधक का सत्य है, जब मिलने पर भी मिलने का विश्वास नहीं होता जब प्रेमी प्रेमिका कुछ न कुछ अपूर्णता का अनुभव करते रहते हैं ।^३

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि राधा-कृष्ण के प्रेम की कथा पूर्णता रहस्यवादी भित्ति पर लड़ी है । शीतल प्रेम मिलन और विरह—सभी पक्षों में इस प्रेम में समीपिकता है और यही अतीकिकता उसे रहस्यवादी रूप प्रदान करती है । सूर ने राधा-कृष्ण की सोककथा में ब्रह्म प्रकार से भी समीपिकता भरने का प्रयत्न किया है । श्री बल्लभाचार्य जी के अनुसार सीता ही मोक्ष है । यद्यपि इस सीता का रस-स्वस संचार है, तथापि संसार और सांसारिकता से उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है । श्री बल्लभाचार्य तथा पुष्टिमार्गीय भक्तों ने ब्रह्म को संसार से असंग माना है और उसे मोक्षोक्त की प्रतिष्ठाया श्रवण गोसोक्त ही समझा ।

गोपी

एक पद में सूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण गोपी और ग्वास में अन्तर नहीं है—

“गोपी-ग्वास काहू बुझ नाही ये कहूँ नैक न ग्यारे ।”

एक ब्रह्म स्थान पर स्पष्ट होता है कि गोपियाँ ब्रह्म-भासाएँ नहीं हैं, बरन् श्रुति हैं । सुबोधिनी टीका में श्री बल्लभाचार्य जी ने गोपियों को श्रुति माना है । एक

१ सूरसागर (भा० ब० समा) पद सं० २, पृ० १

२ वही (") २१११ पृ० ७८३

३ वही (") २७४१ पृ० १७४

बुद्धे स्वात पर आचार्य की ये शोषियों को लक्ष्मी का ही बहुल्य बताया है। शोषियों को ब्रह्म की शक्ति भी समझा जा सकता है। जो लीला के लिए बहुल्य हो गई है। भगवान् और उनकी शक्ति में कोई भेद नहीं है—उठ कृष्ण और शोषियों भक्ति है, वे ब्रह्म के ही भेद हैं। कृष्णजीका का बन्धोक्ति-रूप लेने वाले विद्वान् ब्रह्म की कहते हैं कि शोषी 'आत्मा' है और कृष्ण 'परमात्मा'। आत्मा भगवान् का भेद होने के कारण अपने भेदी के मिलने का प्रयत्न करती है और आत्मा-रूप शोषियों का मुख्य में कृष्ण-मिलन ही आत्मा का भगवान् से मिलन है।^१

राधा भगवान् की शक्ति है, प्रकृति का माया का प्रतीक है। शक्ति-काम्य में वलित होने के कारण राधा का दूसरा प्रतीकार्य भी निकाला जा सकता है। राधा अनुग्रह प्राप्त ब्रह्म का प्रतीक है जो आशक्ति की क्लेश दशाओं को प्राप्त होता हुआ बरब विरहाशक्ति हो जाता है। उठ भगवद् इन्द्रियों के विषयों से ऊपर उठ जाता है और उठका अस्तित्व केवल विरह की पीर' रह जाता है। दूरवाक्य की ने मिलको राधा के प्रतीक से स्पष्ट किया है, उठी जात के स्पष्टीकरण के लिए प्रायशः ने नाचमती की सम्पत्ता की भी और कभीर वहीं संतो ने स्वयं को 'राम की बहुलिया' कहकर विरह की बरबादस्था प्राप्त करने की चेष्टा की भी। ब्रह्म का लक्ष्य भी राधा की उच्छ विरहाशक्ति की उड़ी कल्प बना की प्राप्त करना है। एक अन्य वर में दूर राधा को 'प्रकृति' और कृष्ण को 'पुरुष' कहते हैं। दूर यह भी कहते हैं कि दोनों—राधा और कृष्ण एक हैं। उनमें कुछ भी अन्तर नहीं है अविन्न है—

“अमर्षि उठे पापु विरहाली ।

प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु ब्रह्मनि भेद करायो ।

जल-जल बड़ा रहीं तुम विनु, नहि भेद जलनिबद् पायी ।

ई-तन बीच-एक तुम दोउ तुल-कारण जगजायी ॥

बहु-रूप छितिया नहि कोउ, तब मन छिया जगजायी ।

दूर स्वात्म-मुक्त देखि जलज हंसि प्रानन्द-भुञ्ज बड़ायी ॥”^२

मुरली

दूर की सबसे अधिक रहस्यारमक शक्तियाँ मुरली के सम्बन्ध में हैं। मुरली कृष्ण की सम्पत्तय शक्ति है, जो स्वयं उन्हें प्रेरित करती है। सर्वत्र सम्पत्ती सिद्धांशों में मुरली को भगवान् की माया कहा गया है। यहाँ माया से तात्पर्य भगवान् की शक्ति है। इस शक्ति के दो वय जाने जाते हैं—एक वय 'मेव' की अवस्था कहा है, और दूसरा 'मेव' की। इसी को 'विद्या' और 'अविद्या' कहा गया है। इन्द्रियों और संसार तथा उनके सम्बन्ध रहने वाली वस्तुओं का ज्ञान 'अविद्या' है। ब्रह्म का ज्ञान 'विद्या' है। जो माया अविद्या को उत्पन्न करती है, वह भगवान् का

१. भगवान् और लक्ष्मी सम्बन्ध—डा० दीनदयालु गुप्त पृ० २०९

२. दूरवाक्य (भा० प्र० तथा), पद सं० २१०५, पृ० ५४१

का अनुग्रह होने पर बिद्या को उत्पन्न करती है और भक्त को ईश्वर से मिलाने का साधन बनती है। दर्शन में इसी माया को 'योग माया' कहा गया है। मुरली की इसी अति प्राकृत विधिरता का बाळ्यार मूर के अनेक पदों में मिलता है—

मेरे साँवरे जब मुरली अवर घरी। मुनि सिख-समाधि तरी।

मुनि यके बैब विमान। मुर-बनु बित्र-समाप्त ॥

ग्रह नखत तबत न रास। बाह्य बंने मुनि-पास।

जल बाके अचल टरे। मुनि आनन्द-उमग भरे।

अर-अवर-पति बिपरीति। मुनि वैनु कम्पित गीति।

सरना न सरत पयान। पबर्ब मोहि पान।

मुनि लग-मृग मौन घरे। कम तुन की मुनि बिसरे।

मुनि येनु मुनि भक्ति रहति। दुत शंतह नहि पडति।

बछरा न पीबे डीर। पंछी न मन में बीर ॥

इत्यादि^१

अगर हम मुरली की दार्शनिक व्याख्या करना चाहें तो कह सकते हैं कि मुरली के रूपक के द्वारा मूर ने अष्ट-ब्रह्म की महत्ता स्पष्ट की है।

रास-सीसा

'रास' कृष्ण-सीसा का प्रबान अर्थ है। यह मगवान् की झीका है। दार्शनिक पक्ष में यह सृष्टि के आविर्भाव और तिरोभाव को सूचित करता है। उस चिदानन्द सत्ता के लिए सृष्टि और प्रलय का कोई अर्थ नहीं है। जिस प्रकार समुद्र में बुरबुर उठते हैं और भोग हो जाया करते हैं, उसी प्रकार उस सत्ता से जड़ और चेतन का जन्म और विकास होता है। अन्त में सब इष्टि-अवन्त उसी में लुप्त हो जाता है। वास्तव में यह सब बीसा भाव है। रास-सीसा में कृष्ण परब्रह्म हैं और गोपियाँ और राबा उन्हीं से विरहित बीबायामा के रूपक हैं। सीसा माव के लिए उनका जन्म होता है। उत्पन्नान् के उसी में लय हो जाते हैं। यह रास सारी सृष्टि में व्याप्त है और विवशासासनवन्धित है। ब्रह्म से बीब उत्पन्न होता है और अन्त में उसी में लय हो जाता है। साधारण मनुष्य इस भेद को समझ नहीं पाता। अतः मगवान् गोपियों की उत्पत्ति करके रूपक के रूप में अपनी सीसा भक्त के सामने रखते हैं। जो इस सीसा के वास्तविक रूप को समझ लेता है, वह उसमें रमता है और वह मगवान् से अभिन्न रहता है। सीसा द्वारा वह मगवान् को प्राप्त करता है।

रास की यह सीसा अतीतिक है। इसका गुण अनिर्बचनीय है। जो एक बार मगवान् की सीसा में भाग लेते हैं, बड़ी हमकी समझ पाते हैं। मगवान् व मिलन का गुण इन्द्रियेतर है। उसका अनुभव अवबलकृपा के बिना नहीं हो सकता। इसलिए

मल्ल रास की रंगस्थली कृन्दावन समुनालत तपान-कुञ्ज और उन गोप-गोपिकाओं को बन्ध कहते हुए नहीं कहता । जो इस रास में भाग लेते हैं और जिन्हें मगवान् का अनुग्रह प्राप्त हुआ है, उनका सत्य यह है कि वे उन गोपियों से तादात्म्य स्थापित कर लें और रास में भाग लें । अतः कृष्ण-भक्त-कवि रास होती आदि में मानसिक भाग लेकर भगवत् मिलन के आनन्द की प्राप्तिकरता है । मगवान् की सीता की मित्रता और उसकी असीमिका को पोषित करते हुए मूर ने सिखा है—

नित्य धाम कुन्दावन स्याम । नित्य रूप राधा बज्रवाम ॥
नित्य रास अतः नित्य विहार । नित्य मान प्रकृतानिहार ॥
बहु-वय पैई करतार । करन हरन त्रिभुवन पैई सार ॥
नित्य कुञ्ज-मुल नित्य द्विदोर । नित्यहि त्रिविध-समीर शरीर ॥
सदा बसंत रहत जहूँ बात । सदा हर्ष, जहूँ नहीं उदात ॥^१

मूरदास ने जिस कृन्दावन की वन्दना की है वह पाण्डिब होते हुए भी अपाण्डिब है । असीमिका सीता का रंगस्थल लौकिक नहीं हो सकता । इसी कृन्दावन में कृष्ण की सीता सर्वत्र चरती रहती है । स्पष्ट है कि कृष्ण भक्तों का रास वास्तव में ईश्वर स्वीयता का रूप है । रास के इस आध्यात्मिक रहस्य से मूर अवश्य परिचित थे । उन्होंने लिखा है—

रास-रास-रोति नहि बरनि भाव ।
कहाँ बैसी बुद्धि, कहीं वह मन नहीं यह चित्त त्रिप भ्रम भुलावे ॥
जो कहीं, कोन जाने, जो निगम-मयम-रूपा बिनु नहि या रतहि पावे ।
भाव ही भजै बिनु भाव में ये नहीं भावही नहि ध्यानहि बतावे ॥
यहै निज मंत्र यह ज्ञान यह ध्यान है हरन-बंधनि भजन सार पावे ।
यहै नापी बार-बार प्रभु मूर के, नैव कोउ छै, नर-बैह पावे ॥^२

रास की आध्यात्मिकता से मन्दरास भी परिचित थे । "रास-बंधाध्यायी के अन्त में मन्दरास ने लिखा है—

नित्य रास रमनीय, नित्य गोपी जनकसम ।
नित्य नियम ही बहुत नित्य नवतन अति सुख ॥
यहै परब्रह्म पररास कहत कहुँ कहि कहि भाव ।
जैत सहस भूत पाव जगहैं अंत न पाव ॥

भक्त-वर्धयित्री मीराबाई के अनेक पदों में हमें रहस्यवाद की ध्वनि मिलती है । मीरा यहाँ एक ओर "विपुला" की अर्पना करती गिराई देती हैं वहाँ दूसरी ओर

१ मूरदास (भा० ब० समा) पद सं० १४११ पृ० १२०४ १२०५

२ वही (") पद सं० १६२८ पृ० ६०८

“मुक्तिमान् सौन्दर्य” श्री गिरधरदास (सकुण प्रह्ला) के प्रेम में डूबी सामने आती है। इस प्रकार मीरा में समुण और निगुण रहस्यवाद का भी निराकरण हो जाता है। कभी ये कहती हैं—

रमेसा बिन नींद न आवै ।

नींद न आवै बिहू सतावै प्रेम की प्राप्ति बुलावै ।

बिन मिया जोत मंदिर प्रीतिपारो, बीपक दाम न आवै ।

पिया बिन मेरी सेज प्रभुनी, जागत रैय बिहूवै ।

×

×

×

मीरा के प्रभु कबरे मन मोहन मोहि आवै ।^१

मीरा ‘गिरधरदास’ को प्रिय के रूप में मानकर उनसे तादात्म्य स्थापित कर उसका आत्म-विमोह होना चाहती है—

पिया अब घर आग्यो मेरे, तुम मोरे हूँ तोरे ।

मैं जम तेरा पब निहाऊँ, माया बिसबत तोरे ।

अबक महीती अबहुँ न आवि मुक्तिमन तु मेह जोरे ।

मीरा कहे प्रभु कबरे मिलोये, बरसन बिन बिन मोरे ।^२

और—

“मूहरे आग्यों जी रामा, मेरे आगत आत्मा सामा ।

तुम मिलिया मैं बोहो सुख पाऊँ, सरें मनोरथ कामा ।

तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं जैसे सुरज घामा ।

मीरा के मन अबर न माने जाहे सुन्दर स्वामा ।^३

मीरा यही साजसा रखती है कि कभी न कभी अवश्य ही उस प्रिय के पलंग पर ‘पीड़’ कर ‘हरिरंज’ में पूर्णतः रंज पावेंगी—

मूँ गिरधर दासा नाख्यारी ।

नाच नाच मूँ रतिक रिताबी, प्रीति पुरतन बाँध्यारी ।

स्वाम प्रीति रो बाँधि धुँधर्या मोहन म्हारो साँध्यारी ।

भोक नाज कुतरा परज्याबी जगना जेकथा राख्यारी ।

प्रीतम पल छब एव बिबराबी, मीरा हरि रग राख्यारी ।^४

‘प्रिय’ की प्रतीक्षा में वे प्रतिक्षण बाँधी हैं। सम्पूर्ण संसार सुखावस्था में है। पर उनकी बिरहिणी आत्मा किसी की याद की टीस में बाँसुओं की मासा पिरोती रहती है। रात के एक-एक पल तारे गिन-गिनकर बटते हैं —

१ मीरा की पदावली (सं० परगुणम चतुर्वेदी)—पद सं ७४ तथा संस्करण

२ वही (") " ११४

३ वही (") " १७

४ वही (") " १७

बिरहिन बैठी रंगमहल में मोक्षमन की लड़ पोर्बे ।
एक बिरहिन हूँ ऐसी वैसी अनुबन की माता पोर्बे ॥
तारा मिय मिय रंग बिहारी मुख की पड़ी कब आब ।
मीरा के प्रभु गिरधर नाथ मिलके बिछुड़ न आवे ॥^१

मीरा को सारी प्रकृति हरि के उपयोग-विधान में रची दीख पड़ती है—

मतवारो बाहर आए रे हरि को संबेतो कबहुँ न साये रे ।
बाहर भोर पड़पा बोल, कोयल सब सुपाये रे ।
(इक) कारी धूम्रिपारी बिजली कमल बिरहनि प्रति डरपाये रे ।
(इक) पार्ब-बाबे पवन मधुरिपा, मेहा प्रति लड़ साये रे ।
(इक) कारी नाथ बिहू प्रति बारी मीरा मन हरि भाये रे ॥^२

दीर्घ कामीन प्रतीक्षा के बाद अन्त में 'पिय' से मिलन हाथा है भीर मुख को
सीमा नहीं रहती—

भूारो बासिमिया घर बाग्यो जी ।
तबरी ताप मिट्यो मुख पास्यो हिलमित भवत बाग्यो जी ।
घपरी मुख मुख भोर भयन भयां भूारे बाग्यो बाग्यो जी ।
कपरा बैल कमोदक कुलां हुरा भयां भूारे बाग्यो जी ।
कम कम भूारो सीतल तबची मोहन बाग्यो बाग्यो जी ।
तब भवतारा कारज सायां भूारा परब निभाग्यो जी ॥^३

बचित्री मीरा के ऊपर उद्धृत पदों में रहस्यात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से
हमें देखने को मिलता है । 'गिरधर' को प्रति मानकर अमो मित्रने के लिए लड़पनी
रहती है । यह बीबाया के परमारमा से मिलन की ओर स्पष्ट संकेत है ।

१. भाग्यकामीन हिको बचित्री—बा० बाचित्री बिगा, पृ० ११६ से उद्धृत ।

२. मीरा की बचित्री (में दण्डुपाम बगुडरी) पद सं० ८१ तथा मस्तराज ।

३. बहो, पद सं० ११२ ।

• षष्ठ अध्याय
काव्य-कला

१

भाव-पक्ष

आलवार भक्त और १६ वीं शती के

हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवि

काव्य-कला

(भाव-यत्न)

तुलनात्मक अध्ययन

भाव-यत्न का सामान्य विवेचन

काव्य की बिठनी ही परिभाषा दी गयी है। काव्य के वास्तविक स्वल्प को समझने का प्रयास विद्वानों ने किया है और अपने-अपने ढंग से उसका विवेचन भी किया है। काव्य-कला के विषय में पारश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणों में पर्याप्त अन्तर है। भारतीय परम्परा में काव्य को पारश्चात्य ढङ्ग से विभाजित नहीं किया गया है। यहाँ के आचार्यों ने काव्य की परिभाषा प्रबोधन, गुण-दीप तथा विविध अङ्गों पर पर्याप्त भाषा में विचार किया है। यहाँ रस और धर्मकारों को पितृ महत्त्व दिया गया है और मूल-मूल काव्य की भाषा की ओर रही है। धामद ने रामायण सहित काव्यम्, अम्भट ने 'सहोषी शम्भार्यो', विबनाभ ने 'वाच्य रसात्मक काव्यम्' तथा पण्डितराज जयन्ताभ ने 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शास्त्र काव्यम्' माना है। इन परिभाषाओं में बाह्य अन्तर हाथ हुए भी वास्तविक अन्तर नहीं है, क्योंकि प्रायः सभी आचार्यों ने रस को ही काव्य की भाषा अङ्गीकार किया है और अर्थकार को उसका सहायक तथा गुणों का उत्कर्ष हेतुक माना है।

काव्य का मुख्य आधार 'भाव' है। रस भाव का अभिव्यक्ति मत्त द्वारा होती है। इसी को ताका क आधार पर विद्वानों ने काव्य क दो पक्ष माने हैं—'अन्तर' और

‘बहिर्य’। इसी को भाव-यस और कला-यस अथवा अनुभूति-यस और ज्ञान-यस भी कहते हैं। जिस प्रकार आत्मा और शरीर का पारस्परिक सम्बन्ध अमिट है, उसी प्रकार भाव और कला परस्पर सम्बन्धित हैं। एक के अभाव में दूसरे की स्थिति असम्भव है। जिस प्रकार जीवन शरीर और आत्मा के एकत्र पर निर्भर है, उसी प्रकार काव्य का जीवन भी भाव और कला के पारस्परिक योग पर आधारित है।

भाव-यस का प्रबल अङ्ग ‘रस’ है। भाव और रस में अम्योन्माद्य-भाव सम्बन्ध है। काव्य का लक्ष्य ही रस-परिपाक होता है। रस-परिपाक में भाव महत्त्व पूर्ण स्थान रखते हैं। दोनों के अम्योन्मादित सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए भरत मुनि ने बिद्या है—‘न भाव हीनोमिति रसो न भावो रसवन्निव’ रस की निष्पत्ति भावों के विविध स्वरूपों के सम्मिश्रण से होती है। विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगात् रस निष्पत्ति’ भरत मुनि के इस सूत्र में विभाव अनुभाव व्यभिचारी-भाव आदि चम्प भाव के ही विविध रूपान्तर हैं। इन्हीं के उचित सम्मिश्रण से काव्य में हृदय सम्प्राप्ति गुण का विकास होता है। एक के हृदय का दूसरे के हृदय के अनुकूल होना ही हृदय सम्प्राप्त कहलाता है। आलोचकों ने हृदय सम्प्राप्त और साधारणीकरण को पर्यायवाची माना है। साधारणीकरण रसानुभूति की पर्यायवाची है। इसी स्थल पर आकर कवि की भाव-बाधाएँ सर्वसाधारण की भावनाएँ हो जाती हैं। कवि की भावनाओं का पर्याय रूप में अनुभव होने पर रसानुभूति होती है।

अम्योन्माद ब्रह्मानन्द का सहोदर कहलाता है। उस काव्य से क्या प्रयोजन है, जो आनन्द का उल्लेख न करे, रस-वर्षा द्वारा सङ्कल्प को आनन्द से आन्तर्भावित न करे ? आनन्द या रस हृदय-यस अथवा भाव-यस की अन्तर्गत विधि है। जिस काव्य में यह निहित वर्तमान है, वही श्रेष्ठ काव्य है।

भावानुभूति और रसानुभूति में बहुत कम तात्त्विक भेद है। भावानुभूति की स्थिति कलाकार में मानी जाती है और रसानुभूति पाठक या श्रोता को होती है। इसका यह भय नहीं कि कलाकार रसानुभूति से और पाठक भावानुभूति से वंचित रहते हैं। दोनों एक ही वस्तु के दो निम्न रूप हैं। कवि में विभावक कल्पना की अपेक्षा रहती है और पाठक में प्राहक की सौन्दर्यानुभूति भावों की जागृत होती है। भाव के उदय होने पर कलाकार अपने काव्य की सृष्टि करते हैं। पाठक का श्रोता काव्य रूप में परिणत इन्हीं भावों की रसानुभूति करते हैं। इस प्रकार सौन्दर्य-भावना भावानुभूति की जननी सिद्ध हुई और भावानुभूति रसानुभूति की।^१

काव्य सम्बन्धी उपर्युक्त सामान्य विवेचन के पश्चात् आठवार मर्त्यों के तथा आलोच्यवासीय हिन्दी दृष्टि मन्त्र-कवियों के काव्य के विषय में हमें यह कहना है कि यदि भाव से प्रेरित होकर काव्य के शेष में प्रवृत्त होने वाले इन कवियों के काव्य में

बहिरंग । इसी को भाव-यस और कसा-यस बचवा अनुभूति-यस और रूप-यस भी कहते हैं । जिस प्रकार आत्मा और शरीर का पारस्परिक सम्बन्ध अमिट है उसी प्रकार भाव और कसा परस्पर सम्बन्धित हैं । एक के समापन में दूसरे की स्थिति असम्भव है । जिस प्रकार जीवन शरीर और आत्मा के एकत्र पर निर्भर है, उसी प्रकार काव्य का जीवन भी भाव और कसा के पारस्परिक योग पर आधारित है ।

भाव-यस का प्रधान अङ्ग 'रस' है । भाव और रस में अयोध्याभाव-भाव सम्बन्ध है । काव्य का सत्य ही रस-परिपाक होता है । रस-परिपाक में भाव महत्व पूर्ण स्थान रखते हैं । शोनों के अयोध्यामिष्ट सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए भट्ट मुनि ने लिखा है— न भाव हीनोस्ति रसो न भावो रसवन्निष्ठ " रस की निष्पत्ति भावों के विविध स्वरूपों के सम्मिश्रण से होती है । 'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगात् रस निष्पत्ति' भरत मुनि के इस सूत्र में विभाव अनुभाव व्यभिचारी-भाव आदि शब्द भाव के दो विविध स्वरूप हैं । इन्हीं के उचित सम्मिश्रण से काव्य में हृदय सम्बन्धी गुण का विकास होता है । एक के हृदय का दूसरे के हृदय के अनुस्यू होना ही हृदय सम्बाध कहलाता है । आशोकों ने हृदय सम्बाध और साधारणीकरण को पर्यायवाची माना है । साधारणीकरण रसानुभूति की पर्यायवाची है । इसी स्वप्न पर आकर कवि की भाव-आराधना सर्वसाधारण की भावनाएँ हो जाती हैं । कवि की भावनाओं का यथार्थ रूप में अनुभव होने पर रसानुभूति होती है ।

काव्यात्मक ब्रह्मात्मक का सहोदर कहलाता है । उस काव्य से क्या प्रयोजन है, जो आत्मक का उद्धार न करे, रस-वर्षा द्वारा सहृदय को आत्मक से आप्नायित न कर दे ? आत्मक या रस हृदय-यस बचवा भाव-यस की अन्त्य निधि है । जिस काव्य में यह निधि वर्तमान है वही श्रेष्ठ काव्य है ।

भावानुभूति और रसानुभूति में बहुत कम तारिफ़ भेद है । भावानुभूति की स्थिति कलाकार में भारी जाती है और रसानुभूति पाठक या श्रोता को होती है । इसका यह अर्थ नहीं कि कलाकार रसानुभूति से और पाठक काव्यानुभूति से वंचित रहते हैं । शोनों एक ही वस्तु के दो भिन्न रूप हैं । कवि में विभावक कल्पना की अपेक्षा रहती है और पाठक में चाहक की शीतलानुभूति भावों को ग्रहण करती है । भाव के उदय होने पर कलाकार अपने काव्य की सृष्टि करते हैं । पाठक या श्रोता काव्य रूप में परिणत इन्हीं भावों की रसानुभूति करते हैं । इस प्रकार शीतल-भावना काव्यानुभूति की बतली छिड़ हुई और काव्यानुभूति रसानुभूति की ।^१

काव्य सम्बन्धी उपर्युक्त सामान्य विवेचन के परवत् आठवार भक्तों के तथा आताप्यकालीन हिन्दी कृष्ण-यस-कवियों के काव्य के विषय में हमें यह कहना है कि भक्ति-भाव से प्रेरित होकर काव्य के क्षेत्र में प्रवृत्त होने वाले हम कवियों के काव्य में

विविध भावों का सुन्दर चित्रण हुआ है। जब भाव तन्मयता के कारण साम्प्रत्यक्ष सचन रूप धारण करता है और मानव हृदय केर तक आस्थापन करता हुआ उसमें रम्य करने लगता है तब रस की सृष्टि होती है। आलोच्य काव्य में विविध रसों की सुन्दर व्यञ्जना हुई है। आगाधी पृष्ठों में आठवार तथा आलोच्य हिन्दी कृष्ण मल्ल-कवियों के काव्य के भाव भद्र का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

भाव-चित्रण और रसानुभूति

वास्तव्य

'वास्तव्य' मानव की मूल मनोवृत्तियों में एक है। वास्तव्य में वास्तवता का भाव है। वास्तवता सामान्य रूप से समष्टि प्रेम की ओर संकेत करती है, परन्तु वास्तव्य में हृदय की अतिनी साम्प्रता इस भाव में अभिव्यक्ति होती है। उतनी दूसरे किसी भाव में नहीं। यह भाव कृष्ण मल्लों का सर्वस्व है, उनकी अपनी मौलिकता है। वास्तव्य भाव में जिस विषय की ओर संकेत है, वह भी अपने में बहुमूल्य है। जो वो माता तथा पिता का अपनी संतति से प्रेम स्वाभाविक है। परन्तु वह सामान्योन्मुख प्रेम वास्तव्य में वही एक ओर विषयतर विरक्ति का भाव है। दूसरी ओर इसमें पूर्ण तन्मयता और समर्पण का भाव है। यही इस भाव का वैशिष्ट्य है।

आठवार मल्ल के तथा आलोच्य हिन्दी कृष्ण मल्ल कवियों के काव्य में वास्तव्य भाव का उच्चकोटि का चित्रण हुआ है। इन कवियों ने मान-बेगटा मान स्वभाव के मूल से सूक्ष्मतर चित्रण द्वारा वास्तव्य को रस-कोटि तक पहुँचा दिया है। मान-स्वभाव की छोड़क का बिम्बा बनवा बैंगन और वास्तव्य का जो उर्मंग भरी निरालम तथा जोनी प्रीति है, उन सबका बिना तथा अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण इन कवियों के काव्य में हुआ है।

वास्तव्य का लयीक भरण और आरपक वर्णन करने में हिन्दी के कृष्ण मल्ल-कवियों में अहाम्मा मुरदास का स्थान सबसे ऊँचा है। बात-बर्णन की मजीबता भाविकता और प्रभावोत्पादकता का दृष्टि से जो स्थान हिन्दी में मुर को प्राप्त है, वह तमिळ में पेरियाट्टार को मिला है। तमिळ में पेरियाट्टार ही ऐसे प्रथम कवि हैं, जिन्होंने अव्यक्ति विद्यास पटल पर कृष्ण का बात-सीमाओं के सुन्दर चित्र चित्रित किए हैं। पेरियाट्टार (मानवों की) ने मान-मुक्त चट्टाना और अन्तर्भावों का जेठा मुरम और मनार्थान्तरिक चित्रण करने काव्य में प्रस्तुत किया है। बैंगन भाव तक तमिळ में कोई कवि प्रस्तुत नहीं कर सका। करने आराध्य के बात मर का वर्णन करने की जो पद्धति तमिळ में "विन्द-अमिळ" के नाम से प्रसिद्ध है, उसने जगन्नाथ पेरियाट्टार ही है। पेरियाट्टार ने करने आराध्य माना-नायक गुण्य १) मान-बेगटा का बर्णन-विवरणानुसार जो मूल्य वर्णन प्रस्तुत किया उसकी यथावत्ता और

मार्मिकता को देखकर परवर्ती कवियों ने उस विशिष्ट पद्धति को आदर्श रूप में अपनाया और उस शैली को 'पिस्ल्ल-तमिल' के नाम से अभिहित किया।

आठ्ठवारों तथा आसोष्य हिन्दी कवियों द्वारा अंकित बाल-स्वभाव चित्रों के तुलनात्मक अध्ययन को प्रस्तुत करने से पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि तमिल के पेरियाळ्वार ने 'पिस्ल्ल-तमिल' की पद्धति में बाल-वैज्ञानिकों का बय-विकासानुसार जो मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है, उसका संक्षेप में परिचय दिया जाय। तभी पेरियाळ्वार के वास्तविक महत्व को जाना जा सकता है। पेरियाळ्वार ने दैवी-दान से आच्छादित शिशु-रूप में प्राप्त किया था और उसका पासन-पोषण किया था शिशु की बाल-वैज्ञानिकों का अत्यन्त निकट से अवलोकन करने के कारण ही पेरियाळ्वार का बाल-वर्णन सजीव और मार्मिक बन सका है। यही कारण है कि उनके वास्तव्य में कहीं भी कृत्रिमता दिखाई नहीं देती। पेरियाळ्वार ने अपने आराध्य सीमा-नामक कृष्ण के वास्तविकता को बस बय-शब्दों में विभाजित कर प्रत्येक में होने वाली विशिष्ट बाल-मुलम-वैष्टा का चित्रण किया है, जो बाल-मनोविज्ञान की कसौटी पर भी खरा उतरता है। "पिस्ल्ल-तमिल" में वर्णित बस बय-शब्द इस प्रकार हैं— 'काप्पु, चेंकीरै, ताल जप्पाळी मुत्तम बारानै अम्मुनि चिस्वरै, चिट्टिन चिर्वैत्तल और चिब ठेयेट्टन।" 'काप्पु' का अर्थ है 'रक्षा'। यह शिशु के दो मास की अवस्था को सूचित करता है। 'माता कभी अपने बालक के सँभले रूप पर ग्योछावर होती है तो कभी हृष्टि लपने के भय से विस्वस्मर से उसकी रक्षा की प्रार्थना करती है। 'चेंकीरै पस्वम्' अर्थात् बय-शब्द शिशु की वह अवस्था है जब वह (चेंकीरै पीचे के समान) घिर को ऊपर उठाकर हिलाता है। यह शिशु की वह वैष्टा है, जबकि उसकी अवस्था पीच महीने के लगभग होती है। 'ताल' वह बय-शब्द है जब माता शिशु को पालने में लिटाकर सोरी पाकर उसे चुलाती है। शिशु लोरी की मीठी ताल के बधीमूत हो सो जाता है। 'जप्पाळी' अर्थात् माता शिशु अपने बोगों हाथों को मिलाकर ठासी बनाता है और हृष्टित होता है। 'मुत्तम' शिशु की वह अवस्था है, जबकि वह दूसरों की प्रार्थना पर कुम्बन के लिए अपने मुख को आगे बढ़ाता है। दूसरे लोग शिशु-बेहरे पर कुम्बन कर पुनर्हित होते हैं। 'बारानै' वह बय-शब्द है जब माता पिता शिशु को अपने पास चुलाते हैं और शिशु कुटनों के बल पर रेंवता हुआ उनके पास जाता है। यह लगभग एक वर्ष की आयु है। अम्मुनि में शिशु के चम्प-खिलौना माँगकर हठ करने का वर्णन होता है। बालक रेंवता हुआ खिलन से परहेजता है और आकाश पर स्थित चन्द्र को देखकर उसे पकड़ कर उसके साथ खेलना चाहता है। 'चिस्वरै' बालक की

- 1 "Koppu —Section of Pillai Tamil describing the stage of childhood in which deities beginning with Vishnu are invoked to protect the child in about 2nd month of its birth, one of ten paruvams —*Tamil Lexicon*

उस अवस्था को सूचित करता है जब बालक बाबाज देवा करने वाली चीजों पर हाथ मारकर ध्वनि देवा करता है और अस्पष्ट रूप से कुछ कहता है। 'चिट्ठि चिट्ठि' में दूसरे बालकों या बालिकाओं द्वारा रेत पर या जमीन पर रेखाएँ खींचकर बताये गये छोटे घंटों की बासक के द्वारा छोड़ने पर उन्हें बिड़ाने का वर्णन होता है। 'बिस्तेरोट्टुस' अवस्था में बासक में खड़े होने की शक्ति आ जाती है। वह धीरे-धीरे चमने लगता है। इस अवस्था में बालक छोटे रथ (सकड़ी से बना बिलीना) को रस्सी से बांधकर उसे खींचता हुआ गली में चमने लगता है। पेरियाळ्वार ने इस प्रकार बच-विकासा अनुसार विषु की विभिन्न चेट्टाओं का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है जो मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रतीत होता है। इन बाल-चेट्टाओं के अतिरिक्त पेरियाळ्वार ने कृष्ण की योग्य क्रिओर-अवस्थाओं की न जाने कितनी ही कौशाओं का वर्णन किया है। तमिळ के आळ्वार भक्तों में केवल पेरियाळ्वार ने ही इतने विस्तार से कृष्ण के बाल-रूप का वर्णन किया है। कुमरोन्नराळ्वार, आन्दाळ तथा अन्य आळ्वारों के पदों में बाल-प्रसंगों की ओर संकेत मात्र है।

हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों ने यद्यपि पेरियाळ्वार की तरह बाल-चेट्टाओं के वर्णन के लिए किसी एक विशिष्ट प्रसासी को नहीं अपनाया तो भी सूरदास परमानन्ददास आदि के काव्य में वे सब दृश्यों के चित्रण मिल जाते हैं जो पेरियाळ्वार के काव्य में हैं। कहीं-कहीं तो मूर पेरियाळ्वार से भी जाये बड़ है। तमिळ के पेरियाळ्वार और हिन्दी के सूरदास अपने-अपने क्षेत्र में बाल मात्र का जमर बिठेरे हैं। इनके समरस का कवि कभी तक नहीं हुआ है। वास्तव्य की जगह धारा इन दोनों कवियों के काव्य में प्रवहमान है।

बच्चों की आग्रह साधारण चेट्टाएँ भी माता-पिता के प्रमोद का कारण बन जाती हैं। बघोरा रानी जब अपने गले से बासक की गिगु-मुसल छोड़ाई देखाई है, तब उनके आनन्द का ठिकाना नहीं रहता। सूरदास की के लक्ष्यों में—

बलत बैलि अनुमति मुस पावे ।

कुमुकि-कुमुकि पा घरती रंगत बननी बैलि रिताई ।

बैहरि ली बलि बात, बहुरि फिरि फिरि इतहीं कीं धाव ।

×

×

×

ताटी लिए मंद की रानी, माना पैम रिताई ।

तब अनुमति कर बैलि रयाम की कम-कम करि उत्तराई ।

सूरदास प्रभु बैलि-बैलि, गुर-गर-मुनि-बुद्धि भुजावे ॥^१

बासक कृष्ण मणिमय जीवन में अपने प्रतिबिम्ब को पकड़ने की कोशिश में है। कभी वे अपनी छाँट को पकड़ना चाहते हैं और कभी शिक्क-शिक्ककर अपनी रंगुनियों का लीन्दर्य दिखाते हैं। बघोरा गुन की छोड़ाई की देगवर पूर्वी नहीं

समाती । बार-बार मन्त्र को इस सुख में धामिल होने के लिए बुलाती है ।^१ पेरियाळ्ळ-बार (यसोदा के स्वाम पर) तो बालक की अनुपम छवि को देखने के लिए योजुक्त के समस्त मर-नारी को बुलाते हैं और बाब-सौन्दर्य का मन्त्र-सिद्ध वर्णन करते हैं । उन्मासपूर्ण शब्दों में वे कहते हैं—‘आकर देखिए ! शिशु कितने मोलेपन के साथ अपने पैर की रँगलियों को मुँह में लेकर चाटता है ? इसके पार-कमल का सौन्दर्य देखिए—हे सुन्दर ललनाएँ ! इसके पैर की छँबलियाँ इस प्रकार घोमित हैं मानों मोती और रत्न एक सूत्र में लपित हों । नुटनों के बल पर जाँयम में रेंगने वाले बच्चे का सौन्दर्य देखिए । कोमल नन्हें-मन्हें करों की अनुपम छवि देखिए । सुन्दर विकसित या मुल-कमल को आकर देखिए । नन्हें के प्रकाश कुछ नयनों को देखिए । पतली छोटी मृदुलियों को देखिए । छोटे काने बालों का सौन्दर्य देखिए ।’^२

भक्त प्रवर पेरियाळ्ळार ने कृष्ण को पालने में सुलाने के प्रसंग पर कई पद्य रचे हैं, जिनमें माता यसोदा के मातु-हृदय का भाव सौन्दर्यपूर्ण प्रभा के साथ प्रकट हुआ है । पेरियाळ्ळार की यसोदा प्रिय सुत को पालने में लिटाकर उन्हें सुलाने के लिए लोरी गाती है—‘मोती तथा रत्न लपित सुन्दर पालने को बह्या ने तुम्हारे लिए भेजा है । हे सुत ! ‘ठावेनो’ (सो बाला) इत्र ने भी तुम्हारे लिए किङ्कणी भेजी है । हे मेरे राजा । देवताओं ने तुम्हारे लिए सुन्दर-सुन्दर पूज्य पुनकर भेजे हैं । तुम

१ किलकत कान्हु कुदुस्वनि धावत ।

अनिमय कमल मंद कें धायन विष पकरिबे धावत ।

कन्हु निरवि धामु धौह की कर सौ पकरन चाहत ।

किलकि हँसत रावत ई बंतिपा पुनि-पुनि तिहि धावगहत ।

×

×

×

बाल बत्ता सुख निरवि बसोदा, पुनि-पुनि मंद बुलावति ।

—सूरसागर (धमा) पद्य सं० ७२८ पृ० २११

२ ‘देवैकपुळ्ळी पिडित् कुवैत न्युम

पारकमलकळ काजीरे पळ्ळवापीर । बन्नु काजीरे ।’

—पेरियाळ्ळार तिळमोळी १-२ १

३ ‘मुत्तुम मविपुम वयिरमुम न्योन्नुम

तत्तिप्पतित्तु तल्ले पेइतार पोत्त एङ्गुम

वत्तु विरनुम मविबन्धन पारकळ

घोत्तिट्टिस्तवा काजीरे घोन्नुवसीर । बन्नु काजीरे ।’

—वही १ २-२

‘पळ्ळन्ताम्पालोन्ना पयतास तवस्तान

मुळ्ळन्ता इस्तवा काजीरे । मुळिल मुत्तपीर । बन्नु काजीरे ।’—वही १ २-४

‘कन्कळ इस्तवा काजीरे कनबलपीर । बन्नु काजीरे ।’ —वही १ २-११

‘मुववम इस्तवा काजीरे, पुन, मुळपीर । बन्नु काजीरे’ —वही १ २ १०

रोओ मत । सो जाओ । भूदेवी तुम्हारे लिए धंजन और सिन्दूर लेकर आयी है । ह
नारायण ! ताने सो—सो जाओ ।' १

सूर का पद और भी सुन्दर है—

“बसोबा हरि पालने कुलार्थ ।

हमराबें कुलराइ, मरुहारें कोई-सोई कसु पार्व ।

मेरे लाल की भाइ भिरियाँ काहे न धानि सुपार्व ।

तु कहौ नहि बेगहि पार्व तोकी कागह कुलार्थ ।

कजहुँक पलक हरि मूर सैत हैं कबहुँ समर फरकार्व ।

सोबत बामि मौन छै के रहि, करि-करि सैन बतार्व ।

इहि समर धनुसाइ जठे हरि बसुमति मपुर माव ।

ओ कुछ सूर समर-मुनि कुरलम सो नग्न भामिनि पार्व ।” २

इन पंक्तियों में कैदा स्वामाजिक तथा मनमोहक बिन्न सूर ने उपस्थित किया है ।

पेरियाळ्वार की यद्योदा अपनी सहेलियों से शिकायत करती हैं—“पालने में छोड़ो तो देखा पद-महार करता है कि दूटने का डर होने सपता है । पोंद में उठा पूँ तो कमर तोड़ देता है । छाती से लगा भूँ तो पैट फाड़ देता है । मूम्ह से नहीं होती—इसकी सार-संभास ससी में क्या करूँ ?” ३ इस शिकायत में भी माता की समता बोस रही है ।

१ ‘माजिकरुम कट्टि बयिरम इरैकट्टि
धानि पोमाल केइत कन्नकिन्नल तोट्टिल
पेनि पिरमन बिडु तगताम
पनिक्कुरळ्ळे । तानेसो । बंयमळ्ळताने तानेतो ।”
‘इम्बिरन तानुम एळिमुईकिरुषो
तम्पु उबनाय मिट्टान तानेतो । तामरैरकणने तानेतो ।’
“कय्य तारंक्कन्नुरकु धन्नमुम तिमूरमुम
कैय्य कर्त्तप्पाळि कोणु उबळ्ळय्य निम्बुळ्ळ
देया । कळैल कळ ल । तानेतो । धरपत्तर्बयाने । तानेतो”

—पेरियाळ्वार तिरमोळी १ १ । ३ और ६

२ सूरसागर (भा० प्र० समा) पद सं० १११, पृ० २७५
३ चिट्ठिन तौट्टिल चिट्ठिय जईत्तिमुम
एनुत्तकोत्तिल मरकंमिरत्तिमुम
घोनुडीमुत्तिल उवरत्ते बाइत्तिमुम
मिडुक्कियायपाल नान कैत्तिल न नचाय ।”

—पेरियाळ्वार ११६

चन्द बिजोने का वर्णन होतो भाषाओं के कवियों ने किया है। सुर के नाम उल्लेख करते हैं—

‘मया, मैं तो चंद बिजोना नहीं।
 नहीं लोठि चरनि पर घबहीं तेरी गोद न ऐहीं।
 सुरभी की पय पान न करिहीं, बैनी सिर न कुंहीं।
 हूं ही पुत भंद बाबा की तेरी सुत न कहूँ।’^१

× × ×

‘मया री मैं चंद लहूँगी।
 कहा करीं बलपुट भीतर की बाहर ब्योकि लहूँगी।
 यह ती क्षममसात सकसोरत कैसे लै नु लहूँगी।
 यह ती निष्ट मिळ्यही बेसत बरख्यी हों न लहूँगी।’^२

पेरियाळ्वार की बहोश पुन की माय पर चन्द्र को सम्बोधित कर कहती हैं—
 “हे विद्याम चन्द्र ! मेरा ‘चिरकुटन (छोकरा) जो मेरे लिए अमृत के समान बमूख्य है जो मेरा सीमाग्य है अपने गन्धे कोमल करो से तुम्हारी और लक्षित कर तुम्हें हुआ रहा है। यदि तुम इस स्वामकर्ण बासे के साथ खेलना चाहते हो तो मेहों के पीछे क्षिप मत जाओ। पर उल्लसते-कूबते जा जाओ।”^३ (पेरियाळ्वार ने ‘चिरकुटन’ शब्द के प्रयोग द्वारा मार्गों वारणस्य रस की बाध प्रवाहित की हो) माता का हृदय बच्चे को किंचित् भी कष्ट होते नहीं हैल सकता। यद्योवा चन्द्र से कहती हैं—‘हे चन्द्र जस्वी जा जाओ ! बैर मत करो जिससे इस विषय नर्म्ह के बाध कर तुम्हें दुसाते बक न जायें।’^४ चन्द्र का सौन्दर्य भी माता के लिए अपने पुन के सौन्दर्य के सम्मुख कुछ भी नहीं है। यद्योवा चन्द्र की सिस्ती उड़ाती कहती हैं—“ज्योतिमय रज पर विराजमान होकर सबन प्रकाशमान चन्द्र ! क्या तुम्हारा सौन्दर्य मेरे सुत के मुक्त की नांठि की बराबरी कर सकता है ? देखो—मेरे सार के सुन्दर मुख से अमृत धम सार टपक रही है और मेरा साइता टोतपी बोली से तुम्हें हुआ रहा है। मेरे

१ सुरसागर (ना० प्र० सभा०) पद सं० ५११ पृ० १२७

२ वही () पद सं० ५१२ पृ० १२७

३ एन चिरकुटन एनकोर इनमु एंपिरान
 तन बिच केचळाल कट्टि-कट्टि पळ्ळिन्नान
 संजन बच्चनोडु यडलाड उडवियेन
 मंजिल मरैयाई मचमलि । मकिमुत्तोडी वा ।”

—पेरियाळ्वार विरमोळी १४-२

४ “एतर्न बैरमुम एन मकन मुकन बैरोब्बाय
 विलकन केचटबाचन उर्नै विळिळिन्दु
 कतलम मोबाये यम्मुली । कडितोडी वा”

—वही १८१

सर्वप्रिय के धों बुलाने पर भी तुम नहीं आओगे तो मैं तुम्हें बहरा ही समझूँगी ।”^१
फिर वह अग्र से प्रार्थना करती हैं— “मेरे मात को नींद आ रही है । वह जमाई से
रहा है । यदि वह अब तो नहीं पावेगा तो उसका अभी पिया हुआ दूध नहीं पचेगा
और पेट को बिगाड़ देगा । इसलिए तुम उसकी मांग पर जल्दी आ जाओ ।”^२ जब
अग्र पर माता के दावों का असर पड़ता नहीं दीनता तब वह उसे चेतावनी दे जाती
है— “मेरे सुत का तिरस्कार मत करो कि यह छोटा बालक है । समझ तो यह वह
बासक है जो एक बार गट-पत्र पर सोया था । यदि वह अपनी शक्ति दिखाना चाहे
तो अभी सटकर तुम्हारे ऊपर डूबकर तुम्हें पकड़ सकता है । अतः इस ओर जल्दी
आ जाओ ।”^३

माता अपने बालक के माँवसे रूप पर कभी स्वीछावर होती हैं तो कभी हृष्टि
संगने के भय से “छाई-नौन” उतारती हैं । कभी बिस्वस्तर से रसा की प्रार्थना करती
हैं । परमाण्वदास का निम्नलिखित पद्य देखिए—

“यह तन बारि डारों कमल नयन पर साँबलिया मोहि भावै रे,
जान कमल की रैनु असोडा लै-लै तिरहि बड़ावै रे ।
से उरंग मुक्त निरसन लागी रहि रहि लौन उतारै रे,
कीम निरासी हृष्टि लगाई लै लै घबर भारै रे ।
तु मेरो बालक हो । नयननयन तोहि बिसम्बर राखे रे,
‘परमाण्व’ स्वामी फिर बीबहु बार-बार भों भावै रे ।”^४

पेरियाळ्वार की वसोडा भी वृष्ण को “हृष्ट-दीप” से बचाने के लिए उमक
हाथ कण (मंग फूँकर कंकण पहनाने का रिवाज) पहनाने के लिए, अपने पाम
बुलाती हैं—“हे माता ! ऐसी गोपूति बेता में चौपहे पर मत जाओ । लोगों की

१ “अलक्षितबायिळ अमुववुरल तैळिबुरा
मळनैमुत्तल इल्लोस्ताल उर्म कुपुक्किन्दाव
कुमुक्क तिरिवरन डूववडुव नी पोरियेल
पुळ विलवाकले निनबेविडुकर मावती ।”

—पेरियाळ्वार निरमोळी १४२

—वही १४६

—वही १४७

२ “कल सुमित कोस्त्यकरति कोट्टावी कोळकिन्दाव
उष्ट मुत्तप्पलराकष्टाविरंकाविल
विशमित मप्रिय मावती । विरंमोडी वा”
बाववनेल पेरियम अय्येन पथोरनाळ
छलितिल बळल विरञ्जनन इवन
केनेट्पाडम्पु विपुलकोस्त्य ब वैकुण्ठ मैम
माने वलियाने मावती । विरंमोडी वा”
अय्यपान और वस्तन तंनवाय—पृ० ७०२ के अन्तर्गत

नगर सग जायगी । मेरे पास बाबो । 'दृष्टि-बोध' परिहार के लिए यह कंकण पहन लो ।"^१

कन्या का उलट जाना, पुटनों बसना वैहली पार करना यथोक्ता द्वारा बसना सीखना डगमगाकर बसना फिर दीड़ने लयना, ब्रूय के बाँठ विकलना ठोठसी बीसी बीसना आदि उनके बय-विकास के साथ घटित होने वाली अनेकानेक बातों को तमिल में पैरियाळवार ने तथा हिन्दी में प्रमुख रूप से सूरदास और परमात्मदास ने अत्यन्त स्वाभाविक और वाक्पूर्य डङ्ग से व्यक्त किया है । इस प्रकार इन कवियों के बाब जीवन के चित्रण में सर्वाङ्गीणता और सम्पूर्णता पाई जाती है । पैरियाळवार द्वारा वर्णित बाल-वृद्ध के कुछ चित्र देखिए—

कान्हा का एक दाँठ फूटा है और वह मधुर हँसी हँस रहा है । यथोक्ता उस छवि को देखकर गहरी है— 'सालिम आकास में उड़ने वाले चीब के बाद की गॉक की शक्ति हँसने वाले साम-सात नन्हें पुँह के अन्दर से सुन्दर दन्त बँकुर फूट रहा है ।'^२ बालक जब पुटनों बसता है तब किकली की ध्वनि निकलती है । माता बच्चे को अपनी पीठ से समायी है और स्वयं मात से प्रसन्नित हो उठती है ।^३ कान्हा धीरे-धीरे बसने लगा । यथोक्ता बँधी है । कान्हा बिल-बिलान्तर हँसता हुआ आकर उनसे लिपट जाता है और उनसे प्यार करता है । उसके भुँह से झरू रस ही सार की धारा प्रवहमान है । वह सिसु कुम्भन माँ के हृदय में अमृत-प्रवाहित करता है ।^४ बच्चे के विकास के प्रति माँ के हृदय में अदम्य उत्साह रहता है । उसकी समस्त क्रियाएँ और भावभावें उसी में केन्द्रित हो जाती हैं । माँ का प्रत्येक क्षण बालक के साथ कटता है ।

बालक ब्रूय पिये बिना ही रात को सो गया । माता यह प्रतीक्षा करती है कि वह स्वयं जागेगा । परन्तु बालक पकावट के कारण जागा नहीं । माँ का हृदय यह मान नहीं सकता कि बच्चा मुखा छोये । पैरियाळवार की यथोक्ता बहुत चिन्तित होती

१ पैरियाळवार तिरमोळी, ९-८ २

२ 'वेवकरिड मुनिकौपिल तोष्ठु म बिबिरे मुळप्पोल ।
नक्क बैनुवर बावुत्तिल्लो मोरी नळिर वेव्वल मुळप्पिलक ।'

—पैरियाळवार तिरमोळी १-४-२

३ 'किक्की कट्टि किरि कट्टि कंमिल ।
कंकनमिडु कळत्तिल तोटर कुरिड ।
तम कनत्ताले चत्तिरमे नडन्नु वन्नु ।
एन कन्मन एनी पुरव कुस्तुवान ।'

—वही ११२

४ "कन्नुडम तिरुत्तामोत्तूरी कन्-कन् चिरल वन्नु ।
मुन वन्नु निडु मुत्तम तवम एन मुक्किल वन्मन तिरुवार्न ।

—वही, १-४-४

हैं। सबेरा होते ही बड़ कुप्य को जमाती हैं। यह घटा करके कि बूझ पिये बिना ही अन्य बातों के साथ खेजने जसा न जाय बड़ कुप्य से कहती हैं—“तासा तु मुला लेसने मठ जा। बूझ पीकर जाना।”^१ घेसकर कुप्य घूम-घूमरिष्ठ होकर मोलता है। उसके बेहरे पर पसीने की नहीं बूँदें माना मोली के समान घोषित हों।^२

कुप्य द्वारा बूमरों को 'हाठ' का भय दिवाने का पेरिबाळवार ने बड़ा ही सरस चित्रण किया है। कुप्य जप्पी से जैसे लोल-लोलकर बरद करता है। हाथ की उकलियों को एक विविध प्रकार से रदकर कुछ विविध ध्वनियों पैदा कर बूमरों को 'मय' दिवाना है। बघोदा बच्चे को देखकर कूनी नहीं समाती।”^३

वास-मुसम केप्टाओं का वर्णन करने में अष्टप्राय के सूरदास और परमानन्द दास ने अद्भुत मृदुमत्ता प्रदर्शित की है। इनके पदों की विधेयता यह है कि वे हमारे कल्पना-अंग में भी थोड़ी देर के लिए उमी दासस्य भाव का आभावरण और अम-विम उपस्थित कर देते हैं।

बूम बूमरिष्ठ कुप्य का मूर ने बहुत ही सुन्दर चित्र अंकित किया है—

‘सोमिष्ठ कर नवनील तिए ।

पुनरुनि जसठ रैन-सन अंजित मुस रनि तैप टिए ।”

बच्चे को घूब न पीता हुआ टेंगरर समबमस्कों के प्रति उनके स्पर्श के भाव को उल्लेख कर बूम विमाती हुई माता का चित्र देगिए —

‘कजरी की बय पियहु लाग जासों तेरो बैनि बई ।

जस्त बैलि बज बात्तर, रयो बत्त-बत्त बई ।

यह मुनि सै हरि पीवन लागो ज्यों-ज्यों सई ।”^४

बच्चों के नामकरण और अष्टप्राय आदि संस्कारों के अवसर पर माता का हृदय घना नहीं समाता। कनदिन में उनके हृदय में मोद के साथ सुर-शुश्री भी होती रहती है। उनसे बच्चे को जान दिवाने में कल्प भी तो होना और जब जान देने गये तो दासों की क्या दशा थी—

१ ‘घासैयाय । सावरेरे । अम्ममुष्ण कुविलेऽपे ।

इगु मुष्णागु परिकि पोय इगु मुविष कोष्तामो ।”

—पेरिबाळवार निबमोटी २ २ १

२ अंशमन्योदकतिम अमिकोल मुसम बलितार बीन ।

अंशमल मुसल विपर्व

..

अश्वैस्तमाम कुट्टिपिपिपि अष्टय बैक्य अम्मा । विष्म

अरमरररु बुबानिता अमरर कोरे । मुनमुमाये । —वही २ २-६

३ पेरिबाळवार निबमोटी - १ १ से १० ।

४ सूरदासर (श.० प्र.० मभा) पद सं० ७६२ पृ० ३१६ ।

“लौचन शोक भरि भरि माता कनक्षेवन देखत जिय मुस्करी ।”^१

पेरियाळवार ने भी कनक्षेवन प्रसंग का वर्णन किया है। बच्चों से कोई कार्य करवाने के लिए साधारणतः या तो उनकी प्रशंसा की जाती है या उन्हें मिठाई या पकवान खिलाते का प्रयोग किया जाता है। ‘कनक्षेवन’ के अर्थ से कृष्ण मयमीत होकर माग न जाय इसके लिए पेरियाळवार की यद्योवा बान्ह से कहती हैं— ‘हे माता ! मैं तुम्हारी मांगी सभी चीजें दूँगी। चाहे तुम कनक्षेवन कराओ। तुम्हें मीठे मीठे फल खिलाऊँगी मीठे पकवान खिलाऊँगी। (यही पेरियाळवार यद्योवा के द्वारा पत्नी और पकवानों की एक सम्पत्ति सुधी है देखते हैं।) तुम्हारे कानों में सुन्दर गहने पहनाऊँगी। देखो ! तुम्हारे बसि सभी बालक कनक्षेवन कर गहने पहने हुए हैं, तुम भी पहनो ।”^२

बालक कृष्ण ज्यों-ज्यों बड़ा होता है उसकी लीलाएँ भी व्यापक होती जाती हैं। कृष्ण के जन्म के बाद यद्योवा के घर में न भी कहीं सुरक्षित रख पाता न बूझ न पही न मकखन ।^३ ‘कृष्ण पक्षोष के बच्चों से घनाड़ा कर चुपके से चला जाता है। पक्षोषमें अपने बाल-बच्चों को छाम लेकर यद्योवा को घेर लेती हैं और शिकायत करती हैं। उधर यद्योवा हम ही-हमसे से परेशान हो रही है और इधर महाधर्म इसका मन्त्रा लेते हुए हँस रहे हैं।

छाम को गायें घर सोनती हैं और बूझ बुझने के लिए बछड़े कोल दिये जाते हैं। पर कृष्ण महीं मानता। वह चिउटियाँ पकड़-पकड़ कर बच्चों के कानों में डाल देता है और वे बचपकर भाग जाते हैं। तो यद्योवा कहती हैं—“अब तुम्हें मकखन मिल चुका ।”^४ कृष्ण दूसरे बच्चों की आँखों में मूल छोड़कर बीड़ पड़ता है।^५ वह पक्षोष

१ सूरसागर (भा० प्र समा) पद सं० ७६८ पृ ३२१

२ “वैष्णवे वासित तिरि इडुवन ।

भो वैडियतेस्साम तखन ।” —पेरियाळवार तिरुमोळी २।३

“इति पत्ताप्यन्तम तन्तु” —वही २।४

“वेत म वैरिय ध्यम् तखन ।

विराने । तिरि इडु बोडिटल” —वही २।५

“वैरियिल पिन्डवळ त्थाम कानु ।

वेडविक तिरियकुम काण्डी” —वही २।६

३ “करत मर्पामुम तयिदम कर्तन्नु उरि मेत वीत वैन्मय ।

विरन्तनुवे मुवत्ताक वेडुरिय एंवराने ।”

४ “कण्णवोटवैवियिल कट्टुप्पु पिडित्तिएत्ताल ।

तेन्डिकेडुमाकिल वैन्मये तिरुही पिळ कुमाकाप्पन ।

—वही २-४२

५ “कण्णित ममल कोडु नुवो कालिनाल वाइन्तनेयेन्नु ।

एन्मवम पिन्डवळ वन्नु इवरात मुरेप्पुकिन्टार ।”

—वही, २ = २

के बरों से मकरान बुराकर ही नहीं लाठा बलिक लाने के बाद खापी बड़ों को पत्थर कर दे भारता है और उनके टूटकर बिछारने की आवाज पर गुप्त होकर ठासियाँ बजाता हुआ नाच उठता है ।^१ योनिमाँ इन बातों की चिन्तायत बसोरा से आकर भरती है ।

मुरबास और परमानन्ददास ने भी कृष्ण की बुराबानों का बड़ा ही समपूर्ण वर्णन दिया है । मुरबास के दो पद जिनमें कृष्ण यशोदा से शिवायन करते विव्रित हैं साहित्य में बेजोड़ है । उस प्रकार के चित्र परिपाठधार के पदों में भी देखने को नहीं मिलते । की तो मुर का कृष्ण यशोदा से कई प्रकार की शिवायनों करता है । माता के बचन के अनुसार बूझ पीने बर भी जब नाम बन्ध दिन तक नहीं बस तब कृष्ण माता से कठकर कहता है—

‘मेरा कबहुँ पड़्यो छोटी ?’

चित्ती बार मोहि रूप पिपल गई, यह धनहुँ है छोटी ।

तु को कहति बस की बंदी जयी हूँ है लीची-छोटी ।

बाइत-गुहल ग्रावत केहे भाषि ली मुई सोही ।

काओ रूप पिपावति पबि-पबि देखि न मायल-छोटी ।

मुरख चिरजीवी होइ भंडा हरि-हमयर की छोटी ॥^२

जब कृष्ण योद-वासको के साथ रोमर रहता है तब बलराम उसे बिकाठा है । इस बर कृष्ण योदश में इस प्रकार शिवायन करता है —

‘मेरा मोहि बाइ बहुत मिसायी ।

मोली बहत मोल की लीहूँ तु समुमति बज बापी ?

बहा करी इहि रिज के मार येमन ही नहि बात ।

पुनि-पुनि कहत कीन है मया, को है तेरी लात ।

पोरे मय बसोरा छोटी, तु बज त्यागन गान ।

कुनकी ई-ई ग्याल मजायत इमर तब भुगवात ।

तु मोही की मारन लोपी बाइहूँ बजहूँ न लोपी ।^३

कृष्ण की इन शिवायनों में बिना मोमारा है ! कृष्ण द्वारा बोरी करने का वर्णन दोनों भागों के कवियों ने चिन्तार में किया है । परिपाठधार के कुछ पदों का सार मात्र यहाँ देने है । कृष्ण के वचनों की योनिमाँ मयाग में शिवायन करती है—

मैं न मटवी में मगन कर रहा था । मुझ ही ही मुझसे गुन के आकर गद गुप्त

१ केपेय चित्रकी देवदत्त केवि इरु छनकोर केडुबुन ।

बन्धिराज कः कम्बितने बानकितमोय जगजनी बाबाय ।^१

—परिपाठधार गिरमोड-बही २ १ १

२ मुरबागर (भा० प० पत्रा) बर ग० ७१३ पृ० १२०

३ बही () ब० प० ८१३ पृ० १११ १४

आसिया । यही नहीं जाती मटकी को परपर पर मारकर उसके टूटकर बिखरने की भाव पर तासियाँ बनाता है ।^१—(दूसरी बोली कहती है)—आज पूजन के लिए इन्हें, मीठे चाबस खीर आदि के नैवेद्य मीने रखा था । तुम्हारे पुत्र ने खाकर सब खा लिया । यही नहीं खीर भी माँगता है ।^२—(तीसरी बोली कहती है)—मैंने ठोठे पकवान बनाकर घर में रखकर थोड़ी देर के लिए बाहर रखी । तुम्हारे सुत ने मेरे घर के बालक की तरह चुपके से बन्दर ब्रुसकर सब कुछ खा लिया ।^३ (चौथी बोली कहती है)—तुम्हारा साइना मेरे घर के बन्दर बठी ठेरी बच्ची के हाथ से भक्षण चुरा ले गया है और उसे बेचकर आम्रुन फल खरीदता है ।^४

कविबर परमानन्ददास ने यथावा से गोपियों की शिकायतों का वर्णन किया है । पैरियाळ्वार के पद से परमानन्ददास के निम्नलिखित पद का भाव-साम्य देखिए—

“जतोवा धंजल तेरो पूत ।

धार्म्यो कज बीयिन डोस्त करे अठपटे घुर ॥

बड़ो हुप ने वृत्त धागे करि जहू तर्हें बयों बुराय ।

अबियारै घर कोउ न जानै तर्हें पहुँचै ही जाम्प ।

गोरस के सब साजग जोरें साजग जायों बुराय ।

सरिकम के कर काल मरोरत तर्हें तै जमै एवाय ॥

बाँट बैठ बनजर कोशुक करत किनोद बिचार ।

परमानन्द प्रभु बोली बस्तम भाई मदन मुरार ॥”^५

दूसरों के सामने मातृ हृदय अपने बच्चे का अपराध स्वीकार नहीं कर सकता । मूर के निम्नलिखित पद देखिए—

१ पैरियाळ्वार तिरुमोळी, २११

२ केमैतरिति चिद पदम्पु वैज्ञत धनकारम नद नैइपासात ।

पमिरण्डु सिदबोगम अट्टेन पण्डुम इप्पिस्सु परिपेरिचन ।

इसमुकम्पन नायेन्दु ओल्ली एस्नाम चिळ चिदु पौन्नु निम्बुन ।”

—पैरियाळ्वार तिरुमोळी २-६-७

३ कप्रसितदुदु बत्तोडु करेस्सिद रुप्ते कलसितदुदु ।

एप्रकमेन्दु नागर्बत पोम्तेन इवन पुक्कु अचर्दु वेवति पीयत्तान ।”

—वही २-६-८

४ ‘इस्सम पुहुन्नु एम मच्छं वृबी केयिल वळंयै कळट्टिकोण्डु ।

अकोवतिवकु अम्बळं कोडुत्तु नाळ नावळळ कळ कोण्डु ।

नागस्तेन्दु चिरिन्निन्दुने

”

—वही, २-६-१

५ परमानन्ददास (मं० डा गी ना दास) पद मं० १३४ पृ० ४३

मेरी गोपाल तनक सौ कहा करि जानै बधि की खोरी ।
हाथ नचावत छावति स्वारिति भीछ करै किन खोरी ॥
कब सीक बड़ि माखन पायो कय बधि-मदुकी खोरी ।
पंगुरी करि कबहुँ नहि बाधत घर ही भरी कमोरी । १

×

×

×

कहम लगी धब बड़ि-बड़ि बात ।

डोटा मेरी तुमहि बपायो तनकहि माखन जात ।
धब धोहि माखन बैति मगाए, मेरे घर बसु माहि ॥ २

देरियाळवार की यशोदा गोपियों की पिकायता पर अपने पुन को समझानी
है— हे कृष्ण ! इस योदुत में हमारों सङ्ग है । वे जो हरकतें करें वे कमो घामने
नहीं आतों । मैं गोपियाँ उन सबके मरदाबा को भी तुम्हारे ऊपर सादना ही जानती
है । नन तुम इनसे सावधान रहो । ३

वासत्य के संयोग-पक्ष के साथ बियाह-पक्ष के भी बधि सुन्दर किन हमारे
कृष्ण मत्त-बधिया न लीये हैं । माना यशोदा के लिए एक राण का पुन-बियोग भी
बसहा हा जाया है । यशोदा पहली बार कृष्ण को नन में गायें बराने के लिए मैत्रती
है । कृष्ण के जाने जाने पर यशोदा के बिनाप करन और साँवकाम को ठीक समय
कृष्ण के न सीटने पर यशोदा की बिना और बहराइट का हृदय श्रावक बर्णन
देरियाळवार में प्रस्तुत किया है —

अपने प्रिय मुन को यहाँ घेसते हुए बेराम के बदन मीने बड़े सवेरे ही स्नान
कराकर नन भेज दिया । नन में उसके मुकुन बरग बूँत हो चुके । उसको मीने
जितना कष्ट दिया । मैं पाविनी हूँ । ४ भले ही गोपियाँ आकर कृष्ण की हरकतों
की गिराफत करें मुझे कमो अपने पुन को गायें बराने बयानक नन में गयीं
मैत्रता चाहिए या । मीने कौसी निर्दयता दिखायी है ! मुन को मीने घारी और पूरे
तक नहीं दिये । वह नन में जितना कष्ट मागया ? ५ इस तरह की रितनी ही भाव

- १ दूरतापर (समा) पर स० ६११
- २ बहो () पर स० ६७१
- ३ "पस्तापिपर इम्पूरित पिन्डिजळ तोमैरुळ बेहवार ।
एस्नाम जमेतमुदी पोवस्तु एगिरान । इके बाराय ॥"

—देरियाळवार तिरमोटी २ = १

- ४ धर्मनबर्णन घायरकोतबोमुम्तिन ।
धर्मनपाटी धर्मरुळ तोरुम बिरियामे ॥"

- ५ "बस्तापरकृष्ण मातर बसु घनर सुदि ।
वाल्मिपन बेहस्तु इतिदिग्येमुम निरियामे ॥"

—बही १ २ १

—बहा, १ २ ४

तर्से मातृ-हृदय में उठती हैं। पुत्र के वियोग में सारा बातावरण माता को सुना सुना दीखता है।

आळ्वार भक्तों के काव्य में वियोग-वात्सल्य को प्रबोधित करने वाला और एक महत्वपूर्ण प्रसंग है। नम्ब और यशोदा की वात्सल्यमयी भाववृत्ति का निष्पन्न हो बास-कृष्ण के उपासक भक्त कवियों द्वारा प्रायः किया गया है। किन्तु बसुदेव और देवकी के हृदय की भावनाओं को मर्मस्पर्शी आसेछान तमिळ-कृष्ण-काव्य की एक विशेषता कहा जा सकता है। हिन्दी के कवियों की तरह नम्ब-यशोदा के हृदय की अभिव्यक्ति तक ही अपने को सीमित रखकर आळ्वारों न बसुदेव और देवकी के मनो-भावों की उपेक्षा नहीं की है। हिन्दी में मुरदास जी तक ने कृष्ण के ऐश्वर्य-ज्ञान से देवकी के हृदय के सहज मातृत्व को अभिमूल करके उसके प्रति एक प्रकार का उपेक्षा भाव ही दिखाया है। तमिळ के कुलरोच्चराळ्वार ने प्रमुख रूप से देवकी की मर्म-व्यथा को पहचाना है और उसे पर्याप्त भावावेश के साथ अभिव्यक्ति भी प्रदान की है। देवकी का सबसे बड़ा दुःख यह है कि पुत्र तो उसने चाया पर उत्सव और बचाई यशोदा के द्वार पर होगी। माता होकर भी उसे मातृत्व के अधिकारों और सुखों से वंचित रहना पड़ा है। देवकी की मर्म-व्यथा को कुलरोच्चराळ्वार के सन्धों में अभिव्यक्ति मिली है—

“मैं बड़ी अमागिनी हूँ। अपने पुत्र को पासने में सिट्ठाकर लोरी बाकर सुसाने का भाव्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ।^१—सुन्दर शिशु को अपने हाथों में लेकर छाती से लगाकर आनन्दित होने का भाव्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ।^२—यशोदा के सह पुछने पर कि तुम्हारा बाबा कहाँ है, मेरा सुत अपनी कोमल उज्जसियों से नम्ब की ओर सन्धित करेगा। उस समय नम्ब को जो आनन्द प्राप्त होगा, उससे मेरे पतिदेव भी वंचित रहे।^३ बासक की विविध चेष्टाओं को देखकर आनन्द प्राप्त करने से मैं

‘कुडैपुम वेरुपुम कोडले वामोदरर्न माग।

उडैपुम कडियन ऊरु-वेपरळुड।

कडिय वैकानिडै कासडी मोवक्कट्टुम पिल।

कोडियेन एन पिस्सै ये पोत्किन्नै एन्ने पावमे।” —परियाळ्वार तिरमोळी १ २ ९

१ ‘एलवार कुलनेन मकन तालेली एरु न्दु उन्नी एन कायिडै गिरैय।

मानोलिलिनुम तिरुवर्नैयिस्सा तामरिळ कडैयायिन लाये।”

—देवमाळ तिरमोळी ७-१

२ अडविरुवार वेंबिरु बिरलनेत्तुम अकैयोडु अक्कनु धानैयिरिन्नल।

किउक्कै कन्निडैयैन्नेन धस्तो। केवावा। केडुवेने केडुवेने।

—वही ७-२

३ “उन्तर्त्तावावनेन्दु रैण्य निन धेरेस बिरसिनुम कडैकन्निनुम काट्टु।

मगवन पैदुनन नसिन्नैयिरुता नवळ्ळीन बसुदेवन वेन्निन।

—वही, ७ ३

बंशित रह गयी । मैं बड़ी अभागिनी हूँ ।—हे कृष्ण ! तुम्हारी लोभनी बातों को सुनकर आनन्द से तुम्हारे चेहरे पर कुम्भन संरित करने का भाव्य मयोग को ही प्राप्त है ।^१ जब आसक्त धूलि-मुगुरित शरीर स खीझता हुआ आकर पीछे स समय जाबका तो उसके स्पर्श मात्र न रितना आनन्द प्राप्त होगा ! हाय ! मैं बड़ी अभागिनी हूँ ।—हे कृष्ण ! तुम्हारे जाने के पदचान् रहन बानो अमृत-सम सुप्त को खाने का भाव्य मुझे प्राप्त नहीं है ।^२ तुम्हारे सौम्य तुम्हारी बेपत्ता को देखकर पुनश्चित्त होने का भाव्य मुझे प्राप्त नहीं । मैं बड़ी अभागिनी हूँ ।^३

कुनयेतराद्यकार के देवकी-विषाद के पदों में भावार्थिक का अधिक स्वाभाविक चित्रण उपलब्ध होता है । पुत्र वियोग में दबकी की मानसिक दशा का चित्रण करने में कुनयेतराद्यकार ने अभीम माधुर्यता एवं दुःखता का परिचय दिया है ।

कृष्ण के मधुरा चले जाने पर यशोदा और नन्द की मनोदशा को चित्रित करने वाले अनेक सुन्दर पद हिन्दी के कृष्ण मछ-कवियों ने गाये हैं । आद्यकार मत्त के उपलक्ष्य पदों में ऐम पद कम हैं का नहीं के बराबर हैं, जो कृष्ण के मधुरा चले जाने पर यशोदा और नन्द की भाव-स्मृति का वर्णन करते हैं । (हो सकता है कि ऐसे पद भी उत्पन्न जाये हों और ब लभ्य हों गये हों ।) परन्तु हिन्दी के कृष्ण मछ कवियों में—विशेषकर मुर ल कृष्ण स विपुल पर यशोदा और नन्द के हृदय के भावा को तरंगित करने में अनुलनीय लगनता प्राप्त की है ।

अत्रर मधुर से कृष्ण और यशराम को तन बाध है । यशोदा पुत्रों के मधुरा गमन की बात सुनते ही व्याकुल हो गई । जब अनुभव करती है कि कृष्ण अत्रर के छाव चले ही जायेंगे तो दृष्टास हाकर बहने लगती है—

“असोबा बार-बार यों धार्य ।

हैं कोउ बज में हिनु हमारी चलत गोपालहि राख ।

- १ ‘इन्द्रो इन्द्रो इन्द्र एन तन बन्धाम परबुधुं इन्द्र तापेन निवन्त ।
घटवित पिच्छ पिच्छ पिच्छ पाथियेनतापी निवन्तरे ।’
‘मरुतुम निन तिर मेदिनि पुट्टियकप्रादो मलिचापिने मुत्तम ।
तरतनुम निवन्तियेन प्रोगुम पेदिनेन एस्वाम देव मरु यशोद देवुड ।’

—नेरमाड गिरमोडी, ७-४ और ५

- २ ‘तन्मयतामरं बन्धने । बन्धा । तदस्मैऽस्तु तज्जलोर नईपाय ।
मन्थित चोरोरीयादी बन्धु एन तन मन्थित मन्थि चोदिनन दन्तो ।
बन्धबोध के बिरतनत स बरिबाय चोरा चोदिनन निवन्त ।
उन्मयेदिनेन घो । कोहु रिनेपम एम धय्य देवुदु एम्माये ।

—बरा, ७-६

कहा कर मेरे छपन सपन को नृप मधुपुरी बुलायी ।
 सुफलक सुत मेरे प्राण हतन को काल कम हूँ धायी ॥
 अब ए वीर्यम हरी कंस सब मोहि, बलि से मेनी ।
 इसने ही कुछ कमल मंग मेरी अखियन धायी खेली ॥”^१

जब कृष्ण मधुरा जाने के लिए रात्र पर आरुढ़ हो गये तब यक्षोदा को
 बिसाप करली है, वह अतीव मर्म परी है ।

“मोहन भिक्षु बबल तन हेरी ।

रखी मोहि नात बननी को मदन गुपाल नाम मुख परी ।

पीछे पड़ी बिमान मनोहर, बहुरी यमुपति होत धन्यवरी ।

बिभुरत भेट देहु ठाई हूँ निरखी घोष अनम की खेरी ॥”^२

जब नन्द मधुरा से लौट आये तब उनके साथ कृष्ण और बलराम को न
 देखकर यक्षोदा बैसे ही मुकित होकर गिर पड़ी जैसे गुवार के पड़ने से सरोवर का
 कमल कुम्हसा जाता है । यक्षोदा नन्द पर भी बिगड़ी और बध्मरथ का जवाहरण
 देकर उन्हें बिचकारन लगी ।^३ नन्द भी यह सुनकर व्याकुल हो गये और मूर्खित होकर
 गिर पड़े । मुर ने बास-रसोह में माता-पिता—दोनो को ही बिभोर कर दिया है ।

कभी नन्द यक्षोदा से कहते हैं—

“तब मारिबोई करति रितनि

धायी कहिओ धायत धन्य सै मादि भरति ।

कभी यक्षोदा नन्द से कहती हैं —

‘सूर नन्द फिर जाहु मधुपुरी सुत करि छोडि जतन ॥’

और—

‘नन्द ब्रज लीजै ठेकि बजाइ ।

देहि बिदा मिलि जाहि मधुपुरी जाई योकुल के राइ ॥”^४

यक्षोदा को पुन-विमोग इतना बढ़र रहा है कि वह ब्रज छोड़कर मधुरा में
 बैसकी और बसुदेव की बासी बनकर रहने को तैयार है । प्रेम में जारम-विस्मृति की

१ सूरसागर (समा) पद सं० ३३२१ पृ० १२०३

२ वही () पद सं० ३६०८ पृ० १२७८

३ बैरना के आधिपत्य के कारण यक्षोदा इस बात को सुन जाती हैं कि स्वयं नन्द
 भी बिचस हैं और उनकी भी बेसी हो गया है । वह उन्हें भी भर बुरा-भला
 कहती हैं—

“जमुदा काहु-काहु की बूते ।

कूटि न गई तुम्हारी चारों, कैंते मारग सुसे ।—बादि ।”

—सूरसागर पद सं० ३७२२

४ सूरसागर, पद सं० ३७८१ पृ० १३४१

भावना यही हो जाती है और मितन की जसमुक्ता का उदक ममल भावा का
ठिरोसूत कर देता है —

हैं तो माई बपुरा ही बंहीं ।

बासी छँ बसुवेन राइ की बरसन देखत रँहीं ।

मोहि बैलि कं लोय हँसंगे सब किन काहूँ हँस ।

सूर बसीत बाइ बहूँ बनि म्हाउहु बार सत ।^१

अन्तिम शब्दों में मापू हृदय का समुदा वास्तव्य माना एक बारगी उमड़ पड़ा है—पुन कहीं भी हा सङ्गत न रहे, यही माता की कामना है ।

पुन क प्रिय दाउ पदावों को देखत ही उपको याद आ जाता स्वामाविक ही है । माता को यह भी विश्वास नहीं होता कि उसने बिना अन्य कोई उमड़ पुन के छाने-पीने आदि की समुचित व्यवस्था कर सकता । यह अविश्वास वास्तव्य अन्त ही है ।

अद्यपि जन समुभावत लोग ।

कुल होत नवनीत बैलि मेरे मोहन क मुल जोग ॥

प्रतकरत छठि मातन-रोटी को बिनु माँगें बँहै ।

को मेरे बा काहूँ दुँबर को छिनु-छिनु प्रथम सँहै ।^२

समुदा को जाता हुआ कोई पथिक मिस आता है या यतोया उमड़ कटगा है कि कृष्ण बड़ा संकोचो है बेबकी म माँगने में उने सज्जा का अनुमन हुआ । जन देवकी के पास मेरा लम्बेय पहुँचा दोः—

लदेवी बेबकी लों कहियो ।

हैं तो माप तिहारै सुत की बया करति ही रहियो ॥

अद्यपि देव सुम जानति जनको तरु मोहि कहि धावै ।

प्रात होत मेरे सान लईत मातन रोटी भावै ॥

मोड़ मोड़ माँगन सोइ-सोइ देत कम-कम करि कै गृहते ।^३

सूर के उपसुत पद में माता यतोया को मातमा के साथ उनका दग्ग भी प्रकट हुआ है ।

भृंगार

कृष्ण और गोपिया व प्रेम का विकास प्रकृति के सुगन्ध वातावरण में हुआ है । वास्तविकता में माय-माय देवन बान मरन प्रकृति बाने मरता और पत्नी विचोरावस्था के आकषण बोधुल विमाना आदि भाषा से सुखरत हुए मोहन बाब व प्रिय और प्रिया बन जान है । उनका प्रलय की विपत्ति में मातृत्व और मोहक

- १ सूरसागर (ममा) पद म० १७८८ पु० १३४१
- २ बहो (") पद म० १७८९ पु० १३४२
- ३ बहो (") पद म० १७९० पु० १३४३

प्रियता दोनों का योग है। माधन-ओर कृष्ण गोपियों के चित्तओर बन जाते हैं। कृष्ण और गोपियों की प्रेम-सीसाओं का बह्युन पर्याप्त विस्तार के साथ हमारे आसौध्य कवियों ने प्रस्तुत किया है। प्रेम के दोनों पक्ष—संयोग और वियोग के न जाने कितने ही आकर्षक और उन्मील चित्र इनके काव्य में देखने को मिलते हैं। प्रेम की संयोगावस्था के अनक प्रसवों की सुधि कर कृष्ण भक्त कवियों ने प्रेम के स्वाभाविक विकास को दर्शाया है और विभिन्न मनोदशाओं का मार्मिक चित्रण उपस्थित किया है।

आळवार भक्तों के काव्य के वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में अत्यन्त हम यह बता चुके हैं कि उनके काव्य में कृष्ण-रत्ना क्रम-बद्ध रूप से उपलब्ध नहीं है, बसे कि सूर आदि हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में। जिस प्रकार हिन्दी में सूर आदि के काव्य में मान-सीसा बान-सीसा पनबट-सीसा रास-सीसा जैसे प्रसवों को लेकर, प्रत्येक प्रसव का अत्यन्त विस्तार से बह्युन किया गया है, उस प्रकार आळवार भक्तों ने उन प्रसवों को विस्तार से नहीं लिया। परन्तु उन्होंने गोपियों के कथन द्वारा तथा कृष्ण और गोपियों की प्रेम-वीक्षित अवस्थाओं के चित्रण द्वारा उन सब भाव-स्थितियों का अंकन किया है। एक बात और दृष्टव्य है कि राधा और कृष्ण की केति-प्रीति-रात्रों का जितना शृङ्गारिक बह्युन विस्तार से राधा वस्त्रमीय तथा हरिबासी सम्प्रदायों के कवियों ने काव्य में मिलता है, वसा आळवार-काव्य में नहीं। राधा को प्राधान्य परवर्ती कृष्ण-साहित्य में ही अत्यधिक मिलता गया। आळवारों ने कृष्ण और मयिन्नी ('राधा' का तमिळ नाम) को कुछ प्रेम-सीसाओं की ओर संछिन्न मात्र किया है। आळवार-काव्य में प्रेम की वियोगावस्था का ही अधिक विस्तार है। फिर भी शृङ्गार के संयोग पक्ष के भी कुछ अच्छे चित्र मिल जाते हैं।

कृष्ण का सौन्दर्य बसे ही ब्रज में सर्वजनीन चर्चा का विषय था फिर उनकी कीमार्ग अत्यन्त अपमत्ता और बेसु-बाधन-निपुणता ने मिलकर गोपियों पर टोना ही कर दिया। कृष्ण के सौन्दर्य का प्रभाव बड़ा ही व्यापक था। कृष्ण के बाह्य सौन्दर्य का कितना गहरा प्रभाव गोपियों पर पड़ा उसका अनुमान पैरियाळवार की एक गोपी के शब्दों से हो सकता है— 'मुरसो बजाते हुए गोपी के पीछे बन में झूटने वाले स्वाम के माहुर रूप ने मुझ पर क्या जादू कर डाला ? हे सति ! मैंने ऐसा कोई मुक्त नहीं देखा जो सौन्दर्य में स्वाम को बराबरी कर सक। स्वयं मैं नहीं जानती कि मोहन के रूप तावध्य ने मुझ पर क्या जादू डाला है—हाथ से मेरे कंठ पर गिर रहे हैं। मेरे वस्त्र अन्त-व्यस्त हो रहे हैं और मेरे स्तन भी मेरे वस्त्र में नहीं हैं।'^१

१ कुन्देकुत धानिरे कात्त पिराम कोवन्मनाय कुळमुचिपुवि कण्डुकन मेइत्तु तन तोळरीडु कलन्नु वदवार्न तेवविम कण्डु एन्नु म इवर्नपोप्पारं नंकाय कण्डरियेनडी। वन्नु काणाय थोम्मु म निन्ता वड वडम्मु तुकिनेवड मुत्तैपुम एन वतमस्त्व।

स्याम के घटीर के प्रत्येक भग से लखि पूनी पड़ती है । गावियाँ उनके सीमर्य
पर बपना सर्वस्व बारने को तैयार हैं—

तस्मो निरखि हरि-प्रति धंग ।

कोउ निरखि नस-इन्दु सुसी कोउ धरन-भुग-रंग ।

कोउ निरखि गुरुर रही बनि कोउ निरखि भुग जानु ।

कोउ निरखि भुगभंग-सोभा करति मन-भगुमानु ।

कोउ निरखि कटि पीठ कछनी मेखता दखिहारि ।

कोउ निरखि हृदयामि की छवि डार्यौ तन-मन बारि ।^१

पेरियाळवार की एक गोपी कहती है— कृष्ण के कमल-रत्न-नोवन बाद
कपासों पर डोमड़े बचस कुम्हस जलग भयरां पर पिरकटी हुई माधुय-वाहिनी
मुरसिका नीले मेख-मा बड़न बरुं कमल-कोमल-वरण—सब कुछ इतने मारत हैं कि
इनके सीमर्य की मारकता से मैं मर हो गया हूँ ।^२

मूर की गावियाँ भी कृष्ण की सीमर्य-मुरा के गुमार म मत हैं—
तस्मो स्याम रस मत बारि ।

प्रथम जोवन-रस बड़ापौ धतिहि भई सुमारी ॥

द्वय नहि बनि नहीं माजय नहीं रौतौ माट ।

मह-रस धंग धग मूरन, कहाँ घर कहीं बाट ॥

मम-पितु मुदजन वहाँ के कौन पनि को नारि ।

मूर प्रभु क प्रथ-मूरन छकि रही बज्जहारि ॥^३

कृष्ण व सीमर्य का बहा ही सुन्दर बर्णन था यहापर मट्ट ने प्रस्तुत किया है—
मोहन-बदन की सोभा ।

बाहि बैसत उठति सति धामरद की गोमा ॥

नैन बीर धपोर कपु-कपु धतित मित राग ।

प्रिया-धानन बगिचा-मधुपान-रस-जात ॥

१ मूरनागर (मन्ना) पृ० न० १२१० ७ ६८३

२ “तन लिखेति लिखोटी लिख्य
नील बन नरदु नि मैतिरताग्रिम्यु
कबेल बेलापर कल मितिर
बुझुनि डमपाटी बुनि, धामरौडु
धानित पदविगु धापविगु
धमरु कपु रस मरुठ धपविगुते ।

३ मूरतापर (कमा), पृ० न० २२६२, पृ० ८३३ —पेरियाळवार निरमाटी । ६३

बंसिका कलहंसिका मुख कमल-रस-राशी ।
 पवन परसत धनक धसिबुल कलह-सी माची ॥
 ललित सोल कपोल कुण्डल मधुर भकराकार ।
 कुपल सिसु सौवामिनी जनु लजल लठ-लठसार ॥
 बिमल जलक सुहार मुखा नासिका बीनों ।
 जेब घासन पर धमुर-मुह धबी-ली बीनों ॥
 भीड़ सोहनिका कहीं धर भाल कुम्कुम बिन्दु ।
 स्वप्न बाबर-देह परि मनु धबहि ज्योई इंदु ॥
 लघी मन ललचाइ तारों डरत नहि टार्यौ ।
 धमिल धडमुत माधुरी पर 'बहायर' बाध्यौ ॥^१

मीराबाई भी गोपी-रूप में अपने प्रियतम "विरवर नामर" की 'मोहन मूर्त' का वर्णन इस प्रकार करती हैं—

निपट बंकट छब छटके ।

महारे जेबा निपट बंकट छब छटके ।

देख्यां क्य भवन मोहन री पिबत पीपुछ न मटके ।

बारिख जबां धनक मंतबारी जेब क्य रस छटके ।

देख्यां कठ टेढे करि मुरली देख्यां पाप सर लटके ।

मीरा प्रभु रे क्य सुभाबी विरवर नगार लटके ॥^२

स्वप्न के सौन्दर्य और सहवास में गोपियों के हृदय को मुग्ध कर दिया । गोपियों का मन जब घर में नहीं सगता किसी काम-काज में उनकी रुचि नहीं रहती । सोते-जागते उनका मन कृष्ण में ही लगा रहता है । हरि रस में उन्हें इतना मत्वासा बना दिया है कि स्वप्न के बिना और कुछ चख्खा नहीं सगता । जैसे ही कृष्ण की मुरली की मधुर मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है वैसे ही गोप-बाबाएँ सुब सुब जा बैठती हैं, छात्र-शृङ्गार तक सुन जाती हैं । अपने और गहने समेटे पहन मैठी हैं । उनकी बैबसी देखते ही बनती है—

कण्ठ भुङ्गार^३ मुबसी जुनाहीं ।

धंम-मुनि नहीं पलदे बतल धारहीं एक एकहि कछु सुरति नहीं ।

मैन धंजन धयर धाजहीं हरय तों लबल ताटक असदे संबारे ॥

सुर-प्रभा-मुल ललित बैनु-मुनि बन मुनत जती बैहान छबल न धारें ॥^३

हिन्दी के अष्टछारी कविया ने कृष्ण की मोहिनी मुरली पर सँकड़ा पर बनाए हैं जिनमें गोपियों के शृङ्गारिक भावों का रङ्गीन चित्र अंकित है । तमिळ में

१ बजमाधुरी सार (सं० बियोगी हरि) पृ० ७८ एकादश संस्करण

२ मीरा की बहाबली (सं० परशुराम जगुबेदी) पृ० सं० १० पृ० १०३

३ सुरतावर (महा) पद सं० १९१९, पृ० ६०६

कपराणि धत्ति चतुर मित्रोमपि ध्येय-मग मृगुभारो ॥
 प्रदत्त उवटि मज्जन करि सज्जित नील वस्त्र तन भारो ।
 मुञ्चिन भक्तक तितक कृत सुन्दर, सेंदुर मोंप तभारो ॥
 मृदन्न तमान मैन ध्येयन कृत बहिर रेष मृगुभारो ।
 अटित लक्षण ललित मासा-र, वसनावली कृतभारो ॥
 धीरुल उरज कम्बुमो संबुमो, कसि ऊपर हार ध्विभारो ।
 कृण कटि उरर मपोर माप्ति पुट मयन मितम्बनि भारो ॥
 कर्तो मृनात मृज्ज मृजित मृज्ज इयाम ध्येय वर भारो ।
 हित हरिषा कुमल करतो मज्ज विहरत वन विम प्यारो ॥^१

- १ “कोकनर विरमिदर इउ कोय मृगुभारिण्य उरमुअविज्जमु एंडुम
 काकमुम कडमु कप्पि मालेपाति वम्भु कविस्सु मिम्भुने ।”

—पेरियाडवार उिरमोडो १ १ १

और—

“मडमजित कळोडु माय पिपे बोते
 मंहेमारकत मतर कृन्नात धदिउ
 उडे वैरिउ और संयात मुहित पदि
 धोल्कीजोडरिक्कबोड मिम्भुने ।”

—वारी १ १ २

- २ धी हित बोरासी—पं० पं० ४२

बंसिका कमहुंसिका मुख कमल-रस-रासी ।
 पवन परसत धनक धनिकुल कतहु-सी माची ॥
 ललित लोल कपोल कुण्डल मधुर मकराकार ।
 कुपल सिसु सोवामिनी अनु लक्षत गट-गटसार ॥
 विमल जलज सुहार मुखा नासिका शीमों ।
 ऊँच धासन पर धसुर-पुद उबो-सो कीमों ॥
 मोहू सोहलिका कहीं धर नात कुम्कुम् भिन्नु ।
 स्वाम बाहर-देख परि मनु धरहि ऊँचो इंदु ॥
 लघी मन ललचाइ तातें ठरठ नहीं टारपी ।
 धर्मित धरमुत माधुरी पर पदावर' बाएपी ॥^१

मीराबाई भी बोपी-रूप में अपने प्रियतम "गिरधर नागर" की 'मोहन मूरत' का वर्णन इस प्रकार करती हैं—

निपट बंकर छत्र धटके ।
 महारे जेना निपट बंकर छत्र धटके ।
 देख्यां रूप मदन मोहन री पिबत पीयूष न मटके ।
 बारिज भवां धनक मंतबारी जेन रूप रस धटके ।
 देख्यां कट देखे करि मुरली, देख्यां पाल सर लटके ।
 मीरा प्रभु री रूप सुभाजी गिरधर नागर लटके ॥^२

स्वाम के सौम्य और सहवास ने गोपियों के हृदय को मुग्ध कर दिया । गोपियों का मन जब घर में नहीं लगता किसी काम-काज में उनकी रुचि नहीं रहती । सोते-जागते उनका मन हृष्या में ही लगा रहता है । हरि रस ने उन्हें इतना मतवाला बना दिया है कि स्वाम के बिना और कुछ धन्य नहीं लगता । जैसे ही कृष्ण की मुरली की मधुर मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है, जैसे ही गोप-बासाएँ सुब सुब खो बैठती हैं, साज-गुज़ार तक मुल जाती हैं, कपड़े और महने उलटे पहन लेती हैं । उनकी बेबसी देखते ही बनती है—

करत गुज़ार'बुझती जुताहीं ।
 धंग-मुचि नहीं उलटे बसन धाएहीं एक एकहि कपू सुरति नाही ।
 नैन धंजन धबर धाजहीं हरप सी, लबन ताटक उलटे संभारे ॥
 सूर-मना-मुख ललित वैनु-मुनि बन सुनत जती वैहाम धंजन म धारे ॥^३

हिन्दी के अष्टाध्यायी कविया ने कृष्ण की मोहिनी मुरली पर संकड़ा पद बनाए हैं जिनमें गोपिया के गुञ्जारिक भावों ने रङ्गीन चित्र अंकित हैं । तमिळ में

१ ब्रजमाधुरी सार (सं० विद्योगी हरि) पृ० ७८ एकादश संस्करण

२ मीरा की पदावली (सं० परमुराज अनुबेदी) पर सं० १० पृ० ११

३ सूरदासर (मभा) पर सं० १९१९, पृ० ९०९

पेरियाळ्वार के कुछ पद मुरली-प्रभाव के भी मिलन हैं। मुरली-नार सुनते ही बीड़ पड़ने वाली गोपियों का बर्णन मुझसे—‘मुरली का मधुर माध सुनाई पड़ता है। गोप बासाओं के पतन कोनूहम बना उमर भाए हैं। बस्त्र बन्ध-बन्ध हो रहे हैं। वे किसी भी प्रकार की सोक-मर्यादा या मर्यादा की परवाह न कर कृष्ण-मिलन के लिए बीड़ पड़ी हैं। उनके चेहरे स्वयं पाश के बन्धन से मुक्त होकर डोल रहे हैं। बन्ध-बन्ध होने वाले अपने बस्त्रों को हाथ में लिए वे बीड़ती हैं। बड़ा उन्मुखता से मुरली-नार की दिया में वे बीड़ पड़ती हैं।’^१

केवल गोपियाँ ही कृष्ण की रूप-माधुरी पर विमोहित नहीं हैं बल्कि कृष्ण भी गोपियों के लावण्य पर मुग्ध है। गोपियों में एक अपूर्व रत्न ‘राधा’ नाम की गोपी भी थी। कृष्ण ने खलते-खलते जहाँ इस पर अपना जादू डाला वहाँ राधा की मोहिनी छवि न कृष्ण को अपने आकर्षण-पाश में बाँध कर दिया। उस ‘वीर बरु’ ‘वैम-विद्याम’ ‘भाष दिव रोरी’ राधा का लक्ष्मि-बर्णन द्विती कृष्ण-सक्त कवियों ने अपने कई पदों में अंकित किया है। (आळ्वार के पदों में राधा के माहृ-भावन रूप का लक्षिक बर्णन नहीं मिलता।) श्री हिन हरिबन्धन व निम्नलिखित पद में रूप की राणी राधा का शूङ्गार प्रभावन रहित बर्णन देखिए—

प्रावति श्री वपमानु दुसारी ।

रूपगणि घति चतुर शिरोमणि धन-धन मुकुमारी ॥

प्रथम दक्षिण मण्डल करि सज्जित नील वसन लन सारी ॥

मुञ्चिन घनक तिलक दूत सुन्दर सेंदुर माल संधारी ॥

मण्डल समान नील धनक कुत पचिर रेख अनुसारी ॥

बटिन लवण ललित नाथार वसनावली दुसकारी ॥

वीर्य उदक कंजुमी कंजुमी कमि ऊपर हार धनिम्यारी ॥

हृत्त दक्षि, उदर ममीर नामि पुट लघन नितम्बनि मारी ॥

ननो ममान सुवन सुमित सुन इयाम धंस पर धारी ॥

हित हरिबाध कुपल करनी तत्र बिहृत वन विप प्यारी ॥^२

- १ ‘कोवत्तर विरमियर इळ कोर्ग कुनुकतिप्प उदमुळविल्लु एंहुम
कावन्नुम कडन्नु कविक्क चालैयाकि वन्नु कविल्लु निम्बुनरे ।’

—पेरियाळ्वार तिरुमोळी ३ ६ १

और—

महमयिन वळीदु मान विदे पोले

धनमारकल वत्तर वृन्धल छविळ

उई मैविळ और लैयान मुक्किन वट्टि

घोस्कीपोडविल्लोड निम्बुनरे ।’

—वही, १ ६ २

- २ श्री हिन चौरासी—पद नं० ४२

स्याम नामर हैं तो राधा नागरी । वो घरीर रहते हुए भी दोनों एक प्राण हैं । दोनों के परस्पर आकर्षण का वर्णन मूर के एक पद में देखिए—

चित्त रही राधा हरि की मुक्त ।

भक्तुटी बिजळ चित्तल नैन ललि मनहि भयी रति पति कुल ॥

उताहि स्याम इकटक प्यारी-कवि धंप्-धव घबसेकत ।

रीमे रहे इत हरि उत राधा घरस परस बोट मोकत ॥

सक्तिनि कट्टी वृषभानु-मुता सो देखे कुबर कम्हाई ।

मूर स्याम येई हैं, बज में जिनकी होति बड़ाई ॥^१

इस आकर्षण के परचात् संयोग-मय के बितने भी प्रीति-विधान हो सकते हैं हिन्दी-कृष्ण भक्त कवियों ने सभी साधन एकत्र कर दिये हैं । पनबट-प्रस्ताव कृष्ण बिहार यमुना स्नान जल-कैल समय पीठ-मर्दन गोबोहन के समय राधा क मुख पर कृष्ण का रूप की छीटे पेंटना भरे भागन में मकेत द्वारा वर्तमान करना, वर ने पीछे खरिक और बन में दिसना हिंडोमे पर भूमना रास-नृत्य आदि न जाने संयोग क कितने ही प्रबंध हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने डूँक-डूँक कर दिये हैं । इन प्रसंगों के विचित्र में हिन्दी-कवियों ने अस्मृत कुशमता बिखाई है । (विस्तार भय से हम इन सब प्रसंगों का वर्णन नहीं करते ।) देखिए, कुस्त्रों के बीच बैठे हुई राधा का कृष्ण से मनेन द्वारा बाँठासाप करने का वर्णन मूर ने कितने अद्भुत ढंग से किया है—

स्याम अचानक धाड़ गये री ।

मैं बँठी पुनबल बिच सजनी देखत हूँ मेरे नैन गए री ॥

तब इक कुट्टि करी मैं ऐसी बँधी छों कर परल लियो री ।

प्रापु हूँ उत पाय मतकि हरि, अस्तधामी जानि सिपो री ॥

मैं कर कमल अघर परसायो, देखि हरवि पुनि हृदय भर्यो री ।

वरम छए बोट नैन लपाए मैं अपने मुक्त एक भर्यो री ॥^२

राधा और कृष्ण के स्पर्शद्वय बिहार का एक दृश्य देखिए—

नवल किनोर नवल नागरिया ।

अपनी मुखा स्याम-मुक्त ऊपर स्याम-मुखा अपने उर भरिया ॥

प्रीति करत तमास-तमन तर स्यामा अमंगि रत भरिया ।

यो लपटाव रहे उर उर क्यो भरकत मति कंचन मैं भरिया ॥

उपमा काहि देखें को लायक मग्यब कोटि बारने करिया ॥^३

१ मूरनामर (गंगा) पद सं० २१८३ पृ० ८१९

२ वही () पद सं० २४६७ पृ० ६०२

३ वही () पद सं० ११०९ पृ० १०२

संयोग शृङ्गार का एक नम्र बिज देखिए—
हरपि पिय प्रम तिय धंक लीमहीं ।

प्रिया बिनु बसन करि उलटि धरि पुननि मरि मुरति रति पुरि,

पति निबल लीमहीं ॥

प्रपन्न कर लक्ष्मि अलक कुरबाएहीं कबहुँ बाँधे घतिहि लगत लोमा ।
कबहुँ मुक्त मोरि सुम्बन बैठ हरम ह्वँ प्रपर भरि बसन बहु उतहि सोमा ।
बहुरि उपर्यो काम राधिका पति त्याग मगन रस-ताम नहि लपु सम्हारें ॥^१
पूर प्रभु-नवल-नवला नवल कुञ्ज गृह अत नहि लहत बोज रति बिहारें ॥^२

इस प्रकार के नम्र बिज हिन्दी कृष्ण-काव्य में कई स्थानों पर मिलते हैं
जिनमें कहीं प्रथम समायम का वर्णन है कहीं विपरीत रति का कहीं पुरति-वन्त
का और कहीं शृङ्गार-सज्जा का । हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने संयोग की अनेक प्रकार
की परिस्थितियों का बिजण किया है—(जो आलवार-काव्य में उपसम्भ नहीं होता) ।

मान अवका कठने की अवस्था—प्रम का एक स्वाभाविक बर्ण है । संयोग के
बाद जो प्रेम का रूप होता है उसमें मामिका की रूप-गविता के रूप में दिखाया
जाता है । मान की अवस्था में मामिकाओं का ही कठना भारतीय प्रेम-परम्परा में
दिखाया गया है । इस प्रेम-परम्परा के अनुसार भक्त-कवियों ने भी गोपी-कृष्ण-प्रेम
में जब मान माध का बिजण किया है तब गोपियों की मामिकी-रूप दिया है । तमिल
के कुलरोखालवार के कुछ पदों में गोपियों के मान माध का सुन्दर बिजण हुआ है ।
एक गोपी कृष्ण से कहती है—

“जब मैंने मामिका की इच्छा प्रकट की थी तो तुमने मुझ यमुना-उट पर
जाने को कहा । तुम्हारी बात पर बिस्वास कर मैं भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर घरीर
को घेदने वाली ठंडक में सारी रात यमुना-उट पर लड़ी थी । पर तुम नहीं आये—
बिजली सम कमर वाली एक सलता की सेवर अन्दरे में छिप छिप कर तुमको जाते
हुए मैंने देखा । जब उसको छोड़कर यहाँ क्यों आयो ? नहीं जानो ।”

१ पुरसागर (समा) पद सं० २६०६ पृ० ८३४
माधु तछ पुनतपुँ धार्मिकि घटितरिन्धे उन तन पोर्व केदु
हूर मर्तपोल पनिरहूतैइरो हसि ननु किम यमुन धादुल
वार मधुमिदुल पुनर निष्टु न बाधुदेवा । उन वरपु पात ।
मिदोत मुनिवदयातंकोषु बीरिठल वाप एन तन बीतिपुडे
गोदोतबाई हुकुइतिदु पोकिमुपोडु नाग कणु निष्टु न
कणुदुवळी भी कण्मातिदु बीबिठिनिष्टुमुतुम कथेनिष्टु न
एमुकडु धवर्तविदु इंडु बगताप ? इमम अके तव नम्बी । नीये ।’
—वैरमाळ विस्मो-

संविता-भाव कृसरोजराज्यार के एक पद में देखिए । एक गोपी कृष्ण से कहती है— तुमने मुझे कृष्ण में आने को कहा था । जब मैं वहाँ बायीं तो मैंने देखा कि तुम किसी बूझरी के प्रेम-पाश में आबद्ध थे । मुझे देखकर तुम बर-बराने लगे । जब तुम जगन्नी बार मेरे पास आओगे तब मैं तुम्हारी 'बैरफाई' का 'उचित बदला' भूँगी ।”^१

हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने भी मान अवस्था का सुन्दर चित्रण किया है । संविता-गोपियों की मनोवस्था की अभिव्यक्ति हिन्दी कवियों ने पर्याप्त सूक्ष्मता से की है ।

एक गोपी शाम से ही स्याम के लिए अतिशय प्रतीक्षाकुल है और छारी रात बीसी बिङ्गलवा से बिता देती है । उसकी बिचलता स्वामाबिक है क्योंकि कृष्ण उसे स्वयं बचन द पये हैं । जब हृष्ण सबेरे रति बिङ्गल भिये पधारते हैं तो वह भीर कुछ मही कर दर्पण भर देख सेने को कहती है । जब कृष्ण संकोच के मारे उभर नहीं देखते तो वह गोपी सुन्दर लम्हों में व्यंग्य करती है—

क्यों मोहन बर्पन नहिँ देखत ।

क्यों घरनी पग-नखनि करोवत क्यों हम तन महिँ फेवत ॥

क्यों ठाढ़े बैठत क्यों नाहीं कहा परी हम चुक ।

पीताम्बर नहिँ कह्या बैठिये रहे कहाँ छँ भूक ॥

उपरि गयो उर सै उपरीना नख-छत बिनु गुन भाल ।

सुर बैलि लटपटी पाग पर, जाबक की छवि भाल ॥^२

तथा

एसी कही रंवीनै भाल ।

जाबक सौं नहँ पाग रंवाई रंपरेबिनी मिली कौज बास ।

बदन रंग कपोलनि झींझो घसन घबर भए स्याम रसाल ।

भासा कहाँ मिली बिनु घुन की उर-छत बैलि भई बैहाल ॥

सुर स्याम छवि सबै बिराभी यहै बैलि भोकउ बंजास ॥^३

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के हृष्ण भक्त कवियों ने प्रेम की संयोगावस्था के विविध प्रसंगों में विविध मनोदशानों और भाव-स्थितियों की अभिव्यक्ति

- १ 'एवं बद्ध बैनरपुरितिरुद्ध इन बसर मुत्सेयिन पसर नीळन
मसि घबळ पुणरपुनहु महुँनै कष्टु उछरा बैकलन्ताय
पीप्रिरबाईवै कैविल तांकी पोय्यञ्चम काट्टी नी पोदियेनुम
इयन एन कयकलु इ कोव नाळ बरदियेन एन चिनम तीर्बन नाने ।”

—वेदमाळ तिरमोळी ६ ५

- २ सूरसागर (मन्त्र) पद सं० ३१०२ पृ० १ ८९

- ३ वही ("), पद सं० ३१०३ पृ० १०८९

अत्यन्त कुपसता से की है। आळवार-साहित्य में प्रेम की संयोजकता के प्रसंगों का विस्तार बहुत कम है। पर जो कुछ भी बिज मिलते हैं, वे संयोग की परिस्थितियों में पात्रों की मनोवृत्तियों को चित्रित करने में सफल हुए हैं।

संयोग की अपेक्षा वियोग शृङ्गार को साहित्यिकों ने अधिक उच्च स्थान दिया है। क्योंकि जहाँ संयोग में प्रिय-साक्षिण्य से प्राप्त सुख हृदय की अनेक सात्विक वृत्तियों को विरोधित क्रिये रहता है, वहाँ वियोग उन्हें उद्विग्न कर भावों के प्रसार के लिये समस्त विश्व का शोक सोस देता है। संयोग में प्रेमी-युग्म एकान्त चाहते हैं, उन्हें अन्य की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं रहती पर वियोग में उनकी आत्मा प्रसार हो जाता है और वे प्राणिमात्र के साथ ही नहीं बल्कि पदार्थों के साथ भी प्रसार हो जाते हैं। वियोगी व्यक्ति अपनी स्थिति को भूलकर उस सामान्य स-भूमि पर आ जाता है जहाँ से उसकी दृष्टि प्रत्येक छोटी-मोटी वस्तु की सच्चा पर जाती है। उसके हृदय की अनुभूति रेशम का साधन न मिलने के कारण पनीपूत और तीव्र होती जाती है। समस्त ससार में उसे उसका प्रिय ही चीज पड़ता है, इसी कारण से सङ्घर्ष कवियों ने संयोग की अपेक्षा वियोग को ही अधिक पसन्द किया है।^१ आळवार भक्तों के काव्य में प्रेम के वियोग-पक्ष का ही अत्यधिक विस्तार है। आलोच्य हिन्दी-कृष्ण-काव्य में भी संयोग शृङ्गार के समान ही वियोग का व्यापक वर्णन मिलता है।

कृष्ण के वियोग में गोपियों की बया दयनीय हो गई है। जब मैं सब कुछ पहले की ही चीजें हैं फिर भी वह गोपिया के लिए पहले का सब नहीं लगता। जब जबपति ही नहीं तो सब वासाओं का सब भी सूना है। उन बेचारियों के आँसान ही नहीं बनते। सूर का एक पद देखिए—

बिचारत ही लागै दिन जान ।

तुम बिनु मंत्र-मुक्तन इहि गोकुल निशि भई कल्प समान ॥

गुरछी शब्द, कल बुनि की गुननि मुनिपत लाहीं कान ।

कलत न रच पहि रही स्याम की सब लागी पछितान ॥

हैं कोउ जाइ कहैं मापी लौं, धीरज बरहि न प्राण ।

सूरदास प्रभु तुम्हरे बरस बिनु, कुरत नहीं छोड़ान ॥^२

गोपियाँ अपना सर्वस्व कृष्ण पर बार बीटी थीं। उनके वियोग में उनका तन म चीकन—सब बिचर की कुङ्कार से समान है। वासिदास के प्रियेसु सीमाव्यक्तता

सूर और उनका साहित्य—डा० हरबंसधाम धर्मा पृ० ११६
सूरदास (धर्मा) पद सं १८११ पृ० ११२५

हि 'बादशा' के अनुसार रमली का सौन्दर्य और शृङ्गार प्रिय को सुवाने के लिए होता है। जब प्रिय ही नहीं तो शृङ्गार ही क्या? तिरुमने आठवार के एक पद का भाव है— बिरहिणी नायिका बियोग-व्यथा में अपनी सखी तक के लिए मृदु मुस्कान नहीं करती। अपने सुन्दर स्तनों पर शम्भन नहीं सगाती। अपने मीन-नयनों में अंजन नहीं सगाती अपने कुन्ठन को सौरभ-युक्त सुमनों से जब नहीं सजाती। कुछ भी शृङ्गार नहीं करती। कुछ हास बिनास नहीं करती। अपने प्रिय तोते तक को खाना नहीं खिलाती।^१

ठीक यही भाव सुरदास के निम्न पद में व्यक्त है

मुख तमोर नेननि नहि अंजन तिलक ललाट न बीन ।
कुचिल बरब घनके घति कसो बिलिपत है तन छीन ॥
प्रम-तृपा सीनों जन जाने—बिरही जातक भीम ।
सुरदास कीर्तति कु हृदय में बिन बिष परबस कीन ॥^२

मानव-हृदय के भावों का प्रकृति के साथ समी भारतीय कवियों ने सामंजस्य स्थापित किया है। प्रकृति मनुष्य के सुख-दुःख में हँसती और रोती है। कोकिल को सबबा कुह कुह करते हुए देखकर बिरहिणी आशाढ समझती है कि वह भी किसी के बियोग में है।^३ नम्माळवार की बिरहिणी अमान्त सागर-नहरों को देखकर यह समझती है कि वे भी किसी के बियोग में तड़प रही हैं। चक्रवा के बिस्माने में उसके प्रिय-बियोग की वेदना ही नायिका को सुनाई पड़ती है।^४ इसी प्रकार सूर की

१ "कुळम्पु मुक्कन तोळियकु अळळ ।
सुरे मुने चायु कोणु अणियाळ ।
कुळम्पु कुचळ कन्निने एळ ताळ ।
कोल-नस मलर कुळकु अणियाळ ।
और—

—पेरिय तिरुमोळी २ ७-२

"कस्तोडु कळलमरवाळ बरिळियुम ।

पल्लुद्राळ पाव पैसाळ ।"

—वही २ १-२

२ सुरदासर (श्या) पद सं० ३८८१ पृ० ११७०

३ "अमुईयारिप्पिरिनुव नोयडु नोयुम अरिबि कुयिसे ।

नोयुरै मेनिरकळ्ळकोटिपुईप्पुन्मिये वरकूबाय ।"

—नाम्बियार तिरुमोळी ३ ४

४ 'पुलम्पुत कनकुरस पोळपायबन्दिनुम कुचळि पाइनु ।

पलम्पुम कन कुरस कुळतिरियातिपुम अकवे मिन ।

बसम्पुसुनु नलम्पाडु मिडु कुटुमारु बंयम ।

बिगम्पुमरही येइवने ? तिरुमात्त इतिवर्निने ।"

—तिरुविदत्तम ८७

वियोगिनी गोपियों को समुद्रा नदी भी हृदय के वियोग-गहर से कासी पड़ी हुई बीच पड़ती है ।

वैजयन्ति कालिन्दी धति कारी ।

यही पवित्र कहिपी उन हरि सौ भई बिछुड़ कुर जारी ॥

गिरि-प्रबन्ध ते गिरति भरनि धंसि तरंग तरङ्ग लग भारी ॥

तट बाक उपचार कुर, जल-धुर प्रस्नेह पमारी ॥

निसि दिन कछई पिय न रहति है, भई मानो धनुहारी ॥^१

सयोग की अवस्था में जिन प्राकृतिक परिस्थितियों में नायिका ने मुक्त झूटा या अब प्रिय के वियोग में वे उसकी बिछुड़-वेदना की जड़ीपक बन रही हैं । दिन रात धनुएँ, मोर पपीहा पीतल समीरण कृष्ण और चाँदनी—ये सब उसको दुःखदायी प्रतीत होते हैं । तिसमेंही बाढ्यवार की बिछड़िणी नायिका के लिए सुगन्धित चन्दन की अब धनि के समान लगाने वाला हो गया है । पीतल चाँदनी भी नायिका पर जाग बरसाती है । सुन्दर गहने भी उसके शरीर पर आघात कर देते हैं । मन्त्र मास्त भी जाग की ज्वाला से भी धवानक मामूम पड़ता है ।

परमानन्ददास की गोपी को भी वही अनुभव हो रहा है—
साईं री जग लखी कुछ रैन ।

कहाँ भी बैस कहीं मन मोहन कहीं मुक्त की रैन ॥

तारे गिनत साईं री सब निसि नैक न लागे रैन ।

‘परमानन्द प्रभु’ पिय बिछुरे से पल न परत चित्त-भैन ॥^२

सूर की गोपी कहती है—
सरब समै हूँ स्थाय न घाए ।

को जान काहे त सबनी कहि बैरनि बिरमाए ॥^४

१ सूरसागर (धमा) पद सं० १८०६

२ काव्यमुद्रा प्रपुत्र चन्दन कुलपुत्र ।

तटमुनिवन्द्य धनिमिषुम ललनाम ।

पोस्त वैरतिरुक्त कविर बुद्धमेतिषुम ।

कैटभुम सीमिकोदियताम ॥

तथा—
कैटभ वस्तु ती सीमुम एन वैडकेन ?

सिक्क वैकविर जीवम एन वैडकेन ?

ईर बाईं ताव ईवम सुनैये ।

परमानन्दतामर (सं० डा० गो ना० पुस्तक) पद सं० ११३७ पृ० १८३

—वेरिय विस्मोदी २-७-१ व ४

—वही, ११११ व २

या बिनु होत कहा ह्यो सुनौ ।

नै किन प्रपन्न कियो प्राची दिशि, विरहिन को कुछ सुनौ ॥

बिनै चंद्र तन मुरति स्याम की बिलस नई कबवात ॥^१

बिबेक में नायिका की एक एक क्षण एक-एक घुग के समान मयता है । सारी दुनिया सो रही है परन्तु विरहिणी को नींद नहीं ? मम्मटाचार की विरहिणी नायिका कहती है—“सारा जगत् निद्रा में धरत है । चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है । केवल मैं ही जाग रही हूँ । क्या समुद्र का भारा जल छत की सम्झी रेखा बनता जा रहा है ? एक-एक क्षण एक-एक घुग बन रहा है । क्या ओर नहीं होमा ?”^२

विरहिणी मीरा को भी यही वधा है—

सह्या सुन बिन नींद न घाई हो ।

पलक मोहि जुम से बीतै छिति-छिति बिरह बराई हो ।

मिति दिन रब तिहारो बिबरो पसक ना पत भर सायी ॥

पीव पीव रहा रटा रैन-दिन लोक-नाक कुल तपायी ॥

बिरह भवेन कस्या कलैजा यां नहर हलाहल जस्यो ।

वीरा ध्यानुस घति धनुजानी स्याम उर्मपा सायी ॥^३

बिबेक में नायिका की इच्छा होती है कि उसकी वैराग्य का अनुभव सारी प्रकृति करे । मधुवन यदि हुआ है या उसे सहानुभूति के लिए मनबलाय हृदय वाला लयमकर विरहिणी उसे पित्रकारी है ।

गुर की घोषिया कहती है—

मधुवन तुम क्यों रहत हुरे ?

बिरह बिबेक स्याम गुनर के डांडे क्यों न करे ॥

मोहन बैंगु बजावत तुम तर, साया डेकि करे ।

कोहै बाहर घबड़ा जयम मुनि बन प्यास करे ॥

बहु बिलबलि तु मल न भरत है, फिर फिर प्रसुप्त करे ।

सुरदास प्रभु बिरह बचानल नल सिध सो न करे ॥^४

१ सुरदासर (मन्त्र) पर म० १६७३

२ “कुरेस्तान तु भी उल्लेस्ताम नलिच्छाय

नीरेस्ताम तेरी ओर नीछिराय मीच्छतान

घार ? एम्ने । बस्तिनयेन यावि काप्यार इमिये ।” —तिरुवाय मोळी २. ४. १

तथा—

“पत वल कुट्टिचळामिदुम धाळिदु ओर नाळिचै” —तिरुविस्तम १६

३ मीरा को परावली (म० परगुराय कुरुवैदी) पद सं २१ पृ० १३२ मन्त्र

मन्दारण ।

४ सुरदासर (मन्त्र) पद सं १८२६ पृ० १३२३

सूर की गोपियों की भाँति बाग़्याल में कहती हैं—
हे कार्कोटस पुष्प (पुष्प विशेष) ! तुम सित-बिसरकर मुझे क्यों सताव हो ?
हे मुझ सखी ! (पुष्प विशेष) तुम मुझे देख-देखकर मेरा परिहास क्यों कर
रही हो ? गायन में रस को किस ! मीठी ठाम में गा-गाकर मेरी बेवना को क्यों
जयाती हो ?^१

बिरहिणी नायिका मेघ भ्रमर कोकिल हंस—सभी से प्रियतम के पास उसके
सन्देश को ले जाने की प्रार्थना करती है। मम्माळवार की बिरहिणी नायिका हंसों से
प्राथना करती है कि वह उसके प्रियतम के पास जाकर उसकी बिरह-वेदना का बर्णन
कर जाए।^२ बाग़्याल मेघ से प्रियतम के पास सन्देश ले जाने की प्राथना करती है।^३
सूर की गोपी कोकिल से प्रार्थना करती है कि वह किसी भी प्रकार उसके प्रियतम को
बन में लाए।

‘कोकिल हरि की बोल सुनाव ।
मधुवन त उपहार त्याग इहि बज की संघाव ॥’^४

बाग़्याल भर्त्ता क ठाम्मा भालोक्यकामीम हिन्दी कृष्ण-मच्छ-कवियों के बिरह
बर्णन की प्रणाली दसकर ही बतानी है। बिरह की बितनी अन्तर्दशाएँ हो सकती हैं,
जितने ईश से उन ब्रह्माओं का साहाय्य से सामान्य रूप से बर्णन हो सकता है, वे सब
उनके काव्य में भीतर मौजूद हैं। बिरह के बर्णन में बाग़्याल हिन्दी के सूर आदि के
समकाल हैं।

१ कार्कोटस पुष्पकण्ठ । कार्कोटस बन्धन एन मेत उर्म्य
पोर्कोलम सेइतु पोरबिदुलबन एंकुडान’

× × ×
“मुत्स पिरातू । नी उन मुरबम कोन्ड एर्म्य
धालत बिर्ल बिदेत अलि नकाम ।”

× × ×
‘पादुम कुयिल कळ । इतु एम पाडल ?”

—नायिकमार विस्मोळी १० १ ४ ५ ५

२ एनम बेल्सीरम बन्धनम बेल्सीरम लोळ विरस्तेन
एर्म्यबिनाई कष्टाल एनई जोस्सी धरिई नीर
एनम बेल्सीरो ? इतुवो तक बेम्बु इर्बेयिळळे ।”

—विरहविलसत ३०

३ मिमाल लळु किन्दु मेर्यकळ । बेळवळ
लम्माळ विरमो लळिय नीर मावडु
एल्लातलिळ कोर्बे विरम्यि माळतोश्म
पोल्माबम्बुबु एन पुरिडुईमे बेप्पुमिने”

—नायिकमार विस्मोळी ८ १

४ सूरसागर (समा) पर सं० १८५८ पृ ११८२

आचार्यों ने वियोग के अन्तर्गत एकादश अवस्थाओं का वर्णन किया है—
 (१) अमिताया (२) चिन्ता (३) स्मरण (४) गुण कथन (५) श्लेष (६)
 प्रताप (७) उन्माद (८) व्याधि (९) जड़ता (१०) मूर्खता और (११) मरण ।
 यहाँ बाळ्यारों के तथा आचार्यों की कृष्ण भक्त कवियों में सूर, परमानन्द तथा
 मीरा के काव्यों में से बिरह की उन ग्यारह अवस्थाओं के उदाहरण दिये जाते हैं—

१—अमिताया

बिरह में अमिताया सभी अवशिष्ट वशाओं की बनती है । प्रिय-वर्जन की
 अमिताया ही बिरहिली की सबसे बड़ी मनोकामना है । बाळ्यार के एक पद का भाव
 इस प्रकार है—

‘मद मय मेरा यौवन ही माख के लिए अर्पित है । मैं उन्हीं की सेवा करना
 चाहती हूँ । मैं तो उनकी दासी हूँ । मैंने ही मेरे स्वामी मुझे स्वीकार न करना
 चाहते हो मेरी कामना इतनी है कि वे मेरे सामने आकर कह दें कि मैं तुम्हें स्वीकार
 नहीं कर सकता । मुझे केवल उनके दर्शन-सुख की अमिताया है ।’^१

सूरदास

‘ऐसे समय जो हरि के भावहि ।

निरसि निरसि यह रूप मनोहर, नैन बहुत लुख पावहि ॥

कबहुँक संग नु हिसिमिमि बेलाहि कबहुँक नु नुलावहि ॥

बिछुरे प्राण रहत नहि धट मैं सो पुनि प्राणि बियावहि ॥

प्रबल असत प्राणि सूरज-प्रभु सब पहिने उठि जावहि ॥’^२

मीरा

जगमा जीवना थोड़ा कुम्हे लयी भवभार ।

माता पिता जय जगम दिया री, करम दिया करतार ।

आयो करवा थोवन जावा कोई करपा उपकार ।

साथो संगत हरिमुख गाथा धीर भा म्हारी लार ।

मीरा रे प्रभु निरघर नागर, ये बल उत्तरपा पार ॥’^३

२—चिन्ता

सदैव प्रिय-विलय की मात्सरा और उन्नी का चिन्तन ‘चिन्ता’ है । यह
 अमिताया का उत्पन्न रूप है । मायिका यह चिन्ता करती है कि अगर प्रियतम नहीं
 आए तो उसकी क्या दशा होगी ।

१ वेम्पुडैय तिरुमाविरा सेलीमेनुम घोड प्राण्डु

वेडुम्मे ओम्मीमुचम नाशकी बिड तान तम्मेत मिड नन्दु

—नाच्चियार तिरुमोळी

२ सूर सागर (मभा) पद सं ४० २ वृ १४०२

३ मीरा की पदावली (सं० परगुराम चनुबेरी) पद सं ११७ मयी संस्करण

नम्रासवार को बिरहिणी नायिका कहती है—“छाया बरकर मित्रा में मग्न है। सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार है। मैं अकेली बाग रही हूँ। रात बहती जा रही है। अगर मेरे प्रियतम नहीं आये तो मुझे कौन सात्वना दे सकेगा ? मेरी क्या रक्षा होगी ?”

सुरदास

ऊँची श्रृंगारिणी प्रति धनुरायी ।

इच्छा मग्न जोरति अरु रोवति मुनेहुँ पलक न लागी ॥

बिभु पावत करि राखी देखत ही बिबमान ।

प्रब हो कदा कियो जाहूँ ही छाँड़ी निरगुन जान ॥^१

रमानन्ददास

रति पपीहा बोस्यो री माई

नीब गई बिन्ता बिठ बाड़ी सुरति त्याग की आई ।

सावन मास देखि घरया रिपु हौं उठि प्रापन आई ।

परजत मगन बामिनी बसकत ताने जीउ जड़ाई ।

बिरहिन बिकल दास परमानन्द धरनि परी मुरसाई ।^२

३—स्मरण

अमिताभा और बिन्ता से जाये बड़ी हुई बिरह की रक्षा स्मरण की है। इसमें प्रत्येक समय प्रिय की याद सदाती रहती है।

विस्मय आलवार की बिरहिणी केवल प्रियतम के नाम को ही छटती रहती है। सबदा जाँचों के सामने नाचने वाला प्रियतम के रूप का स्मरण कर उसका हृदय पिघल जाता है। उसके मीन-नयन कभी बन्द नहीं होते। वह कहती रहती है कि प्रियतम के नयन कमल-बन जैसे हैं, हाथ भी विकसित पद्म हैं। बदन नीला मेघ जैसा है।^४

१ तिरवन्ममोळी ४ ४ १

२ सुरदासर (समा) पर सं० ४१६५ पृ० १४६२

३ अष्टछाप और बल्लभ सप्रदाय पृ० ७२४ से उद्धृत

४ 'धोलिसुम उन दोरुकी मट्टोबाळ उबडुम तिन तिष्ठुव निर्नसु' तथा—

अभि केळ तामरयग्न कण्ठुम
पंक्षुम पंक्षुम मैनि बागल
अभि केळ धामुकिमुम घोपर
अरुचो घोस्वरळकिमवा ।”

—वेरिय तिरमोळी २-७-५

सूरदास

मेरे मन इतनी सुन रही ।

वे बतियाँ कतियाँ निखि राखीं वे मन्दलास कहीं ।^१

परमानन्ददास

- ॐ हरि तेरी लीला की सुधि पावै ।
 कमल नेत्र मन मोहल मूरति के मन-मन चित्र बतावै ॥
 कबहुँक निमिड़ तिमिर भालिगन कबहुँक पिक ज्यों पावै ।
 कबहुँक संभ्रम 'क्यासि क्यासि' कहि संग हितमिसि उठि जावै ॥
 कबहुँक नेत्र मूर्खि उर अन्तर मनि भाला पहिरावै ।
 मनु मुमुक्षुनि बह अवनलोकनि बाल छबीली भावै ॥
 एक बार बरहि मिलहि कृपा करि तो कैसैं बिसरावै ।
 'परमानन्द' प्रभु स्वाम ध्याम करि ऐसे बिपद् संभावै ॥^२

४—गुरु-कथन

प्रिय की याद में विधोयिनी उसके गुणों का अपने छात्र में किये गये प्रेम व्यवहार तथा अपने आमीर को बुरे से प्रकट करती है ।

तिरुमयै आळवार की मायिका अपनी सब्बी से अपने प्रियतम क गुणों की प्रशंसा कर कहती है—“वा प्रियतम मेरे हृदय को अपने छात्र से बने हैं, वे मेरे नाथ हैं सुन्दर-बदन-मनस्वाम हैं । वे देवों क देव हैं । सारे जगत् से पूजित हैं । मुझे अनन्त सुख देने वाले प्रिय हैं ।”^३

सूरदास

एक छोत कुबलि मैं माई ।
 नाना कुतुम लेह अपनी कर, किए मोहि तो सुरति न जाई ॥
 इतने मैं धन गरबि बूटि करी ततु मीरयो मो भई कुशई ।
 कपल बेकि उड़ाइ पीत ली कइनाम्य कंठ तपाई ॥

१ सूरदासर (सभा) पर सं० ४०११ पृ० १४०७

२ परमानन्द दासर (सं० डा० पो० ना० सुजन) पर सं० २६४ पृ० १२१

३ 'मानमुद्रुम उष्टुमिस्त नाबनेमु म'

भाडी एनदुस्तम कोष्ट नापनेमु म

तैडी एम्मु म काय माट्टा वेस्वनेमु म

काबनेमु म बालवरकळ कावलिता मळकळ ।

तुवुम एगनेमु म इप्पनेमु म

-- पात न मस्ति नादुबळ ।

—येरिय तिरुमालो, ४ = १ से ६

कहूँ बहूँ प्रीति रीति मोहन की कहुँ सब पी एत निवृत्तारई ।
सब बसबीर सूर प्रभु सखि री मनुबन बसि सब रति बितरारई ॥^१

मीरा

बे बिय म्हारे कोथ कबर ले मोबरधन बिरधारी ।
मोर मुकुट पीताम्बर शोभा, मुखल री कब म्यारी ।
भरी सभा का इ पद सुतांरी, राक्ष्या नाच मुरारी ।
मीरा री प्रभु निरधर नामर धरष खंवन बलिहारी ।^२

१ उद्योग

प्रिय-वियोग में उद्योग की बहु दशा है जब सयोग-समय की सभी सुखवासिनी बस्तुएँ प्रेमी को दुःखवासिनी प्रतीत होती है ।

तिरुमग आलवार

तिरुमग आलवार की विरहिणी को सुपन्नित चम्प भी जब बमाने वाला हो गया है । शीतल चाँदनी भी जाम बरसाती है । मुखर ध्वन भी उसके शरीर पर आघात कर देते हैं । मन्द मादन भी जाम की बबाला के सामान भयानक बन गया है ।^३

सूरदास

कहौं लौ मानों अपनी चुक ।
बिनु गोपाल सबी ये कठिपौ छुँ न पई ई हूक ॥
हरष भरत है बाबानन ज्यो कठिन बिरह की हूक ॥^४

परमानन्ददास

ब्रज की घोंरे रीत भई ।
प्रात समय सब ताहि न सुनीयत घर-घर बतव रई ॥
सति की किरन तरनि सब लागत, लागत मित्त भई
जहभट नूप बकर केतन की आग्या होत भई ॥
बुन्नावन की भूमि भाँसती ग्वांसिन्ह छाँडि रई ।
'परमानन्द स्वामी के बिछुर बिधि कपु और छई ॥'^५

-
- १ सूरदासर (समा) पद्य सं. ४०२ पृ० १४०४
 - २ मीरा की कवयित्री (सं० परगुराम चतुर्वेदी) पद्य सं० १३१ पृ० १८
 - ३ पेरिय तिरुमोळी २ ७ ३
 - ४ सूरदासर (समा) पद्य सं० ३४३८ पृ० १३३६
 - ५ परमानन्द सागर (सं० डा० गो० ना० मुक्ता), पद्य सं० ५३३ पृ० १४२

६—प्रलाप

प्रलाप की दशा में बिरही जन बिचल होकर अपने मन की व्याधाओं को कहत है, प्रलाप करते हैं ।

भाषाशाल मेंहीं से कहती हैं—“नीलाम्बर में बिचरण करने वाले मेघो ! मुरली-माधव मुझे छोड़कर गया है । बसुन्धो की धारा मेरे स्तनों को प्लावित करती रहती है । क्या मुझ बबसा को इस प्रकार सताता उस माधव को गौरव प्रदान करने वाला कार्य है ? मैं कामाग्नि में तप्य हो गयी । जब शीतल समीरण भी मेरे ऊपर प्रहार कर रहा है । प्रियतम माधव के बचन का क्या हुआ ? अगर यह कसक प्रियतम पर पड़े कि हमने एक स्त्री-मता को सताकर उसका बच किया है, तो उस साधना को मैं कैसे सहन कर सकूँगी ?”^१

सूरदास

तखि मिलि करौ कहुँक उपाज ।

भार भारन चवपी बिरहिति निदरि पायी बाज ।

हुतासन पुन जात जगत बस्यो हरि बिस बाज ॥^२

परमानन्ददास

क्यों ब्रज बेसन नहीं आबत ।

नव बिनोद नहीं रजधानी नीतल नारि मनाबत ॥

कुनिपत कबा पुरातन इनकी बहुलोक हैं पाबत ।

मजुकर व्याप लकल पुन बचस रस सै रति बिसराबत ॥

को पतियाय म्यामघन तन को जो पर मर्नहि पुराबत ।

परमानन्द प्रीति पव धम्बुज हरि भत राग निभाबत ॥^३

१ बिष्णिल मेसाप्पु बिरितापील मैबंकाळ ।

तैप्पीर पाय बेंकडत एन तिरुमासुम मेस्ताने ?

कण्णोडळ मुलकुवट्टिस तुळिबोरण्णोवेने ।

पेन्नीमैवीडाळिनकुम इतु तमकु घोर पैरुमैये ।”

—नाम्बियार तिरुमोळी ८ : १

तथा—

कामत्तीपुळ नुल्लु क्कुण्डु इडिण्णुन ।

एमतोर तैम्पुनुरु इल्लिभठाय नानिण्णै ।

—वही ४ २

“कट्टियेण्डु न तानावान क्कुरानु घोर पैन्कोट्टिये ।

वई वेइतामैन्नुम कोल वयटतार नतिपारे ।

—वही ८ ६

२ मुरसागर (सत्रा) पर मं २७०३ पृ ६६२

३ परमानन्ददास (मं डा० वा ना पुरन), पद मं ८६ पृ ३३

७—उन्माद

विरह व्याधा के अतिरेक से हुई विवेकहीन अवस्था उन्माद' कहलाती है।

नन्मादवार की विरहिणी नायिका की उन्मादावस्था देखिए—“प्रकाशशुद्ध चन्द्र को देखकर नायिका उसे प्रियतम कहकर पुकारती है। ऊँचे पर्वत को देखकर प्रियतम समझ लेती ^१। जब रिमझिम-रिमझिम वर्षा होती है तब नायिका कहती है कि प्रियतम आ रहा है। कभी भी मीठी ध्वनि सुनकर कहती है कि क्या मुरसी बणा रहा है। काले बादलों को देखकर कहती है कि प्रियतम उड़ रहे हैं।”

सुरवास

सखि करि बनु मैं खँखि भारि ।

तब तो मैं कसुबे न सिद्धि, जब धति नुर नैह तपु भारि ॥

उठि हृस्वाह छाह नँदिर बहि धति लगभुल वरपन बिस्तारि ।

ऐसी भाँति कुलाह पुरुर मैं धति बल कह-कह करि डारि ॥^२

८—बड़ता

विरहाविषय से घरीर के विभिन्न अवयवों का बढ़ हो जाता बड़ता कहलाता है।

आण्डाल

“विरह मे मेरी हाडबोया पिबल गयी है। तीर-सम नयन अब बन्द नहीं होत। (इस दुःख घागर में मैं मायब रूपी नाग के बिना विचलित हूँ। मोठी-सम मुस्कान बधनि बाँसे मेरे लपार धीर उमरे हुए मेरे स्तन अब मोबाहीन हो गये हैं)।”

तिरुमोरी आलवार

“तिरुमोरी आलवार को विरहिणी नायिका का घरीर विषय में पीला हुआ है। वह इतनी हृष्ट हो गयी है कि उसके हाथ से कंकण स्वयं गिर पड़ते हैं।”

- १ “ओम्पिय तिकळ्ळकाही ओळि भनिबन्धने । एणुम निम्पु कुम्पुलिर्न मोक्कि नेकुधाने । बावेम्पु कुकुम लम्पु पैम्पुम नळ्ळ काणिल मारनल बन्तानेम्पु धालुम । एम्पुन नैयमळ्ळ वेइतार एम्पुवेय कोमलत्तये ।

—तिरुवाय माळी ४४४ ६ ७ व ८

- २ सुरसलार मुरवायर (समा) पद नं० ३६७१
- ३ “एम्पुवळि इनवेस नेकु कळ्ळ इम पीस्ता पलनाळुम । तुयवकडल पुरकु वीकुलेयवोर तोणो पैरावु उळ्ळ किरुम्पुन ।”
मुत्तम वैम्पुवळ वेय्य बायुन मुनैपुम अळ्ळोळिमेन ।”

—नाम्बिवार तिरुमाळी २ ८ व ९

- ४ नाम्पुटिर मेनि बम्पुनुम पोत्ताम ।
वळ्ळळ्ळम इरे निस्सा एम तन ।
एन्तिळ्ळ विरुनुरु एन मिर्नगिस्तताय ?”

—वेय्य तिरुमाळी २-७-३

६—प्रसाप

प्रसाप की हसा में बिरछी मन दिख हाकर अपने मन की बयबाओ की कहते हैं, प्रसाप करते हैं ।

जाख्वाळ येवीं से कहतो हैं—“नीलाम्बर में बिचरण करने वाले येयो ! मुरसी-माखन मुझे छोड़कर गया है । माँसुओं की भाग मेरे स्तनों को प्लावित करती रहती है । क्या मुझ बयबा की इस प्रकार सताता उस माखन को औरत प्रदान करने वाला कार्य है ? मैं कामाग्नि में तप्त हो गयी । जब सीतल समीरण भी मेरे अंग पर प्रहार कर रहा है । प्रियतम माखन के बचन का क्या हुआ ? अगर यह कर्मक प्रियतम पर पड़े कि हमने एक स्त्री-मता को सताकर उसका बच किया है तो उस लोभमा की मैं कैसे सहन कर सकूँगी ?”

सूरदास

सखि मिलि करी काहुक उपाय ।

भार मारन कह्यौ निरदिनि निबरि पायो बाय ।

हुतात्मन-बुज वासत जगत जायौ हरि-वित बाय ॥^१

पद्मामाख्यदास

ज्यों ब्रह्म देखन नहि पावत ।

नव दिनोद नई रजवासी नीतन भारि नयावत ॥

सुनिपात कथा पुरातन इनकी बहुलोक हैं पावत ।

मनुकर व्यास तकम गुन बचन रत सँ रति बिसरावत ॥

को ब्रह्मिण्य स्वामयन तन को को पर मनहि बुरावत ।

बरवान्त' प्रीति नव समुद्र हरि धन राग निभावत ॥^२

१ विनिमल जेतापु बिरितायेंत मैरकाळ ।

तेभगीर पाय बँकटत एन शिकमानुम पोस्ताले ?

कण्ठोच्छिन्न गुलेककुवटिन मुळिबोरजकोबेले ।

पेन्धोर्मयोदाळिलकुम इनु तमकु घोर पैरमै ।”

—नाखियार विहोळी ८ : १

तथा—

कान्तोपुळ पुनपु कनुस्पट इरंकंगुन ।

गमतोर तेगुनुक्तु ईकिलबराप नाजिण्ये ।

—बहो ० २

“कविपेम्प म तानावान कइराहु घोर वेण्कोइपे ।

बरे बीडतलेगुम बीत बयकसार मतिपारे ।”

—बहो ८ ६

२ गुरनागर (नवा) क० मं २० ३ पु १६०

३ बरनाख्यदास (मं० दा० ना० ना० गुन), प१ मं ८६ पु० ३०३

७—उम्माव

बिरह व्याधा के अतिरेक से हुई विवेकहीन अवस्था उम्माव कहलाती है।

उम्मावकार की बिरहिली नायिका की उन्मादावस्था देखिए— 'प्रकाशबुद्ध को देखकर, तामिका उसे प्रियतम कहकर पुकारती है। जैसे पर्यंत को देखकर प्रियतम समझ लेती है। जब रिमन्मिम-रिमन्मिम बर्णन होता है, तब नायिका कहती है कि प्रियतम आ रहा है। कहीं भी मोटी ध्वनि सुनकर कहती है कि दामन मुरली बजा रहा है। कानों को देखकर कहती है कि प्रियतम उड़ रहे हैं।'

सूरदास

तबि करि धनु लै बंधहि मारि ।

तब ती रं कपुधे न तिरिहै, जब धति मुर नैहै तनु बारि ॥

उठि हनुवाइ साइ नदिर बड़ि ससि लनमुख वरपन बिस्तारि ।

देखी धनि कुलाइ मुकुट मैं, धति बल बड-बड करि बारि ॥^१

८—जाड़ता

बिरहाविक्रम से शरीर के विभिन्न अवयवों का अड़ हो जाना जाड़ा कहलाता है।

साधुदास

बिरह में मैरी हड्डियाँ पिघल गयी हैं। तीर-सम समय भव बन्द नहीं होता। (इस दुःख सागर में मैं साधक कपी नाव क बिना विचलित हूँ। मोती-सम मुस्कान बघनि बाते मेरे अमर घीर उमरे हुए मेरे स्थान जब धामाहीन हो गये हैं)।^२

तिसरगै आसवार

"तिसरगै आठवार की बिरहिली नायिका का शरीर वियोग में पीला हो गया है। वह इतनी दुःखी हो गयी है कि उसके हाथ से कंकण स्वयं गिर पड़ते हैं।"

- १ 'धोन्दिम तिसरै ककाली धोळि मदिबगल्ले । एन्नुम निम्पु कुम्पुल्लिर्न मोन्कि नेडुमाले । बावेण्डु नुडुम मन्डु पेम्पुम मळि कात्तिपल मारवन् बल्लालेण्डु धात्तुम । एन्दिन नैवमळळ केहत्तार एन्नुडैय कोवमल्ले' ।

—तिसराय मोठी ४ ४ ४ ६ ७ ८ ९

- २ सूरसागर मूरसागर (ममा) पद्य सं० ३२७२

- ३ "एन्नुवकि इनवेन केन्नुळ्ळळ इनै पीळ्ळा पल्लळ्ळुम । तुप्पळ्ळळ पुवकु नैन्नुलेयवोर तोली पेरानु उळ्ळळ किन्नु न ।" मुत्तम केन्नुवन्न केय्य बापुम नुर्नपुम छळ्ळळोळ्ळिप्पेन ।"

—नायिकार तिसमाळी ३ ४ ५ ६

- ४ "मान्नाळिर मैलि बल्लमुम पोन्नम ।

बळ्ळळ्ळुम इरै निस्सा एम तन ।

एन्निळ्ळं चिन्नुवकु एन निनैन्निळ्ळुम ।"

—केरिय तिसमाळी २-७-३

सूरदास

बेसी में लोचन कुचत पबैत ।
मनहु कमल सति जात ईस की मुख यनि-यनि बैत ॥
कहु कवन कहु गिरी मुखिका कहु हाक कहु नैत ।
बैतति नही चित्र की पुतरी समुसाई सीबैत ॥^१

२—व्याधि

सार्वत्रिक वसेध को 'व्याधि' कहते हैं । बिरह के कारण बिरही का पीसा होना और कुम्ह हो जाना 'व्याधि' है ।

आम्हाळ

“हे मेवा ! तुम जाकर मेरे प्रियतम को बताओ कि मेरे सरीर की रक्षा मच्छरो द्वारा काले जाने के बाद सेव रह जाने वाले चिळाम-फल (एक फल विशेष जो सुखकर संकुचित हो जाता है) के समान हो गयी है । मेरी 'नइसै-व्याधि' का भी परिचय दे देना । ”^२

सिद्धमग बाळवार

सिद्धमग बाळवार की बिरहिणी नायिका भ्रमर से कहती है— ‘हे भ्रमर ! तुम जाकर मेरे प्रियतम को मेरी ‘पयसै-व्याधि’ का परिचय दे जाओ । ’^३

सूरदास

चितवत ही मधुवन दिन जात ।
नैननि नीब परत नही सजनी सुनि-सुनि वातनि मन अकुलात ॥
प्रब ये भवन बैखियत सुने बाइ-बाइ हमको बज जात ।
अनुदिन मेल तपत बरसन की हरद सलान बैखियत जात ।
‘सूरदास’ स्वामी के बिछुरे, ऐसी नई हमारी जात ॥^४

१० मूर्धा

विशेष में मूर्ध्नि होकर गिर पड़ता ‘मूर्धाविधा’ है ।

१ सूरदासर (ममा) पर सं० ४७१३ पृ० १२११

२ ‘असकोष्टु चिळमोळ न्त तल मुकिल काळ ।
पलकुष्ट चिळदुनि पोळ उळ नैनियपुकुन्नु एल
नर्मकोष्ट नारणकु’ एल नइसै मोय चेम्मुमिने’

—नायिकवार त्रिकुमाळी = ९

३ ‘अलिमतर मेल मयु मुकल्ल घडकाम चिडवाटे ।
बचियरियेन नी चैन्नु एल बयसै मोय उरियाये ।

—नेरिय त्रिकुमाळी ३९२

४ सूरदासर (ममा) पर सं० ३८६८, पृ० १३६६

नम्यालवार

नम्यालवार की बिरहिली नायिका 'विषोम-व्यथा' में विलाप करती हुई खन करती है। फिर मूर्छित होकर जमीन पर पिर पड़ती है।^१

सूरदास

लोचन धरि वल्लभाति राबिका मूर्छित करनि बही ।
'सूरदास' प्रभु के बिछुरे ते बिचार न जात सही ॥^२

११—मरस्य

हमारे कवियों ने बिरह की म्यारहवीं रक्षा 'मरस्य' का काव्य-परम्परा के अनुसार केवल उन्नेस मात्र किया उस अवस्था का बिचार अवगता नहीं किया।

आपण्डाल

'हे मेरो ! मेरे प्रियतम से तुम यह जाबो कि प्रतीक्षा करते-करते मैं मर भी जाऊँगी।'^३

सूरदास

प्राग हमारे पात होत हैं, तुम्हारे भाये होती ।
या जीवन से मरन भली है करवत ली है काती ॥
पुनः प्रीति संभारि हमारी, तुमको कहन पठापौ ।
हम ली बरि बरि मरन मई तुम, प्राणि मरन जवापौ ॥
कै हरि हमको प्राणि मिलावतु कै ली जनिदै साये ।
सूर स्वाम विभु प्राग लजति हैं बरेव तुम्हारे पाये ॥^४

उपर्युक्त एकादश अवस्थाओं के अतिरिक्त दोनों भाषाओं के हमारे आलोच्य कवियों ने बिरह की और भी अनेक रक्षाओं का वर्णन किया है। (विस्तार मय से उन्हें यहाँ नहीं देते।)

- १ "अनुम तोळुम आदिमलतेधेनुयिकु म
दळुमु मैम मोक्की इमैयिळ्ळिसकुम
एन्ने नौकुळेन एनुम" ॥

—तिरुवायमोळी ७-२-८

- २ जमरमीत सार—सं० रामचन्द्र सुभक्त पृ० १४
३ "लोकिवन्धन बर्ध बिन्ते उरकल्लोडु इरुपैस्ताम
एळिमैपाल इट्टु एन्ने ईरुळ्ळिम्प्योइनवात
पळिपल मैरुळ्ळः । आदि "कलिरुपैने" ॥

—नायिकायार निरुपोळी ८ ३

४. सूरदास (उवा), पद सं० ४२२५ पृ० १४७२

भ्रमर गीत

हिन्दी के मूर आदि कृष्ण-भक्त-नवियों ने 'भ्रमर-गीत' नाम से एक विशिष्ट विरह-काव्य की रचना की है। भ्रमर-गीत शीघ्र के नाम से इस काव्य में वे पद संवृहीत हैं जिनमें गोपियाँ भृङ्ग को मन्थ करके अपने मन की विरह-व्यथा व्यक्त करती हैं। इस प्रकार की भ्रमर-गीत परम्परा तमिळ में नहीं है। आळवार-साहित्य में विरहिणी नायिका (गोपी) के भ्रमर द्वारा नायक के पास सर्वेश भेजने के प्रसंग का तो वर्णन है पर वह भी बहुत मरुप में है। उसमें उडव के ब्रज में जाने का उल्लेख नहीं है और गोपियों का उपासम्म का भी विस्तार में निर्बाह नहीं हुआ है। अतः वह हिन्दी के भ्रमर-गीत की नोटि का नहीं है। 'भ्रमर-गीत' काव्य हिन्दी कृष्ण-काव्य की एक बड़ी विशेषता नहीं आ सकती है। भ्रमर-गीत प्रसंग को सर्वप्रथम विकसित एक विस्तृत रूप से साहित्य में माने का श्रेय मूरबास जी का है।^१

ऐसे तो मूरदास जी ने तीन भ्रमर-गीत लिखे हैं। नन्बरास का भी एक 'भ्रमर-गीत' है जो मूर के भ्रमर-गीत के अनुरूप पर निर्मित है। इन दोनों के बाद तो 'भ्रमर-गीत' काव्य की एक सम्प्री परम्परा हिन्दी में चल पड़ी। मूरबास जी के तीन भ्रमर-गीतों में से एक ही अधिक विस्तृत रूप में है और उसी को 'भ्रमर-गीत' काव्य के लक्ष्य में सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। मूर के इस भ्रमर-गीत के अन्तर्गत मूर की प्रतिभा और नवित्व कला के विकास के लिए पर्याप्त स्थान है। उडव के ब्रज में जाने पर गोपियाँ उपासम्म मरे शब्दों में अपनी विरह-व्यथा को उडव से कहती हैं एक और को सम्बोधित कर पर सख्य तो उडव को सुनाने का ही है। विप्रसम्म गृधर के अन्तर्गत निर्मित इस भ्रमर-गीत में गोपियों का उक्ति-वैचित्र्य व्यक्त और बान्धव्य वर्तनीय है। इस भ्रमर-गीत के प्रणयन में मूर के दो उद्देश्य हैं (१) ज्ञान से भक्ति को श्रेष्ठतर सिद्ध करना और (२) सगुण भगवान् की उपासना की महत्ता दिखाना।

मूर की गोपियाँ उडव के निगुण ब्रह्म के उपदेश को सुनकर दुःखी होती हैं और अपनी कोई आस्था नहीं दिखलाती क्योंकि वे तो अनन्य भाव से सगुण ब्रह्म की उपासना हैं। तभी तो वे कहती हैं —

तो हम मान बात तिहारी ।

अपनी ब्रह्म बिनाही ऊपी मुकुट पिताम्बर धारी ॥

उनके लिए तो निगुण ब्रह्म की उपासना अत्यन्त और व्यर्थ है। ऐसे अनेक गोपियों के बचन मूर के भ्रमर-गीत में मरे पड़े हैं जहाँ वे निगुण के प्रति अपनी अनमर्षता प्रकट करती हैं। जैसे—

१ हिन्दी में भ्रमर-गीत काव्य और उसकी परम्परा—डा० स्नेहसता श्रीवास्तव

१—“सूरदास या मिगुन सिगुहि कौन सके प्रबणाहि ।”
२—“कौन काल या मिगुनि सो बिरबीबहु कान्हू हमारे ।”
३—“मिगुन कौन बेस को बासी ।”

सूर का ‘भ्रमर-गीत’ प्रसन्न-विशेष की विशेषता के साथ-साथ अपनी निजी अन्य विशेषताएँ भी रखता है जिनके कारण वह हिन्दी साहित्य में विशेष महत्त्व रखता है। आसौष्य नवियों में सूर और मन्दास के भ्रमर-गीत-काव्यों में दृश्य-विषयों के व्यक्तित्व धोपियों के नामों नामों मनोवृत्तियों प्रेम विद्वत्ता बिरह आदि के अनेक अनेक भाव-स्वित्तियों के भी समीप बिजल मिलते हैं। सूर के ‘भ्रमर गीत’ से बो-सीन उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं। यथा—

१—मधुकर ये नैता ये हारे ।
निरखि निरखि मग कमल नैन के प्रेम मगन भए हारे ॥

ता दिन तें नीबीं पुनि नासी बौकि परत प्रसिकारे ।
सुपन ठुरी जागत पुनि भई बसत जु हृदय हमारे ॥’

२—निसि बिम बरपत मन हमारे ।
सबा रक्षति बरपा रिनु हम पर जब तें स्याम सिधारे ॥
इग प्रजन न रक्षत निसि बत्तर कर कपील भए कारे ।
कंजुकि-पद सूझत नहि कबहुँ, उर बिज बहल पनारे ॥
प्रसू-सलिल सबै भद काया पस न जात रिस टारे ।
‘सूरदास’ प्रभु यहै परेसौ मोकुल काई बिसारे ।’

३—मिगु पोपस बरनि भई सुखे ।
तब व लता लपति लग सीतल, पद भई विषम क्वात की पुखे ।
बुधा बहति जमुना जग बोलत बुधा कमल-कुलनि धलि-मुखे ।
पवन पान घनसार समीजन बधि-भुत फिरनि भागु भई सुखे ॥
यह ऊँची कहियौ मायो सौं मदन मारि कीहूँ हम सुख ॥
‘सूरदास’ प्रभु सुम्हरे बरत की जय-जोषत छँजिया भई-सुखे ॥’

बिरह-वर्णन की व्यापकता के अतिरिक्त सूर के ‘भ्रमर-गीत’ में धोपियों की सरसता और अनन्यता के साथ-साथ उनकी वाक्-पटुता मति-वैचित्र्य और आत्म-व्यंग्य भी काव्य की दृष्टि से अति उत्तम हैं।

- १ सूरदास (सभा) पर सं० ४११७ पृ १४६३
२ वही („) पर सं० ३८२४ पृ १३६१
३ वही („) पर सं० ४६८६ पृ १६१२

अथ रस

बाळ्यार भर्तों के तथा बालोप्यकासीम हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में रस रूप से 'वात्सल्य रस' और 'शृङ्गार रस' का ही परिपाक हुआ है, जिनकी बर्णना ब्रह्मरूप है हमने पिछले पृष्ठों में की है। परन्तु इन भक्त-कवियों की कान्त कवि-दृष्टि प्रत्येक रस की ओर नहीं रुक पाई। उनकी रचनाओं में उक्त दोनों रसों के बीचों-बीच प्रसंग के अनुकूल हास्य करण अरभुव आदि रसों का भी परिपाक हुआ है। नीचे हम इनमें से प्रत्येक रस के कुछ उदाहरण देते हैं :—

हास्य

बाळ्यारों में—विशेष रूप से पेरियाळ्यार तथा हिन्दी कृष्ण-भक्त-कवियों में हास्य का भी की संज्ञा से उनकी विमोद-प्रियता टपकती है। बाल-सीता-बाल्य में कृष्ण की बेचैयारी तथा उनकी आनुरूपपूर्ण उत्क्रियता हास्य का संसार करती है। बाल्य-समय का बाल्य उदाहरण जिनमें हास्य का पुट है। हम पीछे दे चुके हैं। ऐसे स्थानों पर हास्य 'रस की कौटिक तक प्राम' नहीं पहुँचा है। हास्य के एक-दो उदाहरण यहाँ देते हैं।

बालकृष्ण पद्मसे के बरों से सम्बन्ध बनाकर ही नहीं जाता बल्कि कामे के बाद कामी बड़ों को पत्थर पर से मारता है और उनके दूधकर बिखरने की आवाज सुनकर मुँह फाँटकर रोता है। इस प्रसंग का वर्णन करने वाले पेरियाळ्यार के पद^१ में हास्य का पुट है। जब बालक कृष्ण अपनी माँ को बार-बार लाल-लालकर बोल करतें हैं और अपने हाथों की उँगलियों को एक-दो-दो प्रकार से रगड़कर विभिन्न प्रकार की आवाज पैदा कर बड़ों को 'हाऊ' का बोल दिखाते हैं^२ तब हास्य का अच्छा परिपाक होता है।

श्रीर-हृण-सीता को चिन्तित करने वाले माँझ के एक पद में मोपियों की नाकियों को लेकर पैर पर चढ़ने वाला कृष्ण की बेचैयारी की तुलना बन्दर की बेचैयारी से की गई है। मोपियाँ भी पैर पर चिराजमाल कृष्ण से कहती हैं—'हे बन्दरों के राजा! हम तुम्हारे आसन' का मानती हैं कृष्ण हमारी नाकियों को नीचे फेंक दो।'^३

कुरवान की क बनेर पर्वों में हास्य का पुट है। एक स्थान पर कृष्ण को बड़ी की बोगी बन्दे हुए ऐन मोरे पर पकड़ लिया। मुँहा पूरा था कृष्ण इन्कार नहीं

१ पेरियाळ्यार तिरुमोळी २-६।

२ वही २।। से १०।

३ "बालक विदित् पंकुष भोन्दी बळर कुईमल्लु कुनैयित।

घरक निस्ता कण्णनीर कळ घामवसिन्नुबावारय

कुरवकरनु घावु घरिन्तोळ कुनैतिई दूरे पविपाय।

कर सजते क्योंकि उसका हाथ बधि भाजन में था । अब क्या किया बाय ? उन्होंने
कीरन ही बात बनाई—

मैं जलसी यह मैरो घर है, ली घोड़े में घायी ।
बैसत ही गोरस में बींठी काइन कौं करि नायी ।^१
उमकी बात पर बिस्वास हो मा न हो पर बगुरठा-पूर्ण उछर सुमने बाने के
अबरोँ पर हास्य विरक ही सठेगा । एक और उदाहरण लीजिए—

मैया मैं लहि भाजन लायी ।
स्यास पर ये सखा सब मिलि मेरे मुस लपटायी ।
बैकि तुही संकि पर भाजन अँके बरि सटकायी ।
हौं भु कहत नार्हें कर अपने मैं कैंते करि पायी ।
मुस बधि पोंकि बुझि इक कोहूँ बोना पीठि बुरायी ॥
बारि साँठि मुमुलाइ बतोरवा स्यामहि कष्ट सपायी ॥^२
इस पद में हास्य रस की कोटि तक पहुँच जाता है । मुस से बिपटा हुआ बड़ी
पोंछमा पीठ पीछे बोने की छिराना तथा छोटे हाथों की दुहाई देना—उद्दीपन विभाव
की सामग्री है । स्वामी भाव हास्य है जो पद में बलिष्ठ सम्पूर्ण परिस्थिति के सामने
जाते ही किस उठता है ।

पेरियाळ्वार बुझाये का बर्णन कर यह उपदेश देते हैं कि कई प्रकार के कष्टों
को भेजे बाने बुझाये के बाने के पहले ही मनुष्य को भगवाद् की धरण में जाना
चाहिए । बुझाये में होने बाने जिन कष्टों का बर्णन आळ्वार करते हैं उसमें कष्ट
रस का संचार है । 'बुझापा जाता है । शक्ति क्षीण हो जाती है । शीघ्र ऊपर की ओर
जाती है । शरीर पर मक्कियाँ रह-रहकर बेचना दे रही हैं । पैर काँपते हैं । मुँह में
मिया वमा मात भी पेट में नहीं जाकर बाहर निकल जाता है । पौर काँपते हैं । मुँह में
जाता है । कुत्ते पास आकर मुँकते रहते हैं । (ऐसी दवा में भी) रिस्तेबार जानर
छिपाकर रहे हुए बग का पता पूछ-पूछकर तप करते हैं । अब जाकर वह भगवाद्
को पुकारता है ।'^३ इस बर्णन में शोक और दुःख स्वाधी भाव है ।

- १ सुरसालार (धमा) पद सं० ८१७ पृ० ३५४
- २ बड़ी (धमा) पद सं० १५२ पृ३७१
- ३ बीयिमान कैरिलेरिय पुन मेत केन्द्रेतेरिबुळम्पितम्पु एंडुम ।
ईरिमान धरिपुण्डु मयबी एस्त बाय केन्द्रे केवतन मुपम'
मेवेळस्त तोर बापुविळम्पु मेत मिळदिने उस्ते बाँकी ।
कानु कँपुम बिबिर बिबित, एरी कानुरकरुमाबदन मुपम ७

नायिका के बिरह-बर्णन में भी कछुए मनोभाव के कई सुन्दर चित्र हैं।
नाम्माळ कहती हैं—“विमोग में हृदयों पिघल गयी हैं। शरीर खीण हो गया है।
कुल-सागर में माघव जपी नाव के बिना मैं डूब रही हूँ। ज्वरों की बह मकुर
मुस्कान भी ओझस हो गयी है। धीरज हुआ और चरिणी भी सब सताती है।” यह
कछुए चित्र विप्रलम्भ-वृत्तार के अन्तर्गत आता है।

हिन्दी कृष्ण मत्त-कवियों के अनेक पदों में कछुए रस की व्यंजना हुई है। मूर
के रत्नानल-बर्णन में कछुए रस का चित्र अंकित हुआ है —

“घब के रासि कैहु मोपाल ।

बसहुँ बिता कुसहुँ बबापिनि, उपजी है इहिकाल ॥

पटकत बांस कांस कुस अटकत, लटकत ताम तमाल ।

जबहत अति संगार फुलत फर सफहत लपट करस ॥

बुम बुपि बाड़ी घर अबर, चमकत बिज-बिज ज्वाल ।

हरिन बराह, मोर जातक पिक करत जीव बेह्वास ॥”

जरोत्तम बास के निम्नलिखित पद में मुत्तमा की दयनीय दशा का वर्णन है।
इस पद में यद्यपि कछुए रस का पूर्ण परिपाक नहीं होता तो भी कछुए भाव का
सुन्दर चित्र अंकित हुआ है —

सीस पग न सगा सम में प्रभु । जाने की चाहि बडे केहि प्रामा ।

घोली प्यो सी लटी कुपटी घब पाँय जपानहु को नहीं सामा ।

हार करो द्विज दुर्बल एक रह्यो जबि सो बसुबा अभिरामा ।

पूछत बीन ब्रजान को पाम यतावत आपनी नाम बुदामा ॥”

धीर रस

कृष्ण काव्य में धीर रस के भी कुछ प्रसंग हैं। जहाँ कृष्ण को राजसों और
यत्नों के साथ लड़ते हुए चित्रित किया गया है वहाँ धीर रस का संचार हुआ है।
बाळ्यार-साहित्य में धीर-रस प्रधान प्रसंग बहुत कम हैं। फिर भी एकाध स्थलों में
कृष्ण की धीरता का वर्णन मुनवै समय धीर रस की व्यंजना होती है।

गोबद्ध न मिरि-मारण प्रसंग के पेरियाळ्यार के एक पद में कृष्ण की जवार
धीरता का वर्णन है—“बड़े-बड़े बादल परपर बरसाने लगे भागों रख-सेन में घटों की

जोबिनाम पोळ्ळ बीत प्पाटिल जोम्मु जोम्मेन बुडु मिन्ननु ।

प्पाटिल वानुन चाड तिरवावे अल काममईवहन मुन्नम”

—पेरियाळ्यार तिरुमोळी ४५२ वे १

१ नायिकवार तिरुमोळी १ ४ ६ व १०

२ मुराणगर (यमा) पद लं १२१३ पृ० ४७८

३ मुत्तमा अरित—सं० ललितप्रसाद मुकुम १४

काम्य-कसा (भाव पक्ष)]

बर्षा हो रही हो। कृष्ण ने गोवर्धन गिरि को हास की तरह उठाया और उस गोवर्धन गिरि-कपी हास से पत्थर बर्षा कपी सरों को रोका ।^१

हिन्दी कृष्ण-मत्त-कवियों में सूर और परमानन्दबास के कुछ पदों में भी रस का अच्छा परिपाक हुआ है। सूर का निम्नांकित पद देखिए :—

प्राज्ञ को हरिहि न सत्त नहुअई ।
तो सबों धंसा जगनी की सासगु-गुत न कहअई ।
स्यवन लखि महारवि कहीं कपिध्वज सहित गिरअई ।
पाँडव-बल-सम्पुस हँ बाझ सखिता बहिर बहाअई ।
इती न करौ सपस तो हरि की, छत्रिय-गतिहि न पाअई ।
सुरबास रन-भूमि बिजय-बिनु जियत न पीठ बिछाअई ॥^२

(इस पद में भीष्म 'भावक' (भाव्य) कृष्ण 'प्रतिभावक' (भासवन) कृष्ण की सत्त ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा 'चरूपन' और उसकी स्मृति 'सचारी' तथा स्यवन और महारवों को लखित करने सूर की मदी बहाने आदि की प्रतिज्ञा अनुभाव' हैं।)

परमानन्दबास का निम्न पद देखिए —

नख । गोवर्धन पुजौ प्राज्ञ ।
जाते गोप पुबात पीपिका मुली सबन को रत्न ॥
जाकों बलि-बलि बलिहि बनावत कहा सख सों काज ।
गिरि के बस बैठे आपने घर कोटि इन्द्र पर गाज ॥
मेरो कहौ मान दाब सीज भर-भर सकटन साज ।
'परमानन्द' प्राज्ञ के प्रपत बुधा करत छित नाज ॥^३

रौद्र-रस

रौद्र रस के बिना आठवार-साहित्य में बहुत बूँदने पर भी नहीं मिलते । हिन्दी कृष्ण-काम्य में रौद्र रस के भी बिना मिलते हैं। बजरासियों द्वारा कृष्ण के कहने पर इन्द्र की प्रजा त्याग कर गोवर्धन पर्वत का पूजन होने पर इन्द्र का कोप 'रौद्र रस' की कोटि तक पहुँच गया है।

१ 'बलमानुष्ठित पत कमप्योच्छ्रु
बरमारौ एकुम पौच्छिन्नु ब्रुवन्तिदु
नलिनानुरवैकम कोपवन पोत
नारायणन मुन मुकुम कात सने'

२ सूरसागर (धमा) पद स० २७०, पृ० ८७

३ परमानन्द सागर (ध०) भा० पो० भा० मुक्त) पद स० २७७, पृ० ८३

—वेरियाळवार विस्मोळी १-१-८

प्रथमहि देउ गिरिहि बहाइ ।
 ब्रज-घातनि करी सुरकुट, बैरु बरनि मिलाइ ॥
 मेरी इन महिमा न जानी, प्रगट देउ दिखाइ ।
 बरसि बस ब्रज मोइ करी सोग देउ बहाइ ॥
 जात-बेलत रहे नीके करी उपाधि बनाइ ।
 बरस बिन मोहि देत पूजा बई सोउ मिठाइ ॥
 रिस सहित सुरराज लीन्हे प्रसय मेघ बुसाइ ।
 सुर सुरपति कहत पुनि-पुनि परी वन पर बाइ ॥^१

(इस पद में क्रोध स्थायीमान है इन्द्र आत्म्य ब्रजवासी बालम्बन पूजा को मिटा देना उद्दीपन बिभाव पर्वत को घुस में मिलाता मेघों को बुसाकर ब्रज में बहाने के लिए बाधेश देता अनुमान और कोई हुई पूजा की स्मृति संचारी भाव है ।)

परमानन्ददास के निम्नलिखित पद में भी रोड रस की व्यञ्जना हुई है—

काहे को मारग में बध देखत ।
 लखराइ को मातो हाथी घातत असुर सपेइत ॥
 कहत ब्याल सब सखा नख के मत परजत जुग ठोकत ।
 कस बस को परिचित करि है कौन करोस रोखत ॥
 नाहिम सुनी पुतना मारी तनाबत बध कैसी ।
 'परमानन्द दास' को ठाकुर से योपाल पेरैसी ॥^२

अद्भुत रस

अद्भुत रस के प्रसंग आठवार तथा हिन्दी कृष्ण भक्त-कवियों के काव्य में कई स्थानों पर हैं । बाल-लीला के अन्तर्गत कृष्ण के माटी-झाने का वर्णन है । एक बीवी ने आकर यशोदा से शिकायत कर दी कि तेरे सड़के ने मिट्टी खाई है । यशोदा ने कृष्ण को मुख सोसकर मिट्टी बिसाने के लिए कहा । कवि पेरियाळवार को जबसर मिल गया और उन्होंने कृष्ण मुखव्याधान में समग्र ब्रह्माण्ड को दिनाकर अद्भुत रस की शृष्टि कर दी । पेरियाळवार लिखते हैं—यशोदा ने भूँह को सोसकर देखा कि कृष्ण के भूँह के अन्दर सात लोक शील रहे हैं । समस्त ब्रह्माण्ड शील रहा है ।^३ यशोदा कृष्ण के मुख में अक्षिप्त ब्रह्माण्ड को देखकर बिस्मय विभुम्न हो गई । मूर भी मिलाते हैं —

१ सुरसापर (ममा), पद सं० १४० पृ १२९ १७

२ परमानन्द सागर (नं डा० यो० ना पुरन) सं० १०२ पृ० १७

३ 'देव नाबळिताऽऽबहु धंदवामिट ।

बध भेडन कष्टळ पिडबापुडे ।

प्रसन्न ब्रह्माण्ड जगत् की महिमा बिकरायो मुक्त माहीं ।
सिन्धु, सुमेरु, गरी, जल पर्वत बहुत भई मन माहीं ॥१॥

मुरली के बिस्मयान्वह प्रवाह के बिजण से भी पेरियाळवार और मुरबास ने
अस्त्रुव रस का समावेश किया है । पेरियाळवार लिखते हैं— क्या मुरली वजाने
सवे । मुरली की मधुर-ध्वनि सुनकर देवसोक की मेनका ऊर्ध्वशी विसोत्तमा भावि
बप्सराएँ भी लज्जित होकर अपने नृत्य-गीत छोड़ देवसोक के द्वार पर खड़ी मुरली
माद सुन रही थीं । पक्षीपक्ष अपने बोंससे छोड़कर क्या के द्वार पर खड़ी मुरली
सवे । पशु-पक्ष भी जमीन पर सेटे-सेटे मुरली नाद को सुनने में रत थे । हिरण के
समूह भी पास करना सुनकर बिज लिखित से हो गये । कुल पुष्प-वर्षा करने सवे ।
पूलों में मधु की धारा बह उठी । पेड़ों की शाखें नीचे की ओर झुक गयीं मानों वृष्टि
की बार बहकर प्रणाम कर रही हों ॥२॥

मुर के मोचे लिये पद में भी मुरली-ध्वनि को सुनते ही भावार्पणक घटनाओं
के बटित होने का उल्लेख किया गया है—
मुरली सुनत प्रथम जने ।
बके भर, जल सरत पाहुन बिछल पुच्छ भजे ॥
पय जगत सोपननि जल तें प्रम पुलकित पात ।
सुरे द्रम अकुरित पस्तक विटप जलन पात ॥
सुनत जग-भृग मीन साध्वी बिज की अनुहारि ।
परनि जगनि न मति जर में जती जोग बिसारि ॥
गाला गृह-गृह सबे सोबत जई सहज सुमाद ।
मुर-मधु रस रास के हित सुखर रनि बाझाइ ॥३॥

परमानन्द रास क निम्नलिखित पद में अस्त्रुव रस का समावेश है —
कसौ माई प्रवरज उपर्ये भारी ।
पवत लियौ उठाय प्रक सं सात बरस को भारी ॥
सत छीत निति इकट्ठ ही पाने बाम पानि पर पारपी ।
प्रति सुकुमार कुवर नम्र कसे बोस सहामरपी ॥

१ मुरसागर (गंगा) पद सं० ८७३ पृ० ३४०
२ "मैनक्याहृ तिलोत्तमं प्ररम्भं उरुपतिपरवर केळकि मयंकी
बानकम पङ्क्तिन बाय सिद्धमिन्द्रि आडस पाडलबे मारिनर ताने"
परिबयिन कर्तुंजल कुटु मुरमु बमु मुरमु पमु मुरमु किड्य
करबयिन कर्तुंजल कास परमिद्रु कबिलितिरंजी केबियाट्ट किस्तावे ।
—पेरियाळवार तिरमाळी ३-६४, ८ ६४ १०

मुरसागर (गंगा) पद सं० १६८६ पृ० सं० ६२८

बरखे मैघ महा-प्रलय के सिमते घोष उबारधी ।

मोक्षन स्वास घोष सब राखे सुरपति गरब प्रहारधी ॥^१

मयामक रस

आठवार-साहित्य में मयामक रस प्रधान बहुत कम प्रथम है । तिस्रों आठवार में 'सिंहबेळ कुम्भ' नामक मयामक वन-प्रवेश का वर्णन करते हुए मित्रा है— बाँसों के टकराने से पैदा होने वाली आग सारे आकाश को रक्षित कर देती है, मार्गों आकाश ही बस रहा हो । सिंह, हाथी आदि बंसी जानवर भयभीत होकर भयंकर आवाज करते हुए दूर-दूर भागते हैं ।^२ तिस्रों आठवार के इस वर्णन में मयामक रस की व्यवस्था हुई है ।

सूरदास जी के कुछ पदों में मयामक रस के उदाहरण मिल जाते हैं । मैघों की बगबोर वर्षा से बगबायी भयभीत हो उठे । उस समय का वर्णन करते हुए सूर लिखते हैं :—

मैघ-बस-प्रबल बज भोग देखे ।

चकित बह-राहें भए, निरखि बाहर नए, स्वास पोपास डरि गमन देखे ॥

देरे बाहर लजल करत प्रति महाबल चलत पहरात करि संयकाता ।

चकित भए नंद सब महर चकित भए, चकित नर-नारि हरि करत क्याता ॥

घटा पन घोर पहरात सररात डररात बररात बज भोग डरये ।

लक्षित-प्रासात सररात छतपात, बुनि नारि-नर सकुचि तन प्रात छरये ॥

बहा बाहुत होम, भई कबहूँ बी न, कबहूँ प्रांगन भीन बिकल डोसै ॥^३

(इस पद में बगबासियों के हूँसों में भयंकर वर्षा के कारण उत्पन्न हुआ भय स्थायी भाव है । भयंकार फैलना बिजली कड़कना आदि उद्दीपन विमान के जन्तुगत है । बगबासियों का व्याकुल होना संक्रान्त होना आदि अनुभाव हैं और दूर-दूर दृष्टि विक्षेप, 'क्या होने वाला है' आदि उत्क्रियों से चिन्ता आदि का प्रकट करना संघाटी भाव है ।)

१ परमानन्द सागर (म० डा० यो० ना शुक्ल), पद सं० २६८ पृ ८४

२ "काहलबाके मैघु घोसिण्य करसवर बैरिछई घोष ।

तेइत तीयात बिमबिबरनुम सिंहबेळ कुम्भमे ।"

"नैरित्त बैयिन मुळपुळ निगु मोलनैरियाम उळुबै ।

तिरित्त आनन्नुबुदु पाक्कुम सिंहबेळ कुम्भमे ।

—पेरिय तिरमोळी १-७-६ व ८

३ सूरदासर (समा), पद सं० १४०३ पृ० १२८

हिन्दी के कृष्ण-मच्छि-काव्य में बीमत्स-प्रधान पद बहुत कम हैं। आठबारों के काव्य में एकाग्र उदाहरण बीमत्स रस के भी मिल जाते हैं। तिरुमवे आठबार बुकार्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं—“बुकारा जा गया है। घरीर कुबड़ हो गया है। वह एक-एक पद को बीमे से बाधे रखता हुआ जाता है। हाथ काँपते हैं। पीठ पर हड्डियाँ बीस रही हैं। बाँझों बिरकुत भंस गयी हैं मानो बड़ों में पड़ी हों। घरीर में छीके की मीठि हड्डियों का जाल मान रहा गया। घरीर घाँकड़िनी हो गया है। बाँझों से पानी निकसता है। मुँह से कफ निकल रहा है। वह बार-बार लाँघता है। घरीर में फुन्सो-फाँसे हैं जिन पर मक्खियाँ उड़ उड़कर चढ़ा रही हैं।” (कवि का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के बुकारे के जाने के पहले ही मनुष्य को मगबाध की चरण प्रहरण करनी चाहिए।)

बीमत्स रस का स्थायी भाव ‘दुःख’ है। बिनीमे हस्य इसके आभम्बन हैं। उसमें कृमि मक्खियाँ दुग्ध आदि उड़ीपन हैं। मोह अपस्मार, व्याधि आदि संचारी हैं। बुकना मुँह छिओकना मुँह फेरना आदि अनुभाव हैं।

शान्त रस

शान्त रस का स्थायी भाव ‘निर्वेद’ है। संसार से ज्ञानि एवं निरक्ति को भावना इस रस के मूल में है। संसार की निस्तारणा अपने पापों को मणना और किये पर एकाग्र आदि अनुभाव तथा हर्ष, आरम-ज्ञान आदि संचारी भाव हैं। आठबार के का हिन्दी कृष्ण मच्छि-कवियों के नियम के पदों में शान्त रस की प्रधानता है। तिरुमळिटी आठबार के एक पद का भाव इस प्रकार है—

‘हे मेरे मन ! मगबाध की वन्दना और स्तुति करो। यह जान सा कि मनुष्य जीवन बिरकुत मिट जाने वाला है। बबिरम रूप से बीतते रहते बिन लडग की तरह बाधु की बबकि काटते रहते हैं और व्याधि जरा और मरण में जीवन की परिणति होती है। यह भी जान लो कि बान की बच्छाई बाधा पर निर्भर है। प्राप्तिना करो

१ “मुद्रमुल कोल मुर्षया मुमदि गोक्को बळंमु ।
इड काल पोत तल्ली मेळ इन्नु मंनु इलेयामुन ।’
मुद्रु पडि कंतमत्ताल मुन्नोव कान्नुत्ती ।
बिबिर बिबित् कन कुलन्नु मेळिळ कोण्डु इरमि ।
उरिक्कळ पोत मेहनरम्येन्नु कन तळ्ळु पळ्ळमेळी ।
पीळं चोर कण्डुकी पितळ मुल इरमि ।
तालकळ मोवत्तम्मिल मुद्रि तळ्ळि बड्बामुन ।”

—पेरिय तिरुमोळी १११ वे ४

कि भगवान् के चरण कमल तुम्हें सत्कण्ट मोम-मुक्त को प्रदान करें जिससे पूर्णब्रह्म संभव न हो ।”^१

तोंडरडिपोडी आठवार के दो पदों का भाव इस प्रकार है — ‘हे कल्याणमूर्ति ! मेरा अपना नाब नहीं अपना घर नहीं और पूछने वाला कोई बन्धु नहीं । इस पार्श्व ब्रीहम में मैंने आपके चरणों की भुट्ट धरण तक नहीं ग्रहण की । अब तो घायी सन्तन करता हूँ । मुझे ब्रह्मन्म जीविए । मेरे मन में बोझी भी धुंधला नहीं । मुँह से एक भी हित वचन नहीं निकलता । क्रोध से डोप-बुद्धि का ब्रमन नहीं कर पाता । हे कृपासिन्धु ! अब मैं आपकी चरण में आया हूँ । मेरा उधार लीजिए ।”^२

मुरदास जी की निम्नलिखित पंक्तियों में छाया रस की व्यंजना हुई है —

छोरे जीबन भयी तन भारी ।

झियो न संत-समागम कबहुँ जियो न नाम तुम्हारी ।

यति जनमत मोह-माया-बल नहि कबु बल बिचारी ॥

करत उपास न पूछत काहु धनत न जाटी-भारी ।

इंडी स्वाद-बिबस निस्ति-बासर आप भुनयो हारी ।

बल मोहे में बहूँ बिसि वैरयो पाठ कुम्हारी भारी ।

बाँबी मोह पसारि बिबिध पुन नहि कहुँ बीच छतारी ।

बक्यी सूर बिचारि सीस परी अब तुम सरन पुकारौ ।^३

× × × ×

हे मन गोबिन्द के हूँ रहिए ।

इहि संसार अपार बिरत हूँ अब की आस न सहिये ।

- १ बाळ बळाची नाळ कळ वेस्त मोडमं बुद्धि मूप्येइरी ।
 बाळ नाळाबलास बर्गकी बाळ तु एन नेचमे ।
 बाळताकुन नमं पैम्बु मन्कुर्मस्तन्दिमुम ।
 भीळ मिलाव भोग्यु मस्क वेम्बुम मात पावमे ।’

—शिष्यव्यस्तबिबलम, ११२

- २ ऊरित्तेन काचियिस्से एलु मटोरिचरित्तन ।
 पारित निम्पाव मूलम वट्टितेन परममूर्ति ।
 कारोळि वम्पुमे । कम्पुले कवरकिम्बु न ।
 ‘यनतिल धीर तुइनी इस्से वायितोव इन्तोस्मि ।
 बिबतिनाल वेदुम मोरकी तीबिनिबित्तिल बाळा ।
 एनवडु इनिवकवि एन्तोस्साय ? एर्न पाळ रे कोवे ।

—तिरुमाले २६ और ३०

- ३ मुरतापर (उमा) वर मं० १५२ पृ० ५०

बुल, बुल कीरति, भान अपने भाई परं सो कहिये ।
सुरदास भगवत-मनन करि अत बार कहु लखिये ।^१

वर्णन-चित्रण

प्रकृति-वर्णन

प्रकृति आधिपत्य से ही मानव की लड़खरी रही है। जन्म से मरण तक उसे हुए जीवन के विस्तृत क्षेत्र में प्रकृति उसके साथ रहकर भाव विकास और आनन्द प्रसार में योग देती रही है। प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में विचरण करने वाले कवि ही जल-काव्य की रचना कर सके हैं। काव्य का मूल उद्देश्य तो क्षेत्र सृष्टि के साथ मानव हृदय का सामात्मक सम्बन्ध स्थापित करना है। अतः काव्य में प्रकृति चित्रण की अनिवार्यता अवश्य है। आलोक्यकारी और आलोच्यकारी हिन्दी कृष्ण भक्त कवि भी उपर्युक्त निबन्ध के अनुसार नहीं थे। इनके काव्य में अन्तर्गत प्रकृति चित्रण व्यापक और विविध रूप में हुआ है। आलोक्यकारी के विषय में यह कहा जा सकता है कि वे यह-अपह्नकार भक्ति-प्रचार करने के हेतु उन्होंने प्रकृति के सम्पुष्ट वातावरण में विचरण किया था। स्वयं प्रकृति प्रेमी होने के कारण इनके भक्ति-काव्य में भी प्रकृति चित्रण का समावेश स्वतः हो गया है। आलोच्यकारी हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों में भी जब के समुदाय प्राकृतिक वातावरण में रहने के कारण उसके प्रत्येक संघ का सुख निरीक्षण किया है। अतः प्रकृति के विविध रूपों का मध्य चित्रण इनके काव्य में उपलब्ध है।

प्रकृति चित्रण के विविध रूप

जिस प्रकार जीवन के प्रति प्रत्येक मनुष्य का दृष्टिकोण अपने मरिच्छक के विकास बुद्धि की प्रकृति अनुभव, ज्ञान और संस्कारों के प्रभाव के अनुसार भिन्न होता है, उसी प्रकार प्रत्येक कवि की प्रकृति विषयक चेतना भी उसकी अपनी ही होती है। वह प्रकृति का विभिन्न-विभिन्न रूपों में अवलोकन करता है और स्वतन्त्र रूप से उसका चित्रण करता है। कभी आसम्भन के रूप में कभी उद्दीपन के रूप में वह प्रकृति का चित्रण करता है। उद्दीपन के अन्तर्गत प्रकृति के मानव-मानवीय भावनाओं के सम्बन्ध की इतनी अनेक रूपता प्राप्त होती है कि उसका संकुचित आलोच्य परिभाषा में बर्णन कठिन है। कभी कविता में भाव को आधार मानकर प्रकृति का उसी के अनुरूप चित्रित किया है और कभी प्रकृति का आधार मानकर भाव-अवस्था में उसको प्रतिबिम्बित या गतिशीलता के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। कभी मानवीयता अथवा मानव-सम्बन्ध का आरोप उस पर किया गया है, और कभी उपमानों के रूप में प्राकृतिक सीमा के अन्तर्गत उपादानों को ग्रहण किया गया है। वस्तुता का प्रयोग तो सर्वत्र देखने को मिलता ही है।

सामान्यतः काव्य-ग्रन्थों में प्रकृति के १ भिन्न रूपों के वर्णन मिलते हैं। वे इस प्रकार हैं:—

- १—आसम्बन्धन
- २—उद्दीपन
- ३—मर्मकार
- ४—मानवीकरण
- ५—नीति और उपदेश का माध्यम
- ६—परम तत्त्व के वर्णन।

आठवार मर्त्यों के तथा आलोच्य हिन्दी कृष्ण मर्त्यों के काव्य में प्रकृति के इन विविध रूपों का पर्याप्त चित्रण हुआ है। इनके काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप ही बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है।

१ आसम्बन्धन-रूप

आसम्बन्धन-रूप में प्रकृति कवि के लिए साधन न होकर साध्य बन जाती है। कवि प्रकृति का निरीक्षण करता है और उसके मूलम तत्वों के प्रति आकर्षित होता है। उसका मन प्रकृति-वर्णन में रम जाता है वह आत्म विचर हो उठता है और अपनी तन्मयता में हृदय की मुद्रावस्था को प्राप्त होता है।^१

प्रकृति का आसम्बन्धन-रूप में वर्णन आठवार-काव्य में तथा हिन्दी कृष्ण अष्टि-काव्य में पर्याप्त मात्रा में हुआ। प्रातःकाल का स्वाभाविक वर्णन लौंडरहिपोली आठवार के काव्य में देखिए —

‘सूर्य पर्वत छिन्न पर पहुँचा है। नीर आँकड़ों पर हुआ। मधुर प्रातःकाल में मधु-मुरित पुष्प-तमूह पर भ्रमर मँडराने लगे हैं। हाथी भुज्ज में अपने विद्याल कानों का हिलाते-हिलाते जा रहे हैं, मागो समुद्र में उठने वाली जैभी-जैभी महरें हों। बुसुमित मठा-बुज्जों से हाकर मन्त्र माँकड़ बह रहा है। मुरज की सुन्दर किरणें सर्वत्र फैल रही हैं, जिससे नद्यों का बिम-बिम प्रकाश पूर्णतः बिलीन हो गया। गुफारी के पेड़ की कलियाँ का मुण्डा फूटकर लुल रहा है। उनक सौरभ से माँकड़ मुगन्धित हो रहा है। पक्षी-समूह का कलरव सुनाई दे रहा है। सुन्दर कमल खिल उठे हैं। वन की नीर पायों की चरणों में जान बाल प्यास-बालकों का मुरली-गाँव भी सुनाई दे रहा है। मधुर गीत-वर्णन आकाश में गूँघ उठती है। अब सबैरा हो रहा है। जानिए, हे भी रंतपति।’^२

१ हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डा. किरण गुमारी गुप्ता पृ० ३२

२ “निरवन्तं पुत्रं विरिचिन्मन्त्रं भवत्येवम् ।

कर्म विरिचिन्मन्त्रं कालीयप्योद्धृताप ।

अपु विरिचिन्मन्त्रं मायसरेस्मात् ।

कविहर सूर के निम्नलिखित पद में प्राच-काल का स्वाभाविक वर्णन देखिए —

बोले तनपुर, बारपी काम की पजर मारपी
 पीन मयी सीतल तमि में तमता पई ।
 प्राची प्रसनागी मानु किरनि उज्ज्वारी नम काई
 उज्जुलन बनरबा मलीनता लई ।
 मुकुने कमल बज्ज बज्ज विछोही म्याल,
 बरे बली गाइ, छिज बेठी कर की बई ।
 सूरदास राबिका सरस बानी बोले कहै,
 कामी प्राज प्यारे बू सबारे की समै भई ।^१
 बिरई बुहबुहानी, बंर की ज्योति परानी
 रजनी बिहानी प्राची पियरी प्रबान की ।
 तारिका मुरानी, तन मरपी, तनपुर बोले ।
 बजन बनक परी ललिता के लाल की ।
 मृग मिले मारबा, सिपुरी बीरी कोक मिले
 उतरी पलक प्रब काम के कमान की ।
 प्रबलत घाए मुह बहुरि उबल मानु,
 उठे प्रालनाय नहा बान यनि जावकी ।^२

विदग्धों ने बाढबार के पदों में कामम्बन-रूप में प्रकृति का सुन्दर और व्यापक चित्रण हुआ है। पर्वत-निर्धारण की केन राधि कवि की दृष्टि में हवा में उड़ती बलत

बानबबरतर कळ बस्तु बलीछी
 इच कळिटीबुदुमुम पिदिपोडु मुरमुम ।
 प्रविसेसिम घले कडल पोमुस्त्रुमु यंमुम
 कळ कोडी मुर्मपिम मोतु नलरबकी ।
 कुस्तु गुग विम मास्तम इतुमी—
 बुडरोळि परस्तन कुळ विरदेस्ताम ।
 मुसिम तारकी मिछोळी बुडकी
 पामिरळकपुतु र्म्यौळिर्बमुकिम ।
 मडलिईनकोरि बज्जर्न कळ बार

प्रापकळ वैईकुम्भोर्गपुन विईमपि ।

करमुम ईद्विप इसी विरी परस्तन ।

धरंगलम्मा । पळि एखुत्ताये ।" —विदपस्त्रिण्ण १ से ४ तक

१ सूरदासर (धमा) पद मं० २६४६ पृ० ६४०

२ बही (") पद सं० २६२७ पृ० ६४६

ध्वजा के रूप में हीन पड़ती है ।^१ कवि ने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है और उसका मन प्राकृतिक सौन्दर्य में पूर्णतः रम गया है । बावन के खेत में भरे पानी में जब हंस तैरते हैं, तब बावन के पीछे पवन के हस्के झोंकों से हिलते हैं, मानों वे हंसों के लिए तैयार हों ।^२

प्रकृति के उग्र रूप का भी चित्रण कहीं-कहीं मिल जाता है । बावानन का चित्रण शूरदास ने इस प्रकार किया —

महरात महरात बबा (नन) घायी ।

धेरि जहुं ओर, करि सोर ओर बन बरनि प्राकास जहुं पास छायो ।

बरत बन-बाँस बरहरत कुस काँस जरि, उड़त है नाँस घति प्रसत घायी ।

अपटि अफटत लपट कुस-फल बट बरकि, फटत लटलटकि डुम डुमनबायी ।

अति अगिनि-साध संभार पुबार करि, उबटि संभार संभार छायी ।

बरत बन पत महरात धररात तब महा धरनी विरायी ॥^३

बोबुसि की सुरम्भ बसा में बाब बग्न मम-पथ पर जाकड़ हो गया है । बालक कृष्ण बाग्न की सैन के लिए इठ करता है । प्रिय पुत्र को सम्बुद्ध करने के लिए माता ममता भरे शब्दों में बाग्न से कहती है— 'हे नीलाम्बर स्थित तेजोमय बाग्न । मेरा यह साध मेरी कमर पर बैठकर अपने बड़े-बड़े श्योतिर्मय लावनों से तुम्हें देखकर बुना रहा है । यदि तुम इस छोटे स्वाम क साथ खेलना चाहते हो तो मेको न पीछे मत धियो । धेर मत करो । तुम्हारी ओर सन्निध करने वाले नन्हें के बाब कर सक नहीं जायें । अल्पी जा बाबो ।'^४

१ विलंक लिसुरिणि मेत निगु विबुम्पित ।

वेम्पुक्कोडि धेन विरिप्पु ।

वसन्तव ननि नोर कर्कषिन करै मेत ।" —देरिय तिमोळी १ ४ १

पारबाय कवि टेम्पिसन ने भी इसी प्रकार की कल्पना की है—

"A land of streamers, some like a downward smoke
slow dropping veils of thinnest lawn did go"

A. L. Tennyson *Poems and Plays* p 101

२ धप्रमामलररविन्दतनजियल देईयोडुम इनि बसर ।

वेमेत्तार कवरिकुमे मोतु तप तिरुपिन्नी पुरमे ।"

—देरिय तिमोळी १ १-७

३ शूरतापर (सभा) पद सं १०१६ पृ ४७०

४ धवन बाग्नमोडु प्राडताड उवदिमेत ।

नपिन मरंभाई मामली । मडिळ स्तोरी बा

बस्तरकर्कषन तटर्कन्नाल मलर बिडित

ओलकने वेनिक्कु उरं ये कुट्टि बारहुम काण'

—देरियाळवार तिमोळी १ २ ब ६

सूर के हठी कृष्ण भी कहते हैं—

सैया रो में बन्द लहौंगी ।

कहा करौ जल पूर नीतर कौ, बाहर ध्यौकि गहौंगी ।

यह तो झलझलात झकझोरत कैसे के बू लहौंगी ।

बह तो गिपट निकट हौं देखत, बर धौं ही न लहौंगी ।^१

२ उद्दीपन-रूप

वस्तुतः आलोच्य कवियों के प्रकृति-वर्णन का महत्व उद्दीपन-रूप में ही सर्वाधिक है। इन कवियों ने उद्दीपन-रूप में प्रकृति में अद्भुत प्राण-प्रतिष्ठा की है। चतुर सजी की भाँति प्रकृति राधा और कृष्ण के मिलन के लिए उनके प्रेम-भाव का उद्दीपित करने के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित करती है। सरस जल को चाँदनी वृन्दावन के भी कुञ्ज में छिड़क राख वा निम्नगण देती है। सूर का निम्नलिखित पद देखिए—

सरस चाँदनी रजनी लोहूँ, वृन्दावन की कुँज ।

प्रफुलित सुमन बिबिध रंग लहै-तहँ कृष्णत कोनित-पुँज ॥

जमुना पुलिन स्थाम धन सुन्दर, अद्भुत रस उपायो ।^२

×

×

×

प्राणु निति लोभित सरस सुहाई ।

धीतल मंद सुमंथ पवन बहै, रोम-रोम सुकसाई ।

जमुना पुलिन पुलित वरम बलि बलि मोहनी बनाई ॥^३

विष्णुमय आळवार की नायिका को भी प्रकृति प्रिय-मिलन के लिए प्रेरित करती है। वे लिखते हैं— धाम आदी । इस मनोहर देसा में सुषचित सुमनों के परिमल को घुटाकर माने बासा धीतल पवन जब नायिका के स्तनों का स्पृश करता है तब नायिका के मन में प्रिय मिलन के लिए गुदगुदी पैदा होती है ।^४

राधा और कृष्ण के प्रथम मिलन के समय प्रकृति अपने कामोद्दीपन कर्तव्य को उचित रूप में पूरा करती है और देखते ही देखते गगन महरा उठता है काली घटाएँ छा गई पवन झकोरे सेने लया जयसा जमने लगी आकाश व्याम बरुँ हो मया, दोनों रोमांचित हो पये ।^५ उनके साथ प्रकृति भी रस विज्ञास कर रही है—

१ सूरसागर (अभा) पद सं० ८१२ प० ३९७

२ बहो () पद सं० १७८८, प० १७१

३ बहो (), पद १७४६ प० १३२

४ “प्रतिष्ठावसान समुद्रक पनु कविर्यं बुध धतनोत्तम ।
जग मादतम जम मुसं छटवन्तु बलि जेहवनोच्छ्रिताते ॥”

—नेरिय तिरुमोळी ८३१

५ सूरसागर (अभा) पद सं० १३०२, प० ५००

नयी मेहु, नयी घेह, नयी रस नवल कुबेरि नुपमानु-किमोरी ।
 नयी पिताम्बर, नई कुनरी नई-नई बुबनि भीजति गोरी ॥
 नये कुँब घति पुँब नये हुम नुमय अमुन-बल पवन हिलोरी ।
 सूरदास प्रभु नव रस बिस्त नवल राबिका ओवन-ओरी ॥^१

श्री हित हरिबंस ने भी परंपराानुसार यमुना-तट और करीब कुम्बों का (उद्दीपन रूप में) वर्णन किया है —

घाब बन नीके रात बनायी ।
 पुनिन पबिब नुमय यमुनातट भौलत केनु बचायी ।
 कल-कंकन किंकन नूपुर बुनि सुनि जय भूय सजु पायी ।
 बुबतिन मंडल मध्य ध्यामयल सारंग-रस जमायी ॥^२

विप्लवम्भ शृङ्गार में तो हमारे कवियों के उद्दीपन रूप में किये गये प्रकृति वर्णन बहुत सूक्ष्म और सरस हैं। वियोग की १० काम बधाओं के अतिरिक्त उन्होंने कितनी बधाओं का वर्णन किया है, जो साहित्य में अमूल्य हैं।

बिबोम में मनुष्य को जब अतीत के सुखद दिनों की स्मृति सताती है तो पुराने छाया-भिन्न उनके नेत्रों के सम्मुख प्रकट होने लगते हैं। विध्वंस्य आठवार की नायिका के लिए सुन्दर विरसित कुम्भ (पुष्प विशेष) प्रियतम का अनामक स्मरण करा देते हैं।^३ सुरम्य पुनिन छिटवती चांदनी विकसित अरविन्द तथा सारा बाताबरण नायिका के सम्मुख छाया-भिन्न उपस्थित करते हैं।^४

स्मृति पूर्वानुभूत सुखा की कल्पना के बिजयट पर सागर उनकी गुसना में वर्तमान की दीनाबस्ता को और भी गहरे रंग में रंग देती है और विरहाधिक्य में तो व सब प्राकृतिक वस्तुएँ विपरीत प्रभाव प्रकट करने वाली प्रतीत होती हैं। राधा कहती है—

कूल बिनन नहि जाऊँ सती री हरि बिन कैसे बीनों कुन ।
 सुन रो सखी मोहि राम बुहाई कूल लपट तिरपुन ।
 व जो देखियत रते रते—कूलन कूनी डार ।
 हरि बिनु कूल झार से लपट झरि झरि परत घंघार ।
 कते क पलपट जाऊँ लकी री । कोली सरिता तीर ।
 मरि मरि अमुना उमड़ि जली है, इन मैमन के तीर ॥^५

१ सूरदासर (समा) बब म १२०३ पृ० २०३

२ कविता कोमुदी

३ पेरिय तिरमोळी ३४३

४ वही ३४२ व ७

५ अमर-गीत १६३

उपवन पनवट और पमुना-रुठ की कभी उनके आमोह-प्रमोह के स्थल से वे सब उनको जब विमोहावस्था में दीक्षित करते हैं ।

तिसमंयै आठवार की नायिका को वियोग में "धीरत नम्रान श्री अग्नि क समान समता है । नाईमी भी नायिका को बसाती है । सुन्दर नहने भी शरीर को आभात कर बैठे है । धीरत समीरण भी अग्नि से भी मयंकर मामूम होता है ।"^१ कविबर मन्दरास की योयियों को भी कृष्ण-वियोग में अम्रान अम्र आवि अग्नि-नपरा करने वाले प्रतीत होते हैं—

कयी अम्रान, अम्रमर तपन तें सीतल करहीं ।

निय बिरही को लीय, मिलहि लगि आग बिलरहीं ॥^२

वियोग में नायिका की इच्छा होती है कि उसकी बैरना का अनुभव समस्त सु मध्यम को हो उपवन सुख जायें संसार सबड़ जाये और जड़ एव चेतन—सब परार्थ उसकी भाँति बैरना से पुरखें हो जायें । मधुवन को हरा-भरा देखकर मुर की गापी ईप्सा से मुग्धमा उठती है—

मधुवन तुम क्यों रहत हरे ।

बिरह बियोग त्याग सुन्दर के ठाढ़े क्यों न करे ॥^३

इसी प्रकार पावस में मोर ससे धनु के समान प्रतीत होते हैं—

हमारे माई औरबा बैर परे ।

बन गरजें बरजें नहि मानत त्यों त्यों रहत करे ॥^४

आम्नाठ कहती हैं—“हे काकोठल पुष्प (पुष्प विधेय) ! तुम जिस जिस कर मुझे क्यों छटाते हो ? हे मुस्नी सखी (पुष्प विधेय) ! तुम क्यों मुझे देखकर परिहास कर रही हो ? यायन में रत कोकिल ! तुम गा गाकर मुझे बैरना क्यों बैती हो ? हे मोर ! तुम नाचकर मेरा अपमान क्यों करते हो ?”^५ अम्माठवार की बिरहिणी

- १ “आमपुम पुष्पुम अम्रनकृष्णम्पुम
तटपुर्लक्षु अविधितुम तटलाप
पोन्त बैरतिक्कळ कविर बुडमेलियम
तेन्दुसुन सीपिकोडिताम ।”

—पेरिय तिस्रोळी २-७-३ व ४

- २ रास पंचाध्यायी, तृतीय अध्याय ९१
- ३ मुरतागर (समा), पर सं० १२२८
- ४ बही (५) पर सं० ११४७
- ५ “काकोठल बुक्कळ । काकळडन वरनव एन मैल उम्मे
वाक्कोलन बैरु पोरबिडुतवन ए कुडुल ।”
“मुस्नी बिराही । नी उन मुक्कल कोण्डु एम्मे
अस्तल बिड्विधेय अडिर्नकाय ।
पाडुन कुमिल कळ । ईनु एम नाडल ?

नायिका को हंसों की ओड़ों में देखकर ईर्ष्या होती है और वह उन्हें कोसती है। किन्तु प्रकृति को समझ-बी देखकर बिरहिणी का हृदय सहानुभूति से भर उठता है। कोकिल को सर्वथा कुछ-कुछ' करते हुए देखकर बाळ्याल समझती है कि वह भी किसी के वियोग में है।^१ मन्माळ्यार की बिरहिणी अद्यान्त सागर-तरंगों को देखकर समझती है कि वे भी किसी के वियोग में तड़प रही हैं।^२ सूर की गोपी कहती है—

बहुत दिन जियो पपीहा प्यारे ।

बासर रेनि नाँव ते बोलत भयो बिरह बुर कारो ।^३

कृष्ण के वियोग में बिरहिणी गोपियों की दृष्टि में कालिन्धी की भी क्या क्या हो जाती है देखिए—

बेसियति कामिनी प्रति कारी ।

घहो पबिक कहियो उन हरि सों भई बिरह बुर कारी ।

गिरि-प्रबक त गिरति बरनि मंति तरंग तरफ तन मारी ॥^४

बिरह के अनवरत दुःख से दुःखी होकर बिरहिणी प्रकृति से अपना एकारम्भ स्थापित करती है। चेतन-अचेतन का भेद भूलकर प्रकृति को अपनी सखी समझ बैठती है और अपना दुःख निवेदन करती है। प्रकृति बिरहिणी की अन्तरंगिनी बन जाती है, वह कभी कोयल से कभी भ्रमर से अपना सम्बोध कहती है। बाळ्याल कोयल से प्रार्थना करती है कि वह प्रियतम के आमन की सूचना दे।^५ वह मैनों से प्रियतम के पास जाकर यह पुछने को कहती है कि एक बिरहिणी अबसा को इस प्रकार सताता कहाँ का ग्याय है।^६

कच मामयिष काळ । कच पिरान तिदरकोत्तम पोम्बु

धनि माडम पयिगुडु किट्टीकु धडिबीळ किट्टेन'

— नाञ्चियार तिरमोळी १ १ ४ १ ९

१ नाञ्चियार तिरमोळी १ ४

२ तिरुविदलम

३ सूरसागर (समा) पृष्ठ सं० ३६५३

४ वही (") पृष्ठ सं० ३८०६

५ 'उम्रोडु तोळमै कोळ बन कुयिले

उलवळम्मान बरक्कुवाय'

— नाञ्चियार तिरमोळी ३ ५

६ विन्निन मेलाप्पु बिदत्तीपौल मेयंकाळ ।

तैम्पौरपाय बकटलु एन तिरमामुम् पोम्माने ?

बन्नीर बळ मुनेवुपट्टिन तुळि चोरबोबेने

देन्नीरमैपीडळिन्नुम इन्नु तमवु चोर वेरुमैये'

वही ५ ५

गम्माछवार की बिचहुरी मायिका हँसों से प्रार्थना करती है कि वे त्रिवल्लभ के पास जाकर उसकी श्वनीय बधा का वर्णन करें।^१

सूर की गोदी भी कोकिल से प्रार्थना करती है कि वह किसी प्रकार उसके त्रिवल्लभ को बच में ले आवे —

कोकिल हुरि कौ बोल सुनाउ ।

मधुबन तैं जपहारि स्याम कौ, इहि बच कौ ले प्राउ ।^२

३. अलंकार-रस्य

अलंकार-रस्य में प्रकृति का वर्णन हमारे कवियों ने विस्तार से किया है। उन्होंने अपने आराध्य के शीतल्य के वर्णन के लिए प्रायः सभी परम्परागत उपमानों को अपनाया है। उपमा और उल्लेख की इनके काव्य में भरमार है।

हृष्य के शीतल्य-वर्णन में धर्मों के उपमान बहुत कुछ परम्परा युक्त हैं। तिरुमोयै आळ्वार अपने इष्टदेव का वर्णन इस प्रकार करते हैं—“कचन सम देह की कांति भरक्य मणि की कांति है। सुन्दर तुलसी की भाँसा कने की गोमा बड़ा रही है। उत्तम पक्क इनके मुँह का रंग है। मयल विकसित कमल जैसे है। बदन का रस भीलाम्बर में मंडराने नामे काले मेघों का है।^३ तिरुमोयै आळ्वार ने अन्यत्र शीतल्य-वर्णन में एक ही उपमान से काम लिया है। वे लिखते हैं—“कृष्ण के कर कमल जैसे हैं—मुख भी कमल नेत्र भी कमल और चरण भी कमल जैसे हैं।”^४

कविवर सूर ने भी कवि-समब-सिद्ध उपमानों द्वारा रस्य-साहस्य दिखाते हुए समान पुष्पों का आरोप किया है और अपने वाग्यबग्ग्य द्वारा उपमानों को उचित सिद्ध कर दिया है —

ऊँची ब्रह्म हम समुक्ति भई ।

नैर्नर्नदन के अक्ष-अक्ष-प्रति, उपमा ग्याव गई ॥

१. प्रथम चेत्योक्कम बन्धनम चेत्योक्कम तोळुतिरन्नेन
एनेतिनारै कण्ठस्त एनै चोत्सी अवरिई नीर
इयम चेत्यारो ? इतुकोतकवेन्नु इनेनिकळो ।” —तिरुविक्कतम, १०

२. सूरसागर (धमा) पर सं० १२३८ पृ० ११२२

३. श्रीमिन्न केरि मरकतति श्रीमिन्न कोरि अकलान्नु
तामरैककळ इयन्नावार जेयवळन इयर नायिन बन्धम
अकिनेनु तामरैयम कन्नुम अँकीपुन रँकमम मेनि बानन्नु
अणि केळ मामुकिनेपुम ओप्पर अक्को ओक्काल्लकियवा’

—पेरिय तिरमोळी २ : २ १ ४ ब ७

४. “कै बन्धम तामरै नाय कमतम पोनुम
कन्निनैपुम अरविन्धम अडिपुम अल्ले”
—तिरुनेल्लुताय्कम, २१

कुन्तल कुटिल भवर नामिनि वर, मातति मुरै नई ।
 तजत न यहूदियो तन कपटी, जाल, निरत भई ॥
 भानन इहु विमुक्त संपुट लजि, करये ते न नई ।
 निर्मोही नव नेहु कुमुदिनी पंतहु हेम हुई ॥^१

हृत्सु के मनोहर रूप का कहीं-कहीं मूर ने ऐसा रूपक बोधा है कि पूरा हृत्सु ही सम्मुख आ जाता है—

देखी माई सुन्दरता की सागर ।
 तनु अति स्वाम अयाव अंबु निधि कटि पट पीत तरंग ।
 चितवत जसत अचिंत अपजति संवर वरति सब अय ॥
 मैम-मीन मकराकृत कुडल, भुज सरि तुमग मुर्जग ।
 मुक्क-भास मिलीं मानो इ सुरसरि एकै तंय ॥^२

श्री हित हरिवंश ने अपने उपास्य की प्रेमिका राधा के अनुपम सौन्दर्य को चित्रित करने के लिए उपमा और उत्प्रेक्षा का जो प्रयोग किया है, उसकी छटा देखिए—

जब नव लक्ष्मि कदम्ब मुकुट-भनि स्वामा आशु बनी ।
 नव सिख लीं अंय-अंय माधुरी मोहै स्वाम धनी ॥
 यौ राजत कबरी मुंचित कच कनकच बदनी ॥
 बिहुर चोदकनि बीच अरम बिनु मानों प्रसत फनी ।
 सोमग रस सिर अरत पनारी पिय सौमंत छनी ॥
 भकुदि काम कोदण्ड नैन सर, कज्जल रैज धनी ।
 भास तिलक लार्तक पड पर नासा जलज मनी ॥
 बसन कुन्ड सर सागर-पल्लव पीतम-मन-समनी ॥^३

विदर्भ आळवार नामिका के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं—“बिजली जैसी पतली कमर वाली नामिका के सामने स्वयं अग्नि को सज्जित होना पड़ा ।”^४ प्रतीपासंकार द्वारा जबि ने नामिका के मुख की प्रसून्यता और शीति को अग्नि से भी बेहतर बताया है । जबि नन्ददास ने भी लिखा है—

मुख अरविदग आगे जल अरविदग लवै जल ।
 मोर भये जवनन के शीपक, मर परत जल ॥^५

१ मुरतामर (गमा) क मं० ८१३६ पृ० ११६७

२ बहो () पर सं० १२४६ पृ० ४८३

३ अजमाधुरी तार (सं० विमोयी हरि) पृ० ७० एकादश संस्करण

४ “कुटिहरेपार मुखकमल जोति लगान ।

तिरुळ मुलम् पनि पंडेरुन चट्टार ।”

—पेरिय तिरुमोळी ३ ४६

५ राम पंचाव्यायी—पंचम अध्याय २१

(व्यतिरेक के प्रयोग द्वारा उदाहरण देकर कवि ने उपमेय की उल्लेखिता व्यक्त की है।)

विस्मयं आलम्ब्य ने कल्प के सौन्दर्य की तुलना बिज में लिखित विकसित कमल से की है।^१ साधारण कमल तो मुरझा जाता है। बिज में अंकित कमल का सौन्दर्य बँधा ही बना रहता। इस प्रकार कल्प के सौन्दर्य में उत्कर्ष प्रकट किया है।

दक्षिण की हुरि के बँधन मैं ।

बँधन-बीन-मुपम-अपमार्थ, नहीं पड़ता इन सँग ॥
राजि-बल ईश्वर सतबल कण्ठ कुतुहल आसि ।
सिद्धि मुक्ति प्राप्तहि न विकसित ये विकसित बि रासि ।^२

(व्यतिरेक द्वारा अपस्तुत कमल में राजि में संकुचित हो जाने का अनुपम विद्याकर प्रस्तुत नेत्रों में उत्कर्ष प्रकट किया है।)

बिरह की बधा में नायिका की अप्रत्या बहू बढ़ जाती है। वह प्रियतम के निशान के लिए व्याकुल होती है। उसके नेत्रों में आँसू मरे हैं। वे डबडबाते हैं। इस दृश्य का वर्णन अम्पाम्बुधर इस प्रकार करते हैं— 'आँसू से मरे नेत्र मानों सपेयर के कम पानी में उड़पने वाले कपल (मीन विशेष) मीन हों।' ^३ घूर की गोपियाँ बिरह की बधा में अपनी विचलता से लुब्ध होकर उपमानों को अनुपमुक्त ठहरा देती हैं —

उपमा नैननि एक रही ।

कबिलन कल-कलत सब धाए, गुमि करि नाहि कही ।
कहे बकोर बिनु-मुक्त बिनु जीवत, अमर नहीं उड़ि जात ॥

×

×

×

×

कभी बसिक व्याप तैं धाए, मृग सम क्यों न पतात ॥
कजन मन-रजन न होहि ये, कबहुँ नहीं अनुगत ॥
घूरबास मीनता कपू इक जन भरि कबहुँ न धाँवत ॥^४

ये नेत्रों के उपमान बकोर, अमर, मृग और कजन को अनुपमुक्त ठहराती हैं क्योंकि उनके नेत्र प्रस्तुत उपमानों के व्यापार में असमर्थ हैं।

१ "एकलित्य तामरयत्न कल्पुम ।
एतेक्षितकमुम खेळुम बाधुम ।"

२ घूरतागर (धमा) पद्य सं० २४११ पृ० ८८०

३ श्रेष्ठ मीन इत्युक्तपल मिथिलानाथोप विपरिकल्प ।
श्रेष्ठ नीर दुःख्य अलमरविष्कृते -

४ घूरबास (धमा), पद्य सं० ४११० पृ० १४११

—पेरिय तिरुमोळी २-८-७

—तिरुविस्तम २

४ मानवीकरण

प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप ही मानवीकरण^१ है। प्रकृति को मानव का सा बाह्य आकार और रूप देने की परम्परा तो प्राचीन काल से ही बसी आ रही है। इसके आधार पर काव्यकारों ने प्रकृति में मानव क्रिया और मानव-व्यापार का भी अनुभव किया है और उसमें सुन्दरी नायिका के से हाव-भावों का जबलोकन कर प्रकृति के प्रति अपना उत्साह प्रदर्शित किया है। कवि का प्रकृति प्रेम प्रकृति-सुन्दरी के प्रिया-कलाप तक ही सीमित नहीं रहता अपितु वह उसको अनुराग शोभ और विवाह भावि के भावों से पूर्ण देवता है।^२

बाळहार भक्तों में तन्माळहार की कुछ कविताओं में प्रकृति के मानवीकृत रूप के चित्र मिलते हैं। प्रियतम के वियोग में पड़ी नायिका के लिए धाम सुनी-सुनी मानूम पड़ती है। मूरज का बरत हो गया और चन्द्र का उदय हो रहा है। कवि की कल्पना बेलिए—परिचय दिया कपिणी बिधवा स्त्री मूरज स्त्री अपने पति को लोचन चन्द्र स्त्री अपने मन्हे पुत्र को अपनी कमर पर रखकर बिलाप कर रही है।^३ इसमें कवि ने मानवीकरण की भावना प्रदर्शित की है। एक और उदाहरण नीचिए। डूबते हुए मूरज को देखकर कवि यह उठता है—बीरवास तक बिस्तृत साभाम्य पलावर कठोर शासन करने के पश्चात् मूरज—राजा भी बिसीत हुआ।^४

कविहर मय्यदास के काव्य में प्रकृति के मानवीकृत के अन्धे चित्र मिलते हैं। गोपियों और कृष्ण के बिह्वार के आनन्दान्तरिक से प्रकृति कपिणी स्त्री का हृदय अब भी बड़बटा है—

निरञ्जि परस्पर छवि सौ विहरति प्रभ-मदन मरि ।

प्रकृति-नाम की छाती, घनहूँ परकृति बरि-परि ॥^५

इसमें कवि ने मानवीकरण की भावना प्रदर्शित की है। वियोगावस्था में तो यदि कवि ने लोचन प्राप्य सभी कवियों ने प्रकृति से साहाय्य स्थापित किया है और प्रकृति में संविदना प्राप्त की है। किन्तु मय्यदास ने प्रकृति में मानवीकरण का आरोप केवल मानव के बच्य में ही नहीं किया बल्कि मानव के आनन्द में भी पूर्ण सामंभरय रखनी हुई व्यक्त किया है। कृष्ण और गोपियों की रास-प्रीड़ा की देखकर प्रकृति को अत्यधिक हृष हुआ हर्षान्तरिक से बाण्य प्रकृति रानी का हृदय अब भी बड़बटा रहता

१ हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डा० किरण कुमारी मुप्ता, पृ १२

२ 'पान बाइरिन्तिवर्त्त ओररन् बओम्पु पकृतिछत

मेत पान बिदोपेण पुतम्पुदमार्

॥" —निरविरतम, १४

३ बीररताम्पु तन बेंदोत बिलनाल बेतिई इक्कळित्त ।

पाररबोत मरैगुनु नाविर ।

—वही १०

४ रात पचाध्यायी—पंचम अध्याय ६१

है। यह तो प्राकृतिक सत्य है कि हृदय और विषाद—दोनों की अतिशयता में हृदय की गति तीव्र हो जाती है इसका अनुभव नन्ददास ने प्रकृति में भी किया है।^१

५ और नीति उपदेश का माध्यम
मनुष्य ने प्रकृति के कार्य-कलाप को अनेक रूपों से भावार्थ मानकर बल मान और छावना प्राप्त की है। वह प्रकृति में उपदेश और नीति का बलवत्तम कला है। प्रकृति का प्रत्येक तत्व उपदेश देता हुआ सा प्रतीत होता है। प्रकृति उसके लिए एक संजीर पुत्र की भाँति आदर्श बन जाती है। हमारे कुछ कवियों ने भी प्रकृति का नीति और उपदेश का माध्यम बनाया है। सुमधोखराज्यार का कहना है—
कमल के पास बहुत बड़े बीपक को जमाने पर भी वह खिल नहीं सकता। केवल बम्बर स्थित बंधुमासो की किरणों से ही जित सकता है। उसी प्रकार भक्त को भी केवल भगवान् के अनुग्रह पर निर्भर रहना चाहिए, किसी दूसरे के नहीं।^२ अन्त्य ने उपदेश देते हैं कि— जिस तरह जहाज का पानी फिर-फिर जहाज पर ही आता है, उसी तरह भक्त को भी भगवान् का ही सरोवर रखना चाहिए। जिस तरह जहाज का पानी ही पानी का एक भाग सहाय है, उसी तरह भगवान् ही निस्सहाय भक्त का एक भाग आश्रय है।^३ चौदण्डीचोडियाज्यार कहते हैं— जब छोटे-छोटे बम्बर क्यों न हो ?
कबिबर मुरदास भी ने कहीं-कहीं प्रकृति के व्यापार में उपदेश का भी आमास दिया है। उसार के मनुष्यों के मोह-वास का प्रमात्मक बताव हुए कहते हैं कि संसार की प्रीति इस प्रकार भ्रम-पूर्ण है जिस प्रकार सेंसर का फूल। तोते को सेंसर के पुष्प में फल का भ्रम होता है। लेकिन बचने पर कबल बर् ही प्राप्त होती है—
यह भय प्रीति सुधा सेंसर क्यों बाजत ही उड़ि जाव।^४

भयन शत्रु के प्रति भी दया-भाव दिखाना चाहिए। इसके लिए मुर मलय-वृक्ष का उदाहरण देते हैं। जिस तरह भयम-वृक्ष भयन काटने वाले को भी खीरम प्रदान

- १ हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डा. किरण कुमारी गुप्ता पृ० १८०
- २ "वेस्तल्ल बन्धु पल्लवैर्बद्धैरिति विनुम चैकमतम ।
पल्लवरम केर बेंदिरिर्कस्मात् पल्लवरावात् ।
बैभुयर बीड्वाविनुम विट्, बवकोट्टम्मा । जम
प्रतमित कोरुत्तास घरम कुळयमाट्टे ।"
—पस्माळ विरयोळी १ ६
- ३ 'एकुं पोय उइकेन ? उमिर्चैयडिये पडैयत्तात् ।
एकुंम पोय करुकापाटु एरिक्कुल बाय मीपडैयुम ।
बकृतिन कुम्मेडम मापररै पोडुने ।'
मुर पञ्चरत्न—विनय, २१

करता है, उसी तरह मनुष्य को भी अपनी स्वामयिक छद्मानुभूति का त्याग नहीं करना चाहिए —

अबपि भक्त्य-बुझ अङ्ग कायत कर कुठार पकरे ।

तऊ सुमाय सुगन्ध सुसीतम रिपु तन ताप हरे ॥^१

कवि रहीम प्रकृति के उदाहरण द्वारा यह उपदेश देते हैं कि मनुष्य को मर्यादा का पालन करना चाहिए, अपनी संपत्ति का शान सेना चाहिए । यही भाव रहीम के निम्नलिखित दोहों में व्यक्त हुआ है—

तैहि प्रमाण अतिबो भलो, जो सब दिन ठहराइ ।

उमड़ि बनें अल पार ते जो रहीम अङ्ग जाइ ॥

रहिमन अति, मत कीजिए, गहि रहिये निज कानि ।

अतिसय कूनें सङ्गबनो, कारि-पात के हानि ॥

अनि रहीम अल पंक कहू, लघु बिय पियत अघाइ ।

अबपि अड़ाई कौन है, अयत पियायो जाइ ॥^२

६. प्रकृति में परम तत्त्व के बखान

जिस कवि का दृष्टिकोण रहस्यमय होता है वह प्रकृति में परम तत्त्व के दर्शन करता है । उसके लिए प्रकृति बिस्वात्मा के दर्शन का माध्यम बन जाती है । वह समस्त प्रकृति में एक ही चेतन तत्त्व को व्याप्त देखता है, उस परम तत्त्व को एक चेतन-शक्ति मानता है और प्रकृति को उसके अंग ।

मूतछाळ्यार एक स्थान पर कहते हैं—“विद्याल ब्योम भूँज उछ । बय का भयानक वर्जन हुआ । वह बा—बर्पा-काल । मैं यगन की ओर देखता रहा । उसकी अनुपम आभा की रेखाएँ हीछ पड़ीं और वह ब्योम-बीषी में वैद्यमणि-रत्न पर बढ़कर जाया ।”^३ वेयाळ्यार लिखते हैं—“सरसोग्गवता लीवामिनी कपी विजय-पठाका पहराडी हुई धोर निराश्रित बय कपी विजय-नु कुनी बजाती हुई गयन-मंडल-बीष भ्रमण करने वाली नीरव-राशि मेरे मानस पटल पर आप ही के स्मृति-विज्र अंकित करती है ।”^४ बाळ्यार कहती हैं—“सुपमा मरी उपा की नीरव-बेला में विविधों की

१ सूर पंचरत्न—विनय, ७७

२ रहिमन बिनोद—नोति मुञ्च, दोहा सं० १० ११

३ इष्टाव विद्वत्सारि ।

४ “एटिल कोष्ठु मिन कोट्टियेकुलु बेकत ।

तोळिन कोष्ठु तान मुठकी तोम्मुम कोष्ठ ।

नीर वैपमेन्न नेकुमान निरम पोत ।

काट बानम कारुण कलम्पु ।”

यशुर सुटीली तान में प्रभु के आवसन का संदेश पाती हैं। पर नहीं जानती कि शिबलम कब आवेंगे।”^१

प्रकृति में परम तत्व के दर्शन का अर्थ है—आत्मा और परमात्मा के एकात्म्य को मानना। जब और तरंग में जिस प्रकार कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में भी कोई अन्तर नहीं है।

आत्मा और परमात्मा के मिलने से उत्पन्न आत्मिक विश्वव्यापी है। समस्त सचराचर प्रकृति उस आत्मिक आत्म्य का अनुभव करती है और इस आत्म्य के अनुभव में प्रकृति से अपने नियत कामों तक में भूख हो जाती है। कविवर लम्बास का निम्नलिखित पद्य देखिए—

“अद्भुत रस रह्यो रास, नीति पुनि पुनि मोह्ये पुनि ।
सिमा सलिल हूँ घई सलिल हूँ गयो सिमा पुनि ॥
बचन बच्यो सति बच्यो बच्यो उडुमंडल लपरी ।
बाछे रवि रच बच्यो बच्यो नहि धायि बचरी ॥”^२

कुत्स और योपियों के उक्त अद्भुत आत्मिक विश्वास को देखकर पंखर भी इतित हो बने और जब आश्चर्य के कारण पत्थर हो गये। सूर्य, चन्द्र, मक्षन—सब अपनी पति भूखकर निश्चल हो गये। उस परम तत्व के मिलन के आत्म्य से समस्त प्रकृति प्रभावित होकर हतित हो उठी।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आलोच्य कवियों के बलुओं में वैशिष्ट्य और वैशिष्ट्य है।

१ “काले घैत मिहनु करिय कुचि कर्कश ।
मालिन बरु बोस्ती मरुन याकुतल मेहमै कोतो ?
बोलीमलेप्येस्मान सुबरापतिमेस्मान ।
मालिनिसंय्पेस्मान प्रमन कतमुईविकमृते ।” —नाट्यकार विक्रमोत्ती ६ ८

२ रंजर-नीत, ४४, ४२

सप्तम अध्याय
काव्य-कला

२

कला-पक्ष



काव्य-कला

कला-पक्ष

काव्य का नाव-पक्ष यदि अनुपुति-पक्ष है तो कला-पक्ष उसका अभिव्यक्ति-पक्ष । काव्य में अनुपुति की प्रधानता तो होती है, किन्तु यह अनुपुति सौन्दर्यमयी और संकल्पनात्मक होने के कारण रमणीय होती है । अभिव्यक्ति-पक्ष को कला-पक्ष कहना उसका संकीर्ण अर्थ है । अतः कुछ विद्वानों ने उसे काव्य का बाह्य-पक्ष माना है; उसे सौन्दर्य-पक्ष भी कहा गया है । काव्य में यह सौन्दर्य व्यापक अर्थ में ग्रहीत है । भाषों के उत्कर्ष के हेतु उनमें सरसता का संचार करने के लिए हमें सौन्दर्य-पक्ष या कला-पक्ष का सहारा लेना पड़ता है । इससे सिद्ध होता है कि काव्य का कला-पक्ष उसकी श्रेणीयता और प्रभावोत्पादकता है । श्रेणीयता काव्य का साधन-तत्त्व है, साध्य नहीं । कला का काम है—कवि की कृति के भाषों का उद्गीर्ण करना और उसमें सौन्दर्य सामा । कवि की सामग्री कैसी ही उत्तम क्यों न हो भाव-विचार कल्पना कैसी ही परिपक्व और बहुमुत क्यों न हो जब तक उसकी कृति में कम-सौन्दर्य नहीं आयेगा, अनुक्रम-सीपठ्य और प्रभावोत्पादकता नहीं होगी तब तक वह कृति उत्तम काव्य के अन्तर्गत समाविष्ट की नहीं जा सकती । तात्पर्य यह है कि काव्य में कला-पक्ष सबका अभिव्यक्ति-पक्ष भी अपना एक विधिष्ट महत्त्व रखता है ।

साधारणतः कृष्ण-मल्ल-कवियों के विषय में यह आरोप किया जाता है कि उनके काव्य में अभिव्यक्ति-पक्ष का स्वंतर्ग बहुत सीधा है । उनके पीछे भाषों के चरम स्तर के तालों की आवेष्टमयी अभिव्यक्ति है । किन्तु यह सब होते हुए भी उनका काव्य भावनाओं के रूप निर्माण और कलाकृत उपकरणों से भरपूर है । यह ठीक है कि इन मल्ल कवियों ने अपने काव्य में सप्रयत्न कला को घसीटने का प्रयत्न नहीं किया है, फिर भी उनके काव्य में अभिव्यक्ति-पक्ष स्वयमेव ही सुन्दर बन गया है ।

उपलब्ध तन्त्र बाळ्यार मर्छों के तथा भासोध्य हिन्दी कृष्ण मछ कवियों के काव्य पर सूक्ष्म दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है। अतिव्यंग्य-शिल्प के निम्नलिखित ठावों के बाळ्यार पर बाळ्यार मर्छों के तथा भासोध्य हिन्दी कृष्ण मछ कवियों के काव्य के जन्म-मस पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है —

- १—दीपत्व,
- २—काव्य रूप,
- ३—अन्वयोपेक्षा,
- ४—भाषा

१—बर्णकार-जीवना और उक्ति वैचित्र्य।

१—दीपत्व

काव्य तथा संघीत का परस्पर अन्वयोपेक्षित सम्बन्ध है। हृदय के कोमलतम भावों की अभिव्यञ्जना के लिए कवियों ने प्रायः दीप-सौती का ही माध्यम लिया है। हृदय की रामायिका-कृति के योग से जब सुख और दुःख की अनुभूति तीव्रतम होकर अनेक भावों की उमड़ती हुई बाप में समस्त परपता-कनुपता का प्रक्षालन करती हुई जनस्मात् कम-कम ध्वनि से कवि-कण्ठ से फूट पड़ती है तो उसे 'गीत' की उन्मा प्राप्त होती है। काव्य में आत्माभिर्व्यञ्जना के लिए दीप-सौती की आवश्यकता बढ़ाते हुए बा० हरबंस लाल शर्मा लिखते हैं— 'माध-मुमन-सौरभ के गुम्बर संचार के लिए, पवित्र प्रेम प्रवाह के प्रसार के लिए, गङ्गाकार संकु-संघटी के मधुमय विकास के लिए और कविता-कामिनी के कौतुकमय विलास के लिए दीप-सौती के सिवा और कीमती चीज़ी उपलब्ध हो सकती है ?'

संगीत का प्रभाव व्यापक और स्थायी होता है। जिस प्रकार पूर्ण विज्ञान के लिए कविता बिज-सौती की प्रकाशी का अनुसरण करती है उसी प्रकार नाद-सौत्य के लिए वह संगीत का कुछ न कुछ सहारा लेती है। नाद-सौत्य से कविता की जागृ बढ़ती है तात्-यत्र शोक-यत्र कायत्र बाह्य का भाव्य दृग् जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की बिह्वल पर नाचती रहती है। बहुत-सी उल्लिखित श्रव्य की रमणीयता श्रवण की ओर ध्यान से जाने वा कष्ट उत्पन्न बिना ही प्रसंगित रहने पर गुणगुनाया करते हैं। अतः नाद-सौत्य का योग भी कविता वा पूर्ण स्वल्प तथा करने के लिए कुछ न कुछ आवश्यक होता है।^१ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने काव्य और संगीत के अन्वयोपेक्षित सम्बन्ध का विवेचन करते हुए लिखा है— 'नाम्य शब्दों के एक विशेष आरोह-अवरोह संगीत-संक्रमण का सम्बन्ध तारक्य है। एक एक ओर वही श्रव्य की माध-मुनि बर पाठक की न जाने है, वही नाद का द्वारा मध्यमूर्त विज्ञान भी करते हैं। काव्य-जन्म का बाळ्यार 'माया' है जो नाद का ही विकसित रूप

१ सुर और उन्मा साहित्य—डा० हरबंस लाल शर्मा पृ० २५६

२ विज्ञानविधि (भाग १)—डा० रामचन्द्र गुप्त पृ० १०६

है। वास्तु, काव्य और संगीत—तीनों के आस्वादन का माध्यम एक ही है। केवल अन्तर इतना है कि एक का आहार नाद का स्वर व्यञ्जनात्मक स्वल्प है दूसरे का आहार नाद का आरोह और अवरोह है।^१

आळवार मठों के तथा आसोष्य द्वितीय कृष्ण भक्त कवियों की कविता की सबसे बड़ी विशेषता उसका वेयरव है। उनके पदों की सर्वथा विविध राग रागिनियों के अन्तर्गत हुई है और उन पदों की सङ्गीतात्मकता सर्वतोभावेन स्तुत्य है।

आळवारों के पदों में वेयरव

तमिल में पीत-काव्य की परम्परा बहुत ही प्राचीन है। सङ्कटान (ईसा की पहली-दूसरी शताब्दी) की रचनाओं में सङ्गीत सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं। पता चलता है कि उस समय एक विशिष्ट सङ्गीत-पद्धति विद्यमान थी और काव्य में सङ्गीतक का महत्त्व स्वीकृत था। 'चित्तप्पविकारम्' (दूसरी या तीसरी शताब्दी) में सङ्गीत सम्बन्धी विस्तृत सामग्री उपलब्ध है। इस काव्य ग्रन्थ में बीच-बीच में गीतों का समावेश कराया गया है जिन्हें 'इयपाट्टु' की संज्ञा दी गयी है। 'इयपाट्टु' का अर्थ है स्वर-साहित्य युक्त गीत। ये गीत आयर-जाति के लोगों द्वारा अपने भाग्य्य की स्तुति में गाये बताये गये हैं। 'चित्तप्पविकारम्' से पता चलता है कि उस समय एक सङ्गीत पारम्परिक व्यवस्था भी विद्यमान थी जिसकी व्याख्या परवर्ती सङ्गीताचार्यों ने की है। 'चित्तप्पविकारम्' में विविध वाद्य-यन्त्रों और तमिल पीत-पद्धति में म प्रयुक्त विविध राग रागिनियों का भी परिचय मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आळवार मठों के पहले भी तमिल में वेय-काव्य की परम्परा प्रचलित थी। आळवारों के समय के बीच-भक्त कवि मायनमारों की रचनाएँ भी पीत-पद्धति में ही उनके मल्लिकार्जुन पद विविध राग-रागिनियों के अन्तर्गत रचित हैं। सङ्गीतात्मकता की दृष्टि से मायनमारों के 'ठेवारम्' गीतों का बड़ा महत्त्व है। मन्दिरों में उन गीतों का वाद्य-यन्त्रों के साथ गायन भी होता है।

आळवारों ने भी अपने पदों में वेय-पद्धति को अपनाया था। आळवार मठों की कीर्तनियों से पता चलता है कि वे भक्त गायक थे जो विभिन्न स्थानों में बाकर मल्लिकार्जुन पद गाते थे और जगता में भक्ति का भाव जगाते थे। उनके पदों को पा-नाकर लोग भी आनन्द-विभोर हो जाते थे। 'ठिरुप्पावा' आळवार तो 'पाण-जाति' के थे जिन जाति का पता ही गायन था। आळवारों के पदों में कुछ स्थानों पर उनके पदों ने गाये जाने का उल्लेख मिल जाता है। आळवार-पदों का केव होने के कारण ही वे मौखिक परम्परा में शताब्दियों तक जीवित रह सके। बिडार्ता का मत है कि आळवारों की पीत-पद्धति आज भी पद्धति से जिम्मे थी। एक परम्परा-ग्रन्थों से पता चलता है कि श्री नाचमुनि न ही आळवार-पदों का सङ्कलन कर उनके लिए राग

१ साहित्य का दर्शन—डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ११

इत्यादि निर्धारित किये थे। चूंकि आठवार-पर वेद के समकक्ष माने जाते थे अतः नाचमुनि ने आठवार-गीतों के लिए 'देव-गान-सौसी' निर्धारित की थी। कहा जाता है कि नाचमुनि ने उसी सौसी में बेंगल-मन्दिरों में आठवारों के पदों के गाने जाने का प्रबंध किया था। बेंगल-मन्दिरों में आठवारों के पदों को विविध राग-रागिणियों में गाने वाले गायकों को जरूर कहते थे, जो भयवान् की सेवा-समर्थों में मन्दिरों के सामने स्थित मण्डपों में बैठकर वाद्य-यन्त्रों के साथ आठवार-गीतों का गायन करते थे। मन्दिरों से सम्बन्धित उत्सवों और त्यौहारों में भी आठवार-पदों के गायन का विधिष्ठ प्रबन्ध किया जाता था। जम्म बिवाह अन्वेषित जाति के ब्रह्मसूत्र पर भी आठवार-पर गाने जाते हैं। इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि गेय होने के कारण ही आठवार-पर जनता पर अधिक प्रभाव डाल सके।

विद्वानों का मत है कि आज आठवार-पदों के लिए जो राग और ताल निर्धारित किये मिलते हैं वे नाचमुनि की 'देव-गान-सौसी' से मिले हैं। तमिल विद्वान् श्री० पी० श्री० आचार्य के अनुसार आठवार-पदों के लिए विविध राग-रागिणियों का संकेत नाचमुनि के बाह के किसी संगीताचार्य का कार्य है।^१ कुछ भी हो आज 'प्रबन्धम्' में मिलने वाले प्रत्येक पद के ऊपर उसका राग और ताल निर्दिष्ट है। आज के गायक उन पदों को अनिवार्यता नहीं निर्दिष्ट रागों में नहीं गाते स्वेच्छानुसार अन्य रागों के स्वरों में गा लिया करते हैं। अधिकांश विद्वानों का मत है कि आठवारों के पदों में मिलने वाले रागों और तालों में तमिल के सङ्गीतशास्त्र के नियमों का पूर्णतः पालन हुआ है। अतः कह सकते हैं कि आठवार-पदों की सङ्गीतारम्भता भारतीय सङ्गीत की बगौटी पर भी बरी उतरती है। आठवारों के पदों में प्रयुक्त कुछ राग और ताल इस प्रकार हैं —

राग—यमुना-कल्याणी मठ अपरूप तन्याली नीलाम्बुरी मोहना मुकारी
महाना मृपासी देवी धसावरी, बिमाहरी, टोडी कैवारा पीरी,
बारबी धदुगमरण सारङ्ग बराळी, मीरवी कल्याण श्री कापोरी,
सहाना षष्ठ जाति।

ताल—जाति ताल मङ्गलाम रूपक ताल तिरिपुई ताल जाति।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में रागों का अनिष्ट सम्बन्ध जातों और रस से है। आठवार भक्तों के पदों में संगीत की प्रमुख राग-रागिणियों के साथ प्रज्ञान-अप्रज्ञान प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध ४० से अधिक राग-रागिणियों का प्रयोग हुआ है। इन कवियों द्वारा प्रयुक्त राग रागिणियों के नाम को देने से बिदित होता है कि पदों के विषय और

१ 'विषय प्रबन्धमालि बन्धमिळ इरी बरिचकुळ'

मे पी० श्री० आचार्य—'बानोली' (आकाशवाणी महानि की पत्रिका)

पृ० २ (नवम्बर, १९६०)

रागों के संकलन में धामजस्य का ध्यान रखा गया है। कुछ विशिष्ट भावों को व्यक्त करने के लिए विशिष्ट रागों का प्रयोग आवश्यक समझा गया है। सपीठ में गान से ही सुख-दुःख हर्ष-विषाद आशा-निराशा आदि की प्रतीति होती है। नाट्यमय बलिर्भयना अपनी प्रकृति में इतनी सूक्ष्म और तरल होती है कि उसका निकट सम्बन्ध हृदय के हर्ष और विषाद के तरलीकृत रूप गान और स्वन से होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मित्र-मित्र रागों से मोठा के हृदय में मित्र-मित्र रागों का अनुभव होता है।^१ यही कारण है कि राग और रस का सम्बन्ध माना गया है। किन्तु-किन्तु रागों की व्यञ्जना के लिए किन्तु-किन्तु रागों का संगीत-शास्त्र के नियम के अनुसार प्रयोग उपयुक्त समझा गया है, वह निम्नलिखित शास्त्रिका से जाना जा सकता है। (आळवार भक्तों के पदों में श्रुताधिक रूप में इस नियम का ध्यान रखा गया होता है।)

शृङ्गार रस—राग—वसन्त कमास देव सांवार, सावेरी औरवी।
कण्ठ रस—राग—पुल्लुन कापोवी मुकारी बसावरी आहीरी हुवैनी।

हास्य रस—राग—कापोवी।
रौद्र रस—राग—मुकारी वरावी।

द्यूत रस—राग—विसहरी।
आत्म रस—राग—धाम।

बीमास रस—राग—बण्डी।
भक्ति रस—राग—सहाना पूर्व कम्पाली।

संगीत शास्त्र के उपर्युक्त नियम के अनुसार आळवार भक्तों ने शृङ्गार रस

के प्रसंगों में प्रयुक्त रूप से सावरी कमास औरवी कण्ठ रस के प्रसंगों में मुकारी बसावरी हुवैनी द्यूत रस के प्रसंगों में बिसहरी और भक्ति रस के प्रसंगों में सहाना पूर्व कम्पाली आदि रागों का प्रयोग किया है। वन से सौन्दर्य के लोभ पर गोपियाँ मुग्ध हैं। उनकी स्थिति का वर्णन संगीत श्रुति के लिए उपयुक्त औरवी राग में पैरियाळवार करते हैं—

औरवी राग—आदि ताल

‘तळ’कमुन लोक्कमुन लुम्मी एंजुन
तन्नुम एक्कम मलळीतळ बीली

“Ragas are eloquent vehicles of emotion with a limitless but in articulate power of expression. A genius bends them to his purpose and makes them carry his message.”

—Ragas of Carnatic Music Rama Chandran, p 161

मुळलकळूम पीतमुमाकी एकुम
 पोबिम्बन बबकिट्टु कुळुम कपु
 मळकोतो बबकिट्टु तेणु बोस्ती
 मीमर बासळ बाचल पडि
 मुळबनर निपनराकी एकुम
 उस्ळम बिट्टु ऊच मरत्तोळित्तनरे ।^१

भक्ति (विनय) रस के प्रसंगों में 'सहागा राग का विरोध प्रयोग हुआ है।
 सौंदर्यहीनोड़ी बाळबार की रचना विक्रमाली के सभी पद्य सहागा राग में गाये जाते
 हैं जिससे भक्ति-रस का परिपाक होता है—

सहागा राग—कृष्ण तास

'पञ्चमे मायर्न पोस मेनी पबळबाय कमलबेकळ
 मञ्जुता । ममररेरे । भायर सम कोळ लो । एणुम
 इन्नुबे तविर याग पोय इत्तिर लोकम् मळूम
 मञ्जुव वैरिणुम बेटिन मरैयमाणमस्सळ्मे ।'^२

शास्त्रीय संगीत की परम्परा में दिन रात के आठ पहरों के अनुकूल रागों का
 विधान किया गया है। दिन और रात के क्रम में प्राकृतिक वातावरण में जो परिवर्तन
 होता है सभी के अनुकूल रागों के विधान में विविधता और परिवर्तन की संयोजना
 की जाती है। उपर्युक्त रागों में कोमल स्वरों की योजना होती है। सूर्योदय के
 समय और उसके बाद गाये जाने वाले रागों में मृदु और तीव्र स्वरों का आधिक्य
 होता है। जमावरी छोटी प्रातःकालीन राग है। सायंकालीन रागों में पूर्वी और भी
 ज्यादा हैं। रात्रि के रागों में कस्याणु केदारा मूपात्ती आदि हैं। बाळबाराँ के पदों
 में प्रयुक्त रागों को देखने से पता चलता है कि उन्होंने यथासम्भव समय के अनुकूल ही
 रागों का प्रयोग किया है। तारांश यह है कि बाळबाराँ के पदों में उच्चकोटि का
 वैयक्तिक और पदों में शास्त्रीय संगीत के नियमों का भी पालन यथासम्भव हुआ है।

आलोचक हिस्से कृष्ण भक्ति-काव्य में वैयक्तिक

हिन्दी का कृष्ण काव्य मुख्य रूप से सेव पदों में निर्मित है। इन कवियों की
 वैयक्तिकता में हृदय विविधता और विविधता के वर्णन होते हैं। उत्तर भारत की
 गीत काव्य परम्परा में जयदेव के 'गीत-गोविन्द' का महत्वपूर्ण स्थान है जिसका
 प्रभाव परवर्ती भक्त-कवियों पर पड़ा। जयदेव के परभाव में विनय कोकिल विद्यापति
 ने भी अपने गृन्थारिण पदों की ऐसी छान छड़ी जिसकी विविध-कवि-विहंगमों की
 जन-जन प्यनि की पराङ्गन कर मिलाता के आग्रहपूर्ण-मुक्तों की पुञ्जित करती हुई

बलिय की और प्रवृत्त मक्ति-समीर का आचार से उत्तर की ओर बढ़कर जब मैं गतिस्त्री कुमस्य कदमों को आलोचित करती हुई वृत्तावन के सुन्दर करीम कुम्हल वृत्तों में घूमने लगी।^१ इस प्रकार १६वीं शती के हिन्दी कृष्ण-मल्ल-कवियों को अपनी मक्ति साधना को विकसित करने के लिए एक परम्परागत विकसित मीठ-संती गीत-संती के कलेवर में नवीनता का संचार किया है।

हमारे आलोच्य हिन्दी कृष्ण-मल्ल कवि उष्ण कोटि के गायक भी थे। नैमित्तिकता और आत्माभिर्व्यंजना की मीठ-काव्य का सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख सहाय है, इनके यीतों में जब से लेकर इति तक व्याप्त है। हिन्दी के अष्टसप्तरी कवियों ने अपने पद विशेष रूप से यौगज की कीर्तन सेवा के लिए रचे थे। हरिदास बड़े संघीतज्ञ थे। कन्हू के तात्पर्य यह है कि आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण मल्ल-काव्य में उष्णकोटि का वेपथु बिद्यमान है और उनके कवियों के पद विविध राग-रसगिनियों में बने हैं। उनमें शास्त्रीय संघीत के आवश्यक नियमों का असासम्भ्रम पालन हुआ है।

कुछस कवि काव्य में माध-सीन्धव के समावेश के लिए लय का भी विवेकपूर्ण प्रयोग करता है। लय स्वर की एक गति होती है। जिस गति से स्वर चलते हैं उनकी प्रयोग करता है। लय कभी बिभम्बित कभी मध्य और कभी द्रुत होती है। संघीत का पूरा आनन्द लेने के लिए स्वर के साथ लय का भी ध्यान रखना चाहिए।^२ रसाय नन्ददास तथा परमानन्ददास की रचनाओं में आत्मानुसृत लय का प्रयोग हुआ। कोमल और मधुर आह्लास के प्रसंगों में अधिकतर 'मध्य लय' का प्रयोग हुआ। त्रुल्य और जोमपूर्ण स्वसों पर 'द्रुत लय' प्रतिपाद की प्रभावशाली को द्विगुणित देती है। जो कुछ और कुञ्जपूर्ण प्रसंगों में उसका 'बिभम्बित' रूप मानिकता के सर्वहन में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। मीरा के काव्य में भी लय प्रयोगों में यह मानानुसृतता अकृष्ट रूप में प्राप्त होती है।^३ बासन्त और संयोग शृङ्गार के पद अधिकतर मध्य लय में गाने के उपयुक्त हैं। सूरदास परमानन्ददास और नन्ददास के बासन्त और संयोग-शृङ्गार सम्बन्धी पद 'मध्य लय' में नियोजित स्वर सिंगि में ही अधिक निखरे हैं। निम्नलिखित पद देखिए—

सूरदास

"तोमि कर लकीत लिये।
पुदुवन चलत रैनु तन मंडित मुन बधि लेप किये।

- १ सूर और उनका साहित्य—डा० हरबंसदास घर्मो, पृ० २८८
- २ नन्ददास प्रभासती—रूप मञ्जरी पृ० २४२ (बजरत्नदास)
- ३ अजनावा के कृष्णमल्ल-काव्य में अतिव्यंजना सिद्ध—डा० साबितो सिन्हा, पृ० ११०

बाब कपोल सोल सोबन गोरीबन तिसक रिये ।
मठ मठकत मानो मत मधुप मन मावक मधुहि रिये ।”^१

परमानन्ददास

राग सारंग

“नख बू के सासन की छवि घाटी ।
पाय पैबनी रनभुन बाबत बलत पुँक बहि बाघी ।
घरन घरर बनि मुख लपठानो तन राब छीरे छाछी ।
बरमानन्द प्रभु बानक बीसा हुँति ठिर पाछी ॥”^२

नखदास

राग घनाभी

“बिसर कौन की प्रति नीकी ।
होइ परी प्रीतम घर प्यारी अफने अपने की ।
न्याय परी भलिता के घाने कौन सरस को फीकै ।
नखदास प्रभु बिलगि बनि मनो कहु इक सरस सनो की ।”^३

मीरा के पदों में कविता की सम के साथ सांगीतिक सम के सामंजस्य-स्थापन की चेष्टा दृष्ट्य है। संयोग के कारणों में कृष्ण के अनुराग से चित्त होकर अपनी रसमग और उन्माद की अभिव्यक्ति उन्होंने छोटे-छोटे चरणों से मुक्त झूठ सम में बलि जाने के उपयुक्त योजना द्वारा की है—

रंग भरी राग भरी रागसु भरी री ।
होरी खेम्पां क्याम सप-सग सु भरी री ।
पड़त गुनास जाल बबल भयो री ।
विचका पड़ावा रंग-रंग री सरी री ।^४

हिन्दी कृष्ण मठ कवियों ने अधिकतर ध्रुवपद (ध्रुपद) और कहीं-कहीं पमार रीसी का प्रयोग किया है। उनकी तीव्ररी घसी कीर्तन-रीसी है जो वास्तवीय-संवीत की अनेक मोड़-गोठ पद्धति के अधिक निकट है। हमारे अधिकतर आलोच्य हिन्दी कवि संगीत और संगीत-शास्त्र के माता थे। ध्रुवपद तत्कालीन संवीत की सर्वप्रधान रीसी थी। अतः हमारे कवियों ने भी इस रीसी को अपनाया है। इसमें विसम्मित लय का ही प्रयोग होता है। इसमें अधिकतर ईश्वर प्रार्थना और बीरता के भावों से युक्त पदों का गायन किया जाता है। अहाँ तक ध्रुवपद के विषय

- १ गुरसावर (ना० प्र० ममा) पद सं० ७१७ पृ० २१५
- २ बरमानन्द सागर (मं० गो० ना० धुबल) पद सं० ८६ पृ० २६
- ३ नखदास पद्मावती पद सं० १६ पृ० ३४६
- ४ मीराबाई की पदावली (मं० परमुराम कतुर्वेदी) पद सं० १४६ पृ० १४१

राग काम्हरो

१५ वीं शताब्दी की गायन प्रथाओं की एक बहुरंगी

“वेदत है अति रसमते रस धीने हो ।
अति रस केनि बिनास लाल रस धीने हो ।
आमृत सब नि-”

अपि रस केमि बिनास लाल रस भीने हो ।
आपत सब निमि गत मई रस भीने हो ॥

[illegible]

... रंग भीने हो ॥
... रंग भीने हो ॥
... रंग भीने हो ॥

नहीं बीखती तो भी उनमें सोक-संगीत-नीतियों का सुन्दर रूप मिलता है, जिसे देखकर

सूरसागर (वर्मा) पर सं० १९९३ प० ७३७
 वही (), पर सं० १९५१, पृ० १२१३

१ सुरसापर (समा) पद सं० १२२३ प० ७३७
२ वही (), पद सं० १४४१, पृ० १२१३

राग होरी—सिम्हरा

फागुन के दिन बार है होरी खेल मना है ।

जिन करतात पञ्चाब्ज जाने प्रबन्ध की समकार है ।

जिन गुर राग छलीसु पावै रोम-रोम समकार है ।

लेस मना है ॥

बड़ा वा चुका है कि आलोच्य हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के पर बिबिध राग रागिणियों के समर्पण बने हैं । गुर ने तो सप्रभ १८ रागों में अपनी पर रचना की है । सूरसागर में राग-बीबिध के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि "सूरसागर में कोई राग या रागिणी छूटी नहीं होयी इससे बहु संगीत प्रेमियों के लिए भी बड़ा भारी खजाना है ॥" १२ अन्य कवियों की रचनाओं में भी राग-बीबिध इष्टिगोचर होता है । बिभिन्न राग अपने स्वर विधान द्वारा बिभिन्न भावों को प्रतिपादित करने में समर्थ होते हैं । किसी राग का स्वर संकीर्ण होता है तो किसी का अपसर्ग कोई राग पुरुष प्रकृति का होता है और कोई स्त्रीप्रकृति का । इस प्रकार राग-बन्ध रचना करने वाले कवि के लिए आवश्यक होता है कि वह विषयानुसृत रागों का संकलन करे । आलोच्य कृष्ण-भक्त कवियों द्वारा प्रस्तुत राग-रागिणियों के नाम को देखने से पता चलता है कि पदों के विषय और रागों के संकलन में सामंजस्य का ध्यान रखा गया है । बिशिष्ट भाव और रागों के परिपाक के लिए बिशिष्ट राग प्रयुक्त किए हैं । बिन्ध के प्रसंगों में प्रयुक्त राग हैं—बिसावन भगवती मारु, बाहुरो टीवी मठ बैदारी सारंग भगवती बैदगाधार बादि । जिन प्रसंगों में हर्षोत्साह आनन्द विनोद और नीला नीला नी प्रयाना है उनमें कोमल प्रकृति के रागों का प्रयोग हुआ है । कृष्ण मति-काव्य में शीर्ष और रस से युक्त रस्य बहुत कम है । बैदर गुरदास के पदों में दावानल प्रसंग बालिय-यमन, असुर संहारण बादि स्वभाव पर इत भाव भी अभिव्यक्ति मिलती है और यहाँ जगहों मारु राग का प्रयोग किया है । प्रायः सभी कवियों ने कष्ट प्रसंगों में बैदर और गुनवली का प्रयोग किया है ।

आलोच्य हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने अपने गेय पदों में संगीत के समग्र विज्ञान का निर्वाह पञ्चाब्जप्रबन्ध किया है । पुष्टिमायिक नियम से बादि में कृष्ण बैदा के जाठ समय रहे लगे हैं—संगता गुरुवार स्वात रात्रमोम सखापन मोम, संगता (जायती) और घमन । इन कवियों ने इन बिबिध प्रसंगों के पदों की रचना में गङ्गाधर घाटगीय समय विधान से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है । संगता प्रसंग में प्रायः सभी कवियों ने बिबिध रामकली समिष्ट और भगवती का प्रयोग किया है । गुरुवार प्रसंग में प्रायः प्रायः कालीन रागों का प्रयोग हुआ है जो संगीत के

१. बीराबाई की पदावली (सं० परमुराम चतुर्वेदी), पृष्ठ १२१ पृ० १४४
२. गुरदास (द्वितीय संस्करण)—आचार्य शुक्ल पृ० २००

समय सिद्धांत की कड़ीसी पर पूर्ण रूप से सरा उठता है। योच्चारण राज मोघ और छंद प्रसंगों में अधिकतर सारंग राग का प्रयोग हुआ है, इसके अतिरिक्त वेग नांवार टोही नटनागमसु आदि रागों का प्रयोग भी हुआ है। सम्झा झरती में सारंगकासीन सगि प्रकाश और रागि के राज प्रयुक्त हुए हैं। लगीत मोझा में जलु कासीन रागों के प्रयोग की ओर भी हमारे भक्त-कवियों ने विशेष ध्यान दिया है। पुष्टिमासीन सेवा में जलु-जसनों का भी बियान बा। पावस-प्रसव में मल्लार और उसके विविध नेहों का प्रयोग किया गया है। हिंडोल के पदों में हिंडोल और मल्लार तथा बल्ल-बीता में बल्ल राग का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है।

स्पष्ट है कि बाबोष्मकासीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने काव्य में उच्च काटि का वेगल विद्यमान है और उसमें संगीत के शास्त्रीय नियमों का यथासम्भव निर्बाह हुआ है।

२—काव्य के विविध रूप

१ गीति-काव्य

कवि का युव जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण उसके अनुभूति-विस्तार की सीमा तथा अन्त-मेरणा का रूप आवि से तत्व है जिसके प्रभाव के फलस्वरूप कवि अपने कविता के काव्य-रूप का निर्धारण करता है। आठवार भली तथा बाबोष्म हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के विषय में यही बात कही जा सकती है। सायना के राज प्रभाव रूप भावनाओं के तीव्र उन्मेष और राग-प्रधान जीवन-वर्धन तथा युव-वर्धन के कारण इन्होंने 'गीत' को ही अपने काव्य का बाध्यम बनाया। कहा जा चुका है कि गीति-काव्य का प्राणतत्व आत्मानिर्भर्यति है। यह जितनी ही तीव्र और प्रबल होती है गीति-काव्य उतना ही भेष्ठ हो सकता है। गीति-काव्य में कवि के अर्थव्यपत् की अभिव्यक्ति प्रधान होती है और जीवन के बाह्य क्रिया-कलापों का स्थान गीत। वैयक्तिकता गीति-काव्य का प्रधान गुण है। इस व्यक्तिता का रूप सीमित नहीं रहता बरन्तु सावनीम होता है। आत्मानिर्भर्यता के दो रूप होते हैं—एक रूप वह है जिसमें कवि किसी वस्तु में सा व्यक्ति में अपनी भावनाओं का आरोपण करता है और दूसरे में वह अपने भावों को प्रत्यक्ष रूप में सीधे प्रकट करता है। बाबोष्म के और हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में हमें आत्मानिर्भर्यति के उपर्युक्त दोनों रूप देखने को मिलते हैं। एक रूप में उन्होंने आराध्य के प्रति सीधा आत्म-विवेदन किया है, दूसरे में योषियों (अथवा भाविका) के माध्यम से अपने कवि-हृदय की बाहुर भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। इस प्रकार बाबोष्म के तथा बाबोष्म हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के गीति-काव्य के दो रूप मिलते हैं—

(ग) शुद्ध गीति-काव्य और (घ) आत्मानात्मक गीति-काव्य।

(घ) शुद्ध गीति-काव्य

इस प्रकार के काव्य से तात्पर्य उन वेग पदों से है जो भक्त-कवियों द्वारा प्रयु

के समस्त आत्मनिवेदन के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। सीधे-साधे शब्दों में हार्दिक भावों की कुशल अभिव्यक्ति ही इन गीतों का अभिप्राय होता है। केवल इनका सहज गुण है। इन गीतों के विषय प्रायः प्रभु की भक्त-व्यसमता ऐश्वर्य पतित-पावनता तथा आत्मनिष्ठा और आत्मनिवेदन होते हैं। माया-निवेदन अविद्या-दुष्प्रज्ञा नाम महिमा और विमय के पर भी इस कोटि के हैं।

आठवार भक्तों के तथा आलोच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के आत्म-निवेदन सम्बन्धी पर धृष्ट गीति-काव्य की कोटि में आते हैं, जिनमें आत्मनिष्ठा का प्रत्यक्ष रूप मिलता है। आत्म-ज्ञान, नाम-महिमा इत्यादि प्रसंगों में कवि हमारे सामने आकर बोलता है। इन पदों की माया सरस और साधारण है। इन पदों में व्यक्त ईश्वर और आत्मनिवेदन में ही वैयक्तिक तत्त्व मिलता है और ईश्वर मिश्रित निर्बोध पर इनकी सामर्थ्य निर्भर है। आठवारों के तथा आलोच्य हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों में सूरदास के विषय पदों में धृष्ट गीति-काव्य के मन्त्रे उदाहरण मिलते हैं। तोंडरबीपोड़ी आठवार के एक गीत का छंद इस प्रकार है— विष्णु भगवान् के बलात्ता कोई देवता है ? है बुद्धिहीन मनुष्य ! तुम लोगों का यह स्वभाव है कि आपछ के जा जाने पर ही उस जपविष्णु के पास बौड़ पड़ते हो। अभी समझ लो। उस एक मात्र कल्याण निधान के अतिरिक्त कोई देव नहीं। उस (गोबों के पालक—मेरे पिता) चमत्कार के चरणों में जाओ।^१

सूरदास जी का एक पद देखिए—

‘रे मन, छाँड़ि विषय की रंजिबी ।
 कत तु मुखा होत सेमर की, प्रभोहि कपड न बजिबी ।
 अंतर गहत कनक-कामिनी कौ, हाव छुँगी पजिबी ।
 तजि प्रमिमान राम कहि बीरे, नत एक क्वाला तजिबी ।
 सतगुरु बहो, कही तोछोँ हौ, राम रतन बन सजिबी ।
 सूरदास प्रभु हरि-सुमिरन मिनु बोपी-करि क्यों नजिबी ॥’^२

आत्मनिष्ठापरक धृष्ट गीतों में आँडल और मीरा के पदों में एक विशेष शक्ति है। उनमें कल्पना और बुद्धि-तत्त्व सर्वथा पाएँ हैं, केवल उनकी भावनाओं का शीत गीति-काव्य के सङ्गीत और काव्य के माध्यम से बूट पड़ा है। उनकी भावपूर्ण

१ ‘मदु और देहमुष्टे ? अतिशयानिदकाल ।
 उदुभोतगुदी भीरुछ घोदबनेमदु उचरमादौर
 धदुभेनीमुरियौर धंवनन्नाल देहभिमिल
 कदुनन मेइत एल कळनिथै बजिमिन बीरे ।

नकि उनके हृदय की कहानी है, जिसमें राम-तत्व प्रधान है। इनके पदों में अनुसूक्तियों की तीव्रता है और गहनता है भले ही बनेकम्पता नहीं हो।

आत्मनिष्पत्तिपरक पद कवियों के व्यक्तित्व की निश्चितता का निर्देश करते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें आत्मनिष्पत्ति का कुछ रूप मिलता है तथा अनुसूक्ति और अभिव्यक्ति में पूर्ण तादात्म्य हो गया है। विषय-वस्तु और अभिव्यक्ति की यही एकतामयता इन कुछ पदों की सबसे बड़ी विशेषता है।

(ब) आत्मनिष्पत्ति-गीति-काव्य

इस प्रकार के काव्य का प्रतिपाद्य समस्त सीमा वर्णन है। इनमें पीत का कुछ रूप नहीं मिलता। इनमें निर्मोचित कथात्मक और वर्णनात्मक तत्व कवि के व्यक्तित्व का पर्यवेक्षण में बाध देता है। जहाँ सीमा मान में कथा का आग्रह अधिक है वहाँ कवियों ने कथा-परिचयिता पात्र का आचार ग्रहण किया है। अतः कवि की भावनाओं की प्रत्यक्षता में अवरोध आ गया है। यहाँ आत्मनिष्पत्ति का कुछ न होकर सम्प्राप्तिरहित है।

आत्मनिष्पत्ति-गीति-काव्य के अन्तर्गत हमारे कवियों ने बाल-सीमा पोषोहम्, पोषारण, नीरहरण मोक्षन-धारण नाम-सीमा आदि सरस प्रसंगों को लिया है। इन प्रसंगों के पद अधिकतर भाव-प्रधान हैं। इन पदों में आत्मनिष्पत्ति भावों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए उपकरण रूप में लिया गया है। इनमें आत्मनिष्पत्ति का स्थान पीत है। इच्छा और राधा तथा गोपियों की मृत्तु-आत्मनिष्पत्ति प्रधान रहती है। इस भावना की अभिव्यक्ति अपने आप में पूर्ण एवं स्वात्म और सरस है। इस प्रकार के चित्र के पदों में आत्मनिष्पत्ति तथा आत्मनिष्पत्ति (इच्छा) कृष्ण भक्त कवियों ने अपने व्यक्तित्व की गोपियों रामा यक्षोदा और कृष्ण के व्यक्तित्व पर आसक्ति व्यक्त किया है। इस चित्र का रूप कुछ आत्मनिष्पत्ति म होत हुए भी अत्यन्त मार्मिक है। आत्मनिष्पत्ति के अन्तर्गत होते हुए भी विभिन्न पात्रों की भावनाओं के माध्यम से इन कवियों ने अपनी ही आत्मनिष्पत्ति की है। गोपियों की उच्छ्वसों में कवि के हृदय का ही आभास मिलता है। अन्तर्गत एक एक पर में चिरहिली नायिका (गोपी) की परंपर, बाली रं भी कवि के चित्ररूप सन्तुष्ट उद्गार देखिए—“सारा जगत् ही रहा है। अन्यकार व्यापक होता आ रहा है। रात बढ़ती जाती है। प्रिय विद्योत के रोप के कारण हृदय की मृदुल बढ़ती आ रही है। एक-एक क्षण एक-एक मुग्न बनता आ रहा है। अन्तर मेरे प्रियतम नहीं आयेगे तो (मैं नहीं जानती) मेरी क्या क्या होये ?”

१. “अनेकानां तु की जलनेकानां नमिच्छामः।

नीरेकानां तैरी मोर नीरिच्छामः नीरितालः।

पारेकानां उष्ट नम्यापरेकानां नारितालः।

धार ? एते । नमिच्छामः आनिकापार इति ।” —विद्यापदी, २४१

सूरदास का एक पद देखिए —

“प्रीतम बिनु व्याकुल अति रहियत ।
मधुवन जो जाती हों हरि संग, कित एतौ दुख सहियत ॥
काहुँ काम अनुक संग परती, कित बहत रिनु बहियत ।
बिनु पावस अति मीन उमंगि जन कित सरिता पर बहियत ॥
जो जानतौ बहुरि नहि आनन, बाह पीठ पर महियत ।
सूरदास प्रभु के बिहारे लें कहुँ नहीं दुख सहियत ॥”

इस प्रकार के स्पर्शों पर गोपियों की भावनाओं के साथ कवि का पूर्ण तात्पर्य है। यही तक कि गोपियों के माध्यम से बोलता हुआ उनका हृदय धायाळ और मीरा की प्रत्यक्ष आत्माभििव्यक्ति के समकक्ष बन जाता है।

२. सोक-गीत

आठवार भर्तृ ने तथा आसोष्य हिम्मा कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में अपने-अपने क्षेत्रों में प्रचलित सोक-गीतों का सुन्दर समावेश किया है। सोक-गीत गीतों के दुःख सहन और मूल रूप हैं। उनमें ग्रामीण-जीवन का अद्भुत रूप दिखाई देता है। ग्राम्य मनोरंजन के विविध रूप जनसाधारण के उमंग-उत्साह का माध्यम से मुक्ति पाने के लिए निर्माण की मनोवृत्ति तथा सामूहिक ग्राम-चेतना को लेकर अटपटी भाषा में सोक-गीतों की रचना होती है। कृष्ण-सीतार, सोक-गीतों के ही सर्वथा अनुकूल थीं। वत हमारे कवियों ने सोक-गीतों का भी समावेश अपने काव्य में किया है। किन्तु इनके काव्य में सोक-गीत कुछ परिष्कृत रूप में ही मिलते हैं। धारुण चर्चा तथा साहित्यिक भाषा के स्पर्श से इन्होंने उनका रूप परिष्कृत कर दिया है। बिनु सोक-गीतों की आत्मा और प्रकृति की रक्षा करने का प्रयास सर्वत्र है। अगम, मुद्रन विवाह तथा अनेक सांस्कृतिक पक्षों के अन्तर्गत पर मिले गये गीतों में वैयक्तिक वेदना और उत्साह का सम्बन्ध समूह से स्थापित किया गया है। प्रसिद्ध तमिल विद्वान् श्री पी० श्री आचार्य ने आठवारों के काव्य में प्रयुक्त सोक-गीतों के विषय में लिखा है —

‘यह स्वामाधिक ही है कि आठवार भर्तृ ने उन सोक-गीतों को यथावत् अपने काव्य में स्थान दिया है, जिन्होंने जन-हृदय को बहुत ही मार्कित किया था। बहुत प्राचीन काल से ही इस प्रकार के सोक-गीतों की परम्परा तमिल प्रदेश में (धार्मिक रूप में) चली आ रही थी। विविध अवसरों पर, विविध पक्षों पर सोक-गीत गाये जाते थे। प्रथम विवाह आदि के अवसरों पर गाये जाने वाले सोक-गीतों का तो स्पष्ट रूप आठवार-ग्रन्थ में हमें देखने को मिलता है। हाँ यह हाँ सकता है कि ये सोक-गीत आठवारों की रचनाओं में कुछ मौलिक रूप में नहीं होकर कुछ परिष्कृत रूप में ही मिलते हैं।

हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में हज में प्रचलित लोक-गीतों का अतिरिक्त सुरक्षित मिलता है। इन लोक-गीतों का सहज संगीत शास्त्रीय संगीत से कहीं अधिक उपयुक्त था। साथ ही भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति इन लोक-गीतों में अधिक सहज स्वाभाविक और तीव्र हुई है। हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों ने कम बवाई बाल-श्रमि-बर्णन गोचारण ज्योमार राधा-कृष्ण-विवाह होसी बर्चत इत्यादि गीतों में उन सब तत्वों और चीजियों का समावेश किया है जो तत्कालीन हज-जोवन तथा संस्कृति के मुख्य अंग थे। इन सभी प्रसंगों में लोक-गीतों के कुछ उदाहरण देते हैं। बासक बाळवारी की रचनाओं में प्रमुख लोक-गीतों के कुछ उदाहरण देते हैं। बासक कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन पेरियाळ्वार ने लोक-गीत-रसों में किया है—

‘प्रियु के प्रत्येक अंग के सौन्दर्य को बाकर देखो जी !
अपने पैर की उँगलियों को पुह में लेकर बाझने वाले
बासक के पाद-कमल, के सौन्दर्य को बाकर देखो जी !
कांचन मोटी और मज्जि-अच्छित माता सी।
बासक की कोमल उँगलियों के सौन्दर्य को बाकर देखो जी !
बाकर देखो जी ॥”

कृष्ण की पामने में मिटाकर यद्योया को सोरी पाती हूँ उससे लोक-गीत का सुन्दर रूप बोल पड़ता है। तमिळ में सोरी गाते समय तामेसो सव्य की पुनरावृत्ति आवश्यक मानी गयी है। इस प्रकार से सोरी-गीत बाज भी बरों में बाये बाठे हैं। पेरियाळ्वार का एक सोरी-गीत देखिए —

‘कांचन बीच मोती और रत्न अक्षित सुम्बर।
पातला बह्म है तुम्हारे लिए मेजा है, हे माधव ! तातेसो !
सुम्बर गल्ले किक्किनी और ककज।
तुम्हारे लिए देखो मे मेजे हैं, हे, धनश्याम ! तातेसो !
सुम्बर फूल फुल फुलकर तुम्हारे लिए।
सुवेची मे मेजे हैं रोघो मत हे मेरे राजा ! तातेसो ॥”

१ वेईककुळची पिडित्तु, पुवत्तुन्नुम।
पाद कमलकुळ काचीरे पवतवायीर। बन्धु काचीरे।
पत्त बिरत्तुम मल्लिक्कन पार्वकुळ।
घोसिट्टिकलवा काचीरे घोन्नुवलीर ! बन्धु काचीरे।

—पेरियाळ्वार तिरुमोळी १२१ और २

२ ‘माजिककमकट्टि गमिरम इवै कट्टि।
माळिप्पोल्लाम सेइत बच्चन्निस्तोडुल।
केचि उन्नन्नु पिरमन मिन्नु तन्नाम।
माजिककुरळ्ळने। तोतेसो। वीपमळ्ळन्नामे तातेसो।

पशु, पक्षियों को सम्बोधित करके मावे पये पशों में प्रायः सोक-गीतों के कुछ रूप देखने को मिलते हैं। विश्वम्भ बाळ्यार के अनेक पदा में इस प्रकार के सोक-गीतों का समावेश है। इस प्रकार के सोक-गीत बाज भी तमिळ-प्रदेश में प्रचलित हैं। बाळ्यार ने यहाँ स्वप्न में याधव के साथ होने वाले अपने विवाह के प्रसंग का वर्णन किया है। यही उगने द्वारा प्रयुक्त पशों में सोक-गीतों का परिष्कृत रूप ही मिलता है। बाज भी वे वीठ विवाह के अवसर पर वीथ्युओं के यहाँ सामूहिक रूप में गाये जाते हैं —

‘सुनरी प्रिय सखि मेरा लगना ।

इका मैंने प्रिय को जिसमें पाया जीवन अपना ।

बारव गय से परिबुल घाते, स्वामत होने पुर मैं ।

तोरव बधि मय में पग-पय नूरव छर घर-घर मैं सुनरी

मुक्त-सर-शोभित मन्त्रप में छल मूर्ख बजते ।

मधुसूदन की पाणि पकड़कर मेरा हृदय लजते ।

— सुनरी —

सूरदास की हाथ प्रयुक्त सोक-गीत का एक उदाहरण देखिए। यह बजाई का गीत है :—

यनि-यनि नम-जसोमति यनि जग पावन है ।

यनि हरि लियो दयतार सु यनि बिन पावन है ।

बतएँ मास जयी पूत पुनीत मुहावन है ।

सस-बक-मरा-यूम जतुरमुज मावन है ।

जनि बज सुम्हारि कसो, सु गाह बजावन है ।

कनक-बार रोचन-बधि तिलक बनावन है ।

नंदपरौहु जलि गई, महरि जहूँ पावन है । १

मन्ददास जी के निम्नलिखित सोक-गीत’ में पुन-जन्म के समय क हास-उत्साह और बातावरण का सुन्दर चित्रण हुआ है —

जनिन बलभूरिपुम वैबडिपुम किन्किजिपुम ।

धकय बिमुपित धमरुळ पोतगार ।

जैकय कडमुकिसे । तातेनो । बैचकी चिकमे । तातेनो ।

जगार जेनु जोल कर्कसतिन बाचिकेमुम ।

तेमार पत्तर मेन तिरवमे बीतगान ।

कोमे । घळेल, घळेल तातेनो । कुटर्त्तकिडगाने । तातेनो ।”

— पैर्याळ्यार तिरमोळी १ ३-१ ४ व ७

१ बाळ्यार तिरमोळी ६ : १ व ६ (गीराम्बा का घत घोर स्वप्न)

हिंदी अनुबाधक श्री मन्मूरी रंभाचार्य, पृ० १७

७ नूरसागर (समा) पर ल ६४६ पृ० २६५

‘कृप्य जगम मुनि अपने पति सीं होंति बाझिन यों बोली कू ।
 जाज-जाज तुम नग्न नृपति कों, राम कोठरी बोली कू ।
 तुमहि मिलेयी बागी बीरा, बहिना भरि-भरि सोरी कू ।
 हमको लइयी नजसिक्त गृहना जेहरि सहित सु बोरी कू ।
 लीयी कंत नृपति सीं लइयी हम बड़िने कों बोली कू ।’

१ मुष्क रचना

मुक्तक' निबन्ध-काव्य का एक रूप है। यद्यपि नीति-काव्य और मुक्तक में काफी साम्य दिखाई देता है, तो भी दोनों की आत्मा में मौलिक अन्तर है। इस कारण से उनके कलेवर में भी अन्तर बीज पड़ता है। साधारणतया मुक्तक से तात्पर्य उस काव्य से है जो पूर्वापर सम्बन्ध से रहित होता है। मुक्तक काव्य के लिए यह आवश्यक है कि विभाव अनुभावादि से युक्त रस परिपाक पूर्ण होना चाहिए और रसवृत्ति के लिए रस पर का सहारा न लेना पड़े। नीति-काव्य में भावामिश्रित का जो उन्नत मिलन होता है वह मुक्तक नहीं। मुक्तक में कवि बाह्य स्वल्प की रचना के प्रति बहुत ध्यान रखता है, अतः उसमें कला-पक्ष का प्राबल्य अधिक हो जाता है। चमत्कार-वस्त्र उत्ति-वैचित्र्य आदि की ओर मुक्तककार आकर्षित रहता है। कला-उत्पत्ति के प्रभाव होने के कारण उसमें बौद्धिक तरंग प्रधान होता है। नीति काव्य में रचनात्मक आवेष्ट और आत्मनिष्ठ प्रधान है जो मुक्तक में नहीं है। यही दोनों में सामान्य अन्तर है। प्रबन्धम्' के 'इत्येव-विभाव' में संघुहीत रचनाओं में प्रायः मुक्तक ही दृष्टिगोचर होते हैं। उनके अन्य पदों की भाँति रागादि निदिष्ट नहीं हैं। येयम्' के प्रस्तावना-पदों में आत्मनिष्ठ आकाङ्क्षा की रचनाएँ तथा 'तस्मात्' के प्रस्तावना-पदों में सामान्य आकाङ्क्षा की रचनाएँ मिलती हैं।

प्रबन्धम्' के 'इत्यप-विभाम्' में संयुहीत रचनाओं में प्रायः मुक्तक ही दृष्टिगोचर होते हैं। उनके अन्य पदों की भाँति रागादि निर्विष्ट नहीं हैं। पोषर्ग आळ्यार भूतत्ताळ्यार पेयाळ्यार की रचनाएँ तथा नम्माळ्यार की रचना विश्वसिद्धे आळ्यार की रचना विश्वस्तित्त एलच्च मे प्रमुक्त छन्द मुक्तक-काव्य के अन्तर्गत आ सकते हैं। इनमें श्रावेक पद अपने पूर्व पद के सम्बन्ध क बिना भी अस्तित्व रख सकता है और अभिव्यक्ति पूर्ण भी हो सकती है। इनमे कुछ पद राग-जड हैं मगर उन्हें राग-जड मुक्तक कह सकते हैं। परन्तु ये मुक्तक होते हुए भी नीति-काव्य की ओर अधिक मुड़े हुए हैं।

आसौध्य हिन्दी रूप्य मछ कबियों में ...
मारी है। उदाहरण के लिए ...
ती ...

आसौभ्य हिन्वी कृष्ण भक्त कवियों में कुछ की रचनाएँ मुक्तकों के अन्तर्गत आती हैं। उदाहरण के लिए रसज्ञान और हितहरिबन्दा की रचनाएँ उससे अन्तर्गत रही जा सकती हैं। रसज्ञान की कविता अविष्कारित मुक्तक के रूप में ही प्रकट हुई है। उसमें एक-एक शब्द अपने आप में पूर्ण और स्वतन्त्र है। रसज्ञान में अपने प्रत्येक शब्दों में संपूर्ण चित्र का निर्माण बड़ी कुशलता से किया है। मुक्तक के लिए आवश्यक मीठ प्रोबल और समासमुक्त भाषा भी रसज्ञान की रचना में देखने को मिलती है।

अतः मुक्त के क्षेत्र में रसज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। रसज्ञान का एक मुक्तक छन्द देखिए—

‘भाम् गार्ह हुती भोरही हूँ, ‘रसज्ञानि’ रहै कहि नर क भौनहि ।
बाको बिपौ ब्रुा भाव करोर, बलमति को मुख भात कह्यो नहि ॥
तेन लपाइ लबाइ के संजन नौह बमाइ-बनाइ छिठौनहि ।
अरि हमैत मिहारत धानन बारति क्यौ चुकुकारति छौनहि ॥”^१

४ प्रबन्ध-काव्य लघु-काव्य

प्रबन्ध-काव्य में शृङ्खलाबद्ध रूप में किसी वस्तु का वर्णन होता है। प्रबन्ध काव्य का कथानक सापेक्ष होता है, जिसमें पूर्वापर सम्बन्धों की स्थिति सबब बनी रहती है। कथा की पृष्ठभूमि के निर्माण के लिए प्रकृति-वर्णन और देश-कास चित्रण का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रबन्ध काव्य विषय-प्रधान होता है, अतः उसमें वर्णनार्थक तत्वों का आधिक्य हो जाता है। प्रबन्ध-काव्य के दो रूप माने जाते हैं— महाकाव्य और ‘लघुकाव्य’। महाकाव्य में जीवन के सम्पूर्ण अंशों का वर्णन होता है। लघु-काव्य में जीवन के किसी एक लघु अथवा अंश को लेकर उसका क्रमबद्ध वर्णन किया जाता है।

आठवार में अथवा आलोच्यकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों में किसी ने भी महाकाव्य की रचना नहीं की। कृष्ण-भक्त काव्य में आध्यात्मिक भावों और उन्नत का बोध था उसकी अभिप्रेत्या के लिए नीचे ही भेद भाष्य था। महाकाव्य की भाँति कृष्ण-भक्त कवियों की दृष्टि विषयगत नहीं थी और किसी महान् सन्देश या गम्भीर जीवन-वर्णन का प्रतिपादन उनका मक्य नहीं था। कृष्ण भक्त कवियों का हृदय कृष्ण-सीमा पर ही अधिक केन्द्रित था। कृष्ण और राधा के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण भावार्थक और रामार्थक था। हृदय की आध्यात्मिक भावना में पीतो का स्रोत ही पृष्ठ पड़ता है। परन्तु महाकाव्य के लिए वस्तुपरक गम्भीर और बुद्धि-सम्पन्न दृष्टि की आवश्यकता है। यही कारण है कि कृष्ण भक्त कवियों के द्वारा महाकाव्यों की रचना नहीं हुई।

आलोच्य कृष्ण भक्त कवियों में कुछ ने लघुकाव्यों की रचना की है। लघु काव्य में जीवन के एक अंग का चित्रण होता है। किन्तु वह लघु और उसमें व्यक्त अनुभूति अपने आप में पूर्ण होती है। लघुकाव्य में एक कथा-लघु अवसर होता है, जीवन के सर्वाङ्ग निरूपण के अभाव के कारण उसमें कथा का उत्पान-वर्तन नहीं होता। प्रासंगिक कथाएँ बहुत कम आती हैं। कृष्ण भक्त कवियों के लघु-काव्यों में कथात्मकता के साथ सीतात्मकता का सामंजस्य है। आठवार की ‘तिरुणाई’ गम्माळवार की ‘तिरुविल्लम’ और तिरुमने आठवार की ‘वेरियतिरुमल्ल’ विशेष

छन्दोविधान भी है इसका पता भी नहीं चलता । इन कवियों ने कहीं संयीतात्मकता की प्रशानता देते हुए छन्दों की तोड़-मरोड़ भी की है ।

आळ्वार काव्य में छन्दोयोजना

आळ्वारों के पद गेय होने के साथ-साथ छन्द-शास्त्र के नियमों के अनुकूल भी हैं । छन्दों के नियम प्रत्येक भाषा की प्रकृति और उच्चारण-पद्धति के अनुसार अलग-अलग होते हैं । आळ्वारों की भाषा तमिळ है, जो द्राविड़ परिवार की भाषाओं में सबसे अधिक प्रामाण और प्राचीन भाषा है । तमिळ का अपना स्वतन्त्र छन्द शास्त्र है और उसकी अलग परम्परा है । संस्कृत के छन्दों का प्रयोग तमिळ में बिस्तृत नहीं होता । हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में प्रयुक्त छन्द तमिळ के छन्दों से बिस्तृत भिन्न हैं । अतः छन्दों के प्रकारों की दृष्टि से आळ्वार-काव्य और हिन्दी कृष्ण-काव्य में कोई साम्य नहीं है ।

यहाँ यह देखना अनुचित नहीं होगा कि आळ्वारों ने अपने काव्य में अपनी भाषा के छन्द-शास्त्र के नियमों का पालन करने में कहीं तक सफलता पायी है । इस प्रश्न में तमिळ-छन्दों की विकास परम्परा का बिस्तृत परिचय अपेक्षित नहीं है । अतएव संक्षेप में ही आळ्वार-काव्य में प्रयुक्त प्रमुख छन्दों का परिचय दिया जाता है ।

तमिळ छन्दों के विषय में यह सामान्य ज्ञान आवश्यक है कि तमिळ में तुक पद्य के प्रत्येक चरण के अन्त में न होकर प्रारम्भ में होती है । साधारणतः प्रत्येक चरण के प्रथम शब्द के द्वितीय अक्षर अथवा द्वितीय और तृतीय अक्षर में प्राद्य होने की आवश्यकता समझी जाती है । एक उदाहरण नीचे—

वैतनेय्युम काइन्त पालुम बरि तयिरुम नरु वैन्नीयुम

इत्तनेय्यु केरुरियेन एविरान । नी पिरस्त तन्नी

एत्तनय्युम वैय्येय्युम एतुम वैय्येन कत्तम्पटाने

मुत्तनेय पुक्कल वैडु मुक्कुरिन्नी मुत्तैयुचाये ।”

तमिळ के प्राचीन काव्य में चार प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है । वे हैं—
‘आसिरियप्पा’ ‘वैन्ना’ ‘वचिप्पा’ और ‘वसिप्पा’ । इसमें ‘आसिरियप्पा’ सबसे प्राचीन छन्द माना जाता है ।^१ आळ्वार-पूर्व काल के काव्य में (संस्कृत के काव्य में) विशेष रूप से ‘आसिरियप्पा’ का ही प्रयोग हुआ है । ‘वचिप्पा’ प्राचीन ‘आसिरियप्पा’ का ही विकसित रूप है । कसिप्पा प्राचीन वैन्ना का परिवर्धित रूप है ।^२ प्राचीन काव्य में ‘वैन्ना’ में दो से चार तक चरण होते थे । परन्तु बाद में वैन्ना में चार ही चरण रहे गये । प्रथम तीन आळ्वारों (वोयन आळ्वार, नूत्ताळ्वार और

1 *Advanced Studies in Tamil Prosody* (1943 Edition)

—Dr A Chidambaranatha Chettiar p. 57

2 *Ibid* p 90

पैदावार) की रचनाओं में केवल वेष्वा-सुन्द का ही प्रयोग हुआ है क्योंकि उनके समय तक काव्य जाळवारों के काव्य में प्रमुख कुछ छन्दों का आविर्भाव नहीं हुआ था। 'कसिप्पा सुन्द कासिरिक्का और वेष्वा के सम्मिश्रण से बना था। कसिप्पा के चार पैर हैं—

१—कोत्ताळिर्कसि

२—कसिवेष्वाट्टु

३—कोण्णक्कसि और

४—ऊरसकसि ।

तिरुनै जाळवार की दो रचनाएँ—'वैरिय तिरुमडल' और 'विरिय तिरुमडल' कसिवेष्वाट्टु' छन्द में रचित हैं ।

जाळवार-काल (पाँचवीं शती से नवीं शती तक का काल) में प्राचीन चार प्रकार के छन्दों (मासिरिक्का वेष्वा कसिप्पा और वीक्का) के अनेक पैर निकले । डा० ए० सी० वेदियार के अनुसार—तामिळी तुरै तिरुत्तम आदि छन्द-शेख निश्चित रूप से संस्कृत के बाद आये हैं^१ जिनका प्रयोग विशेष रूप से जाळवार-काव्य में हुआ है । तमिळ के प्राचीन चार छन्दों और उनके सेवों से मिलित अनेक नवीन छन्द जाळवार-काल में ही निकले । जाळवार-काव्य में प्रमुख विविध छन्द इस प्रकार हैं—मासिरिय तिरुत्तम कसिप्पाट्टिर् कसिविसेत्तुरै तन्नु कोण्णक्क वक्कसिप्पा कट्टुक्कसित्तुरै, कसि तिरुत्तम मासिरियत्तुरै मासिरिक्का, कसिवेष्वा, कसि तिरुत्तम वीक्कत्तुरै आदि हैं । इन छन्दों के असंग-व्यंग नियम हैं । जाळवार-काव्य में प्रमुख छन्दों की सूची मात्र देने से हमारा तात्पर्य केवल इतना ही है कि जाळवार-काव्य में छन्द वैविध्य है और उन्होंने अनेक नवीन छन्दों का भी प्रयोग किया है ।

जाळवार-काव्य में प्रमुख छन्दों की यह विशेषता है कि प्रत्येक पद्य के अन्तिम चरण का अन्तिम छन्द उसके बाद के पद्य का प्रथम शब्द बन जाता है । इस प्रणाली को 'अन्तादि' कहते हैं । यह प्रणाली पद्यों को एक शृङ्खला (Chain-arrangement) में बाँधती है । जाळवारों की प्रायः सभी रचनाओं में प्रारम्भ से अन्त तक छन्दों की यह 'अन्तादि-प्रणाली' होती या सफ़टी है । 'अन्तादि-प्रणाली' में काव्य रचना करना साधारण कवि का कार्य नहीं है । जाळवारों ने इस कठिन 'अन्तादि प्रणाली' का भी बड़ी सरसता से अपन काव्य में प्रयोग किया है । वह उनकी कविता-सक्ति की ओर संकेत करता है । जाळवार-काव्य से अन्तादि प्रणाली का एक उदाहरण नीजिए—

१ डा० ए० सी० वेदियार के अपने पुस्तक *Advanced Studies in Tamil Prosody* में वर्षाया विस्तार के साथ तमिळ-छन्दों की विकास-परम्परा का परिचय दिया है ।

‘नीयुम नायुम इत्तेनिकिन् मैल मद्रोर
नीयुम चार कोडान मेचने । चोमेन
तायुम तन्तयुमाय इयुनकिनिल
चायुम ईप्पन मयिबप्पन एत्तये ।’

× × ×

‘एत्तये । एम्पुम एयिदमान एम्पु म
चिस्तीपुळ ईप्पन चोम्पुवन पाबिपेन
एत्त । एम्पेस्मान । एम्पु चानवर
चिस्तीपुळ वेत्तु चोम्पुम वेस्वनेयि ।’

—विस्वामोळी १ १० ३ व ४

कुछ आठवारों ने विविध छन्दों में लोह-गीतों में प्रयुक्त शब्दावलिओं का भी प्रयोग किया है। लोह-गीतों के प्रभाव के कारण उनके पदों में ऐसे निरर्थक प्रयोग भी मिलते हैं जो केवल रोचकता में वृद्धि करने की दृष्टि से प्रयुक्त हुए हैं। (पेरियाळ्वार ने अपने अनेक पदों में प्रयुक्त विशिष्ट छन्दों के साथ एकाध अनावश्यक पंक्तियाँ जोड़ दी हैं।) इनके प्रयोग के साथ-साथ कुछ कवियों ने कहीं-कहीं छन्दों के नियमों की मर्यादा भंग की है। पर-रचना-परम्परा में और विशेषकर रामबद्ध रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोग सम्म माने जाते हैं। सारांश यह है कि आठवार-काव्य में छन्द-वैविध्य है और नहीं छन्द के नियमों का भंग हुआ है तो वह संगीतात्मकता की प्रचामता देने की दृष्टि में हुआ है।

हिन्दी कुरुष भक्ति काव्य में छन्दोयोजना

साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने छन्दों के नियमों की ओर ध्यान न देकर स्वतन्त्र रूप से पद रचना की है और उनकी रचनाओं में ये पदों का अनुपात ही अधिक है। इस विश्वास में आंशिक सत्य ही है। हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की छन्दोयोजना के दो रूप देखने को मिलते हैं—

१—प्रत्यक्ष छन्दोविधान और

२—वैय पदों में प्रयुक्त छन्दोविधान।

छन्दोविधान का येपर से निरय-सम्बन्ध है। प्रत्येक छन्द में उसकी यति-मति का सम्बन्ध जगमें प्राप्त कव विधान से होता है। इसलिये राग-रागिणियों में पद रचना करने हुए भी मूर यदि कवि छन्दों को छोड़ न सके। मूर ने अनेक छन्दों को राग-रागिणियों और तालों में बाँधकर नियोजित किया है। अठ मूरमागर में राग रागिणियों और टेक इत्यादि से पूर्ण रूप से मुक्त छन्दात्मक रचनाएँ प्रायः नहीं हैं। यह बात बबरय है कि वर्णनात्मक स्थलों में प्रयुक्त छन्द अपिबतर चौपाई चौपई कोहा और रोना है। इन छन्दों का प्रयाग भागवत प्रसंग में हुआ है। अन्य स्थलों पर उक्त छन्दों में तथा अन्य छन्दों के विधान में टेक—दे, री, हो, सति, इत्यादि के

प्रयोग राम और राम-वचन के द्वारा संजीवितमकता के समावेश के प्रति पूर्ण सचेष्टता बिसाई पड़ती है।

परमानन्ददास जी के छन्दोविधान में जमत्कार अपना हीर्ष वणों से युक्त सम्मी-सम्मी पंक्तियों का विधान नहीं है। उन्होंने अधिकतर छार और सरसी छन्दों का प्रयोग किया है। परमानन्ददास के अधिकतर पद टेक-युक्त हैं। टेकों की मात्रा में कोई निश्चित विधान नहीं है। नन्ददास ने भी छार की प्रति छन्द तथा पद—दोनों धर्मियों में सिखा है। अन्तर केवल इतना है कि छारछागर में पदों का अनुपात अधिक है और नन्ददास की रचनाओं में छन्द-वचन का। वर्णमात्रक स्मरणों में नन्ददास ने चौपाई छन्द का प्रयोग किया है। अठ 'मुदामा चरित' और गोबर्धन-सीमा' में केवल चौपाई छन्द का ही प्रयोग हुआ है। रास पंचाध्यायी' और विद्वान्त पंचाध्यायी' तथा 'वकिमणी मयस' में रोसा छन्द का प्रयोग हुआ है। भैरव-नीत' और 'व्याम सगाई' की रचना रोसा और बोहा छन्द के मिश्रित प्रयोग द्वारा हुई है।

भी हितहरिवंश द्वारा रचित स्फुट बाणी' में बोहा सर्वथा छन्द्य और कुञ्जलिया छन्दों का प्रयोग हुआ है। कवयित्री मीराबाई की रचनाओं में भी प्रायः वही छन्द प्रयुक्त हुए हैं जो अन्य मत्को की पदावलिओं में पाये हैं। इन छन्दों के प्रयोग में दोष भी कहीं-कहीं पाये हैं। परन्तु मात्राओं की संख्या तथा अन्य साम्यों के द्वारा अनेक छन्दों का अस्तित्व मीरा के काव्य में प्रमाणित किया जा सकता है। मीरा के काव्य में प्रयुक्त छन्द इस प्रकार हैं—छार छन्द सरसी छन्द बोहा विष्णु पद समान सर्वथा शोभन टाटक और कुञ्जल। इनमें छार छन्द का ही अधिक प्रयोग हुआ है। मीरा के जिन पदों में इस छन्द का प्रयोग हुआ है, उनमें कहीं-कहीं निरर्थक सम्बोधनों (रे री, जी ए माय हो माई—इत्यादि) के प्रयोग के कारण उन्हें संबोध कहा जा सकता है। परन्तु पदरचना-परम्परा में और विशेष कर रामवचन रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोग अस्मय नहीं माने जाते।

उपयुक्त विवेचन का सारांश यह है कि आळ्वार भक्त तथा मात्तोज्ञ कामीन हिन्दी कृष्ण भक्त कवि ने पदों की रचना करने पर भी छन्दों के नियमों के प्रति बगरूक रहे हैं और उन्होंने अपनी-अपनी माया के छन्द-शास्त्रीय नियमों का पालन अपनी कविता में किया है। अगर उन्होंने छन्द के नियमों का उल्लंघन किया है, तो वह संजीवितमकता की प्रवाणता देने की दृष्टि से ही है।

माया शैली

आळ्वारों के काव्य में प्रयुक्त माया आळ्वार भक्तों के समस्त पर साहित्यिक तमिळ माया में रचित है। आळ्वारों की माया की विशेषता यह है वह संस्कृत के उत्तम और उत्तम शब्दों से मिश्रित तमिळ माया है। तमिळ माया के क्रमिक विकास में आळ्वार भक्तों का बड़ा हाथ

रहा है। आळवारी भक्तों के पूर्व वर्षात् पाँचवी अष्टाब्दी के पूर्व क तमिळ-काव्य में जो भाषा प्रयुक्त थी वह शुद्ध तमिळ भाषा थी। उसमें संस्कृत भाषा क सम्बन्ध नहीं के बराबर है। आळवारी भक्तों के समय में ही संस्कृत भाषा के सम्बन्ध तमिळ में घुसे। चूँकि आळवारी भक्त संस्कृत के भी विद्वान् थे और वेद-मीमांसादि के ज्ञात थे अतः उन ग्रन्थों के सार को तमिळ भाषा के अपने पदों में अभिव्यक्ति देते समय अनायास ही संस्कृत सम्बन्ध उनकी तमिळ धोसी में प्रवेश कर गये। तमिळ-भाषा के स्वल्प भिन्नता की दृष्टि से आळवारीं का यह कार्य बड़ा महत्त्व रखता है। आळवारी भक्तों ने ही सर्वप्रथम वेद के साथ संस्कृत ग्रन्थों को अपनी भाषा में आने दिया। यह बात अचर्य है कि आळवारीं ने संस्कृत के कठिन शब्दों को न लेकर बहुत ही सरल और सरस शब्दों को लिया है। अभिप्रास शब्दों को तरसम रूप में प्रयुक्त न करके उन्हें 'तमिळीकृत' कर तत्सम रूप में ही प्रयुक्त किया है। आळवारीं की इस महान् सेवा से तमिळ भाषा का सम्बन्ध आम्हार विकसित हुआ। आळवारीं द्वारा प्रयुक्त तमिळीकृत मधुर संस्कृत शब्दों से तमिळ भाषा में एक नयी शक्ति का संचार हुआ। सरस और सरस संस्कृत शब्दों के प्रवेश से तमिळ भाषा में पहले की अपेक्षा अधिक प्रबलमानता और समीतात्मकता आयी।^१

दीप्ति की सुन्दरता और महत्ता उसके कलेवर, भाषा की समृद्धि पर निर्भर है। भाषा की समृद्धि की पहचान सम्बन्ध-आम्हार और शब्दार्थ-बहुमता से की जा सकती है। कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए चारों ओर से सम्बन्ध ग्रहण करता है और आवश्यक काट-छाँटकर उनका प्रयोग करता है। ऐसा करने से भाव-प्रकाशन सुन्दर हो जाता है।

आळवारी भक्तों के काव्य में प्रयुक्त शब्दों पर एक दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका शब्द-आम्हार पर्याप्त समृद्ध है। उनकी रचनाओं में विद्युत् तमिळ भाषा के शब्दों का ही अधिकाधिक प्रयोग है। अपने शब्द-आम्हार को विस्तृत करने के लिए उन्होंने संस्कृत के शब्दों का सहारा ग्रहण किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त संस्कृत शब्द भी बहुत सरस और मधुर हैं। संस्कृत शब्द अधिकतर तत्सम अथवा अर्ध-तरसम रूप में ही मिलते हैं।^२ रतुति अथवा सिद्धान्त-कवय के ग्रन्थों में तरसम

१ कम्बन काव्यम् — टी एम० बंदापुरी पिस्सु १० ११२ ११३

२ तमिळ लिपि में केवल ३१ अक्षर हैं जिनमें १२ स्वर और १९ व्यंजन हैं। स्वरों में तीन ऐसे हैं जो वैकल्पिक वर्णमाला में नहीं हैं पर प्राकृत परिवार की सभी भाषाओं में पाये जाते हैं। ये हैं ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' और व्यंज् । व्यंजनों में त छ ठ ड ढ न ज, ङ, ब ष ङ, घ ञ ण, स ह प्रादि अक्षर तमिळ वर्णमाला में नहीं हैं। शुद्ध तमिळ शब्दों में इन अक्षरों की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर वर्णमाला के बहुते अक्षर से ही काम लिया जाता है। तमिळ में तीन व्यंजन ऐसे हैं जो

संस्कृत भाषा में । अन्य स्वरों में तदन्त और अर्ध-तत्सम शब्द तमिळ शब्दों के साथ साथ मिलकर आये हैं ।

भाळवारी के द्वारा प्रयुक्त संस्कृत के तत्सम शब्द

वेरियाळवार—नमो नारायण धनमि मुनि मूर्ति नाम मीन मीन अम्बुसी
बरणी बंजन वेव केराव बरण मणि कुस बंक शदि
कनक गरक ।

धाव्याळ—नायक, मूर्ति नारायण अम्बर नाम योगस कमल गण
ईश मंगल देवादिदेव क्षेम कमल विमल ।

तिरुमळिय्य धाळवार—उरंग नीति कास आदि वेद मूर्ति पुण्डरीक कीर्ति मीन
योग नीति ।

कुनरोवरळवार—सुमल उमल मीनी मंगल मगर ।

तिरुमर्ग धाळवार—क्षेम आदि मूर्ति नाथ कमल अम्बर मुल उमल ।

मुलताळवार—पाणि मूमि गति कविगण ।

नम्माळवार—मूर्ति माया कीर्ति परम कवि अम्बर कारण पाद कमल ।

अर्ध-तत्सम शब्द

संस्कृत के शब्दों को तमिळ की ध्वनियों के अनुकूल बोलने के प्रयास के फल

स्वरूप भाळवार मछों में अनेक शब्दों को इतना समान रूप दिया है कि उनका मूल अर्थ कुछ ही मात्रा में छिप रह गया है । इन शब्दों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि अधिकतर ये शब्द-परिवर्तन उन शब्दों में किये गये हैं जिनका उच्चारण कठिन या अपवा शिगड़ी ध्वनि तमिळ की प्रकृति के अनुकूल नहीं पड़ती थी । भाळवारी की रचनाओं में संस्कृत से आये हुए शब्दों में अर्ध-तत्सम शब्द ही अधिक हैं ।

देवनागरी वर्णमाला में नहीं मिलते, ये हैं—रं छ घीर न । यद्यपि तमिळ में म क ड द न घसर नहीं हैं, तो भी ये ध्वनियाँ तमिळ में पायी जाती हैं । सम्भव है इन ध्वनियों का विकास संस्कृत के प्रभाव के परिणाम स्वरूप हो । तमिळ में इन ध्वनियों के लिए प्रत्यय घसर नहीं हैं । क च ट त प घसरों से ही इनका काम लिया जाता है । स्थान के अनुसार इनका उच्चारण बदलता है । क, छ ठ, न क घीर घ स ड न म घसर तमिळ में नहीं पाते । संस्कृत के तत्सम शब्दों में ही इनका प्रयोग होता है घीर लिखते समय क च त प से ही इन धराओं का काम लिया जाता है । तमिळ में घसरों को कमी के कारण संस्कृत या प्रायः भाषा के शब्दों को लिखने में कठिनाई उत्पन्न होती है । इस कारण प्रायः शब्दों के रूप बदल जाते हैं । संस्कृत शब्दों के रूप तमिळ में अधिकतर घीर मजुर बन जाते हैं घीर उनके उच्चारण की कठिनाई दूर हो जाती है । जैसे पत्र तमिळ में पत्तिरय्य घीर 'पात्र' 'वातिरय्य' बन जाते हैं ।

‘पात्र’ ‘वातिरय्य’ बन जाते हैं ।

पेरियाळ्वार—कंटम् (कंठ) उठरम् (उठर) चिन्तूरम् (चिन्तूर), मेकम् (मेक)
कीत्तम् (कीत्त) कुणम् (कुण), नकरम् (नगर) मारुम् (मार)
अन्तियम् (अन्त्य), नियत्तम् (नियत्त) सेवकम् (सेवक) कर्मम्
(कर्म) देवम् (देव) अचोटी (अचोडा), इन्तिरम् (इन्त)
भारम् (भार), चात्ति (चात्ति) चसम् (चस) पणम् (पण),
चिरीतरम् (चीवर), पर्यन्तापा (पर्यन्ताप), चिरम् (चिर)
अगियामम् (अग्याय) पुत्तकम् (पुत्तक) अलकारम् (अलकार)
पुळोत्तमम् (पुळोत्तम), भाचै (भाचा) चक्करपाणि
(चक्रपाणि) चकुन्तम् (चकुन्त) ।

आष्टाळ्वार—पचोटी (पचोडा) पिच्चै (पीच) उत्तमम् (उत्तम) मायम्
(मायायुक्त) मालै (मात्ता) माकुत्तम् (माकुत्त) तन्मम् (तन्म)
पाचम् (पाच) इन्तिरम् (इन्त) मन्तरम् (मन्त्र) यमुनै (यमुना) ।

कुत्तयेळ्वार—मन्तिचर (मनुष्य) मालै (मात्ता) पणम् (पण) अमन्त
(अमन्त) मायै (माया) तिचै (तिचा) मन्तिरम् (मन्त्र),
पात्तुक्कम् (पात्तुक्का) कर्मी (कर्मा) ।

तिक्कमळिगै आष्टाळ्वार—मायनै (मायायुक्त) कर्कै (कर्का) चोत्ति (चोत्ति) पोक्कम् (पोक्क)
अमन्त चयनम् (अमन्त चयन) पारम् (मार) उपायम् (उपाय),
मायै (माया) पाचम् (पाच) चयिर (चैर) कर्त्तै (कर्त्ता)
केत्तम् (केत्त) ।

तिक्कमै आष्टाळ्वार—नामम् (नाम) पणम् (पण) पाचम् (पाच) भाचै (भाचा)
इन्तिरम् (इन्त) पुळोत्तमम् (पुळोत्तम) बहरी (बहरी) ।

अम्माळ्वार—इराक्कम् (राग) अम्माळ्वारम् (अम्मा-अम्माळ्वार) चरगुम्
(चरण) तिचै (तिचा) चरम् (चर) चरा-चरम् (चराचर) ।

तन्मव दाम्ब

संस्कृत से आये हुए शब्द तन्मव रूप में ही आठवारों की रचनाओं में अधिक
मिलते हैं। कुछ-कुछ संस्कृत शब्दों के रूप इतने बदल गये हैं कि उनकी पहचान तब
कठिन हो गयी है। ये शब्द संस्कृत से आते हुए भी तमिळ की निजी सम्पत्ति
हो गये हैं।

पेरियाळ्वार—इराक्कम् (राग) इरुट्टिकेचन (इरुट्टिकेचन) चिदुच्चित्तम्
(चिदुच्चित्त) चण्णम् (चण्ण) चिक्कम् (चिक्क) तुत्ताय
(तुत्ताय) चिरीत्तम् (चीवर) मुत्तु (मुत्तु) चरारम् (चर),
पर्यन्तम् (पर्यन्त) उमक्कम् (उमक्क) चत्तिरम् (चत्ति), कर्त्तम्
(कर्त्त) तिच (ती) चोत्तम् (चोत्त) अलकारम् (अलकार)
अरक्कम् (राग) पन्नु (गाय) पत्तर (पत्त) पायी (पायी)

के निर्माण में सबसे अधिक योग अनुकरणात्मक शब्दों का रहा है। बिनके द्वारा इन कवियों ने विभिन्न स्थितियों और भावनाओं के चित्र खींचे हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ अनुरणात्मक शब्द इस प्रकार हैं—बसारा पिलार, कल-कल बसन बसन चोट्टु चोट्टना तुळि तुळिक्क किमु किमु वैन्दु कल-कलप्प।

आलोच्यकामीन हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की भाषा

आलोच्यकामीन सभी हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। ब्रजभाषा के विकास तथा रूप-निर्माण में हमारे आलोच्य कवियों का विशेष हाथ रहा है। १६ वीं शती के पहले ब्रजभाषा में साहित्य-रचना विशेष कृद्य नहीं हुई थी। गुरदास जी ने पहले-पहल ब्रजभाषा को काव्य की उपयुक्त भाषा बना दिया। गुर ने ब्रज की बोली को साहित्यिक रूप प्रदान किया। आलोच्य कवियों ने साधारण भाषा का गरिमा प्रदान करने के लिए संस्कृत के शब्दों का सहारा लिया। बोली को संभारने के लिये तत्सम शब्दों को काट छांटकर प्रतिपाद्य के अनुकूल मसूख और नोमस बनाया तथा विदेशी शब्दों को अपनी ध्वनिबो में ढालकर उनके प्रयोग के द्वारा भाषा को व्यापकता प्रदान की। तत्सम शब्दों का प्रयोग इन कवियों ने अधिकतर व्याख्यात्मक तथा कल्पना-प्रधान अप्रस्तुत यावनामो के चमत्कारवादी स्थलों में किया है। सीता-प्रधान अनुमुत्थात्मक और बिबरणात्मक स्थलों में तत्सम शब्दों का प्राचाम्य है और विदेशी शब्दों का पुट प्रायः सर्वत्र विद्यमान है। किन्तु उन पर ब्रजभाषा का रंग इस प्रकार बहाया गया है कि इनका विदेशीपन प्रायः बिस्मृत छिप्त गया।

आलोच्य हिन्दी कृष्ण-काव्य में प्रयुक्त तत्सम शब्द

गुरदास—अङ्घ्रिपति अङ्गीकार अम्बुज अधिलाप आमिष आयुध अपरिमित अजिर अधिराम आबिर्भाव इन्दोबर, कामिमा कामना-कानन कमीनिका जसज कसबर नासिका तनया कुन्तल कमल-दल लोचन कमल नारिकेल दार कोबिब धपपति कौतुक रम्पति निरालम्ब मुकुसित समर, सरणिज मनोरथ प्रतीति पद्म पठित पावन राका परिवेष आदि।

परमानन्ददास—अलत अनुपम अमिठ अलङ्कृत इक्षुबण्ड इक्ष्मीलमनि उज्ज्वलित उत्थापन उपरेश लसग उपहार कुन्तल गोरज उपलसल कुसुमायुध बुझित महाकाव्य बहाल परिवर्माण महोत्सव विद्यमासन विषद नृमि आदि।

नन्ददास—तन्त्र कंचन इन्दु राश्रीव चिबुक-नूप ज्योतिष प्रणिमा प्रेम-पद्धति विषमता पृति अमेरेन्द्रकृष्ण पुमकिन आसक्ति कर्म क्रिया भीमो लसदल तिमिरघसित उज्ज्वल निपात मन्त्रिबलानन्द आधत आदि।

हितहरिदास—मैत्रुल वलकृज जलज करोन सनिन मट कुटिल भकुटि शिथिल मति वनक बैस ठमाल ठब कलकलता परिवर्मान विचलन घायन

शिरीशकृत प्रबोधित भस्मपीत नख कुङ्कुम अनुपम मनुपम मूल
मृदुल पुलकित शासामुग श्रीकम उरज निविड निकुञ्ज विहग
शीघ्र किरौट इत्यादि ।

अर्ध-तत्सम शब्द

संस्कृत के शब्दों को ब्रजभाषा की ध्वनियों के अनुकूल बोलने के कारण आसौख्य कवियों ने अनेक शब्दों को ऐसा नया रूप दिया कि उनका मूल अर्थ कुछ भाषा में ही छिप रह सका । उच्चारण की कठिनाई मूल शब्द की ध्वनि की कर्षणता और कठोरता को दूर करने के लिए ऐसे परिवर्तन किये गये हैं । उन कवियों ने कण कट्टु शब्दों को मधुर और कठिन शब्दों को सरस बना दिया है । इन कवियों के हाथों में आकर संस्कृत के शब्द ब्रजभाषा के शब्द बन गये । ऐसे शब्दों को अर्ध-तत्सम शब्द कह सकते हैं ।

सूरदास—अपजस अजित संसुमान भारत कसेस कृष्णा गनिका कुरमाधा
परवीति पधुम प्रापठ लहुल पारपव तूपीर नितै बिस्वाम
बिरज निगुहार मरजाह, सुमृति स्वारस सजन स्नात सरवस
मरकट छाति इत्यादि ।

परमात्मदास—सहस्र स्वाम, सर्वसु, अखिचैठी पुरक सुम पदम भयत, बग्न भंज
महात्म असीत बिभ्वामनि मरजाह परमात्म प्रापठ सनेह इत्यादि ।

नन्ददास—बरम सरवर स्मृती पस मुरछि, अविधम निभन अवर्णा सरव
जोति सहस्र बाठमायम गुहार मच्छ इत्यादि ।

शिवहरिदास—पूत पुनि विषमि असप पाठ जकति समें बिभोकि परसत
बीति दोति पिय जग ससन मीठ लौडत अक्षिप नसन
इत्यादि ।

तद्भव शब्द

आसौख्य हिन्दी कवियों की भाषा में तद्भव शब्दों की बहुलता है । प्रतिपाद के कुछ अंशों को छोड़कर प्रायः अधिकतर पदों में व्यावहारिक भाषा का ही प्रयोग किया गया है । तद्भव शब्दों से सात्यर्य उन शब्दों से हैं जो मूलतः संस्कृत में के परन्तु समय के साथ अनेक परिवर्तनों के कारण हिन्दी की अपनी निजी सम्पत्ति हो गये हैं ।

सूरदास—औसर उर्ध्व काठ कापच कोलि अमपाई कोह, अपमने बनत
बलियारे ओदे काम्ह, बनैवे सजन बिछारि, निहुलाई पांवरी
परसना जिसम लज्जा लपलुर छियार, सँबरो मीठ सजनी
राकस सीहै, सुरति सरिस मोल मूठे सराय बियाहन बनिज
पुवाई परनी जग्ग इत्यादि ।

परमानन्ददास—जकाब भसाय बनत बमरत बभरगति, इच्छा उद्यम उगमर
बहुस कुनित बोध पूत ब्योति बतरस महोच्छ्वस, तबोर पात
पाटी बसन बादी रिस, सवार इत्यादि ।

नन्ददास—बरमत बच्छर पसान बकास करनिका मांक्षिम बतन सारो
परमान सुनार्, लच्छ, हुनही मूरति मांक्ष, बजमारे जोवन नाइक
देस पटिती बुठ बंतरजामी मुमिरन इत्यादि ।

हिरहरिदास—जकति समै फटक, कुकति नामे छपति परसत व्यापत बोति
पिय श्रीबत कितपत जोसर, पंजर हुतासन अनियास उह्मि,
संजमन बसन बचरा बिलोकि भुवग, आरतिबचन मुनभ इत्यादि ।

देसज शब्द

जय प्रान्त में अधिकतर रहने के कारण आसोध्य हिन्दी कवियों के काव्य में
भोर-व्यवहार के बहुसंख्यक शब्द उपलब्ध होते हैं । उनमें अनेक शब्द ऐसे हैं जिनकी
व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों से नहीं सिद्ध होती अतः उन्हें 'देशज' की संज्ञा दी गयी है ।
ऐसे कुछ शब्द हमने नीचे दीर्घ पर नीचे देते हैं —

सूरदास—बसात आरोगत बाडी बुनुस भ्मा मारी, नीसी मरजी केफरी
बगदाइ खरिक छाक बाहर, बारी लठबांघी, गिटोल गोहन,
गोशों लाही ।

परमानन्ददास—बिहास बिनुका राठी अरोगत हुसातें जनेरो बबाई सराहनी
सबकन एतो बोट जोसर, होड़ाहोड़ी छाक जेबरी भूमकरा
नाम पुरई मनुहार लरिका हटरी हबठबा इत्यादि ।

नन्ददास—बटसार, पूनेन चुबाई छीनी मुसकि ठकुराइट पटबिजना बहकि
नकबानी होइनि बरगाइ, सगहन, बटपटी छिस्सर बजमारे,
मुसकि भलमलतारी, मुडा-मुडी" इत्यादि ।

विदेशी शब्द

राजनीतिक सामाजिक आदि परिस्थितियों के अनुरोध से आसोध्य हिन्दी
कवियों के समय में अनेक अरबी फ़ारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों का जन
साधारण में प्रचार हो गया था । आसोध्य कवियों ने इस प्रकार के शब्दों को
स्वतन्त्रतापूर्वक ग्रहण किया है । परन्तु अपनी भाषा की ध्वनियों के अनुसार समुचित
परिवर्तन रूप में उनका प्रयोग किया है ।

सूरदास—बरबाल लाक जहाज सिरठाज जोवन नकीन स्नहा तरबारि,
यबाग सहनाई सम्भूक, लसम सहूर साबिन बीज महग
करपात सायक अपसोस हुनर, बजार रिबानी इत्यादि ।

परमानन्ददास—जागूम बगा दफनर बहन सामक सहनाई गोर, सेहरा महग
सोदा मीदान यहक मौज मबासी बीबान जंगी निरनाज बला
बेहास इत्यादि ।

हरिबात—सुमार, मिसार, सतरंज पिबावे, अस्तपार, फरबी पिवर इत्यादि ।

मुहावरे और लोकोत्थियाँ

लोक प्रचलित भाषा में लोक के बहलित अनुभव वाक्यों और वाक्यांशों के रूप में संचित होते रहते हैं जिन्हें 'लोकोत्थियाँ' और 'मुहावरे' कहते हैं । इनमें साक्षरलक्षता अर्थ-योग्यता अविषय और भाविकता के साथ सरलता का अद्विष्ट योग रहता है । भाषा को प्रीकृत प्रभाव करने में मुहावरे और लोकोत्थियों का बड़ा हाथ है । यदि इन सीधी और सरल उक्तियों में मानव समाज का चिरकाल का अनुभव संचित है और इनका आधार मनोवैज्ञानिक है अथ वे देश और काल की सीमा से परे हैं और मानव-मान के हृदय को स्पर्श करने की शक्ति रखती हैं । आलवार शब्दों के तथा आलोच्य हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में मुहावरे और लोकोत्थियों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है ।

आलवार-काव्य में मुहावरे

१—आकाश को गुंजायमान करना ।^१ (बोर से रोना)

२—कुन्ही पर हम-नी का रस बासना ।^२ (बेचना पर बेचना देना)

३—छिपकसी की तरह पकड़ना ।^३

४—बस महीने देठ में लिपे फिरने के कारण ।^४ (मातृत्व के कारण)

५—कसौटी पर सोने को कसने के समान ।^५

६—गाड़ी के पीछे जमते जमते गाड़ी पर चढ़ना ।^६ (पोड़ा-बोड़ा करके बहुत सेना)

७—माथा का स्मरण कर रोने वाले बच्चे के समान ।^७

८—बच्चे के हाथ के कटोरे की तरह ।^८

९—बो पायक नहीं है, जयक माने के समान ।^९

१०—नदी के किनारे लगे वेड़ के समान ।^{१०}

१ बिजौस्तान कैदक घल्लतल—देरियल्लवार तिसमोली १ १ ६

२ मुनिबल मुळि पैशतल नील—बही २-६ ६

३ पल्लिनुष पदुल—बही, ३ ४ ९

४ बलिबलिबल बलिबलि लोच पालिमार—३-२-८

५ पोली कोणु उरैकल मैस उरैतापोळ—देरियल्लवार तिसमोली ३ ४ ५

६ बरिबळि पिल मुकुनु बही पदु, म घल्लतल—माणिबवार तिसमोली ६ १

७ घल्ल बिनील्लुस मुळुनी नील—देरियल्ल तिसमोली ५ ४

८ पिल्लि लीमिल बिमम दीनक देवुबनु—देरिय तिसमोली १०-६ १

९ बातातार पादु—बही ११-४-४

१० पादु करै बाळ बरम नील—बही, १-४-१

- ११—साँप के साँप एक ही स्थान में रहने के समान ।^१
- १२—दोनों तरफ से बाग के बीच में पड़ी चिड़ई के समान ।^२
- १३—पानी से बिरे यीदड़ के समान ।^३
- १४—बढ़रिये की पेंची सकड़ी के समान ।^४
- १५—बरम किये हुए लोहे पर पड़ी पानी की बुँदों के समान ।^५
- १६—पूँये का देखा हुआ स्वप्न ।^६
- १७—बूब में बी के समान ।^७
- १८—अपने स्वामी के सामने अपनी पूँख को हिलाने वाले कुत्त के समान ।^८

आसौख्य हिन्दी कृष्ण-काव्य में मुहावरे

सूरदास—एक डार के सोरे निपट बई को लोवा महमानी बछु साते पयन
कूप लनि बोरे ठैरी कछो पवन को मुस भयी, बरसति माँझी भूम
के हाथी मूढ़ बडाई पूँये गुर की बछा, मोस लियो बिन मोस
एक बास की बीस बनाई बाडे बिन के मीत छाति-पाति छपटना
बर के चोर टीका न सगना तिमका लोइकर डाकना मैन सगना
नाच नचाना, इतनी कहा बाँठि की लागत” इत्यादि ।

परमानन्ददास—बिन मोस बिकाऊँ, नैन छिराऊँ, नैननि के बासे सागत है कसु
बाई ठमोरी भेसी चित बेरि सछो सागति नछो पसक जर
आमन्ध ब समाई, बाँझि रिसाई कौन मन राखि सकेरी पर बेठे
निचि पाई, रार बडाई कुँने छिरत कुसबीपक ह्य बिकानी फूँकि
फूँकि हौ पाइ परत सोबत सिंह जगायो चन्द्र लज्जा है पूँये मन
के काम इत्यादि ।

नन्ददास—छिर पुनहीं हिय मीन सपाबी पचि मरे, कुचित बास मुल काढि
करत नचबानी बनि रह्यो बान ठकी समि जाइ बाँठि की कोइई
जान की जाँझनि देखा, छरबसु लियो चुपड़ लोम की नाच ये ठैरे
बाबा की हौ बेटी भई री लाख बात की एक कही री प्रेम को
मारम मूबो इम्तिन के मारे हीछ जाने काँच इत्यादि ।

- १ “पापोजु घोच कूरयिस पायिम्यार मोर—वही ११-८ १
- २ इरपाहेरी कौन्निपिमुळ एक्क्यु पोत—वही ११-८ ४
- ३ वेल्ळातिट्टै यदु त्रिरिदिनम पोत—वही ११-८ ५
- ४ इरपन एरमि बरत्ते घोत्तल—वही ११-८ ६
- ५ इरमुण्ड नीर पोत—तिरुमंगै बाळवार
- ६ इन्ननार कण्ड कनकुपोत—तिरुमंगै बाळवार
- ७ पालिमुन नेय पोत—नम्माळवार (तिरुवायमोळी ८ १-७)
- ८ नाय वूळ बाताल वूळ निरुन्नुपोत—(तिरुवायमोळी १ ४ १)

रसज्ञान—मोस मयो मैलियाम को हियरा सठ हक हई फटि गयो है, सुहार
हरयो मूह बहूँ निन काज कमीडी बाबे स्नेह की बोडी हाटहि
हाट बिके हो वे गयो मावटी भाविरिया बिय बयरयो जन्वा
हाबिनि छिपाइयो घाँठि परैयो— 'हरयावि ।

मीरा—सारा गिन-गिन रीण बिहामी मलजब के मरजी मारी में मिस बाधी
सोक लाब छिनका ब्यूँ तौरयो मुख मोर्यो लई सीस बझाय बँर
बिवाएयो बट के पट छोस दिसे हैं मावन लामो तो बूँबट कँचो,
छाड़ी पंच निहाऊँ ससकि रहे, बतियाँ कहत बनाम बात बनावत
नेकी बदी हैं छिर पर जारी 'हरयावि ।

आसवार-काव्य में लोकोक्तियाँ

- १—बीऊँ वासस्य-मुख क्या जाने ?
- २—इसको काम देने के लिए इसकी माँ ने कितनी तपस्या की थी ?
- ३—पड़ोस के लोगों से बैर ठीक नहीं ?
- ४—मुझसे (बुल बिधेय) पर शहर कैसे ? (अवस्थान कार्य)
- ५—सुर्गों उपरि जगह के लिए क्या करे ?
- ६—मीम के वृक्ष के कोड़े मीम के बिना और कुछ का नहीं सकते ।
- ७—जपने बछड़े को हर गाय जानती है ।
- ८—ऐसा कोई बछड़ा नहीं जो अपनी माता (गाम) को नहीं जानता हो ।
- ९—जगह से बर्तन करना समबाद के ब्रह्म करने के समान है ।
- १०—गधे के जघरो के हिलने को देखने से क्या ?
- ११—भिरुमी की बोली का फल परम्परा से माना जाता है ।

- १ मकख बरल मरम एम बरिबल—पेरियाळवार (विबमोळी १४४)
- २ एम मोयु वेदालो इबलं वेदु बयिबईयाळ—बही २२६।
- ३ बरकिनिस्तार मलियाम मेहनल मियाममो ?—बही २-२३
- ४ मुमिनेमुल मुब कंयिल लेता ? विबमंसी माळवार, १०-२२
- ५ कोळी बैय मुद्वेकु एम सेइवतु—विबमंसी माळवार (पेरिय विबमोळी)
१०-२७
- ६ बेमियल मुयु बेम्यदी जम्मातु—परिय विबमोळी ११-५७
- ७ ताय तमैयरियाळ कन्दिस्ने—विबमंसी माळवार ।
- ८ तन कन्नु तापुम घरियुम—विबमंसी माळवार ।
- ९ सिचुडं ममरे काबिन तिबनालेकपापल—विबमामोळी ४४-८
- १० कळ त जतटाटकपु एम पयल—बही ४६-७
- ११ पमिमिल बोस्तोतु बोस्तं कोस्वर पपु टोद्वे—बही

दूसरी ओर उससे बातावरण की सृष्टि भी । हमारे कवियों के काव्य में सम्बोधनकारों की अपेक्षा अवलोकनकार ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं ।

सम्बोधनकार

सम्बोधनकार के अनेक सुन्दर उदाहरण आठवारों के ओर आलोच्य हिन्दी कवियों के काव्य में मिलते हैं । पहले आठवार-काव्य से कुछ सम्बोधनकार नमूने के तौर पर नीचे प्रस्तुत करते हैं ।

अनुप्रास—

त्रिस्मिन्त्रिंशौ आठवार के निम्नलिखित पदों में अनुप्रास की छटा दृष्टव्य है —

‘आदिपान बानबकु म अष्टपाय अप्परत
आदिपान बानबकु म आदिपान धावि आदि नी
आदिपान बान बावर अन्त कालन नी उरैली
आदिपान कालन निर्म बावर काब बसरे ।’^१

“तन्मुक्तं तिरत सुम तरप वेष्टकंदल
तन्मुक्त तिरिछेडुन्नु घटकुकिम् तन्मौल
निन्मुनेई पिरितिरन्नु निबंनुम तिरिपनुम
निन्मुक्तं घटकुकिम् नीमै निम कप निमते ।”^२

त्रिस्मिन्त्रिंशौ आठवार की निम्नलिखित पंक्तियों में अनुप्रास की छटा देखिए—

‘नामनाम पासम बिहनु गलेरी नोक्कनुरित्त
बसम्मन्नु तन्मुक्तपमान बहरी बन्नुमुने”^३
एन्नाई एन्पिरत्त पुक्किनाई
कन्नाई कन्वर कन्नु कोप्पेन”^४

‘कन्नुयिन्नुम माप्पोन कळत्तिचे काप्पबु
कन्पक्कम बंदिनैकळ पन्नाडुम बैक्कत्तु”^५ (वृत्तानुप्रास)

—कुनघिसर

“पुक्कन्नोम पळिप्पोम पुक्कळीम पळिप्पीम
इक्कन्नोम मळिप्पीम, मळिप्पीम इक्कळीम”^६ —नम्माळवार

१ त्रिस्मिन्त्रिंशौ विद्वत्तम ८

२ बहरी १०

३ वैरिय—त्रिस्मिन्त्रिंशौ १३-८

४ बहरी, २-६-८ ।

५ वेदना—त्रिस्मिन्त्रिंशौ ४४

६ वैरिय—त्रिस्मिन्त्रिंशौ, २

भीष्मा—

“इच्छितोऽस्म इच्छितोऽस्म जयन्तं श्रेष्ठम्,
शौक्ष्मि नाम्मरं धर्मतुम तांस्तु तावत्”^१

पलपलवे धामरक देवम पलपलवे
पलपलवे शोति बहिवु पण्डु एमित^२

(बाळवार-काव्य में प्रथम श्लोक का बहुत कम प्रयोग हुआ है ।)
श्री कृष्ण-काव्य में सम्भाव्यकार
रास—

(अ) ‘इयमि इयमम वयमि शोतत बुरि बुरर धन
जसत मय, पय जाति वंजनि परतपर किलकात’

× × ×
(आ) ‘पुनत कवना बीन उठे हरि बत देन,
नैनकी सैन गिरि तन निहारयो’

× × ×
(इ) ‘गोपी-पार्श्व-माल-पीसुत सब दुख बिसरपी सुख करत समाज ।’

× × ×
(ई) बिलसत विपिन बिलास बिबिध वर वारिज बदन बिलस सपुपाये ।”

(अ) कहीं मुकद बी बलम करन
अमल कमल हू ते कोमल कमलित हुरन ।’
—गूरदास

× × ×
(आ) “तरि तनया तब बंसीत नित्य कृष्णान् बीजिन बहायी ।”

× × ×
(इ) ‘बंशक अपन कोर बिलासनि कवा व परति कही ।’

—परमानन्ददास
तस महेस शिवैत महेस गुरैसहु जाहि निरन्तर ध्यावै ।

(अ) जाहि अनादि अमल सखण्ड अक्षेद अमेव मुनेद बतावै । —रमकान
अगर अगर तब नगर उड़ी नम गुडी बनी छवि’

× × ×
(आ) तब बकिमि की कायर नागर वैह नबीनी
बलमधोर त छोरि बिप्र भीयर कर बीनी ।” —नन्ददास

पीप्ता—

(घ) 'परम सौकु बड़ावत मातनि रबकि रबकि बैउत बनि सौर'

× × ×

(ग) "कुहि कुहि स्यावत बीरी रीपूमा" —परमानन्ददास

(घ) "सैय बीन व्याकुल मया मुनि सिब सिब बाबी हो ।"

× × ×

(घा) "राम नाम रस पीबै मगघा राम नाम रस पीबै" —मीरा

यमक—

'यहमनि धारंभ एक मझारि

घातुहि सारंग नाम कहुरै, सारंग बरनी मारि ।

तारै एक छबीलो सारंग अर्थ सारंग उम्हारि

अर्थ सारंग करि सकतह सारंग अप्य सारंग बिचारि ।

तापर सारंग सुत घोमित है, छाबी सारंग सम्भारि ।

'सूरदास' प्रभु प्रभुह सारंग बनी छबीली मारि ।' —सूरदास

"तिल नर सैय तजत नहूँ निबजत नाम करत मनमोहन बस को ।

तिल तिल मोय मन मावत परमानन्द मुक्त नै बह रस को ।"

—परमानन्ददास

श्लेष—

'ज्यो नत्र जानि घत हरि तुमसो बात बिचारि सबी ।'

('हरि' शब्द का अर्थ 'कृष्ण' और 'सिंह' है) —सूरदास

"ह्यतो कोऊ हरि की भाँति बजावत बीरी" —परमानन्ददास

अर्थात्सूत्र

अर्थ को अलङ्कृत करने में कवियों ने साहस्य-मूलक अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग किया है, विशेष रूप से उपमा उल्लेख और व्यङ्ग्य का । इन अलंकारों में जो अलङ्कृत मोक्षना की गई है, वह परम्परागत कमल बाद्र मीम आदि उपमानों से संपृक्त है । साथ ही साथ इसमें कविना द्वारा स्वप्रामाण्य साहस्य को व्यक्त करने वाले अभिनव उपमानों का भी सम्मेलन मोग है ।

आठवार-काव्य तथा आसौष्य हिन्दी कृष्ण-काव्य में प्रमुख चार प्रमुख अलंकारों के कुछ उदाहरण नीचे देते हैं :—

अलङ्कार-काव्य में

उपमा—१ अंधन बीच जलित मोती और रत्न के समान मोहन के पैरों की उँवनियाँ घोमित बी ।^१

१ 'मुक्त म मकिपुत्र तत्प्राप्तित् तले पैदावेल्ल

पत्तुविरलुन मयिबन्धन पारवकळ"

—पेरिमान्दवार तिरमोळी, १-२ १

२—कमल-पत्र पर पड़ी बोस की बूँदों के समान मोहन के मुख पर पसीने की बूँदें बसक रही हैं ।^१

३—सूरज की फिरछों पर निर्भर रहने वाले कमल के समान झूठ होकर छोड़ दिये जाने पर भी मत्ता पर आश्रित रहने वाले बच्चे के समान, शम्भु कोई सहाय नहीं पाकर फिर-फिर बहाव के छम्मे पर आने वाले पत्नी के समान मैं भी (हि धपबाद् !) आप पर ही आश्रित हूँ ।^२

(मासोपमा)

४—मधुरों द्वारा खाये जाने के बाद रहने वाले विमोचन (कृत विधेय) के समान मेरा खरीर हो गया है ।^३

हिन्दी कृष्ण-काव्य में (उपमा)

१ 'बिलो मावो की मिठाई

भाई कसि कलक कलाई छी रे निज यपे दपाई ।'

—सूरदास

२ "अकुटि बिदुट मयन मति बबल । यह छवि पर उपमा इक भावत ।

मनुष बैसि बबल भ्रमि उरपत । नाहि सकत उठिबे प्रकुलावत ।"

—सूरदास

३ "धन-धन लाड़िली के बरन ।

भलि ही मुसुम सुमय सीतल कमल के से बरन ।"

—परमानन्ददास

४ "लै बसे नागर नमबर नवल तिमा बौं ऐसे ।

माखिल माखिल बुरि-बुरि मधुहा मधु बैसे ।"

—नन्ददास

५ 'लास मरकत मणि छबीसी तुम कु कचन पात'

'भीकन उरज कचन सौ बैही, कठि केहरि गुलसिनु सकोरी ।

बैनी मुखंय कनकन बरनी, कबलि अप बलवर पति चौरी ।"

—द्विहृदयचर

६ "पानां ह्यु बीती पड़ी रे,

बल दिन कबल कन्द दिन रजनी के बिम बीबन बाप ।"

—मीरा

१ 'अकमलप्योत्तरतिल अजिकोळ मुत्तम चित्तितारपोल

बैकवत मुपम् नियर्प्य—"

—पेरियाडवार तिरमोळी, २ २-६

२ "अरिचिन्तात ईष्ट तम अकट्टिकिमुम मद्रवळतम

अळठ निमैसवळुम कुळवियतु पोल

एङ्कुन पोम करै कावळु एरिक्कल बाप मीम्बेटुम

बकतिल कूम्बेयम मात्परबै बोम्बेबै"

—पेरियाड तिरमोळी २ १ व २

३ उर्नकुष्ट त्रिळाकनि पोल उळ मैलियण्णुकुम्बु ।—नाम्बियार तिरमोळी, ८ ६

उत्प्रेक्षा

आठवार-काव्य में (उत्प्रेक्षा)

- १ उत्तकी बुँवरानी काबी सटें उनके प्रवाल सम हीछें पर लप-लपकर
जलप हो रही हैं मानों लाल कमल का नकु-पान करने वाले मीरि हों ।^१
- २ बालस के बेत में उये बीये हुआ के भौंभौं से इस प्रकार हिस रहे हैं,
मानों व बेत में जो पानी में तैरने वाले हूँघों के लिए बामर बला
रहे हों ।^२
- ३ बिरहिली नाविका की आँखों से जमुबारा तमों के बीच से बह रही है
मानों दो परबतों के बीच कोई छरिता बह रही हो ।^३
- ४ परबत की निम्हरछी दूर से इस प्रकार दीख पकटी है मानों बबल बणें
की धवा हुआ में उड़ रही हो ।^४
- ५ कम्प के मुरसी-नाह सुनकर पशुमण ऐसे पड़े के मानों नीतामृद-बाल में
छेस लगे हों ।^५

हिन्दी कृष्ण-काव्य में (उत्प्रेक्षा)

- १ “एतल बसित बस सुमय पाँवरी मुरुर ध्वनि कल परल रत्ताल ।
मामहँ बरल कमल दल लोनी निकरहि बँडे बालमराल ॥”
- २ ‘देसरि धाढ़ लिलाल हो बिच तेंदुर की बिनु ।
बक लखे ता मैन मृच कनु बैठी रब इन्नु ॥ —सूरदास
- ३ ‘नबला निकसि लीर जब नीर चुबत बर नीर ।
अनुबन रोवत बसन अनु तन सिङ्गरन की नीर ॥” —नाददास
- ४ ‘अरुन मगर कल मङ्गुर मुरलिका लैलिय बंरन लिखत लिखाई ।
बनो ब्रितिया बिन बरित बरबसति बिकसि बलब में बैत लिखाई ॥”
—परमानन्ददास

- १ ‘बैकमलपुविल तैनुन्नुम बन्देरील
बैकिकळ कणु बल पवळ बाय मोइण्’ —परियाज्वार तिरमोळी १-८-२
- २ ‘बायामालररिग्वत्तमलिलियल पेईबाकुप
इलितमर बैलैज्वार कवरियनुल बीचू ॥” —पेरिय तिरमोळी ३ १-७
- ३ ‘जल मादर निज्वाय कर्नल पुमगपी
मुलै मलै मेल निङ्गु व बायकळाय मलैकळमनीर ॥” —तिरुविक्कतम ३२
- ४ ‘बिलकलितुुरिचि मेल निङ्गु बिजुम्बिल
बेरुन्किर कौवियेन बिरिगु बलपुव जलि नीर कळी ॥”
—पेरिय तिरमोळी, १ ४ ३
- ५ पेरियज्वार—तिरमोळी ३ ३-९

- २ "धंस-वत बाहु ई कि जोर-जोर बन राति,
मनो तमान धरति रही सरस कमल बेति ॥" —हितहरिबंध
रूपक

आठवार-काव्य में (रूपक)

- १ "विजली-ज्वाला सेकर बज-ज्वालि निकलत कर मेघ-रज पर श्योम-बीबी में
बहु बाया ।"^१
- २ "बांसुओं के सरोवर में मीन स्त्री नेत्र तड़प रहे हैं ।"^२
- ३ "भ्रिबों की प्रकृति स्त्री भद्रप से नेत्र स्त्री बाण पुष्पों के हृदय पर
सपटे हैं ।"^३
- ४ "एक मनजाम बायन्तुक बाया मेरी हरिली को से मया ।"^४
- ५ "नेत्र स्त्री बाणों से जड़ने (मायिक मे) मुझे बायन कर दिया ।"^५

हिन्दी कृष्ण-काव्य में (रूपक)

- १ "धन में बाधो बहुत योपान ।
काम जोब को पहिरि बोलना कंड विषय की भात ।
महामोह को नेपूर बाजत भिन्ना दण्ड रत्तात ।
भरम भये मन भयो पखायज चलत कुसगत धात । —मुरदास
- २ "भाष्य कू नैक हटकी गाइ ।
निद्रि बाजर यह नरमलि इत जत भगह गही नहि जाइ ।
कृपित बहुत धयात नाहीं निमन इम बल छाइ ।" —मुरदास
- ३ लोहै लोह मुहाबनो दिन बूझै तरे ।
मखि मोक्षित को सेहरा लोहै बसियो मन मेरे ॥
मुख पुष्पो का जगवा है मुकहत तारे ।
जन्के नयन बजोर है तब हैदम हारे ॥"

- १ 'एकिल कोष्टु मिष्णु कोडि एडुत्त बेकत्त
तोष्टिन कोष्टु ताम मुळिक कोष्टु म ।" —मूद्राम विस्मयानि, ८९
- २ बेळुनीत्त इत्त कयत्त मिळित्तोत्तोत्त बेपरिकरुत्त
धळु नीर तुळुत्त धलमवदिम्भुत्त ।" —विश्वविदत्तम्, २
- ३ धादबरे मङ्गोळियार मुकत्त इरत्त
बिल बिलकी नर्मबिर् ।" —पेरिय विरमोळी, ४४२
- ४ करियान धोव काळ बम्भु एन तन
मडमानिनीपोरबेष्ट ।" —वही १-७-१
- ५ एम्माबिये कडुववकुलाकिम्भु बेबिलेवाळ मुकलीर । —विश्वविदत्तम्, ७२

“नरनाथ को सहारा परमात्मनाथ प्रभु पायी ।” —वरनाममन्त्र

५ “भोसमर्थ अथार हैकी धयम बोली धार ।

नाम निरिबर तरल तारव बेग करस्यो पार ।” —भीरा

अतिशयोक्ति

आलवार-काव्य में (अतिशयोक्ति)

१ “हे कृष्ण ! तुम्हारे बाग लेने के पश्चात् इस घर में मैंने भी मकलन, बही के बर्चन नहीं किये हैं ।”^१

२ हे यशोदा ! तुम्हारा मुँह ने सब करतूतें करके हवा से भी तेज होकर तुम्हारे माँही पहुँचकर क्षिप्त गया है ।”^२

३ “सूखे बाँतों के टकराने से पैदा होने वाली भाष से साठ भाषाएँ उत्पन्न हो गयी हैं ।”^३

४ “बिजली और बंभी (लता विशेष) से भी पठसी कमर वाली नाबिका ।”^४

५ ‘सुन्दर ‘माधवी पुष्प’ की लताएँ इतनी ऊँची बढ़ी हुई थीं कि वे मैनों को स्पर्श कर रही हों ।”^५

हिन्दी कृष्ण-काव्य में (अतिशयोक्ति)

१ “अद्भुत एक अनुपम नाम ।

भुलन कमल नर नम नर कीमत तापर तितु करत अनुपाव ।

हरि नर सरवर, सर पर निरिबर पिरि पर कूँजे कंज वरान ।”

(स्वकतिशयोक्ति)

भीरा—

२ “घोरे भाव, घोर कड लोभा,

कही सही कंठ कर जानो ?”

—सुरदास (स्वकतिशयोक्ति)

१ करत नरानुन तमिषम कर्म्मन्तु उरि मेन वीत वेग्येन
चिरन्तनुने मुरन्तल केरुमिनेन पम्पिदाने ।

—पेरियारुत्तार तिरुमोळी, २-४-७

२ कर्म्मन्तुन कर्म्मिनाम घोडी वक्कम्पुक्कु ।

—वही २-१०-१

३ “कन्तलर वेरुमेळ” बोव तैयत तीबाल विप विपक्कुन ।”

—पेरिय तिरुमोळी १-७-५

४ “विन्नीपुय वंविर्वन्तुन वैन्दिनकु न इक्कळ ।”

—वही १-७-७

५ “मक्कळोळ माक्की नेनु कोन्नी विन्नुप्पुर

निजिर्त्तम मुक्कित पट्टी—”

।”

पेरिय तिरुमोळी, १ २-१

१ "कमल नयन के एक रोम पर बारों जोड़ि मनोत ।"

—परमात्मदास

४ जब नारंग कमल हीरावनि विद्रुम सरस जलजमिन घोरी ।
पुलि रस पीयूष कुणल घट कमल कवसि जलज को ओरी ।
कमल सता सी बयों न विराजत प्रबसी श्याम तमासही ।
रनि घसि धंक मजल किये प्रपवत प्रबुधन रंपनि कुमुम बनाज ।

—द्विज हरिवंश

५. 'निची नीलमणि किङ्किनि माही रोमावनि तिहि जोति की छाही ।
किची लखी कटि बिजि करतारा रोमपार अनु पर्यो प्रपारा ॥'

—नन्ददास

अन्य-अलंकार

जाह्नवार-काव्य में

प्रतीप—“पलसी कमर वाली रमणी की मुख-कांति को देखकर जग्न को स्वयं सज्जित होना पड़ा ।”
(उपमा में उपमेय से हीनता बतायी गई है, जठः प्रतीप अलंकार है ।)

सन्नेह—“सायकाम बन से अन्य पोष-वासको के साथ शोर मचाकर जाने वाले कृष्ण को देखकर पोषियाँ कहती हैं—‘क्या पोष-वासक बा रहे हैं, या मेघपण बा रहे हैं ?’”
अतिमान—नाल-वर्ण के बघोक पुष्प को जाग समझकर भ्रमर भयभीत हो गये । काम बाबलों को हाथी समझकर साँप भयभीत हो गये ।
व्यतिरेक—‘मायक (कृष्ण) का सौन्दर्य बिज पर अंकित कमल के समान बा ।’”
(यहाँ कवि का तात्पर्य है कि साधारण कमल मुझी

१ बुढ़ि इरपार मुपकमत ओति तमाल ।
सिक्कल मुकम पनि पईकुम प्रलकार ।

—वेरिय विस्मोद्धी १४६

२. बोवियन बरकिन्नु इहम कष्ट ।
मळकोतो बरकिन्नु सैय्द बोस्ती ।

—वेरियाज्जार विस्मोद्धी १४१

३. ‘सळयुरै एळिळ गोकुली पैत बळुळळ ।
एरियेन वेव करिय मायुक्ति पदतळळ ।
किङ्कतयै मुळीष्टि कळिरेय्दु, वेरिय मायुमय ।’

—वेरिय विस्मोद्धी १२-१३ व १०

४. ‘एळ तिय वेत्तायैपन्न कण्णुम
प्रलक्षिताय इवराग ओत --

।”

जाता है। बिना पर अंकित कमल का सौन्दर्य स्थायी होता है।
अतः उपमेय का उपमान से बढ़कर वर्णन है।)

स्मरण—“कुल (पुण्य विशेष) पुण्य को देखकर नायिका के नेत्रों का
तथा कुमुदिनी का देखकर नायिका के मुख का स्मरण (नायक
को) जाता है ।”^{११}

व्याख्य स्तुति—‘सत्य की खोज में खरोर को तपाकर, रक्षितियों को बध में कर
भयानक बल में तप करने वाले सुस्त लोग हैं’^{१२}

समुच्चय अलंकार—‘मेरे हृदय में ज्ञान के दीपक को बसाने वाले भगवान् को मैंने
फँसा दिया है। वह मेरे हृदय में प्रवेश कर खड़ा हो गया बैठ
गया और पेट गया।’^{१३} (कवि का तात्पर्य है कि भगवान् मर्त के
हृदय में वास करने लगा। अनेक क्रियाएँ एक साथ चटित होती हैं,
एक कार्य की सिद्धि के लिए। अतः क्रिया समुच्चय अलंकार है।)

उत्प्रेष—‘तू पीठ में मधुर नाद है, तू पूष में भी है, तू आकाश में ज्योति
है।’^{१४} (यहाँ पर एक ही पुरुष द्वारा भगवान् के अनेक रूपों का
विषय भेद से कथन है। अतः उत्प्रेष अलंकार है।)

अवगम्य—भगवान् क समान व्यक्ति भगवान् ही है।^{१५} (भगवान् की तुलना
और किसी से नहीं हो सकती। उपमेय की समता के लिए
उपमेय ही उचित बतायी गयी है। उपमेय से अधिक उत्कृष्ट किसी
अव्य प्रसिद्ध उपमान में नहीं है। अतः अवगम्य अलंकार है।)

विषय अलंकार—‘नायिका को धीतस चौदनी भी बसाती है। धीतस समीरण

१ ‘अम्बायबाळ तैडु कण कुळट काट्टु।

परविगदम मुळम काट्टु अक्के घाम्पल।

वेम्बामिन तिरल काट्टुम ।”

पेरिय तिरमोळी १४३

२ ‘मिप्पोळ्ळ पोकविट्टु मैहम्म मिळ कुर्लान्तु।

घाम्परिचरित्तु कोण्डु ऐम्मुलमळ्ळक्की।

काम्परत्तर्त्त चिरीत् उन कवेत्तर्त्तिल्नु बात्तुन।

चोम्पर उक्कतिपोत्तुम ।

—तिरुमाली ३८

३ ‘‘उहल्लुक्कैन्नुम ओळिक्कोळ विळ्ळक्केट्टी।

वत्तवर्त्त नाडी वत्तपडुत्तिवैव मैत्तनवे।

निळ्ळान इन्न्तान किळ्ळान एन्नेवत्तु।”

—मुत्तुम तिरुवन्तादि ६४

४ ‘‘पान्निनैन्पण्णिन मिष्टु पालुळ मैप्पिनै।

विन्निनै विळ्ळ कुम कुडर ओत्तिवै ।”

—पेरिय तिरमोळी ७१०-६

५ ‘‘तानै तनक्कु उवमल ।”

—मुत्तुम तिरुवन्तादि, १८

भी जगति से ममानक है ।" (जहाँ पर कायं कारण में वैषम्य हो काम का फल विपरीत हो बबबा परस्पर वैषम्य नासी बस्तुओं का एक साथ संयोग हो वही विषम अर्थकार होता है ।)
लोकोक्ति— 'नदी के किनारे खड़े पेड़ की तरह मैं खड़ा हूँ ।' (नदी के किनारे खड़े पेड़ का नाश किसी भी समय हो सकता है । इस लोकोक्ति के प्रयोग के कारण लोकोक्ति अर्थकार हुआ ।)

हिम्मी कृष्ण भक्ति-काव्य में

व्यतिरेक—

- (घ) 'बेछि री हरि के बचन नैन ।
राजिबदल इग्यीबर छतबस कमल कसेसय जाति ।
मिति मुखित प्रप्तहिण बिपत्त ऐ बिगत्त विम-राति ॥ —सूरदास
- (घा) 'नैननि पर भारी लोकि कबन ।
लजन भीन भुपज सब सेवत कहा कहीं नैनन की बातें ?
तिसक कुण्डल जगनि लजावै ।
प्रतीप—
—हितहरिबध

- (घ) 'गुनवर बदन कमल बल लोचन बेसत खंड लजाया है ।"
गमन करत तब हूँ लजावत धरक धरक बुनि न्यारी ।"
—परमानन्ददास
- (घा) "निषयम राया नैन तुम्हारे ।
खंजन छवि लजन सब खंजन भीन पानि हरि हारे ।
मिथि बासि डरत पकजकुल गुरुजत बभिकनि भुपज बिहारे ।"
—हरिदास व्यास

हृष्टान्त—

- (घ) 'नीलाम्बर स्यामल लगु की छवि तुम छवि पीत सुबात ।
धन भीतरबामिनी प्रकासत बाभिमि मन चहुँ पाछ ।"
—सूरदास
- (घा) 'मेरो जाई माधौ सों मन मान्यौ ।
बाब क्यों निज होय मेरी सजनी मिथ्यो रूप दत्त पाम्यौ ।"
—परमानन्ददास

सम्बेह—

- 'कपूर छँ बर देव सखी री ।
को घुड़ सीपिन को बाग पपति को मयूर को पीठ पक्षीरी ।

को सुरदाप किर्नो वनमाता, तन्नि तिरु पड पीत ।
 किर्नो मय परबनि कलपर को, पग सुपुर बनित ॥
 की कलपर की स्याम सुमय तन इहे मोर ते सोबति ।
 सूर स्याम रस मरी राबिका उमंवि उमंवि रस मोबति ॥—सूरदास

विभावना—

(घ) 'मेरे नैना ई प्रति झीठ ।

मैं कुलकानि किये राबतिही, ये हठी होत बसीठ ॥

मद्यपि ये उत कुसन समर बन, ऐ इत प्रति बन होठ ।

तबनि निरति पड जात पलक में, पूसत बैठ न पीठ ॥” —सूरदास

(घा) 'बिनु सुपन सुखित तनु मोरी’

—हितहरिबंस

काव्य-सिध—

(घ) “जबनन कुसुम बाराक राजे सर ई ई सुहं खोर ।

× × ×

बन बन पत्र प्रबान बन सो खोजत कपित खोर ॥”

—परमानन्ददास

(घा) ‘जब ते प्रीति स्याम सों कीन्हीं ।

ता दिन ते मेरे इन मैमनि नेंकुठ नीब न लीन्हीं ॥”

—सूरदास

(इ) ‘आज सम्भारत नाहित पोरो ।

कुली फिरत मत करनी क्यों सुरत समुद्र तकोरी ।” —हितहरिबंस

विषय—

(घ) ‘ताली को बसत बाको हियौ है पग्यारी ।”

—सूरदास

(घा) ‘तबकी प्रीति प्रबकी बख्साई फिरि पाते बूझत गहि बता ।’

—परमानन्ददास

(इ) ‘जाहि बिरिधि उभापति नाये ताये सैं बन कूल जिनये ।” —हितहरिबंस

स्मरण—

(घ) ‘सुन सुत एक कथा कह्यौ प्यारी ।

× × ×

‘रामन हरन कर्पो सीता को, बुनि कदनामय नीब बिसारी ।

सूर स्याम कहि उठे बाप कहें, लक्ष्मिन बैठ बननि मय भारी ॥”

—सूरदास

(घा) ‘कुन्यो जब बैबि मृग मैनी माजी को मुख सुरति करै ।”

—परमानन्ददास

प्रस्तुति—

(घ) “अपधि निरहु बुझ बबा प्रबा जर ताप लये हूँ ।

कौड़-कौड़ हार के मोसिया, तबि-तबि लाल भये हूँ ।” —नन्ददास

(घा) "मिथता मिथता बंस यमा रेखां घायलिया की सारी ।" —मीरा

उदाहरण—

(घ) 'मेरो मन पिय बीज बतत है, पिय बिय मो ई नाहि ।
क्यों बकोर बंदा को निरखत इतउत हृष्टि न जाइ ।'

—सूरदास

(भा) 'तुम बिज हस बिज धनतर नाहीं बीजे सूरदास ।' —मीरा

(इ) "निरखन नेहू भरी बखियाँ सो क्यों मिसिबब बकीरी "

—परमानन्ददास

लोकोक्ति—

(घ) 'माथीं सों कल तोरिए ।

कीजें प्रीति स्वाम सुन्दर सो बँठे सिद्ध न होरिए ।' —परमानन्ददास

(भा) 'मो घायी की छोहरा बीत्यो बाई मोय ।

झीलाती की नीर बहेरी कैसे फिरि हूँ पाइ ॥" —सूरदास

उक्ति-बमत्कार—

उक्ति की बिचित्रता, अथवा बकता बहुत से बलकारों के मूल में निहित रहती है। अथ उक्ति-बमत्कार प्रायः उपमादि बलकारों के सुनिश्चित रूप में सामने आता है। इस प्रकार की सामग्री 'बलकार विद्या' के अन्तर्गत पीछे दी जा चुकी है। यहाँ हम कुछ उदाहरणों को लिया गया है, जिनमें उक्ति का सहज एवं व्यापक स्वरूप अनुभूत रहा है। कवि की अपनी कल्पना से उत्पन्न उक्तियों के असाधारण कुछ रुढ़ उक्तियाँ भी मिलती हैं। भाष्यकारों के तथा भाष्यकारों की कृपा से कविता के काम्य में उपसम्भ कुछ बमत्कारपूर्ण उक्तियाँ भी मिलती हैं —

१ "प्रिय विनोद मे नायिका इतनी दुबली और पतली हो गयी कि उसके हाथ के कंकण स्वयं गिर पड़ते हैं। इस पर नायिका कहती है— 'मेरे इन नासायक कंकणों पर मोहित होकर नायक को इनकी भीस माँवने की क्या आवश्यकता आ पड़ी है ?' "

२ 'हे भगवान् ! तुम सब कुछ जानते हो। किन्तु मेरा कष्ट तुम्हें मायूम क्यों नहीं है ?' "

१ "विश्वकर्माकी एन्दुईय पैयवई मेन

इकबैपुईयेत इतें बने बोधारे ?"

—नाम्बियार तिरमोली, ११ ४

२ बल्लार अरिबीर तीयार अरिबीर नमकु इन्नुमयिम

एस्ताम अरिबीर इति अरिबीर इन्नुमुरी ।"

—पेरिय तिरमोली, ४ २ ९

- २ 'हे बगवान् ! सारे बगवन् में तुम व्याप्त हो । परन्तु तुमको मैंने अपने भीतर ही बन्ध कर रखा है ।'^१
- ४ यद्योवा कृष्ण से कहती है— मैं जान चुकी हूँ तुम्हारी सारी करतूतें । ऐसे कार्य तुमने किये हैं जो मुँह से कहे नहीं जा सकते ।'^२
- ५ कृष्ण गोपियों की साक्षियों को लेकर पेड़ पर चढ़ गये । स्नान करने वाली गोपियों की साक्षियों को लौटाने की प्रार्थना करती हुई कहती है— 'हे कृष्ण ! हम तुम्हारी बात मान गयीं । बिना किसी के देखे ही तुम्हारी इच्छा की सब कुछ बेंगी और तुम्हारे साथ चल बसीं । अब बस्न है वो ।'^३
- ६ 'उसे (भी रंयम्) मगर मैं तोते भी बेह-पाठ करते हैं ।'^४
- ७ गोपियाँ यद्योवा से कृष्ण की करतूतों की सिकायतें करने के पश्चात् कहती हैं कि क्या यहाँ बिद्या (विद्या) उसने (कृष्ण ने) सीखी भी ?'^५
- आष्टाल अपनी बिरह-वेदना को व्यक्त करने के लिए एक सुन्दर उदाहरण देती है । पीतल अबबा लम्बे का वर्तन बनाने के पूर्व उसके आकार में मांस को फँसाकर फिर उसके ऊपर दोनों तरफ मिट्टी बोपी जाती है । इतना पीतल या तमि को मोम की जगह भेजा जाता है । मिट्टी के अन्धर ही अन्धर मांस पिघलती है और उसके स्थान को पीतल या ताँबा लेता है और अपेक्षित आकार का बरतन बन जाता है । आष्टाल ने सिर्फ इतना ही कहा है कि— अन्धर ही अन्धर पिघलने वाली मोम की तरह मेरी भी बसा है । चमत्कारपूर्ण इस उक्ति से सारी बात समझ में आ जाती है । आष्टाल की आन्तरिक वेदना का परिचय मिलता है ।^६

- १ "पुत्रिपुत्र इवन्निपुत्रपुत्र निद्रकत नीयेन
भेदिच्छा पुत्रुत्तु एन्नुत्ताय-मात्रिनिम्बु
बाव पैरियम नो वैरिय एन्पतनैयारिवार ?" —पेरिय तिरुमोळी ७५
- २ 'तोछामिद्रु मयरोडु ठिळैल नी
ओस्तप्पळ्ळल वेइताम ।" —परियाळ्वार तिरुमोळी ४१-ब
- ३ नी वेडिप्पेस्ताम तवबोव
मस्तावन कावामे पोबोव मरु पन्नितरुळ्ळामे —नाम्बियार तिरुमोळी १ १
- ४ वेळ्ळाम निळि नाग मरै पाडु तिल्लै । —पेरिय तिरुमोळी १२६
- ५ "कन्देतिरे कैम्बुडुत्तुओस्त
कम्पविराल कडुळनिवताम् ।" —पेरियाळ्वार तिरुमोळी २-६४
- ६ "मन्नुपुरम पुचि उल्लाम मिन्दु र ।
पेळुकुडुमार पोत " । —नाम्बियार तिरुमोळी १ : ८

इस प्रकार की अनेक अमत्कारपूर्ण उक्तियाँ आठवारी के काव्य में हुईने पर मिस जाती हैं। हिन्दी में सूरदास जी के काव्य में अमत्कारपूर्ण उक्तियों की भरमार है। सूर की निम्नलिखित उक्तियों में अमत्कारपूर्ण कल्पना ह्याम्यप्रियता और व्यंग्य देखिए—

- १ "घर में माखन खोर गई ।
घर बँसैहु निकसत नहिँ ऊँची तिरछे छँ बू घड़े ॥"
- २ "देसियत कालिन्दी अति कारी ।
कहिँयौ पयिक जाय उन हरि लों मई बिरह बुर भारी ॥"
- ३ "नैन सबल कामज अति कीमल कर धगुरी अति तपरी ।
परसे बरै बिलोक भीजै हुँ मति कुल भाती ।"
- ४ "निरगुन कौन देहा को बासी ।
मबुकर होति समुझाई सोहै ई बूमति साँच न हाँसी ॥
को है जनक जननि की कहियत, कौन मारी की बासी ।
कैसे बरन नैस है कैसे केहिँ रस में समिलाया ॥"
- ५ "ऊँची जोग कहा है बीबधु ?
सोखियत है कि असियत है कियो कियो खपत है, किनो पीअत ?
को कजु भयो बिलोना सुन्दर को कसु भुलन भीको ।
हमरे नख नखन को कहियत बीबन-बीबन की को ।"
- ६ "पिया बिनु नामिन कारी राति ।
कबहुँक जासिनि उअति जुनैया उति जलटी है राति ॥"
- ७ "पैया में नहीं माखन खायो ।
ब्याल परै ये ससा सब मिलि मेरे पुँह लपटायो ॥"

×

×

×

मुस बधि पौछि कहत न बनगहन बीना पीछि दुरायो ॥'



अष्टम अध्याय

मूल्यांकन और उपसंहार

-

मूल्यांकन और उपसंहार

आळवार-साहित्य का मूल्यांकन

आळवारों का प्रबन्धम्' कई दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ठहरता है। उसका महत्त्व भक्ति-आन्दोलन के मूल-ग्रन्थ के रूप में ही नहीं बल्कि तमिळ-साहित्य के गौरव-ग्रन्थ के रूप में भी बड़ा एक महान् रचना है। धर्म साहित्य समाज जसा आदि पर उसका प्रभाव बहुमुखी है। तमिळ में ऐसा कोई भी ग्रन्थ नहीं है, जिसने प्रबन्धम्' साहित्य की बहुमुखी निधि है। इस महान् ग्रन्थ का कई दृष्टिकोणों से मूल्यांकन प्रस्तुत करने की चेष्टा निम्नांकित स्वम्नों के अन्तर्गत है —

प्रबन्धम् का सर्वाधिक महत्त्व भारतीय भक्ति-आन्दोलन के मूल-ग्रन्थ के रूप में ही है। आळवार मूल में तमिळ-प्रदेश में ईसा की पाँचवीं शताब्दी से लेकर तृतीयाब्दी तक भक्ति की जो प्रथम धारा बहाई की वह बाबा की शताब्दियों में उत्तर तमिळ-प्रदेश की धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने ही वैष्णव मूल आळवारों तथा श्रीव मूल नायनमारों को जन्म दिया था।^१ जब जैनो और बौद्धों का आचरण-पथ गिरने लगा और उन लोगों ने राज्याध्यय का दुरुपयोग कर राज और वैष्णव धर्मों पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया तब बहिरु धर्मों को नयी स्फूर्ति प्रदान कर उसका पुनरुत्थान करने की परमावश्यकता आ पड़ी। ऐसा आवावरण उत्पन्न हुआ जिसमें बौद्धों और जैनो के आचार-विचारों से संग आन वाली जनता को एक ऐसा मार्ग दिखाने के लिए, जिसमें सब समान रूप से आराम शांति प्राप्त कर सकें और

१ प्रथम अध्याय में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है।

आचरण-यत्न भी ठेका रह सके और वैदिक धर्म को भी जब तक महावि कठिन नियमों को पकड़े भासा है। सरल बनाकर भक्ति के साधनों को सुलभ और सर्व साधारण को प्राप्य बनाने के लिए हिन्दू-धर्म में सुधारों की आवश्यकता हुई। युग की इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए ही आळ्वार और नायनमार अवतरित हुए। बौद्ध और जैन नास्तिक धर्मों की तुलना में उन्होंने भयशून्य की सत्ता उदारता और स्वायत्तता का प्रचार किया। छोटी सत्ताश्री से नहीं सत्ताश्री के दीर्घकाल में इन वैष्णव आळ्वारों और नायनमारों ने तमिळ-प्रदेश में भक्ति की जो पावन परम्परा प्रवाहित की थी उसकी तरल तरंगों में तमिळ-प्रदेश की समस्त जनता मग्न हो अवसाहन कर प्राप्ति प्राप्त कर सकी।

वैदिक भक्ति के स्वरूप में युग की माँग के अनुसार आवश्यक परिवर्तन कर उसे सबके लिए सुलभ और आकर्षक बनाने का अधिक श्रेय आळ्वार मत्तों को ही है। आज भारतीय भक्ति-साहित्य में वैष्णव भक्ति का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह बहुत कुछ आळ्वारों की देन है। वेद-गीता आदि से विचार ग्रहण कर आळ्वारों ने (संस्कृत को छोड़कर) जन-साधारण की भाषा (कोकभाषा) तमिळ में भाग्य विचारों को अभिव्यक्त किया। आळ्वारों के मधुर तमिळ गीत पद्यों ने मत्तों को बहुत ही आकर्षित किया। आळ्वार मत्तों ने जाति भेद को मिटाने का सर्वप्रथम प्रयत्न किया। भक्ति के क्षेत्र में जाति-भेद को न मानने वाले आळ्वार मत्तों के उच्च जातियों ने जनता पर अहित प्रभाव डाला। इस कारण निम्न जातियों का जो सामाजिक उद्धार संभव हो सका वह भारत भूमि में निश्चय ही ऐतिहासिक महत्व रखता है।^१

आळ्वारों के जन्म-जीवन भी जनता के सम्मुख उच्च कोटि के आदर्श प्रस्तुत करने वाले थे। आळ्वारों के प्रबन्धम् ने विशेष रूप से जिन भक्ति-तत्त्वों पर जोर दिया है वे हैं—भक्ति का सर्वोपरि महत्व, गाम-महिमा स्तुति, सरस्वतीगति, मुक्त-महिमा, सरसंग और वैराग्य।^२ भक्ति-आन्दोलन के विशिष्ट संदर्भ में प्रबन्धम् के इन भक्ति-तत्त्वों का जो महत्व है, उसे बताने की आवश्यकता नहीं है। आळ्वारों ने भक्ति में प्रपत्ति अथवा 'सरसंगति' तत्त्व पर विशेष जोर दिया था। फलस्वरूप परिवर्ती भक्ति-संस्तराओं में इस सरसंगति तत्त्व को विशेष महत्व मिला। समूचे अधिष्ठित भारत में भक्तिमय आशाचरण उत्पन्न करने में तथा भक्ति-आन्दोलन का जन-आन्दोलन का व्यापक रूप प्रदान करने में आळ्वार मत्तों का ही विशेष हाथ रहा है, जिसकी सत्यता के ही श्रीमद्भागवत में कहा गया है—“उत्पन्ना द्विविदे”^३

१ “...the social uplift of the lower classes to which it has led is of great value in the History of India.”— *Outline of Indian Philosophy* : Prof Hiriyanna, p. 4

२ इन भक्ति-तत्त्वों का विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

३ श्रीमद्भागवत (मातृसूक्त) अध्याय १, श्लोक ४८

‘प्रवन्धम्’ का व्यापक प्रभाव

आळ्वार भक्तों के भक्ति-साहित्य ने जनता के धार्मिक जीवन पर अनुपूर्व प्रभाव डाला था। पाँचवीं-छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का काल तमिळ्-प्रदेश के धार्मिक जीवन के इतिहास में अत्यधिक महत्व रखता है। वैष्णव भक्त आळ्वारों ने तथा शैव भक्त नायनमारों इस काल में समस्त तमिळ्-प्रदेश में धूम धूम कर भक्ति-प्रचार किया। जनता में धार्मिक जागृकता को उत्पन्न करने में आळ्वार भक्तों के भक्तिमय गीतों का विशेष हाथ रहा है।

भक्ति-आन्दोलन के फलस्वरूप तमिळ्-प्रदेश में बनभित्त मन्दिर निर्मित हुए। बड़ी-बड़ी श्रृंखला में भक्तगण मन्दिरों के दर्शन करने गये और मन्दिरों में पूजा उत्सवादि होने लगे। भक्तगण आळ्वारों के भक्तिमय पदों को गा-गाकर आत्मविमोह हुए। तमिळ्-प्रदेश में भक्तिमय वातावरण आळ्वारों के समय तक ही बना रहा हो यह बात नहीं है। आळ्वारों ने भक्ति का जो बीज बोया था वह जगकर बढ़ा वृक्ष बन गया और उस भक्ति-वृक्ष की शीतल छाया में आळ्वारों के परभाव भी अनेक शताब्दियों तक तमिळ् जनता ने धाम्नि का अनुभव किया।

नवीं शताब्दी के परभाव ही तमिळ्-जनता ने आळ्वार-साहित्य के वास्तविक महत्व को पूर्ण रूप में जाना। विचारक आळ्वार-साहित्य-सागर में गोता लगाकर अनुस्यू विचार रत्नों को खोज निकालने लगे। ‘प्रवन्धम्’ पर अनेकानेक टीकाएँ निकलीं। तमिळ् और संस्कृत में अनेक भाष्य निकले।^१ आळ्वारों की स्तुति में संकड़ों पुस्तकें लिखी गयीं। जनता की दृष्टि में ‘प्रवन्धम्’ वेदों से भी अधिक श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण होल पड़ा। फलस्वरूप भक्ति में आळ्वार-पदों ने गायन का विशेष प्रबन्ध किया गया और इस प्रकार आळ्वार-पदों का गायन जनता के धार्मिक जीवन का एक अनिवार्य अंग बन गया। दक्षिण के मन्दिरों में आळ्वारों के पदों के गायन का एक रूप से प्रारम्भ हुआ यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। ‘प्रवन्धम्’ के प्रसिद्ध टीकाकार श्री वेरियवाक्कान किर्लॉ ने अपने ग्रन्थ कलियन भरद्वाज^२ में एक स्थान पर लिखा है कि तिरुमोली आळ्वार ने उसके गायन का प्रबन्ध करा देने की प्रार्थना समकाल मानकर औरमम् के मन्दिर में उसका गायन का प्रबन्ध करा देने की प्रार्थना की रत्ननाथ नमन्नाय से की थी। विरहित होता है कि तिरुमोली आळ्वार (अन्तिम आळ्वार) ने अपने पूर्व भक्तार्थ नम्माळ्वार के प्रति बड़ा बड़ा मान विखाया था

१ ‘प्रवन्धम्’ पर लिखित भाष्यों का विस्तृत विवरण परिशिष्ट—३ में दिया गया है, देखें।

२ कलियन भरद्वाज—पृ० २

और उनकी रचना 'तिरुवायमोळी' को वेद के समकक्ष घोषित किया था। तन्माळ्वार इन्हें 'तिरुवायमोळी' के वेद के समान माने जान के विषय में और भी प्रमाण भिन्नते हैं। मञ्जु कवि आळ्वार ने लिखा है कि मुद (तन्माळ्वार) ने महात्मा वेदों के रहस्य को अपने ग्रन्थ में भर दिया है। वेदों के छंद से छंद अर्थों का उद्घाटन मुद द्वारा ही हुआ।^१ श्रीनाथमुनि ने भी लिखा है कि द्वाविड-वेद-सागर के सामने मैं नतमस्तक हूँ।^२ अन्य परवर्ती आचार्यों के कथन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि 'तिरुवायमोळी' का अर्थ विषय वेद-सार ही समझ गया था और वेदों की ही धार्मिक मायता उसे प्राप्त थी।

जगता के धार्मिक जीवन में वेद की जो स्थान प्राप्त था वह 'प्रबन्धम्' (तमिळ वेद) को प्राप्त हुआ। जिन अवसरों पर वेद-मंत्रों का पठन होता था उन सभी अवसरों पर 'प्रबन्धम्' का गायन होते लगा। मन्त्रियों में पुत्रादि की वेलानों में, धार्मिक उत्सव-उपोहारों के अवसरों में 'तमिळ-वेद' का ही पाठ होना लगा। इस बात के प्रमाण भिन्नते हैं कि तिरुमंगै आळ्वार ने ही पहिले-पहिले धीरेणम् के मन्दिर में संस्कृत-वेद का साथ तमिळ-वेद के गायन का प्रबन्ध किया था। तिरुमंगै के परचात् तो यह परम्परा नाथमुनि के समय में और उनके परवर्ती आचार्यों के समय में भी जारी थी और आज तक जारी आ रही है। जिन जिन अवसरों पर संस्कृत-वेद का पाठ होता था उन सभी अवसरों पर तमिळ-वेद का गायन आवश्यक समझ गया।

मार्गशीर्ष महीने में शुक्ल पक्ष की एकादशी से १० दिन तक वेद-पाठ हुआ करता है। इसको 'मोथोरसव' कहा गया है। धीरेणम् में इस उत्सव के अवसर पर बहुत एकादशी से संस्कृत वेद-पाठ की परिपाटी चलती थी। तिरुमंगै आळ्वार ने उस उत्सव के अवसर पर बहुत एकादशी से तमिळ-वेद 'तिरुवायमोळी' के पाठ का आयोजन भी आरम्भ किया। १ दिनों के उस उत्सव में प्रत्येक दिन यजुर्वेद के आठ-आठ 'प्रश्नों' का पाठ होता था। तिरुमंगै आळ्वार ने धीरेणम् के मन्दिर में उपर्युक्त क्रम के अनुकरण पर तमिळ-वेद के गायन के लिए एक उचित परिपाटी बनायी थी और उस परिपाटी के अनुसार उक्त उत्सव के अवसर पर प्रत्येक दिन तमिळ-वेद के कुछ अंशों का गायन होने लगा। तिरुमंगै आळ्वार के परचात् तमिळ-वेद के पाठ का कार्य-क्रम अधिकधिक महत्व प्राप्त करने लगा जिसके फलस्वरूप यजुर्वेद के पाठ का कार्य-क्रम बंद हो गया। अब से केवल तमिळ वेद-पाठ ही होता आ रहा है। उक्त उत्सव के अवसर पर तन्माळ्वार के १० पदों में से १० पदों का गायन होता है और इस प्रकार १० दिनों में 'तिरुवायमोळी' के समस्त पदों का पाठ पूरा होता है। तमिळ-वेद-पाठ के अन्त में तन्माळ्वार के विग्रह को धीरेणम् या भी के चरणों में रखा जाता है। भगवान् और तन्माळ्वार का ऐक्य हो जाने को सूचित करने के लिए ही ऐसा किया जाता है।

१ कण्ठिमुळ विरताडु, २

२ 'तन्माळ्वार' द्वाविड-वेद सागरम् — तिरुवायमोळी तनियन

जैकि उपरु छ बामिक उत्सव में 'तिस्नायमोळी' (तमिळ-नेर) का पाठ ही प्रधान कार्य होता है। अब उस उत्सव को 'तिस्नायमोळी-उत्सव' कहकरा 'मोसोत्सव' भी कहते हैं। प्रारम्भ में तो केवल 'तिस्नायमोळी-उत्सव' ही मनाया जाता था। बाद में मछों के द्वारा एक अन्य उत्सव भी मनाया जाने लगा। वह उत्सव 'तिस्नायमोळी-उत्सव' से १० दिन पूर्व प्रारम्भ होता है और 'तिस्नायमोळी-उत्सव' के एक दिन पुन तक अर्थात् बीकुण्ट एवासी तक मानाया जाता है। इस उत्सव को 'बीकुण्टोत्सव' कहते हैं। जिस तरह 'मोसोत्सव' में 'तिस्नायमोळी' का पाठ विधेय रूप से होता है, उसी तरह 'बीकुण्टोत्सव' के दिनों में अन्य आठवारों के पदा का पाठ होता है। उपरुछ दोनों उत्सवों का नामकरण तो आपस निजम के आचार पर हुआ है। परन्तु उनके स्थान पर उचित नाम ही सब प्रचलित हैं। 'बीकुण्टोत्सव' को 'तिस्नायमोळी-तिस्नाळ' और 'मोसोत्सव' को 'तिस्नायमोळी-तिस्नाळ' कहा जाता है। प्रारम्भ के १० दिनों की पक्ष पशु और बाद के १० दिनों की इप पशु कहते हैं। प्रथम उत्सव में 'तिस्नायमोळी' का पाठ दिन के समय में और द्वितीय उत्सव में 'तिस्नायमोळी' का पाठ रात के समय में होता है। 'तिस्नायमोळी' के अन्तर्गत 'तिस्नायमोळी' आठवार के पक्षों की ही विधेय स्थान प्राप्त है। शीर्षगम् में 'तिस्नायमोळी-उत्सव' का बीजारोपण करने वाले 'तिस्नायमोळी' आठवार की बड़ी स्तुति की नाममुनि ने की है। सम्भव है कि 'तिस्नायमोळी' आठवार की महान् सेवा का स्मरण करके ही भी नाम मुनि ने उनकी 'तिस्नायमोळी' के पाठ के लिए 'तिस्नायमोळी उत्सव' की बरिवादी बताया हो।

अगर बलिष्ठ हो प्रमुख बार्मिक उत्सवों से अतिरिक्त दक्षिण के प्रधान बप्पुव मन्दिरों से सम्बन्धित अन्य उत्सवों के अवसरों पर भी 'प्रवग्गम्' का पाठ होता है। दक्षिण के तीन बप्पुव मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनसे आठवार-साक्षिय का अधिक सम्बन्ध है। वे हैं—'वीरम्गम् तिप्पति और कांची-पुरम्'। इन मन्दिरों के प्रवग्गम् विषयों को जब कुण्ड में लिया जाता है, तब 'प्रवग्गम् के इदपा भाग' का पाठ होता है। विधेय रूप से 'अष्टोत्सव' के अवसर पर १० दिन तक इपपा भाग का पाठ होना आवश्यक है। इदपा भाग में संकृष्ट रचनाओं में अस्तित्व रचना 'पेरिव तिस्नायमोळी' का पाठ अस्तित्व दिन में होता है। 'अष्टोत्सव' के दिनों में उक्त बप्पुव मन्दिरों के नीचे स्थित मन्माआवार को मूर्ति के सामने ही उन पक्षों का वाचन होता है। प्रारम्भ में यह उत्सव केवल वीरम्गम् में ही मनाया जाता था। बाद में उक्त अनुसरण कर अन्य बप्पुव मन्दिरों में यह मनाया जाने लगा। ऐसा आठ होता है कि प्रारम्भ में तमिळ-नेर के प्रसिद्ध बप्पुव-नेर वीरम्गम् में ही ये सभी उत्सव मनाये जाते थे और बाद में अन्य मन्दिरों में। कुछ जगहों का उल्लेख छिन्नायमोळी में मिलता है।¹

‘प्रबन्धम्’ का पाठ केवल वैष्णव मन्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाले उरुर्वी में ही नहीं, बल्कि अन्य सभी क्षुद्र जनसंघों पर भी होता है। यीदृच्छ जयन्ती के अवसर पर कुम्भारवाह्य से सम्बन्धित ‘प्रबन्धम्’ के पर्वों का गायन होता है। जब भगवद्विग्रहों को कुम्भ में लिया जाता है, तब जाने जाने वाले ‘प्रबन्धम्’ के पर्वों का और पीछे जाने वाले संस्कृत-वेद का पाठ करते हैं। हो सकता है कि इस परिपाटी का उद्देश्य आठवार पर्वों को प्राप्त महत्वपूर्ण स्थान को सुनिश्चित करना ही हो। श्री वेदान्त वेदिकाचार्य ने अपने ग्रन्थ ‘पादुका सहस्रम्’ में ‘प्रबन्धम्’ के महारव को स्थापित करते हुए लिखा है कि भगवद्विग्रह के कुम्भ में ‘प्रबन्धम्’ का पाठ सबसे जाने होगा संभव ही है। मार्गशीर्ष महीने में प्रातःकाल आठवाह्य की रचना ‘तिस्मिन्ति एळुप्पि’ के ३० पर्वों और तोंडरडी-पोडी आठवार की रचना ‘तिस्मिन्ति एळुप्पि’ के पर्वों का गायन होता है। अमृत महीने में ‘ऊँचल उत्सव’ (हिडोसा-उत्सव) के अवसर पर पैरियाळ्वार के कुम्भ पर्वों (‘भाणिक्कट्टी’ से शुरू होने वाले पर्व) और कुप्पिराळ्वार के कुम्भ पर्वों (‘यम्मुपुनळ कौडमै वन’ से प्रारम्भ होने वाले) का गायन होता है। भगवद्विग्रह के सामने नैवेद्य लगाते समय पैरियाळ्वार के ‘वैष्णवर्त्तन्त कुण्णुक्कुम्’ से प्रारम्भ होने वाले पर्वों का पाठ होता है। ‘तिस्मिन्ति’ (भगवद्विग्रह का स्नान) ‘पून्नुडस’ (झूल चारण करना) ‘काप्पिडस’ आदि नित्य-सेवा की सेवाओं में वैष्णव मन्त्रियों में ‘प्रबन्धम्’ से जुड़े हुए गीत गाये जाते हैं। इन अवसरों पर संस्कृत के पाठ से ‘प्रबन्धम्’ का तमिळ-पाठ ही विशेष मान्यतायुक्त समझा जाता है। नित्य-पाठ के लिए जुड़े माये पर्वों को ‘नित्यानुष्ठानम्’ (नित्य-पाठ-संग्रह) कहते हैं। प्रत्येक दिन के अन्त में माये जाने वाले पर्वों को ‘सात्तुमुरै’ कहा जाता है। यह सब परिपाटी तमिळ में ही बसती है।

उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि ‘प्रबन्धम्’ ने तमिळ जनता के के धार्मिक जीवन को किस हद तक प्रभावित किया है। वेद-तुल्य जाने जाने वाले आठवार-पर्वों का सम्बन्ध तमिळ जनता के धार्मिक जीवन से इतना गनिष्ठ हो गया कि जनता ने वेद से अधिक महत्व ‘प्रबन्धम्’ को दिया।

साहित्य समाज की चेतना में सँस लेता है। वह समाज का वह परिवर्तन है जो जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद आकर्षण विकर्षण के लाने-लाने से जुटा जाता है। उसमें विद्यालय मानव-जाति का स्पन्दन ध्वनित होता है। वह जनता के जीवन की व्याख्या करता है। इसी से उसमें जीवन वेग की छवि आ जाती है। आठवारों के अति-काव्य में समाज का स्पष्ट चित्रण है। उन्होंने समाज में रहते हुए नरकी आत्मा का परिचय प्राप्त किया था और सामाजिक जीवन के स्तर को उठाने के लिए पर्याप्त सामग्री अपने साहित्य में भर दी है। यही कारण है कि परवर्ती समाज ने आठवार-साहित्य में अपनी मान्यता की सभी चीजें प्राप्त कीं। भक्ति के अतिरिक्त अनेक वस्तुएँ आठवार-साहित्य ने परवर्ती समाज को प्रदान कीं।

प्रत्येक वैष्णव भक्त के यहाँ पूजा इत्यादि के लिए छोड़ी जगह जगह छोड़ी जाती है, जिसको 'नोयिस-आळवार' अर्थात् आळवार-मन्दिर' की सजा प्राप्त है। पूजा इत्यादि के समय में आळवारों के भक्तिपरक पदों का गायन होता ही है। वैष्णव भक्त किसी न किसी कार्य को करते समय आळवार के किसी न किसी पद को मुनमुनाता मंगलदायक समझता है। यहाँ तक कि औरतें जब छंदों अपने बेटों के प्राण में 'कोसम्' (सजावट की रेखाएँ) खींचती हैं, तब आम्नाल के तत्सम्बन्धी कुछ पदों को गाती हैं।

अगर किसी वैष्णव भक्त के यहाँ शिशु का जन्म होता है तो आळवारों के पदों का गायन होता है। माताएँ अपने बच्चों को सुनाने के लिए बड़े प्यार से पेरिमाळवार और कुसुमेळार के भोरी-गीतों को ही गाती हैं। प्रबन्धम् में बलिष्ठ सभी उत्सव मनाने जाते हैं। 'प्रबन्धम्' में बलिष्ठ विभिन्न संस्कार व्रत आदि का अनुष्ठान भी होता है। आम्नाल ने अपनी विस्मय में 'मार्गशी' नोम्बु (कात्यायनी व्रत) का वर्णन किया है। मुनविर्मा योम्ब वर को प्राप्त करने के लिए "मार्गशी नोम्बु" व्रत रखती हैं और आम्नाल के पदों का गायन करती हैं। विवाह के अवसर पर आज भी वैष्णवों के यहाँ आळवार-गीतों का गायन सामूहिक रूप में होता है। इसको "सीर पावस" कहते हैं। इस अवसर पर आम्नाल की "माण्णिपार विस्मोळी" से "कारणमायिरम्" से प्रारम्भ होने वाले १० पदों का गायन तो परमावश्यक समझा गया है और वर-वधू को आधीराद देने के रूप में अन्य लोगों द्वारा उसका गायन होता है। आम्नाल के लिए निमित्त मन्दिरों में मार्गशीर्ष महीने में एक वर्ष मण्डा है। आम्नाल ने अपने कुछ पदों में स्वप्न में विष्णु भगवान् से होने वाले अपने विवाह का वर्णन किया है। उसका स्मरण करते हुए प्रत्येक वर्ष इस महीने में भक्तों द्वारा एक उत्सव मनाया जाता है, जिसे आम्नाल विस्मोळ्याणम्' (आम्नाल विवाहोत्सव) कहते हैं। इस अवसर पर आम्नाल के उन गीतों का गायन होता है।

चौक के अवसर पर अपना धाड़' के अवसर पर उसके तीन दिन या कम से कम एक दिन पहले ही आळवार-गीतों का पाठ शुरू हो जाता है और धाड़ के दिन समाप्त होता है। प्रबन्धम्' के पाठ के पश्चात् ही अन्य कर्म किये जाते हैं। अस्वेष्टि क्रिया के लिए धन को कुतूब में से बाँटे समय आळवारों के कुछ पदा का पाठ अवश्य होता है। वैष्णवों का विश्वास है कि आचार्य के वरणों को प्राप्त करने के पश्चात् ही भगवान् के वरणों तक पहुँच सकते हैं। श्री रामानुजाचार्य की स्तुति में रचित (और 'प्रबन्धम्' के अन्त में संक्षेपित) 'रामानुजमन्त्रावि' के एक छो पदों को पढ़ते हैं। किसी वैष्णव भक्त की मृत्यु के कुछ दिनों के पहले दूसरे लोभ मन्माळवार के एक पद (जिसमें मन्माळवार ने मोक्ष की ओर अपनी यात्रा का उत्तेज किया है) को पढ़ते हैं। वैष्णवों का विश्वास है कि उस पद को गाने से उस आत्मा को मोक्ष प्राप्ति हो सकती है।

उपपुत्र विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रबन्धम्' ने किस हद तक वैष्णव भक्तों के धार्मिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित किया है। विविध अवसरों

पर आज भी प्रबन्धम् का गायन बप्पाओं के यहाँ होता है। सत्सङ्ग-वेद-पाठ हो या न हो परन्तु 'प्रबन्धम्' का पाठ परमावश्यक है। इससे प्रबन्धम् द्वारा सामाजिक जीवन पर डाले गये प्रभाव का अनुमान हा सकता है। इस प्रकार प्रबन्धम् बप्पाओं के सामाजिक जीवन में पुन-मिल गया और उसका एक अमिट बंध बन गया। जिस बिष्णु-मन्दिर में कम से कम गम्माळ्वार और आण्डाल की मूर्तियाँ नहीं हों तथा जिस मन्दिर में प्रबन्धम् का गायन नहीं होता हो वैष्णव भक्त उसे बिष्णु-मन्दिर मानने को तैयार नहीं हैं। साम्प्रदायिक नियमों के अनुसार वैष्णव मन्दिरों में गम्माळ्वार और आण्डाल के विग्रहों का स्थापन आवश्यक है और साथ ही साथ मन्दिर से सम्बन्धित अरसों में 'प्रबन्धम्' का पाठ एक अनिवार्य धर्म है। प्रबन्धम् में उल्लिखित लगभग १०८ वैष्णव मन्दिरों की तीर्थ यात्रा करना वैष्णव भक्त कर्तव्य समझे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि वैष्णव-जनों की दृष्टि में आळ्वार भक्तों का और 'प्रबन्धम्' का दितता अधिक महत्व है।

(आ) विविध कलाओं पर 'प्रबन्धम्' का प्रभाव

आळ्वार साहित्य ने विविध कलाओं की श्रीकृति में पर्याप्त योग दिया है। आळ्वार भक्तों ने जब समूचे तमिळ-प्रदेश में भक्तिमय वातावरण उत्पन्न किया तो भक्तों की उपासना-विपासा को शान्त करने के लिए राग्यायय द्वारा बनेक वैष्णव मन्दिरों का निर्माण हुआ। बड़ी संख्या में भक्त मन्दिरों के दर्शन करने जाते थे और वहाँ स्थापित भगवद्विग्रहों और भगवत्स्तीलाओं को चिन्तित करने वाले शिलासङ्घों के दर्शन कर आत्म-शांति पाते थे। आज तमिळ-प्रदेश में विद्यमान अधिकोद्य बप्पा मन्दिर आळ्वारों के समय में अथवा उनके पश्चात् उनकी भक्ति-भावना से प्रेरित होकर विभिन्न राजाओं द्वारा निर्मित हैं।^१ पल्लव राजाओं ने तथा उनके परवर्ती राजाओं ने मन्दिर-निर्माण में बड़ी रुचि दिखायी। आज तमिळ-प्रदेश में विद्यमान बिष्णु मन्दिर और शिव मन्दिर आळ्वारों और नायनमार्त द्वारा बनाये गये भक्ति-आन्दोलन के फल हैं। मन्दिर-निर्माण के फलस्वरूप भवन निर्माण-कला में भी विकास प्राप्त किया और बड़े कलाकारों को जन्म दिया। यह ध्यान देने योग्य है कि तमिळ-प्रदेश के सभी वैष्णव-मन्दिरों का बाह्य रूप एक ही प्रकार का होता है। मन्दिरों के ऊँचे-ऊँचे 'गोपुरम्' विशेष आकर्षण की वस्तुएँ हैं। वैष्णव मन्दिरों के पीछर प्रज्ञान रूप के बिष्णु के द्रिष्टी रूप का चित्र होता है और आळ्वार भक्तों की मूर्तियाँ भी विभिन्न स्थानों में स्थापित हैं। परवर्ती काल में आळ्वारों का महत्व इतना बढ़ा कि वे भी मन्थार समझे जाने लगे। आळ्वारों के नाम से भी मन्दिर बनने लगे। श्री विस्तिपुत्तुर का आण्डाल-मन्दिर बहुत ही प्रसिद्ध है। विजयनगर के राजा

१ 'प्रबन्धम्' में लगभग १०८ बप्पा मन्दिरों का विवरण मिलता है। इनमें स्थित भगवद्विग्रहों की स्तुति में आळ्वारों ने अनेक पद गाये हैं। अतः वे बप्पाओं द्वारा प्रधान मन्दिर स्वीकृत हुए हैं।

भीष्मपुत्रदेव राय (१९वीं शती के लगभग) ने प्रत्येक विष्णु-मन्दिर में आष्टास की मूर्ति का स्थापन किया और ऐसा करना आवश्यक कोषित किया गया। मन्दिरों के अन्दर स्थित उस भाग को आष्टास-समन्वि कहते हैं।^१

मन्दिरों के साथ अनेक मण्डप निर्मित हुए जहाँ बैठकर गायकण विभिन्न बाणों के साथ आष्टास-गीतों को गाते थे। मल्लि-आद्योत्तम के परिणामस्वरूप निर्मित सभ्यों छोटे-बड़े मन्दिरों को सज करके हा तमिळ-प्रदेश को "मन्दिरों का देश" कहा जाता है।

मूर्ति-कला और चित्र-कला पर भी आष्टास साहित्य का प्रभाव पड़ा है। देव मूर्तियों को समान में उनके रूप इत्यादि के निर्णय में मूर्तिकारों ने आष्टास-साहित्य का बहुत हद तक आश्रय लिया है। आष्टास-साहित्य में विष्णु के जिन रूपों का वर्णन मिलता है, उनके अनुसार ही भगवद्भिषगों का निर्माण हुआ है। मन्दिरों में स्थापित करने के निमित्त मूर्तियाँ बनायी गयीं। कलाकारों ने अपनी कुपसता से उन मूर्तियों में सौम्य भर दिया। सामाजिक जीवन का हृदय भी विमलानन्दों में चित्रित किये गए। बड़े-बड़े शिलाखण्डों को मूर्ति का आकार देने में उस समय के मूर्तिकार कुशल थे। महामन्त्रीपुरम के गुहा-मन्दिर, रम मण्डप आदि इस प्रकार के विमलानन्दों से बने हैं। आष्टासों के परचाएँ उनकी मूर्तियाँ भी निर्मित हुईं और उनकी स्थापना भीष्मपुत्र मन्दिरों में हुई। मन्दिर म आष्टासों की मूर्तियों की स्थापना उनके प्रति भीष्मपुत्र बनों का मठा भाग को सूचित करती है। मूर्ति-कला का साथ चित्रकला भी विकास को प्राप्त हुई। उस समय का चित्र अब बहुत कम भीष्मपुत्र मन्दिरों में बचन को मिलते हैं। विष्णु का विभिन्न अवतारों में रामायण और कृष्णवतार का प्रसंगों को (आष्टास साहित्य में मिलने वाले वर्णनों के अनुसार) विस्तार प्राप्त करने से।

सगीत-कला को आष्टासों की बन करायत महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न राग रागिनियों में निर्मित आष्टास-पद्यों को भक्त या-पाकर आराम विनोद हो जाते थे। आष्टासों की गीत-पद्धति में भक्तों के हृदय को बड़ीभूत करन की शक्ति प्रदर्शित की। स्वयं आष्टास अथवा गायक थे। विष्णुपुत्र आष्टास तो 'पाण' वादि के थे जिस वादि का पदा ही गायन था। आष्टास के पूर भी तमिळ में गीत-पद्धति प्रचलित थी। परन्तु वह पर्याप्त विकसित नहीं थी। आष्टासों में तमिळ की गीत-पद्धति में नई स्फूर्ति पैदा की और उसको परबर्तों गायकों के लिए आवश्यक बना दिया। आष्टासों में अनेक नम रागों और रागिनियों को ध्यान निकाला है। आष्टासों के पदों में पेल्लव की विशेषता की बर्णन पूर अथवाय में हम कर चुके हैं। तमिळ में मिलने वाले अथवाय में पद आष्टास और गायनमात्र का ही है। अथ तमिळ में गेय पद्धति को प्रोत्साहित करने में आष्टासों का विशेष हाथ रहा है। भक्त-याष्टी में आष्टास-गीत-गायन की परिपक्वता बनी थी। विविध वाद्य-यंत्रों का भी निर्माण हुआ

१ तमिळ बळत धळ्ळुवकमळळ—से० मयिल नीनी नैकट्यामो, पृ० १३

और बाघों के साथ भक्तिपरक पक्ष गाकर भक्त-गानक जानम्ब-विमोह हो पाते थे। जनता में संगीत प्रियता बढ़ी। तत्पर्य यह है कि आळ्वारों ने संगीत-कला के विकास में बहुत योग दिया है। डा० वीनदयालु गुप्त लिखते हैं— 'ईसा की सातवीं तथा आठवीं शताब्दियों में जब दक्षिण भारत में सिख और विष्णु की भक्ति के भागों का पुनरुत्थान और प्रचार हुआ उस समय यह कार्य धार्मिक वीरों के द्वारा अधिक भाषा में हुआ। भक्ति के प्रचार के साथ इन शताब्दियों में संगीत प्रियता खूब बढ़ी। तमिळ भाषा में उस समय के संगीत के बहुत से नमूने अब भी सुरक्षित हैं। उत्तरी भारत में दक्षिण का धार्मिक प्रभाव आया और भक्ति के आन्दोलन के साथ संगीत का भी मान बढ़ा।' १

(इ) तमिळ भाषा और साहित्य पर 'प्रबन्धम्' का प्रभाव

आळ्वार भक्तों ने तमिळ साहित्य की महान् सेवा की है। तमिळ भाषा और उसके संघ-साहित्य के प्रति आळ्वारों ने अपना प्रेम अपनी रचनाओं में अनेक स्थानों पर स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। (आळ्वार भक्तों के पूर्व का काल तमिळ-साहित्य के इतिहास में संक्षेप कहलाता है। यह संघ-साहित्य तमिळ की अमूर्त निधि है।) आळ्वार भक्तों ने संक्षेप के साहित्य की सभी विशेषताओं और साहित्यिक परम्पराओं को अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। वाङ्मय और तिरुमय आळ्वार ने संघ-साहित्य की बड़ी प्रशंसा की है। २ तमिळ भाषा के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए मूतत्ताळ्वार ने लिखा है कि मैं जान-प्रबोध तमिळ भाषा में पाता हूँ। बीठी तमिळ भाषा में भगवान् को गीता-भाषा समर्पित करता हूँ। ३ इस प्रकार अन्य आळ्वारों की रचनाओं में मिल जाने वाली उक्तियों से स्पष्ट होता है कि आळ्वारों को अपनी भाषा तमिळ के प्रति बड़ा प्रेम था।

आळ्वारों का आधिर्भाव तमिळ साहित्य के इतिहास में पर्याप्त महत्व रखता है। प्रारम्भिक आळ्वारों ने (चौथी-पाँचवीं शती) ही तमिळ में सर्व प्रथम ऐसे काव्य का सर्जन किया जिसे हम पूर्णतः भक्ति-काव्य कह सकते हैं। उनके पूर्व भी तमिळ में एकाग्र भक्ति—सम्बन्धी रचनाएँ हुई थीं। परन्तु उन्हें पूर्णरूपेण भक्ति काव्य कहना कठिन है। प्रारम्भिक आळ्वार भक्तों ने काव्य-शैली को भी एक नई मोड़ दी। मधुर शैली पर्वों की रचना कर आळ्वारों ने एक नयी काव्य-शैली का उत्पादन किया था। वष्णु भक्ति काव्य की दृष्टि से 'प्रबन्धम्' का स्थान सर्वोपरि है। 'प्रबन्धम्' में ही प्रथम बार विस्तार से रामावतार और कृष्णावतार की वर्णना हुई है। आळ्वारों का युग महाकवियों की रचना के लिए अनुकूल न था। अतः राम कथा या कृष्ण-कथा

१ पण्डित्य और बल्लभ सम्प्रदाय—डा० वीनदयालु गुप्त पृ० २६४

२ तिरुप्पावे ३ तथा पेरिय तिरुमोळी, १२१०

३ इरुदाम तिरुचन्नाहि १ और ७४

को लेकर महाकाव्य रचने की ओर वे प्रवृत्त नहीं हुए। परन्तु उन्होंने रामायण और कृष्णायण के कुछ विशिष्ट प्रसंगों को लेकर बसन्त सरन पर रच डाले। तमिळ में महाकाव्य के रूप में 'रामायण' की रचना ११ वीं शताब्दी में महाकवि कवन द्वारा हुई। परन्तु कवन को भी रामायण लिखने की प्रेरणा बाळबार्थों के काव्य से ही मिली। जब तमिळ में राम-कथा के प्रथम नामका के रूप में भी बाळबाप को गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त है। जहाँ तक कृष्ण मल्लि का सम्बन्ध है 'प्रबन्धम्' हो तमिळ का सर्वप्रथम मौलिक काव्य है जिसमें कृष्ण की विभिन्न बीमाओं का विस्तार और भाव पूर्ण वर्णन है। यद्यपि परवर्ती काल में कृष्ण मल्लि-प्रधान कुछ छोटे मोटे काव्य निकले तो भी 'प्रबन्धम्' श्रेष्ठ कृष्ण मल्लि काव्य के रूप में अमर हो गया और उसका चिर स्थायी महत्व है। उसकी टक्कर का प्रथम तमिळ में अभी तक नहीं हुआ। अतः कृष्ण मल्लि-काव्य के रूप में तमिळ में 'प्रबन्धम्' बेजोड़ है।

जहाँ तक प्रबन्धम् के साहित्यिक महत्व का प्रश्न है हम कह सकते हैं कि यद्यपि बाळबार्थ प्रसन्न भक्त थे और भाषाशेष में आकर पाते थे तो भी उनके काव्य में सज्जकोटि के साहित्य के पुण्य विद्यमान हैं। तमिळ के गौरवपूर्ण सन-काल की विशिष्ट काव्य शक्तियों और साहित्यिक परम्पराओं का निर्वाह बाळबाप ने अपने काव्य में किया है। सन-काल की रचनाओं में उपसम्पन्न सौन्दर्य प्रम-पद्धति को लेकर उची पद्धति में उन्होंने अमीरिक प्रेम को प्रकट किया है और आत्मा परमात्मा के बीच के सम्बन्ध को उक्त पद्धति द्वारा बहुत स्पष्ट और आकर्षक बना दिया है। मल्लि में मार्कण्डेय भाव को जोड़ने वाले प्रथम कवि हैं जहाँवार। तापिका के चिर-वर्णन ने भी उन्हें तमिळ-साहित्य में अग्रणी बनाने की नहीं मिलती। इस प्रकार का सजीव चिर-वर्णन है जिन्होंने कृष्ण के बाल-वर्णन के सिद्धे अग्र-विकास को दस अग्र-संस्था में रखकर प्रत्येक अग्र-संस्था का मौलिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया था। इस प्रकार के बाल-वर्णन की शैली तमिळ में 'पिल्ल-तमिळ' कहलाती है। 'पिल्ल-तमिळ' वर्णन शैली के अग्र-संस्था के रूप में तमिळ कवियों में पेरियाळ्वार का स्थान मुख्य है। पेरियाळ्वार ने जिसने विस्तार से जितनी सूक्ष्मता और मौलिकता से बाल-वर्णन का वर्णन प्रस्तुत किया है, वह तमिळ में अग्र-द्वय है। पेरियाळ्वार की 'पिल्ल-तमिळ' शैली का अनुकरण कर अनेक परवर्ती कवियों ने 'पिल्ल-तमिळ' काव्य की रचना की है। अन्त-जोचना के क्षेत्र में बाळबार्थों ने कई अग्र-वर्णनों की सृष्टि की थी। उस अग्र-वर्णन का प्रयोग किया है। ताळ्वी' बाळबार्थ काव्य में प्रमुख एक विशेष अग्र-वर्णन है जिसका प्रचार बाद में हुआ।

बाळबार्थ-काव्य में तत्कालीन समाज में प्रचलित साधु-गीत सुरक्षित हैं। पेरियाळ्वार कुमरोत्तराळ्वार, तिरुमय बाळबार्थ आदि ने अपने काव्य में साधु-गीतों को परिष्कृत रूप में प्रस्तुत किया है। इन साधु-गीतों से तत्कालीन तमिळ जनता को

जात्या का परिचय मिल जाता है। आळ्वार-काव्य की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें तत्कालीन समाज का सजीव और स्पष्ट चित्रण मिलता है। लोक में प्रचलित विभिन्न उत्सव विभिन्न संस्कार देवी-देवता श्री-मुख्य कं भुक्कार, वैद्य भूपा विभिन्न विषयास आदि का विस्तृत परिचय हमें आळ्वार-काव्य से मिलता है। लोगों के मनो रंजन के साधन उनके व्यवहार, धिष्टाचार, दैनिक जीवन के कार्य इत्यादि का पूरा पूरा परिचय आळ्वार साहित्य से मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आळ्वार साहित्य में तत्कालीन समाज प्रतिबिम्बित हुआ है। चूंकि आळ्वार समाज के ही प्राणी थे अतः उन्होंने अपने काव्य में समाज का समोपास चित्रण किया है, जिससे कि तमिल संस्कृति के अतीत का रंगीन चित्र हमारे सामने आ सका है। सारांश यह है कि आळ्वारों का भक्ति-काव्य—तमिल-साहित्य की अमूल्य निधि है।

तमिल भाषा को आळ्वारों की भेंट

तमिल भाषा के विकास में आळ्वारों के प्रबन्धम् ने महत्वपूर्ण योग दिया है। आळ्वारों के समय के पहले की तमिल भाषा संस्कृत-प्रभाव से विस्तृत मुक्त है। संय-काव्य की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा पूर्णतः शुद्ध साहित्यिक तमिल भाषा है, जिसमें संस्कृत के शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में उत्तर भारत से दक्षिण की ओर कार्य संस्कृति के गमन के साथ-साथ संस्कृत भाषा भी दक्षिण में आयी। उस समय तमिल कवि शुद्ध साहित्यिक तमिल भाषा में ही रचना करते थे। बोरे-बारे संस्कृत भाषा में उपलब्ध धर्म, दण्डन विभिन्न शास्त्र धर्मग्रन्थों के प्रभाव तमिल के पवित्र-समाज पर पड़ा। आळ्वार संस्कृत के भी ज्ञाता थे। उनका तमिल प्रेम की प्रमाद था। फिर भी उन्होंने संस्कृत के प्रति विरोध भाव नहीं दिखाया।^१ यही कारण है कि तमिल कृतियों में 'प्रबन्धम्' में ही प्रथम बार संस्कृत शब्द मिलते हैं। भक्ति और वर्णन के माध्यम से आळ्वारों की भाषा में कुछ संस्कृत शब्द भी आ गये। लोक में प्रचलित सरल संस्कृत शब्दों का ही उन्होंने प्रयोग किया है। आळ्वारों ने संस्कृत के शब्दों को उत्तम रूप में न रचकर उनका 'तमिलीकरण' कर उचित ढंग से भाषा में पिरो दिया है। 'प्रबन्धम्' में मिलने वाले अधिकांश संस्कृत शब्द उपर्युक्त रूप में आये हैं। इस प्रकार सरल तमिलीकृत संस्कृत-शब्दों के प्रयोग से तमिल भाषा में एक नयी शक्ति आयी। तमिल भाषा में गौतमकृता और प्रबुद्धमानता आयी। आज तमिल भाषा का जो रूप है उसकी नींव आळ्वारों ने ही डाली थी। आळ्वार ही प्रथम कवि हैं जिन्होंने साहित्यिक तमिल भाषा में आवश्यक भाषा में संस्कृत शब्दों का प्रयोग कर तमिल भाषा को एक नया मोड़ दिया था। स्मरण रहे कि संस्कृत का प्रभाव तमिल भाषा पर अपेक्षाकृत बहुत कम है।

१ कुलदेवराज आळ्वार ने संस्कृत में 'मुकुन्दमाला' नाम से एक प्रसिद्ध स्तोत्र-ग्रन्थ की रचना भी की थी।

भाषाकारों के पश्चात् 'प्रबन्धम्' के टीकाकारों ने दार्शनिक विचारों के विवेचन के लिए अधिक से अधिक संस्कृत शब्दों का प्रयोग कर एक नवीं ऐसी भाषा जितायी जिसे मल्लि प्रबाल' कहते हैं। 'प्रबन्धम्' पर निम्ना यथा अधिष्ठातृ टीका-साहित्य 'मल्लि प्रबाल' ऐसी है। मल्लि प्रबाल' ने तमिल और संस्कृत भाषाओं का समान रूप से प्रयोग होता है। इस मल्लि प्रबाल' ऐसी में जब और भी संस्कृत शब्दों का प्रयोग होने लगा तो उसने मल्लिप्रबाल भाषा को जन्म दिया। मल्लिप्रबाल की उत्पत्ति में मल्लि प्रबाल' का अत्यधिक योग है। परन्तु तमिल के कवि (११वीं १२वीं शती) संस्कृत के अधिक योग में नहीं पड़े। यही कारण है कि आज भी तमिल अपने निज रूप को लिए है। कहने का तात्पर्य यह है कि भाषाकारों ने संस्कृत भाषा का प्रयोग सीमित रूप में ही किया है जिससे तमिल भाषा अपने निज सौन्दर्य को खोने बिना और भी जलजस्त हुई। यह तमिल भाषा को भाषाकारों की सबसे बड़ी देन है।

प्रबन्धम् में प्रयुक्त भाषा की विशेषता यह है कि पूर्व-साहित्य में प्रयुक्त कठिन साहित्यिक भाषा की अपेक्षा प्रबन्धम् की भाषा में सरलत्व है। उद्यम शील-भाषा के रूपों के भी दर्शन होते हैं परन्तु परिपक्व रूप में। श्लोकान्तियों और मुद्राकार का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है। भाषाकारों की भाषा में पाठकों की आसन्नता और उस निमज्जित करने की अपूर्व क्षमता है। उसमें उच्च कोटि की व्यञ्जना कला संक्षिप्तता भी है। भाव-सौन्दर्य और सजीवतापनता के पुष्पस उदाहरण भी भाषाकारों की भाषा में मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि तमिल भाषा का समूह सजीव उत्तम और सौन्दर्यपूर्ण बनाने में भाषाकारों का विशेष हाथ रहा है।

परन्तु तमिल साहित्य पर भाषाकारों का प्रभाव

जब से श्री तादमुनि ने (११वीं १ शती) प्रबन्धम् का संपादन कर उसकी विचार-बारा का प्रचार प्रारम्भ किया तबसे 'प्रबन्धम्' का सांस्कृतिक महत्त्व अधिकाधिक प्रकाश में आने लगा। प्रबन्धम् पर अनेक भाष्य निकले। भाषाकारों के पश्चात् कुछ समय तक केवल भाष्य ही लिखते रहे। अतः वह काम तमिल-साहित्य के इतिहास में भाष्य-काल' कहा जाता है। ११वीं शताब्दी में तमिल में कदाचित् कन्नड ने 'रामायण' लिखी। तमिल के बीरव-ग्रन्थों में कन्नड-रामायण का एक प्रमुख स्थान है। कन्नड ने 'भास्मीरि-रामायण' से राम-कथा का आधार तो लिया परन्तु कन्नड रामायण' में कवि की मौलिकता प्रकटता और विद्वत्ता के दर्शन होते हैं। कन्नड रामायण' जैसे अमर काम्य की प्रेरित करने वाले 'कवि पदवर्ती' कन्नड' पर भाषाकारों के प्रबन्धम् का प्रभाव पड़ा है। कन्नड के बड़ा सम्पन्न विचारों पर सम्पादनकार की 'विस्वावर्ती' का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है। कन्नड ने अनेक स्थानों पर सम्पादनकार के विचारों की वैसे ही रचना दिया है। कुलसेनभाषाकार के राम-कथा प्रबंध के कुछ वर्णों के भाव को कन्नड ने उन्नी रूप में दुहराया है। कई

१ भाषाकारों की भाषा की विलुप्त कर्मा सत्यम् सम्भाव में प्रस्तुत की गयी है।

स्वामी ने कबल ने आळ्वारों की भाषा-शैली को अपनाया है। स्वयं कबल ने नम्माळ्वार के प्रति अपने भ्रष्ट का ज्ञापन किया है। 'घठन्नोपरस्तादि' नामक रचना कबल द्वारा नम्माळ्वार की स्तुति में की गयी बतायी जाती है। 'घठन्नोपरस्तादि' में कबल ने नम्माळ्वार की स्तुति करते हुए लिखा है— क्या विश्व के समस्त काव्य संग्रह नम्माळ्वार के एक सूत्र की बराबरी कर सकते हैं ? इत्यादि ।”

१३वीं शती के उत्तरार्ध में पुक्कळ्ळी नामक एक प्रसिद्ध कवि हुए जिनकी रचना 'नळवेम्मा' है। ये परम वैष्णव भक्त थे। 'नळवेम्मा' पर आळ्वारों की विचार-बारा और भाषा-शैली का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अपनी रचना के संगताचरस में पुक्कळ्ळी ने नम्माळ्वार की बड़ी स्तुति की है और नम्माळ्वार की तिरुवायमोळी के प्रति अपना भ्रष्ट स्थापित किया है। 'तिरुवुक्कळ्' नामक प्रसिद्ध तमिळ नीति-ग्रन्थ के टीकाकार परिमेळकर ने भी तिरुवुक्कळ की विस्तृत टीका में प्रबन्धम् से अनेक स्वामी पर उद्धरण दिये हैं। १४ वीं शती के पूर्वार्ध में विश्वप्पुत्तूरुळ्वार नामक वैष्णव कवि ने तमिळ में 'महामारुत' की रचना की। यह बहुत ही सरस काव्य है। इस ग्रन्थ में रचयिता ने नम्माळ्वार और तिरुमय आळ्वार की बड़ी स्तुति की है। 'प्रबन्धम्' के अनेक स्वामी को इसमें बुझाया गया है। प्रबन्धम् का सैद्धांतिक और काव्यात्मक प्रभाव इस ग्रन्थ पर पड़ा है। तिरुप्पुक्कळ नामक (१४ वीं शती का उत्तरार्ध) काव्य के रचयिता मणविरिनायर ने राम-कथा और कृष्ण-कथा के अनेक रसात्मक प्रसंगों का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ पर प्रबन्धम् का प्रभाव दृष्ट्य है। मुरली-भाषुर्ग के प्रभाव के प्रसंग में इस कवि ने पेरियाळ्वार के तत्सम्बन्धी पद्यों के भाषा को ही बुझाया है। १६वीं शती के पूर्वार्ध में तिरुक्कळ् वेम्माळ ने 'मारुतसंकारम्' के नाम से एक ग्रन्थ लिखा। यह 'मारुत' (नम्माळ्वार का दूसरा नाम) को नायक के रूप में मानकर लिखा गया अर्त्तकार सास्त्र है ।^१

पेरियाळ्वार की पिळ्ळी-तमिळ-शैली का अनुकरण कर खैर भक्तों ने तथा मुक्क (सुब्रह्मण्य) भक्तों ने अपने काव्य को नीलाशो का वर्णन किया है। आळ्वारों की काव्य-शैली का प्रभाव अनेक परवर्ती खैर और मुक्क भक्ता पर भी पड़ा है। ऊपर उल्लिखित रचनाओं के अतिरिक्त अनेक परवर्ती तमिळ कृतियों पर प्रबन्धम् की विचार-बारा और भाषा-शैली का प्रभाव पड़ा है। (विस्तार भय से अधिक विवरण नहीं देते ।)

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि बर्म वर्सन साहित्य कला आदि पर प्रबन्धम् ने कितना महान् प्रभाव डाला है। तमिळ में ही नहीं बल्कि अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में सामग्री ही कोई ऐसी एक रचना हो, जिसने 'प्रबन्धम्' का-सा बहुमुखी प्रभाव डाला हो। प्रबन्धम् समस्त भारतीय साहित्य भंडार का एक अनूद्यत रत्न है।

(ई) तमिळुत्तर बसिणी भाषाओं पर प्रभाव

१ तैम्पु—तैम्पु में भक्ति-साहित्य की सर्वना विधेय रूप से ११वीं शती के परचाय ही हुई। तैम्पु के भक्ति-साहित्य के प्रारम्भिक रचयिताओं में मध्य मद्र, तिरुक्क सोमयाजी और एर्रा प्रयङ्ग के नाम उल्लेखनीय हैं। तिरुक्क का कास १३ वीं शती के आस-पास है। तिरुक्क की रचनाओं में 'महाभारत' और 'निर्बन्धोत्तर रामायण' मुख्य हैं। एर्रा प्रयङ्ग १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जीवित थे। इन्होंने कई रचनाएँ की हैं जिनमें 'रामायणम्', 'सक्मी मुत्तिह पुगणम्' और 'हरिबन्धम्' आदि मुख्य हैं। तैम्पु के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि तात्त्वपाक अन्नमाचार्य हैं, जिनके जीवन-काल का अवकाश समय १२वीं शती के उत्तरार्द्ध में पड़ता है। अन्नम से ही इनका मुकाम भक्ति की ओर भी। अन्नम छोड़कर ये तिरुप्पति तीर्थ-क्षेत्र की ओर निकल पड़े और १९ वर्ष की आयु में ही भी बेंकटेश्वर के परम भक्त बन गये।

वी की स्तुति में हैं। विष्णु के अर्चनार्थर रूप 'बेंकटेश्वर' की स्तुति प्राप्त सभी आळवारों ने अपने भक्तिपूर्ण पदों में की है। आळवारों के परचाय उनके पीछों के पापन का प्रबन्ध सभी विष्णु मन्त्रियों में अतिरिक्त रूप से किया गया। वेद-पाठ हो या न हो परन्तु 'प्रबन्धम्' का पाठ आवश्यक समझा गया। विरचाय किया जाता है कि श्री वेदास्त देविताचार्य के प्रवक्तु अनुरोध से सम्मालवार वृत्त 'तिरुवायमोळी' का पाठ बेंकटेश्वर के मन्दिर में सन् ११९० ई० के आस-पास आरम्भ हुआ।^१ कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त घटना के बहुत पहले ही आळवार पदों का प्रचार तैम्पु प्रदेश में हुआ था और तमिळु-प्रदेश के भक्ति-आन्दोलन का प्रवाह उत्तर की ओर प्रवाहित होने लगा था। एतत्काल ११ वीं शती के परचाय तैम्पु-प्रदेश में एक सक्रिय वातावरण उत्पन्न हुआ। जब तैम्पु भक्त अन्नमाचार्य तिरुप्पति बेंकटेश्वर के दर्शन करने गये थे तब वहाँ शक्ति-प्रबन्ध-पाठ बड़ी म्यदा के साथ चल रहा था। भक्त अन्नमाचार्य का हृदय उस अपार तमिळु वाङ्मय की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने संस्कृत के साथ-साथ तमिळु न भक्ति-साहित्य का भी प्रयाङ्ग अप्ययन किया।^२ इसमें आश्चर्य किंचित् भी नहीं कि आळवार भक्तों की मधुर बाणी ने अन्नमाचार्य पर अपरिमित प्रभाव डाला हो। भक्ति के भावनेश से अन्नमाचार्य ने सर्वोप पर रच डाले। इनके पदों की संख्या ३२००० बतायी जाती है। पर उपरम्य पद १९००० के लगभग हैं। इनके अनेक पदों के माथ पुरे क पुरे आळवार-पदों के ही हैं। श्री अन्नमाचार्य के सभी पद पीठ-पीसी में हैं। इसमें अप्यार संकीर्तन भी है और गृङ्गार संकीर्तन भी। एक तैम्पु विद्वान् का कथन है कि हजारों पदों की रचना करने के लिए यदि एक ओर हिन्दी क मक्त-प्रवर सूरदास जो की भी वस्तुमाचार्य

१ हिन्दवी धार्मिक लिपि—डा० कृष्णस्वामी अय्यंगर (भाग २) पृ० ११८०
२ वही (भाग २) पृ० १०८६-८८

का आदेश मिला तो दूसरी ओर (तेलुगु के मूरवान) श्री अन्नमाचार्य के समस्त आळवारों के नासापिरम्' (प्रबन्धम्) का अनुदिन प्रबन्ध-पाठ का आदर्श रहा। इसमें संदेह नहीं कि अन्नमाचार्य जी का भक्तिपूर्ण हृदय आळवारों के पदों को गाकर बिह्वल हो उठा और तेलुगु वाणी में अभिव्यक्त हुआ। श्री अन्नमाचार्य ने तमिळ-प्रबन्ध-गान से प्रभावित होकर भी अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। सस्कृत के भी प्रकाश पंडित वे और वे संगीत के पारंगत विद्वान्। संगीत पर उनका प्रभाव इतना अधिक था कि अपने भक्तिपूर्ण सहस्रों पदों के अतिरिक्त संगीत-शास्त्र पर एक रीति-ग्रन्थ भी रच डाला। इनकी कृतियों में 'विपद रामायणम्' शृंगार-मंजरी' बैकटाचल महात्म्यम्' आदि उल्लेखनीय हैं। अन्नमाचार्य के पदों में वास्तव्य और माधुर्य भाव की भक्ति के वर्णन होते हैं। माधुर्य भक्ति के उनके लिये अनेक सुन्दर पद मिलते हैं।

अन्नमाचार्य के पदों की वार्षनिक पृष्ठभूमि आळवार-विचारधारा से प्रभावित विधिष्ठाईतत्वाद् ही है। परन्तु जिस स्वतन्त्रता का परिचय अन्नमाचार्य ने अपनी विचार धारा में दिया है उससे स्पष्ट है कि वे किसी वार्षनिक या साम्प्रदायिक बन्धन में नहीं पड़े। तैमुयु के एक दूसरे प्रमुख कवि बम्मरे पोतन्न हैं। पोतन्न मन् १८०० के आस-पास जीवित थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ आद्य महाभागवत 'बीरभ्रवविजयम्' और 'नारामण सतकम्' हैं। 'महाभागवत' की रचना द्वारा महाकवि पोतन्न ने तैमुगु साहित्य में अमृत की धारा प्रवाहित की है। इनके पद मत्त-हृदय को आत्म-विमोह कर देने वाले हैं।

१६ वीं शताब्दी के पुर्वाठ में गमा श्रीकृष्ण देवरायम् ने अनेक नाट्य-रचनाएँ कर अपनी अपार कवित्व प्रतिभा का भी परिचय दिया जिसके कारण उन्हें 'साहित्य समराज्य चक्रवर्ती' भी कहा जाता है। इनकी रचनाओं में सबसे श्रेष्ठ है, 'आमुक्त मात्मदा'। श्रीकृष्ण देवरायम् के समय तक तैमुयु-प्रदेश में आळवार भक्तों के जीवन-मृत की कहानियाँ बहुत ही प्रचलित थीं और उनसे भक्तों ने प्रेरणा भी प्राप्त की थी। पेरियाळ्वार और उनकी पौत्र पुत्री आम्बाळ के जीवन-मृतों ने श्रीकृष्ण देवरायम् को इतना आकर्षित किया कि उन्होंने उसे कथा का आधार बनाकर एक महाकाव्य ही रच डाला। 'आमुक्त मात्मदा' बड़ी मशहूर काव्य है जिसमें पेरियाळ्वार और आम्बाळ की रोचक जीवन-कथाएँ प्रौढ काव्य-सूक्ष्मी में बखिन्न हैं। 'आमुक्त-मात्मदा' का अर्थ है—'अपनी पहनी हुई माला खोल कर देने वाली।' इस काव्य में अनेक स्थानों पर पेरियाळ्वार और आम्बाळ के पदों के भाव दिये गये हैं। स्पष्ट है कि कृष्णदेव रायम् ने 'आमुक्त मात्मदा' द्वारा पेरियाळ्वार और आम्बाळ को तैमुगु-प्रदेश में अमर बना दिया।

२. भक्तयात्म—भक्तयात्म में भक्ति-साहित्य का निर्माण विशेष रूप से १३वीं शताब्दी के बाद ही हुआ। भक्तयात्म भाषा की प्रारम्भिक रचनाओं पर तमिळ भाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। तमिळ के अनेक शब्द-प्रयोग एवं आदि भक्तयात्म की प्रारम्भिक रचनाओं में मिल जाते हैं। पीछे कहा जा चुका है कि

बाळवार-युग' के पश्चात् 'आचार्य-युग' में प्रबन्धम् पर अनेक भाष्य निकसे। प्रबन्धम् पर लिखित भाष्यों की भाषा संस्कृत-मिश्रित तमिल थी। इसे मणिप्रवाळ कहते हैं। ज्यों मसयासम पर संस्कृत भाषा का प्रभाव अधिक पड़ता गया त्यों त्यों उसका सम्बन्ध तमिल भाषा से छूटता गया। जहाँ तक मसयासम के भक्ति-साहित्य पर प्रबन्धम् के प्रभाव का प्रश्न है हम निर्विवाद कह सकते हैं कि तमिल-ग्रंथों के भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव उस पर अवश्य पड़ा है। मसयासम-ग्रंथ का सम्बन्ध तमिल-ग्रंथों से बहुत प्राचीन काल से था। स्मरण रहे कि प्रसिद्ध कुसुमेनराळवार वहीं के शासक थे। अतः पूर्व मसयासम-ग्रंथ के अन्तर्गत ही था। कुसुमेनराळवार वहीं के शासक थे। अतः पूर्व प्राचीन तमिल-ग्रंथों के अन्तर्गत था। इन बातों के प्रमाण मिलते हैं कि बाळवार मठों में कुछ वर्तमान मसयासम-ग्रंथों के विभिन्न स्थानों में जाकर भक्ति-प्रचार करते थे और जनता में भक्ति-भावना को जगाने थे। कुछ बाळवारों ने केरल के राजाओं से आश्रय भी प्राप्त किया था। इस प्रकार मसयासम-ग्रंथ में बहुत पूर्वकाल में ही बाळवारों के योगों का प्रचलन रहा और बहुत से पीढ़ों के लोग-पीढ़ों में हुए मसयासम के प्रारम्भिक भक्ति-साहित्य के अन्तर्गत कीर्तन मन्त्र का प्रादुर्भाव है।

भक्ति-आन्दोलन के फलस्वरूप तमिल-ग्रंथों में कीर्तन-मन्त्र को प्रेरणा मिली। मन्त्रों में शीत-नायक की प्रणामी बसो। यही प्रणामी मसयासम-ग्रंथों के मन्त्रों में पाठ्य के नाम से बनी। इसी से कीर्तन मन्त्र साहित्य को प्रेरणा दी होगी। मसयासम के लोच-नीला में पाणुपाट्टु विधेय रूप से उल्लेखनीय है। पाणु नामक पाणि विधेय का दूसरा तमिल-ग्रंथ की भी—के लोगों का पैदा ही पीढ़ माना था। तिरुप्पाण पाणु आदि के ही थे। सम्भव है कि इन पाणु' को एक शाखा के लोगों ने मसयासम के पाणुपाट्टु-साहित्य की रचना की हो। इन लोच-नीला में पौराणिक कथाओं का भी उल्लेख होता था।

११ वीं शताब्दी में रचित 'रामचरितम्' नाम से एक काव्य मसयासम भाषा में लिखा है। इस ग्रंथ पर तमिल के कव्यज्ञ भक्ति-साहित्य का स्पष्ट प्रभाव दृश्य पड़ता है। ११ वीं शताब्दी में धा कंबन ने तमिल में राम-कथा लिखी थी। इस काव्य रामायण से प्रभावित होकर एक मसयासम कवि ने मसयासम भाषा में कंब-रामायण का एक सङ्क्षिप्त रूपान्तर प्रस्तुत किया है। १४ वीं शताब्दी के पश्चात् ही मसयासम में कव्य का विधेय सर्जन हुआ। मसयासम भाषा के कव्य भक्ति-कवियों में तिरुप्पाण कवि मुख्य हैं। इनका काल १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और १५ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पड़ता है। ये प्रधान तीन कवि थे। सबसे बड़े भाष्य पणिकर ने गीता का अनुवाद मसयासम भाषा में किया। दूसरे कवि चंकर पणिकर ने 'मोहपणु विजय' और 'माराट माला' नामक दो काव्य-ग्रन्थ रचे थे। तीसरे कवि राम पणिकर थे

को उपयुक्त दोनों कवियों के भक्ति संग्रह में। केरल के प्राचीन कवियों में राम पण्थिकर का प्रमुख स्थान है। राम पण्थिकर ने 'रामायण' 'भारत' 'ब्रह्मण्ड-पुराण' 'शिवरात्रि-माहात्म्यम्' 'भाववत् का दशम स्कन्ध' आदि ग्रन्थ रचे थे। इनके काव्यों में अनेक स्थानों पर बाळारों से मिलने-जुलने वाले विचार पाये जाते हैं। मलयालम के कृष्ण-नाथ के रचयिताओं की बेहरसेरी नृपुतिरि बहुत प्रसिद्ध है। इनका जाकिर्माव-नाम १२ वीं सताब्दी में माना जाता है। इनकी रचना 'कृष्ण-नाथ' ने बनता पर अपरिमित प्रभाव डाला है। कृष्ण-नाथ के ग्रन्थगत में कवि के श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त होने का प्रमाण मिल जाता है। 'कृष्ण-नाथ' में नीत-पद्धति ही अपनायी गयी है। 'कृष्ण-नाथ' के पद संगीत और नृत्य के उपयुक्त हैं।

मलयालम भक्ति-साहित्य में एळुत्तञ्जन सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि हैं जिनका समय १६ वीं सताब्दी के लगभग माना जाता है। मलयालम भाषा और साहित्य की एळुत्तञ्जन के चिर चरिते हैं। अपनी ज्ञान-पिपासा को बुझाने के लिए एळुत्तञ्जन ने कई साधुओं का सत्संग किया था और अनेक स्थानों की यात्रा की थी। एळुत्तञ्जन के कई काव्य-ग्रन्थों में 'बम्पारम रामायण' और 'भारतम्' ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। एक मलयालम विद्वान् के अनुसार एळुत्तञ्जन के दोनों काव्य 'रामायण' और 'भारतम्' के केरली साहित्य-महोदय में सूर्य और चन्द्र हैं।^१ 'भारतम्' कृष्ण भक्ति-काव्य का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। एळुत्तञ्जन की रामायण से पता चलता है कि वे किसी बिबिष्णाई-ताचार्य के शिष्य रह चुके थे।^२ एळुत्तञ्जन तमिळ तेलुगु आदि भाषाएँ भी जानते थे। तमिळ के बम्पारम भक्ति-साहित्य में अथर्व ही उन्हें प्रभावित किया होगा। कृष्ण-कथा को लेकर काव्य रचने वाले एक अन्य प्रमुख कवि हैं पूस्तानम् नृपुतिरि। इनकी कृष्ण भक्ति प्रधान अनेक रचनाएँ हैं जिनमें 'सस्तानगोपालम् पादा' की कृष्ण कर्णामृतम्' 'ज्ञानाप्ताना पार्श्वसारथी रत्नम्' और 'कृष्ण बीता'—प्रमुख हैं। कवि की रचनाओं से उसके उच्च कोटि के कृष्ण भक्त होने की बात स्पष्ट हो जाती है। नीत-पद्धति में रचित इन ग्रन्थों के पद भक्त-हृदय को आराम-विमोह कर देने वाले हैं।

१ कन्नड़—कन्नड़ में विमुक्त भक्ति-साहित्य का सर्वत्र १२वीं सदी के पश्चात् ही हुआ। कन्नड़ का भक्ति-साहित्य दो प्रमुख संप्रदायों के अन्तर्गत उपलब्ध होता है। एक और 'शैव संप्रदाय' है और दूसरा 'माध्व-सम्प्रदाय'। विद्वानों के अनुसार और शैवमत अनेक बातों में तमिळनाडु के शैव-सिद्धान्त से प्रभावित हुआ है।^३ वह एक नयी सांभाविक व्यवस्था को लेकर प्रभावित हुआ आन्दोलन है।

१ हिन्दी और मलयालम के कृष्ण-भक्ति काव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डा० के नास्करन नायर पृ० १४।

२ एळुत्तञ्जन—पी के० नाथयण रिस्सा पृ० २४।

३ A Hand-Book of Vrahasatvam—Dr A. C Nandinath, p. 94

माध्यम का आविर्भाव बंकराबाई के मायाबाद की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। श्री मध्वाचार्य के आविर्भाव के पहले ही श्री रामानुजाचार्य ने कर्नाटक में विद्यार्थियों का प्रचार किया था। अपने को विविध कष्ट पहुँचाने वाले एवं सत्तासम्पत्ति छोड़कर राधा के भक्तिकार से बनने के लिए श्री रामानुज तमिळनाडु को छोड़कर कर्नाटक के होमसत राजाओं की शरण में गये और उन्हें उन राजाओं का भाष्य प्राप्त हुआ था। (सं. १०१८) श्री रामानुज ने मैसूर के समीप 'मैसकोटे' नामक स्थान में रहकर कर्नाटक की जनता के बीच अपने मत का प्रचार किया। उन्होंने जन राजा विट्ठल देव को विष्णु वर्धन के नाम से अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया। इस प्रथा के पश्चात् पूर्ण कर्नाटक प्रदेश में श्री ब्रह्मण्य मत का अधिक प्रचार हुआ। यों कह सकते हैं कि रामानुज आठवारा के भक्तिमार्ग का ही कर्नाटक में प्रचार के अर्थ रामानुज के माध्यम से आठवारा के भक्तिमार्ग का ही कर्नाटक में प्रचार हुआ। विद्यार्थियों में जो हृत् और भक्ति-पराय प्राप्त हुए उनका पूर्ण विकास मध्वाचार्य के हृत् में हुआ। श्री मध्वाचार्य के इसी सम्प्रदाय के भक्तों की एक मंडली आये चलकर संघटित हुई जिसका नाम कर्नाटक में 'बासकूट' पड़ा और वे मत्त हरिदास कहलाये।

मुम्बईवासी भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले प्रबन्धों के जिन सामान्य तत्वों की वृत्ति हमने पहले की है उन सभी तत्वों को हम हरिदासों के भक्ति-साहित्य में पाते हैं। भक्ति का सर्वोपरि महत्त्व नाम महिमा स्तुति शरणार्थिता पुरुष-महिमा सर्वस्य और वैराग्य, ये तत्त्व सामान्य रूप से हरिदासों के भक्ति-साहित्य के तत्व हैं। हरिदासों की एक बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने आठवारा भक्तों की तरह अपनी भक्ति-साधना में संकीर्तन-पद्धति का कर्नाटक में प्रचार किया। मन्त्रियों में जाकर वे विरासत मत्त गीत गाया करते थे। 'हरिदासों की परम्परा में श्रीपदराय १२ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए। उन्होंने पहली बार माध्यम भक्तों में संस्कृत के माध्यम से चलने वाली पुरानी परिपाटी को छोड़कर कन्नड़ में निम्ने कीर्तन मन्त्र गाते का प्रथम किया। कन्नड़ में उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—प्रमदपीठ वेणुगीत और पोनी पीठ। बैंगलोर से कन्नड़ में 'हरिकीर्तन तरंगिणी' के छन्दे नाम में श्रीपदराय ने लगभग ६० पद दिये मिलते हैं। भक्ति और संकीर्तन की दृष्टि से इन दोनों का बड़ा महत्त्व है। श्रीपदराय के समय के एक अन्य हरिदास मत्त हैं—श्री व्यासराय जिन्होंने कन्नड़ में बहुत अच्छे भक्ति-गीत रचे हैं। कन्नड़ के हरिदासों में जो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। वे हैं—पुरन्दरदास और कन्नदास। पुरन्दरदास मत्त और नायक थे। इनका समय १२ वीं शताब्दी का प्रारम्भ और १६ वीं का पूर्वार्ध है। हरिदासों में यह प्रसिद्ध है कि पुरन्दरदास ने 'पुरन्दरदास विद्वत्' के नाम से ४ लाख ७२ हजार पद बनाए थे। परन्तु अब के के कारण हरिदासों में संकीर्तन पद्धति को प्रोत्साहन दिया। पुरन्दरदास के

भक्तों की लोक-प्रियता के कारण धीरे-धीरे बनकर बालिष्ठात्य संघीत का नाम 'कर्नाटक संघीत' पड़ा।

कर्नाटक के हरिदासों में पुरन्दरदास के बाद लोकप्रियता की दृष्टि से कनकदास का स्थान है। कुछ विद्वानों का मत है कि कनकदास श्री वैष्णवमत (रामानुज सम्प्रदाय) को मानने वाले भक्त थे। इसके प्रमाण-रूप में वे कनकदास द्वारा 'मोहन-छरदिणी' से उद्धृत प्रस्तुत करते हैं। श्री कारभरकर का मत है कि सम्भवतः कनकदास अपने जीवन के आरम्भिक समय में रामानुजाचार्य के श्री वैष्णव सम्प्रदाय के प्रति आदर का भाव रखते थे। लेकिन सन् १३२३ में व्यासराय से बीजा के उपरान्त वे माध्वमत के पक्ष में अनुयायी हो गये।^१ कुछ भी हो कनकदास पर श्री-वैष्णव मत का आंशिक प्रभाव अवश्य पड़ा है। कनकदास उल्बकोटि के भक्त विचारक और कवि थे। उन्होंने हजारों भक्तों के अतिरिक्त ३ काव्य-कृतियाँ भी रची हैं—'मरसिंह स्तोत्र' 'मोहन-छरदिणी' 'रामबाल्य-मन्त्र' 'हरि भक्ति-सार' और 'भक्त चरित्र'। 'हरि भक्त-सार' में भक्ति का सर्वोपरि महत्त्व नाम-महिमा आदि वर्णित है। कनकदास एक सुचारक भी थे। उनके असाधारण व्यक्तित्व का परिचय उनकी कृतियों से मिलता है। कह सकते हैं कि पुरन्दरदास और कनकदास कन्नड़-साहित्य में दो अमर नाम हैं।

परवर्ती भक्ति-सम्प्रदायों पर प्रभाव

भारतवर्ष के मध्यकालीन इतिहास की सबसे विशिष्ट और महत्वपूर्ण घटना भक्ति का जन-आन्दोलन है। भक्ति-आन्दोलन का उदय तो तमिळ-प्रदेश में हुआ था। परन्तु उसको देशव्यापी बनाने का श्रेय बाळभारती के परभाव माने जाने जाया जा रहा है। दक्षिण के इन आचार्यों ने संस्कार के मामला पर सख्त करने के निमित्त अपने दार्शनिक मतों की स्थापना की और ज्ञान-मार्ग की अपेक्षा सरलतर भक्ति-मार्ग की प्रतिष्ठा बनाने में लगी। भक्ति-उत्थों के विवेचन की प्रेरणा इन लोगों को पूर्व भक्त्याचार्य बाळभारती के 'प्रबन्ध' से मिली। बाळभारती तथा आचार्य—दोनों ही विष्णु भक्ति के अग्रणी प्रतिनिधि थे परन्तु दोनों में एक पार्थक्य है। बाळभारती की भक्ति उस पावन सलिला सरिता की नैसर्गिक धारा के समान है जो स्वयं उद्बलित होकर प्रसर मग्न हो जाती है और जो कुछ सामने आता है उसे सुरल बहाकर बलाव डेक देती है। आचार्यों की भक्ति उस छरदिणी के समान है जो अपनी सत्ता जमाए रखने के लिए स्थापित बानने वाले विरोधी पक्षों से लड़ती-झगड़ती बाने बढ़ती है।^२

बाळभारती की विचार-धारा का पर्याप्त प्रभाव उनके परवर्ती काल में ज्ञान

1 *Mystic Teachings of the Haridassas of Karnataka*—Dr A. P. Karmakar p 69

2 भागवत-सम्प्रदाय—श्री बसदेव उपाध्याय पृ० १२६।

लेने वाले दार्शनिक मतों पर पड़ा है। सबसे अधिक प्रभाव श्री रामानुजाचार्य के विधिष्टाईय मत पर देखा जा सकता है। विधिष्टाईय-वर्षन का सूत्रपाठ तो श्री नाथमुनि के समय में ही हो गया था। प्रबन्धम् के पदों का प्रचार करने वाले श्री नाथमुनि ने भाळ्वारों की विचार-धारा का कुछ शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया था। उस विचार-धारा को दार्शनिक रूप देकर मुट्टु दार्शनिक धरातल पर लाने का श्रेय श्री रामानुजाचार्य को है। स्वयं श्री रामानुजाचार्य ने प्रबन्धम् के महत्व को जानकर उसका प्रचार अपने शिष्यों के द्वारा करवाया था। अपने शिष्याओं के विवेचन के लिए उन्होंने 'प्रबन्धम्' से बड़ी सहायता ली है। सम्प्रदाय में यह प्रसिद्ध है कि वेद के तात्पर्य को समझने में कहीं भी कठिनाई होती तो श्री रामानुज प्रबन्धम् से उसके तात्पर्य को समझकर समुष्ट हो जाते थे। भाष्याल इत 'तिरुप्पावै' के प्रति श्री रामानुज का इतना प्रेम था कि श्री रामानुज को तमिल प्रदेश में तिरुप्पावै भीमर (तिरुप्पावै-प्रेमी) कहा जाता है। इसमें उन्हें नहीं कि श्री रामानुज ने भक्ति-धर्मों के विवेचन में 'प्रबन्धम्' से अवरम आचार लिया है। श्री रामानुज पर पड़े 'प्रबन्धम्' के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए श्री मध्वाचार्य स्वामी जी ने 'हाविशोपनिषद् प्रभाव सर्वस्वम्' नाम से एक ग्रन्थ तमिल में लिखा है। इस ग्रन्थ में उन्होंने अनेक प्रमाणों द्वारा यह स्थापित किया है कि श्री रामानुज पर प्रबन्धम् का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। यहाँ विस्तार में न जाकर, संक्षेप में भाळ्वारों की विचार धारा और विधिष्टाईय-वर्षन में बीच पड़ने वाले साम्य की ओर संकेत करना पर्याप्त है।

भाळ्वार नक्त मामले हैं कि ईश्वर समस्त जगत् का निमित्त कारण होते हुए भी उपादान कारण है। जगत् की सृष्टि भगवान् को सीमा से उत्पन्न है। जीव और जगत् भी निरपेक्ष तथा स्वतन्त्र स्वतन्त्र पदार्थ हैं तथापि ईश्वर के इन दोनों के भीतर अन्तर्निहित रूप से विद्यमान होने के कारण ये उनके अधीन रहते हैं। अतः जीव और जगत्—ब्रह्म के शरीर या प्रकार माने जाते हैं। ब्रह्म और जीव के बीच ऐपी-रीप संबंध-योग सम्भव है। भाळ्वारों ने माना है कि भगवान् मत्त पर अनुग्रह करने के लिए पाँच रूपों में प्रकट होता है—एक रूप ब्रह्म रूप अन्तर्निहित रूप और अर्चविचार रूप। भाळ्वारों के ये दार्शनिक विचार ही पूर्णरूपेण विधिष्टाईय वर्षन में बीज्यत हुए हैं।^१ एकर के 'अयमिच्छा' के विरुद्ध भाळ्वारों की धारणा पक्की है। अतः श्री रामानुज ने स्वीकार कर संकर के मायावाद का खण्डन किया।

श्री रामानुज ने अपने सम्प्रदाय की एक गद्दी मैसूर में स्थापित कर अपने विधिष्टाईय-तत्वादी विचारों का प्रचार किया। इस प्रकार भाळ्वारों की मल्लि-गुड्डि से पुष्ट रामानुज-सम्प्रदाय के विचारों का क्लृप्तिक में प्रचार हुआ। तिलु रामानुज की श्रुति के ती बपों के भीतर एक अन्य मन क्लृप्तिक में उत्पन्न हुआ जिनके प्रतिप्रपक थे श्री मध्वाचार्य। माध्वमत व्यवहार-पत्र में पूर्ण रूप से भक्तिवादी है। उसका

१ इस विषय पर प्रथम अध्याय में विस्तार से लिखा जा चुका है।

अप्यारम-यत्न मेववाही अथवा ईतवाही है। श्री रामानुज और श्री मध्व के भक्ति-सम्बन्धी विचारों के बहुत कुछ साम्य है। परन्तु श्रीव और ईश्वर के सम्बन्ध के विषय में भिन्न नहीं है। माध्व मत श्रीव अथवा, ईश्वर आदि में पारस्परिक भेद मानता है। श्री मध्व ने अपने ही एक मित्र शार्ङ्गिक मत सड़ा किया हो किन्तु उस मते मत की प्रेरणा भी उन्होंने श्री रामानुज की विचार-धारा से ही प्राप्त की है। मध्व ने श्री (आठवार और) रामानुज को तरह शंकर के विचार के बिच्छवण को सत्य माना है। श्री मध्वाचार्य ने अपने सिद्धान्तों के निरूपण के लिए शम्भु प्रणयन करने के पूर्व सारे दक्षिण भारत की यात्रा की थी। तमिळ-प्रदेश में यात्रा करते समय उन्होंने आठवार-ग्रन्थों का परिचय उनके ऊपर निकसे माध्य द्वारा प्राप्त किया होगा और आधिक रूप में प्रबन्धम् की विचार-धारा को अपनाया होगा। यह मानना उचित ही है कि श्री मध्व पर आठवारों के विचारों का प्रभाव श्री रामानुज के विधिप्याठ के माध्यम के पड़ा।

दक्षिण के तीसरे प्रमुख आचार्य निम्बार्क हैं। आचार्य निम्बार्क बड़ और श्रीव के सम्बन्ध में भेदाभेद या ईताईत के प्रतिपादक हैं। उनकी माध्य सम्मति में श्रीव अवस्था-भेद से बड़ा के साथ मिश्र भी है अभिन्न भी। यह निम्बार्क मत का निर्दिष्ट तत्त्व है। निम्बार्क मत के भक्ति-सम्बन्धी विचारों में उनके पूर्व के आचार्यों के विचारों में कोई विधेय अन्तर नहीं है। निम्बार्क मत में भगवान् की प्राप्ति का साधन भक्ति है। यही आठवारों का भी विचार है। निम्बार्क मत में यह भक्ति पाँच भागों से पूर्ण नहीं मयी है—साम्त वास्य, सत्य वास्तव्य और उज्ज्वल। उज्ज्वल रस के भक्त—गोपी और श्याम हैं। आठवारों ने पहले से ही इन पाँच प्रकारों की भक्ति का मिश्रण किया है। उज्ज्वल भाव की शक्ति—आठवारों के माधुर्य भाव की शक्ति ही है। आठवारों का प्रपत्ति-तत्त्व भी निम्बार्क मत में स्वीकृत है। जो कि निम्बार्क दक्षिण के ही आचार्य थे तथा उनके समय तक दक्षिण भारत में आठवारों के विचारों का प्रचार हो चुका था अतः यह मानना संभव ही है श्री निम्बार्क ने भक्ति-विवेचन में आधिक रूप में ही सही आठवारों की विचारधारा का आचार लिया था।

दक्षिण भारत में उत्पन्न एक अन्य सम्प्रदाय 'विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय' है। इस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठायक श्री विष्णुस्वामी तमिळ प्रदेश के कांचीपुरम् नगर के वासी माने जाते हैं। इनका काल निश्चित रूप से आठवारों के पश्चात् ही पड़ता है। विष्णुस्वामी की विचार-धारा और आठवारों की विचार धारा में बहुत कुछ साम्य है। विष्णुस्वामी का आविर्भाव उस समय हुआ जबकि तमिळ-प्रदेश में 'प्रबन्धम्' का महत्त्व प्रकाश में आ रहा था। अतएव विष्णुस्वामी की विचार-धारा पर 'प्रबन्धम्' के आधिक प्रभाव के पड़ने की सम्भावना अवश्य है।

उपपुस्तक सम्प्रदायों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों में जो भी तमिळ-प्रदेश में माने और तमिळ-प्रदेश के विभिन्न भक्ति-वालों की यात्रा कर गये हैं

भाष्यकारों के विषय में बहरस बिबरण प्राप्त कर सके। उन भाषायों ने भाष्यकारों की पूर्व प्रचारित भक्ति-पद्धति का मूल्यांकन कम में मान्यता दी है। बड़ी कारण है कि उत्तर के ब्रह्म-सम्प्रदाय और शैतन्य-सम्प्रदाय के भक्ति-सम्प्रदायों विचारों और भाष्यकारों के विचारों में बहुत कुछ साम्य बीज पड़ता है।

१६वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य का मूल्यांकन

ईसा बी १६ वीं शती हिन्दी साहित्य के इतिहास में बिसिष्ट महत्व रखती है। जितने विद्याल साहित्य का निर्माण इस एक शताब्दी में हिन्दी में हो सका उसका उसके पहले या बाद में किसी एक शताब्दी में सम्भव नहीं हो सका। परिमाण में ही क्यों विषय की गम्भीरता की दृष्टि से भी १६वीं शती का हिन्दी-साहित्य सर्वाधिक समृद्ध है। इस शताब्दी में ही हिन्दी के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि विद्यमान थे। राम भक्ति-काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास सुफी प्रेम-काव्य के मूर्धन्य कवि मलिक मुहम्मद जायसी और कृष्ण-भक्ति-काव्य के 'सूर' भक्त-प्रवर सूरदास इसी शताब्दी की अर्द्धकृत करने वाले कवि श्रेष्ठ हैं। हिन्दी के समस्त भक्ति-साहित्य का महत्त्व-केन्द्र १६ वीं शती का साहित्य ही है। आलोच्य हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य का मूल्यांकन कई दृष्टिकोणों से निम्नांकित स्तम्भों में प्रस्तुत किया जाता है :—

हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य-परम्परा में १६ वीं शती के कृष्ण भक्ति-काव्य का स्थान

कुछ विद्वानों का मत है कि हिन्दी में कृष्ण भक्ति-काव्य की सर्वना विशेष रूप से १६वीं शताब्दी में हो प्रारम्भ हुई और उसके पूर्व की कृष्ण-भक्ति-प्रधान कोई बिसिष्ट रचना हिन्दी में उपलब्ध नहीं है। डा० श्रीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है— 'सोमहरी शताब्दी से पहले भी कृष्ण-काव्य सिखा गया था, लेकिन वह सब का सब या तो संस्कृत में है, जैसे जमशेब कृत 'बीत-मोक्षिन्' या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में जैसे मैथिल कोशिल विद्यापति कृत 'पदावली'। ब्रजभाषा में लिखी हुई १६वीं शताब्दी से पहले की शायिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।' परन्तु आधुनिक शोध के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि ब्रज-भाषा में १६वीं शती के पूर्व भी कृष्ण-भक्ति प्रधान कुछ अच्छी रचनाएँ हुई थीं। डा० शिवप्रसाद सिंह ने अपने शोध-ग्रन्थ "सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य" में यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि हिन्दी में कृष्ण-काव्य की परम्परा काफी पुरानी है, कम से कम उसका प्रारम्भ १२ वीं शताब्दी तक ठा मानना ही पड़ता है।^१ ब्रजभाषा की जननी 'दीर्घसेनी अपभ्रंश' में भी कृष्ण सम्प्रदाय काव्य

१ नाम माहात्म्य—बी बर्मा—अगस्त १९४० 'ब्रजभाषा' नामक लेख से उद्धृत।

२ सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० २२०

मिले गये। इनमें सर्वाधिक महत्व की रचना पुण्यवन्त कवि का 'महापुराण' है जिसमें कृष्ण-जीवन का विद्यार विवरण दिया गया है। इसमें कृष्ण-भक्ति का स्पष्ट रूप तो दीख नहीं पड़ता बल्कि कृष्ण जीवन से सम्बन्धित अनेक वटमाएँ बणित हुई हैं। १२ वीं शताब्दी में हेमचन्द्र के द्वारा संकलित जयभक्त के दोहों में वा ऐसे हैं जिनमें कृष्ण-सम्बन्धी वर्णन हैं।

कृष्ण भक्ति-काव्य का वास्तविक रूप विगत राजभाषा में १४ वीं शती के आस-पास निमित्त होने लगा। 'प्राकृत पैवसम्' का रचना काल १४ वीं शती के पहले का माना जाता है। यह एक संकसन-ग्रन्थ है, जिसमें १४ वीं शती तक के विगत राजभाषा के काव्यों से छन्दों के उदाहरण दिये गये हैं। इसमें कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी कई पद संकलित हैं। कृष्ण के अतिरिक्त संकर विष्णु आदि की स्तुति भी कई पदों में की गई है। इन पदों का विश्लेषण करने पर भक्ति के कई तत्वों का संज्ञान मिलता है। प्रेम भक्ति का सुन्दर और मार्मिक विवरण हुआ है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त १६ वीं शती के पूर्व की राजभाषा में रचित कुछ ऐसी रचनाएँ भी मिलती हैं, जिनमें कृष्ण भक्ति का कोई न कोई रूप मिल जाता है।

प्रायः विद्वान् १६ वीं शती के पूर्व के दो विशिष्ट कृष्ण भक्ति-ग्रन्थों की वर्णन करते हैं, जिन्होंने १६ वीं शती तथा बाद के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों को प्रभावित किया है, वे हैं—जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' और मैथिल कोकिल विद्यापति की 'पदावली'। जयदेव राजा लक्ष्मण सेन (१२ वीं शती) के दरबार के कवि थे। जयदेव ने 'गीत-गोविन्द' में कामस-काल-पदावली में राजा-कृष्ण-प्रेम का वर्णन प्रस्तुत किया है। जयदेव के पद शृङ्गारयुक्त होने पर भी उनके मधुर संकीर्ण ने अनेक परवर्ती कवियों को प्रभावित किया है। जयदेव की विष्णु अनुरक्ति-सूक्त और शृङ्गारपरक भाव-बारा के उत्तराधिकारी मैथिल कोकिल विद्यापति हैं। विद्यापति सन् १४०० ई० के आस-पास जीवित थे। प्रचान्त इन्होंने अपनी रचनाएँ संस्कृत में लिखीं। इनके लिये पद संस्कृत के अतिरिक्त ब्रजवृद्ध और मैथिली में भी मिलते हैं। विद्यापति ने अपनी कविता में राजाकृष्ण-प्रेम का जो वर्णन प्रस्तुत किया है, उसमें शृङ्गार का प्रस्तुतन स्पष्ट रूप से मिलता है। विद्यापति के भक्त-हृदय का रूप उनकी वासनामयी कल्पना के आवरण में ढिप जाता है। डा० रामकुमार वर्मा का कथन है—'विद्यापति ने राजा-कृष्ण का जो चित्र खींचा है, उसमें वासना का रंग बहुत ही प्रखर है। आर्य्य देव के प्रति भक्त का जो विचार होना चाहिये, वह उसमें नेसमान भी नहीं है।' विद्यापति के कुछ ऐसे भी पद मिलते हैं जिनमें विष्णु भक्ति के वर्णन होते हैं। किन्तु ऐसे पद बहुत कम हैं।

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा पृ० १०८ (चतुर्थ संस्करण)

हिन्दी में भक्ति प्रधान कृष्ण-काव्य का प्रथम विशेष रूप से १६वीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हुआ। इसीसे से जाने जाने भक्ति आन्दोलन के प्रवाह ने १४वीं १५वीं शताब्दियों में हिन्दी प्रदेश को आप्लावित कर दिया और १५वीं शती के उत्तरार्ध में समस्त हिन्दी-प्रदेश में भक्तिमय वातावरण उत्पन्न कर दिया। फलस्वरूप अनेक भक्ति-संप्रदायों का जन्म हुआ। भूतबोध को केन्द्र बनाकर कई कृष्ण भक्ति प्रधान संप्रदाय पनपे। इन संप्रदायों से प्रभावित होकर भक्त-कवियों साहित्य सर्जन करने लगे। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर काव्य के क्षेत्र में पर्याप्त करने वाले इन विभिन्न संप्रदायों के कर्त्तव्यों ने १६ वीं शती में उच्च कोटि के भक्ति-साहित्य का निर्माण किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस शताब्दी में भक्ति का स्वर सबसे ऊँचा था। बल्लभ संप्रदाय, चैतन्य संप्रदाय मिम्बाई संप्रदाय राधावल्लभ संप्रदाय हरिवासी संप्रदाय के सभी श्रेष्ठ कवि इसी शताब्दी में हुए। इन कवियों ने अपने-अपने संप्रदाय के अन्तर्गत रहकर ही कृष्ण भक्ति-काव्य का सर्वजन किया। फिर भी उनका साधन काव्य भक्ति-भावना से भीतप्रोत है। भक्ति-भावना और काव्य-सौन्दर्य का दृष्टि से १६ वीं शती का ब्रजभाषा-कृष्ण-काव्य अधिक समृद्ध है—(इस काव्य के भाव-पक्ष और कला-पक्ष का विस्तृत विवेचन पिछले अध्यायों में किया जा चुका)।

१६ वीं शती के प्रथम ही हिन्दी में अनेक कृष्ण भक्त कवि हुए हैं। १७ वीं शती के उत्तरार्ध में आकर कवियों का झुकाव शृङ्गार की ओर अधिक रहा। १६ वीं शती में भक्ति के क्षेत्र में जो भावबोध था वह १७ वीं शती के अन्त में बाद के काव्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—“विक्रमोकी १७ वीं शताब्दी के मध्यम भागिक काल की पवित्रता नष्ट होने लगी थी। उसमें शृङ्गार के अत्यधिक प्राधान्य ने वाचना के बीच को दिये थे। राधा और कृष्ण की विनय भव कवित्त और सर्वो में प्रकट होकर नायिका और नायक के पदों की कुरूप-वर्णक पहिलियां सुलझाने लगी थी।”^१ तात्पर्य यह है कि १६ वीं शती के बाद के कृष्ण-काव्य में भक्ति-भावना का प्राधान्य नष्ट हो गया। इस प्रकार हिन्दी में कृष्ण भक्ति-काव्य की परम्परा पर दृष्टि डालते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि १६ वीं शती का ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य ही हिन्दी का सर्वाधिक समृद्ध कृष्ण भक्ति-काव्य है।

भक्ति-आन्दोलन और १६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण भक्त-कवि

पीछे सिद्धा जा चुका है कि इसीसे से जाने जाने भक्ति-आन्दोलन ने इसी वी १४ वीं १५ वीं शताब्दी में हिन्दी-प्रदेश में आकर एक व्यापक जन-आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। समस्त हिन्दी-प्रदेश में १५ वीं और १६ वीं शताब्दियों में भक्ति-

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा पृ० ११६ (चतुर्थ संस्करण)

आन्दोलन के व्यापक प्रभाव के दर्शन किये। भक्ति इस युग की सबसे ऊँची आवाज थी। भक्त-कवियों ने जनता की भाषा में उच्च कोटि के भक्ति-पात्रों को अभिव्यक्त कर एक भक्तिमय वातावरण उत्पन्न कर दिया। इस युग के भक्ति-आन्दोलन के व्यापक रूप के विषय में आरंभ्य चर्चित होकर डा० प्रियसन कहते हैं— “काई भी व्यक्ति जिसे कि १५ वीं शताब्दी तथा बाद की शताब्दियों के साहित्य का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ है उस भाषी व्यवधान को सक्षम किये बिना नहीं रह सकता जो प्राचीन एवं नूतन धार्मिक भाषनाओं में दृष्टिगोचर होता है। हम अपने को इस प्रकार के धार्मिक आन्दोलनों के सामने पाते हैं जो उन समस्त आन्दोलनों से कहीं अधिक विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है। इस युग में बर्म ज्ञान का नहीं, अपितु भाषावैद्य का विषय हो गया। यही से हम साधना एवं प्रेमास्वाद्य के प्रवेश में प्रवेश करते हैं।” भक्ति-आन्दोलन की व्यापक और सत्तिमासी जन आन्दोलन के रूप में परिणत करने में १५वीं शती के हिन्दी भक्ति-साहित्य का बड़ा हाथ रहा है। किन्तु ही भक्त इन भक्त कवियों के पदों को पानाकर आरम विमोह हो जाते थे। समस्त समाज ने इस युग के भक्ति-साहित्य-वाचक की तरफ तरंगों में मग्न और अववाहन कर फिर छाति प्राप्त की। भक्ति-आन्दोलन को आलोच्य हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य की रेत बड़ी महत्ता की है।

१६ वीं शती के हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य का व्यापक प्रभाव

(अ) धार्मिक और सामाजिक जीवन

आलोच्यकालीन कृष्ण भक्ति-काव्य में तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक जीवन की सुन्दर झलकी मिलती है। हिन्दी प्रवेश के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री हमें आलोच्य हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य में मिल जाती है। आलोच्य कृष्ण काव्य में तत्कालीन समाज में प्रचलित सरकार पूजा प्रथ उत्सव मनोरंजन विश्वास आदि के न्यूनाधिक विवरण मिलते हैं। हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में अनेक उत्सव और पर्वों का विस्तृत वर्णन किया है। इस उत्सवों में बहिराबा उत्सव, शीपावली धनकुटाउत्सव यौबधन पूजा भाग (झोली) आदि का विस्तृत परिचय मिलता है। इन उत्सवों के अवसर पर तत्कालीन लोक में विविध प्रकार के गीत गाये जाते थे। परवर्ती काल में इन अवसरों पर आलोच्य कवियों के तरंगमयी गाये जाने लगे।

उत्सवों के अतिरिक्त कृष्ण भक्त कवियों ने विविध संस्कारों का भी विवरण दिया है। कृष्ण-काव्य में वर्णित संस्कारों में जन्म-संस्कार, नामकरण संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह संस्कार अष्टोत्सव संस्कार आदि का हमें विस्तृत विवरण मिलता है। आलोच्य कृष्ण काव्य में विशेषकर अष्टोत्सव-काव्य में ब्रज संस्कृति का सुन्दर चित्रण हुआ है। विविध शृंगार—स्था-शृंगार, पुष्प शृंगार, वास-शृंगार,

घामुजों का श्रु पार केश-कसाप विविध आभूषण आदि तक का सूक्ष्म वर्णन मिलता है। ब्रजवासियों के विविध विश्वास और मायताओं का भी परिचय मिलता है। ब्रज-वासियों में पुनर्जन्म आधु-दोषा अनुभूत अपसक्तुम आदि अनेक बातों में विश्वास था। वे अपने वैदिक जीवन में इन बातों का ध्यान रखते थे। ठरकासीन समाज में गायी का क्या स्थान था, इसका भी पता चल जाता है।

ब्रज-राज पर प्रसन्नता प्रकट करने के लिए जिन वाद्य-यन्त्रों का प्रचलन था उनका भी परिचय मिलता है। ब्रज में मनोरंजन के लिए बस-प्रीड़ा रास खेल हिंडोले बाबेट नीपड़ नीगान आदि का प्रयोग होता था। मनोरंजन के विविध सामनों का विवरण मिलता है। ब्रज-समाज में बाह्यण श्रुति आदि का क्या स्थान था इसका भी पता चलता है। आतिथ्य उत्कार शिष्टाचार और अभिवादन के ढंग का भी परिचय मिलता है। तात्पर्य यह है कि आत्मोप्यन्तासीन कृष्ण-काव्य में सामाजिक और धार्मिक जीवन का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में ठरकासीन सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का परिचय दिया है। ब्रज-संस्कृति के अध्ययन में आत्मोप्यन्त कृष्ण भक्ति-काव्य बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होता है।

(आ) विविध कलाओं पर प्रभाव

विविध कलाओं की भी वृद्धि में आत्मोप्यन्त कासीन कृष्ण-काव्य का योगदान स्तावनीय है। शिल्प-कला चित्र-कला और संगीत-नृत्य-कला पर प्रत्यक्षरूप से अपना अप्रत्यक्ष रूप से कृष्ण भक्ति-काव्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। बहुत प्राचीन काल से ही हम देश में मन्दिरों का निर्माण होता आ रहा है। विदेशी छात्रकों के छासन-नाम में धार्मिक स्वातन्त्र्य के न होने से कारण मन्दिर-निर्माण में बाधा पड़ी। १६वीं शताब्दी में अकबर के छासन-काल में उसकी धार्मिक उदारता के कारण अनेक पुराने मन्दिरों की मरम्मत और नये मन्दिरों के निर्माण को अवसर मिला। उस समय के पुराने मन्दिरों के फलस्वरूप अनेक मन्दिर निर्मित हुए। मन्दिरों में समारोहपूर्वक पूजन भजन गायन, बध्नादि की व्यवस्था हुई। इन अवसरों पर कृष्ण भक्त-कवियों के पद गाये जाते थे। मन्दिरों में स्थित भगवद्ग्रन्थों की सजावट श्रु पार बाह्य रूप आदि के निर्माण में कृष्ण भक्ति-काव्य का बड़ा हाथ था। कृष्ण भक्त-कवियों ने अपने काव्यों में अपने आराध्य के जिन जिन रूपों का वर्णन किया है उनके अनुरूप मुर्तियाँ बनती थीं और उनका श्रु पार होता था।

आत्मोप्यन्त कृष्ण भक्ति-काव्य ने चित्र-कला की अभिवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। कृष्ण भक्त-कवियों की चित्र-योजना हिन्दो-काव्य में अतिहास में एक विविध स्थान रखती है। कृष्ण की रूप प्रीति तथा उनकी लीलाओं के चित्रण के लिए इन कवियों ने अपनी कविता का अन्तिम-वर्णन चित्रकला के रूप किया और ठरकासीन

चित्रकला को अत्यन्त सौन्दर्य की निधि राजा-कृष्ण वैसा आसम्भन प्रदान किया। इन कवियों को रचनाओं की आठवार-भूमि पर पल्लवित और विकसित मध्य-कालीन चित्रकला की राजपूत सीसी में राजा और कृष्ण की सीसाएँ उतनी ही सजीव और प्राणवन्त हैं जितनी कि कृष्ण भक्त-कवियों द्वारा बखित सीसाएँ। दोनों में एक आश्चर्यजनक एकक्यता है, जिससे इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि ये कवि चित्रकला में भी चिड़हस्त थे। चित्रकला में अपने इसी प्रवीणता के कारण उन्होंने अनेक भावना-चित्रों का निर्माण किया है जिनमें कम से कम की प्रतीति चित्र के विभिन्न स्थलों में संतुलन और सामंजस्य साध-योजना साक्ष्य-योजना बहिष्कार-यग इत्यादि का सफल निबिह किया गया है। उनको अनुमति के साथ इन चित्रों में अमर हो गये हैं।^१

जिस तरह कृष्ण भक्त-कवियों की चित्र-योजना ने चित्रकला को आठवार-भूमि प्रदान की उसी तरह संघीत के उस उत्थान-भुग में उनका योग बहुत महत्वपूर्ण रहा। इन कवियों ने शास्त्रीय संगीत को एक नई विधा में मोड़ दिया। साध ही साध उन्होंने लोक-संगीत के विभिन्न उपकरणों का परिष्कार किया। आलोच्य कवियों ने चित्राओं में उस समय में प्रचलित प्रमुख संगीत-शैलियों का प्रयोग हुआ है। प्रमुख शैली और अमर शैली—दोनों के उपयुक्त पदा का निर्माण उन्होंने किया है। इन शैलियों के अलावा भजन-कीर्तन और लोक-गीत शैलियों का भी समावेश आता है। कवियों की रचनाओं में हुआ है। इसके द्वारा उनकी रचनाएँ सर्वसाधारण में अत्यन्त लोकप्रिय हो गयीं। संगीत-शैलियों के प्रयोग के अतिरिक्त इन कवियों ने अपने पदों में विभिन्न राग-रागिनियों का प्रयोग किया है और शास्त्रीय संगीत को जीवित की है।

कृष्ण-भक्ति-काव्य में विभिन्न सतित कलाओं का विन्यास इतने संतुलित रूप में हुआ है कि पुष्क-पुष्क विवेचन करना कठिन है। चित्रकला संघीत-कला मूल्य कला यदि कलाओं में किस कला को अधिक प्राधान्य दिया गया है, यह निर्धारित करना कठिन है। आलोच्य कवियों की चित्र-कल्पना की सम्राज्यता का बहुत कुछ श्रेय उनके भारतीय मूल्य की परम्परागत और सामयिक शैलियों के पूर्ण ज्ञान को है। मूल्य की मुद्राओं तथा भावों के कलापूर्ण प्रदर्शन के लिए ही उन्होंने बाह्य-अभिनय (शब्द का प्रयोग) किया है। उनके द्वारा नियोजित मूल्यों के भाव-विन्यास और कविता के शब्द-विन्यास में पूर्ण सामंजस्य है। मूल्य की मुद्रा तथा कविता के साथ एक-दूसरे के प्रेरक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इनके मूल्यों में आत्य शैला प्रधान है। शब्द की समता के लिए प्रतिपाद्य में कोई स्थान नहीं था। राग-मूल्य की मृद्वङ्गीकृत मुद्राओं और भावों की अभिव्यक्ति के लिए इन कवियों ने प्राचीन भारतीय मूल्य-शैलियों का ग्रहण किया।

१. कलाभाषा के कृष्ण-भक्ति-काव्य में अभिव्यक्ति-विन्यास—डा० सावित्री सिन्हा पृ० १०६

आलोच्य कवियों के लीला-गान के पद्यों में चित्रकला और वायन की जीति ही नृत्य कला की भी आचारभूमि प्रदान की है ।^१

(इ) ब्रजभाषा पर प्रभाव

मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति-काव्य की भाषा एक मात्र ब्रजभाषा है । ब्रजभाषा की समृद्धि और परिष्करण में १६ वीं शती के कृष्ण-भक्त-कवियों का एक निश्चित और बहुमुख्य योग है । मुरदास जी ने ब्रज भाषा की भाषा के लिए 'ब्रजभाषा' शब्द का प्रयोग न कर उसे केवल 'भाषा' ही कहा है ।^२ ब्रजभाषा के सम्बन्ध में मिर्जा खाँ ने सन् १६७६ ई० में एक पुस्तक लिखी या जिसमें 'हिन्दी' और 'भाषा दोनों शब्दों को पर्यायवाची माना है ।^३ इस ग्रन्थ में ब्रज प्रदेश और उसके वासवास की बोली को ही 'भाषा' कहा गया है । साहित्य में इस भाषा का प्रथम प्रयोग चन्दबरबायी कृत पृथ्वीराज रासो में माना जाता है ।^४ उसके पश्चात् बहुत समय तक साहित्य में ब्रज भाषा का प्रयोग नहीं मिलता । ब्रजभाषा मध्य के प्रथम लेखक गोरखनाथ की शायियों में ब्रजभाषा का प्रथम रूप मिलता है ।

ब्रजभाषा में विशेष रूप से साहित्य का आरम्भ उस समय हुआ जब गोवर्धन में श्रीनाथ जी के मन्दिर का निर्माण कर महाप्रभु ब्रजभाषायें ने कीर्तन मञ्चन इत्यादि की व्यवस्था की थी । उनके आश्रय में मुरदास जी तथा अन्य भक्तों ने ब्रजमण्डल की स्थानीय बोली में योग मिले और गाये । इस प्रकार साधारण बोली को एक साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित होने को सुवसर मिला ।^५ मुरदास जी ने स्थानीय ब्रजभाषा का प्रयोग बिना सुषमता और कुशलता से किया है वह भाषा की दृष्टि से बेबाह है । राजावस्तभोय सम्प्रदाय के संस्थापक श्री हितहरिबन्ध के काव्य की भाषा निश्चय ही विमुक्त ब्रजभाषा है । हाँ उनकी शैली पर संस्कृत का प्रभाव भव्य है । नाभादास और नरोत्तमदास ने ब्रजभाषा को एक साहित्यिक भाषा के रूप में अपनाया है । रसखान की भाषा में विमुक्तता और बहुमुक्त प्रवाह है । उनकी भाषा में मूल साहित्यिक ब्रजभाषा के उत्कृष्ट चटाहरण मिलते हैं । आलोच्य कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में प्रयुक्त भाषा का निरीक्षण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने संस्कृत और हिन्दी की अन्य उपभाषाओं

१ ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति-काव्य में समीप्यवगा शिष्य—डा० सावित्री मिश्रा पृ० ४८१

२ मुरदास सोई कहे ब्रज भाषा करि माई ।

—मुरदास (द्वयम् स्तम्भ) पृ० २२५

३ सूर और उनकी साहित्य—डा० हरबलाल शर्मा पृ० १०३

४ ब्रजभाषा—डा० योगेश्वर शर्मा पृ० १८

५ वही पृ० २२

से कर्म बहुत कर ब्रजभाषा के रूप को परिमार्जित और परिष्कृत किया है और कृष्ण की सीमा का गान करने के लिए अपनी भाषा में समस्त मधुर उपकरणों का समावेश किया है। माद-सौन्दर्य और चित्र-कल्पना के समर्थ संयोजन का सबसे बड़ा श्रेय उनकी भाषा को है। प्रतिपाद्य के उपयुक्त भाषा प्रयोग—उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वास्तव में प्रारम्भ में ही सूरदास आदि ने ब्रजभाषा को इतना सुन्दर मधुर और आकर्षक बना दिया था कि लगभग ४०० वर्षों तक उत्तर-पश्चिमी भारत का कविता का सारा—विराम प्रेम प्रतीति भजन भाव उसके द्वारा अभिव्यक्त हुआ। आत्मोन्मत्तात्मन कृष्ण भक्त कवियों की यह हिन्दी भाषा को सबसे बड़ी देन है।

पिछले पृष्ठा में बाळ्यार भक्त तथा १६वीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों के नामों का जो मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाळ्यार-काव्य और १६वीं शती के हिन्दी कृष्ण-काव्य अपने-अपने क्षेत्रों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण भक्ति-काव्य हैं और इनका बहुमुखी प्रभाव भाषा साहित्य समाज, कला आदि पर पड़ा है।

उपसंहार

प्रस्तुत अध्ययन के मूस में मुख्य रूप से दो चर्चे हुए हैं। प्रथम चर्चेस्य यह रहा है कि मारनीय भक्ति-आन्दोलन में बाळ्यार भक्तों के महत्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डालना तथा परवर्ती भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले 'प्रबन्धम्' के तत्त्वों का सामान्य विश्लेषण प्रस्तुत करना। चूंकि अभी तक किसी विद्वान् द्वारा बाळ्यारों के साहित्य का बंसीर अध्ययन नहीं किया गया अतः उनका वास्तविक महत्वपूर्ण रूप प्रकाश में आ नहीं सता। प्रबन्धम् भक्ति-आन्दोलन का मूल-ग्रन्थ टह्रता है, अतएव भक्ति-आन्दोलन के विविध सङ्घर्ष में उसका मूल्यांकन उचित समझ गया है। दूसरा चर्चा यह रहा है कि बाळ्यारों के भक्ति-काव्य की तुलना १६वीं शती के हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य से करके कई दृष्टिकोणों से दोनों के साध्य और वैयग्य को स्पष्ट किया जाय।

भक्ति-आन्दोलन बिजली की चमक के समान अचानक उत्पन्न नहीं हुआ। उसका काफी लम्बा इतिहास है। इस भक्ति की शीघ्र यात्रा का उत्पन्न तमिळ-प्रदेश है। ईसा की पाँचवीं और छठी शताब्दियों में तमिळ-प्रदेश की धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों ने बाळ्यार भक्तों को जन्म दिया। बौद्धों और जैनों के निरे हुए आचारों और विचारों से तंग आने वाली जनता को ऐसा मार्ग दिखाने के लिए, जिसमें सब समान रूप से आराम-शान्ति प्राप्त कर सकें और वैदिक धर्म को जो अब एक यज्ञादि कठिन नियमों को पचने बाधा है, सरल बनाकर मुक्ति के साधनों को सुलभ और सर्व साधारण के लिए प्राप्य बनाने के लिए हिन्दू-धर्म में सुधारकों की आवश्यकता हुई। इस आवश्यकता की पूर्ति करते हुए बाळ्यार भक्ता ने भक्ति का एक प्रवस पाया

हवी को बार की सताशियों में उत्तर की ओर प्रवाहित हुई। भक्ति-आन्दोलन को न-आन्दोलन के रूप में व्यापक और शक्तिशाली बनाने में 'प्रबन्धम्' का विशेष हाथ है। अनायास ही भक्त-हृदय की संज्ञियों को झेहत कर देने वाले आळवारी के भाव व पदों ने जनता में भक्ति-भावना को जगाकर सबन एक भक्तिमय वातावरण उत्पन्न किया। आळवारी के पश्चात् उनकी विचार-धारा से प्रभावित अनेक भाषायों में भक्ति-आन्दोलन को जारी रखा। कमलम्बम् यह भक्ति-आन्दोलन भाव की सनाशियों उत्तर भारत की ओर उन्मुख हुआ। श्रीमद्भारत में आळवारी के द्वारा बलावे ने इस भक्ति-आन्दोलन को मजबूत करके ही कहा गया है— 'उपमा ब्रह्मिणे तातु' । भक्ति-आन्दोलन के प्रारम्भिक प्रवक्तृओं के रूप में आळवारी का स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ है। उनका 'प्रबन्धम्' भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ इसलिए ठहरता है कि 'बन्धम्' के सामान्य भक्ति-राश्यों ने परवर्ती भक्ति-साहित्य को और विविध तत्वों से लैरी कृष्ण भक्ति साहित्य को व्यापक रूप में प्रभावित किया है।

हिन्दी भी साहित्य का आन्दोलन अथवा मूल्यांकन उस साहित्य की तुलना अन्य सम्बन्धी साहित्य से करने पर ही उचित ढंग से हो सकता है। दो साहित्यों के समात्मक अध्ययन द्वारा ही नियम विवेचन में सूक्ष्मता अथवा स्पष्टता आ सकती है। ६ वीं शती का हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य कई दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है। आळवारी भक्ति-काव्य से १६ वीं शती का हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य बहुत कुछ मिलता जुलता। दोनों काव्यों की समान विषयताओं पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से दोनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। भक्ति के क्षेत्र में दार्शनिक विचारों के क्षेत्रों में इन-किन बातों में दोनों क्षेत्रों के कवियों के विचार, भाव भावि समान हैं, इसकी एक प्रतीति प्रस्तुत की गयी है। कव्य-कला की कसौटी पर दोनों काव्यों का परीक्षण भी किया गया है। निष्कर्ष यह निकलता है कि 'प्रबन्धम्' अपने क्षेत्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ ठहरता है और १६वीं शती का कृष्ण-काव्य हिन्दी का महान् भक्ति-काव्य माना जाता है। दोनों का प्रभाव बहुमुखी है। दोनों क्षेत्रों के कवियों के विचारों में मानता देखकर आश्चर्य होता है। दो भिन्न क्षेत्रों के दो भिन्न भाषाभाषी दो भिन्न क्षेत्रों के कवियों के विचारों में बिल्कुल पड़ने वाले साम्य को देखने पर आश्चर्य होता है। उन्मुख बात है यह। इतना अधिक साम्य हिन्दी कृष्ण भक्ति-काव्य का अन्य किसी भाषा के साहित्य से कहावित ही हो सकता है।

तमिल ने भक्ति-आन्दोलन का प्रारम्भ किया। हिन्दी ने उस आन्दोलन की राफावट पर पहुँचा दिया। तमिल ने एक ही भाषाओं को दिया और हिन्दी ने एक ही 'मीरा' को। तमिल ने 'नम्माळवार' और 'परियाळवार' का दिया तो हिन्दी ने 'सूरदास' और 'परमानन्ददास' को दिया। तमिल में एक 'तुलसीदास' है तो हिन्दी में एक 'रघुनाथ' है। इन दो दूरदर्शी शायरों को एक सूत्र में बाँधने वाली भक्ति-शक्ति है। इन दोनों के काव्यों के मूल में भक्ति ही प्रधान है। भक्ति का इतिहास तुलनात्मक है। आळवार भक्त, भक्ति-श्रद्धालु की प्रारम्भिक कविताएँ हैं तो १६वीं शती

के हिन्दी कृष्ण भक्त कवि उस शृङ्गला की अन्तिम कड़ियाँ हैं। दोनों के बीच की कड़ियाँ विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायों के प्रबल क आचार्यगण हैं। कास से, स्वास से दूरवर्ती दो झों के कवियों को एक मूल में बाँधने वाला भक्त आचार्यगण हैं। इस इन भक्त-आचार्यों को तमिळ और हिन्दी के भक्ति-शरोवरों को सम्बद्ध करने वाला एक नासा कह सकते हैं। दक्षिण और उत्तर की सांस्कृतिक एकता को बनाये रखने में इन आचार्यों का बड़ा हाथ रहा है।

तमिळ के बाळबार भक्तों और हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के विचारों में और भावों में बीच पड़ने वाला अद्भुत साम्य यही बोधित करता है कि भारत की आत्मा एक है। उसकी मूल प्रेरणा एक है। तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप तमिळ के बाळबार भक्तों और हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों के विचारों में हमें जो साम्य बीच पड़ता है, वह भारतवर्ष की 'भावत्मक एकता' (Emotional Integrity) की ही घोषणा करता है।

परिशिष्ट

परिमिश्र १

बालुवारों के चुने हुए कुछ गीत-रत्न'

पौमग आळवार

- ● "मैं अपने जीवन की बखीम वनस्त आकांक्षाओं और अपराधा को पार कर बीड़ता हुआ आपके सम्मुख आया हूँ। अपनी पीठ-मासा में आपके नाम-मुमन भी डूब देता हूँ और आपके परम पावन पद-चक्र पर समर्पित करता हूँ, जिसे आप मेरी निमल भक्ति और विधुत स्नेह के उपहार-रूप में स्वीकार करें।"

×

×

×

- ● "स्नेह-मान्द्र हृदय-विर्पको की उत्रियों में जो मधुर निहाद मुखरित होता है, शिष्य-कृपा की सूक्ष्म सफलता का चोतक जो मध्य रूप निकलता हो आत्मा के स्वप्न-पटल पर जो सुकुमार स्वप्न अंकित होता है, वे सब मेरे ही आराध्य के नाम और स्वयम् हैं।"

भूतसाळवार

- ● "मैं यह नहीं जानता कि भयबाध का मेरे प्रति क्या विचार होया और भयबाध के बरबार में मुझ अकिंचन का क्या स्थान हुआ ? फिर भी मैं विचलित नहीं हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरे टूटे हुए हृदय के टुकड़ों से बना बयल समवर्तिका की रस से आकण्ठ भर आप किस प्रकार मुझे छरीदर वर्षा के बल से ही भर सकने हूँ।"

पेयाळवार

- ● "मैं निरन्तर उसकी बबल कोज में रहता हूँ, तब भी वह मुझे नहीं मिला पाता। पर वह मेरे निवेदन के बिना भी मुझे अपना देता है। फिर भी हाय ! मैं उसको देन नहीं पाता।"

१ इन पद्यों के स्वतन्त्रांगुबाह में श्री रा० श्री बेसिन्ट द्वारा अंग्रेजी में प्रस्तुत "Grains of Gold" नामक ग्रन्थ का आधार लिया गया है।

● ● "विभास व्योम शुभ उठा बिजली कड़की । बरष का भयावक गर्जन हुआ । वह था बरषी-काल । मैं जगन की ओर देखता रहा । उसकी अनुपम भाभा की रेखाएँ सीस पड़ी और वह व्योम-बीषी में मैत्र मरिच रस पर चढ़कर आया ।

×

×

×

● ● "हरमोन्मादा सीन्दाबिनी बनी बिजय पठाका फहराती हुई ओर निता दित बरष बपी बिजब बुबुपी बचाती हुई ममन-मन्त्रस-बीष भ्रमण करने वाली नीरस राशि मेरे मानस पटल पर आपकै ही स्मृति-चित्र अंकित करती है ।"

तिरुमळिणै आळवार

● ● "मेरे बन्धु मेने का एक मात्र अहंसा यही है कि मैं उस प्रभु की सेवा में अपने को निरन्तर अर्पण रहूँ, जिसका बाध मुझ में है । इस नर्तन-स्वीकृति के बढ़कर कौन-सा किम्व कार्थ हो सकता है ? इसी में मैं अपना निर्मगण पाता हूँ ।"

×

×

×

● ● "मेरे मन्मोहन प्रभु का सुन्दर वास-स्नान मुझ से बहुत दूर है । किन्तु मैं अपने गीत-बन्धी अहंसा पंखों से उड़ता हुआ प्रभु के पास पहुँच जाता हूँ । केवल प्रभु की कीर्ति को गाने जाने मुझ अकिञ्चन कवि के लिए प्रभु के दरबार में क्या स्थान होमा ?"

×

×

×

● ● 'तुम अज्ञान में तुम्हारा स्थान कुछ भी हो । उस मासी की रेखरेख में तुम अपने को बौन को बो हुमारी आत्माओं का रखक है । तुम सर्वथा चिठित क्यों होठे हो ? तुम अपने मन के एकान्त को क्यों भय करते हो ? वह प्रभु का अनुग्रह निश्चय ही है, ता तुम्हें चिन्ता किस बात की ?

×

×

×

● ● 'तुम इन्ध्रिय-बाह्य सुकों के किन्नाहों को धन्य करके उसके भीतर ज्ञान का बीपक जलाओ । अन्तःकाल तक आन्वयमान रहने वाला वह अमर बीपक तुम्हें प्रभु के मन्दिर का नुनीत पद दिखावेगा जो सब अन्धकाराच्छ है । पावन प्रेम व स्वर्ण मान मे उस मन्दिर के द्वार आप ही आप खुल आवेंगे ।

+

+

+

● ● 'गीतामृत विन्दुओं के कर्ण-कुहरों में रस-बर्षा करने वाला वह क्या है ? निराला जीवन-आशाओं के बीच में स्वर्ण-धाम्नि प्रदान करने वाला वह क्या है ? पीतों और कीर्तियों का चिरदान से बिजब बनकर रहने वाला वह क्या है ? समस्त वेदों में मण्डित निधि क्या है ? वह मेरे प्रभु का नाम है । मेरे प्रभु का नाम है ।"

पेरियाळवार

● ● 'तुम्हें मनुष्य की नीति गाने बाल पायकी । तुम हमारे बल में मड़ी हो । पञ्चमी आत्मा की मुक्ति प्रदान करने की बुभुक्षा बिचने हो, वे ही हमारी कवि-मण्डली

में पदार्पण करने योग्य हैं। इन दुःख-सुख से उस परमात्मा प्रभु की कीर्ति गाकर उसी की सेवा में लीन हैं।

+ + +

● ● 'जिन्ता मत करा ? मरण के चञ्चल से बचने के लिये सब भी अवकाश शेष है। क्या तुम्हारे नेत्र अश्रिहीन होकर पुनः प्रकाश का ही अवशीकरण कर रहे हैं ? क्या तुम्हें मृत्यु का मय जल-स्रवण हो रहा है ? क्या तुम्हारे अङ्गु तुम्हें घेरकर कर रहे हैं ? क्या धर तड़कड़ा कर तुम्हारे कंठ में ही रह जाते हैं ? अपने मातृ में प्रभु के वास के लिए एक मणिर बनाओ जिसमें प्रभु का स्वरूप सतत होता रहे और वहाँ प्रभु के पाद-पीठ पर अपनी सेवा और प्रेम के मुमन बहाते रहो।

+ + +

● ● "हे प्रभु ! आपके स्पर्श मात्र से हृदय की सारी कठोरता द्रवित होकर एक ताप में (एक समय में) सरलता से परिणत हो गयी है। मैं वेकता हूँ, अणुका धामात्म्य का ही मरण की अवहेलना कर सतत विराजमान है। आपकी कीर्ति पथि में मेरा स्व का निमज्जन हो जाता है।'

आण्डाल

● ● 'सुधमा भरी उषा की मीरक केसा में पक्षियों की मधुर चुटीली गान में प्रभु के दिव्यामन का लम्बेन पाती हूँ। मैं आपा मुक्त गयनी से देखती रहती हूँ। पर नहीं आसनी कि प्रियतम कब आर्ये ?'

+ + +

● ● 'हे कीर्तन ! मेरे शरीर की समस्त हृदयवा प्रवित हो गयी है। विधि विन मेरे व्यासे नवन जागत ही रहते हैं (नींद को पास कटकने नहीं देते)। प्रभु के दर्शन-अनुपम ने चंचित में व्यास-सरिता में बह रही हैं। प्रेम मेरे हृदय की विरह-वेदना को तुझी जाल जानती है। तू कृपया मेरे प्रभु के पास जाकर मेरी इस बीत दसा का समाचार दो दे आ।'

+ + +

● ● 'हे राज ! प्रभु के माती-सम अबरों की सुन्दरता का परिचय तुमसे पाने के लिए सत्कृत हूँ। क्या प्रभु के अबरों से कपूर की सुगन्ध आती है ? और मनोहर पंकज-वन के समान प्रभु के कपरा से क्या सुवन्धित सुमन का परिमल निकल रहा है ? बताओ तो ?'

कुसुमेखराब्धवार

● ● "कुछे जाइ नहीं कि अबोध अनुपम सुख-वर्धनित अपना अष्टाश्रयों के नितासवन साम्यों से पूर्ण पादक स्वर्गीय आनन्द प्राप्त कर"। मुझे बाह नहीं कि नितास विराय व अनुपम रासकोप प्राप्त कर"। मैं अपने को सम समझाऊँ कि

उसे बेंकटावल क मधु रसोज्ज्वल पुष्प मंजरियों से पूर्ण मन्दन उपवन की निर्मल
निर्मलरणी के एक मोल होने का परम सीमान्त प्राप्त हो ।"

● ● सीर सागर की धवल तरंगों से परिपूत एवं प्रोत्ससित भगवान्
सेवसायी के पावन पद-कमलों के दर्शनार्थ सीत-रस-महुरी में निमज्जित भ्रमर मधुह के
मंकार युक्त बेंकटमिरि की बाटिका में एक चंपक कुसुम बन जाई ।

● ● 'महापायियों को भी अपनी शरण में लेने वाले कृपा-सिन्धु भगवान् । हे
अनाद्यन्त श्रेष्ठ महान्, बेंकटवासी । मैं तुम्हारे मन्दिर का वह सोपान बन जाई जिस
पर बढ़कर अम्बरराई, वैव और भक्तमण तुम्हारे दर्शनार्थ मन्दिर में प्रवेश करते हैं ।'

● ● 'इस भ्रमपूर्ण भव में कितनी उद्विग्नता है ? कितना डोप है ? मैं मनुष्य
जीवन की उन पीड़ित आकांक्षाओं को तिसाजित लेकर, मनुष्य और संतुष्ट हृदय लेकर
राज्य क उस राजमार्ग पर जा रहा हूँ जो स्वयं की कांति से सर्वदा आलोकित रहता
है । किन्तु इस जगत् के प्रेमी मुझे उन्मत्त (पागल) कहते हैं । मैं समझता हूँ कि
इस संसार के सखि सुखों के भ्रम में पड़े वे लोग ही पागल हैं । सब है, मुझ में
एक विचित्र प्रकार का तीव्र उन्माद है । वह है भगवत्-प्रेम कभी मनु को पीकर उन्मत्त
बीब का मत्ता ।

● ● 'अहंकार से दासित होने के कारण मैं यह नहीं जान पाया था कि
आपकी शरण से ही मुझे आत्म-जस और स्वरक्षा के साधन प्राप्त करने हैं । मैं उस
बहाज के पक्षी की तरह आपकी शरण में आया हूँ, जो फिर-फिर उड़कर दूर चिरंत
तक जल ही जल को देखकर मयमौय हो पुनः बहाज के जंघे पर ही आकर बैठता है ।'

तोंडरडीपोडी आठवार

● ● 'इन्द्रियों की दासता के बंगुल से आपके नाम-कीर्तन ने हमें मुक्त कर
दिया है । आप पर हमारे भरोसे के कमस्वरूप उत्पन्न साहस और आत्मबल के सत्त्वों
से सम्पन्न होकर हैप कुछ पाप और मृत्यु तक को हम चुनौती दे सकते हैं ।"

● ● "प्रभु के साम्राज्य में पद प्राप्त करने की कामना करने वाले । तुम
अपनी वांछ के गर्व को त्याग दो । अपने ज्ञान की शोखी बधारा बह कर दो ।
कंठनीय वांछि-यर्थ के कारण तुम क्यों उस जन-समूह से दूर जा बैठे हो ? अगर वे
अपने करों पर पड़ी मनुष्य निमित्त वांछ की श्रुतियों को तोड़ कर आवें तो तुम्हें
क्या आपत्ति है ? क्या इतना पर्याप्त नहीं कि वे भी भगवान् के सेवक हैं ? उनकी
पूजा करो, उनकी सेवा करो । क्योंकि किसी क्या पता है कि उनके मध्य भगवान्
वास नहीं करते हैं ?"

सिद्धमगै आळवार

● ● हे प्रभो ! मैं आपके वरुण-सुख के लिए तड़प रहा हूँ ! पाखण्डपूर्ण कितना सम्झा जीवन मैंने बिठा दिया है । अब मैं आपकी शरण में आया हूँ । अब उन सभी बर्षों के व्यर्थ हो जाने की बात याद आती है तो मेरा हृदय व्यापारों से भर जाता है । अब मैं आपकी शरण में आया हूँ मेरी रक्षा करें प्रभु जो ! मेरी रक्षा करें ।”

×

×

×

“आपने अपनी मुद्रा मुझ पर लगा दी है । आपने मुझे अपना आत्माकापी सेवक बना दिया है । मेरे दुर्बल जीवन के कितने ही खेदों को आपने भर दिया है । मैं अपने मन-मन्दिर में आपकी उपस्थिति का अनुभव कर पुनर्जन्त हो उठा हूँ । आपके स्वर्ण माग से मेरी हस्तों में मङ्गल होकर मीठी तान उत्पन्न कर देती है ।”

×

×

×

● ● ‘हे प्रभो ! हमारे नेत्रों से क्या प्रयोजन है, यदि वे आपकी धृति राशि में मग्न न करें । हमारे कानों से क्या प्रयोजन है यदि आपकी कीर्ति का पावन न सुनें । हमारे कर्णों से क्या लाभ है, यदि वे आपकी मङ्गलशक्ति न दें । हमारे मूत्र-वीणा जैसे वाद्य यन्त्रों से क्या प्रयोजन है, जगर वे आपकी महत्ता का गायन कर हमें पुनर्जन्त न करें । हमारे हृदय से क्या प्रयोजन है, यदि वह आपकी ओर उन्मुख न हो तो ।’

+

+

+

● ● ‘मेरे मन सभी इस प्रेम-विद्योम विषय विरहिणी की क्या बसा हो गयी है । वह पगली सी दूर-दूर फिरती है । अपने प्रियतम के आगमन का आनन्द पूर्ण समस्त सुनकर वह हर्षोन्मत्त हो रही है । स्निग्ध व्योमलता अलित रत्नों में वह अकेली ही अपने कर्णों को (उत्त महीम आकाश) स्वर्ण की ओर बढ़ाकर विस्माती है—“मैं बेल तो नहीं रही हूँ कि प्रभु अपने महान के द्वार पर सके मुझे बुला रहे हैं ।’

+

+

+

● ● ‘बहु मधुर स्वप्न जिसने प्रियतम के वर्णन की आभा से मेरे मांस मन्दिर को आलोकित किया था अब खून बना । समस्त मंदार वनान्धकार को योद में अब भी भोरी सुनकर नींद में मग्न है । निशि के अनन्त तिमिर-प्रवाह के साथ मेरे साथी भी बिलीन हो गये । अक्षय चिन्ता की सुटीमी तान उपा काम के द्वार को खोल रही है और मन्दिर के अन्दर शयन मान प्रभु को जगा देनी ।

+

+

+

● ● ‘दुःख और संघर्षों से पूर्ण नीरस जीवन-यात्रा में एकदम-दरते में अलित सुखता जा रहा हूँ । “मैंने सुन्दर रमणियों के बाहु भरे सौन्दर्य से मोहित

बीबा ही छाया है। मुन्दरियों के लावण्य युक्त कर-पाश में बाँध होकर सुरापान के मादक आनन्द में सगमल जब मैं पक चुका हूँ। विषुद मान का नाव जो मेरे सर के अन्तरतम भाग में मुकुरित हो उठे या उसने मेरे भीतर ही किसी की खोज की। प्रेरणा बी है और मैंने सत्य के प्रकाश को छूट पाया। है प्रभो ! मैंने आप ही में अपने जीवन के समस्त आनन्द और पवित्र परिमल का आकर देखा ।'

+

+

+

● ● 'प्रभो ! उस बिरहिणी को अपने दर्शन से वंचित रखते हैं क्यों ? (माता का बचन) मेरी प्रिय तनया जो नाम के लक्ष्य किसलय के समान स्वर्ण-क्रीति युक्त थी जब बिरह व्याधा मैं पीसी पड़ गयी है। वह खीख होकर इतनी पतली हो गयी है कि उसके हाव के कंकण स्वयं गिर रहे हैं। जब मुक्ता ललित पाव चन्द्रहार तथा सुयन्त्रित चन्दन भी उसके बिरहामल में लपट हृदय पर बड़े आघात कर देते हैं। राका रजनी में अमृत तुल्य शीतल किरणों को देखने वाला चन्द्र भी मेरी पुत्री के लिए मार्गों बचकने वाली भाग की प्यासा बरसा रहा हो। दूर के समुद्र-मार्ग की तरह इसका हृदय भी विलाप में आन्दोलित है। प्रभो उस बिरहिणी को अपने दर्शन से वंचित रखते हैं, क्यों ?

+

+

+

● ● "परिधम से बके-से पाँव घसीटती हुई रात भी कितनी मन्द गति से बटती जा रही है। एक क्षण भी एक भुप के समान बीस पड़ता है। समुद्र के विलाप मान तथा प्रेम-पीड़ा में शब्द व्योम पक्षी के अविराम गायन के अतिरिक्त और कोई ध्वनि नहीं सुन पड़ती। और तिमिर को दूर कर समस्त संसार को आभोक्लिष्ट करने वाला प्रभात कब होगा ? मन्द-मन्द बहने वाला शीतल समीरण भी आप की चिन्तारिखों की तरह अधिक ताप देने वाला हो गया है।"

+

+

+

● ● 'हि मनुष्यो ! क्यों कायाम वस्त्र पहनकर शरीर पर भस्म लगाकर फिरते हो ? कठिन इत रबकर विफल तपस्या में सीग रहकर काया को बसष्ट कष्ट क्यों देते रहते हो ? तुम अपने संसार का त्याग कर जा जाओ और प्रभु की बनस्य बहेतुकी कदछा युक्त सरण में उनकी असीम कृपा में सति और शान्ति प्राप्त करो।"

×

×

×

● ● 'मेरी पत्नी और संतान भी अबिश्वासी हैं। उन्हें त्याग कर मैंने आपके मार्ग को अपनाया। आपकी कृपा कभी भग्नभगाती तलवार से मूर्खता और इन्द्रियों द्वारा मुझे कँसाने के लिए बुलाये गए सत्तमे हुए बीबन-बास को मैंने काट दिया। जब मैं क्लेशों में डालने वाली जीवन-व्यथाओं से दूर एक सतत शान्त और सुप्रेक्षित स्थान में पहुँच गया हूँ।

● 'आपक पच-प्रबोधन कराने वाले ज्ञान कपी प्रकाश से संचित मैं सब राधार में सुमुख तरंग बचप्य पवन और कोलाहल के सम्य बिना पतवार के बनेक म्य और मरण स मुक्त इस जीवन-मोका को बसाता गया । बट्टानों से टकराकर मन-मिष्ट हो जाने से बचकर मेरी मीमा ने आपकी कृपा कपी मुर्छित क्षेत्र में उकर धारित पायो ।'

×

×

×

● "(नामिका का कथन) मेरे इस सौन्दर्य और नर्चों से लबासब जीवन से या वाक्य है ? इन उतरे हुए उठेजों से क्या प्रयोजन, यदि मुझे मदनमोहन का गतिमन-मुख प्राप्त न हो तो । उस कामन-कुसुम की मति ओ परिमल को बिबेर कर कबी से अपमाने न जाने के कारण किसी निजन मन को सता से मिरकर अपना गीन्दर्प नष्ट कर देता है, मेरा सब सरा जीवन मो प्रियतम से दूर रहने के कारण नष्ट होता या रहा है ।

नम्माळ्वार

● ● 'आजपूर्व बग्न-बिम्ब आपकी अनुपम सुयमा और अनुपम बर्तन घोसा का ही स्वरलु दिमाता है । यह समुच्च शिखर भी आप ही की बसीम धारि की ओर उन्वित करता है । रिमभिन्न रिमभ्रम बर्षा को देखकर जिस प्रकार मोर नाच उठते हैं उसी प्रकार मेरा मन भी आनन्द नृत्य कर रहा है—मानों नारायण ही बर्षा के रूप में पचारे हों ।'

×

×

×

● ● सारा पीब कुपुप्ति में विसीन हुआ है । समस्त विश्व जम्बवार-नाम्न है । निशा इतनी बढ़ती जाती है—मानो निजिम बल-बल एक सम्बी देला-सा बनता या रहा ही । मैं ही केवल अकेली बाग रही हूँ । वह खेपसामो समबानु, जिसने एक बार समस्त विश्व को निजल सिमा या मयर मेरे पास न आये ता हाय ! इस अपाविनी की कौन रक्षा कर सकेगा ?"

×

×

×

● ● 'हमारे प्यासे नयन कब आपके और आपका अनुग्रह प्राप्त होठ जीवों के बर्धन-मुख से मुप्ति होवे ? आपके अनन्त अनुपम सौन्दर्य-सागर में मग्नन करके भी वे कब संतुष्ट होंगे ? यदि उचित होता है और फिर क्षिप जाता है । मधुच जाते हैं और अपनी कतुस भामा दिला कर बने जाते हैं । युग पर युग आता है और बीतता जाता है, फिर भी हम आपकी ओर देखते ही रहते हैं । आपके दर्शन की प्यास कभी बुझती नहीं है ।

+

+

+

● ● "प्रभु के महल तक पहुँचन के लिए तो मार्ग बनेक है । वे हमारे बीच में बितहाल और विविध रूप में अपने को प्रगट करते हैं । मरते चाह है कि प्रभु

महस की ओर जाने वाले उस जगत् पथ में लण-लण प्रभु की आहूट सुन सऊँ । मेरी चाह है कि इस संजय रत और जगन्त जगत् के निरन्तर कोसाहल के बीच प्रभु के आनन्द की मधुर हृदी ध्वनि सुन सऊँ । उस अद्वितीय आनन्द-भण्डार के दर्शन के लिये मैं पुन-पुन से भूखा और प्यासा रहूँ ।

+

+

+

● ● मेरा प्रियतम हमारे मिलन-स्थान पर अभी तक था नहीं पहुँचा । जिस तरह गोबुली की मनोहर बेसा में तम की हल्की रेखा छायी रहती है, उसी तरह आधा भरे मेरे हृदय में अब कुछ की रेखा छ जाती है । मेरे घर के मीन का भ्रम करने वाले बिजाप के प्रारम्भ होते हुए घोमाहीन परिचयी ध्योम-बीपी पर समस्त पृथ्वी को आनन्द धार में निमज्जित करने वाले लघु चन्द्र का आगमन हुआ । उस क्षण भरे क्षण में मेरा मन कामना करता है कि प्रियतम के आगमन का आभास मिल जाय । हाय ! दूर से प्रिय का जो संदेश अम्बर-पथ पर फैला आ रहा था, उसको भ्रम करने के लिए एक वृष्ट समीरण भी कहीं से चल पड़ा ।

×

×

×

● ● “मेरा हृदय विषम नहीं सेठा जबकि यह निर्दम मिष्टा मुझ पर ठागा मार रही है । अब मैं अपने प्रियतम के बाहु-पाश में आबद्ध रहती हूँ, इस निमम मिष्टा का शासन जोस की बूँद की तरह या स्वप्न के समान क्षीप्र की कृष्ट हो जाता है । परन्तु अब प्रियतम की अनुपस्थिति में यामिनी का एक-एक लस सघके क्रूरतापूर्ण शासन का लम्बा मुन सा प्रतीत होता है ।”

×

×

×

● ● “यह दूर देश के वासी प्रभु की तुलसी-माता की सुरम्य सुगन्धित का सेवन करना चाहती है । हाय ! उसकी अपूर्ण आसों पर क्या आसती आ रही है । यह प्रभु भी क्यों इन धोली बिछीली की ओर ध्यान नहीं देता ? सचमुच जगत् कास के प्राण में निरप आँख-मिचौनी बैठने वाला यह प्रभु भी निर्दम और निर्दयी बीच पड़ता है ।”

×

×

×

● ● ओ प्रभुओं के प्रभु ! आप हमारी प्रार्थनाओं को सुनने की कृपा करें और हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जायें । अस्मत् के ओर तिमिर में पाप और दुष्ट के पुन हम आँध पकार कर आपकी कसबा की भीख माँगते हुए अपने करों को आपकी ओर बढ़ाते हैं । आप हैं सबसे कृपासिन्धु ! आपके शीतल का क्या कहना ? हमारे जीवन को निरप आसोकिट कर देने वाली कृपा कभी कु भी आपके पास हा है ।”

×

×

×

● ● “मेरा प्रभु इस क्षण में पड़ा है कि अनपिन्त लक्ष्यों और इहो की एक सुमन-माता बनाकर उसे अपने व्यष्टित्व के विद्यालय मन्दिर में सिखा रहा है ।

परन्तु उसका समर्थ व्यर्थ है, क्योंकि मैंने उस महान् प्रभु को भी अपने मन-मन्दिर में बसा लिया है ।”

+

+

+

● ● “तुम अपना सब कुछ समर्पित कर हमारी जीवन-नीकामों के उस मीठी पर भरोसा रखकर उसकी विषय देखरेख में उसका पीछा करते रहो । इससे निजामी की चमक के समान अपने दुर्बल जीवन में आत्म बल का संचार कर सकोगे । स्पष्ट है सोमो ! तुम उस परमात्मा पुष्पोत्तम की शोच में निरन्तर सने रहो । ‘बहुम्’ की माचना पर कुत्साही मार कर सब अनन्त महान् कल्याणकर नम्रान् की शरण से तो बिसने पुम्हारी सृष्टि की है । इसके अतिरिक्त जीवन की व्यथाओं से बचने के लिए और कोई उपाय नहीं है ।”

×

×

×

● ● “अविमल अपने पीत आस में आपकी पँछाना चाहते हैं । चित्रकार अपने पटल पर आपकी शोभा को अंकित करना चाहते हैं । मूर्तिकार श्रेष्ठ संपन्नरूप के शिला-पद्म में आप को बसाना चाहते हैं । सार्थक मिश्राप् आपको अपने शाय बाल में बँसाना चाहते हैं । उनके प्रवास सब व्यर्थ है—क्योंकि आपके अनुपम शोभायुक्त स्वरूप के एक बंस तक को भी वे पहचान नहीं पाते ।”

+

+

+

● ● “मेरा हृदय बंधों से मुक्त होकर सब नम्र पड़ता जाता है । मेरों के साथ घूमता है, ऊँचे पर्वत के साथ पयन को सुम्बन करने जाता है । सागर की लहरों के साथ नाच उठता है । सुन्धर सुमनों के साथ हँस पड़ता है । तम के साथ स्वप्न में बिनीत हो जाता है—क्योंकि मेरा मन दूर के प्रभु से संकेतित प्रेम-कीड़ाओं का आवास पाता है ।”

×

×

×

● ● “हे प्रभु ! आपकी सभा में जाने बाम कितने ही महान् कवि हैं, जिनकी ध्वनि नमना की मधुर पुष्प ध्वनि की भी मात कर बेठी है । किन्तु फिर भी आप उनके पीछों से सम्पुष्ट नहीं होते और सुन्धरतम मोहक पान की आवा में मुक्त अकिंचन को अपने कर्णों की (आकर्षण है) मोहन मुरसी बनाकर मेरे द्वारा अपने रहस्यों का मोहक तान में निराश्रित करते हैं ।”

×

×

×

● ● “मैं सागर और ध्याप को भी प्रभु की कीर्ति को निराश्रित करता हुआ देखता हूँ । मरुतु उस अमर शीत को इस तक पहुँचाना बामा सम्भववाहक है । सागर की लहरें उस पान में मत्त होकर तानियाँ बजाती हैं । मेघ मूर्ख बजाते हैं । मित्रों ! मुझे विश्व करो । मैं अधिक विमम्ब नहीं कर सकता । मेरा प्रियतम मेरी प्रतीक्षा कर रहा है ।”

● ● 'हमा' महात् कवि चेष्ट मे हमें याग की कसा सिखायी । हम बीणा की तन्वियों को झकृत कर एक अज्ञात स्वर-सरिता बहा रहे हैं । काम की विहम्बनाओं से हम मित संघर्ष रह हैं । परन्तु प्रभु मुसकाते बैठे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि हम उनकी कीर्ति-ध्वनि को नुबापमान कर रहे हैं ।

+

+

+

● ● 'मैं' उन अनगिनत नक्षत्रों के जो अस्पष्ट सम्बोध सुना रहे हैं । रहस्य को जानने की चेष्टा में गगन की ओर देखता हूँ । पर वे अलग में क्या हैं ? यह मैंने समझ नहीं पाया । मुझ पर जादू करने वाले उन नक्षत्रों को देखकर मेरे हृदय में छाये सघाटे को चीरकर एक सुरीसी तान धुँब उठी— 'वे नक्षत्र राव की विद्याल समतल भूमि को प्रकाशित करने वाले दीपक महा । जो पुर्णों से बलते हैं परन्तु स्वर्ग के दिव्य पुरुषों द्वारा जुग जुगकर उस अज्ञात प्रभु की बेसी पर चढ़ाये गये सुन्दर सुमन हैं ।'

+

+

+

● ● मैंने स्वर्ग के द्वार को खटखटाया । देवतामण्डल अन्धमे में आ गये । चिन्तित हुए कि इसको कैसे जाने दिया गया । मैंने उनको समझाया कि प्रभु के साम्राज्य में प्रवेश करने की कामना हम पृथ्वी तल में आये मनुष्यों को मिला भूत अधिकार है ।

+

+

+

● ● रजनी की नीरवता में मैंने ध्याम की ओर दृष्टि दीढ़ायी । मैंने देखा कि प्रभु के ही सन्देश नक्षत्र स्फी अक्षरों में अंकित हैं । मैं आनन्द में चित्ला उठा और हृषीतिरेक से नाच उठा । चारा ओर फैसी हुई प्रकृति को देखकर पृथ्वी के प्रत्येक पुष्प पंजुड़ियों और पत्तों की सृष्टि करने वाले उस महात् कसाबात् सर्वजहार की कल्पना कर लतमस्तक हो गया ।'

+

+

+

● ● "प्रत्येक बेसी पर भवबाद् को फूल अर्पित किये जायें जिनसे उत्पन्न होने वाले परिमल से समस्त वायुमण्डल सुरक्षित हो जाय । प्रत्येक मन्दिर और पूजा कर भवबाद् के अक्षरों की ध्वनि से पूज उठे । तब हम इस पृथ्वी-तल पर ही भवबाद् का साम्राज्य स्थापित कर सकेंगे ।"

+

+

+

● ● 'हे सागर ! तुम क्यों सर्वदा अधिराम हो ? तुम क्यों अहर्निव गर्जन करते रहते हो और फेन-राशि को उत्पन्न करते रहते हो ? जिसकी खोज में मेरा मन भ्रमा फिरता है क्या तुम भी उसी की खोज में निरन्तर जाग्रत हो ?'

+

+

+

● ● "यह पवन यह पृथ्वी यह पवन क्या है ? उस अज्ञात असीम अगाध अमन्य महापुरुष के अङ्ग ही हैं ।'

+ + +

● ● "मैंने उसमें कभी काटनी नहीं। यह सोचा कि वह मुझे देर नहीं पायेगा। बहालिन मेरी आवश्यकता उसे थी। मेरे जीवन की पथुर पान का सेवन करके भी उसकी व्यास नहीं बुझती।"

+ + +

● ● "सारी रात पवन के झरनों की जगमगाहट से डूँब उठी। परन्तु उपा के बाते ही पीछे-पीड़ित होकर हमसे बाहर आकर देखा तो समद्वेष्ट नरक के जगमगाहटों पर स्वयं मरा पड़ा है। विजय से परितः हमारा लसाट अति अद्भुत कान्तिपुलक हो रहा था। मम का कराम सासन अब समाप्त हुआ और स्वर्ग का साम्राज्य इस पृथ्वी तल पर स्थापित हो चुका है।"

+ + +

● ● मेरी साथी पोढ़ाई अब दूर हुई और मेरे हृदय में परम धामि प्राप्त की क्योंकि संसार की हैसी और व्यथा के बीच नरक की पीड़ा और स्वय की उमंग के बीच मेरे कानों में उस महापुरुष के नाम-मंत्र की सुन मिया है।

+ + +

● ● मैं मर्त्य मनुष्यों के नाम से नाम्य को कलकित करने वाला तुच्छ कवि नहीं हूँ। मैं प्रभु के दरबार का यावक हूँ। मैं सृष्टि सौन्दर्य का गीत में परिणत कर अपनी मोठ-मात्ता को प्रभु के दिव्य चरणों पर अर्पित करता हूँ जिस वर प्रसन्न होकर प्रभु इहलोक और परलोक की समस्त उत्पत्ति से मुझे पुरस्कृत करते हैं।'

परिशिष्ट २

बालवाराँ की रामभक्ति

तमिळ के बालवार परम वैष्णव भक्त और खेष्ट कवि थे। उन्होंने अपने भक्ति-काव्यों में बबतारी विष्णु की विभिन्न लीलाओं का छांगोपांग वर्णन प्रस्तुत किया है। बालवारा के अनुसार परब्रह्म विभिन्न युगों में मनुष्यों के उत्थार के लिए अवतार लेते हैं। जब पृथ्वी में अन्धम फैल जाता है और अज्ञान अन्धकार पृथ्वी को कवचित करछा है, तब कृपा-सिन्धु भगवान् अपनी कस्तुरा की प्रकट करने के हेतु अवतार लेते हैं। गम्माळवार ने यहाँ तक कह दिया है कि अपने ही अक्षयूत अननित लीलों को अपना दर्शन-सुख ब्रह्म करने के निमित्त भगवान् अवतार लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि बालवाराँ ने विष्णु के विभिन्न अवतारों में कोई सेह नहीं देखा। फिर भी उनको विष्णु के दो अवतार—रामावतार और कृष्णावतारों ने विद्वैत रूप से आकर्षित किया है। इन दोनों अवतारों में भी कृष्णावतार में उनका मन बितना रमा छतना रामावतार में नहीं। श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का उन्होंने ऐसा लब्धिव वर्णन किया है, मानों उन्होंने स्वयं उन लीलाओं का अवलोकन किया हो। उनके कोमल भावुन और कवि-सुख ने कृष्ण-लीलाओं में ही अपनी अभिव्यक्ति की भाव-भूमि विशेष रूप से पायी। अतएव उन्होंने लीलागायक कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का रसपूर्ण वर्णन किया और उनके नाव-यक्षेक स्वच्छन्द रूप से काव्य-भ्योम में उड़ सके बिनासे कि कवचकोटि के तरल कृष्ण-काव्य का निर्माण उनके हात हो सके।

प्रमुख रूप से कृष्ण-काव्य रचन पर भी बालवाराँ के काव्यों में विष्णु के अन्य अवतारों का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है। डॉ. मण्डारकार ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वैष्णविक्रम टीचिङ्ग अन्ध नदर माइनर टिचिङ्गिण्ड सेक्स्ट में लिखा है कि बाबुनिक भारतीय भाषाओं में रामकाव्य का विकास साधारणतया ११वीं या १२वीं शताब्दी के

परचा ही बेबने को मिसठा है। परन्तु उससे कई शताब्दियों के पूर्व ही (आळवारी का समय पवित्री शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का माना जाता है।) आळवारी ने रामभक्ति-काव्य का सर्वन किया है। यह सच है कि आळवारी के काव्यों में कृष्णवतार की अपेक्षा रामावतार का विस्तार कम है। रामावतार के केवल कुछ विशिष्ट प्रसंगों को ही उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया। पूरी राम-कथा को लेकर आळवारी ने कोई प्रबन्ध-काव्य नहीं रचा क्योंकि तमिळ-काव्य-क्षेत्र में उनका युग महाकाव्यों का नहीं था। अतः प्रबन्ध-काव्य रचने की आवश्यक उन्हें नहीं सूझी। उनका युग भक्ति के माहादेश का युग था। अतः उन्होंने भक्ति-प्रधान मधुर गीत रचे जिन्हें गा-गाकर भक्त आत्मविमोह हो जाते थे। उनके भक्तिपरक पदों में रामावतार का भी पर्याप्त उल्लेख है।

तमिळ भाषा में बिच प्रकार कृष्णकाव्य के जन्मदाता आळवार हैं, उसी प्रकार वे राम-काव्य के भी हैं। इसलिये उन्हें दोनों क्षेत्रों में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। तमिळ में आळवारी के पूर्व का कोई राम-काव्य हमें नहीं मिसठा। न किसी ने रामावतार के विशिष्ट प्रसंगों का उतना वर्णन किया है, जितना आळवार-साहित्य में मिसठा है। आळवारी के पूर्व के तमिळ संघ-साहित्य के कुछ काव्य-ग्रन्थों में इधर उधर रामकथा के कुछ प्रसंगों का उल्लेख मिल जाता है। परन्तु उनके रचयिताओं का उद्देश्य भक्ति-प्रधान राम-काव्य प्रस्तुत करना कदापि नहीं था। अतः तमिळ में राम-काव्य के जन्म-दाता के रूप में आळवारी को मानने में किसी को आपत्ति नहीं होगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि परवर्ती सभी कवि आळवारा के भक्ति-परक पदों से बहुत ही प्रभावित हुए हैं। यही तक कि तमिळ में राम-कथा को लेकर प्रथम बार महाकाव्य रचने वाले 'कवि चक्रवर्ती' कंबन आळवारी से बहुत प्रभावित हैं। राम-कथा के कुछ प्रसंगों का आळवारी ने जो माधुर्यपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है, उसका कंबन ने बहुत अनुकरण किया है—यह तो प्रसिद्ध है कि कंबन ने नम्माळवार की स्तुति में 'छट्ठोपरन्तावि' नामक स्तुति-ग्रन्थ तक रच वाला था। सारांश यह है कि राम काव्य के रचयिता के रूप में आळवारी को तमिळ में ही नहीं बल्कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं की राम-काव्य-वाच में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

छावस आळवारी में केवल कुमरोवराळवार, तिरुमय आळवार पैरियाळवार तथा नम्माळवार ने ही राम-कथा के विशिष्ट प्रसंगों को कुछ विस्तार से अपने काव्य में लिया है। ध्यान रखने की बात यह है कि इनमें किसी ने भी राम-कथा को क्रमिक रूप से प्रस्तुत नहीं किया। इन आळवारी में राम-भक्त के रूप में कुमरोवराळवार का स्थान सर्वोपरि है। कुमरोवराळवार की अपार राम भक्ति को सूचित करन वाली अनेक कथाएँ तमिळ प्रदेश में प्रचलित हैं। कथावाचक के द्वारा राम कथा को सुनते समय रावण द्वारा सीता-हरण प्रसंग तथा राम रावण युद्ध के प्रसंग में राम की सहायता करने के निमित्त सेना को कूच करने की आज्ञा देकर स्वयं कुमरोवर के जस पढ़ने की कथाएँ तो सर्व प्रसिद्ध हैं। ये कथाएँ कुमरोवर की तीव्र राम भक्ति की ओर

इ गिन करती है। उनके पदों के संग्रह 'पेरुमाळ तिरुमोळी' के अन्तिम छीन दशक राम-कथा से सम्बन्धित है। एक दशक में बासक राम को पासमें में मिटाकर माता कौशल्या क सारी गाकर उन्हें सुलाने का वर्णन है। इसमें वात्सल्य रस का अद्भुत परिपाक हुआ है। दूसरे दशक में राम के जन-ममन पर दसरथ के विभाप का वर्णन है। ये दोनों पद हृदय को प्रविष्ट करते वाले हैं। कल्याण रस का इतना सजीव वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। काव्य-क्षेत्र में यह 'दसरथ विभाप' बेजोड़ है। तीसरे दशक में सम्पूर्ण राम-कथा को कुमधेश्वर ने संक्षेप में दिया है।

कुमधेश्वर का राम-कथा सम्बन्धी प्रथम दशक 'तालाट्टु' शैली में है। लोरी गाकर शिशु को सुलाने के बहाने अपने भावों को व्यक्त करने की एक तमिळ काव्य शैली है जिसे 'तालाट्टु' कहते हैं। इसमें 'तामेलो' शब्द का प्रत्येक पद में एक या अधिक बार प्रयुक्त करना आवश्यक है। तमिळ के इस 'तामेलो' शब्द में बच्चे को सुलाने का आहूत मरा है। कुमधेश्वर ने इसी 'तालाट्टु' शैली में एक मधुर मीठ-पड़ति में (मीलाबुरी राग—तिरिपुई ताल) में स्वयं को कौशल्या के रूप में अनुभव कर राम के लिए लोरी गायी है। इन पदों में श्रुति सुखर संकीर्त निरादित होता है।

“मन्नु कुळळ कौडलै तन,

मणि मयिद बाइतवने

एन्नुडै इसमुदे !

इराववने ! तामेलो !”^१

‘ए एल कुमल इममुदे !

इराववने ! तामेलो”^२

[माता कौशल्या के गर्भ से निकले हे रत्न ! मेरे विध्यामृत है राख ! तामेलो (सो जाओ) - “हमारे कुल के विध्व मृत ! राख तामेलो !]

इस 'तालाट्टु' शैली में राम की स्मृति के माय-साप राम-कथा के कुछ प्रसंगों की ओर भी संकेत है जिनमें राम का जन्म ताड़का-वध सीता विवाह, छोटी माता (कैकेयी) का वचन सुनकर जन-नामन उस समय उनके ऊपर झोड़ना आदि घटनाएँ, राम का लंका प्रवेश रावण-वध इत्यादि प्रसंगों की ओर भी संकेत है। इस दशक में कवि ने अपने को माता कौशल्या के स्थान पर कल्पित कर राम को एक बासक के रूप में देखा है और अपनी वात्सल्य-भक्ति का परिचय दिया है।

१ “पेरुमाळ तिरुमोळी” ८१

२ पृष्ठी ८५

जैसा कि अगर कहा जा चुका है कुमदेवर का बरारन-बिलाप नामक दशक भक्ति-काव्य क्षेत्र में बेजोड़ है। कवि ने प्रिय पुत्र राम के जन-गमन पर अन्नवर्ती बरारन के मन में उठने वाली विभिन्न भाव-तरंगों को सहाराया है और उनका सजीव चित्र दर्शाया है। उसे हम "नाटकीय स्वयं भाषण" कह सकते हैं—क्योंकि इसमें बर्णित सभी बातें हमारे सामने प्रत्यक्ष ही बीबती हैं। प्रत्यक्ष पद में कवि का कोमल हृदय राम-जन-गमन के असह्य दुःख का स्मरण कर रो उठता है। कष्ट-अनन्द करता है। बैरवा की पचाकण्ठा ने मामों उसे काव्य-रस दे डाला हो। इन पदों का भावार्थ नीचे दिया जाता है जो कवि की आत्मा से परिचित होने के लिए पर्याप्त है—

"सिंहासन पर तुम्हें सोमित होकर हविष होने के बखसे कैंकेयी-बचन सुनकर भयानक बन में बैठने वाला मैं बड़ा पापी हूँ। हे मेरे सुपुत्र ! मैं अपने दुर्मति को क्या कहूँ ?" १

"अपने बहुत और पुण्य-सम कोमल देह वाली सीता को लेकर भयानक बन के लिए तुम कैसे बन दिने ! मैं क्या कहूँ ? भयानक बन में असह्य वान में अत्यधिक दुःख से तुम्हारे चलने का कारण मैं बना। मैं बड़ा पापी हूँ।" २

तुम पहले मुझ-सीमा पर सोते थे। अब तुम्हें बन-दुःख की छाया में लीज परपरो की सीमा पर सोना पड़ेगा। हाय ! ३

"जाज कानन-गण मैं तुम्हें जाना पड़ा—कुसह्य बन की भी प्रिय मान कर। छत्र-बा के हाथ वाले भागे के समान तीव्र परबर तुम्हारे पाँवों को चुभते हैं। बहिर प्रवाह के होने पर भी तुम्हें चलना पड़ता है। हे मुझ जैसे पापी के पुत्र ! पापी महिला कैंकेयी का बचन सुनकर निराशा में पड़ा मैं बयाया अब क्या कर सकूँ ?" ४

(बरारन की राम-सीता-विवाह का प्रसंग स्मरण हो जाता है) "तुम्हारा विवाह कराकर तुम दम्पतियों को सुखी बैलकर स्वयं हविष होने के बखसे अब तुम्हें भयानक बन में बैठने का कारण मैं बना जबकि मुझे स्वयं बनवास करना था। तुम्हारे जन-गमन पर मेरा हृदय दो टुक हो रहा है।" ५

'तुम्हारे माँ कहकर कुमाय का सीमाध्य तक मैंने कीयम्मा को नहीं दिया। तुम्हारे मुन्कर बदन का बैलकर पुनश्चित होने से उनको मैंने बधित रखा। जितनी लज्जा की बात है कि तुम्हें बन में भेजकर मैं अब भी जीवित हूँ।' ६

(कैंकेयी के अत्याचारों का स्मरण कर बरारन कहते हैं)—"हे कैंकेयी ! मेरे पुत्र को बन में भेजकर मुझे इस प्रकार ठकाना-तुमन कीद-ना सुन वाला ?" ७

१ वेदमाञ्जलि, ६१

२ वेदमाञ्जलि, ६२

३ वही, ६३

४ वही, ६४

५ वही, ६५

६ वही, ६६

७ वही, ६७

ब्रह्म की शक्ति से जो पत्थियाँ हमारे हृदय को बहुत ही प्रमित कर देने वाली हैं—

“कालकमे मिक बिहम्मी नी तुरम्ब
बळनगै तुरम्बु नागुम
बानकमे मिक बिहम्मी वीळिनेन
मनुकुलत्तार तपळ बीने ।”^१

[जिस प्रकार तुम समृद्ध अयोध्या नगर को त्याग कर बन (कालकम्) का रहे हो उसी प्रकार मैं भी इस नगर को छोड़कर जाकाश-कोक (बानकम्) का रहा हूँ ।]

यहाँ पर कवि ने ‘कालकम्’ और ‘बानकम्’ शब्दों को अनायास ही कण्ठ-रस से सिंचित किया है ।

‘वैष्णव तिरुमोळी’ के अंतिम ब्रह्म ‘संक्षिप्त रामायण’ में कवि ने बीच-बीच में भवबद्ध स्तुति कर कृपा-सिन्धु भगवान् से अपने पापों की भगवान् के अनुग्रह जल से धोकर, भगवान् के हास-मखमल में अपने को स्वीकार कर लेने की निगीत प्रार्थना की है । सामान्यतः कुलशेखार बाळ्यार की भक्ति वास्तव भक्ति की कोष्ठी में जाती है ।

तिरुमयै बाळ्यार के करीब २० पद राम-कथा प्रसंगों की ओर संकेत करते हैं । इस बाळ्यार ने भी पूरी राम-कथा को क्रमिक रूप से नहीं दिया है । उनकी रचना ‘वैष्णव तिरुमोळी’ के एक ब्रह्म^२ में राम रावण-युद्ध में पराजित राक्षसों के मुँह से राम की स्तुति का वर्णन है । तमिल-काव्य बीसी में पराजित व्यक्तियों के मुख से बिजयी पुरुषों की प्रशंसा सुनाने की एक परम्परा है । तात्पर्य यह है कि पराजित व्यक्ति द्वारा बिजयी पुरुष की प्रशंसा का वर्णन करने से ही बिजयी पुरुष के विशिष्ट गुणों और कृतियों का अच्छा परिचय मिल सकता है । कवि ने राम के विशिष्ट गुणों के गायन के लिए इस प्रकार का एक प्रसंग खोज निकाला है । उक्त ब्रह्म में पराजित राक्षस राम के श्रेष्ठ गुणों का वर्णन कर उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हैं । वे अपनी दुर्बलताओं को प्रकट कर रावण को बिचकारते हैं और राम की स्तुति करते हैं । उनके कथन के बीच राम-कथा के अनेकों प्रसंगों का उल्लेख हुआ है । तिरुमयै के अन्य पदों में कहीं-कहीं बिष्णु के अन्य अवतारों के साथ राम-कथा के कुछ प्रसंगों की ओर भी संकेत है । तिरुमयै बाळ्यार ने उन पदों में जहाँ वे आत्म निवेदन करते हैं, वहाँ उनकी वास्तव भक्ति दृष्टिगोचर होती है । तिरुमयै बाळ्यार के अनेक पद ऐसे हैं जहाँ उन्होंने नायक-नायिका-भाव से भक्त-नववत् सम्बन्ध को वर्णित किया है, वहाँ उनकी माधुर्य-भक्ति की सुन्दर झलकें मिल जाती हैं । उनकी रचना ‘तिरुनेल्लु वाङ्कम्’ के एक पद में उनकी राम भक्ति की माधुर्य भाव के माध्यम से प्रकट होती है ।

१ वैष्णव तिरुमोळी २.१०

२ वही १ २—११०

यद्यपि पेरियाळ्वार ने सीतानायक रूप में विभिन्न वास-सीताओं में अपने मन को डुबो दिया, तो भी रामावतार के प्रति उन्होंने ज्येष्ठा नहीं दिखाई। पेरियाळ्वार की रचना 'पेरियाळ्वार तिरुमासी' में दो दशकों में राम-कथा के प्रसंगों का वर्णन है। एक दशक^१ में दो सत्रियों के सम्भाषण के रूप में रामावतार और छप्पावतार की विशेषताओं का गायन कराया गया है। रामावतार की विशेषताओं का गायन कराया गया है। रामावतार की विशेषताओं का वर्णन करने वाली सभी राम-कथा के प्रसंगों में परशुराम गर्भ-जग ताड़का-वध, ककेयी के कवन पर राम का सीता सहित वन-भ्रमण भरत की प्रार्थना पर पादुका देना गुर्पणका-वध रामेश्वरम् में पुनर्वापक संका प्रवेश आदि की ओर संकेत मात्र करती है। एक अन्य दशक^२ में अष्टोक्त-वाटिका प्रसंग चित्रित है। सीताजी की लोभ में निकस हनुमान ने जब संका की अष्टोक्त-वाटिका में व्यासा से कुछ सीताजी के वर्णन किये तो एक ओर उसे अचानक बेचना हुई और दूसरी ओर उसके आनन्द की सीमा नहीं रही क्योंकि उसका परिष्कृत निष्प्रयाजन नहीं गया। पेरियाळ्वार के उक्त दशक में हनुमान द्वारा सीताजी का अपना परिचय अपने राम के दास और पूरुष रूप का निरूपण करने के कुछ संकेत तथा उसके द्वारा सीताजी को रामजी की ही हुई भ्रष्टाचार देने का वर्णन है। हनुमान के मुख से रामचन्द्रजी के परम कल्याणकारी गुणों की और सीताजी की स्तुति प्रस्तुत की गयी है। पेरियाळ्वार के यह अविकीर्ण वास्तव्य रस से भोज्य प्रोत है। कुछ पदों में यहाँ कवि भाव-समर्पण की भावना व्यक्त करता है यहाँ वास्तव भक्ति की सुन्दर भाँती मिलती है।

मम्माळ्वार (शठकोप) ने उपयुक्त तीन माछबारों की तरह राम-कथा-वर्णन में कोई दशक नहीं दिया है। फिर भी उनके पदों में वन-जग अन्य माछवारा के उत्सव के साथ रामावतार के कुछ कथा-प्रसंगों की ओर भी संकेत है। हादरा माछवारों में मम्माळ्वार का स्थान सर्वोपरि है। उन्हें 'विदम् तमिल वैदुतवान' अर्थात् 'विद को तमिल में प्रस्तुत करने वाला' कहा जाता है। उनका समस्त पद-संग्रह 'तिरुवायमोळी' भक्ति का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। भक्त-हृदय की कष्टतु पुकार इन पदों में पूँज उठती है। कवि ने स्वयं को विरहिणी नायिका के रूप में चित्रित कर नायक (भगवान्) से मिलने के लिए तड़पने वाले करने घर का मार्मिक परिचय दिया है। मौलिक प्रेम-वर्णन के लिए तमिल काव्य-परम्परा में उपमन्य सभी कविता का प्रयोग कर उन्होंने ज्येष्ठ मौलिक प्रेम का स्वरूप दे दिया है। इनका ग्रन्थ 'तिरुविदवतम्' मधुर भक्ति का सतरा-ग्रन्थ माना जा सकता है। मधुर भक्ति के दोनों पद (संयोग और वियोग) के समीप बिना इनके पदों में देखने को मिलते हैं।

१ पेरियाळ्वार तिरुमासी, १:११—१०

२ वही १:१० १—१०

उपयुक्त विवेचन से तात्पर्य यह है कि जहाँ आळवार भक्त प्रचलित कृष्णोपासक से उन्हींने रामोपासना भी की है। हिन्दी के प्रसिद्ध राम-भक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी विष्णु के अवतार कृष्ण अपने इष्टदेव राम का वर्णन करते हुए भी 'कृष्ण गीतावली' में अपनी कृष्ण-भक्ति का भी परिचय दिया है। इसी प्रकार परम कृष्ण-भक्त कविवर सुरदास ने भी रामावतार की महिमा गायी है। कृष्ण भक्ति के क्रमिक-विकास का अध्ययन करने वाला विद्वान् जहाँ आळवार भक्तों में कृष्ण भक्ति-काव्य का मूल स्रोत देखता है, वहाँ वह आळवारों को राम-कथा के प्रथम गायकों के रूप में अवश्य पायेगा। यह सच है कि आळवारों ने अपने मुख की माँ के अनुसार कृष्ण के लोक-रसक रूप का ही अधिक वर्णन गीत-पद्यों में प्रस्तुत किया है। कारण यह है कि उनका युग भक्ति-जाग्रोतन का युग था, भावावेश का युग था। उसमें 'रामायण' जैसे महाकाव्यों का प्रणयन असम्भव था। फिर भी उन्हींने राम-कथा के कतिपय प्रसंगों को अपने पदों में स्तान दिया जिनसे परवर्ती राम-भक्त कवि भी बहुत प्रभावित हुए और इसके फलस्वरूप उन लोगों ने महाकाव्य रचे हैं।

अगर 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' में इकर-कवर दिये गये राम-कथा-प्रसंगों को पत्रित कर समिक रूप में रखा जाए तो हमें पूरी राम-कथा मिल जाती है। 'प्रबन्धम्' के टीकाकार श्री पेरियवाङ्माल पिळ्ळै ने प्रबन्धम् में पत्र-तत्र उपलब्ध राम-कथा-संकेतों और वर्णनों को एक व्यवस्थित रूप में रखकर उन्हें 'पासुरप्पदी रामायण' के नाम प्रस्तुत किया है। आळवारों के पदों से कतिपय पंक्तियों को लेकर उन्हींने जो 'रामायण' प्रस्तुत किया है, इसके अवलोकन से यह स्पष्ट विधित होया कि आळवारों में रामोपासना भी कितनी तीव्र थी। 'प्रबन्धम्' से श्री पेरियवाङ्माल पिळ्ळै द्वारा संकलित पदों से निमित्त 'रामायण' को जोड़े दिया जाता है। यदि इसको हम 'आळवार रामायण' की संज्ञा दें तो उचित ही होगा।

‘आळवार-रामायण’

बालिकाण्ड

आळवार का नाम	रचना का नाम	पद-सं०
तिरुमंगै आळवार	पेरिय तिरुमोळी	११०-१
गन्नाळवार	तिरुन्नायमोळी	२८४
बही	बही	१०१११
बही	बही	४३१
बही	बही	१११
तिरुमंगै आळवार	पेरिय तिरुमोळी	११-८८
गन्नाळवार	तिरुन्नायमोळी	५११
बही	बही	१०-४१
तिरुमंगै आळवार	पेरिय तिरुमोळी	७८१

आळवारी का नाम	रचना का नाम	पद सं०
नम्माळवारी	तिरुवायमोळी	१० १-५
तिरुमंगी आळवारी	पेरिय तिरुमोळी	१-७-७
कुमथेसरळवारी	पेरुमाळ तिरुमोळी	१ १०
बही	बही	१०-१
बही	बही	८ १
बही	बही	१०-११
बही	बही	१० २
तिरुमंगी आळवारी	पेरिय तिरुमोळी	१ १० १
कुमथेसरळवारी	पेरुमाळ तिरुमोळी	१० २
तिरुमंगी आळवारी	पेरिय तिरुमोळी	४ १-५
नम्माळवारी	तिरुवायमोळी	१ २ १०
कुमथेसरळवारी	पेरुमाळ तिरुमोळी	१० ३
बही	बही	८ ८
बही	बही	१०-५
बही	बही	८ १

अयोध्याकाण्ड

पेरियाळवारी	पेरियाळवारी तिरुमोळी	२ १-५
बही	बही	१ १० ३
बही	बही	१ ८ ४
बही	बही	४-५ ४
बही	बही	१ १०-३
कुमथेसरळवारी	पेरुमाळ तिरुमोळी	८ २
पेरियाळवारी	पेरियाळवारी तिरुमोळी	४-५ ४
कुमथेसरळवारी	पेरुमाळ तिरुमोळी	८ २
बही	बही	८-७
तिरुमंगी आळवारी	पेरिय तिरुमोळी	११ ५ १
कुमथेसरळवारी	पेरुमाळ तिरुमोळी	८-२
नम्माळवारी	तिरुवायमोळी	५ ३ १
तिरुमंगी आळवारी	पेरिय तिरुमोळी	१ ५ १
कुमथेसरळवारी	पेरुमाळ तिरुमोळी	१० ४
बही	पेरिय तिरुमोळी	१-२ २
बही	पेरुमाळ तिरुमोळी	८ ३
पेरियाळवारी	पेरियाळवारी तिरुमोळी	१ १०-६

बाळवार का नाम	रचना का नाम	पृष्ठ सं०
कुमसेखराळवार	पेस्माळ तिस्रोळी	६११
बही	बही	६१०
मम्माळवार	तिस्रामोळी	१०६५
पेरियाळवार	पेरियाळवार तिस्रोळी	३१०५
तिस्रमं बाळवार	पेरिय तिस्रोळी	६५३
कुमसेखराळवार	पेस्माळ तिस्रोळी	६-७
पेरियाळवार	पेरियाळवार तिस्रोळी	३-१०-५
बही	बही	४६१
बही	बही	२१-८
बही	बही	४-६१

अरथ्य काण्ड

तिरमं बाळवार	पेरिया तिस्रोळी	१०-२३
बही	बही	८५४
कुमसेखराळवार	पेस्माळ तिस्रोळी	१०२
तिस्रमं बाळवार	चिरिय तिस्रमं	२४
पेरियाळवार	पेरियाळवार तिस्रोळी	३१०३
तिस्रमं बाळवार	पेरिय तिस्रोळी	३४६
कुमसेखराळवार	पेस्माळ तिस्रोळी	१०-५
तिस्रमं बाळवार	पेरिय तिस्रमं	१४५
बही	चिरिय तिस्रमं	३६
बही	बही	४
कुमसेखराळवार	पेस्माळ तिस्रोळी	१५
तिस्रमं बाळवार	पेस्माळ तिस्रोळी	३-६४
बही	बही	४-७-७
बही	बही	११४-७
तिस्रमाळी बाळवार	तिस्रमं चिरिय	५३
तिरमं बाळवार	पेरिय तिस्रमं	११२
बही	बही	१३
बही	पेरिय तिस्रोळी	५-७-७
बही	बही	६३५
बही	बही	१२४
बही	बही	१०२३
बही	बही	१०२५

भाळवार का नाम	रखना का नाम	पद सं०
परियाळवार	पेरियाळवार तिरुमोळी	३ १०-४
मम्माळवार	तिरुमुन्ताळ्वरम्	१८
तिरुमै भाळवार	पेरिय तिरुमोळी	११ ४-७
कुससेलराळवार	पेदमाळ तिरुमोळी	१०-६
मम्माळवार	तिरुवायमोळी	७-२ १
पेरियाळवार	पेरियाळवार तिरुमोळी	३ ६ ४
तिरुमर्ग भाळवार	पेरिय तिरुमोळी	२ १० ५

किक्किम्मा काण्ड

कुससेलराळवार	पेदमाळ तिरुमोळी	—
वही	वही	१०-६
मम्माळवार	तिरुवायमोळी	१ ५ ६
तिरुमै भाळवार	पेरिय तिरुमोळी	४ ६ ३
पेरियाळवार	पेरियाळवार तिरुमोळी	३ १०-८
वही	तिरुप्पस्नाडु	८
कुससेलराळवार	पेदमाळ तिरुमोळी	१० ११
मम्माळवार	तिरुवायमोळी	१ ५ ८
वही	वही	८ ७-६

मुम्बर काण्ड

पेरियाळवार	पेरियाळवार तिरुमोळी	३ १०-११
तिरुमर्ग भाळवार	पेरिय तिरुमोळी	१० २-६
वही	वही	१०-२ ५
पेरियाळवार	पेरियाळवार तिरुमोळी	३ १० १०
वही	वही	३ १० १
वही	वही	३-१० २
वही	वही	३ १० ३
वही	वही	३ १०-४
वही	वही	३-१० ५
वही	वही	३ १० ६
वही	वही	३ १०-७
वही	वही	३ १०-८
वही	वही	३ १० ८
वही	वही	३ १० १०
वही	वही	३ १० ८

आठवार का नाम	रचना का नाम	पद सं०
कुलशेखराठवार	पेरुमाळ तिरुमोळी	१० ११
तिरुमम आठवार	पेरिय तिरुमोळी	८ १-७
बही	बही	१० २ १
बही	तिरुनीकुन्ताप्पकम	२६
बही	तिरुपुरन्ताप्पकम	११

पुष्ट काण्ड

तिरुमंगै आठवार	पेरिय तिरुमोळी	१ १० १
बही	बही	८ १ ४
पेरियाळवार	पेरियाळवार तिरुमोळी	४ १ १
तिरुमंगै आठवार	पेरिय तिरुमोळी	१-८ १
गम्माळवार	तिरुवाय मोळी	७-१-६
कुलशेखराठवार	पेरुमाळ तिरुमोळी	१०-७
तिरुमंगै आठवार	पेरिय तिरुमोळी	८ १ ४
कुलशेखराठवार	पेरुमाळ तिरुमोळी	८
तिरुमंगै आठवार	चिरिय तिरुमळल	२१
बही	पेरिय तिरुमोळी	११ ४-७
बही	बही	१० २ १
बही	बही	१० १-२
बही	बही	४-८ १
बही	बही	१ १ १
बही	बही	१ ६ ४
आम्पाळ	तिरुप्पावै	४
तिरुमळिन्तै आठवार	तिरुवन्मन्दि विरुत्तम	११
तिरुमंगै आठवार	परिय तिरुमोळी	२ १०-८
तिरुमळिन्तै आठवार	नानमुक्क तिरुवन्तावि	४२
पोयपे आठवार	मुक्कल तिरुवन्तावि	४२
तिरुमसिन्धे आठवार	तिरुवन्मन्दि विरुत्तम	८७
गम्माळवार	तिरुवायमोळी	१०-६ १
तिरुमंगै आठवार	पेरिय तिरुमोळी	१ ४-७
बही	बही	१-२ ४
गम्माळवार	तिरुवायमोळी	१ ६ १
तिरुमंगै आठवार	परिय तिरुमोळी	१-८ १
पेरियाळवार	पेरियाळवार तिरुमोळी	१ १०-८

बाळबारे का नाम	रचना का नाम	पह सं०
पेरियाळबारे	पेरियाळबारे तिरुमाळी	१ १०-४
कुत्तयेच्चयळबारे	पेरुमाळ तिरुमोळी	१० १
बही	बही	६-६
गम्माळबारे	तिरुवायमोळी	८ ४-७
बही	तिरुवाचिरियम	१
बही	तिरुविरुत्तम	२१
तिरुमंगै बाळबारे	पेरिय तिरुमोळी	२ १-७
गम्माळबारे	तिरुवाय मोळी	६ २-१
तिरुमट्टिरी बाळबारे	तिरुवण्णम विरुत्तम	१७
पेरियाळबारे	पेरियाळबारे तिरुमोळी	१ १०-६
बाष्पाळ	तिरुप्पावै	२१
गम्माळबारे	तिरुवायमोळी	४ ५ १

परिशिष्ट ३

‘प्रबन्धम्’ पर लिखित भाष्य और उनकी भाषा

लिखित प्रमाणों के अभाव में ऐसा प्रतीत होता है कि आठवार भक्तों के पर बहुत समय तक मौक्तिक परम्परा से ही लोक-अवलोकित रहे। अन्तिम संत विष्णुदेव आठवार के उपरान्त आठवार भक्तों का पर-साहित्य नष्ट-प्राय होने तथा और श्री नाथमुनि (८२४ ई०—१४ ई०) के समय तक यह पर-साहित्य प्रायः नष्ट हो चुका। कहा जाता है कि एक बार नाथमुनि ने धीरंगम् में तीर्थ-यात्रा में जाए हुए कुछ पात्रियों से आठवारों का एक पर सुना जिसमें मम्मालवार के एक सहस्र पदों में उसके अन्तिम पद होने का उल्लेख था। श्री नाथमुनि ने उन पात्रियों से आठवारों के जग्य पदों को सुनाने की प्रार्थना की। परन्तु उन भक्तों को उस एक मात्र पद के अतिरिक्त कोई पद याद नहीं था। तब यह विचार कर कि मम्मालवार के जग्य स्थान पर पहुँचने पर सम्भवतः उनके जग्य पदों का भी पता चल जाय नाथमुनि ने उन भक्तों से मम्मालवार के जग्य-स्वान्तादि के सम्बन्ध विस्तृत विवरण प्राप्त किया और वे अपनी सत्य-युक्ति के लिए चल बसे। किंबदन्ती है कि श्री पराङ्गुलमुनि ने जो मधुरकवि के शिष्य थे (मधुरकवि स्वयं मम्मालवार के शिष्य थे), नाथमुनि को बताया कि मधुरकवि द्वारा मम्मालवार की स्तुति में रचित ‘कष्णिगुलु बिल्लोडु’ वा सहस्रों बार गायन करने से मम्मालवार के वर्तन मिल सकते हैं। कहा जाता है कि नाथमुनि के ‘कष्णिगुलु बिल्लोडु’ को एक सहस्र बार गायन करने पर स्वप्न में मम्मालवार ने वचन दिये और प्रबन्धम् के समस्त पद उन्हें गाकर सुनाए। कुछ भी हो इस किंबदन्ती से इतनी बात तो स्पष्ट हो जाती है कि नाथमुनि ने ही आठवारों के समस्त पदों का जो नष्ट प्राय अवस्था में थे—संकलन किया और ‘प्रबन्धम्’ के रूप में सम्पादन किया। इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि नाथमुनि के परवर्ती वैष्णव भाषाओं ने प्रबन्धम् के प्रति अपरिमित भक्ति विज्ञानों की और उसका महत्त्व पूरवत् समझा था।

भाष्यों का आविर्भाव

श्री राममुनि के समय से लेकर श्री रामानुजाचार्य के समय तक लगभग तीन सौ वर्षों के इस दीर्घकाल में वैष्णव-आचार्य प्रायः सभी आळ्वार-पदों के अध्ययन में लीन थे। आळ्वार-पदों से प्रभावित होकर वैष्णव आचार्यों ने इन भक्तिपूर्ण भावमय पदों की बनेक टीकाएँ भी प्रस्तुत कीं। इसी काल में आचार्यों ने ‘प्रबन्धम्’ के पद सागर से समुत्पन्न रत्न खोज निकाले। आळ्वारों के प्रति उनका श्रद्धा भाव बढ़ता गया जिसके फलस्वरूप श्री रामानुजाचार्य के समय से आळ्वारों की रचनाओं पर बनेक भाष्य निकलने लगे। आळ्वार-पदों की सुन्दर व्याख्या करने वाले आचार्यों ने उन पदों के अन्तर्गत भी अर्थ निकाले थे, वे ही निविबद्ध होकर भाष्यों के रूप में जनता के सामने आये। आळ्वार-पदों पर प्रथम भाष्य नम्माळ्वार की ‘तिरुवायमोळी’ पर था। आळ्वारों के बीच में नम्माळ्वार को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। इसको सूचित करने के लिए ही कदाचित् प्रथम भाष्य उनको रचना ‘तिरुवायमोळी’ पर लिखा गया। इसको श्री रामानुजाचार्य के शिष्य तिरुकुञ्जैविराम पिळ्ळन न श्री रामानुजाचार्य के आदेश पर निविबद्ध करके प्रस्तुत किया। इस भाष्य का नाम है, ‘आराइरप्पडी’^१ (१०० परिच्छेदों वाला भाष्य)। तत्पश्चात् श्री भट्टर क शिष्य नञ्जीयर ने एक विस्तृत भाष्य लिखा जो ‘ओम्पवायिरप्पडी’ (१,००० परिच्छेदों वाला भाष्य) कहा जाता है। नञ्जीयर क बाद एक बृहत् भाष्य प्रस्तुत करने का श्रेय नञ्जीयर के शिष्य ‘नपिळ्ळ’ को है। यह भाष्य ‘मुप्पत्ति आराइरप्पडी’ (३१,००० परिच्छेदों वाला भाष्य) के नाम से प्रसिद्ध है। इसको निविबद्ध करने वाले श्री बटुकु तिरुवीची पिळ्ळै थे। यह भाष्य ‘ईडू’ क नाम से बहुत ही प्रसिद्ध हुआ। ‘ईडू’ शब्द का अर्थ है—लिखित रूप में प्रस्तुत करना। ‘प्रबन्धम्’ के समस्त भाष्यों में ‘ईडू’ को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। इस भाष्य से ही आळ्वारों के पदों की व्याख्या में आमाञ्जनानक और सैदाथिक दृष्टिकोण रखा गया। (यह मणिप्रवास-दीप्ती में है। इसका शुद्ध तमिळ-अनुवाद महाश-विश्वविद्यालय की ओर से श्री पुण्योत्तम नाडुडू द्वारा १० भागों में हम ही में प्रस्तुत किया गया है।)

नपिळ्ळ के शिष्य पैरियवाञ्चान पिळ्ळै न आळ्वारों के चार महत्त्व पदों का एक विस्तारपूर्ण भाष्य तैयार किया। उसमें ‘तिरुवायमोळी’ में सम्बन्ध रखने वाला भाग ‘इरुपत्तिनामायिरप्पडी’ (२४,००० परिच्छेदों वाला भाष्य) कहा जाता है। पैरियवाञ्चान पिळ्ळै के शिष्य के बाद केसरी अळ्ळिय मणुबळ्ळीयर ने एक भाष्य केवल ‘तिरुवायमोळी’ पर प्रस्तुत किया जिसे ‘पैरिंरवायिरप्पडी’ (१२,००० परिच्छेदों वाला भाष्य) कहा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ‘तिरुवायमोळी’ की पाँच भाष्यों

१ ‘पदों’ का आधिक्य अर्थ है—“एक भाष्य”। यहाँ पदों के लिए परिच्छेद अर्थ लिखा हो उचित होता है।

को प्राप्त करने का मीरब प्राप्त है। कहते हैं कि इनके अतिरिक्त 'पतिनेट्टामिरप्पडी' के नाम से श्री वेरास्त देसिकाचार्य के परवर्ती आचार्यों द्वारा एक और भाष्य भी लिखा गया। यह भी कहा जाता है कि श्री वेरास्त देसिकाचार्य ने (जो 'बड़कनै सम्प्रदाय के संस्थापक थे) 'निबम परिमळम्' के नाम से ७६०० परिच्छेदों वाला एक बृहत् भाष्य प्रस्तुत किया था।

कुछ विद्वानों का मत है कि 'प्रबन्धम्' का सर्वाधिक प्रचार नाचमुनि के बहुत बाद में हुआ क्योंकि नाचमुनि तथा रामानुजाचार्य के बीच के आचार्यों ने अपनी रचनाओं में आळ्वारों का विशेष उल्लेख नहीं किया है। आळ्वन्भार (नाचमुनि के पौत्र) को पौत्र ग्रन्थों के रचयिता से आळ्वारों का विशेष उल्लेख कहीं नहीं करते। इस प्रकार आळ्वन्भार के शिष्यों (जिनको पंचाचार्य कहते हैं। वे हैं—पेरिय तिरुमलै नंबी, तिरुवाण्डी नंबी, पेरिय नंबी, तिरुमलै आंडान, तिरुकोट्टिबूर नंबी) ने भी आळ्वारों की कोई विशेष चर्चा नहीं की है। यह भी कहा जाता है कि श्री रामानुजाचार्य ने अपने ग्रन्थों में आळ्वारों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। किन्तु यह तर्क निराधार है। एक कारण यह है कि नाचमुनि से रामानुजाचार्य तक के आचार्यों ने जितने भी ग्रन्थ लिखे हैं, वे आळ्वारों से सीखा सम्बन्ध नहीं रखते। जहाँ उनके ग्रन्थों में आळ्वारों की विशेष चर्चा नहीं मिलना स्वाभाविक ही है। नाचमुनि ने तो नम्माळ्वार की स्तुति में एक श्लोक^१ लिखा था जो 'तिरुवायमाळी' के प्रारम्भ में नम्माळ्वार स्तुति में स्थान पाठा है। नाचमुनि के पौत्र श्री आळ्वन्भार ने भी एक श्लोक में नम्माळ्वार की स्तुति की है। रामानुजाचार्य के शिष्य कुरत्ताळ्वान ने आळ्वारों की अपने ग्रन्थ 'वीकुण्ठरव' में बड़ी स्तुति की है। कुरत्ताळ्वान के पुत्र श्री भट्टर ने भी 'द्राविड वेर' कहकर 'प्रबन्धम्' की महिमा का पात्र किया है।

व्याप्त होने की बात है कि जितने भी भाष्य आळ्वारों की रचनाओं पर लिखे उनमें अधिकतर नम्माळ्वार की रचना 'तिरुवायमाळी' के पदों से सम्बन्धित हैं। भाष्यकारों ने तिरुमोळी के एक सहस्र पदों को एक भाग में लिया है और 'प्रबन्धम्' के दोष तीन सहस्र पदों को दूसरे भाग में अलग रूप से लिया है। 'तिरुवायमाळी' के अतिरिक्त प्रबन्धम् में संघृष्ट अल्प पुस्तकों पर भी अलग-अलग टीकाएँ लिखी हैं। पेरियवाण्चान पिरुळ् ने तिरुवायमोसी भाष्य के साथ 'प्रबन्धम्' के शिष्यों पर भी भाष्य प्रस्तुत किया है। उनके भाष्य में कुछ पद बढ़ते रह गये वे विशेष रूप से पेरियाळ्वार तिरुमोली के कुछ पद। श्री मणुवाळ मामुनि ने उन पदों पर भाष्य प्रस्तुत कर पूरा किया। श्री मणुवाळ मामुनि के बृह तिरुवायमोळी-पिरुळ् ने भी पेरियाळ्वार तिरुमोळी

१ 'मत्तमुत्त विश्ववनामुवर्न'।

सर्वादि श्री शङ्कोपवाचमयम् ।

सहस्र शङ्कोपनिपत्तमयम् ।

नवाभ्यर्ह द्राविडवेर तापरम् ॥"

पर बार्धनिक दृष्टिकोण से युक्त एक बृहद् भाष्य प्रस्तुत किया। आठाल की रचना ‘तिरुमुरै’ पर अनेक टीकाएँ निकली हैं—इरामिरपण्डी नामामिरपण्डी मूवामिरपण्डी बारामिरपण्डी तथा सुधा सत्त्वम् वात्ताचाय कृत स्वापदेष्टाय । इनमें ‘मूवामिरपण्डी’ (३००० परिच्छेदों वाली टीका) के टीकाकार श्री पेरियवाक्कान पिळ्ळै हैं । ‘बारामिरपण्डी’ (१००० परिच्छेदों का भाष्य) के प्रणेता अलकिय मण्णाळ पेम्माळनायनार थे । ‘इरामिरपण्डी और ‘नामामिरपण्डी’ के रचयिताओं के नाम अज्ञात हैं ।

तोडरडोवोडी आळवार कृत तिरुप्पिळ्ळै एळुप्पि पर श्री नंजीयर तथा श्री पेरियवाक्कान पिळ्ळै द्वारा प्रस्तुत दो टीकाएँ मिलती हैं । तिरुप्पाए आळवार विरचित ‘बमसनादिपिरान’ पर श्री पेरियवाक्कान पिळ्ळै तथा अलकिय मण्णाळ पेम्माळ नायनार की टीकाएँ मिलती हैं । इस पर वेवान्त वैराकाचार्य ने ‘मुमिवाट्टन योगम्’ नाम से एक सस्तुत-टीका भी लिखी है । मयुर-कवि आळवार कृत ‘कण्णानुळ चिन्ताडु’ पर पर सब श्री नंजीयर नंपिळ्ळै पेरियवाक्कान पिळ्ळै आदि ने टीकाएँ प्रस्तुत की हैं । तिरुमंग आळवार कृत ‘पेरिय तिरुमोळी’ पर मिलन वाली टीकाओं में एक श्री पेरिय वाक्कान पिळ्ळै की है और दूसरी नंजीयर की । तिरुमंग आळवार की दूसरी रचना ‘तिरुनेडुन्नाण्डकम्’ पर श्री पेरियवाक्कान पिळ्ळै की एक प्रसिद्ध टीका उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त उक्त ग्रन्थ पर श्रीरंगम् के तंपुरान सोमों (भक्तगण) द्वारा रचित एक टीका भी है । परन्तु यह अब अप्रकाशित है । नम्माळवार की कृति ‘तिरुविदित्तम्’ पर श्री नंपिळ्ळै श्री पेरियवाक्कान पिळ्ळै श्री वाटिकेयन श्री अलकिय मण्णाळ भीमर आदि विद्वानों द्वारा प्रस्तुत टीकाएँ भी मिलती हैं । तिरुमंग आळवार की कृति ‘पेरिय तिरुमडम’ पर श्री पेरियवाक्कान पिळ्ळै तथा श्री अलकिय पेम्माळ नायनार ने टीकाएँ लिखी हैं । श्री नायनार की टीका ‘नायनार व्याख्यानम्’ कहलाती है । यह भी कहा जाता है कि अप्पिळ्ळै नामक एक विद्वान् ने ‘प्रबन्धम्’ के सभी पदों पर एक सामान्य भाष्य प्रस्तुत किया था । यह अब उपलब्ध नहीं है ।

भाष्यों की भाषा

श्री तिरुक्कुरक पिरान पिळ्ळैयन के समय से लेकर श्री मण्णाळ मामुनि के समय तक; अर्थात् लगभग १२वीं सदी से १३वीं सदी तक के सभी भाष्यकार अपने भाष्यों में एक विशेष प्रकार की भाषा का प्रयोग करने से यद्यपि वे दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों के निवासी थे । श्री नंजीयर मैमूरवासी थे । श्री पेरिय वाक्कान पिळ्ळै मद्रास प्रांत के कुम्भकोण-क्षेत्र के थे और मण्णाळ मामुनि रामानाडु जिले के थे । इस प्रकार अन्य भाष्यकार भी समस्त दक्षिण भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों के रहने वाले थे । परन्तु एक विशेष बात यह है कि इन सभी भाष्यकारों की भाषा ऐसी न एक समानता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । उन्होंने जिस विशिष्ट भाषा का प्रयोग किया था,

बहु मणिप्रवाळ'¹ कहलाती है। ५ अपने भाष्यों में अपने समय के दैनिक जीवन में काम आने वाले समस्त शब्दों और प्रयोगों को अपनाते थे। ६ तमिळ की मध-सैली में अपने वाक्या में तमिळ शब्दों के बीच-बीच वर्तन से पुष्ट संस्कृत के शब्दों और उदाहरणों को पिरो देते थे। ऊपर उल्लिखित टीकाकारों का काल तमिळ-साहित्य के इतिहास में 'माप्य-काल' कहलाता है। इन टीकाकारों ने जिस मणिप्रवाळ भाषा का प्रयोग किया था उससे तमिळ-भाषा का शब्द-सम्भार व्यापक हुआ और तमिळ-भाषा में एक नयी शक्ति आ गयी। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन टीका-ग्रन्थों में प्रयुक्त संस्कृत शब्द बड़े महत्त्व के हैं। इन भाष्यों में प्रयुक्त विविष्ट शब्दों और प्रयोगों का एक विस्तृत अध्ययन ही अपेक्षित है। पुराने समय में गुरु या बाचार्य की सहायता के बिना इन भाष्यों को समझना कठिन समझ आता था। इन टीकाकारों ने अपने भाष्यों में जिन विविष्ट प्रयोगों शब्दों वाक्यांशों का प्रयोग किया था उनके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए व्याख्या सहित उनका संकलन भी मणुवाळ मामुनि के समय के पक्काप हुआ। इन संकलनों में एक का नाम है, एक पर बिळक्कम (कठिन शब्दार्थ)। तिरुमायमोळी पर उपसम्भ 'ईडू' नाम के प्रसिद्ध भाष्य में प्रयुक्त विविष्ट शब्दों का अर्थ बताते वाला एक ग्रन्थ 'बीयर अर परम' है। वस्तुतः इस प्रकार के शब्दार्थ बताते वाले ग्रन्थ 'प्रबन्धम्' के भाष्यों के भी भाष्य ठहरे हैं।

स्मरण रहे कि जिस प्रकार बाळ्यार विरचित 'प्रबन्धम्' पर 'मणिप्रवाळ' सैली में तमिळ में बनेकालिक भाष्य उपलब्ध है, उस प्रकार के भाष्यों के वर्तन हैं तमिळ के अन्य धार्मिक साहित्यों के बीच में नहीं होते। वैष्णव भक्त-कवि बाळ्यारों के 'प्रबन्धम्' पर निकसे हुए जनगिनत श्रेष्ठ भाष्यों के समान श्रेष्ठ भक्त-कवि नाममात्रों के पद-संग्रह 'ठिवारम्' पर भाष्य नहीं मिलते। यह बड़े महत्त्व की बात है कि 'ठिवारम्' पर एक साम्प्रदायिक भाष्य ही उपलब्ध है। नैपिळ्ड तथा अन्य सभी भाष्यकार संस्कृत के भी बड़े विद्वान् थे। किन्तु उन्होंने अपने भाष्यों में संस्कृत

- १ सस्कृत शब्दों से मिश्रित तमिळ भाषा की सैली ही 'मणिप्रवाळ' कहलाती है। 'मणिप्रवाळ' से आशय है कि बहु दैली जिनमें दो मिश्र भाषाओं के शब्द आती होती और रसों से पिरोयी गयी एक माला। इस दैली का एक लघु उदाहरण इस प्रकार है—'इत्त जगत्तिल चित्त पितीस्वरकंडूयैय स्वल्प स्वभावस्त्वोन्मृदुम धरियासे पुस्वार्तोपाय कट्टैय्मिन्म मूळये तप्तादि विषय कंडिल मिन्म मंडो पोस्वर्त्तुम कडळत्तुम बोम्मातिरिक्कम् संसार बुद्ध सागरत्तिल उळ्ळत्तामिन्म केतनवक्कु 'कुर्मो मानुय बेहो एक्किर पडिये पुस्वार्तोपयोयी याल मनुय्य शरीर कुर्मम्'। इप्पडि कुर्ममान शरीरर्त्त पैन्नामम मोक्षकळै परिके धरिडु। मोळैळ्ळै पिरन्तामुम निरतिघ्नय सुख रूपमाय भयवह गुणानुभव कात्तामान तत्कैय्यप्तात्त क्य मोक्षकळै मोक्षवक्कम्पु निरतिक्कवत्ता।'—(नैचीयर टीका से)

प्रणालियों का पूर्णरूप से अनुकरण नहीं किया। उनकी भाषा सूक्ष्मता को सिद्ध हुए भी संस्कृत की रुढ़ियों का पालन नहीं करती। जिस तरह संस्कृत में लिखित भाष्यों की संजीवनी’ सर्वाङ्गाय रचित रजनी’ कण्टपाकम् जैसे नाम प्राप्त हैं, उस तरह तमिळ में रचित भाष्यों के अलग-अलग नाम नहीं हैं। वही संस्कृत भाष्यों के प्रारम्भ में एक ‘मंगलाचरण-स्तोत्र’ रखने की तथा प्रत्येक अध्याय में रचयिता और उसकी विद्वत्ता की स्तुति करने की परिपाटी है, वही तमिळ भाष्य उनमें मूल है। एक प्रश्न यह उठ सकता है कि जब इन तमिळ भाष्या में उन रचयिताओं के नाम एक परिचय नहीं मिलते हैं तो उनके रचयिताओं के सम्बन्ध में कैसे कुछ कहा जाय ? संयोगवश प्रत्येक भाष्य के अन्त में एक पक्ति में इस प्रकार का उल्लेख अवश्य मिला मिलता है कि अमुक कारण ही मेरी शरण है। इन पंक्तियों में जिनकी स्तुति मिलती है वह स्पष्टतः उनके रचयिताओं के आचार्यों (गुरुओं) की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिष्यों ने भाष्यकार गुरुओं के भाष्यों का सुरक्षित रखा है और उनका प्रति अन्त भाग प्रस्तुत किया है।

‘प्रबन्धम्’ पर लिखित पूरे भाष्यों के अतिरिक्त आठवागों के कुछ हुए पत्रों को लेकर उनका सार बताने वाले कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ भी मिले गए। इस प्रकार के ग्रन्थकारों में सर्व श्री मंजीयर पिळ्ळु लोकाचार्य और वेदान्त हेतिकाचार्य प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों को ‘रहस्य ग्रन्थ’ कहा जाता है। इस श्रेणी के ‘आत्म विवाहम्’ तथा ‘मुमुक्षु वर्णनम्’ नामक दो ग्रन्थ भी मंजीयर ने लिखे हैं। श्री पेरियवाक्कान पिळ्ळु के मा को प्रथम इस प्रकार के मिलते हैं। वे हैं—‘माणिक्यमासी और निगमनप्यको’। श्री पिळ्ळु लोकाचार्य तथा श्री वेदान्त हेतिकाचार्य ने सब से अधिक ‘रहस्य-ग्रन्थ’ लिखे हैं। श्री पिळ्ळु लोकाचार्य के लिखे १८ ‘रहस्यम्’ ग्रन्थों का माधूहिक नाम है ‘अष्टादश रहस्यम्’। श्री वेदान्त हेतिकाचार्य ने छोटे-मोटे १७ रहस्य ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें ‘रहस्य अष्टादशम्’ नामक ग्रन्थ सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि वेद उपनिषद् तथा ब्रह्म-सूत्र पर विरचित संस्कृत भाष्यों का जो महत्त्व है वही तमिळ-प्रदेश में तमिळ में लिखित प्रबन्धम् के भाष्यों का है। दोनों में समान रूप से आधुनिक विचित्रता का दृष्टिकोण रखा गया है। श्री रामप्रदाय (रामानुज रामप्रदाय) के सभी आचार्य और उनके शिष्यों ने इन भाष्यों का गम्भीर अध्ययन किया है।

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त १७ की शब्दों के परचाय या ‘प्रबन्धम्’ पर टीका ग्रन्थ मिलते रहें। इन टीकाओं की भाषा और ऊपर बर्णित भाष्यों की भाषा में अन्तर है। प्रारम्भ के ‘प्रबन्धम् भाष्यों’ में ‘मणिप्रवाह’ टीका (संस्कृत लिखित तमिळ) अन्तर्गत है। कुछ काल के परचाय मणिप्रवाह टीका छोड़ दी गयी और संस्कृत पन्ना से कुछ कुछ तमिळ-शाली में अनेक टीकाएँ निकलने लगीं। इस प्रकार ‘प्रबन्धम्’ के भाष्यों का एक पृथक् विस्तृत-साहित्य ही निर्मित हो चुका है।

इन भाष्यों के अध्ययन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हो जाती हैं—

- १ इन भाष्यों के द्वारा आळवारों के पदों का व्यापक प्रचार तमिळ-प्रदेश में हो सका और लोग आळवारों के उग्र विचारों से परिचित हो सके । आळवारों के प्रति तमिळ-समाज में भक्ता-भाव बाग छटा ।
- २ 'प्रबन्धम्' के प्रारम्भिक भाष्यों की भाषा के संस्कृत शब्दों और विशिष्ट प्रयोगों से युक्त होने (मणिप्रवाळ-शैली में होने) के कारण तथा उन भाष्यकारों के समस्त वक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों के निवासी होने के कारण वक्षिण के विभिन्न जातों के लोगों में आळवार पदों का प्रचार हो सका । इस प्रकार की शैली में होने के कारण सब लोग समझ सके और इस प्रकार समस्त वक्षिण भारत में आळवारों के विचारों की फैल जाने का अवसर मिला । "मणिप्रवाळ" के संस्कृत भाषा के निकट होने से यह भी सम्भव है कि उत्तर भारत के विद्वान् भी उन भाष्यों को समझ सके ।
- ३ तमिळ भाषा में इन भाष्यकारों के भाष्यों के माध्यम से बहुत से संस्कृत शब्द प्रवेश कर गये । ये शब्द अधिकतर सरल और मधुर संस्कृत शब्द थे, जिनसे तमिळ भाषा में एक नयी छक्ति आ गयी ।
- ४ तमिळ में १२ वीं शती से १६-१७ वीं शती के बीच में प्रबाल रूप से भाष्य ही लिखे गये । यही कारण है कि तमिळ-साहित्य के इतिहास में वह कास 'भाष्य ग्रन्थ-काल' कहलाता है ।
- ५ इन भाष्यों में आळवारों की विचार-भारत का प्रचार करने में बड़ी सहायता की और आळवार-पदों को सुरक्षित रखने में महान् योग दिया है और उनके महत्त्व को समझने में बड़ी सहायता मिली ।

परिशिष्ट ४

सहायक ग्रन्थ-सूची

हिन्दी

- १ अष्टछाप और बसन्त-सम्प्रदाय—डा० बीनव्यास कुल
- २ भाववत-सम्प्रदाय—बसन्त उपाध्याय
- ३ भारतीय साधना और गुरु साहित्य—डा० मुंशीराम शर्मा
- ४ मध्यकालीन बर्म-साधना—डा० हुजारी प्रसाद द्विवेदी
- ५ मध्यकालीन प्रेम-साधना—परमुराम चतुर्वेदी
- ६ उत्तरी भारत की संत-परम्परा—परमुराम चतुर्वेदी
- ७ गुरु और जनका साहित्य—डा० हरबच साह शर्मा
- ८ भाववत बसन्त—डा० हरबच साह शर्मा
- ९ गुरुदास—डा० ब्रजेश्वर वर्मा
- १० महाकवि गुरुदास—आचार्य नन्द कुलारै बाजपेयी
- ११ गुरु की काव्य-कला—डा० मनमोहन गौतम
- १२ राधावल्लभ सम्प्रदाय लिखात और साहित्य—डा० विजयेन्द्र साठक
- १३ हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि—विजयेश्वर नाथ उपाध्याय
- १४ गुरुदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- १५ गुरु-साहित्य—डा० हुजारी प्रसाद द्विवेदी
- १६ वैष्णव बर्म—परमुराम चतुर्वेदी
- १७ हिन्दी काव्य-भारा में प्रेम प्रवाह—परमुराम चतुर्वेदी
- १८ छन्दरी बरवार के हिन्दी कवि—डा० सरपूरप्रसाद अग्रवाल
- १९ मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ—डा० सावित्री निगहा
- २० हिन्दी काव्य में प्रेम और सौम्य—डा० रामेश्वरनाथ पंडितनाथ

- २१ हिन्दी कृत्य-भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव—डा० शशि नम्रपाल
 २२ ब्रजभाषा के कृत्य भक्ति काव्य में प्रमिष्यजना सिद्ध—डा० शशिनी सिन्हा
 २३ भक्ति का विकास—डा० मुंशीराम शर्मा
 २४ अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक सूक्ष्मांकन—डा० माधाराणी दण्डन
 २५ अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल
 २६ कृत्य भक्ति-कालीन साहित्य में छापीत—डा० उषा गुप्ता
 २७ हिन्दी काव्य में रहस्यात्मक प्रवृत्तियाँ—डा० ब्रजमोहन गुप्त
 २८ चुर सौरभ—डा० मुंशीराम शर्मा
 २९ चुर की सीढ़ी—डा० सरयूद
 ३० राधा का भक्तिक विकास—डा० सवित्रपण्णबास गुप्ता
 ३१ अष्टछाप—डा० धीरेन्द्र वर्मा
 ३२ ब्रजभाषा—डा० धीरेन्द्र वर्मा
 ३३ भारतीय ब्रह्म—बलदेव उपाध्याय
 ३४ भारतीय संस्कृति—श्री देवदत्त द्वानी
 ३५ हिन्दुस्तान की पुरानी सम्पत्ता—डा० बेनी प्रसाद
 ३६ संस्कृति के चार धर्म्य—राधारीसिंह वितकर
 ३७ कृत्य-काव्य में ज्ञान-गीत—डा० स्वाम सुन्दरदास बोखित
 ३८ रामानन्द संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव—डा० ब्रह्मोत्तरावण
 श्रीवास्तव
 ३९ राम-भक्ति साहित्य में मञ्जु उपासना—मुबनेस्वर मिश्र माधव
 ४० हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण—डा० किरण कुमारी गुप्ता
 ४१ मीरा स्मृति सम्भावना—बगीच हिन्दी परिवार
 ४२ पोद्दार धर्मिणन्दन धन्य
 ४३ गुजराती और ब्रजभाषा कृत्य-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डा० जयवीर गुप्त
 ४४ हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति-ग्रन्थोत्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन—डा० हिरण्य
 ४५ १६ वीं शताब्दी के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि—डा० रत्नकुमारी
 ४६ हिन्दी और मलयालम में कृत्य-भक्ति काव्य—डा० मास्कर नामक
 ४७ कंवर और तुलसी—डा० शंकर राजु नायडू
 ४८ हिन्दी साहित्य—डा० स्वामसुन्दरदास
 ४९ हिन्दी साहित्य का इतिहास—भाचार्य रामचन्द्र शुक्ल
 ५० हिन्दी साहित्य का सामोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा
 ५१ हिन्दी साहित्य का भूमिका—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
 ५२ तमिल और उक्त्य साहित्य—गुण सोमसुन्दरम्
 ५३ तमिल साहित्य और संस्कृति—मदन मदन
 ५४ सुरतापर—प्र भागरी प्रचारिणी सभा

- ११ परमलम्ब सागर—सं० डा० बोबर्धननाथ शुक्ल
- १२ लम्बलम्ब प्रयागली—प्र० नागरी प्रचारिणी सभा
- १३ मीराबाई की पदावली—सं० परभुराम जगुबेदी
- १४ ब्रजमाधुरी सार—सं० बियोमी हरि
- १५ लिम्बलम्ब माधुरी—सं० बिहारीछरण बुन्दावन
- १६ रसज्ञान का समर काव्य—सं० दुर्गाधर मिश्र
- १७ श्रीहित स्फुटबाणी
- १८ मुद्रामा-चरित—मरोत्तमदास
- १९ भक्तमान—नामादास
- २० दो-सो बावन बैष्णवन की बार्ता
- २१ बीरासी बैष्णवन की बार्ता

पत्र-पत्रिकाएँ (हिन्दी)

- १ आलोचना
- २ भारतीय साहित्य
- ३ अमित्र भारती
- ४ साहित्य-सम्यक्
- ५ कल्याण (भक्ति-संक)

संस्कृत

- १ मारव भक्ति-सूत्र
- २ श्रीमद्भागवत—गीता प्रेस नोरखपुर
- ३ मुकुन्दमाला—कुलदेवराजदास
- ४ हरिमठिरसामृत सिन्धु—श्री रूप गोस्वामी
- ५ विष्णु प्रबन्ध कथामृत—श्री अर्जुनराचार्य

समिद्ध

- १ नालागिरि विष्णु प्रबन्धम्—सं० वृष्णमाचारियार
- २ बही —सं० अर्जुनराचार्य
- ३ छात्रवारकट करितिरम—सी० आर० श्रीनिवास अय्यंगार
- ४ छात्रवारकट वरसाह—के० आर० गोविन्दराज मुद्रसिंहार
- ५ छात्रवारकट बलिबुरकर वरसाह—के० आर० गोविन्दराज मुद्रसिंहार
- ६ छात्रवारकट कालिनिर्लै—एम० चपलवर्धनार
- ७ श्री भगवत विवदम्—ए० रंगनाथ मुद्रसिंहार
- ८ भक्ति-यु का—श्री० एतिराज्य

- १ श्री वैष्णवम्—सं० ए० रंगनाथ मुद्रतिथार
- १० ईदित्त तमिळान्कम् (तिरुवाय मोळी) बस भाग—पी पुत्तोत्तम नाम्बु
(प्रकाशक—मद्रास विश्वविद्यालय)
- ११ तिराविडु मुनिवरकळ—एम राधाकृष्ण पिळ्ळै
- १२ मूवर एट्टिय मोळि बिळक्कु—पी० श्री आचार्य
- १३ तौन्नकुलमे तोळकुसम—पी श्री० आचार्य
- १४ भगवान् बळत्त मत्तर—पी० श्री० आचार्य
- १५ कुलसैयार—टी पी० मीनास्वाधुम्बरनार
- १६ तमिळ म वैचबमुम—एम० राधाकृष्ण पिळ्ळै
- १७ पैरियाळ्वार पिळ्ळै तमिळ—टी पट्टपावती अम्माळ
- १८ बिस्सिपुत्तुर बिळक्कु—एस० कृष्णशैली अम्मीयार
- १९ तिरुवायमोळी बिळक्कम्—पूर्वराजम पिळ्ळै
- २० आण्डाळप्रवक्षिय तिरुप्पाव—पी० के अम्मुबनापन
- २१ भक्ति मैरी—श्री० राजगोपासाचार्य
- २२ आठवारकळ अळ्ळमोळी—चामी चित्तरनार
- २३ विष्णु प्रबन्ध तारम्—पी० श्री० आचार्य
- २४ पैरियाळ्वार वेन्कोडी—कृष्णशैली अम्मीयार
- २५ विष्णु प्रबन्ध उरै—श्री अण्णकराचार्य
- २६ कंबन कव्य तमिळकम्—चामी चित्तरनार
- २७ कंबन कावियम्—एस० बैयापुरी पिळ्ळै
- २८ मोळी वरसाव—डा० भु० वरदराजनार
- २९ पत्तरवर वरसाव—डा० एम० राजमालिक्कनार
- ३० तमिळ इलक्किय वरसाव (२ भाग)—के० मुक्कुण्डम् पिळ्ळै
- ३१ तमिळ चरित्तिरम्—एन एस० कर्त्तैया पिळ्ळै
- ३२ तमिळ इलक्किय वरसाव—ई० एस० वरदराज अम्मीयार
- ३३ तमिळ वरसाव—के एस० श्रीनिवास पिळ्ळै
- ३४ तमिळर छात्तु—डा० विद्यानन्दन
- ३५ इलक्किय उदयम्—एस० बैयापुरी पिळ्ळै
- ३६ अक्कोट्टुम् अन्नलियेयुम्—टी० डी० रामस्वामी नाम्बु
- ३७ ज्ञान सितरम्—पी० श्री० आचार्य
- ३८ कुयिल एळुप्पिय तौडर—पी० श्री० आचार्य
- ३९ आठवारकळ म आचार्यकळ म—पी० श्री० आचार्य
- ४० तमिळर पन्नाडु—बैयापुरी पिळ्ळै
- ४१ तमिळ नाटु बिळक्कळ—एम० परमघिषानन्दम
- ४२ तमिळर बळत्त अळ्ळु कलकळ—मपिर्न चीनी वैक्कचामी

- ४३ याप्पिलवृत्तम—प्रकाशक श्री विद्यान्त नृपतिप्पु कळक्कम
 ४४ यन्नियलवृत्तम—बही
 ४५ तान्नादुडु इलक्कियम—मु० अस्सायमम

पत्र-पत्रिकाएँ (तमिळ)

- १ चैतमिळ
 २ तमिळ पोळिल
 ३ त्रिक्कळियल
 ४ श्री रामकृष्ण विज्ञयम

ENGLISH

- 1 Alvar Saints—Swami Shudhananda Bharati.
- 2 The Divine Wisdom of Dravida Saints—A. Govindacharya.
- 3 The Life & Teachings of Ramanujacharya—C R. Srinivasa
Aiyengar
- 4 A Metaphysique of Mysticism—A Govindacharya Swamin
- 5 Grains of Gold—R. S. Desikan
- 6 The Holy Lives of Alvars or Dravida Saints —A Govindacharya.
- 7 Hymns of Alvars—J S M Hooper
- 8 Tiruppaval (English Translation)—D Ramaswamy Aiyengar
- 9 Sri Mukundamala (with notes)—K. Ramaphisarotty
(Annamalai University Publication)
- 10 The Glory of Tamil Prabbanda—(Annangaracharya) English
Translation by M V V K Rangachari.
- 11 History of Srivakshnavas—T A Gopinatha Rao (Sri Subramonia
Iyer Lectures)
- 12 Early History of Vakshnavism in South India —Dr S Krishana
swamy Aiyengar
- 13 History of Tirupathi (Two Volumes)—Dr S Krishnaswamy
Aiyengar
- 14 Ancient India—Dr S. Krishnaswamy Aiyengar
- 15 Tamil Studies—M Srinivasa Aiyengar
- 16 Origin and Early History of Saktism in South India—C. V
Narayana Iyer

- ६ श्री वैष्णवम्—सं० ए० रंगनाथ मुनिवार
- १० इन्द्रिय तमिळ्नाटकम् (तिरुवाय मोळी) बर नाव—श्री पुरुषोत्तम नायडू
(प्रकाशक—मद्रास विपक्वविद्यालय)
- ११ तिरुविडु मुनिवारकळ—एम० रामाकृष्ण पिरुई
- १२ शूबर एन्द्रिय मोळि विळक्कु—पी० श्री० आचार्य
- १३ तोंडक्कुलये तोळ कुलम—पी० श्री० आचार्य
- १४ बगवान् बळल नन्दर—पी० श्री० आचार्य
- १५ कुलमैयार—टी० पी० मीनासाकुन्वरनार
- १६ तमिळ्नाथ वैष्णवम्—एम० रामाकृष्ण पिरुई
- १७ वेरियाळ्वार पिरुई तमिळ्—टी० पञ्चमावती अम्माळ
- १८ विमिलपुत्तुर विळक्कु—एस० कृष्णवैली अम्मीयार
- १९ तिरुवायमोळी विळक्कु—पूर्वराज्य पिरुई
- २० आन्नाळ्वारकळ तिरुप्पावै—पी० के० सम्मुञ्जनायन
- २१ भक्ति मैरी—श्री० राजपोपालाचारी
- २२ आळ्वारकळ अळ्ळमोळी—बामी चित्तपरनार
- २३ विषय प्रबन्ध सारम्—पी० श्री० आचार्य
- २४ वेरियाळ्वार वेळोडी—कृष्णवैली अम्मीयार
- २५ विषय प्रबन्ध चरै—श्री० मन्मथकराचार्य
- २६ कंबल कण्ड तमिळ्नाटकम्—बामी चित्तपरनार
- २७ कंबल कावियम्—एस० वैयापुरी पिरुई
- २८ मोळी बरसाव—डा० मु० बरदराजनार
- २९ पन्नरवर बरसाव—डा० एम० राजमाणिक्यनार
- ३० तमिळ् इत्यधिक्य बरसाव (२ भाग)—के० सुब्रह्मण्य पिरुई
- ३१ तमिळ् चरित्तारम्—एन० एस० कन्था पिरुई
- ३२ तमिळ् इत्यधिक्य बरसाव—ई० एस० बरदराज अम्मीयार
- ३३ तमिळ् बरसाव—के० एस० धीनिवास पिरुई
- ३४ तपिळर ताम्पु—डा० विद्यानन्दन
- ३५ इत्यधिक्य उदयम्—एस० वैयापुरी पिरुई
- ३६ अकण्ठीकुम अकलित्रैकुम—टी० डी० रामस्वामी नायडू
- ३७ ज्ञान मिळरम्—पी० श्री० आचार्य
- ३८ तुमिल एळुप्पिब तोंडर—पी० श्री० आचार्य
- ३९ आळ्वारकळम् आचार्यकळम्—पी० श्री० आचार्य
- ४० तमिळर कन्नाडु—वैयापुरी पिरुई
- ४१ तमिळ् नादु विळक्कु—एम० परमशिवानन्दम्
- ४२ तमिळर बळल अळ्ळकु अम्माळ—मयिले श्रीनी बेंकटचामी

- ४३ धार्मिकचरित्रम्—प्रकाशक श्री विद्यान्त दूर्पतिप्पु कलकत्ता
 ४४ धर्मविमलचरित्रम्—बही
 ४५ ताम्रदत्त इतिहासम्—मु० अद्वैतचरणम्

पत्र-पत्रिकाएँ (तमिळ)

- १ चैतन्य
 २ तमिळ पोळिम्
 ३ विष्णुकोषम्
 ४ श्री रामकृष्ण विद्यालय

ENGLISH

- 1 Alvar Saluts—Swami Shudhananda Bharati.
 2 The Divine Wisdom of Dravida Saluts—A. Govindacharya.
 3 The Life & Teachings of Ramanojacharya—C R. Srinivasa
 Aiyengar
 4 A Metaphysique of Mysticism—A Govindacharya Swamin
 5 Grains of Gold—R. S. Desikan
 6 The Holy Lives of Alvars or Dravida Saluts —A Govindacharya.
 7 Hymns of Alvars—J S M Hooper
 8 Tirupparai (English Translation)—D Ramaswamy Aiyengar
 9 Sri Makandamala (with notes)—K. Ramapisharotty
 (Annamalai University Publication)
 10 The Glory of Tamil Prabbanda—(Annangaracharya) English
 Translation by M V V K. Rangachari
 11 History of Sri Vaishnavas—T.A Gopinatha Rao (Sri Subramonia
 Iyer Lectures).
 12 Early History of Vaishnavism in South India —Dr S Krishnan
 swamy Aiyengar
 13 History of Thirupathi (Two Volumes)—Dr S. Krishnaswamy
 Aiyengar
 14 Ancient India—Dr S. Krishnaswamy Aiyengar
 15 Tamil Studies—M Srinivasa Aiyengar
 16 Origin and Early History of Saivism in South India—C. V
 Narayana Iyer

- 17 Studies in Tamil Literature and History—V R. Ramachandra
Dikshitar
- 18 Tamil India—M S Purnalingam Pillai
- 19 History of the Tamils—P T Srinivasa Iyengar
- 20 Some Contributions of South India to Indian Culture—Dr S
Krishnaswamy Aiyengar
- 21 Tamils Eighteen Hundred Years Ago—K. Kanakasabai
- 22 Dr S Krishnaswamy Aiyengar—Commemoration Volume.
- 23 Tamilnad through Ages—M Paramasivanandam.
- 24 Essays on the Origin of South Indian Temple—Dr Venkata
Rammayya.
- 25 A History of South India—K. A. Nilakanta Sastri.
- 26 South Indian Inscriptions (Vol. I & II)
- 27 Advanced Studies in Tamil Prosody—Dr A Chidambaranatha
Chettiar
- 28 History of Tamil Language and Literature—S. Vayyapuri
Pillai.
- 29 Philosophy of Vishvata-dvaita—P N Srinivasachari
- 30 Mystics and Mysticism—P N Srinivasachari.
- 31 Aspects of Bhakti—Dr K. C Varadachari.
- 32 Idea of God—Dr K. C Vardachari.
- 33 Vaishnavism, Saivism and other Minor Religious Sects—Dr R. G
Bhandharkar
- 34 A History of Indian Philosophy (Vol III)—Dr. S. N Das
Gupta.
- 35 Bhakti Cult in Ancient India—Dr Bhagat Kumar Gorwami.
- 36 The Cultural Heritage of India Series (Volumes III & IV)—
Sri Rama Krishna Mission-Calcutta.
- 37 Materials for the Study of the Early History of the
Vaishnavya Sect—Hemachandra Ray Choudhuri
- 38 Vaishnavite Myths (In Folk lore Setting)—Dr Banikant Kakati
- 39 Indian Philosophy (2 parts)—Dr Radhakrishnan
- 40 Obscure Religious Cults—Dr Shashibushan Das Gupta
- 41 Monograph on the Religious Sects of India—D A. Pal
- 42 Vaishnavite Reformers of India—T Rajgopalachari

- 43 Path way to God in Hindi Literature—R. D. Ranade.
- 44 Influence of Islam on Indian Culture—Dr Tarachand.
- 45 An Outline of the Religious Literature in India—J N Farquhar
- 46 Literatures in Modern Indian Languages (Govt. of India Publication)

Journals

- 1 Journal of the Annamalai University
- 2 Annals of Oriental Research Madras
- 3 Tamil Culture, Madras,
4. Indian Antiquary
- 5 Journal of the Sri Venkiteswara Oriental Research Institute, Tirupati
6. Vedanta Kesari, Madras
- 7 Journal of Royal Asiatic Society

परिशिष्ट ५

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	प्रामुख	शुद्ध
८	२	भारत	भारत
१५	२७	कीर्तिकेय	कातिकेय
१६	४	किकारी	शिकारी
२०	१३	मल्ल-भाब	मल्लि-भाब
२३	१५	रचनाओं में	रचना करने वालों में
२४	११	'पुरनाथ'	'पुरनाथ'
२५	२५	बसिराम	बसिराम
२६	५	इबरीय	ईबरीय
२६	५	मायोन	मायोन
३६	१४	कसब	कसब
४३	१४	सबन	सबन
४४	१४	इर्लम	इर्लम
४७	२६	बटकार	बटिकार
४८	२८	मूठताळवार	मूठताळवार
५२	६	बर्तक	बसक
५३	८	मल्लि	म्यल्लि
५५	२	मालबाम नही	मास्बाय नही
६३	१	'मारबल'	'माबरल'
६३	२१	महाकाव्य	महाकाव्य
६४	५	इष्टीय देस्माळ	इष्टीय देस्माळ
६८	२	बडकळ	बडकर्स
६८	२३ २४ २८	बडकळ	बडकर्स
(बीर अय्यर)		तैम्कळ	तैम्कर्स
"	२४ ३०	तैम्कळ	तैम्कर्स

पृष्ठ	पंक्ति	मनुष्य	सुद्ध
७२	७	इतमत्	इतमत्
७७	२०	भाषायों	भाषायों
८३	१६	निरुन्तादि	निरुन्तादि
८८	१५	इर्ष्या	इर्ष्या
१०५	७	बहुत से	बहुत समय से
११८	२६	बाळभार कलमिल	बाळभार कासनिसी
(और अग्यत्र)			
१२०	२८	मार्गळी गोम्पु	मार्गळी गोम्पु
(और अग्यत्र)			
१२२	१८	(मच्छाघरेणु)	मच्छाघरेणु
१२४	१७	अपराध	अपराध
१२४	२५	ठिरपल्ली एलक्की	ठिरपल्ली एलक्की
(और अग्यत्र)			
१२५	१८	प्राण	पाणन
१२८	२५	सामक	नामक
१३३	२८	प्रबाण	प्रकार
१४१	१	मच्छमास	मच्छमास
१५५	६	तुके हैं—किन किन	तुके हैं कि किन-किन
१५६	१६	'प्रबन्धम्' अतिशय	'प्रबन्धम्' के अतिशय
१५७	१२	उसके	उस ने
१६०	१२	मयान्नाम	मयान्नाम
१६२	३०	एप्पोळुडुम	एप्पोळुडुम
१७५	१६	प्रसंगव	प्रसंगव
१८४	२८	बेणु-मापुरी	बेणु-मापुरी
१८६	१२	अनुन के	अनुन ने
१९०	७	क्रिया-कमाप	क्रिया-कमाप
१९१	१३	सोट रहे	सोट रहे
१९२	४	अमळादिपिरान	'अमळादिपिरान'
२००	२८	अनुवणदुद	अनुवणदुद
२०६	२२	'नप्पिन्नी'	'नप्पिन्नी'
२११	५	चित्तन-बारा	चित्तन-बारा
२१६	४	प्रमुत्तया	प्रमुत्तया
२१८	२३	प्रकार है	प्रकार किया है।
२२०	१७	साधन	साधन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२७	३	साक्षात्	साक्षात्
२३७	५	भगवात्	भगवात्
२४६	१५	मेंटकर	मेंट कर
२४६	१८	नीबिने	टीबिने
२४६	८	प्रसंग में मिलते	प्रसंग में बिये
२५१	१	सुखमन्ता	सुखमन्ता
२५१	१६	पेरियाळ्वार	पेरियाळ्वार हैं और पेरियाळ्वार
२५१	२०	तिरुप्पत्तायु	तिरुप्पत्तायु
२५३	१	बन्दी	बस्ती
२५५	८	भाम्म	भाम्म
२५६	५	कवयित्री	कवयित्री
२६२	३०	विरुप्पट्टक्केट्टिन्ट्रुव	विरुप्पट्टक्केट्टिन्ट्रुव
२७५	१८	छंकट-ग्रस्त	छकट-ग्रस्त
२७५	१७	पह्णार	पह्णान
२८६	२०	fruit	fruit
२८६	२३	philosophical	philosophical
२९२	२	आळ्वार कहते	आळ्वार कहते हैं
३०	११	मीर	मीरा
३३६	१६	स्पष्ट ही है	स्पष्ट की है
३४८	१५	तासेसो	तासेसो
३५६	७	मेरी	मेरी
३६६	३०	से समान	के समान
३७४	१३	बर्धन-सुख	बर्धन-सुख
३८३	२८	भक्ति-वैचित्र्य	उक्त-वैचित्र्य
२६७	२५	जमने लगी	जमकने लगी
४५	३	और नीति उपदेश	नीति और उपदेश
४२५	१८	जाये जाते	जाये जाते

नोट :—तमिळ भाषा के उद्धारणों का देखनाबरी लिपि में प्रस्तुत करने में छापे की अशुद्धियाँ यत्र-तत्र पढ़ गयी हैं । उनका सिए लेखक ध्याना-प्राप्ति है ।

